GOD SPEAKS
Hindi-English
Dual Language Edition

The Theme of Creation and Its Purpose

Second Edition 1973

By

Meher Baba

An Avatar Meher Baba Trust eBook
June 2019

Copyright © 1955, 1973 by Sufism Reoriented, Inc.

Short publication history: *God Speaks* was first published by Dodd-Mead (New York) in 1955. Its revised and enlarged second edition was published by Sufism Reoriented (Walnut Creek, CA) in 1973.

The pagination in this dual language edition differs from the original. Text colored in red and green are notes added which do not appear in the original.

eBooks
at the Avatar Meher Baba Trust Web Site

The Avatar Meher Baba Trust's eBooks aspire to be textually exact though non-facsimile reproductions of published books, journals and articles. With the consent of the copyright holders, these online editions are being made available through the Avatar Meher Baba Trust's web site, for the research needs of Meher Baba's lovers and the general public around the world.

Again, the eBooks reproduce the text, though not the exact visual likeness, of the original publications. They have been created through a process of scanning the original pages, running these scans through optical character recognition (OCR) software, reflowing the new text, and proofreading it. Except in rare cases where we specify otherwise, the texts that you will find here correspond, page for page, with those of the original publications: in other words, page citations reliably correspond to those of the source books. But in other respects—such as lineation and font—the page designs differ. Our purpose is to provide digital texts that are more readily downloadable and searchable than photo facsimile images of the originals would have been. Moreover, they are often much more readable, especially in the case of older books, whose discoloration and deteriorated condition often makes them partly illegible. Since all this work of scanning and reflowing and proofreading has been accomplished by a team of volunteers, it is always possible that errors have crept into these online editions. If you find any of these, please let us know, by emailing us at frank@ambppct.org.

The aim of the Trust's online library is to reproduce the original texts faithfully. In certain cases, however—and this applies especially to some of the older books that were never republished in updated versions—we have corrected certain small errors of a typographic order. When this has been done, all of these corrections are listed in the "Register of Editorial Alterations" that appears at the end of the digital book. If you want the original text in its exact original form, warts and all, you can reconstruct this with the aid of the "register."

The Trust's Online Library remains very much a work in progress. With your help and input, it will increase in scope and improve in elegance and accuracy as the years go by. In the meantime, we hope it will serve the needs of those seeking to deepen and broaden their own familiarity with Avatar Meher Baba's life and message and to disseminate this good news throughout the world.



Chase Studios, Ltd., Washington, D. C.

अवतार मेहेर बाबा



Chase Studios, Ltd., Washington, D. C.

Meher Baba, 1956

ईश्वर-वाणी

सृष्टि और उसके प्रयोजन का विषय

मेहरे बाबा कृत



मूल अँग्रेज़ी ग्रन्थ God Speaks के द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण का हिन्दी अनुवाद ।

अनुवादकर्त्ता—

केशव नारायण निगम

बी॰ ए॰, एल-एल॰ बी॰

GOD SPEAKS

The Theme of Creation and Its Purpose

BY MEHER BABA



Second Edition,
Revised and Enlarged

DODD MEAD & COMPANY

New York 1973

प्रकाशक :

बाबू रामप्रसाद
मेहेरधाम, नौरङ्गा (राठ)
जिला हमीरपुर (उ० प्र०)
भारत

कापीराईट (©) १९५५, १९७३ सूफ़ीज़्म रिओरियन्टेड
इनकार्पोरेटेड को सुरक्षित ।

सर्वाधिकार सुरक्षित हैं । इस ग्रन्थ का कोई भी भाग, कापीराईट के अधिकारी की पहले से ली गई लिखित अनुमति के बग़ैर, पुनः मुद्रित नहीं किया जा सकता, पुनः प्रकाशन की पद्धति में रखा नहीं जा सकता, अथवा किसी रूप में या किसी साधन के द्वारा बिवली के द्वारा, यंत्रकला द्वारा, फोटो-कापी के द्वारा, रिकार्डिंग के द्वारा, अथवा अन्य प्रकार से प्रकाशित नहीं किया जा सकता ।

प्रथम हिन्दी संस्करण १०००

१९८१

नारायण प्रेस, हमीरपुर, उत्तर प्रदेश (भारत) में मुद्रित ।

Copyright © 1955, 1973 by Sufism Reoriented, Inc. All rights reserved.
No part of this book may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted, in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording, or otherwise, without the prior written permission of the copyright owner.

Second Printing 1967
Third Printing 1968
Fourth Printing 1970

Second Edition 1973
Second Printing 1975
Third Printing 1997

Library of Congress Catalog Card Number: 72-13984
ISBN 0-915828-02-2

Printed in the United States of America
Dharma Enterprises, Oakland, California

Sufism Reoriented
1300 Boulevard Way
Walnut Creek, CA 94595

समर्पण

विश्वा के प्रति–
माया के प्रति जो सत्य को
धारण किये रहती है ।

DEDICATION

To the Universe —
the Illusion that sustains Reality

दो शब्द

प्रियतम बाबा ने इस युग को **ईश्वर-वाणी** (*God Speaks*) नामक ग्रन्थ एक अद्वितीय देन के रूप में प्रदान किया है और इस बेजोड़ ग्रन्थ में उनका मौन बोल रहा है ।

इस ग्रन्थ में परमात्मा की मौन स्थिति से उत्पत्ति का प्रवाह प्रदर्शित किया गया है जो प्रवाह क्रमशः ध्वनि प्राप्त करता है और अन्त में प्रवाह में बहने वाली बूँदें ध्वनि को निरर्थक जानकर मौन की ओर मुड़ती हैं तथा ध्वनि से मुक्त होकर मौन में समा जाती हैं, जहाँ निरन्तर परमानन्द है ।

अतएव प्रियतम बाबा के मौन से उद्धृत **ईश्वर-वाणी ग्रन्थ** किसी भी तुलना के परे है और यही कारण है कि प्रियतम बाबा ने इस ग्रन्थ के बारे में बारम्बार कहा है :–

"मेरी इच्छा है कि इस ग्रन्थ का अनुवार सब भाषाओं में हो जाय और मेरा प्रत्येक प्रेमी इसे अवश्य पढ़े । चाहे इसे कोई समझे या न समझे, किन्तु इसे पढ़े, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि इसे पढ़ना आवश्यक है ।"

इसलिये इस ग्रन्थ को भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशित करना हमारा कर्तव्य है और यदि हम अपने इस कर्तव्य का पालन करते हैं तो प्रियतम बाबा की इच्छा का अनुसरण करते हैं ।

यह प्रसन्नता की बात है कि बाबू रामप्रसाद अपने समस्त बाबा-प्रेमी जनों के साथ इस ग्रन्थ को हिन्दी में प्रकाशित करने का प्रयास कर रहे हैं और मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दी जगत के प्रेमी उन्हें इस महत्वपूर्ण कार्य में अपना पूरा सहयोग प्रदाद करेंगे ।

अहमदनगर
दिनांक ६ सितम्बर, १९७८

भाऊ कलचुरी

[to be translated]

प्रथम संस्करण का पुर्व-कथन

इस ग्रन्थ के लिखने और सम्पादन करने में अनेक बातें आ गई हैं जिन्हें कुछ स्पष्ट करने की आवश्यकता है ।

मेहेरबाबा ने इस ग्रन्थ के भाग १ से ८ तक, दी गई मौजूदा बातों का पूरा भाग अपनी वर्णमाला पट्टी के द्वारा लिखवाया है ।

भाग ९ और १०, "**परमात्मा की दस अवस्थायें**" और "उपसंहार" एरच बी॰ जसावाला ने मेहेरबाबा की लिखाई हुये टीपों का विस्तार करके लिखे थे, और वे पहले के भागों का सारांश हैं जो मेहेरबाबा ने सीधे सीध लिखाये थे ।

सम्पादकों ने मेहेरबाबा के पहले प्रकाशित किये गये तथा अप्रकाशित दोनों कथनों का उपयोग करते हुये, और साथ साथ पूर्व के महान रहस्यवादी कवियों की रचनाओं के स्वतन्त्र रूप में अनुवादित व्याख्यात्मक अन्श उद्धृत करते हुये, पृष्ठों के नीचे विशेष टीपें जोड़ दी हैं । इसके अतिरिक्त, ग्रन्थ के पृष्ठों के नीचे दी गई अनेक टीपें में और **पूरक** में उन टीपें को शामिल किया गया है जो मेहेरबाबा के कुछ शिष्यों ने लिख ली थीं, जिनमें मेहेरबाबा के सूफ़ी शिष्य स्वर्गीय डाक्टर अब्दुल गनी मुन्सिफ़ सम्मिलित हैं जो बाबा के साथ २५ वर्ष से अधिक समय तक रहे ये और वे टीपें बाबा की व्याख्याओं पर आधारित हैं और बाबा की अनुमति लेकर उनका प्रयोग किया गया है । "ऊर्ध्वगामी आत्मा" (*Ascending soul*) शीर्षक फ़ारसी कविता का अनुवाद जो पृष्ठ ३६ पर दिया है, वह रेनाल्ड ए॰ निकोल्सन कृत ग्रन्थ "**रूमी, पोयेट ऐण्ड मिस्टिक**" से पुनः उद्धृत किया गया है; इस ग्रन्थ का प्रकाशन "जार्ज ऐलेन एण्ड अनविन लिमिटेड" ने किया था । भूमिका के पृष्ठ पर उद्धृत किया गया भगवद्गीता का अंश सर एडविन अर्नाल्ड की "दि साँग सेलेस्टियल" नाम की पुस्तक से उद्धृत किया गया है, जो रूटलेज ऐण्ड केगन पाल लिमिटेड ने प्रकाशित की थी । इन अनुवादों को उद्धृत करने की अनुमति प्रदान करने के लिये हम उपर्युक्त प्रकाशकों के प्रति कृतज्ञतापूर्ण आभार प्रगट करते हैं । **गाड स्पीक्स** में दी गई सम्पूर्ण बातों

(८)

Preface to First Edition

A NUMBER of factors have entered into the writing and editing of this volume which require some word of explanation.

Through the medium of his alphabet board, Meher Baba has dictated in its entirety the present contents of the major portion of this work, consisting of Parts 1 through 8.

Parts 9 and 10, "The Ten States of God" and the "Conclusion," were written by Eruch B. Jessawala in elaboration of notes dictated to him by Meher Baba, and are a recapitulation of the previous sections dictated directly by Meher Baba.

Certain footnotes have been added by the editors using both previously published and unpublished statements by Meher Baba, as well as illustrative quotations rendered in free form from the great mystic poets of the East. In addition, several footnotes and the Supplement to this work include notes taken down by some disciples of Meher Baba, including the Sufi disciple of more than twenty-five years' standing, the late Dr. Abdul Ghani Munsiff, and are based on Baba's explanations and used with his permission. The translation of the Persian poem "The Ascending Soul" on page 30 is reprinted from Reynold A. Nicholson's *Rumi, Poet And Mystic* published by George Allen & Unwin Ltd. The quotation from the Bhagavad Gita found on page xviii of the Introduction is reprinted from Sir Edwin Arnold's *The Song Celestial* published by Routledge & Kegan Paul Ltd. For permission to reprint these translations grateful thanks are

को मेहेरबाबा ने सावधानी के साथ संशोधित कर दिया है और उन्हें प्रकाशित करने की स्वीकृति दे दी है ।

मौजूदा सम्पादकों का कार्य मूलरूप से कुछ ख़ास यांत्रिक विवरणों को हाथ में लेने का रहा है, जो किसी भी कृति वो प्रकाशन के लिये अन्तिम रूप देने में आवश्यक होते हैं । यदि इस ग्रन्थ के लेखक ने सम्पादकों से ऐसा करने की प्रार्थना विशेषरूप से न की होती तो उन्होंने ऐसी मौलिक कृति के सम्बन्ध में इस छोटे कार्य को भी हाथ में न लिया होता ।

सम्पादकों के सूफ़ीज़म रिओरियेन्टेड से व्यक्तिगत सम्बन्ध रखने का ग़लत अर्थ उन चन्द लोगों को न लगाना चाहिये जिन्हें उनके उस सम्बन्ध का ज्ञन है । मेहेरबाबा की घोषणायें सदैव साम्प्रदायिक उद्देश्य अथवा पक्षपात से रहित हुई हैं । उन्होंने बहुधा इस आशय के सीधे कथन किये हैं कि वह सब "वादों" (*isms*) (सूफ़ीवाद, वेदान्तवाद, ईसाई-वाद, ज़रतोस्तवाद, बुद्धवाद; इत्यादि), धार्मिक एवं राजनैतिक दलों की प्रशंसा उनकी अनेक अच्छी बातों के लिये करते हैं जो वे प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं, किन्तु वह उनमें से किसी से सम्बन्ध नहीं रखते और न रख सकते हैं । वह सानते हैं कि **परम सत्य** इन सबको अपने में धारण करता है और इन सबके परे होता है, और उनका कार्य व्यापार इन सब ईश्वरीय मार्गों से पृथक् होता है, और वह इन ईश्वरीय मार्गों के अनुयायियों को उनके यथार्थ अर्थ एवं सच्ची भावना की जागृति प्रदान करता है । "समस्त जीवन की एकता (*Unity*) अखण्ड और अविभाज्य होती है । वह सब मतभेदों के बावजूद अभेद्य और अजेय बनी रहती है ।"

पाठकों को शीघ्र ही इस भात का ज्ञान होगा कि **गाड स्पीक्स** ग्रन्थ के असंख्य अन्श स्पष्टरूप से बार-बार दोहराये गये हैं । यदि इस ग्रन्थ का मन्तव्य प्रचलित संस्कृति के किसी न्याययुक्त सुपरिचित सूत्र को स्पष्ट करने का अथवा पुनः वर्णन करने का होता, तो शायद यह वांछनीय होता कि इस कृति को सादी न्याययुक्त श्रेणी में व्यवस्थित विया जाता और विषय को संक्षिप्त पूर्णता के साथ उजागर होने दिया जाता । तथापि, **गाड स्पीक्स** न केबल आध्यात्मिक सत्य की अनेक पूर्व धारणाओं के अंशों को चुनता है और उन्हें तरतीबवार एवं परस्पर अनुरूप रीति से व्यव-स्थित करता है, बल्कि वह समूचे विषय को कई डग आगे को ले जाता

(९)

due to the above publishers. The complete contents of *God Speaks* have been carefully corrected and approved by Meher Baba.

The function of the present editors has been one primarily of handling certain mechanical details necessary in rendering any work into final form for publication. They would hardly have undertaken even this minor function in relation to so fundamental a document had they not been specifically requested to do so by the author.

Their own relationship to Sufism Reoriented should not be misconstrued by those few persons who are aware of the connection. Meher Baba's pronouncements have always been without sectarian purpose or bias. He has often made direct statements to the effect that he appreciates all "isms" (Sufism, Vedantism, Christianity, Zoroastrianism, Buddhism, etc.), religious and political parties for the many good things that they seek to achieve, but does not and cannot belong to any of them. He regards Absolute Truth as including and transcending them all, and his function as being detached from all these divine paths, awakening the followers of these divine paths to their real meaning and true spirit. "The unity of all life is integral and indivisible. It remains unassailable and inviolable in spite of all ideological differences."

The reader will soon become aware of the fact that numerous passages of God Speaks are distinctly repetitive. If this work were intended to clarify or restate some reasonably well-known theorem of current culture it would perhaps be desirable to arrange the work in simple logical sequence and allow the thesis to unfold in brief finality. However, God Speaks not only picks up the fragments of many previous concepts of spiritual truth and arranges them in orderly and mutually compatible fashion, but it takes the entire subject several steps further than it has

है, उसकी अपेक्षा आगे ले जाता है जिसका अस्तित्व इतिहास में है और वह विचार के अनेक नये तथा विस्तृत नमूने स्थापित करता है ।

इसको कारगर रूप से करने के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि विषय की सामग्री को कई दृष्टिकोणों से और बढ़ते हुये मनोभाव की वृद्धि के साथ बार-बार देखा जाय । इस विविध परिस्थितियों में दृष्टान्तचित्र और उपाख्यान बहुधा दुहराये गये हैं जिससे प्रत्येक भाग आत्म-परिपूर्ण हो सके, और इस प्रकार पाठक की पिछले अन्शों के विवरणों का उल्लेख बाद के प्रसङ्गों में करने की आवश्यकता न रहे ।

- - - - यद्यपि यह पहलेपहल एक छोटी बात मालूम पड़ेगी, तथापि इस ग्रन्थ का सम्पादन हाथ में लेने में सबसे अधिक कठिन प्रश्नों में से एक, शब्दों को बड़े अक्षरों में लिखने के लिये एक उपयुक्त नीति क़ायम रखने का रहा है । विशिष्ट नामों, दैव और उसके निकटतम गुणों के ऐसे प्रयोग को सुरक्षित करने के लिये सामान्य विधि, एक ऐसी कृति में पड़ जाता है । नितान्त शाब्दिकरूप में ऐसी विधि स्थापित करने के फलस्वरूप बड़े अक्षरों की एक बाड़ आ जायगी जो न केवल ऐसे विषय पर ज़ोर देने में सहायक होंगे बल्कि पाठक की प्रगति में बाधक होंगे ।

यह विषय उस सूक्ष्म रीति से और भी अधिक चक्कर में डालने वाला हो जाता है जिस सूक्ष्म रीति से मेहेरबाबा प्राठकों की चेतना ईश्वर की अप्रगट अवस्थाओं की कल्पना से धीरे-धीरे ख़ीचते हैं और उसको उन्नति के उन दर्जों तक ले जाते हैं जिनमें व्यक्तिगत हुई आत्मा ईश्वर से अपने मूलभूत सनातन ऐक्य का साक्षात्कार करने से प्रत्यक्षरूप से अत्यन्त दूर होती है । विकास की ऐसी प्रगति के दौरान में, जिसका अन्त **पिता** परमात्मा से पूर्ण मिलन प्राप्त होने में होता है, अक्षरों को बड़ा बनाने की नितान्त विवेकपूर्ण नीति प्रत्यंक्षरूप से उपलब्ध नहीं है, इसलिये इस कृति के सम्पादकों ने ईश्वर और उसके निकटस्थ गुणों को बड़े अक्षरों में लिखने के अधिकतर सम्भव प्रयोग को अपनाया है, और उसके बाद उन्होंने बड़े अक्षरों का प्रयोग मूलरूप से ज़ोर देने के प्रयोजन के लिये किया है और पाठकों को उच्चतर दशाओं से सम्बन्धित भूमिकाओं तथा अधिकतर स्थूल भूमिकाओं (अर्थात् अणुशक्ति से तुलना की गई सूक्ष्म भूमिकाओं की शक्ति) के बीच का अन्तर शीघ्र समझ लेने में सहायता करने के लिये किया है ।

(१०)

historically existed and establishes several new and detailed thought patterns.

To do this effectively it seems necessary to look at the subject matter again and again from a number of angles and with increasing conceptual proliferation. Illustrations and anecdotes are often repeated in these various circumstances in order that each portion may be self-contained, thus obviating the necessity of the reader's referring back to earlier passages for details which might be omitted in a later context.

The net result is not unlike the effect achieved musically in the constantly elaborating theme of a Ravel's "Bolero" or a Bach Fugue from the "Well-Tempered Clavichord."

Although it would seem at first a minor item, one of the most troublesome issues in undertaking the editing of this work has been the establishing of a consistent policy for capitalization of words. The normal procedure of reserving such usage for proper names, the Deity and His immediate attributes is brought to a sorry dilemma in a work which has as its major thesis the divinity of all creation. To establish such a connotation in strict literality would result in a flood of capital letters which not only would not aid in emphasizing such a thesis but would obstruct the progress of the reader.

This matter is made even more puzzling by the subtle fashion in which Meher Baba gradually draws the consciousness of the reader from the concept of God in His unmanifest states to those stages of development in which the individualized soul is apparently furthest from realizing his essential eternal oneness with God. A strictly rational policy on capitalizations during such a progression of development, ending in a final return to full union with the Father, is apparently unobtainable, and therefore the editors have adopted the more feasible usage of capitalizing the Deity and His immediate attributes, and thereafter have used capitals primarily for the sake of emphasis and helping the reader to distinguish readily between conditions associated with the higher as contrasted with the more gross planes (i.e., Energy of the subtle planes compared to nuclear energy).

ऐसी ही समस्याओं का सामना विराम चिन्हों का प्रयोग करने की एक यान्त्रिक रीति से हुआ था । जटिल विषयों में, जो मेहेरबाबा ने सूक्ष्म विवरणों को स्पष्ट करने के लिये छाँटे हैं, विराम चिन्हों के अत्युत्तम नियमों का कड़ाई के साथ पालन करने के फलस्वरूप अर्द्ध विरामों (,), कोलनों (:), दैशों (—) और सेमी-कोलनों (;) की प्रायः एक न समझने योग्य खिचड़ी पैदा हो जायगी । अतः इस स्थल पर सम्पादकों ने पुनः एक वाक्य के भीतर, जब तक कि विचार का प्रवाह सहज गति से चलता रहा है, विराम चिन्हों को छोटी सी छोटी बातों सें लगाने के प्रयोग को जानबूझकर त्यागने की स्वच्छन्द नीति अपनाई है ।

अनेक उदाहरणों नें मेहेरबाबा ने एक ख़ास कल्पना प्रगट करने के लिये शब्द गढ़े हैं । यह बात अधिक बांछनीय मालूम पड़ी है कि बदले में सु-समयानुकूल शब्दों का प्रयोग करके, जो गढ़े गये वाक्य खण्डों का अर्थ स्पष्ट करते हैं, इस कृति को अधिक रूढ़ बनाने की अपेक्षा बाबा के अभिप्राय की सही समझ प्रदान की जाय । वाक्य का उल्टा और जटिल ढाँचा भी असंख्य उदाहरणों में त्याग दिया गया है जहाँ ढाँचे के पुनः उलटने अथवा वाक्यों को छोटा करने के फलस्वरूप सम्भावित दोहरे अर्थ अथवा विचार प्रवाह का खण्डन पैदा होता मालूम पड़ता था ।

संक्षेप में, सम्पादक का कार्य यह है कि वह कृति को परम्परागत प्रयोग और तत्पर एकीकरण के लिये करे । जहाँ कहीं भी वर्तमान सम्पादकों को यह बात इस कृति के अधिकांश उद्देश्य से बेमेल मालूम पड़ी है, वहाँ उन्होंने परम्परागत प्रयोग और शैली की सादगी को अभि-प्राय की विशिष्टता के लिये खुशी त्याग से दिया है ।

पाठकों को इस बात से ख़बरदार किये बग़ैर यान्त्रिक पहलू को छोड़ देना काफ़ी न होगा कि अधिकांश लेखक "*knowledge*" (ज्ञान) और "*wisdom*" (बुद्धिमत्ता) शब्दों में अन्तर करते हुये बुद्धमत्ता शब्द को अधिक मूल्यवान अथवा आध्यात्मिक कार्य निर्दिष्ट करते हैं । मेहेरबाबा इन शब्दों में ऐसा कोई विभेद नहीं करते और वह "*knowledge*" (ज्ञान) शब्द को "यथार्थ ज्ञान" के अर्थ में प्रयोग करते हैं ।

इस ग्रन्थ पर प्रगाढ़ ध्यान एकाग्र करने के पश्चात् कुछ पाठक सीमित और असीमित के विषय पर मेहेरबाबा के दृष्टिकोण के सम्बन्ध (११) में अपना ज्ञान बढ़ाने की इच्छा कर सकते हैं । अतिरिक्त मूल्यवान सामग्री

Similar problems were encountered in as mechanical a process as punctuation. In the complex issues which Meher Baba sorts out for meticulous elucidation, strict adherence to classic rules of punctuation would result in an almost unendurable jumble of commas, colons, dashes and semicolons. Here again the editors have adopted an arbitrary policy of deliberately avoiding meticulous usage of punctuation within a sentence as long as the thought flowed readily.

In many instances Meher Baba has coined terms to express a specific concept. It has seemed preferable to insure exact understanding of his intent rather than to render the work more conventional by substitution of well-seasoned terminology which almost expresses the content of the coined phrase. Inverted and complex sentence structure has also been left in numberless instances where possible ambiguity or a breaking of the flow of thought seemed to result from reinversion of structure or shortening of sentences.

In brief, the function of editor is to render a work into conventional usage and for ready assimilation. Wherever the present editors have found this inconsistent with the major purpose of the work, conventional usage and simplicity of style have been happily sacrificed for specificity of intent.

It would not do to leave the mechanical phase without cautioning the reader that most writers differentiate between the terms "knowledge" and "wisdom," assigning a more valued or spiritual function to the latter. Meher Baba makes no such differentiation and uses "knowledge" rather in the sense of "true knowledge."

After intense concentration on this volume some readers may wish to broaden their knowledge of Meher Baba's viewpoint on the subject of the finite and the infinite. Additional valuable material is contained in his

मेहेरबाबा के **उपदेशों** (*Discourses*) के पाँच भागों में मिलेगी, जिन्हों मेहेर पब्लिकेशन्स अहमदनगर, भारत,* ने प्रकाशित किया है, और साथ-साथ वह मेहेरबाबा के पूर्व-कथन में मिलेगी जो उन्होंने डाक्टर विलियम डङ्किन के ग्रन्थ "**दि वेफ़ेयरर्स**" (*The Wayfarers*)‡ के लिये लिखी थी, और उस ग्रन्थ के अध्याय १ में भी मिलेगी ।

वाशिंगटन, डी॰ सी॰ — आइवी ओ॰ ड्यूस
२३ जनवरी, १९५५ — डान ई॰ स्टीवेन्स

* सूफ़ीज़्म रिओरियेण्टेड, इन्कार्पोरेटेड, १९६७ द्वारा ३ भागों में पुनः प्रकाशित की गई है ।
‡ सूफ़ीज़्म रिओरियेण्टेड, इन्कार्पोरेटेड, १९६९ द्वारा पुनः मुद्रत ।

Discourses in five volumes, published by Meher Publications, Ahmednagar, India,* as well as in Meher Baba's foreword to Dr. William Donkin's *The Wayfarers*,† and also Chapter I of that work.

Washington, D.C. — IVY O. DUCE
January 23, 1955 — DON E. STEVENS

* Republished in one volume by Sheriar Press, 1987
† Reprinted by Sheriar Press, 1988

प्रथम संस्करण की भूमिका

परमात्मा मेरे सामने कभी नहीं बोला, परन्तु मुझे दृढ़ विश्वास है कि मैंने सिको मनुष्य रूप में कार्य करते देखा है । मैं केवल उसी रीति से क्रिया और प्रतिक्रिया की अद्‌भुत सूक्ष्म ग्राह्यता समझा सकता हूँ जिसे मैंने मेहेरबाबा की विशेषता के रूप में देखा था, जिस समय मैंने मेहेरबाबा को पहिली बार उन संक्षिप्त अवधियों में एक शनिवार को तीसरे पहर न्यूयार्क में क्रियाशील देखा था ।

वह **सत्य** के एक साधाक की कहानी बतला रहे थे जो अपने शिक्षक द्वारा स्वीकार किये जाने के पहले चरमसीमा की स्वेच्छाचारिता और कठोरता की क्रियाओं को सहन करने के लिये आमन्त्रित किया गया था । जब मेहेरबाबा की अँगुलियाँ वर्णमाला तख्ती पर चल रही थीं जिसका प्रयोग वह अपने विचार प्रगट करने के लिये करते हैं, और जब उनके हाथ बीच-बीच में संक्षिप्त संकेत करने के लिये उठ रहे थे, तब मैं कहानी में तल्लीन होने की अपेक्षा कहानी बतलाने वाले में और कहानी बतलाने के ढँग में और भी अधिक तल्लीन था ।

मैंने एक ओर बैठे हुये तथा मेहेरबाबा की दृष्टि की कतार के बाहर बैठे हुये अपना हाथ बिल्कुल अनिच्छापूर्वक ऊपर को उठाया और उसमें अँगूठे तथा तर्जनी अँगुली से पूर्णता के युगों-पुराने चक्र का संकेत किया । जैसे ही मैंने यह करना शुरू किया मैं यह देखकर उत्साहित हुआ कि मेहेरबाबा ने अपनी पूरी चितवन मेरे ऊपर डाली और खुद अपना हाथ ऊपर उठाकर उसी प्रकार का संकेत किया । मानव प्राणियों को अपने बन्धुप्राणियों की भावनाओं का बहुधा भान नहीं होता, उनके प्रति सूक्ष्मरूप से सहानुभूतिपूर्ण होने की बात क्या कही जाय, और मुझे किसी ऐसे व्यक्ति के निकट होने में आश्चर्य हुआ जिसमें भावना ऐसी सूक्ष्म ग्राह्यता भरी थी ।

मैं उस कहानी को भूल गया था जब तक कि बाबा दिन का काफ़ी भाग गुज़र आने पर ऊपर ले जाने वाले लिफ्ट की ओर जा रहे थे, और जब मैं उनके रास्ते की बग़ल में लोगों की भीड़ के बीच खड़ा था

(१३)

Introduction to First Edition

GOD HAS never spoken in my presence, but I am sure that I have seen Him act in human form. That is the only manner in which I can explain the incredible sensitivity of action and reaction which characterized Meher Baba during those brief periods on a Saturday afternoon in New York when I first saw him in action.

He was telling a story of a seeker after Truth who was called upon to bear acts of arbitrariness and harshness of an extreme degree before his teacher would accept him. As Meher Baba's fingers flew over the alphabet board which he uses for communication, and as his hands raised occasionally in brief gesticulation, I found myself rapt even more in the teller and manner of telling than in the story.

Sitting off to the side and outside his line of vision I raised my hand almost involuntarily with thumb to forefinger to inscribe the age-old circle of perfection. Even as I started to do so I was warmed to see Meher Baba turn his gaze full upon me and lift his own hand in the identical gesture. Human beings are not too often aware of the feelings of their fellows, let alone minutely responsive to them, and it surprised me to be in the presence of someone who possessed such sensitivity of feeling.

I forgot the episode until he was en route to the elevator late in the day, and as I stood among a knot of people at the side of his passageway I again raised my hand in a similar gesture, now deliberately wondering if

तब मैंने उसी प्रकार का संकेत करने के लिये अपना हाथ फिर से उठाया, लेकिन अब वह जानबूझ कर इस आश्चर्य के साथ उठाया गया था कि क्या वह कम सम्भावित स्थिति में भी जिसमें मैं था मेरे संकेत को समझ जायँगे । पुनः जब मैंने संकेत करना आरम्भ किया तो उन्होंने घुमकर मेरे पूरे चेहरे को देखा और अपना प्रत्युत्तर पुनः दिया । इस बार जो चीज़ अकथनीय दृश्य का रूप धारण करने लगी ऊससे मैं हर्षित होने की अपेक्षा और भी अधिक आश्चर्यचकित हुआ । जब मेहेरबाबा आगे चलते हुये हॉल के भीतर गये और अन्ततः लिपट के दरवाज़े से होकर गुज़र गये मैने पूर्णता के चक्र का संकेत करने के लिये अपना हाथ तेज़ी से तीसरी बार ऊपर को उठाया । इस बार उन्होंने अपने पूरे शरीर को मोड़ दिया और जानबूझकर अपना प्रत्युत्तर पुनः दोहराया ।

मुझे ऐसा महसूम नहीं होता कि सृष्टि के मूल उद्देश्य और उसकी यन्त्र-रचना जैसे महत्वपूर्ण विषय का, और उस लेख के लेखक का, परिचय देने के लिये यह एक तुच्छ घटना है । मेहेरबाबा स्मरणीय हैं तथा अतिशय सन्तोषप्रद हैं, इसलिये नहीं कि वह दर्शन-शास्त्र और विश्वव्यापी यन्त्र-रचना के प्रदेश में निःसन्देह असाधारण प्रतिभा से सम्पन्न हैं, वरन् इसलिये कि उनमें मनुष्य के हृदय को उत्साहित करने की क्षमता है जैसा करने की क्षमता कदाचित् किसी अन्य प्राणी में नहीं है ।

अन्त में हममें से प्रत्येक सन्तोष और शान्ति की एक गहरी आन्तरिक भावना की खोज कर रहा है, किसी उपस्थिति में समाविष्ट होने की भावना की खोज कर रहा है जो विश्वसनीय एवं प्रेममयी हो, और हमारी अन्तरतम आवश्यकताओं के प्रति सहज ज्ञान तथा अनुकूल प्रतिक्रिया की खोज कर रहा है । इस सब के ऊपर, हमें ख़ुद (*ourselves*) अपनेआप होने की आवश्यकता है और स्वयं अपने लिये पूर्णरूप से स्वीकार किये जाने की आवश्यकता है । मेहेरबाबा तमाम लोगों के अन्दर से जो गहरी प्रतिक्रिया बाहर निकालते हैं वह मनुष्य की अत्यन्त गहरी आत्मा के प्रति उन्की अकल्पित ग्रहण क्षमता के कारण है ।

इसके अतिरिक्त, बहुत अधिक आश्चर्यजनक प्रकार की तमाम चीज़ें हैं जो मैं उस विशाल ज्ञान-भण्डार से गिना सकता हूँ जो ४० वर्ष की अवधि में इस महान हस्ती के चारों ओर संचित हो गया है, जब से उसको अपनी मौजूदा ऊँची आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त हो गई थी ।

(१४)

he would catch it in the even less probable position in which I was placed. Again as I started the gesture he turned until he looked me full in the face and repeated his response. This time I was even more surprised than delighted at what now began to assume the proportions of an unexplainable phenomenon. As he progressed on out into the hall and finally proceeded through the door of the elevator I raised my hand quickly a third time to make the gesture of the circle of perfection. This time he turned his entire body and with deliberation repeated his acknowledgment.

I do not feel that this is a trivial incident to introduce as important a topic as the basic purpose and mechanics of Creation, and the author of that treatise. Meher Baba is memorable and eminently satisfying not because of his undoubted genius in the realm of philosophy and universal mechanics, but because he has the capacity to warm the cockles of one's heart as perhaps no other living being is able to do.

In the long run each one of us is searching for a deep inner sense of satisfaction and peace, a feeling of being contained in some presence which is trustworthy and loving, for a spontaneous understanding and response to our innermost needs. Above all we need to be ourselves and to be accepted completely for ourselves. The deep response which Meher Baba elicits from so many people is due to that undreamed-of sensitivity to one's most profound self.

There are many things of a much more astounding nature which I might recount from the vast lore which has accumulated around this figure in the four decades since he achieved his present spiritual stature. But all

किन्तु वे सब चीज़ें एक केन्द्रोय वषय को — अर्थात् न केवल मेहेरबाबा की समझने की पूर्ण क्षमता को, वरन्, कुछ रीति से, मनुष्य की स्वयं आत्मा होने को, जटिल बना देंगीं । मुझसे ऐसे अद्‌भुत दृश्य का वर्णन करने और उसको समझाने के लिये न कहिये । विश्वास करने के लिये उसका अनुभव करना आवश्यक है ।

एसा भी हो, तो मनुष्य को ऐसी आशा करनी होगी कि कल्याण की एसी भावना उसका मूल हट जाने के बाद धीरे-धीरे क्षीण हो जायेगी । अति हर्ष से भरा अनुभव भी सामान्यरूप से क्षीण हो जाता है और एक स्मृति बन जाता है, जिस प्रकार बुरा स्वप्न भी क्षीण हो जाता है । तथापि, इसमें ऐसे प्राणी से सम्पर्क होने का एक अन्य रहस्य निहित होता है जो समझाया नहीं जा सकता । जब मैं एक व्यस्त घटनापूर्ण सप्ताहान्त व्यतीत करने के बाद वायुयान पर बैठा हुआ अपने घर जा रहा था, मैंने सत्यता के अपने सामान्य सन्दर्भ में वापिस होकर पुनः छानबीन करनी शूरू कर दी । अपने मन में भरी अपनी एक या दो परेशानियों की ओर मुड़ने पर मुझे यकायक अनुभव हुआ कि वे अब मुझको परेशान न कर रही थीं ।

अविवेकपूर्ण निष्कर्षों से आसानी से भयभीत न होने के कारण, मैंने अन्य अनेक कठिनाइयों के नमूने निकाले और मैं यह मालूम करके बिल्कुल आश्चर्यचकित हुआ कि मैं कुछ उदाहरणों में मैं विक्षोभ की कोई भावना न पकड़ सकता था । मैं स्पष्टरूप से कहता हूँ कि, जैसे ही मैं पुनः घर प्हुँचकर व्यवस्थित हुआ मैं इन कठिन विषयों के साथ अपने नित्य दुखदायी सम्बन्ध को पुनः नवीन करने की पूरी आशा करता था, किन्तु जैसे-जैसे दिन और सप्ताह और महीने और अन्ततः वर्ष बीतते गये वैसे ही वैसे मुझे अनुभव होने लगा कि ऐसे मनुष्य की सङ्गति में व्यतीत हुये एक सक्षिप्त सप्ताहान्त ने भी मेरे भावात्मक अङ्ग में प्रमुख आपरेशन कर दिया था और मेरी परेशान होने की क्षमता को नष्ट कर दिया था ।

मैं इन घटनाओं का वर्णन अभिमान की भावना से नहीं कर रहा और न डुग्गी पीटने की भावना से कर रहा हूँ । दो घटनायें हैं जो ख़ुद मेरे जविन में घटित हुई थीं, और उनको उस छोटे ढाँचे से त्याग देने की मेरी असावधानी होगी जिसका निर्माण निम्नलिखित पृष्ठों में

(१५)

of them would obscure the one central issue, his complete ability not only to understand but, in some manner, to be one's own self. Don't ask me to describe such a phenomenon nor to explain it. It must be experienced to be believed.

Even so, one would expect such a feeling of well-being to fade gradually after its source had been removed. Even the most ecstatic experience normally fades and becomes a memory, as does a nightmare as well. However, therein lies another of the unexplainable mysteries of contact with such a being. As I sat in the plane en route home after a jammed eventful weekend I started to re-sort back into my usual context of reality. Turning over one or two of my pet worries in my mind I realized suddenly that they no longer worried me.

Not being easily panicked into rash conclusions, I sampled several more troubles and was completely puzzled to find that in some instances I could see answers where I had seen none before, and in others I could recapture no sense of agitation. Frankly, I thoroughly expected to renew my usual troubled relation with these difficult subjects as soon as I settled down at home again, but as the days and weeks and months and finally years rolled by I began to realize that even a short weekend in the company of such a man had performed a major surgery on my emotional anatomy and had removed my ability to worry.

I describe these incidents in no sense of pride nor of beating a tom-tom. They are two events which occurred in my own life and I would be remiss to omit them from the small frame which I have been entrusted to

रची गई सर्वोच्च चित्रकारी के चारों ओर करने का भार मुझे सौंपा गया है । मुझे दृढ़ निश्चय है कि मैंने अपनी जानकारी में परमात्मा को बोलते हुये नहीं सुना, किन्तु मुझे दृढ़ निश्चय है कि मैंने अपने जीवनकाल में परमात्मा को कार्य करते हुआ देखा है ।

मेहेरबाबा ने अपने ग्रन्थ **गाड स्पीक्स** के शीर्षक का चुनाव करने में संक्षिप्तरूप से प्रमुख विषय को बतलाया है जो उन्हें विशद रूप में समझाना है, और साथ-साथ ऐसे विषयों पर जो इस युग के अत्यन्त उन्नत व्यक्तियों के द्वारा ही वर्णन किये जा सकते हैं, अधिकारपूर्वक बोलने के लिये अपना अधिकार बतलाया है । अपने ग्रन्थ के लिये ऐसा श्रेष्ठ स्त्रोत सूचित करने के मेहेरबाबा के अधिकार के विषय में वादविवाद करने के पहले, यह अच्छा होगा कि विचारणीय विषय की जटिलता बिल्कुल सादगी के साथ ऐसा कहकर पूर्ण कर दी जाय कि सारी दुनियाँ में मेहेरबाबा के अधिकाश शिष्य और अनुयायी उन्हें **युग** का **अवतार** मानते हैं । यह बात पश्चिमी शब्दावली में इस प्राकार कही जा सकती है कि वे मेहेरबाबा की अपने युग का **क्राईस्ट** मानते हैं : मोहम्मद, क्राईस्ट, बुद्ध, कृष्ण, राम, ज़ोरास्टर की और अँधेरे भूतकाल के अवतारों की परम्परा का उत्तराधिकारी मानते हैं, और उस अभिन्न प्रकृति के रूप में मानते हैं जिसने उन विशिष्य और क्रमबुद्ध हस्तियों के रूप में पुनः अवतार लिया था ।

यदि मेहेरबाबा हमारी सभ्यता के आध्यात्मिक ढाँचे में ऐसा सर्वोच्च पद रखते हैं, तो **सृष्टि** की गहर से गहर रचनाओं के विषय में उनके निश्चितरूप से और अधिकार के साथ बोलने के लिये उनके अधिकार का कोई प्रश्न न रहेगा । किन्तु तब उनके **दैवी स्त्रोत** का अधिक सरल विषय, दिव्य शासक-मण्डल (*hierarchy*) की मुख्य भूमिका में — जिसमें अनेक लोग श्ङ्का करते हैं अथवा स्पष्टरूप से अविश्वास करते हैं — मेहेरबाबा के यथार्थ व्यापार का बहुत महानतर विषय बन जाता है ।

हमने दो पैराग्राफ़ों में एक बड़ी भारी और चुनौती देने वाली समस्या का बयान किया है । किन्तु वह ऐसी समस्या है जो हमें भूमिका के लिये हुये शब्दों की अपेक्षा अन्य साधनों के द्वारा यथार्थरूप में कार्यान्वित करनी चाहिये । अन्त में इस मूल प्रश्न के, क्या कोई दिया गया मनुष्य **मसीहा** हौ ? — केवल दो विश्वसनीय उत्तर हैं । व्यक्तिगत उत्तर व्यक्तिगत

(१६)

construct around the masterly painting created in the following pages. I am sure that I have not knowingly heard God speak, but I am sure that in my lifetime I have seen Him act.

In the choice of a title for his book *God Speaks* Meher Baba has succinctly stated both the major thesis which he is to elaborate, as well as his right to speak authoritatively on subjects which may be treated by only the most advanced of our era. Before discussing the right of the author to imply such a sublime source for his work, it might be well to complete the complexity of the issue by stating quite simply that the greatest proportion of Meher Baba's disciples and followers from all over the world regard him as the Avatar of the Age. Put in western terminology, they consider him as the Christ of our times, the successor to the tradition of Muhammad, Jesus, Buddha, Krishna, Rama, Zoroaster, and so on back into the dusky past, and as the identical nature which reincarnated in those specific and successive personalities.

If Meher Baba occupies such a crowning position in the spiritual structure of our civilization, then there would be no question of his right to speak positively and with authority on the deepest mechanics of Creation. But the simpler issue of his Divine Source then becomes the much greater one of the legitimacy of his function in the key role of a religious hierarchy which in turn is doubted or frankly disbelieved by many people.

In two paragraphs we have stated a tremendous and a challenging problem. But it is one which must be worked out in actuality by means other than the written words of an Introduction. In the long run there are only two reliable answers to the fundamental question of whether a given

सम्पर्क हो सकता है । इस लेख के समय यह अब भी भौतिकरूप से सम्भव है, और तमाम लोगों ने पहले ही इस विषय पर इस प्रत्यक्ष हमले का लाभ उठा लिया है । अनेक लोगों ने अपने प्रश्न के अन्त में उसे स्वीकार कर लिया है, थोड़े से लोगों मे उसे निश्चितरूप से अस्वीकार किया है, और अन्य लोगों ने एक गहरी भ्रान्ति स्वीकार की है जिसमें सुख और दुःख दो प्रमुख अंग हैं, किन्तु उनमें अब भी अन्तिम प्रश्न पर अन्तिम निष्कर्ष तक पचहुँने की प्रत्यक्ष अयोग्यता है ।

विस्तृत और दीर्घकालीन उत्तर क्रियाशील हुई शक्तियों का खालिस मूल्य निर्धारण होना चाहिये जो समाज आगामी पीढ़ियों के ऊपर करता है । यदि बोले गये शब्द और अग्रसर की गई धारणायें जीवनशक्ति और यथार्थता में बढ़ती हुई प्रतीत होती हैं, तब मनुष्य अपनेआप सिहाव-लोकन द्वारा मान लिया जाता है कि वह अपने युग के लिये दिव्या आकृति का महान मूर्तिकार है ।

किन्तु कितनी भी अग्रिम दलील अथवा प्रदर्शन समाज का दृढ़ विश्वास नहीं दिला सकते । यह ऐसा है जैसे कि कल्पनायें स्वयं अपने जीवनशक्ति लिये रहती हैं और वे संयुक्त करने अथवा अपने उद्देश्य को नष्ट करने के प्रयत्नों की ओर ध्यान न देकर जाति की सम्पत्ति एवं सांकेतिक शब्द बन जाती हैं ।

तथापि, अनेक लोगों के लिये व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने के लिये अथवा शरीररूप से स्वीकार करने या अस्वीकार करने के लिये अवसर न रहेगा । और चूँकि ये घटनायें हमारे युग में हो रही हैं, अतः हममें से कोई भी उस मूल्य निर्धारण से एकमत होने पर भरोसा नहीं कर सकता जो समाज आगामी पीढ़ियों के ऊपर कर चुका होगा । तब इन लोगों के लिये, जो ऐसी स्थिति में हैं, यह आवश्यक है कि वे अनुसरण करें, चिन्तन करें और खुले मन से रुचिकर बनावें क्योंकि यहाँ **सत्यता** एवं **यथार्थता** का एक महान भण्डार-गृह हो सकता है जिसकी खोज हममें से हरेक जीवन पर्यन्त करता है । यह आवश्यक नहीं है कि स्वीकृति या अस्वीकृति का संकटकाल पैदा किया जाय, वरन् यह आवश्यक है कि वर्णन की गई कल्पनाओं को मनुष्य के मन की कड़ाही में धीरे-धीरे पकते रहने दिया जाय । धीरे-धीरे मनुष्य की पर्याप्त होने की निजी गहरी भावना, और साथ-साथ स्वयं जीवन की निपट यथार्थता, वर्णन किये गये खाके का समर्थन करेंगीं या खण्डन करेंगीं ।

(१७)

man is the Messiah. The personal answer can be personal contact. At this writing this is still physically possible, and many have already availed themselves of this direct attack on the issue. Many have concluded their question in the affirmative, a surprisingly small proportion have reached a definite negative, and another portion have confessed a deep bemusement in which pleasure and delight are two major ingredients, but still with an apparent inability to reach an ultimate conclusion on the ultimate question.

The broad and long-term answer must be the net assessment which society makes over the generations to come of the forces set in motion. If the words spoken and the concepts advanced seem to grow in vitality and reality, then the man is automatically recognized by hindsight to have been the great sculptor of the divine shape for his age.

But no amount of advance argument nor demonstration can convince society. It is as if the concepts carry their own vitality and become the property and the watchword of the race regardless of the efforts to conjoin or defeat their purpose.

For many, however, there will be no opportunity for personal contact nor for acceptance or rejection in the flesh. And as these events are occurring in our age, none of us can rely on the consensus of evaluation that society will have made over the generations that are to come. For these, then, who are in such a position, it is required to peruse, and to think and to mull with an open mind, for here may well be a great storehouse of the Truth and Reality for which each of us searches throughout a lifetime. It is not necessary to make a crisis of acceptance or rejection, but to allow the concepts described to simmer in one's own mental stew-pot. Gradually one's own deep sense of the sufficient, as well as the sheer factuality of life itself, will corroborate or refute the outlines described.

पाँच वर्ष की अवधि में जो उस समय के बीच बीत गई जिसमें मुझे सबसे पहले इस तथ्य का भान हुआ कि कोई व्यक्ति अस्तित्व में था जिसका नाम मेहेरबाबा था, और न्यूयार्क में पहले बार उनसे मेरे मिलन के दौरान में मुझे प्रश्न करने के लिये और बग़ावत करने के लिये और मेहेरबाबा के जीवन के कितने ही विवादपूर्ण विशयों के सम्बन्ध में "बस मैं नहीं जानता" के स्वाभाविक बिन्दु पर वापिस आने के लिये काफ़ी अवसर प्राप्त था । मेहेरबाबा स्वीकार किये जाने अथवा अस्वीकार किये जाने के लिये आसान व्यक्ति नहीं हैं ।

मेहेरबाबा को क्रियाशील देखने के लिये अपने अनेक सुअवसरों समेत एक सप्ताहान्त का समय मुझे यह दृढ़ विश्वास दिलाने के लिये काफ़ी था कि वह सौम्य विनोदभाव से युक्त सर्वश्रेष्ठ कहानी बतलाने वाले (यहाँ तक कि एक वर्णमाला तख्ती के विध्न के माध्यम से भी) थे जिनके सरीखे व्यक्ति से मेरा सामना कभी न हुआ था; वह सर्वश्रेष्ठ व्यापारी मन वाले थे जैसा मुझको भारी व्यवसाय में कार्य करते हुये बीते जीवन में ज्ञात न हुआ था; सर्वश्रेष्ठ तत्त्वज्ञानी थे जैसा मुझको कभी न मिला था, और अत्यन्त ग्रहण-क्षमता से सम्पन्न मानवी एवं प्रेमपूर्ण व्यक्ति थे जिसकी संगति का आनन्द रस मुझे कभी न मिला था ।

ये चीज़ें निश्चितरूप से गुणों का काफ़ी महान संचित समूह हैं, किन्तु आप तत्काल आपत्ति करते हैं कि सीमित गुणों का योग कभी असीमितता पैदा नहीं कर सकता । क्या मैंने निर्णय कर लिया था कि वह सचमुच उस **युग** के **अवतार** थे ?

मैं पष्टरूप से बतलाता हूँ कि मुझे इसकी धुँधली से धुँधली कल्पना नहीं है, और मेरे मत में यह प्रश्न असंगत है । मुझे दृढ़ निश्चय है कि मुझे **अवतारपर** के गुणों एवं उपलब्वियों का निर्णय करने के लिये कोई साधन प्राप्त नहीं हैं, और इससे आगे मैंने यह पाया थ कि मेहेरबाबा उन क्षेत्रों में जिनमें मैं निर्णय करने के लिये अपने को योग्य महसुस करता था श्रेष्ठता के मेरे सब पिछले स्तरों से परे थे । एकबार जब हवाई वाण मेरे भौतिक लोक से छूटकर चला जाता है तो तारागणों से भरे अन्तरिक्ष में उसकी स्थिति को पहिचानने के लिये मेरे पास कोई ठोस साधन नहीं है । किन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि स्वयं मेरा अन्तर्ज्ञान मुझे बतलाता है कि उन गहन क्षमताओं से सम्पन्न व्यक्ति पुनः न मिलेगा और

(१८)

During the five years which elapsed between the time I first became aware of the fact that there was someone in existence named Meher Baba, and my meeting him for the first time in New York, I had ample opportunity to question and rebel and come back to the neutral point of "I just don't know" on any number of the controversial issues of Meher Baba's life. He is not an easy man either to accept or to reject.

That one weekend with its several opportunities to see him in action was sufficient to convince me that he was hands-down the best story teller with gentle humor (even via the handicap of an alphabet board) I had ever encountered, the best business mind I had known in a life spent working in big business, the best philosopher I had met, and the most sensitively human and loving individual I had ever enjoyed.

These are certainly a sufficiently formidable collection of qualities, but you immediately object that the addition of finite quantities can never produce infinity. Had I decided that he was really the Avatar of the Age?

Frankly I haven't the foggiest notion, and to me the question is irrelevant. I'm sure I would have no means of judging the qualifications and achievements of Avatarhood, and further I had found Meher Baba surpassing all of my previous standards of excellence in areas in which I felt competent to judge. Once the rocket has left my terrestrial sphere I have no concrete means of identifying its position in stellar space. But this I can say, my own intuition tells me that I shall never again meet an

मेरे अन्तस्तल को सन्तुष्ट करने की विलक्षण योग्यता न मिलेगी जो मैंने मेहेरबाबा में पाई थी ।

मुझे एक पिछला बयान बरबस याद आता है जे मेरे एक खोजी साथी ने कुछ वर्ष पहले यथार्थ क्राईस्ट के विषय में हुये एक प्रतिभाशाली वादविवाद को सुनने के बाद दिया था, जिस वादविवाद का विषय मोरमोन चर्च के एक संचालक ने दिया था । उसने कहा थ, "मेरे मन में एक विचार है कि याद आज क्राईस्ट पृथ्वी पर होते तो प्रायः हममें से कोई भी उनको न पहिचानता और न स्वीकार करता ।"

उसके वे शब्द अब मेरे लिये एक विचित्र अर्थ रखते हैं क्योंकि उनमें उनकी ऊपरी सतह पर प्रदर्शित किये प्रत्यक्ष मनव विद्वेष की अपेक्षा बहुत गहनतर बातें भरी हैं । हममें से प्रायः कोई भी मेहेरबाबा को न पहिचानेगा, न केवल हमारे पक्के रँगीले पक्षश्पातों के कारण से बल्कि इस कारण से कि हममें से प्रायः किसी में भी माप के उन भीतरी स्तरों का विकास नहीं हुआ जो ऐसे प्राणी के सही आकार का अनुमान लगाने के योग्य हों । उनकी क्षमता और उनकी ऊँची आध्यात्मिक स्थिति उन सुदूर प्रदेशों में ऊँचे मँड़राते हैं जहाँ उनके पीछे जाने की क्षमता हममें नहीं है । अतः हम नापने में अपनी पराजय स्वीकार करते हैं, भले ही हम अस्वकिार करने के सचमुच अलंध्य प्रलोभनों से पहले ही पराजित न ही गये हों ।

किसी आदमी के सम्भावित आध्यात्मिक चरित्र-बल का अनुमान लगाने में जो सहारा हम बहुधा लेते हैं वह यह है कि हम ढुँढ़ते हैं कि उस मनुष्य ने कितने चमत्कार किये हैं । आप पूछते हैं, "मेहेरबाबा ने अपनी ऊँचे आध्यात्मिक स्थिति के समर्थन में क्या चमत्कार किये हैं ?" ऐसे चमत्कारों की कई कहानियाँ हैं, और मैंने खुद ऐसी घटनायें देखी हैं जिन्होंने घटनाओं की प्राकृतिक अवस्था के विषय में मेरे स्थिर विचारों को आश्चर्यचकित कर दिया है । तथापि, चमत्कारों का मूल्यांकन प्रारम्भ करना असलियत से बहुत न्यून होगा और सत्यता को तुच्छता से ढाँक देगा । ऊँची आध्यात्मिक स्थिति की आत्मा के अवतरण का महत्व उसमें निहित नहीं होता है जोकुछ वह प्राकृतिक नियम के बाहर प्रत्यक्षरूप से करता है, बल्कि उसमें निहित होता है जोकुछ वह है और जोकुछ वह अपने अन्तर्गत करता है । ऐसा मनुष्य किसी प्रकार यशस्वी प्रदर्शन-व्यक्ति के रूप में, अविश्वसनीय करामातों से लोगों को आश्चर्यचकित करने के

individual with those profound capabilities and that uncanny ability to satisfy me internally which I found in Meher Baba.

I cannot help but think back to a statement which one of my research fellows made some years ago after hearing a brilliant discussion of the real Christ given by a director of the Mormon church. "I have an idea," he said, "that if Christ were on earth today, almost none of us would recognize or accept Him."

Those words have peculiar meaning to me now because they have a content much deeper than the apparent cynicism shown on their surface. Almost none of us would recognize Him not only because of our ingrained prejudices, but because almost none of us has developed the inner standards of measurement capable of estimating the true size of such a being. His capacity and stature soar off into realms where we are incapable of following and so we admit our frustration in sizing, even if we have not already succumbed to the virtually insuperable temptation to reject.

One of our most frequent crutches in estimating the probable spiritual calibre of a man is to look for miracles accredited to him. "What miracles has Meher Baba done to corroborate his stature?" you ask. There are many stories of such, and I have personally witnessed events which startled my staid notions of the normalcy of events. However, to start evaluating miracles would fall far short of the actuality and would becloud the reality with trivia. The importance of the advent of a spiritually advanced soul lies not in what he apparently does outside of natural law, but what he is and does within it. Such an individual does not come as some sort of gloried showman, to astound by performing feats of

लिये, नहीं आता । ऐसी करामातें केवल मानवजाति को, उनके जीवन के मूल ढाँचे को प्रभावित करने के बजाय, कुछ समय के लिये चक्कर में डाल देंगीं, और वे उनको कोई ऐसा पैमाना न देंगीं जो उनके जीवनों के आधारभूत ख़ाकों को प्रभावित करने के बजाय ख़ुद अपनी उपलब्धियों को नाप सकें, और साथ-साथ वे जीवन की ऐसी रीति प्राप्त करने के लिये किसी मनुष्य की योग्यता की पुनः पुष्टि कर सकें ।

आध्यात्मिक जीवन के इतिहास में ऐसे प्रधान पुरुष एक अलौकिक कार्य अपने ऊपर लेते हैं, और वह कार्य यह है कि वे पूर्णता का एक जीता-जागता उदाहरण प्रदान करते हैं जिसे वे सभी प्रतिबन्धों और सीमितताओं के बीच प्रदर्शित करते हैं जिनका सामना हम अधिक सामान्य मानव प्राणियों को करना होता है । एसी शक्तियों को आकर्षित करके जो हमारे कार्यक्षेत्र से बाहर हैं, अथवा अनेक प्रतिबन्धों से जिनसे हम संघर्ष करते हैं अबाधित रहकर, ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना स्पष्टरूप से न्याय सङ्गत न होगा और हमें एक एसी अवास्तविक योजना से अपने-आपको अलग कर लेने का प्रत्येक अधिकार होगा ।

तथापि जब कठोर वास्तविकताओं की वषय दुनियाँ में उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है, जो उन वास्तविकताओं की सभी दशाओं के अधीन होता है और फिर भी वह आश्श्चर्यजनक रूप से श्रेष्ठ सिद्ध हतिा है, तब वास्तव में आशा रखने और उसी चीज़ के लिये प्रयत्न करने के लिये कारण होता है । यह ऐसे व्यक्तियों का एक कार्य है । कारगर शिक्षा का एक सर्वश्रेष्ठ स्थापित सिद्धान्त है — भीतरी प्रयोग द्वारा अथवा क्षेत्रीय प्रयगि द्वारा पाठ्य विषय का एक व्यावहारिक प्रदर्शन प्रदान करना । इस बात से किसी को अचरज न होना चाहिये कि **स्वयं परमात्मा** अपनी वास्तविकताओं के प्रदर्शन में इसी प्रकार की अभिन्न प्रक्रिया का प्रयोग करता है ।

ये बड़ी भारी चीज़ें हैं जिनका सामना हमसे होता है और हमें उनका मूल्यांकन करने में जल्दबाज़ी न करनी चाहिये ।

इस स्थल पर कोई वे परिस्थितियाँ पूछ सकता है जिनके अन्तर्गत **ईश-पुरुष** प्रगट होता है । यह आवश्यकता के एक मूल स्वाभाविक नियम का अनसरण करता प्रतीत होता है जो सम्भरण और माँग के आर्थिक नियम के सदृश्य है । जब आध्यात्मिक सत्य की मान्यता का धागा झगड़े में पड़ने लगता है, तब परमात्मा का यह पहलू आवश्यकता के प्रति प्रत्युत्तर

(२०)

incredibility. This would only leave humanity gaping for a short while in amazement, rather than affecting the basic pattern of their lives and giving them a gauge by which they might measure their own accomplishments, as well as reaffirming the ability of any human to achieve such a way of life.

These key figures in the history of the spiritual life take on a superhuman job of providing a living example of perfection, demonstrated amid all the restrictions and limitations with which we more usual human beings are faced. To provide such an example by drawing on forces outside our scope, or unhampered by many of the restrictions with which we wrestle, would clearly not be just and we would have every right to dissociate ourselves from such an unrealistic scheme.

When the example is provided, however, in a rugged world of harsh realities, subject to all the conditions of those realities, and still turns out incredibly fine, then there is indeed reason to take hope and strive for the same thing. This is one of the functions of such individuals. One of the best established principles of effective teaching is to provide a practical demonstration of the subject matter either through a bench experiment or by field experience. The fact that God Himself should use the identical technique in the demonstration of His realities should astound no one.

These are tremendous things which we encounter and we must not be hasty in our assessment of them.

One might ask at this point the circumstances under which a God-Man manifests. This seems to follow a basic natural law of need similar to the economic law of supply and demand. When the thread of recognition of spiritual truth begins to fray, this aspect of God responds to the need

देता है, और तब महान **झागृतिकर्त्ता** का जन्म होता है जो मानवजाति को फिर से जगावेगा । इसके फलस्वरूप महान आध्यात्मिक शिक्षकों का अवतरण सदैव दुनियाँ के मामलों में संकटकालों से सम्बद्ध रहा है और उसके पश्चात् किसी क्षेत्र में जो पहले प्रायः ऊसर पड़ा रहा था मानवीय विकास का पुनर्जन्म हुआ है ।

यह जान लेना अच्छा है कि जब **अवतार** आता है, तो वह उन नियमों और प्रक्रियाओं के द्वारा जो प्रकृति में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती हैं हमको स्वयं हमारी आत्माओं की वास्तविकता दिखलाने के लिये आता है । यह जान लेना अच्छा है कि ये चीज़ें दूर हटीं, दूसरी दुनियाँ की, पीली और द्वि-परिमाण की होने के बजाय हार्दिक, सहज और कम से कम त्रि-परिमाण की होती हैं । यह जान लेना अच्छा है कि जब एक वास्तविक आध्यात्मिक शिक्षक कोई कार्य अथवा अनुशासन देता है, तो वह कारगर होता है क्योंकि वह ऊस यन्त्र-विज्ञान के अन्दर गहरी अन्तर्दृष्टि पर आधारित होता है जिसके द्वारा प्रकृति व्यक्तिगत स्वभाव का परिवर्तन तथा उसकी आवश्यकतायें पैदा करती हैं । तब अध्यात्म, रविवासरों को प्राप्त किया गया और सप्ताह के दौरान में, क्रमशः खोया गया प्रतिबन्धक अनुशासन होने की बजाय दिन-प्रति-दिन के तगड़े जीवन आचरण का एक चुनौती देने वाला मसला बन जाता है ।

मेहेरबाबा के इतिहास की विविध ज्वलन्त बातों को उनके स्वभाव के अनेक विवादग्रस्त पहलुओं पर वादविवाद किये बग़ैर स्पर्श करना उचित न होगा । उदाहरण के लिये, वह ब्हुधा बीच में ही अपने योजनायें बदल देते हैं, अथवा यह कहते हैं कि वह किसी ख़ास समय पर कोई ख़ास चीज़ करना चाहते हैं और फिर वह उसको देर में करते हैं या उसको प्रत्यक्षरूप में कभी नहीं करते । ऐसे महान पुरुष से निकली हुई यह बात क्या ग़ैरज़िम्मेदारी से भरी संकुचित दृष्टि से युक्त नहीं है ?

मेहेरबाबा की अचानक योजनायें पलट देने की प्रक्रिया सचमुच विषय है, किन्तु उसके अमुल्य परिणाम होते हैं । जो लोग बाबा के साथ लम्बे समय तक रहे हैं वे प्रायः सारी दुनियाँ में अपनी लोचता और सामंजस्य करने की शक्ति के लिये प्रसिद्ध हैं, किन्तु इसके अतिरिक्त निःसन्देह अधिक मूलभुत कारण हैं जिनका वास्ता औसत दर्जे के मनुष्य

(२१)

and the great Awakener is born who will reawaken mankind. As a consequence the advent of great spiritual teachers has always been associated with crisis in world affairs and has been followed by a resurgence of human development in some field which previously had lain almost fallow.

It is good to know that when the Avatar comes he comes to show us the reality of our own selves, through laws and techniques which are inherent in nature. It is good to know that these things are hearty, spontaneous and at least three-dimensional, rather than removed, other-worldly, pale and two-dimensional. It is good to know that when a legitimate spiritual teacher assigns a task or a discipline, it is effective because it is based on profound insight into the mechanics by which nature produces change and the needs of the individual nature. Spirituality then becomes a challenging matter of robust day-to-day living rather than a restrictive discipline acquired on Sundays and progressively lost through the week.

It would not be fair to touch on various of the highlights of the history of Meher Baba without discussing several controversial aspects of his nature. For instance, he often changes his plans in midstream, or says he intends to do something at a certain time and then delays or seemingly never does it. Isn't this irresponsible and shortsighted, coming from so great a personage?

Meher Baba's process of sudden reversal is indeed rugged, but it does produce valuable results. Those who have lived long with Baba are almost universally notable for their resiliency and adaptability, but in addition to this there are undoubtedly more basic reasons which have to do with the sheer indeterminacy of the average human being's free will as

की स्वतन्त्र इच्छा की निपट अनिश्चितता से है और साथ-साथ स्वयं हमारे अस्तित्व के अलावा अस्तित्व के स्तरों पर सद्गुरु की त्रिया से है ।

मुझे यह कलपना करती ही पड़ती है कि भौतिक कार्यों की दुनियाँ में सीखे गये सबकों से लेकर आध्यात्मिक विकास के प्रदेश के अन्दर तक ले जाने के लिये एक सीधा मार्ग है । क्या यह सच नहीं है कि ऐसे व्यक्ति को, जो एक निश्चित शारीरिक दिनचर्या में कभी परिपक्व नहीं हुआ, किन्तु जो अपेक्षाकृत चैतन्य औा ग्रहणशील है, आन्तरिक विकास में करने के लिये असंख्य परिवर्तनों के प्रति उसी प्रकार की सामंजस्य करने की क्षमता प्राप्त होगी ?

यह तथ्य कि मेहेरबाबा बहुधा उपवास करते हैं अनेक लोगों की समझ में नहीं आता जो बाबा के कार्य करने की रीति से परिचित नहीं हैं । बाबा ने सदैव लगातार छोटी और लम्बी अवधियों तक उपवास किये हैं, और यह पहलू उनके कार्य में शाश्वत एवं महत्वपूर्ण रीति से प्रगट होता है, इसको कभी-कभी लोगों ने ग़लत समझकर स्वयं बाबा के लिये एक अच्छा और पवित्र कर्म माना है, अथवा तपस्या या आध्यात्मिक लाभ के लिये, अच्छा और पवित्र कार्य माना है । किन्तु यह कार्य स्वयं उनके लिये नहीं होता बल्कि भूमण्डल पर उनके कार्य के लिये होता है । जैसा भगवद्गीता में कृष्ण ने अर्जुन से कहा थ :-

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥

अर्थात् "हे अर्जुन ! यद्यपि मेरे लिये तीनों लोकों में कुछ भी कर्तव्य नहीं है, और न किसी अप्राप्त वस्तु को प्राप्त ही करना है, तथापि मैं कर्म में ही बर्तता हूँ ।"

अध्याय ३ श्लोक २२

मेहेरबाबा का लगभग ३० वर्ष का मौन और अपने भाव प्रगट करने के लिये साधन के रूप में उनके द्वारा वर्णमाला तख्ती का प्रयोग मनुष्य को सामान्यरूप से आश्चर्यचकित करने वाले हैं । अनेक लोग वर्णमाला तख्ती के प्रयोग को निरर्थक मान सकते हैं, और कुछ लोग इसको धोखा भी कहते हैं ।

मेहेरबाबा के इस लम्बे समय के मौन धारण करने के कारणों के विषय में बाबा से और अन्य लोगों से कई वादविवाद हुये हैं । मैं इस स्थान पर इसकी सम्भावित विविध व्याख्यायें नहीं देना चाहता, वरन् (२२)

well as the functioning of a Perfect Master on levels of existence other than our own.

I cannot help but speculate that there is a direct carry-over from the lessons learned in the world of material affairs into the realm of spiritual development. Isn't it true that the individual who has never ossified into a set physical routine, but is rather alert and adaptable, will have a similar adaptability to the multitudinous changes to be made in inner development?

The fact that Meher Baba fasts quite frequently is incomprehensible to many people unacquainted with his way of working. Baba has always fasted intermittently for short and long periods, and this phase appears consistently and importantly in his work. This has sometimes been misconstrued as a good and holy act for himself, or for penance or spiritual benefit. But it is not for himself, but rather for his work on earth. As Krishna said to Arjuna in the Bhagavad Gita:

Thou Son of Pritha! in the three wide worlds
I am not bound to any toil, no height
Awaits to scale, no gift remains to gain,
Yet I act here!

Canto 3–22

Meher Baba's silence of almost three decades and substitution of an alphabet board as a means of communication are equally puzzling. Many people may regard it as unproductive to use an alphabet board, and some even label it a subterfuge.

There have been a number of discussions by Meher Baba and others on the reasons for this prolonged silence. I do not wish to go into the various potential explanations here, but rather to call attention to the most

इन सबकी अत्यन्त अचरजपूर्ण सत्यता की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। ऐसी कठोर अड़चन के होते हुये भी, जो ऐसी है जैसे किसी मनुष्य का एक हाथ उसकी पीठ के पीछे बँध दिया हो, मेहेरबाबा ने अत्यन्त जटिल कार्यों को सुक्ष्मरूप से और ख़ुद योजित किया है, सैकड़ों लोगों को सिखलाया है और हज़ारों लोगों को आशीर्वाद दिया है, हाथ में लिये गये कार्यों का संचालन किया है और सुदूर स्थानों में रहने वाले लोगों को प्रसन्न करने वाले शब्द प्रदान किये हैं, और थोड़े से ही समय में इस ग्रन्थ जैसी स्मरणीय कृति "लिखवाई" है।

मेहेरबाबा की पद्धतियाँ बहुधा उत्तेजना पैदा करती हैं। वह ऐसी अनेक चीज़ें करते हैं जो समझ के परे होती हैं, और वह उनको समझाने की परवाह किये बग़ैर खुशी खुशी अपना कार्य करते रहते हैं। जहाँ तक मेरा प्रश्न हैं, मैं किसी भी मनुष्य की बहुत प्रशन्सा करता हूँ जो अपने को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिये हर दूसरे कदम पर नहीं बैठता, किन्तु ऐसे व्यवहार के लिये इस रूप में प्रत्यक्षरूप से ठोस कारण हैं कि लगातार समझाने के लिये बिल्कुल समय नहीं है, और न तो सम्भबतः हममें अधिक गूढ़ पहलुओं की वाख्या को समझने की बुद्धि है यदि वह हमको प्रदान की जाय।

मेहेरबाबा का जन्म पारसी दम्पत्ति से पूना, में २५ फ़र्वरी १८९४ ई॰ को हुआ था, और उनके माता-पिता ने उनका नाम मेरवान शेरयार रक्खा था, उनका पारिवारिक नाम ईरानी था। वर्ष १९१४ ई॰ में महान सूफ़ी सन्त हज़रत बाबाजान ने मेरवान के मस्तक को चूमकर उसे ईश्वर-साक्षात्कार* प्रदान कर दिया। १९१५ ई॰ में मेरवान अपने दूसरे सद्गुरु उपासनी महाराज से लिये। १९२१ में वह सद्गुरु हो गये। १९२५ ई॰ में उन्होंने अपना मौन प्ररम्भ किया, और वह अपने विचार प्रगट करने के लिये एक छोटी चौखूँटी तख्ती का प्रयोग करने लगे जिसमें अँग्रेज़ी वर्णमाला के अक्षर अङ्कित हैं। बाबा इस वर्णमाला षट्टी पर अङ्कित अक्षरों के ऊपर अँगयलियाँ रखते हुये तेज़ी के साथ शब्द निर्माण करते हैं। इस समय तक उन्होंने अपने शिष्यों का एक छोटा सा दल

* 'अवतार' यथार्थ में परमात्मा के साथ एक होता है, किन्तु वह भौतिक जगत में एक परदा लेकर आता है जो पोरपक्व समय आने पर एक सद्गुरु द्वारा हटा दिया जाता है। बाबा के निमित्त यह कार्य हज़रत बाबाजान ने विया था।

astounding fact of all. Despite such a severe handicap, the equivalent of having one hand tied behind one's back, Meher Baba has planned minutely and personally the most complex undertakings, taught hundreds and blessed thousands, directed undertakings and given words of cheer to persons at far distant points, and "dictated" in a relatively brief period of time as monumental an enterprise as this book.

Meher Baba's methods are often productive of exasperation. There are many things which he does which defy understanding, and he blithely goes on about his business without bothering to proffer an explanation. For myself I admire greatly someone who does not sit down at every other step to justify himself, but there a re apparently quite sound reasons for such behaviour in that there just is not time for constant explanation, nor is there probably in us the comprehension to encompass an explanation of the more abstruse phases if given.

On February 25, 1894, Meher Baba was born of Persian parents in Poona, India, and was given by them the name Merwan Sheriar, the family name being Irani. In 1914 he became God-realized* through a kiss on the forehead bestowed by the great Sufi Master, Hazrat Babajan. In 1915 he met his second master, Upasni Maharaj. In 1921 he became a Perfect Master. In 1925 he commenced his silence, using as a means of communication a small rectangular board on which are painted the letters of the alphabet. Baba forms words quickly by pointing successively to the letters on this board. By this time he had collected a small group of

* The Avatar is in reality one with God, but comes into the physical world with a veil which must be removed by a Perfect Master when the time is ripe. Hazrat Babajan performed this function for Baba.

एकत्र कर लिया था जो उनको "मेहेरबाबा" कहकर पुकारते थे । १९३१ ई॰ में वह पश्चिमी जगत में गये और परश्चिम के साथ अपने प्रथम सम्पर्क स्थापित किये । १९३२ ई॰ में उनका स्वागत उन अनेक लोगों ने किया जिनको आप और मैं कदाचित हालीवुड के महानतम व्यक्ति समझेंगे । ५८ वर्ष की आयु में ओकलाहोमा में हुई एक भीषण मोटर दुर्धटना में उनकी एक एक टाँग और एक हाथ टूट गये । अब, ६१ वर्ष की आयु में मेहेरबाबा गतिशील हैं, क्रियाशील हैं, और उनके चारों तरफ़ जोकुछ हो रहा है उस सबका उनको सुक्ष्म ज्ञान है ।

मैंने बाबा के प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं को विस्तारपूर्वक देने का प्रयत्न नहीं किया क्योंकि उनका चर्णन सी॰ बी॰ परडम कृत "**दि परफेक्त मास्टर**"* ग्रन्थ में योग्यतापूर्णक किया गया है और उसके बाद हाल ही में जीन ऐड्रियल कृत "दि अवतार"‡ ग्रन्थ में किया गया है । यहाँ दिये गये जीवनी सम्बन्धी खाके की देने का अभिप्राय केवल पूर्वीय दृष्टिकोण देने से है जिससे हम बाबा के जीवन से सम्बन्धित कई प्रमुख विचारणीय प्रश्नों पर, जो सहजरूप से जटिल हैं और कदाचित् अन्त में व्याख्या के लिये असम्भव हैं, वादविवाद करते रह सकें ।

बाबा के अनेक कार्यों और यात्राओं के कारण के सम्बन्ध में बहुत कल्पनायें की गई हैं, किन्तु उनका अधिकांश भाग रहस्य के कुछ अन्शों से ढका रहता है । ऐसी स्थिति में सामान्य विधि यह है कि व्यक्ति को विवेकरहित घोषित किया जाय और उसके कार्यों को भ्रम कहकर काट दिया जाय । बाबा के साथ ऐसा नहीं किया जाता क्योंकि इसका सीधा-सादा कारण यह है कि बाबा के बहुत से प्रयत्न और सुझाव उन चीज़ों की शक्ल में, जो औसत दर्जे के मनुष्य के ज्ञान के बिल्कुल परे हैं, अन्तर्दृष्टि होने पर आधारित देखे जाते हैं । बहुधा ऐसा परिणम चन्द घण्टों के अन्दर पैदा हो जाता है । कभी-कभी घटनाओं का फैसला वफ्तों अथवा महनिों अथवा वर्षों तक भी नहीं दिया जाता ।

तथापि, यह विलक्षण अन्तर्दृष्टि उन लोगों को, जिन लोगों ने अकस्मात् आलोचना करने में कुछ क्षण व्यतीत किये हैं, शान्त रहने के (२४)

* सी॰ बी॰ परडम, दि परफ़ेक्त मास्टर, विलियम ऐण्ड नारगेट, १९३७, (जो अब उपलब्ध नहीं है)

‡ जौन ऐड्रियल, दि अवतार, जे॰ एफ़॰ रोनी, १९४७ ।

disciples who called him "Meher Baba." In 1931 he went to the western world and made his first contacts with the West. In 1932 he was feted by many of those whom you and I would perhaps consider Hollywood's greatest. At fifty-eight he broke a leg and an arm in a severe automobile accident in Oklahoma. Now, at the age of sixty-one, Meher Baba is dynamic, active, acutely aware of all that goes on about him.

I have not tried to give in any detail the events of Baba's earlier life because they have been ably described in C. B. Purdom's *The Perfect Master*,† followed more recently by Jean Adriel's *Avatar*.‡ The biographical outline given here is intended as nothing more than a point of orientation so that we may go on to discuss several of the key issues associated with Baba's life which are inherently complex and perhaps impossible of interpretation in the long run.

There has been much speculation concerning the reason for many of Baba's actions and journeys, but the greater proportion continue to be shrouded in some degree of mystery. In such a situation the usual procedure is to declare the individual irrational and to write off his actions as delusion. This is not done with Baba for the simple reason that a goodly number of his efforts and suggestions are seen to be based on an insight into the shape of things utterly beyond the average human ken. Often such an outcome results within hours. Sometimes the verdict of events is not given for weeks or months or even years.

However, this uncanny insight causes those who have invested more than a few moments of casual criticism, to hold their peace and be

† C. B. Purdom, The Perfect Master (Myrtle Beach, SC: Sheriar Press, 1976).

‡ Jean Adriel, Avatar (Berkeley, CA: John F. Kennedy University Press, 1971).

लिये प्रेरित करती है और इस बात के लिये प्रेरित करती है कि वे बाबा के किसी भी पिछले कार्य का चिर वांछित उत्तर पाने के लिये तैयार होवें और इस बात का ध्यान न रक्खें कि वे कार्य उस समय कितने अतुलनीय दिखायी पड़ते हैं ।

बाबा की क्रियाओं और सुझावों को विश्वास के साथ मानने के लिये आगे और भी कारण हैं । मनुष्य को एक भी ऐसी स्थिति न मिलेगी जिसमें बाबा के प्रभाव के फलस्वरूप सम्बन्धित व्यक्ति को क्षति पहुँची हो । बाबा उस व्यक्ति की क्षमता बढ़ाने के लिये उस व्यक्ति कोपस्त हो जाने की सीमा तक अथवा निराश हो जाने की सीमा तक बहुधा ढकेलेंगे । किन्तु सम्भावना की एक बारीक रेखा है जिसको बाबा कभी नहीं लाँघते ।

बाबा के जीवन में एक अवधि ऐसी है जो नाटक और करुणारस दोनों से भरी है‡ जिसके दौरान में बाबा ने सब जातियों और सम्प्रदायों के बालकों के लिये स्कूल की स्थापना की थी । वह स्कूल १९२७ ई॰ की ग्रीष्मऋतु में स्थापित किया गया था और उसमें एक समय कुल १०२ बालक थे, जिनमें से ४९ हिन्दु थे, २० मुसल्मान थे, ३२ ज़रतोस्ती थे और १ इसाई था ।

उन विद्यार्थियों में बाबा का एक कृपापात्र विद्यार्थी अली था । अली को उसका पिता स्कूल से ले गया जबकि वह ऐसा समाचार सुनकर भयभीत हो गया था कि उस स्वूल के कई बालकों को अनियन्त्रित आँसू बहाने के दौड़े समय-समय पर होते थे । इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध किसी रीति से दैनिक ध्यान लगाने से था जो वे बालक लगाते थे ।

अली का पिता उसको तीन बार स्कूल से हटाकर ले गया और उसको अपने घर बम्बई ले गया । उसके ऊपर अत्यन्त सावधानी के साथ चौकसी रक्खे जाने पर भी अली तीन बार बचकर स्कूल वापिस आ गया और वह अधिकान्श रूप से पैदल आया, बाबा के प्रति उसकी भक्ति इतनी गम्भीर थी ! अली के चौथी बार वापिस ले जाये जाने के बाद शीघ्र ही मेहेरबाबा ने स्कूल के सब बच्चों को कुछ समय के लिये उनके घर भेज दिया और १९२९ ई॰ के प्रारम्भ में स्कूल सदैव के लिये बन्द कर दिया गया । इसके बाद शीघ्र ही बाबा की विश्व की विस्तृत

‡ इसका सुन्दार वर्णन रमजू अब्दुल्ला कृत "*Sobs and Throbs*" (आँसू और सिसकियाँ) नाम की पुस्तक में विया गया है ।

prepared to find the desirable long-term answer back of any of Baba's actions regardless of how imponderable they may appear at the time.

There is further reason to regard Baba's deeds and suggestions with credence. One would be hard put to find one single situation in which his influence has resulted in harm to the individual concerned. He will often push a person to the point of exhaustion or even desperation in order to increase the capacity of that individual. But there is a fine line of the possible which he never transgresses.

One of the periods in Baba's life which has both drama and pathos in it* is that covering the establishment of his school for boys of all sects and castes. Established in the summer of 1927, it contained at one point a total of 102 boys, of whom 49 were Hindus, 20 Moslems, 32 Zoroastrians and 1 Christian.

One of Baba's favorites among the students, Ali, was removed from the school by his father when he became alarmed by report s that many of the boys in the school had periodic fits of uncontrolled weeping. These were apparently related in some fashion to the daily meditations which the boys carried out.

Three times Ali's father removed the boy from the school and carried him off to his home in Bombay. Three times the boy escaped from the most careful surveillance and made his way back, mostly on foot, to the school, so deep was his loyalty to Baba. Shortly after the occasion of Ali's fourth withdrawal, the school boys were all sent home temporarily by Meher Baba and early in 1929 the school was permanently closed.

* Beautifully described by Ramjoo Abdulla in "Sobs and Throbs," included in *Ramjoo's Diaries*, 1922–1929, ed. Ira G. Deitrick (Walnut Creek, CA: Sufism Reoriented, 1979).

यात्रायें ळरने की अवधि प्रारम्भ हुई और सात वर्ण की संक्षिप्त अवधि में उन्होंने सात बार पश्चिम की यात्रा की और दो बार सारे भूमण्डल की यात्रा की ।

इस यात्राओं में कुछ अनुकूल प्रचार हुआ और अधिकतर आलोचनात्मक अथवा अश्लील बातें मिलों । बाबा ने कभी अनुकूल "प्रचार" (*"press"*) बढ़ाने का प्रयत्न नहीं किया । वह आग्रहपूर्वक कहते हैं कि जो लोग उनके ऊपर हमला करते हैं वे बाबा की प्रशन्सा करने वाले लोगों के समान ही बाबा का कार्य करते हैं । अपनेआप को बचाने के लिये इनकार करने अथवा अपने "कथनों" को उद्धृत करने में हुई ग़ल्तियों को ठीक करने अथवा मामूली ग़लत फहमियों को दूर करने की उनकी दृढ़ प्रवृत्ति आज के दिन एक अद्भुत बात है जबकि दुनियाँ को समाज की नज़रों में अपनेआप को सुरक्षित रखने की आवश्यकता पर दृढ़ विश्वास हो गया है । एसी निपट उदासीनता व्यावहारिकता का अनुभव करने की असफलता पर आरोपित की जा सकती है, किन्तु मनुष्य इस भावना के साथ समाप्त करता है कि बाबा गहरे आन्तरिक ज्ञान के अनुसार कार्य करते हैं और इस बात से सन्तुष्ट रहते हैं कि व्याख्या से अप्रभावित उनके कार्यों के परिणाम निकलेंगे । यूरोप में और अमरीका में बाबा के लिये बड़े-बड़े स्वागत समारोह किये गये थे, और हालीवुड को दिये गये उनके परिचय पर जो भारी प्रचार तरङ्गित हुआ उससे कथनों की एक बाढ़ आ गई जो कभी भी पूरी तरह अखण्डित न होगी ।

पश्चिम की इन यात्राओं ने घटनाओं का अपना निजी भण्डार पैदा किया जो मानवी भावना से परिपूर्ण था । एक घटना जो मेरे लिये सदैव गम्भीररूप से मनोरञ्जक रही है वह है एक रूसी महिला से बाबा के मिलन का वर्णन । वह महिला अपनी पुत्री से प्रेमपूर्ण सम्बन्ध की कोई भावना बनाने की अपनी अयोग्यता के कारण गम्भीररूप से अशान्त थी; उसकी पुत्री उस समय २० साल से अधिक उम्र की थी । बाबा ने उस महिला का हाथ ठोंका और उससे कहा कि वह उसकी मदद करेंगे, और कई दिन बाद जब वह सुबह जागी तो वह अपनी पुत्री के प्रति प्रेम की गहरी और ऊष्ण भावना से भरी थी, जैसा उसको कभी न हुआ था । उसने अपनी पुत्री से भूतकाल में किये गये अपने व्यवहार के लिये तुरन्त क्षमा माँगी और उसी क्षण उन दोनों में एक गहरा और विश्वास से भरा सम्बन्ध स्थापित हो गया ।

(२६)

Soon after this Baba's period of extended world tours began and in seven short years he made seven trips to the West and two around the world.

Attendant on these was some favorable publicity and much that was critical or even scurrilous. Baba has never attempted to develop a favorable "press." He persistently maintains that those who attack him do his work equally with those who praise him. His consistency in his attitude of refusing to defend himself or to correct errors in quoting his "remarks" or even simple misunderstandings is a phenomenon in this day when the world has become convinced of the need for vindication of oneself in the eyes of society. Such absolute indifference might well be attributed to failure to realize practicality, but one ends up with the sense that Baba acts according to deep internal knowledge and is satisfied that the results will occur regardless of interpretation. Great receptions were held for him in Europe and in America, and the publicity which rocketed back and forth on his introduction to Hollywood created a flood of statements which will never be completely integrated.

These trips to the West produced their own treasury of incidents rich in human emotion. One that has always interested me deeply has been the account of Baba's meeting with a Russian lady who was profoundly disturbed because of her inability to form any sense of warm relatedness to her daughter, who at that time was in her twenties. Baba stroked her hand and told her that he would help her, and several days later when she awakened in the morning she was suffused by a deep and warm sense of love for the daughter such as she had never known. She asked forgiveness at once of her daughter for her treatment of her in the past and forthwith there was established a profound and trusting relationship.

दूसरा उदाहरण, जिसमें मानवी भावनाओं के जादू के चिराग का रस मिलता है, वह था जिससे बाबा इटली में एक अशान्त और प्रतिभाशाली यूनीवर्सिटी प्रोफ़ेसर से मिले थे जिसने बाबा के सामने गूढ़ तत्त्वज्ञान का अपना ज्ञान खोल कर रख दिया था । उसकी बात सुनने में बाबा के धीरज रखने के बावजुद, जब वह अपने जीवन के ज्ञान के अंगों को एकसाथ पिरोने के अपने प्रयत्नों में बिल्कुल निराश हो गया, तब उसने अन्त में निराशा में अपने हाथ डाल दिये और बाबा से याचना की कि वह केवल ध्यान में उसके साथ ख़ामोशी से बैठ जायँ ।

बाबा मुस्कराये और उन्होंने अपना हाथ उस प्रोफ़ेसर के हाथ के ऊपर रख दिया, और जो लोग वहाँ कमरे में मौजूद थे बतलाते हैं कि कमरे में गम्भीर शान्ति का भाव व्याप्त था और उसने उस व्यक्ति के चेहरे से नैराश्य का आलोक धीरे-धीरे हटा दिया । कुछ क्षण ख़ामोश रहने के बाद वह अचानक चिल्ला पड़ा, "अब मुझको ज्ञान हुआ कि **सत्य प्रेम** है ।"

इस विषय में चमत्कारी कहानियाँ है कि बाबा ने एक समय असीसी के सन्त फ़्रान्सिस की गुफ़ा मे ठहरकर ध्यान लगाया था, उन्होंने स्विटज़रलैन्ड के आल्पस पर्वत के शिखर पर दिव्य शासक-मण्डल की मीटिंग की थी, और वर्षा का एक भीषण तूफ़ान आया था जब बाबा उस तूफ़ान से अछूते रहकर प्रकाश के एक पुन्ज में खड़े थे जो बरसते हुये बादलों को बेधकर उस पार निकल गया था, जबकि बाबा की देखभाल करने वाले जन, जो ढाल के नीचे कुछ फ़ीट की दूरी पर खड़े हुये बाबा की प्रतीक्षा कर रहे थे, बिल्कुल भीग गये थे ।

उसके बाद बाबा ने कुछ वर्ष पागलों के साथ कार्य करने में फिर आध्यात्मिक नशे में चूर लोगों के साथ कार्य करने में व्यतीत विये । १९३६ ई॰ में राहुरी में एक तथा-कथित "पागल आश्रम" स्थापित विया गया था जिसमें बाबा और उसके शिष्य कई सचमुच पागल लोग लाये थे । बाद में बाबा ने "आध्यात्मिक नशे में चूर" लोगों के साथ अपना कार्य अधिक बढ़ा दिया था — आध्यात्मिक नशे में चूर वे लोग थे जिनका सामान्य चैतन्य सम्पर्क उनके ईश्वरीय प्रेम के नशे के फलस्वरूप उनके इर्द-गिर्द की चीज़ों से समाप्त हो गया था ।

भारत में यह स्वीकार किया जाता है कि लौकिक पागलपन और सामान्य चेतना के ह्रास के बीच का अन्तर आध्यात्मिक अति-हर्ष के

Another instance which savours of the magic lamp of human emotions was Baba's meeting in Italy with a disturbed and brilliant university professor who unpacked his own knowledge of esoteric philosophy before Baba. After arriving at complete frustration in his efforts to piece together the components of his life's wisdom in spite of Baba's patience in listening, he finally threw up his hands in despair and asked Baba just to sit quietly with him in meditation.

Baba smiled and laid his hand over that of the professor, and those present in the room comment on the rapt sense of peace which suffused the room and gradually erased the appearance of desperation from the face of the man. After a few moments of silence he suddenly exclaimed, "I know now that Truth is Love."

There are miraculous tales of Baba's stay in the cave in which St. Francis of Assisi had once meditated, of a meeting of the hierarchy atop a mountain in the Swiss Alps and of the violent storm which raged as Baba stood untouched in a shaft of light which pierced the disgorging clouds, while those who attended him were drenched as they stood waiting for him a few feet down the slope.

There followed some years spent in dealing with the mad and then the spiritually intoxicated. A so-called "mad ashram" was established at Rahuri in 1936 to which Baba and his disciples brought a number of truly mad individuals. Later Baba's work was increasingly with the "spiritually intoxicated," those who had lost their normal conscious contact with their surroundings as a result of the intoxication of their divine love.

The difference between conventional madness and loss of normal consciousness as a result of spiritual ecstasy is recognized in India, and as

फलस्वरूप होता है, और लोग एक परम्परा के रूप में इन बाद की श्रेणी के "**मस्तों**" की देखभाल करते हैं । इस क्षेत्र में बाबा का कार्य उस कार्य का स्मरण दिलाता है जो सद्गुरु उपासनी महाराज ने ७ वर्ष की अवधि में बाबा के लिये किया था; बाबा के मस्तक पर चुम्बन करके सूफ़ी सन्त बाबाजान द्वारा पर्दा हटा दिये जाने के बाद, उपासनी महाराज ने बाबा की चेतना को धीरे-धीरे उतारकर उन्हें सृष्टि की पूर्ण चेतना प्रदान की थी । इन दोनें सद्गुरुओं ने मेहेरबाबा को अपना आध्यात्मिक चार्जमैन (आध्यात्मिक वारिस) चुना था, यह एक अद्वितीय कार्य था जो हिन्दू और मुसलमान दोनों की सर्वोच्च परम्पराओं को एक में मिलागा था ।

राहुरी आश्रम में दिये गये मेहेरबाबा के मस्त-कार्य की शाखायें बढ़ती चली गई (गईं?) और आगामी वर्षों के दौरान में उन्होंने भारत के हृदय में और उसके सुदूर कोनों की अधिक और अधिक यात्रायें कीं, जिनके दौरान में उन्होंने सभी उपलब्ध **मस्तों** और सन्तों से सम्पर्क किया, भले ही वह सम्पर्क एक क्षण के लिये किया हो । इन यात्राओं की कहानी भीषण कठिनाई और भारी प्रयत्नों के उदाहरणों से भरी है जिनका सामना उन यात्राओं में भाग लेने वाले सब जनों को करना पड़ा था* ।

एक बार फिर हम ऐसे सम्पर्कों के अनुमान की केवल कल्पना कर सकते हैं । यदि मैं एक अनुमान लगाने का ख़तरा उठाऊँ तो मैं कल्पना करूँगा कि उन सम्पर्कों से एक दोहरा कार्य सम्पन्न किया गया था । आध्यात्मिक स्थिति में ऊँची ऐसी आत्मायें किसी प्रकार की मूल मानसिक अथवा ऐहिक शक्ति पर निश्चित रूप से नियन्त्रण रखती हैं अथवा उसे उपलब्ध रखती हैं, चाहे कोई उसका जो भी नाम रक्खे । समूचे रूप से, वे आत्मायें कुछ-कुछ कार्यकर्त्ता मधुमक्खी के समान कार्य करती हैं, और भारत कुछ-कुछ शहद के छत्ते के रूप में कार्य करता है ।

बाबा, शहद के छत्ते के शाही कुलपति के रूप में, शक्ति के इस विशाल भण्डार को खींचने के लिये अपना सम्बन्ध स्थापित कर रहे थे, और उसके बदले में वह निःसन्देह प्रत्येक **मस्त** अथवा सन्त को उसकी आध्यात्मिक यात्रा में आने बढ़ने के लिये एक और ठेल देते थे । मस्तों से

(२८)

* इसके विवरण जानने के लिये देखिये विलियम डङ्किन कृत दी वेफ़ेयरर्स, मेहेर पब्लिकेशन्स, अहमदनगर, भारत । (जिसका पुनः मुद्रण १९३९ में सूफ़ीज़्म रिओरिएण्टेड, इनकार्पोरेटेड, ने किया है) ।

a tradition the people care for these latter "masts" as they are termed. Baba's work in this field is reminiscent of the function performed for him over the course of seven years by Upasni Maharaj, the Perfect Master who gradually brought him back to full consciousness of his surroundings after the kiss on his forehead by the Sufi Master Babajan had torn away the veil. Both of these Perfect Masters selected Meher Baba as their spiritual chargeman (spiritual heir), a unique function uniting the highest flowering of both Hindu and Islamic traditions.

Meher Baba's work with the masts in his ashram at Rahuri branched out increasingly and over the course of the ensuing years he made more and more trips into the heart and to the far corners of India, contacting even if for a brief instant all the available masts and saints. The story of these journeys is replete with instances of severe hardship and the expenditure of great effort on the part of all who participated.*

Once again one can only speculate on the inference of such contacts. If I were to hazard a guess I would suppose that a dual function had been fulfilled. Such spiritually advanced souls certainly control or have available some type of basic psychic or cosmic energy, term it what one may. As a whole, they act something like the worker bee, and India functions somewhat as the honey-comb.

Baba, as the royal patriarch of the hive, was setting up his liaison to draw upon this vast store of energy, and in return no doubt gave each individual mast or saint a further push in his spiritual on-going. This

* For details see William Donkin, *The Wayfarers* (Myrtle Beach, SC: Sheriar Press, 1988).

सम्पर्क करने का यह कार्य १९४६–१९४८ की अवधि में अपने चरम शिखर पर पहुँच गया, और उसके बाद दो वर्ष तक बाबा की "**नई ज़िन्दगी**" का पहलू रहा जो १६ अक्टूबर १९४९ को प्रारम्भ हुआ था। यह पहलू निःसन्देह सब अतुलनीय चीज़ों में अत्यन्त अतुलनीय चीज़ है जिससे विद्यार्थियों को निपटना पड़ता है। "**नई ज़िन्दगी**" पारम्भ करने के पहले बाबा ने सब आश्रम तोड़ दिये जो "**मस्तों**" के लिये तथा कम-वेश स्थायी घनिष्ठ शिष्यों के लिये क़ायम रक्खे गये थे, और साथ-साथ लोगों का निरन्तर ताँता लगे रहने के लिये क़ायम रक्खे गये थे जो वहाँ एक थोड़े समय की मुलाक़ात से लेकर हफ्तों, महीनों अथवा वर्षों तक ठहरते थे।

जो लोग बाबा पर आश्रित थे उन लोगों की देखरेख के लिये प्राविधान किया गया, और उसके बाद बाबा ने स्वयंसेवकों से कहा कि वे अनेक यात्राओं में उनके पीछे चलें, जिनमें उनहें बहुधा पैदल चलना था और अत्यन्त भीषण कठिनाइयों का सामना करना था। बाबा की "**नई ज़िन्दगी**" के इस नये पहलू में उनका अनुसरण करने के लिये शिष्यों से स्वयंसेवक माँगने के लिये पहले बाबा ने अनुशासन एवं त्याग के कठोर नियम निश्चित किये थे। बाबा की वह "**नई ज़िन्दगी**" वनवास, अस-हायपन और त्याग की ज़िन्दगी थी। उसके लिये अन्ततः २० जन चुने गये और वे बाबा के साथ गये।

उन दो वर्षों में हुई यात्रायें और आध्यात्मिक अनुशासन अत्यन्त कठिन थे जिनसे होकर बाबा के शिष्य कभी न गुज़रे थे। जिन शिष्यों ने उन यात्राओं में भाग लिया था वे थकित, दुबले-पतले और गिरी हालत में थे जैसे कि वह १९५१ ई॰ के उत्तरार्द्ध में बाहर निकलने पर दिखाई पड़ते थे। घटनाओं और उनके महत्व का विस्तारपूर्वक वर्णन किसी अधिक विस्तृत ग्रन्थ में दिया जायगा, किन्तु उनका देखने वाला मनुष्य यह नतीजा निकाले बग़ैर नहीं रह सकता कि इस गूढ़ पहलू में भविष्य के व्यक्ति और जाति की सामाजिक उन्नति के लिये एक प्रमुख अधिकार पत्र स्थापित हो गया था। १६ अक्तूबर १९५० ई॰ को बाबा ने महाबलेश्वर में कहा था, "मेरा पुराना जीवन मुझको ईश्वरत्व और ईश्वरीय पूर्णता के स्तर पर रखता है। **अपनी नई ज़िन्दगी** में मैं परमात्मा और उसके बन्दों के विनम्र सेवक की स्थिति ग्रहण करता हूँ। अपनी **नई ज़िन्दगी** में मैं **साधक** हूँ, **प्रेमी** हूँ और **मित्र** हूँ। ये दोनें पहलू — **पूर्ण ईश्वरत्व** और

(२९)

contacting of the masts reached a climax in the period of 1946–1948, and was followed by two years of what Baba has called his "New Life" phase starting on October 16, 1949. This is doubtless the most imponderable of all the imponderables with which the student has to deal. Preceding the New Life Baba broke up all the ashrams maintained for the masts and for the more or less permanent close disciples, as well as for the constant flow of people whose stays range all the way from a brief interview to a period of weeks, months or years.

Provision was made for the care of those who were dependent, and then Baba asked for volunteers to follow him on a series of journeys, often on foot and involving the most severe hardships. Rigid rules of discipline and renunciation were set up before the disciples were asked for volunteers to follow Baba into this new phase of his New Life, which was one of exile, helplessness and renunciation. Twenty were finally selected and set out with Baba.

The travels and spiritual disciplines of those two years were among the most difficult which Baba's disciples have ever undergone. Those who participated in the journeys were tired, thin and drawn as they emerged in late 1951. The detailing of the events and their significance must await a more extensive work, but the on-looker cannot help but conclude that in this obscure phase there was established a major blueprint for the future individual and social development of the race. On October 16, 1950 Baba had stated at Mahabaleshwar, "My old life places me on the altar of Godhood and divine perfection. My New Life makes me take the stand of an humble servant of God and His people. In my New Life I am the seeker, the lover and the friend. Both these aspects—perfect divinity and

पूर्ण विनम्रता — परमात्मा की मर्ज़ी रहे हैं और ये दोनों परमात्मा के शाश्वत जीवन से सतत् जुड़े हैं ।"

१३ फ़र्वरी १९५१ को बाबा महाबलेश्वर में लगभग १०० दिन के लिये एकान्तवास में चले गये थे । उसके अन्त में उन्होंने कहा था कि १६ अक्तूबर को उन्हें अपने कार्य के एक अन्य पहलू में प्रवेश करना आवश्यक होगा । उनके कार्य का यह बाद का पहलू "**मनोनाश**" की अवधि के नाम से प्रसिद्ध हुआ । यह कार्य ४ महीने तक चला, और इसका अन्त १६ फ़र्वरी १९५२ को हुआ ।

इसके पश्चात् बाबा ने घोषित किया कि बाबा और उनके कुछ शिष्य शीघ्र ही संयुक्त राज्य अमरीका जायँगे और बाबा २१ मार्च से १० जौलाई १९५२ तक एक "जटिल-स्वतन्त्र" जीवन व्यतीत करेंगे जिसमें शक्ति के ऊपर निर्बलता की प्रबलता होगी, १० जौलाई से १५ नवम्बर तक एक "पूर्ण-स्वतन्त्र" जीवन व्यतीत करेंगे जिसमें निर्बलता के ऊपर शक्ति की प्रबलता होगी, और १५ नवम्बर से आगे "ज्वालामय-स्वतन्त्र" जीवन व्यतीत करेंगे जिसमें शक्ति और निर्बलता दोनों ईश्वरत्व की ज्वाला में भस्म हो जायँगों ।

२० अप्रैल १९५२ को बाबा पूर्व और पश्चिम दोनों के ६ शिष्यों और ६ शिष्याओं के साथ न्यूयार्क पहुँचे । वे सीधे मिरटिल बीच, दक्षिण कैरोलिना, गये जहाँ एक जायदाद बाबा को अर्पित की गई थी, और कई हफ्तों के बाद, बाबा ने कई पुराने और नये अनुयायियों का स्वागत किया, ख़ासकर १७ मई १९५२ को जबकि बाबा से मिलने के लिये अमरीका के सब राज्यों से एक विशाल जनसमूह एकत्रित हुआ था ।

तक बाबा का दल कैलिफ़ोर्निया के लिये, दूसरी संयोजित मुलाक़ातें प्रदान करने के निमित्त, मोटरकार द्वारा रवाना हुआ । जब वे लोग ओकलाहोमा से गुज़र रहे थे बाबा की कार एक मोटरकार से भिड़ गई और उस हृदयविदारक मोटरकार दुर्घटना में बाबा की मोटरकार में बैठे ५ जनों में से ४ जन गम्भीररूप से घायल हो गये । ऐसी मोतर दुर्घटनायें हमारे देश के राजमार्गों में आमतौर पर होती रहती हैं ।

दुर्घटना के निकट ओकलाहोमा के छोटे क़स्बा प्रेम में सौभाग्य से एक छोटा प्राईवट अस्पताल था जिसमें डाक्टर बर्लेसन कार्य करते थे । इस डाक्टर और उसके थोड़े से कर्मचारियों के प्रयत्नों ने खून से लथपथ लोगों औरर ख़ून से भरे कपड़ों का सामना किया, जिनमें एक

perfect humility—have been God's will and both are everlastingly linked with God's eternal life."

On February 13, 1951 Baba had gone into seclusion at Mahabaleshwar for about 100 days, at the end of which he stated that on October 16 it would be necessary for him to enter another phase of his work. This latter came to be known as the "manonash" (annihilation of the mind) period. This work lasted four months, ending February 16, 1952.

Baba then announced that he and a few disciples would leave shortly for the United States and that he would lead from March 21 to July 10, 1952, a "complicated-free" life in which weakness would predominate over strength, from July 10 to November 15 a "full-free" life in which strength would predominate over weakness, and from November 15 on a "fiery-free" life in which both strength and weakness would be consumed in the fire of divinity.

On April 20, 1952 Baba arrived in New York with six men and six women disciples of both eastern and western origins. They went directly to Myrtle Beach, South Carolina, where a property had been dedicated to Baba, and after a period of several weeks, Baba received many old and new followers, particularly on May 17 when a vast crowd congregated from all over the United States to see him.

The group then set out by car for California and another projected series of interviews. While crossing Oklahoma the car carrying Baba was struck and four of the five occupants seriously injured in one of the heartbreaking incidents so common to our highways.

In the nearby little town of Prague, Oklahoma, there existed by great good fortune a small private hospital operated by Dr. Burleson. The efforts of this man and his tiny staff, confronted with a mass of bloody flesh and

मौन गुरु (Master) और उसके घायल साथौ फँसे थे । और, चिकित्सा जगत दुःख दूर करने तथा ज़िन्दगी की अवधि बढ़ाने के लिये निरन्तर जो संघर्ष कर रहा है उसके उस नित्य नाटक में उस घटना का वर्णन निश्चित रूप से एक अनुपम वर्णन है । जब पीड़ा की दशा धीरे-धीरे जाँचकर निश्चित की गई तो उससे यह स्पष्ट हुआ कि उनमें से कोई भी जन तात्कालिक ख़तरे में न था, किन्तु टूटी हुई हड्डियों की संख्या और चमड़ी रहित तथा खुरचे हुये माँस के विस्तार भयानक थे । कई दिनों तक घायलों की हड्डियाँ बैठाने, उनके घावों की सफ़ाई करने, मरहमपट्टी करने और उनमें नया जीवन भरने का नीरस तथा मन्द कार्य चलता रहा । बाबा की टूटी हुई बायीं टाँग और हाथ और उनके चेहरे पर आयी गम्भीर चोटें अत्यन्त गम्भीर चोटें न थीं, वरन् वे अत्यन्त पीड़ा देने वाली थीं । दो सप्ताह के बाद बाबा का या दल चिकित्सा गाड़ी द्वारा दक्षिण कैरोलिना लौट गया और वहाँ उसने चंगा होने के लिये कुछ समय व्यतीत किया ।

एक महान आध्यात्मिक नेता ने अपने ऊपर और अपने अनुयायियों के ऊपर ऐसी दुर्घटना कैसे होने दी ? निश्चय ही वह उसको पहले से देख सकता था और उससे बच सकता था । मुझे अचरज होता है कि ये प्रश्न कितनी अधिक बार पुँछे गये हैं । वास्तव में बाबा ने अपने प्रति ऐसी दुर्घटना की और उसकी आवश्यकता की भविष्यवाणी पहले ही १९२८ ई॰ में कर दी थी । उन्होंने एक अवसर पर यहाँ तक कहा था कि उनको अमरीका में अपना खून "बहाना" आवश्यक होगा । किन्तु मेरा ऐसा घोषित करना कि "वह उसको सतत् जानते थे" केन्द्रीय विषय से बहुत आगे बढ़ जाता है । युग-युगान्तर के महान आध्यात्मिक नेताओं ने अपने को एक असावधान एवं ध्यान न देने वाली सभ्यता की आपत्तियों से कभी नहीं बचाया । वास्तव में उन्होंने भीषण मानवी आपत्ति में अपने हिस्से को ख़ुशौ से स्वीकार किया है और को प्राप्त ऐहिक शक्ति का निरंकुश पयोग किये बग़ैर उसको जीवन के आचरण में बरता है । ऊँचे आध्यातिमक पुरुषों का परम कार्य वह नहीं है जोकुछ वे हमारे भौतिक जगत के नियम के बाहर हैं, वरन् वह है जोकुछ वे हमारे भौतिक जगत के नियम के बाहर करते हैं, वरन् वह है जोकुछ वे उसके अन्तर्गत करते हैं ।

(३१)

stained clothing in which were entangled a silent master and his injured companions, is certainly an epic in the constant drama of the medical world in its ceaseless battle to alleviate misery and prolong life. As the tangle of misery was gradually sorted out it became clear that no one was in immediate danger, but the number of broken bones and the areas of skinless and abraded flesh were formidable. For days the dull and dreary routine of setting, cleaning, bandaging and pumping in of new life went on. Baba's broken left leg and arm and severe contusions of the face were not the most severe of the injuries, but among the most painful. After two weeks the party returned by ambulance to South Carolina and a period of recuperation.

How could a great spiritual leader allow such an accident to happen to himself and his followers? Surely he could foresee and prevent it? I wonder how many times these questions have been asked. Actually Baba had predicted as long ago as 1928 such an accident to himself and the necessity for it. He had even mentioned on occasion that it would be necessary to "spill" his blood in America. But such a declaration on my part of "he knew it all the time" falls wide of the central issue. The great spiritual leaders of the ages have never avoided the mishaps of a reckless and unheeding civilization. In fact they have embraced their portion of human catastrophe and have lived it through without recourse to the arbitrary usage of the cosmic power at their finger tips. The supreme function of the spiritually great is not what they do outside the law of our physical world, but what they do within it.

१९३७‡ ई॰ में बाबा ने **सद्गुरुओं** का यह कार्य समझाया था । "एक सद्गुरु को, जिसे दुनियाँ के बोझों को अपने अन्तर में पी जाने के लिये, अपने ऊपर लेना पड़ता है, अनिवार्यरूप से भौतिक प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ता है, और उसके फलस्वरूप साधारण मनुष्यों की तरह शारीरिक कष्ट भोगना पड़ता है ।

"सद्गुरु क्रिया और प्रतिक्रिया के नियम के प्रति अपने को अधीन करके उस नियम को स्थापित करते हैं, और वे निःस्वार्थरूप से तथा स्वेच्छापूर्वक उस नियम के अधीन होते हैं । किन्तु अपनेआप को इस नियम के अधीन करने के बावजूद, वे नियम के परे होते हैं, और अपनेआपको भौतिक प्रतिक्रियाओं से बचा सकते हैं । तब 'क्रिया और प्रतिक्रिया' का क्या अर्थ एवं उद्देश्य होगा ?

"**सद्गुरु** मानव जाति को 'क्रिया और प्रतिक्रिया' के बन्धनों से मुक्त करने के द्वारा, मानवता को माया से बाहर ले जाकर 'विश्वव्यापी माया' के द्वैध प्रभाव को अपने अन्तर में निगल जाते हैं ।

"सद्गुरु दुई को, शुद्ध करने के लिये, उसको अपने यथार्थ सत् के अन्दर खींच लेता है ।"

न्यूयार्क में लोगों को मुलाक़ातें देने में कुछ दिन और व्यतीत करने के बाद बाब योरुप में अपने पुराने और नये अनुयायियों से मिलने के लिये वायुयान द्वारा योरुप को चल दिये, और अगस्त १९५२ के दूसरे पखवारे में भारत लौट आये । भारत आने के बाद वह तत्काल ही कुछ और **मस्तों** से सम्पर्क ळरने के लिये यात्राओं पर निकल पड़े, किन्तु अब उन्होंने अपना क्रियकलाप अधिकतर लोगों के विशाल समूहों को, जो बाबा के सार्वजनिक दर्शन देने के लिये घोषित किये गये स्थानों में जमा होते थे, आध्यात्मिक आशीर्वाद प्रदान करने पर अधिक केन्द्रित किया था । इन सार्वजनिक **दर्शनों** की पराकाष्ठा सितम्बर १९५४ ई॰ में हुई

(३२)

‡ [उस समय बाबा ने उस क्षण तक भी अपने अवतार होने के सम्बन्ध में कोई सार्वजनिक बयान नहीं दिया था और आमतौर पर लोग उनको 'सद्गुरु' मानते थे । तथापि, पूरक ३० में बाबा ने अवतार और सद्गुरु (Perfect Master) की भूमिकाओं के बीच का भेद समझाया है । –सम्पादक]

In 1937* Baba had explained this function of the Perfect Masters. "A Perfect Master, who has to take upon himself the burdens of the world, to absorb them, must necessarily have physical reactions, and consequently must suffer physically, like ordinary human beings.

"By submitting themselves to the law of action and reaction, the Perfect Masters establish that law, and are selflessly and willingly subject to it. But in spite of subjecting themselves to this law, they stand above the law, and could rid themselves from physical reactions. What then would be the meaning and purpose of 'action and reaction'?

"Perfect Masters absorb the dual effect of the 'universal illusion' by taking humanity out of the illusion, through liberating mankind from the bonds of action and reaction.

"The Perfect Master absorbs duality in his true existence, in order to sublimate it."

After additional days of interviews with people in New York Baba set out by air for a visit with followers old and new in Europe, returning to India in late August, 1952. Almost at once he set out on further journeys in that country to contact a few more masts, but now his activities focalized more on giving spiritual blessing to the great masses who thronged to the locations announced for his public appearances. These mass darshans culminated in September, 1954 when he called on his male followers

* [At that time Baba had as yet made no public statement regarding his Avatarhood and he was generally regarded as a Perfect Master (Sadguru). However, in Supplement 30 Baba explains the difference between the roles of Avatar and Perfect Master. Ed.]

जब बाबा ने सारी दुनियाँ से अपने पुरुष अनुयायियों को "अन्तिम" आध्यात्मिक मीटिंग के लिये अहमदनगर में अपने आश्रम में जमा होने के लिये निमन्त्रित किया था। भारत के कोने-कोने से और एशिया, योरुप तथा अमरीका के सुदूर स्थानों से लगभग एक हज़ार लोग एकत्रित हुये। जो लोग पहले आ गये थे उनको १२ सितम्बर १९५४ को ६० हज़ार लोगों का जमाव देखने को मिला, जो **प्रसाद** के रूप में बाबा का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये अहमदनगर के इर्द-गिर्द के स्थानों से आये थे।

रोज़ तीसरे पहर इस रंगीन और हृदय को द्रवित करने वाले सूअवसर के पश्चात् बाबा यात्रियों को खुद शिक्षा देते थे। २९ सितम्बर को बाबा ने उन एक हज़ार लोगों को सम्बोधित किया जो उनके निमन्त्रण पर आये थे, उनको आशीर्वाद दिया और उन्हों उनके घर भेज दिया। ७ अक्तूबर को बाबा ने वर्णमाला पट्टी का प्रयोग करना भी छोड़ दिया, और अब वह अपनी बात प्रगट करने के लिये केवल संकेतों पर निर्भर हो गये। (यह बड़ी मनोरंजक बात है कि बाबा अपने भाव प्रगट करने के लिये जिन संकेतों का उपयोग करते हैं वे वर्णमाला के A B C D अक्षर नहीं हैं — अँगयलियों द्वारा बनाई गई कोई आकृति नहीं है जिसका उपयोग एक मौन पुरुष कर सकता है, और न वे कोई सकेत भाषा हैं जिसका उपयोग बहरे और गूँगे करते हैं, वरन् वे स्वतन्त्र और सरल और कुछ-कुछ बढ़ाकर किये गये संकेत हैं जो अद्वितीय रूप से खुद बाबा के हैं और जो अत्यन्त स्पष्टरूप से वर्णन करते हैं जोकुछ बाबा प्रगट करना चाहते हैं।

एकबार फिर बाबा ने घोशित किया कि उनके मौन का खुलना, उनका प्रगटीकरण और उनकी मृत्यु सब निकट थे। बाबा ने कहा था कि जब वह अपना मौन खोलेंगे तक वह केवल एक शब्द बोलेंगे, जो शब्दों का **शब्द** होगा, और जो लोगों के हृदयों में प्रवेश कर जायगा।

इस प्रकार, मुरशिदा ड्यूस के साथ कार्य करते हुये, मैंने **अवतार मेहेरबाबा** के घटनापूर्ण जीवन को एकबार फिर आज तक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। बाबा के जीवन और कार्यों के महत्व

throughout the world to congregate at his ashram in Ahmednagar for a "last" spiritual conclave. About a thousand collected from the various corners of India and the far reaches of Asia, Europe and America. Those who arrived early witnessed on September 12 the congregation of sixty thousand souls from the countryside surrounding Ahmednagar to receive Baba's blessing in the form of prasad.

Following this colorful and moving occasion each afternoon Baba personally instructed the travellers. On September 29 Baba addressed the thousand who had collected at his call, blessed them and sent them on their way. On October 7 he abandoned the use of even his alphabet board, depending now only on gestures for communication. (It is interesting to note that the gestures Baba uses for communication are not the alphabetical A B C D—the formation of fingers a silent person is apt to make use of, nor a sign language as used by the deaf and dumb, but free and easy and somewhat exaggerated gestures uniquely his own that describe most vividly what he wishes to convey.)

Once again Baba announced that the breaking of his silence, his manifestation and his death were all near. Baba has said that when he breaks his silence he will speak only one word, the Word of words, which will penetrate the hearts of men.

Thus, in collaboration with Murshida Duce, I have tried to bring up to date once again the eventful life of Avatar Meher Baba. It is left to history to sort out and weigh in the perspective of accumulating events the

को संचित होने वाले घटनाओं की दृश्यभूमिका में छाँटना और तौलना इतिहास के लिये छोड़ दिया गया है । हम, जो तात्कालिक वर्तनान में साझीदार होते हैं, केवल अपने प्रेम और मानवी भक्ति का अन्श अर्पित कर सकते हैं और अपनी कृतज्ञता उस महान चीज़ के लिये घोशित कर सकते हैं जो हमारे जीवनों में आ गई है ।

डान ॐ स्टीवेन्स

(३४)

significance of his life and actions. We who participate in the immediacy of the now can only offer the measure of our love and human allegiance and declare our gratitude for the great thing that has come into our lives.

Don E. Stevens

द्वितीय संस्करण की भूमिका

उन १८ वर्षों में जो **गाड स्पीक्स** के प्रथम संस्करण प्रकाशित होने के समय से गुजरे हैं, मेहेर बाबा की उपस्थिति की बाढ़ दुन्याँ में चारों ओर फैल गई है और उनका नाम करोड़ों लोगों के लिये आशा एवं श्रद्धा का प्रतीक बन गया है । चार साल पहले जनवरी के अन्त में उन्होंने खुद अपना शरीर त्याग दिया, जो अब उस क़ब्र में बन्द है जो वर्षों पहले खुद उनके सावधान निर्देशों के अनुसार मेहेराबाद, अहमदनगर, के निकट, भारत में बनाई गई थी ।

इस अवधि में दुनियाँ की समस्याओं के प्रति मेहेरबाबा के समाधान की व्यापकता के टकराव को, और उनके प्रेम के प्रति सब धर्मों और सम्प्रदायों के लोगों के प्रत्युत्तर की एकरूपता के टकराव को, देखना सम्भव हुआ है । सबसे प्रारम्भिक समय से, मेहेरबाबा ने संकेत दिया था कि वह किसी ख़ास धार्मिक सम्प्रदाय के नहीं हैं; अपितु उनका उद्देश्य था सत्य के शब्दों में जविन की श्वाँस लेना जो समस्त महान विश्व-धर्मों ने प्रदान किये हैं । बाबा ने बारम्बार, स्पष्ट, संक्षिप्त कथनों में अपने कार्य की स्वतन्त्रता और मार्ग की व्यापकता को ज़ोरदार शब्दों में प्रस्तुत किया है :

"राजनीति से मेरा कोई लगाव नहीं है । सब धर्म मेरे लिये बराबर हैं । और सब जातियाँ और मत मुझको प्रिय हैं । किन्तु, यद्यपि मैं सभी 'वादों' (*isms*), धर्मों और राजनीतिक दलों की क़द्र करता हूँ, उन अनेक अच्छी बातों के लिये जो वे प्राप्त करना चाहते हैं, फिर भी मैं अखण्ड सत्य प्राप्त करने के लिये इन वादों, धार्मिक अथवा राजनीतिक दलों का न हूँ और न हो सकता हूँ, जबकि सत्य उनको समानरूप से अपने में प्रविष्ट किये हुये, उन सबको लाँघ जाता है और प्रथक्कारी खण्डों के लिये कोई गुंजाइश नहीं रखता जो सब समानरूप से मिथ्या हैं । समग्र जीवन की 'एकता' अखण्ड्य और अविभाज्य है । वह समस्त कल्पनीय मतभेदों के बावजूद अबाध्य और अभेद्य बनी रहती है ।

(३५)

Introduction to Second Edition

In the eighteen years that have passed since publication of the first edition of God Speaks, the flood tide of Meher Baba's presence has spread around the world and his name has become a symbol of hope and faith to millions. At the end of January four years ago he himself dropped the body, which now lies interred in the tomb prepared many years ago under his own careful instructions at Meherabad, near Ahmednagar, India.

In this period it has been possible to witness the impact of the universality of Meher Baba's approach to the problems of the world, and the uniformity of response of the peoples of all faiths and sects to his love. From the earliest days, Meher Baba had pointed out that he belonged to no particular religious group; rather that it was his objective to breathe vitality into the words of truth handed down in all the great world faiths. In repeated, clear, concise statements he has underlined his independence of action and universality of approach:

"I have no connection with politics. All religions are equal to me. And all castes and creeds are dear to me. But though I appreciate all 'isms,' religions and political parties for the many good things that they seek to achieve, I do not and cannot belong to any of these 'isms,' religions or political parties, for the absolute Truth, while equally including them, transcends all of them and leaves no room for separative divisions which are all equally false. The unity of all life is integral and indivisible. It remains unassailable and inviolable in spite of all conceivable ideological differences.

"मैं बड़े और छोटे, सबकी पहुँच के अन्दर समानरूप से हूँ, मैं
सन्तों की पहुँच के अन्दर हूँ जो ऊँचे उठते हैं और पापियों की
पहुँच के अन्दर हूँ जो पतित होते हैं,
और, मैं सभी विविध मार्गों के द्वारा, जो **ईश्वरीय पुकार** देते हैं,
पहुँच के अन्दर हूँ।
मैं समानरूप से सन्तों को प्राप्य हूँ जिनकी मैं पूजा करता हूँ,
और पापियों को प्राप्य हूँ जिनके लिये मैं आया हूँ,
और मैं समानरूप से सूफ़ीवाद, वेदान्तवाद और ईसाई मत के
द्वारा प्राप्य हूँ,
अथवा ज़ोरास्टरमत तथा बुद्ध धर्म के द्वारा प्राप्य हूँ,
तथा किसी भी प्रकार के अन्य वादों के द्वारा प्राप्य हूँ और वादों
के माध्यम के बग़ैर सीधे-सीध भी प्राप्य हूँ ·····"‡

मेहेरबाबा की अवतारी (क्राईस्ट, मसीहा स्थिति) के कण्टकाकीर्ण विषय ने भी इन मध्यवर्ती वर्षों में बहुत कुछ स्पाष्ट किया है। जब **गाड स्पीक्स** का प्रथम संस्करण १९५५ ई॰ में जनता के सामने रखा गया, तो बाबा के **अवतारिक** कार्य के तथ्य का वर्णन केवल कुछ वर्षों केलिये उनके निकटतम शिष्यों के अलावा अन्य लोगों को किया गया था। उस समय के पहले अधिकांश लोगों ने उन्हें एक महान सन्त अथवा सद्गुरु माना था, और उन्होंने उनके उद्देश्य के महत्व का और आगे अनुमान लगाये बिना ऐसा किया था।

तथापि, १९५४ ई॰ में बाबा ने प्रथम बार और स्पष्टरूप से जनसमूह के बीच घोषित किया था कि वह इस युग के अवतार हैं। उनको पहले ही सद्गुरु मान लेने के पश्चात्, भक्तों के सामने विश्वव्यापी उत्तरदायित्व के इस प्रसार के लिये कोई समस्या पैदा करने वाली चीज़ न थी।

बाहरी लोगों के लिये, जो मेहेरबाबा के चरित्र बल से ठगित हुये थे, किन्तु जिन्हें व्यक्तिगत आत्म-समर्पण के द्वारा उनकी सत्ता में निमग्न हो जाने का सुअवसर प्राप्त न हुआ था, उनके बाहरी क्रिया-कलाप का और **अवतारिक** भूमिका के परिणामों का निर्णय करने की कोशिश करने

‡ १९५२ ई॰ में "ज्वालामय स्वतन्त्र जीवन" के दौरान में दिये गये सन्देशों से उद्धृत।

"I am equally approachable to one and all, big and small,
To saints who rise and sinners who fall,
Through all the various Paths that give the Divine Call.
I am approachable alike to saint whom I adore
And to sinner whom I am for,

And equally through Sufism, Vedantism, Christianity,
Or Zoroastrianism and Buddhism, and other 'isms' of any kind
And also directly through no medium of 'isms' at all . . ."*

The thorny subject of Meher Baba's Avatarhood (Christ, Messiah status) has also clarified greatly in these intervening years. When the first edition of *God Speaks* was placed before the public in 1955, the fact of Baba's Avataric function had been described to those other than his closest disciples for only a few years. Before that time most people had regarded him as a great saint or a Perfect Master, without guessing the further significance of his mission.

In 1954, however, Baba stated clearly and for the first time publicly that he was the Avatar of the Age. Already having recognized him as a Perfect Master, the devotee had no problem making allowance for this extension of universal responsibility.

To the outsider, intrigued by the calibre of Meher Baba but lacking the opportunity to become absorbed into his being through personal surrender, it was still early to try to judge the external activities and results

* From messages given out during the "Fiery Free Life," 1952.

का कार्य अब भी प्रारम्भिक था । यह अचरज की बात है, कि बहुत थोड़े लोगों ने मेहेरबाबा के इस कथन से कि 'वह युगावतार हैं' कड़ा पब्लिक मतभेद प्रगट किया । अनेक लोग, स्वयं **गाड स्पीक्स** का अध्ययन करने के द्वारा, दृढ़ विश्वास करते थे कि ऐसी कृति केवल उस पुरुष से निकलेगी जिसने सर्वोच्च आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर ली थी, और इसलिये यह ज्यादा अच्छा होगा कि हम कोई फैसला करने के पहले प्रतीक्षा करें और देखें ।

यह बड़ी विलक्षण बात है, कि उन लोगों के लिये जिनका सामना बाबा के स्थूल शरीर से न हुआ था, वे परम्परागत रूप से अध्यात्म की ओर प्रवृत्त न थे जो पहले-पहल उनको **पुरातन पुरुष** के रूप में स्वीकार करने लगे थे । वे तो नवयुवक, बागी, परीक्षक, लोग थे, जो भ्रान्ति एवं नैराश्य के जविन में अर्थ की खोज कर रहे थे, और वे अचानक इस मौन सद्गुरु (*Master*) की प्रतिमा एवं शब्दों को पहचानने लगे । उनके सहज ज्ञान ने, जो आवश्यकता से तीव्र हो गया था और मार्ग पाने के लिये बारम्बार हुई असफलताओं से विस्तृत हुआ था, अकस्मात् बाबा की एक फोटो में, उनके उपदेशों की किताब में, एक छोटे कार्ड में छपे जीवन के विषय में, एक सारपूर्ण कथन में उत्तर पाया ।

जैसा बाबा ने बीसों वर्ष पहले बहुधा कहा था, कि **अवतार** का अवतरण और उसके शब्द की मान्यता **सृष्टि** की आवश्यकताओं के कारण होते हैं । जब आवश्यकता बहुत होती है तब **अवतार** आता है, और उसका शब्द माना जाता है, क्योंकि केवल यही चीज़ है जो सन्तुष्ट कर सकती है । उचित और आश्रय लेने योग्य लक्ष्यों की मनुष्य की खोज पीढ़ियों से बढ़ती रही है । हमारे समय में वह इतनी शक्तिशाली हो गई है कि वह सामाजिक विप्लव की एक लहर से दूसरी लहर के रूप में प्रगट हुई है ।

इस सामाजिक खलबली में मेहेरबाबा का अवतरण सृष्टि के प्रयोजन तथा सर्व-समावेशक प्रेम के एक स्पष्ट कथन के साथ हुआ है, जो इतना शक्तिशाली है कि आवश्यकता के अपरिपक्व खरोंचे अकस्मात् इत्ने शान्त हो जाते हैं कि वे मौन और राहत के आँसुओं की ओर अग्रसर करते हैं । बाबा बारम्बर सृष्टि का वर्णन ऐसे साधन के रूप में करते हैं जिसके द्वारा खुद अपने ईश्वरत्व को चैतन्यरूप से जानने की परमात्मा की लहर फलीभूत होती है । **गाड स्पीक्स** में सावधानी के साथ दिये गये

(३७)

of the Avataric role. Surprisingly, very few people took strong public difference with the statement that Baba was the Avatar of the Age. Many, through reading *God Speaks* itself, were convinced that such a work could come only from one who had attained to the highest spiritual status and therefore it would be better to wait and observe before making any judgment.

Oddly enough, of those who had not encountered Baba in the flesh, it was not the traditionally spiritually inclined who first began to accept him as the Ancient One. It was the young, the rebels, the experimentalists, questing for the clues to meaning in a life of confusion and frustration, who suddenly began to recognize the image and the words of this silent Master. Their instincts, sharpened by need and stretched by repeated failures of approach, suddenly found the answer in a photo of Baba, a book of his discourses, a pithy statement about life printed on a small card.

As Baba had so often stated in the decades preceding, the advent of the Avatar and the acceptance of his word is precipitated by the needs of Creation. When the need is great, the Avatar comes. And his word is accepted because it is the only thing which can satisfy. Mankind's search for worthy and dependable goals has been growing for generations. In our day it has become so insistent that it has lashed out in wave after wave of social turbulence.

Into this social ferment steps Meher Baba with a clear statement of the purpose of Creation and an all-embracing love so powerful that the raw abrasions of need are soothed so abruptly as to lead to silence and tears of relief. Repeatedly Baba describes Creation as the vehicle by which God's impulse to know His own divinity consciously is brought to fruition. In careful statements in *God Speaks* he describes the manner in which the mechanism for the generation of consciousness is developed.

कथनों में वह उस ढँग का वर्णन करते हैं जिसमें चेतना की पीढ़ी की कार्य प्रणाली का विकास होता है । अनन्त एकता की यथार्थता तथा चेतना, जिनका विकास सृष्टि की दुई के अन्दर स्थित अनन्त चुनौतियों का सामना करने के द्वारा हुआ था, अत्यन्त सूक्ष्म विवरण के साथ अङ्कित की गई हैं । वह भौतिक रूप, जो सृष्टि के द्वन्द्वों का अनुभव करने के लिये माध्यम के रुप में कार्य करता है, परमात्मा की खुद को चैतन्यरूप से जानने की इच्छा के निरन्तर बढ़ते हुये जटिव उप-उत्पादन के रूप में दिखाया गया है । रूप के विकास की स्वयं यही शक्ति, कोई यग्यितम का चुनाव नहीं बनती, किन्तु वह निरन्तर बढ़ते हुये अधिक जटिल साधनों के द्वारा अपनेआप को प्रगट करने के लिये शेष अनुभवों की आवश्यकता का परिणाम होती है । विकास और चेतना के पूर्ण होने को खुद सृष्टि के अखिल उद्देश्य के रूप में वर्णन किया गया है :

"और, विकासमयी प्रक्रिया के विषय में, यह सदैव स्मरण रखना अच्छा है कि आदि चेतना के अन्तर्गत एक आदि है, विकास चेतना के अन्तगरत एक विकास है, अन्त, यदि कोई अन्त होता है, तो वह चेतना में एक अन्त है····"*

मेहेरबाबा ने बीसियों वर्षों तक ये, और साथ-साथ जो अनन्त सन्तुलित, व्यावहारिक अन्तर्दृष्टियाँ दैनिक जीवन में प्रदान की है, ऐसी सिद्ध हुई हैं जिनकी माँग नवयुवक वर्ग ने उच्च स्वर में की है । उन्होंने बाबा के स्वरूप को अनुभव द्वारा पहचाना है : अर्थात्, आधुनिक जीवन के भ्रमजाल के उत्तर के रूप में । यह बिल्कुल ठीक वही है जो मेहेरबाबा ने कहा था कि **अवतार** अवश्य होना चाहिये । इस प्रकार हाथ और दस्ताना का बिल्कुल सामंजस्य हो जाता है । समानता पर दृष्टि डालने से किसी को शङ्का नहीं हो सकती कि बाबा ठीक वही हैं जो उन्होंने अपने को कहा है, अर्थात् **युग अवतार** हैं ।

किन्तु इस अवधि में मेहेरबाबा के अधिकतर व्यक्तिगत जीवन के विषय में क्या कहा जाय ? फिर भी प्रेम के निकट, ओकलाहोमा में, १९५२ ई॰ में हुई गम्भीर मोटर दुर्घटना के बावजूद, जिसकी भविष्य-वाणी उन्होंने बहुत पहले कर दी थी, और बाद में दिसम्बर १९५६ ई॰ में भारत के सतारा नगर के निकट हुई उससे भी अधिक गम्भीर दुर्घटना,

(३८)

* दि अवेकनर, भाग ८, नम्बर ४, १९६२ ।

The reality of infinite unity and the consciousness evolved through resolving the infinite challenges posed within the duality of Creation is traced in the most minute detail. The physical form that acts as the medium for experiencing the opposites of Creation is shown to be an increasingly complex by-product of this will of God to know Himself consciously. The very force of evolution of form becomes, not a random selection of the fittest, but a result of the necessity of the residues of experience to express themselves through increasingly more complex instruments. The evolution and perfecting of consciousness is itself described as the entire purpose of Creation:

And, in regard to the evolutionary process, it is well to remember always that the beginning is a beginning in consciousness, the evolution is an evolution in consciousness, the end, if there be an end, is an end in consciousness . . .*

These, as well as the host of balanced, practical insights into daily life given out by Meher Baba over the decades, have been what the young have cried out for. They recognize Baba empirically for what he is: the answer to the dilemma of modern life. This is exactly what Baba had stated that the Avatar must be. Thus the hand and the glove fit exactly. In looking at the match, one can have no doubt that Baba is precisely what he has said he is, the Avatar of the Age.

But what about Meher Baba's more personal life during this period? Despite his long-predicted serious automobile accident near Prague, Oklahoma, in 1952, and a later, even graver one near Satara in India in December, 1956, in which his hip joint was smashed and Dr. Nilu killed

* The Awakener, vol. VIII, no. 4, 1962.

जिसमें बाबा के कूल्हे की हड्डी चूर-चूर हो गई थी और डाक्टर नीलू की मृत्यु वहीं हो गई थी, इन १५ वर्षों में बाबा ने बहुत प्रगाढ़ भीतरी और बाहरी कार्य किया था । इन दो दुर्घटनाओं के प्रसङ्ग में, पाठक को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यह क्रमिक सन्तुलनों की एक दुनियाँ है जिसमें हम रहते हैं, और जिसमें जादूगर की छड़ी का कोई जादू नहीं होता । **अवतार** खुद यातना भोगने की प्रक्रिया के द्वारा, जो वह स्वेच्छा से अपने ऊपर लेता है, सन्तुलन को यथार्थ करता है । इन दो अवसरों पर उन्होंने दो महाद्वीपों में अपना खुद उसके निमित्त बहाया है जिसे करना वह आवश्यक समझते थे ।

१९५६ ई॰ में उन्होंने योरूप और अमरीका तथा भुमण्डल की यात्रा की, जिसमें वह पहली बार आस्ट्रेलिया गये । पश्चिमी देशों की इस १२वीं यात्रा का तारीख़वार पर्याप्त वर्णन '**दी अवेकनर**' (भाग ४, संख्या १ और भाग ५, संख्या २) में तथा अन्य ग्रन्थों में दिया गया है ।

उनकी तेरहवीं यात्रा पश्चिमी देशों में १९५८ ई॰ में हुई । इस बार उस यात्रा में केवल आस्ट्रेलिया और अमरीका सम्मिलित थे । इस यात्रा में उन्होंने प्रेमी और प्रियतम के बीच प्रेम की पारस्परिक क्रीड़ा का घना वातावरण पैदा किया (दि अवेकनर, भाग ५, संख्या ३ और ४) । इस अवसर पर यह स्पष्ट था कि बाबा केवल उन लोगों के निमित्त थे जो खुद अपने हृदयों के सङ्गीत को जान्तें थे । जनता इस छली प्राणी की उपस्थिति की याचना करने से हतोत्साहित न की गई थी, लेकिन बाबा के आगमन का कोई प्रचार न किया गया था । वह **प्रियतम** की उपस्थिति में वास्तविक निवास था । सिहावलोकन करने से, लोग समझते हैं कि बाबा जानते थे कि अनेक लोगों के लिये यह उनका अन्तिम व्यक्तिगत सम्पर्क होगा । वास्तव में उन्होंने उसके विषय में काफी बताया था, लेकिन हम लोगों ने उनके कथन को नहीं सुना ।

१९६२ ई॰ में मेहेरबाबा ने अपने घनिष्ठ जनों को निकट खींचने के जादू का प्रयोग पुनः किया, लेकिन इस बार उन्होंने यह प्रयोग एक महत्वपूर्ण नये नमूने में किया । भूतकाल में उनके पूर्व और पश्चिम के अनुयायियों का केवल अत्यन्त सीमित मिलन हुआ था । तथापि, १९६२ ई॰ में यह मिलन विचारपूर्वक तथा भारी पैमाने पर किया गया था ।

(३९)

outright, nevertheless the fifteen years encompassed much intensive inner and outer work. With reference to these two accidents, one must keep in mind that it is a world of systematic balances in which we live, with none of the magic of the fairy wand. The Avatar himself trues the balance by the very process of the suffering which he willingly undergoes. On these two occasions he has spilled his blood on two continents for the sake of what he has known must be done.

In 1956 he made a trip to Europe and America and on around the world, visiting Australia for the first time. This twelfth visit to the West is amply chronicled in *The Awakener* (vol. IV, no. 1 and vol. V, no. 2) and other works.

His thirteenth trip to the West in 1958, including this time only Australia and America, produced an intense atmosphere of the reciprocal play of love between lovers and beloved (*The Awakener*, vol. V, nos. 3 and 4). On this occasion it was clear that Baba was to be for those who knew the song of their own hearts. The public was not discouraged from seeking the presence of this intriguing being, but no publicity was given to the visit. It was a true living in the presence of the Beloved. In retrospect, one understands that Baba knew that for many this would be the last personal contact. In fact he stated as much, but we did not hear him.

In 1962 Meher Baba again performed the magic of drawing the close ones to him, but in a significantly new pattern this time. In the past there had been only the most limited mixing of his followers from the East and the West. In 1962, however, the mixing was deliberate and on a grand scale.

भारत के पूना नगर में मिलन के स्थल पर सैकड़ों लोग योरुप, अमरीका और आस्ट्रेलिया से आये । अन्य हज़ारों लोग ईरान, पाकिस्तान और भारत से आये । '**गुरुप्रसाद**' पूना के सुन्दर निवास में हुआ "**१९६२ पूर्व-पश्चिम मिलन**" संस्कृति के विस्तृत विभन्न प्राकृतिक प्रेम के स्त्रोतों के मिलन की वीरगाथा थी । ५ दिन तक मेहेरबाबा इस अन्तरंग आमन्त्रित दल के कुछ हज़ार लोगों के बीच बैठे और उनहोंने असमानता के तत्त्वों को विलायक तत्तव के अन्दर एकसाथ मिश्रित किया जो केवल यथार्थ एकता, अर्थात् परम प्रेम, को जन्म देता है ।

लोगों को ताज्जुब होता है कि यह अविश्वसनीय (*incredible*) प्राणी किस प्रकार लम्बे समय तक कठोर प्रयोग एवं कुचलने वाली दुर्घटना से गम्भीररूप से आहत शरीर के द्वारा भारी भीड़ को रोज़ घण्टों तथा काफी रात तक दर्शन एवं आशीर्वाद देने की शारीरिक शक्ति को प्राप्त करने के योग्य था । छठवें दिन वह इससे भी आगे चले गये । गुरुप्रसाद बंगला के फाटक खोल दिये गये और दर्शनार्थियों को बाबा के सामने उनके अभिलाषा से भरे आध्यात्मिक आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये आने की अनुमति प्रदान की गई । सुबह से लेकर शाम तक लोगों का सजीव ताँता उनके सामने से गुज़रता रहा, और जब अन्ततः अन्धेरा हो जाने पर फाटक बन्द कर दिये गये, तक भी दर्शनार्थियों की भीड़ लम्बी चार कतारों में दूर तक खड़ी थी, जो बाबा की चितवन अथवा उनका स्पर्श पाने के लिये आशा के विपरीत आशा कर रही थी ।

इस समय से, १९६३ और १९६५ ई॰ की अवधि में, अपने भरतीय शिष्यों को थोड़े-थोड़े समय के अवकाश देकर, मेहेरबाबा ने बढ़ता हुआ कठोर नियन्त्रित एकान्तवास किया । अन्ततः, अगस्त १९६६ ई॰ में, उन्होंने आदेश जारी किये कि वह अपने निश्चित निमन्त्रण से बुलाये गये जनों के सिवाय और किसी से न मिलेंगे । बहुत-बहुत थोड़े निमन्त्रण दिये गये, और उससे भी कम लोग बुलाये गये । उन्होंने सबको बतलाया कि वह अपने विश्वव्यापी कार्य के उच्चतम पहलुओं से गुज़र रहे थे, और फिर अन्ततः, वह कार्य उनके शत प्रतिशत सन्तोष के अनुसार पूरा हो गया था ।

यह उनके भक्त अनुयायियों के लिये संकेत हो सकता था । किन्तु कोई उस दिन की कल्पना कभी नहीं कर सकता जबकि प्रियतम सदेह उनके पास न होगा । १ फ़र्वरी १९६९ को तेज़ी के साथ, गहरी भक्ति के

Hundreds poured into Poona, India, the site of the meeting, from Europe, America and Australia. Other thousands came from Iran, Pakistan and India. The 1962 "East-West Gathering" at the beautiful residence of Guruprasad in Poona was an epic of the joining of streams of love from widely different natural springs of culture. For five days Meher Baba sat with this closed invitational group of some thousands and mixed together the elements of disparity within the solvent that produces the only true unity: supreme love.

One wonders how this incredible being was able to draw from a body seriously hampered by long, hard use and crippling accidents, the physical resource to greet and bless the multitude for long hours each day and well into the night. On the sixth day he went even further. The gates of Guruprasad were thrown open and the masses were allowed to come before him for the coveted spiritual blessing. From sunup to sunset the living stream passed before him, and when finally the gates were closed at dark, a long ribbon of humanity four abreast still stretched far into the distance, hoping against hope for the glance or the touch.

From this time, with brief exceptions in 1963 and 1965 for his Indian devotees, Meher Baba went into increasingly restricted seclusion. Finally, in August, 1966, he issued instructions that no one would be allowed to see him except at his own specific invitation. There were very, very few invitations given, and even fewer exceptions made. He let all know that he was in the crowning phases of his universal work, and then finally, that that work had been achieved to his 100 percent satisfaction.

This should have been the signal to his devoted followers. But one never conceives of the day when the beloved will not be physically at hand. On February 1, 1969, the news spread quickly around the world via

फैले हुये जाल के द्वारा, सारी दुनियाँ में यह समाचार फैल गया कि मेहेरबाबा ने अपना शरीर पिछले दिन दोपहर के कुछ समय बाद त्याग दिया था । सात दिन तक उनका शव, जो पुष्पहार पहने था और जिसके ऊपर गुलाब की खुशबूदार पंखुड़ियाँ फैली थीं, क़ब्र में रखा रहा जो इस अवसर के लिये बहुत पहले तैयार कर दी गई थी, और उनका सिर एक छोटे तकिया पर रखा था, "जिससे कि मैं अपने प्रेमियों को उठकर बैठे बग़ैर **दर्शन** दे सकूँ ।" वह देख चुके थे कि क्या आवश्यक होगा और, सदैव की तरह, उसके लिये उन्होंने तैयारी कर ली थी । उनके भक्तों ने "अनन्तता के रूप में अनन्तता का, स्वयं अपनी अनन्तता में महाप्रयाण पहचाना ।" उनके दफ़न होने के बाद, अप्रैल, मई और जून के महीनों में पूर्व और पश्चिम के पेमियों के विशाल दलों ने गुरुप्रसाद, मेहेराज़ाद — निवास स्थान — और मेहेराबाद — समाधि, की तीर्थयापायें कीं । हम नहीं जानते कि कोई भी उसका वर्णन कैसे कर सकता था जो घटित हुआ था । आपके जानने के लिये केवल यह उपाय है कि आप उस पुरुष के पास बैठें जो वहाँ मौजूद था । फ्रान्सिस ब्रैबेज़ोन ने इस महान घटना का अत्यन्त सुन्दर वर्णन "थ्री टाक्स" शीर्षक पुस्तिका में किया है, जिसका प्रकाशन १९६९ में आस्ट्रेलिया के **मेहेर हाऊस पब्लिकेशन्स**, सिडनी ने किया है ।

गाड स्पीक्स के इस संशोधित संस्करण में कुछ नई बातें और संशोधन दिये गये हैं, जिनका संकेत मेहेरबाबा ने किया था । **पूरक** में भी कुछ और बातें जोड़ी गई हैं । अनेक चार्टों में छोटे किन्तु आवश्यक परिवर्तन किये गये हैं, और ५ और चार्ट शामिल किये गये हैं । एक चार्ट लुडविग डिम्फिल ने प्रेम की पीड़ा के रूप में बनाया था और उसका सम्बन्ध "चेतना की भूमिकाओं से सम्बन्धित गूढ़, सूफ़ी और वेदान्तिक शब्दों से है, जैसा कि उनका प्रयोग **गाड स्पीक्स** में किया गया है ।" यह चार्ट मेहेरबाबा के शरीर छोड़ने के कई साल पहले उनके पास भेजा गया था । एरच बी॰ जसावाला हमें बतलाते हैं कि बाबा ने उसको बारीकी के साथ पढ़ा था और उसमें दो या तीन संशोधन किये थे, और उससे पूर्ण सन्तोष प्रगट किया था, और उसको **गाड स्पीक्स** में प्रयोग करने की स्वीकृति दे दी थी । वह इतना बड़ा था कि वह पुस्तक में अलग से लगाया गया है । पुस्तक के मूल पाठ में और अधिक टीपें जोड़ी गई

(४१)

the network of deep devotion that Meher Baba had dropped his body shortly after noon of the previous day. For seven days the shell lay garlanded and strewn with fragrant rose petals in the tomb long prepared for the occasion, head propped up on a light pillow, "so that I may give my lovers darshan without having to rise." He had seen what would be necessary and, as always, had prepared for it. His devotees recognized "the passing away of the Infinite as Infinite, in its own Infinitude." The entombment was followed in April, May and June by visits of large groups from the East and the West to Guruprasad, to Meherazad—the residence—and to Meherabad—the tomb. We do not know how one can describe what happened. The only way it can be done is for you to sit down with one who was there. Francis Brabazon has related this great event most beautifully in a pamphlet entitled "Three Talks" published by Meher House Publications, Sydney, Australia, in 1969.

In this revised edition of *God Speaks* certain new points and corrections indicated by Meher Baba have been made. There are also some additions to the Supplement. Various of the charts have received minor but necessary changes and five more charts have been included. One chart was done as a labor of love by Ludwig Dimpfl and concerns "Mystic, Sufi and Vedantic Terms Related to the Planes of Consciousness as Used in God Speaks." This chart was sent to Meher Baba several years before he dropped the body. Eruch B. Jessawala tells us that Baba went over it meticulously, making two or three corrections, and expressed complete satisfaction with it, approving its usage for God Speaks. It was so large it

हैं जो मेहेरबाबा द्वारा समय-समय पर दी गई पथक् सूचना से ली गई हैं ।

उस समय यह भी ध्यान से नोट करना चाहिये कुछ शब्दों का प्रयोग उन शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है जिन्का अर्थ सूफ़ी, वेदान्ती और गूढ़ शब्दावली में मिलता है, और वे कुछ उदाहरणों में उच्चकोटि के शब्द नहीं हैं, जिनका प्रयोग उन तीन अनुशासनों में किया गया है; अपितु वे ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग तुलनात्मक अध्ययन के लिये और पाठकों द्वारा विषय को ज्यादा अच्छी तरह समझने के लिये किया गया है । लुडविग डिम्फ़िल द्वारा सङ्कलित की गई पूर्ण शब्दावली मेहेरबाबा ने शरीर छोड़ने पहले ही स्वीकृत कर दो थी ।

अन्त में, हम अवतार मेहेरबाबा के जविन एवं शब्दों का अनिवार्य लेखा तैयार करने का अनिवार्य सुझाव दिये बग़ैर नहीं रह सकते । जबकि वह आन्तरिक मानव के लये जीवित थे, जिससे वह यथार्थता के भ्रमजाल के फन्दों को तोड़ सकें जिनके द्वारा उन्होंने ख़ूद अपने को बन्धन में कर लिया था, फिर भी मेहेरबाबा के द्वारा दी गई स्पष्टियों का महान महत्व भौतिक अनुशासनों के लिये भी है । जब कोई उन विविध कृतियों का अध्ययन करता है जो हमारे युग के "ऊँचे से ऊँचे" ने प्रदान की हैं, तो उसको भौतिक विज्ञानों की समस्त रीतियों के अर्थ मूलभूत एवं क्रान्तिकारी दिखाई पड़ते हैं । जब वे लोग, जो भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, भुगर्भविज्ञान, मनोविज्ञान, थथा अन्य अनेक अनुशासनों के क्षेत्रों में प्रशिक्षित होते है, मेहेरबाबा के जविन और कथनों का अध्ययन करते हैं, तो वे बिल्कुल न्यायसंगतरूप से उनको पहले खुद अपनी आन्तरिक प्रकृतियों की आवश्यकताओं पर लागू करेंगे । तथापि, जब उनके शब्द प्राणभूत प्रयोजन और आश्वस्त सहारा के भाव को स्थापित करने के प्रथम कार्य को पूरा कर लेते हैं, तो महत्व का दूसरा पहलू अनिवार्य रूप से खुद का दृढ़ प्रतिपादन करने लगेगा । जीवन गतिशील होने लगता है और वह आन्तरिक तथा बाह्य दोनों रूपों से हरकत करने लगता है । सत्यताओं की तीव्र, क्रमिक मान्यतायों, जो अन्तर्मुखी हो गई थीं, उनके पीछे बाह्य जगत के व्यापार में तुलनात्मक अन्तर्दृष्टियाँ आती हैं ।

मेहेरबाबा के सादे और प्रायः स्वतः-स्पष्ट कथन मूल एवं उत्तेजक भावार्थों के एक बहुरूपदर्शी के अन्दर शाखाओं के रूप में देखे

(४२)

has been enclosed separately. Further footnotes have been added in the text from separate information Meher Baba gave from time to time.

It should also be noted at this time that some terms used under headings denoting Sufi, Vedantic and mystic terminology are in certain instances not classic terms employed in those three disciplines. Rather are they terms employed to allow comparative study and better understanding of the theme by the reader. A complete glossary compiled by Ludwig Dimpfl was approved by Meher Baba before he dropped his body.

In closing, we cannot avoid suggesting an inevitable corollary of the life and words of Meher Baba. While he lived for the inner man, that he might break through the shackles of the delusions of reality by which he had bound himself, still the clarifications given by Meher Baba have great import for the physical disciplines as well. As one reads the various works given out by "The Highest of the High" of our times, the implications for all manner of physical sciences are seen to be basic and revolutionary. As those trained in the fields of physics, chemistry, geology, psychology and many other disciplines study the life and statements of Meher Baba, they will quite rightfully apply them first to the needs of their own inner natures. However, as his words accomplish the first task of establishing a sense of vital purpose and assured support, a second phase of significance will inevitably begin to assert itself. Life begins to move. And it moves both internally and externally. The quick, successive recognitions of truths that bore inwards are followed by matching insights into the functioning of the external.

The simple, almost self-evident statements of Meher Baba are seen to ramify into a kaleidoscope of fundamental and exciting implications.

जाते हैं । वह शब्दों का कम प्रयोग करने थे । वह विस्तार न करते थे । वह केवल मूलभूत सत्य की केवल एक जीवनदायी पुनः व्याख्या करते थे । उससे भारी संख्या में अनिवार्य निष्कर्ष निकलते हैं । भौतिक विज्ञान शास्त्री, जिसने एक बार अपने सारभूत स्वत्व को पुनः खोजने के लिए चक्र चालू कर दिया है, उसे भौतिक विज्ञान के खुद अपने क्षेत्र में मेहेरबाबा का टकराव भी मालूम होने लगेगा ।

मेहेरबाबा उसी के समान हैं । वह जीवन के समस्त अंगों के माध्यम से खामोशी से प्रवाहित होते हैं, और इसको जानने के पहले मनुष्य को ज्ञान होता है कि समस्त जीवन मेहेरबाबा को मेहेरबाबा से व्यवहार करते हुये देखने का मनोहर खेल गया है । नश्चय ही यह व्यापकता में अन्तिम स्थिति है ।

आइवी ओ॰ ड्यूस
डान ई॰ स्टीवेन्स

सैन फ्रान्सिस्को, कैलीफ़ोर्निया
अप्रैल, १९७३

(४३)

He was sparing of words. He did not elaborate. He laid down only a vital reinterpretation of basic truth. Out of that flows the multitude of inevitable conclusions. The physicist, once he has set the wheels in motion to rediscover his essential self, will also begin to discover the impact of Meher Baba on his own field of physics.

Meher Baba is like that. He flows quietly through all aspects of life, and before one knows it, all of life has become nothing but the fascinating game of watching Meher Baba deal with Meher Baba. Certainly this is the ultimate in universality.

Ivy O. Duce
Don E. Stevens

San Francisco, California
April, 1973

"मैं कोई सम्प्रदाय, समाज अथवा संगठन स्थापित करने के लिये नहीं आया; और न कोई नया धर्म ही स्थापित करने के लिये आया हूँ। जो धर्म मैं प्रदान करूँगा वह अनेक के पीछे एक के ज्ञान की शिक्षा देता है। जो किताब मैं लोगों को पढ़वाऊँगा वह हृदय की किताब है जिसके हाथ में जीवन के रहस्य की कुंजा है। मैं मन और हृदय का आनन्ददायी मेल कर दूँगा। मैं सब धर्मों और सम्प्रदायों में नया जीवन डाल दूँगा, और उनको एक धागे में पिरोई हुई गुरियों के समान एकसाथ पिरो दूँगा।"

–मेहेरबाबा

"I am not come to establish any cult, society or organization; nor even to establish a new religion. The religion that I shall give teaches the Knowledge of the One behind the many. The book that I shall make people read is the book of the heart that holds the key to the mystery of life. I shall bring about a happy blending of the head and the heart. I shall revitalize all religions and cults, and bring them together like beads on one string."

MEHER BABA

विषय सूची

	दो शब्द	(७)
	पथम संस्करण का पूर्व-कथन	(८)
	प्रथम संस्करण की भूमिका	(१३)
	द्वितीय संस्करण की भूमिका	(३५)
भाग १	चेतना की अवस्थायें	१
भाग २	मुल लहर और विकासशील चेतना की यात्रा	१०
भाग ३	विभिन्न जगतों के विशेष लक्षण	३३
भाग ४	पुनर्जन्म और चेतना का संस्कार रहित समतुलत्व	३७
भाग ५	भुमिकायें	४८
भाग ६	दैवी चेतना की अवस्थाओं का सारांश	६४
भाग ७	सात परत का परदा	७८
भाग ८	परमात्मा की परात्पर परब्रह्म अवस्था, मूल लहर और चेतना के विकास एवं प्रतिवर्द्धन का चक्र	८७
भाग ९	परमात्मा की दस अवस्थायें	१८७
भाग १०	उपसंहार	२२३
	पूरक के विषय	२२४
	पूरक	२२६
	उपसंहार (परिशिष्ट)	२३४
	शब्द-कोष	२३५

Contents

	Preface to First Edition	vii
	Introduction to First Edition	xi
	Introduction to Second Edition	xxix
Part 1	States of Consciousness	1
Part 2	The Initial Urge and the Journey of Evolving Consciousness	9
Part 3	Characteristics of the Different Kingdoms	30
Part 4	Reincarnation and the Impressionless Equipoise of Consciousness	34
Part 5	The Planes	44
Part 6	Summary of States of Divine Consciousness	59
Part 7	The Sevenfold Veil	72
Part 8	The Beyond the Beyond State of God, the First Urge and the Cycle of Evolution and Involution of Consciousness	80
Part 9	The Ten States of God	169
Part 10	Conclusion	202
	Contents of Supplement	203
	Supplement	204
	Epilogue	298
	Glossary	299
	Index	325

[blank page]

blank page

चार्ट

चार्ट १	भूमिकायें और दुनियायें	६४
चार्ट २	मूल लहर	९०
चार्ट ३	यथार्थ जागृति	१११
चार्ट ४	विकास एवं प्रतिवर्द्धन	१३४
चार्ट ५	यात्रा	१५३
चार्ट ६	चार यात्रायें	१६५
चार्ट ७	परमात्मा सत्य है	१८३
चार्ट ८	परमात्मा की दस अवस्थायें	१८६
चार्ट ८अ	मेहेरबाबा के शब्दों में, सृष्टि, विकास, पुनर्जन्म, प्रतिवर्द्धन और साक्षात्कार	२२३
चार्ट ९	ईश्वरीय विषय	२६५
चार्ट १०	ईश्वरीय विषय	२३८
चार्ट ११	ईश्वर वाणी में प्रयुक्त किये गये चेतना की भूमिकाओं से सम्बन्धित गूढ़, सूफ़ी और वदान्तिक शब्द	अबद्ध

Charts

		Facing page
Chart I	Planes and Worlds	55
Chart II	Original Whim	78
Chart III	Real Awakening	95
Chart IV	Evolution and Involution	114
Chart V	The Journey	130
Chart VI	The Four Journeys	139
Chart VII	God Is Reality	154
Chart VIII	The Ten States of God	158
Chart VIIIA	Creation, Evolution, Reincarnation, Involution & Realization, according to Meher Baba	190
Chart IX	Divine Theme	224
Chart X	Divine Theme	226
Chart XI	Mystic, Sufi and Vedantic Terms Related to the Planes of Consciousness as Used in God Speaks	LOOSE INSERT

The following is from GS 1987

inside back cover

Note: This volume is a reprint of the revised and enlarged second edition, first printed in 1973. The substantive content of the book remains unchanged. Design and layout have been modernized. The format has been slightly altered for grammatical and stylistic consistency.

blank page

blank page

भाग १

चेतना की अवस्थायें

सब आत्मायें **परमात्मा** में थीं, **परमात्मा** में हैं, और **परमात्मा** में रहेंगीं ।

आत्मायें सब **एक** हैं ।

सब आत्मायें अनन्त और सनातन हैं । वे निराकार हैं ।

सब आत्मायें **एक** हैं; आत्माओं में अथवा आत्मावत् उनकी सत्ता और अस्तित्त्व में कोई अन्तर नहीं है ।

आत्माओं की चेतना में अन्तर होता है;

आत्माओं की चेतना की भूमिकाओं में अन्तर होता है;

आत्माओं के अनुभव में अन्तर होता है और इस प्रकार आत्माओं की अवस्था में अन्तर होता है ।

अधिकांश आत्माओं को **स्थूल शरीर** (*gross body*) की चेतना प्राप्त होती है;

कुछ आत्माओं को **प्राण** (*subtle body*) की चेतना प्राप्त होती है;

कुछ आत्माओं को **मन** (*mental body*) की चेतना प्राप्त होती है; और

बहुत थोड़ी आत्माओं को खुद की (*Self*) चेतना प्राप्त होती है ।

अधिकांश आत्माओं को **स्थूल** जगत (*world*) का अनुभव प्राप्त होता है;

कुछ आत्माओं को **सूक्ष्म** जगत (*world*) का अनुभव प्राप्त होता है;

कुछ आत्माओं को **कारण** जगत (*world*) का अनुभव प्राप्त होता है; और

PART 1

States of Consciousness

ALL souls (*atmas*) were, are and will be in the Over-Soul (*Paramatma*).

Souls (*atmas*) are all One.

All souls are infinite and eternal. They are formless.

All souls are One; there is no difference in souls or in their being and existence as souls.

There is a difference in the consciousness of souls;

there is a difference in the planes of consciousness of souls;

there is a difference in the experience of souls and thus

there is a difference in the state of souls.

Most souls are conscious of the **gross** body (*sthul sharir*);

some souls are conscious of the **subtle** body (*pran*);

a few souls are conscious of the **mental** body (mind or *mana*);

and

a very few souls are conscious of Self.

Most souls have experience of the gross sphere (world);

some souls have experience of the subtle sphere (world);

a few souls have experience of the mental sphere (world); and . . .

बहुत थोड़ी आत्माओं को **परमात्मा** का अनुभव प्राप्त होता है ।
अधिकांश आत्मायें स्थूल भूमिका (**अन्न भूमिका**) पर होती हैं;
कुछ आत्माओं **प्राण भूमिका** (सूक्ष्म भूमिका) पर होती हैं;
कुछ आत्माओं **मनो भूमिका** पर होती हैं; और
बहुत थोड़ी आत्माओं मन भूमिका के परे भूमिका (**विज्ञान** भूमिका) पर होती हैं ।

अधिकांश आत्मायें बहुत बन्धनयुक्त होती हैं; कुछ आत्मयें थोड़े बन्धनयुक्त होती हैं; कुछ आत्मायें बहुत थोड़े बन्धनयुक्त होती हैं; और बहुत थोड़ी आत्मायें बिल्कुल बन्धनरहित होती हैं ।

विभिन्न चेतना, विभिन्न अनुभवों, और विभिन्न अवस्थाओं वाली ये सब आत्मायें **परमात्मा** के अन्तर्गत होती हैं ।

अब, यदि सब आत्मायें **परमात्मा** के अन्तर्गत हैं और सब **एक** हैं, तब चेतना में, भूमिकाओं में, अनुभवों में और अवस्थाओं में क्यों अन्तर होता है ?

इस अन्तर का कारण यह है कि आत्माओं को भिन्न-भिन्न और विविध संस्कार प्राप्त होते हैं । *

अधिकांश आत्माओं को **स्थूल** संस्कार प्राप्त होते हैं; कुछ आत्माओं को **सूक्ष्म** संस्कार प्राप्त होते हैं; कुछ आत्माओं को **मनो** संस्कार प्राप्त होते हैं; और बहुत थोड़ी आत्मायें बिल्कुल संस्काररहित होती हैं ।

स्थूल संस्कार रखने वाली आत्मायें, **सूक्ष्म** संस्कार रखने वाली आत्मायें, **मनो** संस्कार रखने वाली आत्मायें और कोई संस्कार **न** रखने वाली आत्मायें, सब **परमात्मा** के अन्तर्गत आत्मायें हैं और वे **सब एक** हैं ।

स्थूल संस्कार-युक्त आत्माओं को स्थूल शरीर की चेतना प्राप्त होती है और अन्न भुवन का अनुभव प्राप्त होता है ।

सूक्ष्म संस्कार-युक्त आत्माओं को प्राण (*subtle body*) की चेतना प्राप्त होती है और प्राण भुवन का अनुभव प्राप्त होता है ।

मनोसंस्कार युक्त आत्माओं को कारण शरीर (मन) की चेतना

(२)

* [मेहेरबाबा, "संस्कारों का निर्माण और व्यापार" सम्भाषण, छठा संस्करण, ३ भाग (सैन फ़्रान्सिस्को : सूफ़ीज़्म रिओरिएन्टेड, इनकारपोरेटेड, १९६७), १ : ५४-६४ *Ed.*] को भी देखिये ।

a very few souls have experience of the Over-Soul.

Most souls are on the gross plane (*anna bhumika*);

some souls are on the subtle plane (*pran bhumika*);

a few souls are on the mental plane (*mano bhumika*); and

a very few souls are on the plane beyond the mental plane (*vidnyan*).

Most souls have great binding; some souls have little binding; a few souls have very little binding; and a very few souls have absolutely no binding.

All these souls (*atmas*) of different consciousness, of different experiences, of different states are in the Over-Soul (*Paramatma*).

If, now, all souls are in the Over-Soul and are all One, then why is there any difference in the consciousness, in the planes, in the experiences and in the states?

The cause of this difference is that the souls have different and diverse impressions (*sanskaras*).*

Most souls have **gross** impressions; some souls have **subtle** impressions; a few souls have **mental** impressions; and a very few souls have **no** impressions at all.

Souls having gross impressions, souls having subtle impressions, souls having mental impressions and souls having no impressions, are all souls in the Over-Soul and all are One.

Souls with gross impressions have consciousness of the gross body (*sthul sharir*) and have experience of the gross sphere.

Souls with subtle impressions have consciousness of the subtle body (*pran*) and have experience of the subtle sphere.

Souls with mental impressions have consciousness of the mental body (*mana* or mind) and have the experience of the mental sphere.†

Hindi refers to the 1967 edition!!!

* [See also Meher Baba, "The Formation and Function of Sanskaras," *Discourses*, 7th ed. (Myrtle Beach, SC: Sheriar Press, 1987), 32–39. Ed.]

प्राप्त होती है और मन भुवन‡ का अनुभव प्राप्त होता है ।

संस्काररहित आत्माओं को खुद की (आत्मा की) चेतना प्राप्त होती है और परमात्मा का अनुभव प्राप्त होता है ।

इस प्रकार स्थूल संस्कार रखने वाली आत्मायें स्थूल जगत (अन्न भुवन) का अनुभव स्थूल शरीर के माध्यम से करती हैं; अर्थात्, वे देखने, सुनने, सूँघने, खाने, सोने, टट्टी करने और पेशाब करने के विभिन्न एवं विविध अनुभवों का अनुभव करती हैं । ये सब स्थूल जगत के अनभव हैं ।

सूक्ष्म संस्कारों वाली आत्मायें सूक्ष्म शरीर (*subtle body*) के माध्यम से सूक्ष्म जगत की क्रमशः तीन भूमिकाओं का अनुभव करती हैं, और इन तीन भूमिकाओं में उन्हें केवल देखने, सूँघने और सुनने के अनुभव प्राप्त होते हैं ।

मनोसंस्कारों वाली आत्माओं को कारण शरीर अथवा **मन** के माध्यम से, मनोजगत (मन भुवन) में केवल देखने का अनुभव प्राप्त होता है, और यह देखना ईश्वर को देखना है ।

कोई संस्कार न रखनेवाली आत्मायें, आत्मा (*Self*) के माध्यम से परमात्मा की अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द का अनुभव करती हैं ।

जो आत्मा शरीर (*gross body*) की चेतना से युक्त होती है, **उस** आत्मा को सूक्ष्म शरीर (*subtle body*) की चेतना नहीं होती, कारण शरीर की चेतना नहीं होती, और आत्मा (*Self*) की चेतना नहीं होती ।

जो आत्मा सूक्ष्म शरीर (*subtle body*) की चेतना से युक्त होती है, **उस** आत्मा को स्थूल शरीर का भान नहीं होता, कारण शरीर

‡

भुवन	शरीर		
गूढ़वादी	रहस्यवादी	सूफ़ी	वेदान्तिक
अन्न भुवन (जगत)	स्थूल शरीर	जिस्म-ए-कसीफ़	स्थूल शरीर
प्राण भुवन (जगत)	सुक्ष्म शरीर	जिस्म-ए-लतीफ़	सुक्ष्म शरीर (प्राण)
मन भुवन (जगत)	कारण शरीर	जिस्म-ए-अलताफ़	कारण शरीर (मानस)

Souls with no impressions have consciousness of Self (soul, *atma*) and have the experience of the Over-Soul (*Paramatma*).

Thus souls with gross impressions experience the gross sphere through the gross body; that is, they experience different and diverse experiences such as seeing, hearing, smelling, eating, sleeping, clearing the bowels and urinating. All these are experiences of the gross sphere.

Souls with subtle impressions experience successively three planes of the subtle sphere through the subtle body, and in these three planes they have only the experiences of seeing, smelling and hearing.

Souls with mental impressions, through the mental body or **mind,** in the mental sphere experience only seeing, and this seeing is the seeing of God.

Souls having no impressions, through the Self experience the infinite power, infinite knowledge and infinite bliss of the Over-Soul.

The soul that is conscious of the gross body is **not** conscious of the subtle body, **not** conscious of the mental body, and **not** conscious of Self.

The soul that is conscious of the subtle body is **not** conscious of the gross body, **not** conscious of the mental body, and **not** conscious of Self.

†

Sphere	Body		
Mystic	Mystic	Sufi	Vedantic
Gross Sphere (World)	Gross Body	Jism-e-Kasif	Sthul Sharir
Subtle Sphere (World)	Subtle Body	Jism-e-Latif	Sukshma Sharir (Pran)
Mental Sphere (World)	Mental Body	Jism-e-Altaf	Karan Sharir (Manas)

का भान नहीं होता, और आत्मा (*Self*) का भान नहीं होता ।

जो आत्मा कारण शरीर की चेतना से युक्त होती है, **उस** आत्मा को स्थूल शरीर का भान नहीं होता, सूक्ष्म शरीर का भान नहीं होता, और आत्मा (*Self*) का भान नहीं होता ।

जो आत्मा आत्म-चेतना से युक्त होती है, **उस** आत्मा को स्थूल शरीर का भान नहीं होता, सूक्ष्म शरीर का भान नहीं होता, और कारण शरीर का भान नहीं होता ।

जो आत्मा अन्न भुवन के अनुभव से युक्त होती है, **उस** आत्मा को प्राण भुवन का अनुभव नहीं होता, न उसको मन भुवन (*mental world*) का अनुभव होता है, और न परमात्मा का अनुभव होता है ।

जो आत्मा प्राण भुवन का अनुभव रखती है, उस आत्मा को अन्न भुवन का अनुभव नहीं होता, न उसको मन भुवन का अनुभव होता है और न परमात्मा का अनुभव होता है ।

जो आत्मा मन भुवन का अनुभव रखती है, उस आत्मा को अन्न भुवन का अनुभव नहीं होता, न प्राण भुवन का अनुभव होता है और न परमात्मा का अनुभव होता है ।

जिस आत्मा को परमात्मा का अनुभव प्राप्त होता है, **उस** आत्मा को अन्न भुवन का अनुभव नहीं होता, न उसको प्राण भुवन का अनुभव होता है, और न उसको मन भुवन का अनुभव होता है । अर्थात्, जिस आत्मा को आत्माज्ञान प्राप्त होता है और परमात्मा का अनुभव प्राप्त होता है, उस आत्मा को स्थूल शरीर, सुक्ष्म शरीर और कारण शरीर की चेतना नहीं होती और अन्न भुवन, प्राण भुवन तथा मन भुवनों (जगतों) का अनभव प्राप्त नहीं होता ।

इसका यह अर्थ है कि आत्म की चेतना प्राप्त करने के लिये और परमात्मा का अनुभव प्राप्त करने के लिये, आत्मा से स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीरों की चेतना का लोप होता आवश्यक है । किन्तु जब तक आत्मा स्थूल, सुक्ष्म अथवा मनो संस्कारों से यक्त रहती है, तब तक उसको अटलरूप से तथा क्रमशः स्थूल शरीर, सुक्ष्म शरीर, अथवा कारण शरीर का भान रहता है, और स्थूल, सुक्ष्म और मन के अनुभवों से हठात् एवं अनिवार्यरूप से गुज़रना पड़ता है ।

इसका स्पष्ट कारण यह है कि जब तक आत्मा की चेतना में स्थूल संस्कारों की छाप रहती है, तब तक स्थूल शरीर के माध्यम से इन

The soul that is conscious of the mental body is **not** conscious of the gross body, **not** conscious of the subtle body, and **not** conscious of Self.

The soul that is conscious of Self is **not** conscious of the gross body, **not** conscious of the subtle body, and **not** conscious of the mental body.

The soul that has experience of the gross world does not have experience of the subtle world, nor experience of the mental world, nor does it have experience of the Over-Soul.

The soul that has experience of the subtle world does not experience the gross world, nor does it have experience of the mental world, nor does it have experience of the Over-Soul.

The soul that has experience of the mental world does not experience the gross world, nor does it experience the subtle world, nor does it have experience of the Over-Soul.

The soul that has experience of the Over-Soul does not experience the gross world, nor does it experience the subtle world, nor does it experience the mental world. That is, the soul that is conscious of Self and has experience of the Over-Soul is not conscious of the gross body, subtle body and mental body and does not experience the gross, subtle and mental spheres (worlds).

This means that in order to have consciousness of Self and to have the experience of the Over-Soul, the soul must lose consciousness of the gross, subtle and mental bodies. But as long as the soul is impressioned either by the gross, subtle or mental impressions, the soul consistently and respectively has consciousness of the gross body, subtle body or mental body, and the gross, subtle and mental experiences are persistently and necessarily undergone.

The obvious reason for this is that as long as the consciousness of the soul is impressed by gross impressions, there is no way out except to experience these gross impressions through the gross body.

स्थूल संस्कारों का अनुभव करने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं रहता ।

इसी प्रकार, जब तक आत्मा की चेतना में सूक्ष्म संस्कारों की छाप रहती है, तब तक सूक्ष्म शरीर के माध्यम से इन सूक्ष्म संस्कारों का अनुभव करने के सिवाय और कोई रास्ता नहीं रहता ।

इसी प्रकार, जब तक आत्मा की चेतना में मन के संस्कारों की छाप रहती है, तब तक कारण शरीर के माध्यम से इन सूक्ष्म संस्कारों का अनुभव करने के सिवाय अन्य प्रकार से छुटकारा नहीं मिलता ।

जैसे ही स्थूल, सूक्ष्म और मनो संस्कार पूर्णतया लुप्त हो जाते हैं अथवा नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही आत्मा की चेतना आपहीआप तथा प्रत्यक्षरूप से स्वयं आत्मा की ओर निर्देशित एवं केन्द्रीभूत होती है, और तब इस आत्मा के लिये अनिवार्यरूप से परमात्मा के अनुभव में निमग्न होते के सिवाय और कोई विकल्प नहीं रह जाता ।

अब, स्थूल, सुक्ष्म और कारण शरीर **आत्मा की छायायें मात्र हैं ।** अन्न भुवन, प्राण भुवन और मन भुवन (जगत) **परमात्मा की छायायें मात्र हैं ।**

स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर सीमित होते हैं, रूपधारी होते हैं और परिवर्तनशील एवं नश्वर होते हैं । अन्न भुवन, प्राण भुवन और मन भुवन (जगत) मिथ्या हैं; वे शून्य हैं, कल्पना हैं और खाली स्वप्न हैं । केवल परमात्मा ही एकमेव सत्य है ।

इसलिये जब आत्मा अपने स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के साथ अन्न भुवन, प्राण भुवन और मन भुवन का अनुभव करती है, तब आत्मा अपनी ही छायाओं की सहायता से सत्यता में वस्तुतः परामात्मा की छायायें का अनुभव करती है ।

दूसरे शब्दों में, अपने सीमित और नश्वर रूप के द्वारा आत्मा असत्यता, शून्य, कल्पना और एक खाली स्वप्न का अनुभव करती है ।

केवल जिस समय आत्मा परमात्मा का अनुभव अपनी सत्ता (*Self*) के साथ करती है, तभी वह यथार्थ का अनुभव यथार्थता के साथ करती है ।

जब आत्मा को अपने स्थूल शरीर का भान रहता है, तब यह आत्मा स्थूल शरीर से अपनी एकरूपता करती है और अपने को स्थूल शरीरवत् मानती है ।

Similarly, as long as the consciousness of the soul is impressed by subtle impressions, there is no way out but to experience these subtle impressions through the subtle body.

Similarly, as long as the consciousness of the soul is impressed by mental impressions, there is no escape but to experience these mental impressions through the mental body.

As impressions of the gross, subtle and mental vanish or completely disappear, the consciousness of the soul is automatically and obviously directed and focussed towards itself, and this soul then necessarily has no alternative but to absorb experience of the Over-Soul.

Now, gross, subtle and mental bodies are nothing but the **shadows of the soul.** The gross, subtle and mental spheres (worlds) are nothing but the **shadows of the Over-Soul.**

Gross, subtle and mental bodies are finite, have forms and are changeable and destructible. The gross, subtle and mental worlds are false; they are zero, imagination and vacant dreams. The only reality is the Over-Soul (*Paramatma*).

Therefore when the soul with its gross, subtle and mental bodies experiences the gross, subtle and mental worlds, the soul actually experiences in reality the shadows of the Over-Soul with the help of its own shadows.

In other words, the soul with its finite and destructible form experiences falsity, zero, imagination and a vacant dream.

Only when the soul experiences the Over-Soul with its Self does it experience the Real with reality.

When the soul is conscious of its gross body, then this soul identifies itself with the gross body and takes itself as the gross body.

इसका यह अर्थ है कि अनन्त, सनातन, रूपरहित आत्मा अपने को सीमित, नश्वर और रूपधारी पाती है ।

यह अज्ञानता संस्कारों के कारण होती है । प्रारम्भ में आत्मा, जो शाश्वतः परमात्मा में स्थित है, ज्ञान प्राप्त करने की वजाय पहलेपहल संस्कारों के द्वारा अज्ञान का उपार्जन करती है ।

जब आत्मा खास संस्कारों के अनुसार कोई खास शरीर प्राप्त करती है, तब वह अपने को ऐसा महसूस और अनुभव करती है कि वह वही खास शरीर है ।

आत्मा अपनी पत्थर-योनि में अपने को पत्थर अनुभव करती है । इसी अनुसार, कालान्तर में, आत्मा अनुभव तथा महसूस करती है कि वह धातु है, वनस्पति है, कीड़ा है, मछली है, पक्षी है, पशु है, पुरुष अथवा स्त्री है । स्थूल शरीर की चाहे जो किस्म हो और उसके रूप की चाहे जो शक्ल हो, आत्मा उस शरीर, आकार और शक्ल के साथ सहजतया अपना साहचर्य करती है, और ऐसा अनुभव करती है कि वह स्वयं वह शरीर, आकार एवं शक्ल है ।

जब आत्मा को सूक्ष्म शरीर की चेतना होती है, तब यह आत्मा अनुभव करती है कि वह सूक्ष्म शरीर है ।

जब आत्मा को कारण शरीर की चेतना प्राप्त हो जाती है, तब इस आत्मा को अनुभव होता है कि वह कारण शरीर है ।

केवल संस्कारों के कारण ही (नुक़ूश-ए-अमल अथवा संस्कार) निराकार आत्मा, अनन्त आत्मा, अनुभव करती है कि वह अनिवार्यरूप से **स्थूल शरीर** है, अथवा सूक्ष्म शरीर (प्राण) है, अथवा कारण शरीर (मन) है ।

अत्मा स्थूल शरीरों के माध्यम से अन्न भुवन का अनुभव करती हुई, असंख्य स्थूल शरीरों से साहचर्य करती है एवं सम्बन्ध-विच्छेद करती है । स्थूल शरीरों के साथ उसके इस साहचर्य तथा उनसे इस सम्भन्ध-विच्छेद को क्रमशः **जन्म** और **मृत्यु** कहते हैं ।

सत्यता में जन्मों और मृत्युओं से रहित अस्तित्व रखने वाली, सनातन, अमर आत्मा को, **केवल संस्कारों के कारण ही**, असंख्य बार जन्मों और मृत्युओं का अनुभव करना पड़ता है ।

जिस समय आत्मा को संस्कारों के कारण असंख्य जन्मों और मृत्युओं का यह अनुभव करना पड़ता है, तब उसको न केवल अन्न भुवन

This means that the infinite, eternal, formless soul finds itself as finite, mortal and having form.

Impressions (*sanskaras*) are the cause of this ignorance. In the beginning the soul, which is eternally in the Over-Soul, at first acquires ignorance through impressions rather than acquiring Knowledge.

When the soul acquires a particular form (body or *sharir*) according to particular impressions, it feels and experiences itself as being that particular form.

Soul in its stone-form experiences itself as stone. Accordingly, in due course, the soul experiences and feels that it is metal, vegetable, worm, fish, bird, animal, man or woman. Whatever be the type of gross form and whatever be the shape of the form, the soul spontaneously associates itself with that form, figure and shape, and experiences that it is itself that form, figure and shape.

When the soul is conscious of the subtle body, then this soul experiences that it is the subtle body.

When the soul becomes conscious of the mental body, then this soul experiences that it is the mental body.

It is only because of impressions (*nuqush-e-amal* or *sanskaras*) that the soul without form, the infinite Soul, experiences that it is veritably a gross body (*sthul sharir*), or a subtle body (*pran*) or a mental body (*mana* or mind).

The soul, while experiencing the gross world through gross forms, associates with and dissociates from innumerable gross forms. The association with and dissociation from gross forms are termed **birth** and **death** respectively.

It is only because of impressions that the eternal, immortal soul, existing in reality without births and without deaths, has to experience births and deaths innumerable times.

While the soul has to undergo this experience of innumerable births and deaths because of impressions, it has not only to experience the gross world, which is a shadow of the Over-Soul and which is false, but together with it the soul has also to experience the happiness and misery, virtue and vice of the gross world.

का अनुभव करना पड़ता है, जो परमात्मा की एक छाया है और जो मिथ्या है, बल्कि असके साथ-साथ आत्मा को स्थूल जगत के सुख और दुख, पुण्य और पाप का भी अनुभव करना पड़ता है ।

आत्मा को, जो सुख और दुख, पुण्य और पाप से परे एवं स्वतन्त्र है, **केवल संस्कारों के कारण ही** दुख और सुख, पाप और पुण्य के अनुभव अनिवार्यरूप से करने पड़ते हैं ।

अब इतना तो स्थापित हो गया कि जन्मों और पृत्युओं, सुख और दुख, पुण्य और पाप, के अनुभव केवल आत्मा के स्थूल शरीर के द्वारा प्राप्त अनुभव होते हैं, जबकि वह अन्न भुवन का अनभव करती है; किन्तु आत्मा का स्थूल शरीर आत्मा की एक छाया है और अन्न भुवन परमात्मा की एक छाया है ।

इस प्रकार आत्मा द्वारा अनुभव किये गये जन्मों और मृत्युओं, पुण्य और पाप, सुख और दुख के सभी अनुभव छाया के अनुभव मात्र हैं । इसलिये इस प्रकार अनुभव किया गया सबकुछ मिथ्या है ।

आत्मा वास्तव में परमात्मा है

"आत्मा-परमात्मा" के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिये हम **परमात्मा** की तुलना एक अनन्त महासागर से, एक सीमारहित महासागर से करते हैं । और **आत्मा** की तुलना इस महासागर में एक बूँद के रूप में करते हैं ।

आत्मा कभी भी **परमात्मा** के बाहर नहीं हो सकती क्योंकि **परमात्मा** अनन्त और असीमित है । **आत्मा** सीमारहित की असीमितता के बाहर कैसे आ सकती है, अथवा उसके परे कैसे स्थान पा सकती है ? इसलिये **आतमा परमात्मा** में स्थित है ।

इस मूल तथ्य को स्थापित करने के बाद कि **आत्मा परमात्मा में** स्थित है, हम एक क़दम आगे बढ़ते हैं और कहते हैं कि **आत्मा परमात्मा** है । यह **कैसे** ?

उदाहरण के लिये, हम एक असीमित महासागर की कल्पना करें । हम भी कल्पना वरें कि हम इस असीमित महासागर के सीमारहित विस्तार से महासागर का एक बिन्दु-मात्र अलग करते हैं अथवा बाहर निकाल लेते हैं । तब इससे यह अर्थ निकलता है कि महासागर का यह बिन्दु, सीमारहित महासागर में रहते हुये अलग होते

It is only because of impressions that the soul, which is beyond and free from happiness and misery, virtue and vice, has necessarily to undergo experiences of misery and happiness, vice and virtue.

Now this much is established, that the experiences of births and deaths, happiness and misery, virtue and vice are experienced only by the gross form of the soul while experiencing the gross world; but the gross form of the soul is a shadow of the soul and the gross world is a shadow of the Over-Soul.

Thus all the experiences of births and deaths, virtue and vice, happiness and misery experienced by the soul are nothing but the experiences of the shadow. Hence all that is thus experienced is false.

Atma in Reality Is *Paramatma*

In order to clarify the relationship of "*atma-Paramatma*" we compare *Paramatma* with an infinite ocean, a limitless ocean, and the atma as a drop in this ocean. The *atma* is never out of this limitless ocean (*Paramatma*).

The *atma* can never be out of *Paramatma* because *Paramatma* is infinite and unlimited. How can the *atma* come out of, or have a place beyond, the limitlessness of the limitless? Therefore the *atma* is in *Paramatma*.

After establishing the primary fact that the *atma* is **in** *Paramatma* we go a step further and say that *atma* **is** *Paramatma*. How?

For example, let us imagine an unlimited ocean. Let us also imagine that we separate or take out one iota of ocean from the limitless expanse of this unlimited ocean. It follows then that this iota of ocean, while in the limitless ocean, before separation is ocean itself, and is not there in the shoreless ocean as an iota of the ocean, because every iota of ocean, when not limited by the limitations of a drop, is unlimited ocean.

के पहले स्वयं महासागर है, और यह तटरहित महासागर में महासागर के बिन्दु के रूप में नहीं रहता, क्योंकि महासागर का प्रत्येक बिन्दु, जब वह बूँद की परिमितताओं से सीमित नहीं होता, असीमित महासागर हैं ।

केवल जिस समय महासागर का एक बिन्दु-मात्र असीमित महासागर से अलग कर लिया जाता है, अथवा एक बूँद के रूप में असीमित महासागर से निकाल लिया जाता है, तभी महासागर के इस बिन्दु-मात्र को तटरहित महासागर की एक बूँद के रूप में अपना अलग अस्तित्व प्राप्त होता है, और तभी महासागर का यह बिन्दु असीमित महासागर की एक बूँद के रूप में माना जाने लगता है ।

दूसरे शब्दों में, अनन्त, असीमित और अपरिमित महासागर स्वयं अब उस अनन्त, असीमित और सीमारहित महासागर की केवल एक बूँद के रूप में माना जाता है । और उस अनन्त, अपरिमित तथा सीमारहित महासागर की तुलना में महासागर का यह अंश-मात्र, अथवा महासागर के अंश-मात्र की यह बूँद, अत्यन्त परिमित और अनन्त सीमाओं से अत्यन्त सीमित होती है । अर्थात्, अप्रारतया स्वतन्त्र बूँद अपने को अपार बन्धनों में पाती है ।

इसी प्रकार, **आत्मा,** जिसकी तुलना हमने अनन्त महासागर के एक बिन्दु से की है, दिखाव में पृथक् अस्तित्व प्राप्त करती है, यद्यपि वह वास्तव में कभी भी सीमारहित की असीमितता, अनन्त परमात्मा, के बाहर नहीं हो सकती, जिस अनन्त परमात्मा की तुलना हमने अनन्त, अपरिमित तथा सीमारहित महासागर से की है ।

विन्तु, जिस प्रकार महासागर के अंश-मात्र को महासागर की सतह पर एक बुलबुला के रूप में होने के द्वारा एक बूँद के रूप में अपनी सीमितता प्राप्त होती है, और बूलबुला महासागर के अंश-मात्र को अनन्त महासागर से प्रत्यक्षतया पृथक् अस्तित्व प्रदान करता है, उसी प्रकार **आत्मा,** जो **परमात्मा में** स्थिल है और **परमात्मा** है, बुलबुला (अज्ञानता) की सीमाओं के माध्यम से, जिससे आत्मा अपने को ढाँके रहती है, अनन्त **परमात्मा** से प्रत्यक्षतया पृथक् अस्तित्व का अनुभव करती है । जैसे ही अज्ञानता का बुलबुला फूटता है, वैसे ही आत्मा न केवल अपने को **परमात्मा** में पाती है वरन् अपने को परमात्मा के रूप में अनुभव करती है ।

(८)

It is only when an iota of ocean is separated from the unlimited ocean, or is taken out of the unlimited ocean as a drop, that this iota of ocean obtains its separate existence as a drop of the shoreless ocean, and that this iota of ocean begins to be looked upon as a drop of the unlimited ocean.

In other words, the infinite, unlimited and limitless ocean itself is now looked upon as merely a drop of that infinite, unlimited and limitless ocean. And in comparison to that infinite, unlimited and limitless ocean this iota of ocean, or this drop of the iota of ocean, is most finite and most limited with infinite limitations. That is, the infinitely free iota finds itself infinitely bound.

Similarly, the *atma*, which we have compared with a drop of the infinite ocean, obtains a seeming separate existence, though in reality it can never be out of the limitlessness of the limitless, infinite *Paramatma* which we have compared with the infinite, unlimited and limitless ocean.

But just as the iota of ocean acquires its limitation as a drop through being in the form of a bubble on the surface of the ocean, and the bubble bestows upon the iota of ocean an apparently separative existence from the infinite ocean, likewise the *atma*, which is **in** *Paramatma* and **is** *Paramatma*, apparently experiences separative existence from the infinite *Paramatma* through the limitations of a bubble (of ignorance) with which the *atma* shrouds itself. No sooner does the bubble of ignorance burst, than the *atma* not only finds itself **in** *Paramatma* but experiences itself **as** *Paramatma*.

अज्ञान के बुलबुला से निर्मित, **आत्मा** द्वारा स्वरचित, इस सीमा के माध्यम से, **आत्मा** प्रत्यक्षतया **परमात्मा** से पृथक् अस्तित्व की परम्परा प्राप्त करती है । और, अनन्त **परमात्मा** से इस स्वरचित पृथक्ता के कारण, **आत्मा,** जो स्वयं अनन्त, अपार और सीमारहित है, अपनेआप को प्रत्यक्षरूप से अनन्त सीमाओं से अत्यन्त सीमित अनुभव करती है ।

(९)

new chapter

Through this limitation, formed by the bubble of ignorance, self-created by the *atma*, the atma apparently inherits a separative existence from *Paramatma*. And because of this self-created separativeness from infinite *Paramatma*, the *atma*, which is itself infinite, unlimited and limitless, apparently experiences itself as most finite with infinite limitations.

भाग २

मूल लहर और विकासशील चेतना की यात्रा

अब हम एक अचैतन्य आत्मा का विचार करें ।

प्रारम्भ में आत्मा के संस्कार न थे और न उसको चेतना थी ।

इसलिये इस स्थिति अथवा इस अवस्था में, आत्मा के स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, अथवा कारण शरीर न थे, **क्योंकि केवल स्थूल, सुक्ष्म और मनोसंस्कारों के अस्तित्व से ही स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों का अस्तित्व हो सकता है,** और केवल इन शरीरों के अस्तित्व से ही अन्न भुवन, प्राण भुवन और मन भुवन का अस्तित्व सम्भव हो सकता है ।

इसलिये प्रारम्भ में आत्मा की स्थूल, सुक्ष्म और कारण शरीरों की चेतना न थी और उसको खुद अपनी चेतना भी न थी, और तब आत्मा को स्वाभाविकतया अन्न भुवन, प्राण भुवन तथा मन भुवनों का अनुभव न था और उसे **परमात्मा** का अनुभव भी न था ।

आत्मा की इस अनन्त, संस्काररहित, अचैतन्य शान्त अवस्था में एक लहर पैदा हुई जिसे हम **प्रथम लहर** (खुद को जानने की प्रथम लहर) कहते हैं ।

प्रथम लहर परमात्मा में अन्तर्निहित थी ।

जब हम परमात्मा की तुलना एक अनन्त, अपरिमित महासागर से करते हैं और जब हम कहते हैं कि परमात्मा में प्रथम लहर उठी, तो तुलना के शब्दों में यह भी कहा जा सकता था कि अनन्त, अपरिमित महासागर में प्रथम लहर अथवा **तरंग** (*the whim*)* उठी ।

* [यह भी देखिये : मेहेरबाबा, "परात्पर परब्रह्म परमात्मा से उठी लहर", आध्यात्मिक पट पर मेहेरबाबा से निकली किरणें (सैन फ्रान्सिस्को : सुफ़ीज़म रिओरिएन्टेड, इनकारपोरेतेड, १९५८), पृष्ठ ७–११ सम्पादक]

PART 2

The Initial Urge and the Journey of Evolving Consciousness

LET US now think of one unconscious soul.

In the beginning the soul had no impressions (*sanskaras*) and no consciousness.

Therefore at this stage or in this state, the soul had no gross form or body, subtle body or mental body, **because only the existence of gross, subtle and mental impressions** (*sanskaras*) can give existence to gross, subtle and mental bodies, and only the existence of these bodies can make possible the existence of gross, subtle and mental worlds.

Hence in the beginning the soul had no consciousness of gross, subtle and mental bodies and was also unconscious of its own self, and the soul then naturally had no experience of the gross, subtle and mental worlds and also had no experience of the Over-Soul (*Paramatma*).

This infinite, impressionless, unconscious tranquil state of the soul reverberated with an impulse which we call THE FIRST URGE (the first urge to know Itself).

The first urge was latent in *Paramatma*.

When we compare *Paramatma* to an infinite, unlimited ocean and when we say that *Paramatma* got the first urge, it could also be said in terms of comparison that the infinite, unlimited ocean got the first urge or THE WHIM.*

* [See also Meher Baba, "The Whim from the Beyond," *Beams from Meher Baba on the Spiritual Panorama* (San Francisco: Sufism Reoriented, Inc., 1958), 7–11. Ed.]

अनन्त में, परिमित और अपरिमित दोनों सम्मिलित हैं ।

अब, क्या यह प्रथम लहर अपरिमित थी या परिमित थी, और क्या यह पहले परिमित था और फिर अपरिहित थी अथवा इसका उल्टा थी ?

प्रथम लहर अत्यन्त परिमित थी, परन्तु यह प्रथम लहर अनन्त की थी ।

यह अत्यन्त परिमित प्रथम लहर अनन्त **महासागर-परमात्मा** की थी, और अनन्त की इस अन्तर्निहित अत्यन्त परिमित प्रथम लहर का आविर्भाव अनन्त, असीमित महासागर के अन्तर्गत एक अत्यन्त परिमित बिन्दु तक सीमित था ।

किन्तु, चूँकि अत्यन्त परिमित अन्तर्निहित प्रथम लहर के आविर्भाव का यह अत्यन्त परिमित बिन्दु, जो अत्यन्त सीमित भी था, अनन्त, असीमित महासागर में था, इसलिये प्रथम लहर के आविर्भाव का यह अत्यन्त परिमित बिन्दु भी असीमित था ।

प्रथम लहर (जो अत्यन्त परिमित भी थी) के आविर्भाव के इस अत्यन्त परिमित बिन्दु के द्वारा, अनन्त की छाया (जो छाया, सत्यता की अवस्था में, अनन्त है) क्रमशः प्रकट हुई† और फैलता चली गई ।

अन्तर्निहित प्रथम लहर के आविर्भाव का यह अत्यन्त परिमित बिन्दु "ॐ" **बिन्दु** अथवा **सृष्टि बिन्दु** कहलाता है और यह बिन्दु असीमित है ।

प्रथम लहर की तरंगों के साथ ही साथ, अत्यन्त **स्थूल** प्रथम संस्कार का उदय हुआ, जिसने आत्मा को प्रत्यक्षरूप में अनन्त के अत्यन्त परम विपक्षी (*opposite*) एवं अत्यन्त परिमित स्थूल प्रतिरूपवत् प्रस्तुत किया ।

प्रथम लहर के इस अत्यन्त स्थुल प्रथम संस्कार के कारण, अनन्त आत्मा को प्रथम बार **अनुभव प्राप्त हुआ** । अनन्त आत्मा को जो यह प्रथम अनुभव हुआ वह यह था कि आत्मा (*soul*) ने अपनी अनन्त, संस्काररहित, अचैतन्य अवस्था के साथ अपनी एकरूपता में एक विपरीतता का अनुभव किया ।

विपरीतता के इस अनुभव ने अनन्त आत्मा की सनातन,

† इसका भावार्थ यह है कि अनन्त की छाया अत्यन्त परिमित बिन्दु से होकर निकली अथवा उससे रस कर बाहर आई ।

In the infinite, both finite and infinite are included.

Now was this first urge infinite or finite, and was it at first finite and then infinite or vice versa?

The first urge was most finite, but this first urge was of the Infinite.

This most finite first urge was of the infinite Ocean-Paramatma, and the manifestation of this latent most finite first urge of the Infinite was restricted to a most finite point in the infinite, unlimited Ocean.

But as this most finite point of manifestation of the latent first urge, which was most finite too, was in the infinite, unlimited Ocean, this most finite point of manifestation of the first urge was also unlimited.

Through this most finite point of manifestation of the first urge (also most finite), the shadow of the infinite (which shadow, when of Reality, is infinite) gradually appeared† and went on expanding.

This most finite point of manifestation of the latent first urge is called the "*Om*" **Point** or **Creation Point** and this point is unlimited.

Simultaneously with reverberations of the first urge, the most gross first impression emerged, objectifying the soul as the most absolute opposite and most finite gross counterpart of the infinite.

Because of this most gross first impression of the first urge, the infinite Soul **experienced** for the first time. This first experience of the infinite Soul was that it (the Soul) experienced a contrariety in its identity with its infinite, impressionless, unconscious state.

This experience of contrariety effected changeableness in the eternal, indivisible stability of the infinite Soul, and spontaneously there

† The sense to be conveyed is that the shadow of the infinite seeped through or oozed out of the most finite point.

अखण्ड्य सुस्थिरता में विकार पैदा कर दिया, और तत्क्षण एक प्रकार का विस्फोट सा हुआ, जिसने अनन्त आत्मा के अखण्ड्य सन्तुलन और अचैतन्य शान्ति को एक ऐसी **ठमक अथवा भीषण धक्का** से भंग कर दिया जिससे अचैतन्य आत्मा की अचेतनता प्रथम बार ऐसी चेतना से भर गई कि आत्मा **परमात्मा** की अखण्ड्य अवस्था से प्रत्यक्षरूप से पृथक् है । परन्तु चूँकि आत्मा अनन्त है, इसलिये उसकी प्रथम चेतना, जो उसको उसकी प्रत्यक्ष पृथक्ता के परम विपरीत एवं अत्यन्त स्थूल प्रथम संस्कार की ठमक अथवा धक्का से प्राप्त हुई थी, स्वाभाविकतया तथा अनिवार्य रूप से **परिमित** प्रथम चेतना थी ।

आत्मा को प्राप्त हुई यह प्रथम चेतना आत्मा की खुद की मूल अनन्त अवस्था के परम द्वन्द्वों के अनुभव के अनुपात में स्पष्टतया अत्यन्त अत्यन्त-परिमित है ।

तब इसका यह अर्थ है कि प्रारम्भ में, जबकि संस्काररहित अनन्त आत्मा पहले पहल संस्कारयुक्त हुई, आत्मा को अपने प्रथम संस्कार के रूप में एक बिल्कुल स्थूल संस्कार प्राप्त हुआ । और, जो प्रथम चेतना आत्मा को प्राप्त हुई वह अत्यन्त अत्यन्त-परिमित थी ।

उसके साथ-साथ उस क्षण, अनन्त आत्मा की अचेतना को अत्यन्त-स्थूल प्रथम संस्कार की अत्यन्त अत्यन्त-परिमित प्रथम चेतना का यथार्थ अनुभव प्रप्त हुआ ।

इस अनन्त एवं सनातन आत्मा को चेतना तो प्राप्त हुई, किन्तु संस्कार के द्वारा प्राप्त यह चेतना, आत्मा की **सनातन** अवस्था अथवा उसकी अनन्त सत्ता (*Self*) की चेतना न थी बल्कि वह अत्यन्त-स्थूल संस्कार द्वारा प्राप्त, अत्यन्त परिमित की चेतना थी ।

अब, जैसाकि बाद में समझाया जायगा, यदि आत्मा को संस्कारों की चेतना है तब आत्मा को **अवश्य ही अनिवार्यरूप से इन संस्कारों का अनुभव करना चाहिये,** और संस्कारों का अनुभव करने के लिये, आत्मा की चेतना को उनका अनुभव उचित माध्यम के द्वारा करना आवश्यक है ।

जैसे संस्कार होते हैं, वैसे ही संस्कारों के अनुभव होते हैं और उसी प्रकार से संस्कारों का अनुभव करने के लिये वैसे ही उचित माध्यम होना आवश्यक हैं । संक्षेप में, संस्कार अनुभवों को जन्म देते हैं, और संस्कारों का अनुभव करने के लिये उचित माध्यम का प्रयोग करने की आवश्यकता होती है ।

(१२)

occurred a sort of eruption, disrupting the indivisible poise and the unconscious tranquility of the infinite Soul with a **recoil or tremendous shock** which impregnated the unconsciousness of the unconscious Soul with first consciousness of its apparent separateness from the indivisible state of *Paramatma*. But the Soul being infinite, the first consciousness that it derived from the recoil or shock of an absolutely opposite and most gross first impression of its apparent separateness was naturally and necessarily **finite** first consciousness.

This first consciousness derived by the Soul is obviously most, most-finite in proportion to the experience of the absolute opposites of its own original infinite state.

It then means that in the beginning, when the impressionless infinite Soul was first impressioned, it got as its first impression an absolutely gross impression. And the first consciousness it (the Soul) derived was most, most-finite.

Simultaneously at that instant, the unconsciousness of the in-finite Soul actually experienced most, most-finite first consciousness of the most-gross first impression.

This infinite and eternal Soul did get consciousness, but this consciousness by impression was not of its **eternal** state or its infinite Self but was of the most-finite, by the most-gross impression.

Now as will be explained later, if the soul is conscious of impressions (*sanskaras*) then the soul **must necessarily experience these impressions,** and in order to experience the impressions, the consciousness of the soul must experience them through proper media.

As the impressions are, so are the experiences of impressions and so must be the media to experience the impressions. That is, the impressions give rise to experiences, and to experience the impressions the use of appropriate media is necessitated.

इसलिये चूँकि अनन्त, सनातन और निराकार आत्मा को अब अत्यन्त, अत्यन्त-स्थुल प्रथम संस्कार की अत्यन्त, अत्यन्त-परिमित प्रथम चेतना प्राप्त है, इसलिये यह बिल्कुल स्पष्ट और अनिवार्य है कि आत्मा की इस अत्यन्त, अत्यन्त-परिमित प्रथम चेतना को अत्यन्त, अत्यन्त-स्थूल प्रथम संस्कार का अनुभव करने के लिये अत्यन्त, अत्यन्त-परिमित तथा अत्यन्त, अत्यन्त-स्थूल **प्रथम** माध्यम का उपयोग करना होगा ।

इस स्थिति में सीमित मानवी समझ के लिये यहाँ यह उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि आत्मा की अत्यन्त, अत्यन्त-परिमित प्रथम चेतना ने, अत्यन्त, अत्यन्त-स्थूल प्रथम संस्कार का अनुभव करते समय, अपनेआप को एक अत्यन्त, अत्यन्त-परिमित तथा अत्यन्त, अत्यन्त-स्थूल समुचित माध्यम में केन्द्रित किया, और आत्मा (निराकार) को इस अत्यन्त, अत्यन्त-स्थूल तथा अत्यन्त, अत्यन्त-परिमित सीमित शरीर (*form*) से अपने प्रथम माध्यम के रूप में साहचर्य करने के लिये एवं अपनी अनन्त, सनातन सत्ता (*Self*) से एकरूपता स्थापित करने के लिये अगम्यरूप से प्रवृत्त किया ।

अखण्ड्य आत्मा की प्रथम चेतना, प्रथम माध्यम के द्वारा प्रथम संस्कार का अनुभव करती हुई, आत्मा में प्रथम शरीर के साथ साहचर्य करने तथा उसके साथ अपनी सनातन, अनन्त सत्ता की एकरूपता करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करती है, और वह प्रथम शरीर अत्यन्त-परिमित एवं अत्यन्त-स्थूल है, जो विपरीतता के बीज के रूप में था, और जो प्रथम लहर की तरङ्गों से स्वतः बो गया था और प्रथम बार, दुई की शकल में, अगोचररूप से अंकुरित तथा प्रकट हुआ था । जब आत्मा, अपनी नई प्राप्त हुई चेतना के द्वारा, अपना साहचर्य और अपनी एकरूपता परिमित, स्थूल शरीर अथवा माध्यम से करती है, तब आत्मा की चेतना अनन्त, सनातन, अखण्ड्य निराकार आत्मा को सचमुच ऐसा अनुभव कराती है कि वह वही परिमित, स्थूल शरीर है ।

इस प्रकार, अचैतन्य आत्मा द्वारा प्राप्त की गई चेतना, परमात्मा से एकता एवं अभिन्नता के द्वारा **सत्यता** का अनुभव करने की बजाय, स्थूल शरीर के साथ अपनी अभिन्नता एवं द्वैत के द्वारा **माया** का अनुभव करती है, और स्थूल शरीर के साथ साहचर्य करती हुई तथा त्रमशः अधिक और अधिक चेतना प्राप्त अथवा विकसित करती हुई वह अनुभवों की शृङ्खला में विविध, असंख्य संस्कारों की वृद्धि करती है ।

(१३)

Therefore as the infinite, eternal and formless Soul now has the most, most-finite first consciousness of the most, most-gross first impression, quite obviously and necessarily this most, most-finite first consciousness of the soul must utilize the most, most-finite and most, most-gross **first** medium to experience the most, most-gross first impression.

At this stage it suffices to mention here for the limited human understanding that the most, most-finite first consciousness of the soul, while experiencing the most, most-gross first impression, centred itself in an appropriate most, most-finite and most, most-gross medium, imperceptibly tending the Soul (without form) to associate and identify its very infinite, eternal Self with this most, most-gross and most, most-finite limited form as its first medium.

The first consciousness of the indivisible Soul, experiencing the first impression through the first medium, creates a tendency in the soul to associate and identify its eternal, infinite Self with the first form, the most-finite and most-gross, which was as the seed of the contrariety, spontaneously sown by the reverberations of the first urge, imperceptibly germinated and manifested, for the first time, in the shape of duality. When it is made to associate and identify itself, by its newly gained consciousness, with the finite, gross form or medium, the consciousness of the soul actually makes the infinite, eternal, indivisible Soul without form experience that it is that finite, gross form.

Thus the consciousness gained by the unconscious soul, instead of experiencing **reality** through unity and identity with the Over-Soul, experiences **illusion** through duality and identity with the gross form, multiplying diverse, innumerable impressions in a series of experiences while associating with the gross form and gradually gaining or evolving more and more consciousness.

आत्मा द्वारा प्राप्त की गई चेतना विकास की प्रक्रिया के द्वारा किस प्रकार क्रमशः विकसित होती है, इस बात को और अधिक स्पष्टरूप से तथा यथातथ समझाने के लिये, हम चैतन्य आत्मा की उस अवस्था की परीक्षा करें जहाँ आत्मा की चेतना अपना साहचर्य पत्थर-योनि से अत्यन्त-सीमित और अत्यन्त-स्थूल माध्यम के रूप में करती है, और इस प्रकार आत्मा अपने को पत्थर ही मानने लगती है ।

यथार्थ में आत्मा की चेतना, विविध योनियों के माध्यम से विविध अनुभव केवल असंख्य कालचक्रों और युगों तक करने के बाद, पत्थर-योनि का प्रयोग करती है, जिसकी अत्यन्त अत्यन्त-सीमित और अत्यन्त अत्यन्त-स्थूल गैस रूप **सात मुख्य** योनियाँ होती हैं, जिन्हें साधारण लोग न तो ठोस रूप से समझ सकते हैं और न उनकी कल्पना कर सकते हैं ।

हम अपनी सुविधा के लिये ही, चैतन्य आत्मा की उस अवस्था से पारम्भ करते हैं जबकि वह पत्थर-योनि से साहचर्य तथा अपनी एकरूपता करने लगती है ।

पत्थर-योनि में भी विविध उपजातियाँ होती हैं, और आत्मा की चेतना को, आत्मा के संस्कारों की ोवोवधता के अनुसार, एक के बाद एक, इन सब उपजातियों का उपयोग समुचित माध्यम के रूप में उन विविध और असंख्य संस्कारों का अनुभव करने के लिये करना पड़ता है जो पत्थर-योनि में एक के बाद एक संचित होते हैं ।

यदि हम पत्थर को अत्यन्त-स्थूल संस्कारों के लिये एक माध्यम मानते हैं, तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आत्मा, जो शाश्वतः परमात्मा में स्थित है, अब अत्यन्त-परिमित चेतना के साथ अत्यन्त-स्थूल संस्कारों का अनुभव पत्थर-योनि के माध्यम से करती है ।

इस प्रकार से ही अनन्त, अखण्ड्य, सनातन आत्मा (निरकार) जो शाश्वतः परमात्मा में स्थित है, अपनी ही अत्यन्त-परिमित चेतना के द्वारा, अत्यन्त-परिमित स्थूल संस्कारों का अनुभव करती हुई, पत्थर की "सर्व-प्रथम" (*first-most*), अर्थात् प्रथम से प्रथम, अपजाति के अत्यन्त-परिमित स्थूल माध्यम का उपयोग करती है, और इस प्रकार आत्मा को अगोचररूप से, यद्यपि सहजतया, अपने को पत्थर मानना पड़ता है ।

युगों और कालचक्रों के बाद अत्यन्त-परिमित स्थूल चेतना, पत्थर की सर्व-प्रथम उपजाति से आत्मा के अपनी एकरूपता करने के द्वारा

In order to understand more clearly and concretely how the consciousness gained by the soul gradually develops through the process of evolution, let us examine that state of the conscious soul where the consciousness of the soul associates itself with stone-form as the most-finite and most-gross medium, and the soul thus begins to identify itself as stone.

Actually the consciousness of the soul utilizes the stone-form only after innumerable cycles and ages of diverse experiences through diverse species of forms, of which there are **seven major** different kinds of most, most-finite and most, most-gross gaseous forms, which cannot even be concretely grasped nor imagined by ordinary human beings.

It is for convenience that we begin with that state of conscious soul when it just begins to associate and identify itself with stone-form.

In stone-form, too, there are varied species, and the consciousness of the soul has to utilize each and all of these species as appropriate media, one after the other, in accordance with the diversity of impressions of the soul, to experience varied and countless impressions gathered one after the other in stone-form.

If we take stone as a medium for most-gross impressions, it follows that the soul, which is eternally in the Over-Soul, now with most-finite consciousness experiences most-gross impressions through the medium of stone-form.

It is thus that the infinite, indivisible, eternal soul (without form) which is eternally in the Over-Soul, while experiencing the most-finite gross impressions through its own most-finite consciousness, utilizes the most-finite gross medium of the first-most species of stone ("first-most" meaning the very, very first), and the soul is thus imperceptibly, though spontaneously, made to identify itself as stone.

After ages and cycles the most-finite gross consciousness is gradually much more evolved in the soul by innumerable and varied

अत्यन्त-स्थूल परिमित संस्कारों के असंख्य और विविध अनुभव करने से, आत्मा में क्रमशः बहुत अधिक विकसित होती है । अन्ततः, जब अनुभव प्राप्त करने की एक हद आ जाती है, तब पत्थर की सर्व-प्रथम उपजाति से आत्मा की एकरूपता क्रमशः अलग हो जाती है और वह पत्थर-योनि छूट जाती है ।

अब आत्म एक अवधि तक बिना किसी माध्यम के बनी रहती है; यद्यपि अत्यन्त-परिमित चेतना, जो विकसित हो चुकी है, अभी छोड़ी हुई पत्थर-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के अत्यन्त-स्थूल परिमित संस्कारों के साथ-साथ बनी रहती है ।

इस प्रकार आत्मा को, जो अब बिना किसी माध्यम अथवा रूप के है, अत्यन्त-परिमित संस्कारों की चेतना होती है किन्तु जब तक चेतना संस्कारों में केन्द्रित रहती है, तब तक आत्मा को उन संस्कारों का अनुभव करना अनिवार्य होता है ।

इसलिये, त्यागी हुई पत्थर-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों का अनुभव करने के लिये, त्यागी हुई पत्थर-योनि के संस्कारों में केन्द्रित आत्मा की चेतना पत्थर-योनि की सर्वप्रथम-अगली (*most-next*) अपजाति से साहचर्य करने लगती है । आत्मा पत्थर की इस उपजाति से अपनी एकरूपता करती है, और आत्मा की चेतना पत्थर-योनि की सर्वप्रथम-अगली उपजाति के नवीन माध्यम से साहचर्य करने के द्वारा, पत्थर-योनि की सर्व-प्रथम (*most-first*) उपजाति के संस्कारों का अनुभव करने लगती है ।

इस स्थल पर समझने के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिस समय आत्मा की चेतना एक शरीर अथवा माध्यम से अपनी एकरूपता अलग करती है और इस प्रकार त्यागे हुये शरीर के केवल संस्कार अपने में बनाये रखती है, तो इन संस्कारों का अनुभव अन्य समुचित माध्यम के द्वारा किया जाता है जबकि आत्मा की चेतना अगले माध्यम अथवा शरीर से अपना साहचर्य करती है । किन्तु यह अगला माध्यम अथवा रूप सदैव योनि की अन्तिम उपजाति के एकीकृत संस्कारों से निर्मित एवं ढला होता है, जिस अन्तिम उपजाति से आत्मा ने साहचर्य किया था तथा अपनी अभिन्नता स्थापित की थी और जिन संस्कारों को आत्मा की चेतना शरीर से पृथक् होने पर भी अपने में बनाये रही थी ।

इस प्रकार असंख्य संस्कारों के असंख्य विविध अनुभव, जिनका

experiences of the most-gross finite impressions through the identification of the soul with the first-most species of stone. Eventually, when a limit to having experiences is reached, the identification of the soul with the first-most species of stone is gradually dissociated and that stone-form is dropped.

The soul remains now for a period without any medium, though the most-finite consciousness which has been evolved remains together with the most-gross finite impressions of the most-first species of stone-form just shed.

Thus the soul, now without any medium or form, is conscious of the most-finite impressions (*sanskaras*). But as long as consciousness is centred in impressions, the soul must necessarily experience those impressions.

Therefore, in order to experience the impressions of the most-first species of stone-form dropped, the consciousness of the soul centred in the impressions of the dropped stone-form begins to associate with the most-next species of stone-form. The soul identifies itself with this species of stone, and the consciousness of the soul begins to experience, through association with the new medium of the most-next species of stone-form, the impressions of the most-first species of stone-form.

The most important point to be understood here is that when the consciousness of the soul dissociates its identification from one form or medium and retains only the impressions of the form so dissociated, these impressions are experienced through another appropriate medium when the consciousness of the soul associates with the next medium or form. But this next medium or form is al-ways created and moulded of the consolidated impressions of the last species of form with which the soul associated and identified itself and which (impressions) were retained by the consciousness of the soul even when dissociated from the form.

Thus, innumerable diverse experiences of countless impressions experienced by the consciousness of the soul through diverse species of

अनुभव आत्मा की चेतना, एक के बाद एक, पत्थर-योनि की विविध और असंख्य उपजातियों के माध्यम से करती है, आत्मा की चेतना के अधिकतर विकास की ओर अग्रसर करते हैं ।

युगों और कालचक्रों तक इस प्रकार अनुभव करने के बाद, अन्ततः एक स्थिति आती है जिसमें आत्मा की चेतना की प्रवृत्ति आत्मा को पत्थर-योनि की सबसे-अन्तिम (*most-last*) उपजाति से भी पृथक् करने के लिये होती है; और यद्यपि आत्मा पत्थर-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से पृथक् हो जाती है अथवा उसे त्याग देती है, तथापि अब तक विकसित हुई अत्यन्त-परिमित चेतना त्यागी हुई पत्थर-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के अत्यन्त-परिमित स्थूल संस्कारों के साथ बनी रहती है ।

आत्मा को, जो अब बग़ैर किसी माध्यम अथवा शरीर के है, पत्थर-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के अत्यन्त-परिमित स्थूल संस्कारों की चेतना होती है । आत्मा को इन संस्कारों का अनुभव अनिवार्यरूप से करना पड़ता है ।

अब, सबसे-अन्तिम पत्थर-योनि के संस्कारों का अनुभव करने के लिये, आत्मा अन्य माध्यम से (धातु-योनि से) साहचर्य करती है तथा अपनी एकरूपता स्थापित करती है । धातु-योनि का यह माध्यम पत्थर-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों का पिण्ड मात्र है । दूसरे शब्दों में, धातु-योनि की सर्वप्रथम-उपजाति (*most-first species*) पत्थर-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों से निर्मित और ढली होती है ।

इस प्रकार से ही अनन्त, सनातन निराकार आत्मा, जो शाश्वतः परमात्मा में स्थित है, विकसित चेतना के द्वारा पत्थर-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के अत्यन्त-स्थूल परिमित संस्कारों का अनुभव करती है जिस दौरान में वह धातु-योनि की सर्व-प्रथम (*most-first*) उपजाति के साथ अपना साहचर्य एवं अपनी एकरूपता करती है ।

धातु-योनि की विविध उपजातियों होती हैं जिस प्रकार से पत्थर-योनि की होती है, और आत्मा की चेतना, विविध और असंख्य संचित संस्कारों का अनुभव करने के लिये, धातु-योनि की इन विविध असंख्य उपजातियों का उपयोग माध्यमों के रूप में करती है । इस प्रकार आत्मा की चेतना का विकास, विविध माध्यमों अथवा योनियों की

stone-forms, one after the other, lead to the greater evolution of consciousness of the soul.

Ultimately a stage is reached after ages and cycles of experiences where the consciousness of the soul has a tendency to dissociate the soul even from the most-last species of stone-form; and, although the most-last species of stone-form is dissociated or dropped by the soul, the most-finite consciousness evolved thus far remains together with the most-finite gross impressions of the most-last species of stone-form dropped.

The soul, now without any medium or form, is conscious of the most-finite gross impressions (*sanskaras*) of the most-last species of stone-form. The soul must necessarily experience these impressions.

Now, in order to experience the impressions of the most-last stone-form, the soul associates and identifies with another medium—the metal-form. This medium of metal-form is but the mould of the impressions of the most-last species of stone-form. In other words, the most-first species of metal-form is created and moulded of the most-last species of stone-form impressions.

It is thus that the infinite, eternal soul without form, which is eternally in the Over-Soul, experiences through evolved consciousness the most-gross finite impressions of the most-last species of stone-form while associating and identifying itself with the most-first species of metal-form.

There are diverse species of metal-form just as there are of stone-form, and the consciousness of the soul utilizes these diverse innumerable species of metal-form as media through which to experience the diverse and innumerable impressions gathered. Thus the evolution of the consciousness of the soul gains and gathers momentum in proportion to

उपजातियों के द्वारा, विविध और असंख्य संस्कारों के विविध एवम् बहुगुने अनुभवों के अनुपात में गति प्राप्त एवम् संचित करता है ।

इस प्रकार से ही आत्मा की चेतना के विकास-चक्र, निम्नतर और निम्नतर उपजातियों के त्यागी हुई योनियों के संस्कारों को अनुभव और ख़र्च करते हुये, उच्चतर और उच्चतर उपजातियों के रूपों के विकास के साथ-साथ और अधिक एवं महानतर चेतना का विकास करते जाते हैं ।

आत्मा की चेतना पत्थर-योनि की अन्तिम-से-अन्तिम उपजाति के सभी संस्कारों को धातु-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के माध्यम से अनुभव एवम् ख़र्च करती है । जब पत्थर-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के सब संस्कार ख़र्च हो जाते हैं, तब आत्मा की चेतना अपने को धातु-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति से पृथक् कर लेती है, और वह उस शरीर को त्याग देती है । परन्तु अब चेतना धातु-योनि* की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कार अपने में बनाये रखती है ।

चैतन्य आत्मा धतु-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के इन संस्कारों का अनुभव अब धातु-योनि की सर्वप्रथम-अगली उपजाति से अपना साहचर्य एवम् अनन्यता करने के द्वारा करती है । यह योनि धातु-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड है, जिस उपजाति को चैतन्य आत्मा ने त्याग दिया है अथवा अपने से पृथक् कर दिया है । इस प्रकार धातु-योनियों की विविध उपजातियों की एक शृङ्खला का सृजन होता है और आत्मा (अथवा और अधिक ठीक अर्थ में, आत्मा की चेतना) धातु-योनि की प्रत्येक उपजाति से साहचर्य करती है तथा पृथक् होती है, और इस प्रकार विविध संस्कार ख़र्च करती तथा प्राप्त करती है । इन संस्कारों का अनुभव करती हुई, आत्मा, योनियों की उच्चतर

* [पाठक को यह न सोचना चाहिये कि वर्णन में बहुधा प्रदर्शित शब्द "mosts", जैसे कि *most-first, most-next, most-finite,* दिखावटी अथवा ध्यर्थ हैं क्योंकि किसी योनि की प्रत्येक उपजाति—उदाहरणार्थ, पत्थर—उसी रूप की अत्यन्त-अगली (*most-next*) उपजाति पर जाने के पहले, किंचित् परिवर्तनों के साथ असंख्य बार दोहराई गई है, और इसका भेद प्रगट करना आवश्यक प्रतीत होता था । अत्यन्त-अन्तिम (*most-last*) का प्रयोग अत्यन्त हाल में सामने आये रूप के अर्थ के प्रयोग में लाया गया है, अर्थात् उपजाति का सर्वोच्च और नवीनतम विकासशील रूप, और उसको सबसे निचले पैमाने का रूप न समझना चाहिये । —सम्पादक]

the diverse and multiple experiences of varied and innumerable impressions, through different media or species of forms.

This is how the cycles of evolution of consciousness of the soul go on evolving further and greater consciousness with evolution of forms of higher and higher species, while experiencing and exhausting the impressions of the dissociated forms of the lower and lower species.

The consciousness of the soul experiences and exhausts all the impressions of the most-last species of stone-form through the medium of the most-first species of metal-form. When all the impressions of the most-last species of stone-form are exhausted, the consciousness of the soul dissociates itself from the most-first species of metal-form, and drops that form. But the consciousness now retains the impressions of the most-first species of the metal-form.*

These impressions of the most-first species of the metal-form are now experienced by the conscious soul through its association and identification with the most-next species of metal-form. This form is but the consolidated mould of the impressions of the most-first species of metal-form which was dropped or dissociated by the conscious soul. A chain of varied species of metal-forms is thus created and the soul (or to be more precise, the consciousness of the soul) associates with and dissociates from every species of the metal-form, exhausting and gaining diverse impressions. While experiencing these impressions, the soul evolves more and more consciousness simultaneously with the evolution of the higher and higher species of forms. After ages and cycles, at last the consciousness of the soul associates and identifies itself with the most-last

* [The reader should not think the oft-appearing "mosts," such as most-first, most-next, most-finite, are superfluous or redundant, because each species of a certain form—stone, for instance—has numerous repetitions with slight variations before going on to the most-next species of that same form, and it seemed necessary to differentiate. "Most-last" is used to mean the form most recently encountered, i.e., the highest and latest evolutionary form of the species, and should not be construed as the form furthest down the scale. Ed.]

और उच्चतर जातियों के विकास के साथ-साथ अधिक और अधिक चेतना का विकास करती है । युगों और कालचक्रों के बाद, आखिरकार आत्मा की चेतना धातु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजति से अपना साहचर्य करती और अनन्यता स्थापित करती है, और ऐसा वह धातु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के बिल्कुल पीछे वाली (*most last but one*) उपजाति के संस्कारों का अनुभव करने के लिये करती है, जिस उपजाति को आत्मा ने अभी त्यागा है अथवा पृथक् कर दिया है ।

परमात्मा में शाश्वतः स्थित यह आत्मा, अनन्त और निराकार होती हुई भी, अपने को धातुवत् पाती है ।

धातु-योनि की विविध उपजातियों से अपनी अभिन्नता करती हुई आत्मा साथ-साथ, आत्मा के पत्थर-योनि तथा धातु-योनि के अनुभवों के अनुसार और उनके अनुपात में, स्थूल जगत का अनुभव करने लगती है ।

धातु-योनि, जिसमें धातु की विविध उपजातियों की शृङ्खला सम्मिलित है, ऐसी प्राणरहित, जड़ और ठोस है जैसी कि पत्थर-योनि होती है जिसमें पत्थर की विविध उपजातियों की शृङ्खला सम्मिलित है ।

आत्मा (अथवा अधिक सही अर्थ में, आत्मा की चेतना) पत्थर—और धातु-योनियों की उपजातियों से अपनी तद्रूपता करती हुई, अपने की पत्थर—अथवा—धातु-योनि से एकरूप पाती है और इस प्रकार अपनेआप को प्राणरहित, जड़ एवं ठोस अनुभव करती है, और इन प्राणरहित, जड़ एवं ठोस अवस्थाओं का अनुभव अन्न भुवन में पत्थर—एवम् धातु-योनियों के पूरे विकास के आद्योपान्त करती है ।

आत्मा की ठोस, जड़ अवस्था वह अवस्था है जिसमें जीवन और प्राणशक्ति (*energy*) चेतना के अधिकतर विकास के बावजूद, अब भी प्रसुप्त होते हैं । इसलिये इस ठोस अवस्था में शरीर (*forms*) स्वेच्छा से अपनेआप उधर-उधर हिल-डुल नहीं सकते (अर्थात् वे स्वेच्छापूर्वक चेष्टा नहीं कर सकते), और इसलिये आत्मा की चेतना, इन ठोस योनियों से साहचर्य करती हुई जो जड़ एवं प्राणरहित हैं और जिनमें जीवन व प्राणशक्ति अब भी प्रसप्त हैं, अन्न भुवन में लम्बरूप, सीधे खड़े आसन (*positions*) स्थापित करने की बजाय लेटे हुये, समतल आसन स्थापित करने की ओर प्रवृत्त होती है ।

(१८)

species of metal-form to experience the impressions of the most-last but one species of metal-form that the soul has just dropped or dissociated.

This soul, eternally in the Over-Soul, though being infinite and without form, finds itself as metal.

While identifying itself with diverse species of metal-form the soul begins to experience simultaneously the gross world in accordance with and in proportion to the soul's experiences of the stone-form and the metal-form.

The metal-form, which includes a series of diverse species of metal, is as inorganic, inanimate and solid as the stone-form, which includes a series of diverse species of stone.

The soul, or more precisely, the consciousness of the soul, while identifying itself with the species of stone- and metal-forms, finds itself as one with the stone- or metal-form and thus realizes itself as inorganic, inanimate and solid, and experiences these inorganic, inanimate and solid states throughout the entire evolution of the stone- and metal-forms in the gross world.

The solid, inanimate state of the soul is one in which life and energy are still dormant in spite of greater evolution of consciousness. Hence the forms in this solid state cannot of their own accord move about by themselves (*i.e.*, they cannot have voluntary motion), and therefore the consciousness of the soul, associating with these solid forms which are inanimate and inorganic and with life and energy still dormant in them, tends to assert recumbent, horizontal positions rather than to assert vertical, upright stands or erect positions in the gross world.

After ages and cycles of varied innumerable gross experiences of diverse and innumerable impressions through a variety of species of metal-forms, the consciousness of the soul eventually dissociates itself even from the most-last species of metal-form. Thus the identity of the soul with the most-last species of metal-form is dropped and as usual the

धातु-योनियों की विविध, असंख्य उपजातियों के माध्यम से, विविध और असंख्य संस्कारों के विविध असंख्य स्थूल अनुभव युगों और कालचक्रों तक करने के बाद, आत्मा की चेतना अन्ततः अपने को धातु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से भी पृथक् कर लेती है । इस प्रकार धातु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से आत्मा की अनन्यता अलग हो जाती है और अब पुनः कुछ समय के लिये चैतन्य आत्मा की अनन्यता किसी योनि से नहीं रहती (अर्थात्, अब आत्मा रूपरहित है) ।

चैतन्य आत्मा की इस अवस्था में, जबकि साहचर्य करने के लिये कोई योनि नहीं होती, आत्मा की चेतना केवल धातु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों में केन्द्रित रहती है, जो उपजाति अब त्याग दी गई है ।

इस प्रकार चैतन्य आत्मा को इस अवस्था में—अर्थात् एकरूपता करने के लिये कोई शरीर प्राप्त न होने की अवस्था में—केवल धातु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों की चेतना रहती है ।

चैतन्य आत्मा को, धातु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के इन संस्कारों को, आत्मा की चेतना द्वारा इन संस्कारों का अनुभव किसी उचित माध्यम से करते हुये, ख़र्च करना अनिवार्य है, और धातु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के इन संस्कारों को ख़र्च अथवा शून्य करने के लिये उपयुक्त माध्यम वनस्पति-योनि की सर्व-पथम उपजाति है । वनस्पति-योनि की यह उपजाति केवल धातु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड है ।

अब जबकि आत्मा की चेतना वनस्पति-योनि की सर्व-पथम उपजाति से साहचर्य करती है, तो इस प्रकार चैतन्य आत्माा उस शरीर से अपनी एकरूपता करने के लिये प्रवृत्त होती है और वास्तव में अपने को वनस्पति-योनि की वही उपजाति पाती है, और उसको अपनी इस सत्यता का बिल्कुल स्मरण नहीं रहता कि वह (आत्मा) अनन्त, सनातन एवम् निराकार है—शाश्वतः परमात्मा में स्थित है ।

वनस्पति-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति की इस अवस्था में आत्मा की चेतना अन्न भुवन का अमुभव, क्रमशः पत्थर-योनियों, धातु-योनियों और वनस्पति-योनियों के संस्कारों के अनुसार तथा अनुपात में करती है जिन संस्कारों को उसने अनुभव किया था, और अनुभव करती है ।

इस प्रकार अन्न भुवन का अनुभव करती हुई, आत्मा की यह

conscious soul now is once again temporarily unidentified with any form (*i.e.*, the soul is now without any form).

In this state of the conscious soul, when there is no form with which to be associated, the consciousness of the soul is centred only in the impressions of the most-last species of metal-form, which has now been dropped.

Thus the conscious soul in this state—of having no form for identification—is conscious only of the impressions of the most-last species of metal-form.

The conscious soul must exhaust these impressions of the most-last species of the metal-form by the consciousness of the soul experiencing these impressions through some appropriate medium. And the appropriate medium to spend or exhaust these impressions of the most-last species of metal-form is the most-first species of vegetable-form. This species of vegetable-form is nothing but the consolidated mould of the impressions of the most-last species of the metal-form.

When the consciousness of the soul associates now with the most-first species of vegetable-form, the soul, thus conscious, tends to identify itself with that form and actually finds itself as that species of vegetable-form, quite oblivious of the reality that it (soul) is infinite, eternal and without form—eternally in the Over-Soul (Paramatma).

In this state of the most-first species of the vegetable-form the consciousness of the soul experiences the gross world, in accordance with and in proportion to the impressions it experienced and experiences of the stone-forms, metal-forms and vegetable-form respectively.

चेतना, जो वनस्पति-योनि से अभिन्नता किये है, अब अनुभव करती है कि वह वनस्पति है और आधे जड़ एवम् आधे चेतना गुणों से युक्त है । चैतन्य आत्मा अब इस वनस्पति-रूप के द्वारा अन्न भुवन में एक सीधा, खड़ा आसन ग्रहण करती है । यद्यपि यह शरीर स्वतन्त्ररूप से अपनेआप खड़ा नहीं ही सकता, तो भी यह एक दृढ़ सीधा खड़ा आसन स्थापित करने के लिये दूसरे साधनों का सहारा लेता है । फिर भी, इस शरीर में अब भी आत्मा की चेतना को स्वेच्छिक गति का अनुभव प्रदान करने की क्षमता नहीं होती ।

वनस्पति-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के माध्यम से धातु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कार ख़र्च कर चुकने के बाद, आत्मा की चेतना वनस्पति-योनि की इस सर्व-प्रथम उपजाति को त्याग देती है (अर्थात्, आत्मा की चेतना अपने को वनस्पति-योनि की इस सर्व-प्रथम उपजाति से पृथक् कर लेती है) ।

पुनः, चेतना आत्मा अनुभव करती है कि वह निराकार है, यद्यपि उसमें विकसित चेतना विद्यमान है । आत्मा की यह विकसित चेतना अब अभी त्यागी अथवा विच्छिन्न की गई वनस्पति-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों में केन्द्रित है ।

वनस्पति-योनि की इस सर्व-प्रथम उपजाति के इस संस्कारों का अनुभव करने के लिये, आत्मा की चेतना, जो अब शरीररहित है, एक उपयुक्त माधम का उपयोग करती है, जो वनस्पति-योनि की सर्वप्रथम-अगली उपजाति है । वनस्पति-योनि की यह सर्वप्रथम-अगली उपजाति वनस्पति-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड ही है ।

वनस्पति-योनि की सर्व-प्रथम अगली उपजाति के माध्यम से साहचर्य करने के द्वारा, आत्मा की चेतना अन्न भुवन में वनस्पति-योनि की अभी त्यागी गई उस अन्तिम पिजाति के संस्कारों का अनुभव करती है । जब ये संस्कार विविध अनुभवों के द्वारा ख़र्च हो जाते हैं, तो आत्मा की चेतना वनस्पति-योनि की सर्वप्रथम-अगली उपजाति से अपना साहचर्य त्याग देती है और पुनः अनुभव करती है कि वह (आत्मा) शरीर से रहित है और उसकी चेतना केवल योनि की उस आख़ीर में त्यागी गई उपजाति के संस्कारों में केन्द्रित है । पुनः, इन संस्कारों का अनुभव करने के लिये आत्मा की चेतना आत्मा को वनस्पति-योनि की अगली

While thus experiencing the gross world, this consciousness of the soul, identified with the vegetable-form, realizes now that it is vegetable and has half inanimate and half animate attributes. The conscious soul now asserts in the gross world through this vegetable-form an upright, erect stand. Although this form cannot stand independently by itself, it uses the support of other media to assert an upright stand. This form is still not capable, however, of giving the experience of voluntary movement to the consciousness of the soul.

After the impressions of the last-most species of the metal-form are exhausted by the consciousness of the soul through the most-first species of vegetable-form, this most-first species of vegetable-form is dropped (i.e., the consciousness of the soul dissociates itself from this most-first species of vegetable-form).

Again the conscious soul realizes that it is without a form al-though the evolved consciousness is there. This evolved consciousness of the soul is now centred in the impressions of the most-first species of the vegetable-form just dropped or dissociated.

To experience these impressions of the most-first species of vegetable-form, the consciousness of the soul, now without any form, utilizes an appropriate medium, which is the most-next species of the vegetable-form. This most-next species of the vegetable-form is nothing but the consolidated mould of the impressions of the most-first species of vegetable-form.

By association with the medium of the most-next species of vegetable-form, the consciousness of the soul experiences in the gross world the impressions of that last species of the vegetable-form just dropped. When these impressions are exhausted through diverse experiences, the consciousness of the soul relinquishes its association with the most-next species of vegetable-form and again experiences that it (the soul) is without gross form and that its consciousness is centred only in the impressions of that species of form last dropped. Again, to experience these impressions the consciousness of the soul tends the soul to identify with the next species of vegetable-form. This chain of impressions, experiences and species of form, from one form to another, is so linked that it is apparently endless; and the consciousness of the soul, in order to

उपजातियों से अनन्यता स्थापित करने के लिये प्रवृत्त करती है । एक शरीर से दूसरे शरीर में, संस्कारों, अनुभवों एक योनि की उपजातियों की यह शृङ्खला ऐसी जुड़ी होती है कि वह स्पष्टतः अनन्त है; और आत्मा की चेतना को, अपना पूर्ण एवं भरपूर विकास करने के लिये, इस दुष्ट चक्र में फँसने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रहता, जब तक कि इस प्रकार प्राप्त हुई आत्मा की चेतना, आत्मा को बलपूर्वक यह अनुभव नहीं कराती कि आत्मा अनन्त, सनातन परमात्मा में शाश्वतः स्थित है, तथा आत्मा को अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान एवम् अनन्त आनन्द का अनुभव नहीं कराती ।

जो बात महत्वपूर्ण और सावधानी से ध्यान में रखने योग्य है, वह यह है कि जैसे-जैसे आत्मा की चेतना का विकास-चक्र आगे और आगे को घूमता है, और अगमे (*further*) एवम् अधिकतर संस्कारों के अनुभवों के द्वारा और आगे तथा और अधिक चेतना का विकास करता है, वैसे ही वैसे चेतना का यह विकास, निम्नतर और निम्नतर उपजातियों के संस्कार ख़र्च करते हुये जो उपजातियाँ छूटती अथवा विच्छिन्न होती जाती हैं, अनिच्छित रूप से ऊँची और ऊँची उपजातियों के शरीरों की एक शृङ्खला का विकास करता है ।

इस प्रकार किसी ख़ास योनि की, जैसे पत्थर-योनि अथवा धातु-योनि अथवा वनस्पति-योनि अथवा अन्य योनियों की, उपजातियों की शृङ्खला के आदि और अन्त के बीच की दरार, जिसका प्रारम्भ ख़ास प्रकार की योनि की निम्नतम अथवा अपरिपक्व सर्व-पथम उपजाति से होता है और अन्त उस ख़ास प्रकार की योनि की सर्वोच्च अथवा सर्वोत्कृष्ट-अन्तिम उपजाति में होता है, क्रमशः उच्चतर और उच्चतर प्रकार के रूपों के विकास के द्वारा भरती जाती है जो (शरीर) संस्कारों के लिये उपयुक्त होते हैं और आत्मा की चेतन को उच्चतर और उच्चतर चेतना की प्राप्ति में सहायक होते हैं । संक्षेप में, किसी ख़ास योनि के रूप की सर्व-प्रथम और सबसे-अन्तिम **उपजाति** के बीच में, उस ख़ास योनि के रूपों की विविध उपजातियाँ होती हैं, जिनका विकास आत्मा की विकसित होती हुई चेतना की आवश्यकताओं के अनुरूप होता है ।

अपने विषय पर आकर, जब आत्मा की चेतना वनस्पति-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से अपना साहचर्य करती है तब चेतन आत्मा वनस्पति-योनि की इस सबसे-अन्तिम उपजाति से अपनी तद्रूपता स्तापित

evolve itself fully and completely, has no other course but to become entangled in this vicious circle until, perforce, the consciousness of the soul thus gained, makes the soul realize that it is infinite, eternal and eternally in the Over-Soul, and makes the soul experience infinite power, knowledge and bliss.

The point that is important and which is to be carefully noted is that, as the cycle of evolution of consciousness of the soul rolls on and on, and further and greater consciousness is evolved through experiences of further and greater impressions, this evolution of consciousness inadvertently evolves a series of forms of higher and higher species while exhausting the impressions of the lower and lower species that get dissociated or dropped or shed.

Thus the gap between the beginning and the end of a series of species of one particular form, such as stone-form or metal-form or vegetable-form or other forms, beginning with the lowest or crude most-first species of a form of particular kind and ending with the highest or sublime most-last species of form of that particular kind, is progressively filled in by the evolution of forms of higher and higher types suitable to the impressions and aiding the consciousness of the soul to gain higher and higher consciousness. In short, in between the most-first and most-last **species** of form of a particular form, there are diverse species of forms of that particular form, evolved to suit the requirements of the evolving consciousness of the soul.

Coming to the point, when the consciousness of the soul associates itself with the most-last species of vegetable-form, the conscious soul identifies itself with this most-last species of vegetable-form and

करती है और वनस्पति-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के बिल्कुल पीछे वाली (*most last but one*) उपजाति के संस्कारों का अनुभव करती है, जो आख़ीर में त्यागी गई थी ।

जब वनस्पति-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के बिल्कुल पीछे वाली इस उपवाति के सब संस्कार ख़र्च हो जाते हैं, तब चेतन आत्मा वनस्पति-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से अपनी अनन्यता नहीं रखती क्योंकि आत्मा की चेतना ने अपने को वनस्पति-योनि की उस सबसे-अन्तिम उपजाति से पृथक् कर लिया है । चेतन आत्मा युगों और कालचक्रों तक मन भुवन के द्वारा अखिल वनस्पति जगत के अनुभव, पृथ्वी पर और जल में, करने के बाद, अन्ततः वनस्पति-योनि की इस सबसे-अन्तिम उपजाति को भी त्याग देती है ।

यद्यपि चेतना आत्मा ने वनस्पति-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति को त्याग दिया है और अब आत्मा शरीररहित है, तथापि उसमें विकासत चेतना विद्यमान है, और इस चेतना के द्वारा चेतन आत्मा को (यद्यपि वह निराकार है) अभी त्यागी हुई वनस्पति-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संककारों का भान है ।

ये संस्कार अनिवार्यरूप से ख़र्च अथवा शून्य होते चाहिये ।

इस संस्कारों का अनुभव करने के लिये आत्मा की चेतना अब एक उपयुक्त माध्यम से साहचर्य करती है ताकि वह वनस्पति-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के इन संस्कारों का अनुभव कर सके । इसलिये, आत्मा की चेतना इस प्रकार आत्मा को कोड़ा-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति से अपनी अभिन्नता करने के लिये प्रवृत्त करती है । यह स्मरण रहे कि कोड़ा-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति का यह रूप वनस्पति-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड होने के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है ।

जिस समय चेतना आत्मा इस प्रकार अपना तादात्म्य कीड़ा-योनि की इस सर्व-प्रथम उपजाति से करती है, तब आत्मा अनुभव करती है कि वह वास्तव में कोड़ा है और उसे कोड़ा होने की चेतना हो जाती है ।

अब तक विकसित हुई सम्पूर्ण चेतना के रहते हुये भी, आत्मा को अब भी अपनी यथार्थता की, अपनी मुल, अनन्त, सनातन अवस्था की, शाश्वतः परमात्मा में होने की, चेतना नहीं है । यद्यपि आत्मा शाश्वतः परमात्मा में स्थित है और अनन्त एवम् निराकार है, तथापि

experiences the impressions of the most-last but one species of the vegetable-form that was last shed.

When all the impressions of this most-last but one species of vegetable-form are exhausted, the conscious soul no longer identifies itself with the most-last species of vegetable-form because the consciousness of the soul has dissociated itself from that most-last species of vegetable-form. This most-last species of vegetable-form is also eventually shed by the conscious soul after ages and cycles of experience of the whole vegetable kingdom through the gross world, on the earth and in the waters.

Although the most-last species of vegetable-form is shed by the conscious soul and the soul is now without any form, yet the consciousness evolved is there, and through this consciousness the soul (though without form) is conscious of the impressions of the most-last species of the vegetable-form just shed.

These impressions must necessarily be spent or exhausted.

In order to experience these impressions the consciousness of the soul now associates with an appropriate medium to experience these impressions of the most-last species of the vegetable-form. Therefore, the consciousness of the soul thus tends the soul to identify itself with the most-first species of the worm-form. It must be remembered that this form of the most-first species of worm-form is nothing other than the consolidated mould of the impressions of the most-last species of vegetable-form.

While the conscious soul thus identifies itself with this most-first species of worm-form, the soul realizes that it is actually a worm and becomes worm-conscious.

Despite all of the consciousness so far evolved, the soul is still not conscious of its reality, its original, infinite, eternal state, eternally in the Over-Soul. Although the soul is eternally in the Over-Soul and is infinite and without form, this partially conscious soul actually experiences itself as a worm in the gross world. This is ignorance. This ignorance persists as

यह आशिक-चैतन्य आत्मा अपने को अन्न बुवन में सचमुच कीड़ावत् अनुभव करती है । यह अज्ञानता है । यह अज्ञानता तब तक दृढ़तापूर्वक स्थिर रहती है जब तक कि आत्मा की चेतना पूर्णतया विकसित नहीं हो जाती, किन्तु उस समय भी जबकि आत्मा को पूर्ण चेतना प्राप्त हो जाती है, वह फिर भी अज्ञानता से ढकी कही जाती है क्योंकि यह पूर्णतया विकसित चेतना आत्मा को तत्क्षण आत्मज्ञान प्रदान नहीं करती । इसके विपरीत, जब आत्मा की चेतना पूर्णतया विकसित हो जाती है तब आत्मा अपने को मनुष्य मानने लगती है ।

जब आत्मा की चेतना कीड़ा-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति से अपना साहचर्य करती है, तो वह वनस्पति-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कार अनुभव तथा ख़र्च करती है । जब वनस्पति-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के सब संस्कार उन विविध अनुभवों के द्वारा, जो आत्मा कीड़ा-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति से तादात्म्य रखते हुये प्राप्त करती है, पूर्णतया ख़र्च अथवा शून्य हो जाते हैं, तब कीड़ा-योनि की यह सर्व-प्रथम उपजाति पृथक् अथवा विच्छिन्न हो जाती है और पुनः आत्मा शरीररहित हो जाती है यद्यपि उसको कीड़ी-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों की चेतना रहती है ।

कीड़ा-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के इन संस्कारों का अनुभव एवम् शून्य होना आवश्यक है । इसलिये आत्मा की चेतना अन्य समुचित माध्यम से अपना साहचर्य करती है और आत्मा को कीड़ा-योनि की सर्वप्रथम-अगली उपजाति से तादात्म्य करने के लिये प्रवृत्त करती है । कोड़ा-योनि की सर्वप्रथम-अगली उपजाति का यह माध्यम कीड़ा-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड मात्र है ।

कृमि-योनि की एक के बाद एक उपजातियाँ इस प्रकार ढलती और विच्छिन्न होती जाती हैं जबकि आत्मा की चेतना कृमि-रूपों के विविध उपजातियों के माध्यम से कृमि-रूपों के विविध संस्कारों का अनुभव करने के द्वारा तीव्रता से विकसित होती है ।

जब चेतन आत्मा को कड़ि़ा होने की चेतना होती है और वह अपने को स्थूल जगत में कीड़ावत् अनुभव करती है, तब आत्मा की चेतना को प्रथम बार स्वेच्छिक गति का अनुभव होता है, और उसको यह अनुभव भी होता है कि वह एक चेतन प्राणी है । कृमि-चेतना से युक्त इस आत्मा को अधिक और उच्चतर चेतना प्राप्त करने के अपने

long as the consciousness of the soul is not fully evolved, but even when the soul has come to full consciousness, it is still said to be enveloped by ignorance because this fully evolved consciousness does not make the soul Self-conscious instantaneously. On the contrary, when the consciousness of the soul is fully evolved the soul begins to identify itself as a human being.

While the consciousness of the soul associates itself with the most-first species of worm-form it experiences and exhausts the impressions of the most-last species of the vegetable-form. When all the impressions of the most-last species of vegetable-form are completely exhausted or spent through the diverse experiences had by the soul while identified with the most-first species of worm-form, then this most-first species of worm-form is dropped or dissociated and the soul is once again without any form although it is conscious of the impressions of the most-first species of worm-form.

These impressions of the most-first species of worm-form must be experienced and exhausted. Therefore the consciousness of the soul associates itself with another appropriate medium and tends the soul to identify with the most-next species of worm-form. This medium of the most-next species of worm-form is nothing other than the consolidated mould of the impressions of the most-first species of worm-form.

Species after species of worm-form are thus moulded and dropped while the consciousness of the soul rapidly evolves through experiencing the varied impressions of worm-forms through diverse species of worm-forms.

When the conscious soul is worm-conscious and experiences itself as a worm in the gross world, the consciousness of the soul also has for the first time the experience of voluntary movement, and also experiences that it is an animate creature. This worm-conscious soul in its travail to gain more and greater consciousness also experiences itself in the gross world

घोर प्रयास में अन्न भुवन में यह भी अनुभव होता है कि वह बिना रीढ़वाला प्राणी है, और बाद की स्थिति में रीढ़वाली अन्य अवस्थाओं में, वह अपने को विविध उपजातियों के अंगरहित सरकने वाले कृमि-शरीर अनुभव करती है । कृमि-योनि की अन्य विविध उपजातियों में आत्मा की चेतना सरकने के द्वारा, दो पैरों के द्वारा और कभी कभी पैरों के अनेक जोड़ों के द्वारा, और कभी कभी पैरों के जोड़ों एवम् पङ्खों के द्वारा, स्वेच्छापूर्वक चलने फिरने के अगले विविध अनुभव प्राप्त करती है । कभी-कभी कृमि-चेतना से युक्त आत्मा कृमि-योनि की विविध उपजातियों में अपने को रोयेंदार सतह रखने वाले, कभी कभी चिकनी एवम् रेशमी सतह रखने वाली, और कभी कभी खुरदरी अथवा परतदार सतह (खाल) रखने वाली अनुभव करती है । कृमि-चेतना से युक्त आत्मा अधिक तीक्ष्णतया यह भी अनुभव करती है कि उसको अपनी जीविका तथा अपने जीवन की रक्षा के लिये भी संघर्ष करना है, और उसको ऐन्द्रिय ज्ञान तथा जीवन प्राप्त है ।

कृमि-चेतना युक्त यह आत्मा, कृमि-योनि की विविध उपजातियों के विविध एवं असंख्य संस्कारों के उच्चतर एवं विविध असंख्य अनुभवों के द्वारा चेतना के अधिकतर विकास के साथ, यह भी अनुभव और प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करती है कि वह जल और थल दोनों में रहने वाला प्राणी है—यह कि न केवल वह स्वेच्छापूर्वक पृथ्वी पर चल सकता है बल्कि उसे जल में भी स्वतन्त्रता एवम् गति पाप्त है ।

चेतना के विकास को और स्पष्टरूप से समझने में अपनी ही सुविधा के लिये, हम कीट-योनि में कड़ि (*worms*) की विविध उपजातियाँ, मकोड़ों (*insects*) की विविध उपजातियाँ, रेंगनेवाले जन्तुओं की विविध उपजातियाँ और जल व थल दोनों में रहने वाले जन्तुओं की विविध उपजातियाँ, सम्मिलित करते हैं । संक्षेप में, कृमि-योनि में हम वे सब उपजातियाँ सम्मिलित करते हैं जो सरकने की ओर प्रवृत्त होती हैं अथवा जो अंग, पैर और पख रखते हुये भी सरकती हैं, अथवा जो अन्यथा पक्षियों एवम् चौपायों से भिन्न होती हैं ।

पत्थर-एवम् धातु-योनियों सीधे अथवा खड़े आसन से युक्त न थी । वे लेटे आसनोंवाली योनियों थीं । उनका आसन (*posture*) समतल और पटबल था । वनस्पति-योनि को सीधे और खड़े आसन की स्थिति प्राप्त थी । अब कृमि योनि पुनः पटबल प्रकार की योनि है जो

as an invertebrate, and at a later stage in other states of vertebrate, limbless, creeping worm-forms of diverse species. In other diverse species of worm-form the consciousness of the soul undergoes further varied experiences of voluntary movement through crawling, through pairs of legs and sometimes through multiple pairs of legs, and sometimes through pairs of legs and pairs of wings. Sometimes the worm-conscious soul in varied species of worm-form realizes itself as possessing a hairy surface, sometimes a smooth and silky and sometimes a rough or scaly surface (hide). The worm-conscious soul also realizes more acutely that it has to struggle for its sustenance and also for its survival, and that it is endowed with sensation and life.

This worm-conscious soul, with further evolution of consciousness through greater and varied innumerable experiences of varied and multiple impressions of varied species of worm-form, also experiences and realizes that it is an amphibian—that it has not only voluntary movement on earth but also freedom and mobility in water.

For our own convenience in understanding the evolution of consciousness more clearly, we include in the worm-form the varied species of worms, varied species of insects, varied species of reptiles and varied species of amphibia. In short, we include in the worm-form all species that tend to crawl or that crawl in spite of having limbs, legs and wings, or that are otherwise distinct from birds and quadrupeds.

The stone- and metal-forms had no upright or erect stand. They were recumbent forms. Their posture was flat and horizontal. The vegetable-form had an upright, erect stand. Now the worm-form is again of the

सीधा अथवा खड़ा आसन नहीं रखती बल्कि लम्बा लेटा आसन रखने की ओर उन्मुख है ।

जब आत्मा की चेतना कृमि-योनि की विविध उपजातियों के सब संस्कारों का अनुभव कर चुकने के बाद, कृमि-योनि की अन्तिमतम उपजाति से अपना साहचर्य करती है, और जब चैतन्य आत्मा युगों और कालचक्रों तक अन्न भुवन में असंख्य विविध अनुभव करने के बाद अन्ततः कृमि-योनि की इस सबसे-अन्तिम उपजाति को योनियों के साथ साहचर्य अथवा एकरूपत से रहित पाती है । परन्तु अब आत्मा की चेतना अभी त्यागी हुई कृमि-योनि की सबसे अन्तिम उपजाति के संस्कारों में केन्द्रित है । इन संस्कारों का अनुभव के द्वारा ख़र्च होता अनिवार्य है, और अनुभव प्राप्त करने के लिये एक उपयुक्त माध्यम की आवश्यकता है ।

इसलिये आत्मा की चेतना, कृमि-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों में केन्द्रित होने के कारण, एक समुचित माध्यम से साहचर्य करती है और आत्मा को कृमि-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों को अनुभव एवम् ख़र्च करने के हेतु मछली-येनि की सर्व-प्रथम उपजाति से अपनी एकरूपता करने के लिये प्रवृत्त करती है । मत्स्य-योनि की यह सर्व-प्रतम उपजाति कृमि-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड मात्र है ।

जैसे ही कृमि-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कार अनुभव के द्वारा ख़र्च हो जाते हैं, मत्स्य-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति छूट जाती है अथवा पृथक् हो जाती है क्योंकि आत्मा की चेतना इस सर्व-प्रतम उपजाति से विच्छिन्न हो जाती है और चेतन आत्मा उस उपजाति से और आगे तादात्म्य नहीं रखती ।

यद्यपि चेतन आत्मा अब एक बार फिर से कुछ समय के लिये निराकार होती है, तथापि आत्मा की चेतना मत्स्य-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों में केन्द्रित होती है ।

मत्स्य-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के इन संस्कारों का अनुभव करने के लिये, आत्मा की चेतना एक उपयुक्त माध्यम से अपना साहचर्य करती है, और चेतन आत्मा को मत्स्य-योनि की सर्व-प्रथम-अगली उपजाति से अपनी अभिन्नता करने के लिये प्रवृत्त करती है । यह उपजाति मत्स्य-येनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड मात्र है ।

(२५)

recumbent type of form which has no upright or erect stand but is prone to have a prostrate posture.

When the consciousness of the soul associates itself with the most-last species of worm-form after experiencing all the impressions of the varied species of worm-form, and when the conscious soul eventually drops or sheds this most-last species of worm-form after ages and cycles of multiple diverse experiences in the gross world, the conscious soul again finds itself without any association or identification with forms. But the consciousness of the soul is now centred in the impressions of the most-last species of worm-form just shed. These impressions must necessarily be exhausted through experience, and to get experience a suitable medium is necessary.

Therefore the consciousness of the soul, being centred in the impressions of the most-last species of worm-form, associates with an appropriate medium and tends the soul to identify itself with the most-first species of fish-form in order to experience and exhaust the impressions of the most-last species of worm-form. This most-first species of fish-form is nothing other than the consolidated mould of the impressions of the most-last species of worm-form.

As soon as the impressions of the most-last species of the worm-form are exhausted through experiences, the most-first species of fish-form is dropped or shed because the consciousness of the soul dissociates from this most-first species and the conscious soul no longer identifies itself with that species.

Although the conscious soul is now once again temporarily without form, yet the consciousness of the soul is centred in the impressions of the most-first species of fish-form.

In order to experience these impressions of the most-first species of fish-form, the consciousness of the soul associates itself with a suitable medium and tends the conscious soul to identify itself as the most-next species of fish-form. This species is nothing but the consolidated mould of the impressions of the most-first species of fish-form.

युगों और कालचक्रों के बाद, और मत्स्य-योनियों की विविध एवम् असंख्य उपजातियों के असंख्य विविध संस्कार अनुभव तथा ख़र्च हो चुकने के बाद, आत्मा की चेतना मत्स्य-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से लगी निकटतम पिछली (*most-last but one*) उपजाति के संस्कारों को अनुभव एवम् ख़र्च करने के लिये अन्ततः मत्स्य-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से साहचर्य करती है ।

इस प्रकार मत्स्य-चेतना-युक्त आत्मा, मत्स्य-योनि की विविध उपजातियों से एकरूपता किये हुये, अन्न भुवन में अनुभव करती है कि वह जल के भीतर एक जीवित प्राणी है; जविन, ऐन्द्रिय ज्ञान और स्वेच्छिक गति से सम्पन्न रीढ़वाला एक जन्तु है; सुफ़नों के रूप में परि-वर्तित अंगों (यदि कोई हों) से युक्त एक चेतन प्राणी है; और उसको जीविका तथा जविन की रक्षा के लिये संघर्ष करना है । मत्स्य-चेतना रखने वाली आत्मा सीधे, खड़े आसन का अनुभव नहीं करती बल्कि वह अपने को लम्बायमान प्राणी अनुभव करती है जो कभी भी स्थूल जगत में अपना सिर ऊँचा एवम् खड़ा नहीं कर सकती और न स्थूल जगत में एक सीधा खड़ा दृढ़ आसन रख सकती है ।

जैसे ही आत्मा की चेतना मत्स्य-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से निकटतम पिछली उपजाति के सब संस्कारों को अनुभव तथा ख़र्च कर चुकती है, वैसे ही मत्स्य-चेतनायुक्त आत्मा अन्ततः मत्स्य-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से अपनी अभिन्नता त्याग देती है अथवा विच्छिन्न कर देती है । इस प्रकार चेतन आत्मा पुनः अपने को किसी भी शरीर से तादात्म्य न रखती हुई पाती है, किन्तु आत्मा की चेतना को मत्स्य-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों का भान रहता है ।

मत्स्य-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के इन संस्कारों को अनुभव एवम् ख़र्च करना अनिवार्य होता है, इसलिये आत्मा की चेतना अब अन्य उपयुक्त माध्यम से अपना साहचर्य करती है और इस प्रकार आत्मा को खग-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति से अपना तादात्म्य करने के लिये पवृत्त करती है, जो मत्स्य-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों का केवल मुर्तमान पिण्ड है ।

खग-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति में आत्मा की चेतना मत्स्य-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों को अनुभव एवन् ख़र्च करती है ।

(२६)

After ages and cycles, and after innumerable varied impressions of diverse species of fish-forms are experienced and exhausted, the consciousness of the soul eventually associates itself with the most-last species of fish-form in order to experience and exhaust all the impressions of the most-last but one species of fish-form.

Thus the fish-conscious soul, identifying with varied species of the fish-form, experiences in the gross world that it is a living creature in water; a vertebrate endowed with life, sensation and voluntary motion; an animate creature with limbs (if any) modified into fins; and that it has to struggle for sustenance and for survival.

The fish-conscious soul does not experience an upright, erect stand but it experiences itself as a recumbent that can never hold its head high and erect and assert an upright stand in the gross world.

The fish-conscious soul eventually sheds or drops its identity with the most-last species of fish-form as soon as the consciousness of the soul has experienced and exhausted all the impressions of the most-last but one species of fish-form. Thus the conscious soul once again finds itself without identification with any form. But the consciousness of the soul is conscious of impressions of the most-last species of fish-form.

These impressions of the most-last species of fish-form must be experienced and exhausted, and therefore the consciousness of the soul now associates with another suitable medium and thus tends the soul to identify itself with the most-first species of bird-form, which is but the consolidated mould of the impressions of the most-last species of fish-form.

In the most-first species of bird-form the consciousness of the soul experiences and exhausts the impressions of the most-last species of fish-form.

जब सब संस्कार इस प्रकार शून्य हो जाते हैं तब आत्मा की चेतना अपने को खग-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति से विच्छिन्न कर लेती है, और चेतन आत्मा खग-योनि की सर्व-पथम उपजाति से अपनी तद्रूपता त्याग देती है अथवा पृथक् कर है (अथारत् खग-योनि सर्व-प्रथम उपजाति छूट जाती है) ।

चेतन आत्मा एक बार फिर रूपरहित हो जाती है किन्तु यह चेतना तत्काल त्यागी हुई खग-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों में केन्द्रित रहती है ।

उन संस्कारों को अनुभव तथा ख़र्च करना अनिवार्य है, इसलये आत्मा की चेतना आपहीआप खग-योनि की सर्वप्रथम-अगली उपजाति से साहचर्य करती है और चेतन आत्मा को खग-योनि की सर्वप्रथम-अगली उपजाति से अपना तादात्म्य करने के लिये प्रवृत्त करती है, जो उपजाति खग-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड मात्र है ।

आगे और आगे, युगों और युगों, कालचक्रों और कालचक्रों तक, किसी ख़ास योनि की विविध उपजातियों से क्रमिक साहचर्यों एवम् विच्छिताओं की यह शृङ्खला दृढ़तापूर्वक तथा उत्तरोत्तर आगे को बढ़तौ जाती है, और चेतन आत्मा के अनुभव करने के लिये असंख्य विविध संस्कार उत्पन्न करती है । सीधे अथवा परोक्षरूप से, आत्मा की चेतना के ये साहचर्य एवम् विच्छिन्नतायें चेतना के विकास-चक्र को गतिमान रखने के लिये निपट आवश्यक होते हैं । स्थूल-योनियों का विकास चेतना के विकास के विश्वव्यापी कारखाने में केवल एक उपफल है ।

खग-चेतनायुक्त आत्मा खग-योनि की एक उपजाति से, फिर दुसरी उपजाति से, और फिर खग-योनि की अगली उपजातियों से, नियमित क्रमानुसार, एक के बाद एक, से तादात्म्य करती है जब तक कि आत्मा की चेतना अन्न भुवन में विविध संस्कारों का अनुभव करती हुई खग-योनि की सभी उपजातियों से पारी-पारी से साहचर्य एवम् विच्छिन्नता नहीं कर लेती, और इस प्रकार चेतन आत्मा की विकसित चेतना आत्मा को खग-योनि की प्रत्येक उपजाति में अपने को पक्षी अनुभव करने के लिये प्रवृत्त नहीं करती है । यद्यपि आत्मा शाश्वतः निराकार है और परमात्मा में स्थित है, फिर भी खग-चेतनायुक्त आत्मा अटलतया अनुभव करती है कि वह स्थूल जगत में पृथ्वी पर, जल पर तथा वायु में

When all the impressions are thus exhausted the consciousness of the soul dissociates itself from the most-first species of bird-form, and the conscious soul drops or sheds its identity with the most-first species of bird-form (i.e., the most-first species of bird-form is dropped).

The conscious soul is once again without form but it has consciousness centred in the impressions of the most-first species of bird-form just dropped.

These impressions must be experienced and exhausted, and therefore the consciousness of the soul automatically associates itself with the most-next species of bird-form and tends the conscious soul to identify itself with the most-next species of bird-form, which species is but the consolidated mould of the impressions of the most-first species of bird-form.

On and on, ages after ages and cycles after cycles, this chain of successive associations and dissociations with varied species of a particular form moves onwards steadily and progressively, and gives out innumerable different impressions to be experienced by the conscious soul. Directly and indirectly, these associations and dissociations of the consciousness of the soul are absolutely essential to keep the wheel of evolution of consciousness revolving. The evolution of gross forms is but a by-product in the universal factory of evolution of consciousness.

The bird-conscious soul identifies with one species, then with the next, and then the next species of bird-form, one after the other, in regular succession until all the species of bird-form are associated and dissociated alternately by the consciousness of the soul while experiencing multifarious impressions in the gross world, and thus the evolved consciousness of the conscious soul tends the soul to realize itself as bird in every species of the bird-form. Though the soul is eternally without form and in the Over-Soul, yet the bird-conscious soul consistently realizes that it is no other than a bird in the gross world experiencing bird impressions on earth, on water and in air. It realizes itself as a feathered

खग संस्कारों का अनुभव करती हुई पक्षी के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है । वह अपने को हवा में उड़ने की क्षमता रखने वाला रीढ़दार परिन्दा अनुभव करती है, और दो पैरों की सहायता से वह खड़ा आसन धारण किये रहती है ।

अन्ततः, युगों और कालचक्रों तक खग-योनि की विविध उपजातियों के अनुभव करने के बाद, खग-चेतनायुक्त आत्मा खग-योनि की सबसे-ओन्तम उपजाति त्याग देती है अथवा छोड़ देती है जैसे ही आत्मा की चेतता खग-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से अपने को विविच्छन्न कर लेती है; और आत्मा की चेतना अपने को असी क्षण खग-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से चिच्छिन्न करती है जबकि चेतना खग-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति की निकटतम पिछली (*most-last but one*) उपजाति के सब संस्कार खग-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति में अनुभव एवम् पूर्णतया ख़र्च कर लेती है ।

पुनः, चेतन आत्मा कुछ समय के लिये अपने को निराकार अनुभव करती है, यद्यपि अधिकतर एवम् उच्चतर विकसित हुई चेतना उसमें सदैव विद्यमान रहती है । (एक बार आत्मा को चेतना प्राप्त हो जाने पर, यह चेतना अधिक और अधिक विकसित होती जाती है और इसका ह्रास अथवा अधःपतन कभी नहीं हो सकता) । निराकार आत्मा की यह चेतना अब अभी त्यागी गई खग-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों में केन्द्रित हो जाती है । आत्मा की चेतना की ये संस्कार अनिवार्यरूप से ख़र्च अथवा शून्य करने चाहिये । इसलिये चेतना एक उपयुक्त माध्यम से अपना साहचर्त करती है और इस प्रकार चेतन आत्मा को पशु-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति से अपनी अभिन्नता करने के लिये प्रवृत्त करती है । पशु-योनि की इस सर्व-प्रथम उपजाति के माध्यम से आत्मा की चेतना खग–योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों को अनुभव करती है, जो उपजाति त्याग दी गई थी अथवा जिससे चेतना विच्छिन्न हो गई थी । पशु-योनि की यह सर्व-प्रथम उपजाति त्यागी हुई खग–योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड मात्र है ।

पशु-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के शरीर के माध्यम से खग-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों के असंख्य और विविध अनुभव कर लेने के बाद, आत्मा की चेतना खग-योनि की सबसे-अन्तिम

vertebrate capable of flying in air, and with the help of two legs it maintains an erect stand.

Eventually, after ages and cycles of experiences of varied species of bird-form, the bird-conscious soul sheds or drops the most-last species of bird-form as soon as the consciousness of the soul dissociates itself from the most-last species of bird-form; and the consciousness of the soul dissociates itself from the most-last species of bird-form as soon as the consciousness experiences and fully exhausts all the impressions of the most-last but one species of bird-form in the most-last species of bird-form.

Again the conscious soul experiences itself as being without any form for the time being although the consciousness, evolved further and greater, is always there. (Once consciousness is achieved by the soul, this consciousness goes on evolving more and more and can never be lost or devolved.) This consciousness of the soul without form now gets centralized in the impressions of the most-last species of bird-form just dropped. These impressions must necessarily be spent or exhausted by the consciousness of the soul. Therefore consciousness associates itself with a suitable medium and thus tends the conscious soul to identify itself with the most-first species of animal-form. Through this most-first species of animal-form the consciousness of the soul experiences the impressions of the most-last species of bird-form that was dropped or from which it was dissociated. This most-first species of animal-form is nothing other than the consolidated mould of the impressions of the most-last species of bird-form shed.

After innumerable and diverse experiences of the impressions of the most-last species of bird-form through the form of the most-first species of animal-form, the consciousness of the soul completely exhausts the impressions of the most-last species of bird-form and then automatically

उपजाति के संस्कार पूर्णतया ख़र्च कर चुकती है और तब आपहीआप अपने को पशु-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति की एकरूपता से पृथक् कर लेती है । इस रीति से चेतन आत्मा उस उपजाति का शरीर पृथक् कर देती है, अथवा उस उपजाति का शरीर छूटा या मृत कहा जाता है ।

पुनः, उच्चतर विकसित चेतना से युक्त चेतन आत्मा अपने को शरीर से रहित पाती है, यद्यपि आत्मा की चेतना पशु-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के (अभी त्यागे अथवा पृथक् किये गये) शरीर के संस्कारों में केन्द्रित है ।

आत्मा की चेतना को पशु-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के (अभी पृथक् किये गये) शरीर के इन संस्कारों को अनुभव एवम् ख़र्च करना आवश्यक है, जिससे चेतन आत्मा को किसी योनि के किन्हीं संस्कारों का भान न रहे, किन्तु उसको केवल अपनी ही अनन्तम् सनातन अवस्था की **सत्यता** की चेतना रहे, जो शरीरों अथवा संस्कारों से रहित है, और वह ज्ञान के द्वारा परमात्मा का अनुभव करे । जिस चेतना से आत्मा को अपनी सत्ता (*self*) की यथार्थता का अनुभव होगा, वह चेतना अपनेआपके लिये प्राप्त करने के हेतु, आत्मा के घोर परिश्रम करने के आद्योपान्त, चेतन आत्मा एक प्रत्यक्ष अनन्त शृङ्खला में आगे और आगे बढ़ती जाती है जिसमें वह अपनी चेतना सहित उन सब संस्कारों को अनुभव एवम् ख़र्च करने के लिये निरन्तर प्रयत्न करती रहती है जो आत्मा की चेतना की केन्द्रित करते हैं, और जो इस चेतना को शश्वतः परमात्मा में स्थित आत्मा (*self*) की सत्यता से हटाकर स्थूल जगत की माया की दुई की चेतना की ओर ले जाते हैं । इस प्रकार आत्मा की चेतना, आत्मा की सत्यता की चेतना प्राप्त करने के प्रयास में, निरान्तर अज्ञान के पर्दे से ढकी रहती है ।

इसलिये, इस प्रयोजन से कि आत्मा की चेतना पशु-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों का अनुभव करे और इस प्रकार उन्हें ख़र्च करे, आत्मा की चेतना अब आपहीआप एक समुचित माध्यम से साहचर्य ग्रहण करती है जो पशु-योनि की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों का अनुभव करा सकेगा और उस अनुभव में सहायक होगा । आत्मा की चेतना का यह साहचर्य चेतन आत्मा को पशु-योनि की निकटतन-अगली (*most-next*) उपजाति से अपना तादात्म्य करने के लिये बलपूर्वक प्रवृत्त करता है । पशु-योनि की यह निकटतम-अगली उपजाति पशु-योनि

dissociates itself from identification with the most-first species of animal-form. In this manner the form of that species is shed by the conscious soul, or the form of that species is said to have dropped or died.

Again, the conscious soul, with greater evolved consciousness, finds itself without a form, although the consciousness of the soul is centred in the impressions of the form (just discarded or dropped) of the most-first species of animal-form.

These impressions of the form (just dropped) of the most-first species of animal-form must be experienced or exhausted by the consciousness of the soul, so that the conscious soul should not be aware of any impressions of any form, but be conscious only of the **reality** of its own infinite, eternal state, without forms or impressions, and through knowledge experience the Over-Soul. Throughout the travail of the soul to gain that consciousness for itself which would make it realize the reality of its Self, the conscious soul goes on and on in an apparently unending chain with its consciousness endeavoring ceaselessly to experience and exhaust all impressions that centralize the consciousness of the soul, deviating this consciousness from the reality of the eternal and infinite state of the Self (eternally in the Over-Soul) to the consciousness of duality of illusion of the gross world. Thus the consciousness of the soul, in an effort to gain consciousness of the reality of the Self, is consistently shrouded in an envelope of ignorance.

Therefore, in order that the consciousness of the soul should experience and thus exhaust the impressions of the most-first species of animal-form, the consciousness of the soul now associates automatically with an appropriate medium which will permit and aid it to experience the impressions of the most-first species of animal-form. This association of the consciousness of the soul per-force tends the conscious soul to identify itself with the most-next species of animal-form. This most-next species of

की सर्व-प्रथम उपजाति के संस्कारों के एकीकृत रूप के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है ।

जैसे ही पशु-योनि की सर्वप्रथम-अगली उपजाति के माध्यम से संस्कारों का अनुभव हो चुकता है और वे ख़र्च हो जाते हैं, वैंसे ही चेतन आत्मा इस उपजाति को त्याग देती है । पुनः आत्मा अनुभव करती है कि उसका तादात्म्य स्थूल जगत के किसी स्थूल शरीर से नहीं हैं ।

जब पशु-चेतनायुक्त आत्मा योनि से रहित होती है तब आत्मा की चेतना अभी त्यागी अथवा विच्छिन्न की गई पशु-योनि की सर्वप्रथम-अगली उपजाति के संस्कारों में केन्द्रित रहती है ।

इन संस्कारों का भी अनिवार्यतः अनुभव होना चाहिये जिससे वे शून्य हो सकें, और इसलिये आत्मा की चेतना आपहीआप अपना साहचर्य अन्य माध्यम से करती है और यह साहचर्य चेतन आत्मा को पशु–योनि की अगली से निकटतम-अगली उपजाति के साथ अपना तादात्म्य करने के लिये बलपूर्वक प्रवृत्त करता है ।

पशु-योनि की विविध उपजातियों से युगों और कालचक्रों तक विविध एवम् असंख्य साहचर्य तथा विच्छिन्नतायें कर चुकने के बाद, आत्मा को चेतना अन्ततः अपना साहचर्य उस माध्यम से करती है जो चेतन आत्मा को पशु-योनि की अन्तिम उपजातियों की सबसे-अन्तिम उपजाति से अपना तादात्म्य करने के लिये प्रवृत्त करता है ।

पशु-चेतनायुक्त आत्मा के अनुभवों के पुरे दौरान में, आत्मा ने (अपनी चेतना के द्वारा) अन्न भुवन के अन्तर्गत जल में, पृथ्वी पर और पृथ्वी की सतह के नीचे, पशुओं की विविध उपजातियों से अपना तादात्म्य किया, और एक चेतन प्राणी के अनुभवों का साक्षात्कार किया—सामान्यतः जीवन, ऐन्द्रिय ज्ञान और स्वेच्छिक गति से सम्पन्न एक चतुष्पदीय गठन वाले प्राणी के रूप में, जिसे पूरे समय कभी शाकाहारी प्राणी के रूप में और कभी मांसाहारी प्राणी के रूप में जीविका एवम् प्राणरक्षा के लिये संघर्ष करना पड़ा था ।पशु-योनि को खड़े अथवा सीधे आसन की स्थिति प्राप्त नहीं होती और उसकी प्रवृत्ति अधोमुख सिर से नीचे की ओर देखने की होती है । तथापि बन्दर अत्यन्त विकसित प्रकार के पशु हैं और वे मनुष्यों के समान सीधे खड़े होने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं ।

अन्ततः, युगों और वलचक्रों के बाद, जब पशु-योनि की सबसे-

animal-form is no other than the consolidated mould of the impressions of the most-first species of animal-form.

As soon as the impressions are experienced and exhausted through the most-next species of animal-form, this species is dropped by the conscious soul. The soul once again experiences that it is not identified with any gross form of the gross world.

When the animal-conscious soul is without any form the consciousness of the soul is centred in the impressions of the most-next species of animal-form just dropped or shed.

These impressions must also be experienced in order that they may be exhausted, and therefore the consciousness of the soul automatically associates itself with another medium and this perforce tends the conscious soul to identify itself with the most-next to the next species of animal-form.

After ages and cycles of varied and innumerable associations with and dissociations from diverse species of animal-form, the consciousness of the soul eventually associates itself with that medium which tends the conscious soul to identify itself as being the most-last of the last species of animal-form.

All throughout the experiences of the animal-conscious soul, the soul identified itself (through its consciousness) with varied species of animals in the gross world in water, on earth and below the surface of the earth, and realized the experiences of an animate creature, usually as a quadrupedal-organized being, endowed with life, sensation and voluntary motion, and which all the while had to struggle for sustenance and survival, sometimes as an herbivorous creature and sometimes as a carnivorous creature. The animal-form has no erect or upright posture and has a tendency to look down with drooping head. Apes, however, are the most evolved types of animals, and they tend to stand erect like human beings.

Ultimately, after ages and cycles, when all the impressions of the most-last but one species of animal-form are experienced and exhausted

अन्तिम उपजाति के माध्यम से पशु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से निकटतम पिछली (*most-last but one*) उपजाति के सब संस्कारों का अनुभव हो जाता है और वे ख़र्च हो जाते हैं, तब आत्मा की चेतना पशु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति से अपने को पृथक् कर लेती है और चेतन आत्मा अब आगे अपनी एकरूपता पशु–योनि की इस सबसे-अन्तिम उपजाति से नहीं रखती । इस योनि से आत्मा की चेतना अपना सम्बन्ध तोड़ देती है और उसे त्याग अथवा छोड़ देती है । फिर भी, यद्यपि पशु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति विच्छिन्न हो गई है तथापि पशु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कार छूट जाते हैं अथवा क़ायम रहते हैं, और आत्मा की चेतना पशु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों में केन्द्रित होती है । एक बार फिर चेतन आत्मा शरीररहित हो जाती है ।

इन संस्कारों का अनुभव अनिवार्यतः होना चाहिये, और इन्हें शून्य होना चाहिये, इसलिये आत्मा की चेतना अब अपना साहचर्य अन्य उपयुक्त माध्यम से करती है और आत्मा अपमी ही चेतना के द्वारा सर्व-प्रथम मनुष्य-योनि से अपनी एकरूपत करने के लिये बलात् प्रवृत्त होती है । यह मनुष्य-योनि पशु-योनि की सबसे-अन्तिम अपजाति के संस्कारों की एकीकृत आकृति अथवा साँचा के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है ।

सर्व-प्रथम मनुष्य-योनि के माध्यम से आत्मा की चेतना पशु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों के अनुभव प्राप्त एवं ख़र्च करती है ।

जब आत्मा की चेतना पशु-योनि की सबसे-अन्तिम उपजाति के संस्कारों का अनुभव कर लेती है और उन्हें शून्य कर चुकती है, तब आत्मा की चेतना अपने को सर्व-प्रथम मनुष्य-योनि से पृथक् कर लेती है और चेतन आत्मा आपहीआप शरीर का साहचर्य त्याग देती है । इसे सर्व-प्रथम मनुष्य-देह की **मौत** कहते हैं । किन्तु आत्मा की चेतना अब सर्व-प्रथम मानव-देह के संस्कारों में केन्द्रित होती है और अब कुछ समय के लिये आत्मा रूपरहित हो हाती है ।

इस प्रयोजन से कि सर्व-प्रथम मानव-योनि के संस्कारों का अनुभव किया जा सके और उन्हें ख़र्च किया जा सके, आत्मा की चेतना अन्या समुचित माध्यम से अपना साहचर्य करती है, और तब चेतन आत्मा निकटतम—अगली मनुष्य—शरीर से अपना तादात्म्य करने के लिये प्रवृत्त होती है, जो अगला मानव-शरीर अभी त्यागे अतवा अलग किये गये

through the medium of the most-last species of animal-form, the consciousness of the soul dissociates itself from the most-last species of animal-form and the conscious soul no longer identifies itself with this most-last species of animal-form. This form is dissociated by the consciousness of the soul and is dropped or shed. However, though the most-last species of animal-form is dropped or shed, the impressions of the most-last species of animal-form are left or retained, and the consciousness of the soul is centralized or focussed on the impressions of the most-last species of animal-form. The conscious soul is once again without form.

These impressions must necessarily be experienced and exhausted, and hence the consciousness of the soul now associates itself with another suitable medium and the soul perforce tends to identify itself through its own consciousness with the most-first human-form. This human-form is no other than the consolidated mould or cast of the impressions of the most-last species of animal-form.

Through the most-first human-form the consciousness of the soul experiences and exhausts the impressions of the most-last species of animal-form.

When all the impressions of the most-last species of the animal-form are experienced and exhausted by the consciousness of the soul, then the consciousness of the soul dissociates itself from the most-first human-form and the conscious soul automatically drops or sheds the body association. This is called the **death** of the most-first human-form. But the consciousness of the soul is now focussed or centralized in the impressions of the most-first human-form and the soul is now temporarily without a form.

In order that the impressions of the most-first human-form may be experienced and exhausted, the consciousness of the soul associates itself with another appropriate medium, and the conscious soul is thereupon inclined to identify itself with the most-next human-form, which form is no other than the consolidated mould or cast of the impressions of the most-first human-form just dropped or shed. This identification of the

सर्व-प्रथम मनुष्य-देह के संस्कारों की एकीकृत आकृति अथवा साँचा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । अगली देह, और फिर उसके बाद की देहों से, चेतन आत्मा का यह तादात्म्य करना मनुष्य का **जन्म** कहलाता है ।

जिस क्षण आत्मा की चेतना सर्व-प्रथम मानव-देह से साहचर्य करती है उसी क्षण **चेतना का विकास भरपूर** (*full*) **और पूर्ण** (*complete*) **हो जाता है** ।* चूँकि आत्मा की चेतना‡ मनुष्य-योनि में पूर्णतया विकसित हो जाती है, इसलिये योनि का विकास भी पूरा हो जाता है, और चेतन आत्मा के सर्व-प्रथम मानव-शरीर से तादात्म्य कर लेने पर अब किन्हों नवीन उच्चतर योनियों का विकास नहीं होता । संक्षेप में, मानव-योनि में आत्मा की चेतना पूर्ण और भरपूर हो जाती है । चेतना के विकास की प्रक्रिया ठप्प हो जाती है । मनुष्य-योनि चेतना के विकास के दौरान में विकसित हुई सर्वोच्च और सर्वोत्कृष्ट योनि है । इसलिये मनुष्य में चेतना पूर्णतया विकसित होती है और युगों एवम् कालचक्रों के बाद रवा तथा साँचे में ढाला गया शरीर अत्यन्त पूर्ण शरीर अथवा माध्यम होता है । इसलिये आत्मा की चेतना इस पूर्ण माध्यम का उपयोग सब संस्कारों का अनुभव करने तथा उनको **पूर्णतया** ख़र्च करने के लिये करती है जिससे पूर्णतया चैतन्य आत्मा प्रत्येक संस्कार से शून्य हो जाती है, और इस प्रकार वह परमात्मा में अपनी यथार्थ, शाश्वत एवम् अनन्त अवस्था का साक्षात्कार करने में समर्थ होती है ।

(३२)

* [मेहेरबाबा इस बाद का प्रतिपादन करते हैं कि ऐसे विषय अब आगे के लिये अनिश्चित न पड़े रहने चाहिये, यद्यपि वह मानते हैं कि विकास और पुनर्जन्म में विश्वास अथवा अविश्वास किसी भी प्रकार से मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति को न तीव्र करता है और न उसमें रोड़े अटकाता है । वह हमको विकास एवम् पुनर्जन्म का आध्यात्मिक महत्व निम्नलिखित शब्दों में बतलाते हैं : "विकासशील संघर्ष से ही आत्मा पूर्ण चेतना विकसित करने में समर्थ होती है जैसी पूर्ण चेतना मनुष्य-योनि में होती है, और उद्देश्य प्राप्त हो जाने के बाद, विकासशील यात्रा के उपफलों (नक्श-ए-अमल अथवा संस्कारों) को, चेतना अक्षत बनाये रखते हुये, शून्य करना होता है । इसलिये पुनर्जन्म की प्रक्रिया ऊस प्रयोजनार्थ होती है कि आत्मा दुख और सुख की भट्ठी से गुज़रने के द्वारा संस्कारों को नष्ट करने में समर्थ हो सके ।" सम्पादक]

‡ पूरक में पूरक नोट १ भी पढ़िये । गणना से अंकित सब पसंग पूरक में दिये गये हैं ।

conscious soul with the next form and those following is called the **birth** of a human being.

As soon as the consciousness of the soul associates with the most-first human-form the EVOLUTION OF CONSCIOUSNESS IS FULL AND COMPLETE.* Because the consciousness[1] of the soul is fully developed in human-form, the evolution of form is also complete, and no new higher forms are now evolved once the conscious soul identifies itself with the most-first human-form. In short, in human-form the consciousness of the soul is full and complete. The process of the evolution of consciousness is brought to a standstill. The human-form is the highest and the most sublime form evolved during the evolution of consciousness. Hence in the human being consciousness is fully developed and the form moulded and cast after ages and cycles is the most perfect form or medium. The consciousness of the soul therefore utilizes this perfect medium to experience and completely exhaust all impressions so that the fully conscious soul becomes devoid of any impression whatsoever, and thus is able to realize its own real, eternal and infinite state in the Over-Soul.

* [Meher Baba maintains that such subjects should no longer be left indefinite, although he concedes that belief or non-belief in evolution and reincarnation does not in any way hasten or impede man's spiritual progress. He tells us the spiritual significance of evolution and reincarnation in the following words: "It is the evolutionary struggle that enables the soul to develop full consciousness as that in the human-form, and the purpose having been achieved, the side issues or by-products of evolutionary travel (the *nuqush-e-amal* or *sanskaras*) have to be done away with, while retaining the consciousness intact. The process of reincarnation therefore is to enable the soul to eliminate the sanskaras by passing through the furnace of pain and pleasure." Ed.]

1. See also Supplement Note 1 in the Supplement. All numbered references are contained in the Supplement.

भाग ३

विभिन्न जगतों के विशेष लक्षण

मनुष्य-योनि में चेतना का पूर्ण विकास प्राप्त करने के लिये, विकास प्रक्रिया को सात बड़ी छलाँगें लेनी पड़ी थीं, जैसे, पाषाण से धातु, धातु से वनस्पति, वनस्पति से कृमि, कृमि से मत्स्य, मत्स्य से खग, खग से पशु, और अन्ततः पशु से मनुष्य । इनमें से प्रत्येक भिन्न भिन्न विशेषतायें रखती है ।

पाषाण जगत और धातु जगत की विशेषतायें

पाषाण-योनियों और धातु-येनियों में, आत्मा अन्न भुवन के अपने मूल अनुभव प्राप्त करती है । प्राषाण जगत के समान, धातु जगत जड़ और ठोस होता है । दोनों जगतों के विस्तार के अन्तर्गत प्रचुर विविध उपजातियाँ होती हैं । पाषाणों और धातुओं की ठोस अवस्थाओं में, जीवन और प्राणशक्ति प्रसुप्त होते हैं । इसलिये वे जड़ मानी जाती हैं । पाषाण-योनियाँ और धातु-योनियाँ अपनेआप इधर-उधर नहीं चल सकतीं, अर्थात् उनको स्वेच्छक गति प्राप्त नहीं होती । इस कारण से चेतना, जो अपना साहचर्य इन योनियाँ से करती है, अपना प्रतिपादन एक पड़ी हुई समतल स्थिति के द्वारा (सीधी खड़ी अथवा लम्बरूप खड़े आसन के द्वारा स्थापित करने की बजाय) स्थूल जगत में स्थापित करती है ।

वनस्पति जगत की विशेषतायें

वनस्पति जगत में, चेतना अपने को आधी चेतन और आधी जड़ अनुबव करती है । वनस्पति-योनि की बड़ी हुई चेतना एक सीधे खड़े अथवा लम्बरूप आसन की स्थिति के द्वारा अन्न भुवन में अपने अस्तित्व

PART 3

Characteristics of the Different Kingdoms

To ACHIEVE complete development of consciousness in the human form, the evolutionary process had to take seven major leaps, viz., from stone to metal, from metal to vegetable, from vegetable to worm, from worm to fish, from fish to bird, from bird to animal and finally from animal to the human being, each possessing different characteristics.

Characteristics of the Kingdom of Stones and the Kingdom of Metals

In the stone-forms and metal-forms, the soul has its initial experiences of the gross world. The kingdom of metals, like the kingdom of stones, is inorganic and solid. Both kingdoms include within their range a rich variety of species. In the solid states of stones and metals, life and energy are dormant. Therefore they are regarded as inanimate. The stone-forms and metal-forms cannot move about by themselves, i.e., they have no voluntary motion. For this reason the consciousness, which associates itself with these forms, tends to assert itself through a recumbent, horizontal position (rather than through an erect position or vertical, upright stand) in the gross world.

Characteristics of the Vegetable Kingdom

In the vegetable kingdom, consciousness realizes itself as half animate and half inanimate. The increased consciousness of the vegetable-form asserts its existence in the gross world through an upright or erect

का दृढ़ स्थापन करती है । वनस्पति-योनियों को सीधे खड़े आसन की स्थिति बनाये रखने के लिये पृथ्वी अथवा चट्टान जैसी कुछ अन्य वस्तुओं की सहायता लेनी पड़ती है । वे न तो अपनेआप खड़ी हो सकती हैं और न स्वेच्छापूर्वक एक जगह से दूसरी जगह जा सकती हैं क्योंकि उनकी जड़ एक स्थान में जमी रहती है ।

कृमि जगत की विशेषतायें

कृमि-चेतना में आत्मा स्वेच्छिक गति के अनुभव प्राप्त करती है । वह अपने को चेतन (*animate*) अनुभव करती है । अधिक तथा और आगे चेतना प्राप्त करने के अपने घोर प्रयास में, कृमि-चेतनायुक्त आत्मा अपने को अन्न भुवन में पहले एक रीड़रहित जन्तु और बाद में एक रीड़वाला जन्तु अनुभव करती है, और कीड़ों की विविध उपजातियों में सरकती रहती है । वह दो पैरों से, कभी पैरों के अनेक जोड़ों से, और कभी दो पैरों तथा दो पंखों से रेंगती हुई स्वेच्छपूर्वक चलती-फिरती है । कीड़े रोयेंदार, चिकनी, रेशमी, खुरदरी अथवा परतदार सतहों से युक्त हो सकते हैं । कीड़ा को अस्तित्व और जीवन की रक्षा के लिये संघर्ष से होकर गुज़रना पड़ता है और वह ऐन्द्रिय ज्ञान एवम् जीवन से सम्पन्न होता है । कभी वह जल तथा थल में रहनेवाला जन्तु होता है, अर्थात् वह स्वेच्छापूर्वक पृथ्वी पर चल-फिर सकने के साथ-साथ, जल में भी चल-फिर सकता है । इस व्याख्या के अभिप्राय के लिये, वृमि-यीनि के अन्तर्गत अपनी उपजाति के सब कीड़े, मकोड़े, रेंगने वाले जन्तु तथा जल और थल में रहने वाले जन्तु आते हैं । जब उनके पैर और पंख होते हैं, तब भी उनकी प्रवृत्ति रेंगने की ओर होती है और वे पक्षियों से तथा चौपायों से भिन्न होते हैं । कृमि योनि पड़ी स्तिति की होती है, उसको सीधा अथवा खड़ा आसन प्राप्त नहीं होता और वह लम्बी औंधी पड़ी होती है ।

मत्स्य जगत की विशेषतायें

मत्स्य-चेतनायुक्त आत्मा मछली की विविध उपजातियों से अपनी एकरूपता करती है और अन्न भुवन का अनुभव पानी के अन्दर एक जीवित प्राणी के रूप में (जीवन और ऐन्द्रिय ज्ञान तथा स्वेच्छिक गति

stand. The vegetable-forms have to take the help of some other things such as earth or rock for maintaining an erect position. They can neither stand by themselves nor move voluntarily from place to place since they are rooted in one spot.

Characteristics of the Kingdom of Worms

In worm-consciousness the soul gathers experiences of voluntary movement. It experiences itself as animate. In its travail to gain more and further consciousness, the worm-conscious soul experiences itself in the gross world, first as an invertebrate and later as a vertebrate, and goes on creeping in diverse species of worms. Voluntary movements are made by crawling by means of pairs of legs, sometimes by multiple pairs of legs, and sometimes by pairs of legs and pairs of wings. Worms may have surfaces that are hairy, smooth, silky, rough or scaly. The worm goes through a struggle for existence and survival and is endowed with sensation and life. Sometimes it is an amphibian, i.e., it has not only voluntary movement on earth, but has also mobility in water. For the purpose of this explanation, the worm-form includes all worms, insects, reptiles and amphibia, of their species. Even when they have legs and wings, they have a tendency to crawl and they are distinct from birds and from quadruped animals. The worm-form is recumbent, has no upright or erect stand and is prone to lie prostrate.

Characteristics of the Kingdom of Fish

The fish-conscious soul identifies itself with varied species of fish and experiences the gross world as a living creature in water (a vertebrate endowed with life and sensation and voluntary motion), and has fins. It

से सम्पन्न एक रीड़ वाले जन्तु के रूप में) करती है, और उसके सुफ़ने होते हैं । वह जीविका तथा जीवन रक्षा के लिये संघर्ष से गुज़रती है । मत्स्य-चेतनायुक्त आत्मा अन्न भुवन में अपने अस्तित्व का स्थापन सीधे खड़े आसन की स्थिति के द्वारा नहीं करती, किन्तु वह अपने को लम्बी पड़ी जैसी अनुभव करती है, जो कभी भी अपना सिर ऊँचा और खड़ा नहीं करती ।

खग जगत की विशेषतायें

खग-योनि नवीन अनुभवों से चेतना में वृद्धि करती है क्योंकि, रीढ़वाला परिन्दा होने के कारण, वह वायु में उड़ने में, तथा अपने दो पैरों की सहायता से अन्न भुवन में खड़ा आसन रखने में, समर्थ होती है ।

पशु जगत की विशेषतायें

पशु-योनि में चेतना का विस्तार और अधिक हो जाता है, क्योंकि वह पशू जगत में अस्तित्व रखनेवाली उच्चतर विविध उपजातियों के माध्यम से नवीन अनुभव प्रदान कर सकती है । चौपाये जन्तु जीवन, ऐन्द्रिय ज्ञान, और स्वेच्छापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने की शक्ति से सम्पन्न होते हैं, और उन्हों अपने अस्तित्व एवम् जीवन-रक्षा के लिये संघर्ष का सामना करना पड़ता है । वे कभी शाकाहारी होते हैं और कभी मांसाहारी । पशु चेतना अन्न भुवन में अपने अस्तित्व का स्थापन सीधे अथवा खड़े आसन की स्थिति के द्वारा नहीं करती, बल्कि उसकी प्रवृत्ति अधोमुख सिर से नीचे की ओर देखने की होती है । तथापि बन्दर अत्यन्त विकसित प्रकार के पशु हैं, और वे मनुष्यों के समान सीधे खड़े होने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं ।

मानव जगत की विशेषतायें

मनुष्य-योनि में आत्मा की विकासशील चेतना को पूर्ण विकास प्राप्त हो जाता है । चेतना के विकास की प्रक्रिया का अन्त मानव योनि से हो जाता है । इस स्थल पर चेतना भरपूर और पूर्ण हो जाती है ।

goes through a struggle for sustenance and survival. The fish-conscious soul does not assert its existence in the gross world through an erect stand, but experiences itself as recumbent, never holding its head high and erect.

Characteristics of the Kingdom of Birds

The bird-form enriches (enlightens) consciousness with new experiences since, as a feathered vertebrate, it is capable of flying in the air and, with the help of its two legs, of maintaining an erect stand in the gross world.

Characteristics of the Kingdom of Animals

The animal-form brings to consciousness further expansion, since it can yield new experiences through the greater varieties existing in the kingdom of animals. Endowed with life, sensation and power of voluntary locomotion, quadruped animals have to face a struggle for existence and survival. They are sometimes herbivorous and sometimes carnivorous. Animal consciousness does not assert its existence in the gross world through erect or upright posture, but has a tendency to look downwards with drooping head. Apes, however, are the most evolved type of animals, and they tend to stand erect like human beings.

Characteristics of the Kingdom of Human Beings

In the human-form the evolving consciousness of the soul attains its full development. The process of evolution of consciousness has its terminus in the human form. Here consciousness is full and complete.

जब मानव प्राणी जन्म लेता है, तब वह केवल लम्बा लेट सकता है और वह इस अवस्था का अनुभव काफी समय तक करता रहता है । परन्तु वह जल्दी ही पहले सीधे बैठने की और फिर सीधे खड़े होने की प्रवृत्ति प्रकट करता है । आत्मा की पूर्णतया विकसित मानवी चेतना अन्ततः अन्न भुवन में अपने अस्तित्व का दृढ़ स्थापन सीधे खड़े आसन की स्थिति के द्वारा करती है । ‡

‡ **उच्चगामी आत्मा**

"मैं खनिज के रूप में मरा और पौधा बन गया,
मैं पौधे के रूप में मरा और पशु बन गया,
मैं पशु के रूप में मरा और मनुष्य बना ।
मैं क्यों इरूँ ? मरने से मेरा कब ह्रास हुआ ?
तथापि, एक बार फिर, मैं मनुष्यरूप में मरूँगा, और
भाग्यशाली फ़रिश्तों के साथ ऊँचे उड़ूँगा; परन्तु मुझे
फ़रिश्तापन से भी ऊँचे जाता होगा; ईश्वर के अतिरिक्त अन्य सब नश्वर है ।
जब मैं अपनी देव आत्मा का त्याग कर दूँगा,
मैं वह बन जाऊँगा जिसकी कल्पना मन ने कभी नहीं की ।
ओह, मेरा अस्तित्व न रहे ! क्योंकि अनास्तित्व
मुखरित स्वर में घोषित करता है,
'हम लौटकर असी के पास जायँगे' ! "

—रूमी

(३६)

When a human being is born, it can only lie prostrate and it continues to experience this state for a fairly long period. But it soon expresses a tendency first to sit erect and then to stand erect. The fully evolved human consciousness of the soul eventually asserts its existence in the gross world through an upright position.*

* The Ascending Soul

"I died as mineral and became a plant,
I died as plant and rose to animal,
I died as animal and I was man.
Why should I fear?
When was I less by dying?
Yet, once more, I shall die as man, to soar
With angels blessed; but even from angelhood
I must pass on; all except God doth perish.
When I have sacrificed my angel soul,
I shall become what no mind e'er conceived.
Oh, Let me not exist! For Non-existence
Proclaims in organ tones, "To Him we shall return!"

—Rumi

भाग ४

पुनर्जन्म और चेतना का संस्काररहित समतुलत्व

आत्मा अपनी चेतना के विकास के दौरान में, **चेतनतया** अपनी तद्रूपता विविध सीमित स्थूल रूपों से करती हुई, साथ-साथ, यद्यपि **अचेतनरूप से,** अपना तादात्म्य अपने सीमित सूक्ष्म शरीर और अपने सीमित कारण शरीर से भी कर रही थी, जो अपना साहचर्य आत्मा के साथ ठीक मूल लहर की चेतना के विकास के पूरे दौर में ठोस, सजातीय अचेतन सम्बन्ध बनाये रखे थे ।

यद्यपि आत्मा, अपने को बारम्बार तथा चेतनतया परिमित स्थूल योनियों से पृथक् करती थी जो, अधिकतर एवं उच्चतर चेतना का चिकास करने के दौरान में प्राप्त हुये संस्कारों का अनुभव करने के हेतु, माध्यम के रूप में कार्य करती थीं, तथापि वह (आत्मा) कभी भी अपनेआप को, चेतनतया अथवा अचेततया, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूप से, अपने परिमित सूक्ष्म शरीर से तथा अपने परिमित कारण शरीर से पृथक् न कर पाती थी ।

इसके विपरीत, जब आत्मा सीमित स्थूल योनियों के किसी एक माध्यम से अपना तादात्म्य हटाती थी, तब आत्मा का अपने सीमित सूक्ष्म रूप से अचैतन्य साहचर्य आत्मा को (जो अब स्थूल माध्यम से रहित थी) सीमित प्राण शक्ति से (आगे ठेलने की शक्ति) पदान करता था, इसलिये कि, वह आत्मा की चेतना को अपनी तद्रूपता अगली सीमित स्थुल योनि के अगले माध्यम से करने की ओर प्रवृत्त करे, और जिससे कि वह अन्तिम त्यागे गये सीमित स्थूल रूप वाली योनि के संस्कारों का अनुभव कर सके, जो संस्कार इस आत्मा के सीमित कारण शरीर के द्वारा स्थित और प्रतिबिम्बित होते थे ।

यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि, आत्मा की उच्चतर एवं अधिकतर

PART 4

Reincarnation and the Impressionless Equipoise of Consciousness

DURING the course of evolution of its consciousness, the soul (atma), while **consciously** identifying itself with varied, finite gross forms, was also simultaneously, though **unconsciously,** identifying itself with its finite subtle form and its finite mental form, which associated with the soul in compact, homogeneous, unconscious alliance throughout the entire course of evolution of consciousness right from the first urge.

Although the soul frequently and consciously dissociated itself from the finite gross forms which acted as media to experience the impressions gained in the course of evolving greater and higher consciousness, the soul could never dissociate itself, consciously or unconsciously, directly or indirectly, from its finite subtle form and its finite mental form.

On the contrary, while the soul dissociated its identification with any one medium of finite gross form, it was the unconscious association of soul with its finite subtle form that fortified the soul (now without any gross medium) with finite energy (the driving force) to give a tendency to the consciousness of the soul towards identifying itself with the next medium of the next finite gross form, in order to experience the impressions of the last dissociated finite gross form, retained and reflected by the finite mental form of this soul.

It is but natural that, together with the evolution of higher and greater consciousness of soul, the evolution of the finite subtle form of

चेतना के विकास के साथ-साथ, आत्मा के परिमित सूक्ष्म शरीर का विकास भी आत्मा को अधिकतर परिमित प्राण शक्ति से बलिष्ट करने के लिये होता जाता है, जिससे उस प्राणशक्ति के बल से वह अधिक और अधिक स्थूल-चेतनायुक्त आत्मा की चेतना को ऊँचे और ऊँचे प्रकार के सीमित स्थूल रूपों से, जो पिछले (*last*) निम्नतर सीमित स्थूल रूप के संस्कारों के द्वारा विकसित हुये थे, अपनी एकरूपता करने के लिये प्रवृत्त कर सके ।

इसी प्रकार से, आत्मा के सीमित कारण शरीर का विकास भी साथ-साथ होता जाता है जिससे वह उन निरन्तर बढ़ते हुये असंख्य विविध संस्कारों को स्थान दे सके, धारण कर सके और प्रतिबिम्बित कर सके, जो आत्मा की अधिकतर और अधिकतर चेतना के विकास के द्वारा प्राप्त और सञ्चित किये गये थे ।

इसी प्रकार से, जब आत्मा वनस्पति-योनियों की विविध उप्जातियों से अपनी एकरूपत करने की ओर प्रवृत्त होती है, तब आत्मा का विकसित परिमित सूक्ष्म शरीर तथा विकसित परिमित कारण शरीर आत्मा के अपने अधिक विकसित परिमित सूक्ष्म एवं कारण शरीर के साथ साहचर्य करने के अधिकतर तथा दृष्टिगोचर चिन्ह प्रगट करने लगते हैं और ये साहचर्य चिन्ह वनस्पति-योनियों में विविध और द्रुत गति से होते हुये परिवर्तन-चक्रों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं; और इस शक्ल में भी दृष्टिगोचर होते हैं कि वनस्पति-योनियाँ आत्मरक्षा और योग्यतम के उत्तर-जीवन (*survival of the fittest*) की विचित्र, विविध तथा अर्थपूर्ण प्रवृत्तियों के प्रथम लक्षण प्रदर्शित करती हैं ।

कृमि-, खग- एवं मत्स्य-योनयों में, आत्मा के परिमित कारण शरीर की यह प्रवृत्ति क्रमशः और दृढ़तापूर्वक सहज प्रवृत्ति (*instinct*) के रूप में परिवर्तित होती है, यहाँ तक कि पशु-योनि में यह सहज प्रवृत्ति आत्मा के परिमित कारण शरीर के एक परिमित पहलू के रूप में पूर्णतया अभिव्यक्त होती है । क्रमशः यह सहज प्रवृत्ति और आगे एवं पूर्णतया बुद्धि (*intellect*) के रूप में बदल जाती है, और यह बुद्धि अन्न बुवन का अनुभव करती हुई स्थूल-चेतनायुक्त मानवी आत्मा की मनुष्य-योनि में मन के आविर्भाव का सर्वोच्च परिमित पहलू है ।

इसी प्रकार से ही केवल मनुष्य-योनि में सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर पूर्णतया विकसित होते हैं, इसलिये ऐसा कहा जा सकता है कि

soul also takes place to fortify the soul with greater finite energy to incline the consciousness of the more and more gross-conscious soul to identify itself with higher and higher types of finite gross forms evolved by the impressions of the last lower-finite gross form.

Similarly, the evolution of the finite mental form of the soul also takes place simultaneously to accommodate, retain and reflect the increasingly innumerable, varied impressions gained and gathered by the evolution of greater and greater consciousness of the soul.

Thus it is that, when the soul tends to identify itself with varied species of vegetable-forms, the evolved finite subtle form and the evolved finite mental form of the soul begin to show greater and visible signs of the soul's association with its much evolved finite subtle form and finite mental form in the shape of varied, rapid cycles of changes taking place in vegetable-forms; and also, in the shape of vegetable-forms showing first signs of peculiar, varied and meaningful tendencies of self-preservation and survival of the fittest.

In the worm-, bird- and fish-forms, this tendency of the finite mental form of the soul is translated gradually and steadily into the shape of instinct, until in the animal-form this instinct is fully manifested as one of the finite aspects of the finite mental form of the soul. Gradually this instinct is further and completely transformed into intellect, this being the highest finite aspect of manifestation of the mental form in the human-form of the gross-conscious human soul experiencing the gross world.

So it is that only in human-form are the subtle body and the mental body fully developed, wherefore the soul, associating itself consciously

मनुष्य-येनि से चेतनतया साहचर्य करती हुई आत्मा मानव शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर से पूर्णतया सुसज्जित होती है, और उसके साथ-साथ वह स्थूल जगत की पूर्ण चेतना रखती है ।

यद्यपि आत्मा ने मानव-योनि में चेतना प्राप्त कर ली है, और इस प्रकार वह अन्न भुवन का अनुभव करती है, तथापि स्थुल-चेतनायुक्त मानवी आत्मा को सूक्ष्म शरीर की चेतना नहीं होती इसलिये वह प्राण भुवन का अनुभव नहीं कर सकती । उसे कारण शरीर की भी चेतना नहीं होती इसलिये वह मन भुवन का अनुभव नहीं कर सकती ।

यद्यपि आत्मा को केवल स्थूल चेतना प्राप्त है और उसको प्राण एवम् मन का भान नहीं है, तथापि वह अन्न भूमिका पर सूक्ष्म और कारण शरीरों के माध्यम से कार्य करती है, यद्यपि उनके द्वारा उसका यह कार्य परीक्षरूप से होता है । यद्यपि स्थूल-चेतनायुक्त मानवी आत्मा को अपने सूक्ष्म और कारण शरीरों की तथा क्रमशः उनके प्राण एवम् मन भुवनों की चेतना नहीं होती, और इसलिये वह प्राण भुवन की प्राण शक्ति तथा मन भुवन के मन का अनुभव नहीं करती, फिर भी वह प्राण शक्ति के विविध स्थूल पहलुओं के द्वारा, जैसे अणुशक्ति, का **उपयोग** कर सकती है, और वह मन का **उपयोग** मन के विविध स्थूल पहलुओं के द्वारा कर सकती है जैसे इच्छायें, आवेश और विचार । इनमें से, **इच्छायें** मन का प्रबल अङ्ग होती हैं ।

इसलिये यह आत्मा, जो अब सर्व-प्रथम मनुष्य शरीर की पूर्ण स्थुल-चेतना रखती है और अब भी सूक्ष्म तथा कारण शरीरों की चेतना नहीं रखती, पृथक् की गई सबसे-अन्तिम पशु-देह के संस्कारों का अनुभव अन्न भुवन में करती है ।

जब सबसे-अन्तिम पशु योनि के सब संस्कार शून्य हो जाते हैं, तब स्वभावतः सर्व-प्रथम मानव शरीर आत्मा से पृथक् हो जाता है । आत्मा का यह अनुभव सर्वत्र मनुष्य की मौन कहा जाता है ।

जैसा पहले समझाया जा चुका है, यद्यपि यह आत्मा सर्व-प्रथम मनुष्य शरीर से पृथक् हो गई है, फिर भी यह अपने सूक्ष्म शरीरों अथवा कारण शरीरों से **कभी** भी विच्छिन्न नहीं होती ।

यह भी पहले स्पष्ट किया गया था कि यद्यपि यह आत्मा अपनी सर्व-प्रथम मानव स्थूल योनि से पृथक् हो चुकी है, फिर भी आत्मा विच्छिन्न हुई सर्व-प्रथम मनुष्य-देह के संस्कारों को सूक्ष्म एवम् कारण

with human-form is, so to speak, fully equipped with a human body, subtle body and mental body, together with full consciousness of the gross.

Although the soul has gained consciousness in human-form and thus experiences the gross world, yet the gross-conscious human soul is unconscious of the subtle body and so cannot experience the subtle world. It is also unconscious of the mental body and thus cannot experience the mental world.

Even though the soul has only gross consciousness and is unconscious of the subtle and mental, it does work through the subtle and mental bodies, although indirectly, on the gross plane. Even though the gross-conscious human soul is unconscious of its subtle and mental bodies and their respective subtle and mental worlds, and therefore does not realize the energy of the subtle and the mind of the mental, yet it can **use** energy through various gross aspects of energy such as nuclear energy. And it can **use** mind through various gross aspects of mind such as desires, emotions and thoughts. Of these, **desires** are the predominant aspect of the mind.

So this soul, now fully gross-conscious of the first-most human gross form and still unconscious of the subtle and mental, experiences in the gross world the impressions of the last-most animal gross form dissociated or dropped.

When all the impressions of the last-most animal gross form are exhausted, it is but natural that the first-most human gross form is dissociated from the soul. This experience of the soul is universally termed the death of the human being.

As explained previously, although this soul is dissociated from the first-most human gross form, it is **never** dissociated from its subtle or its mental forms or bodies.

It was also previously explained that though this soul is dissociated from its first-most human gross form, the soul retains and experiences

शरीरों के द्वारा बनाये रखती है तथा उनका अनुभव करती है, और आत्मा त्यागे हुये पिछले मनुष्य-देह के संस्कारों का अनुभव करने के लिये पुनः अपन साहचर्य सर्व-प्रथम अगले (*next-most*) मनुष्य-शरीर से करती है । यथार्थ में, जैसाकि पहले समझाया जा चुका है, सर्वप्रथम-अगली मनुष्य-योनि आत्मा से पृथक् हुये पिछले शरीर के बने रहे पिछले संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड मात्र है । इस प्रकार सर्वप्रथम-अगले मानव-शरीर के साथ आत्मा के साहचर्य को सर्वत्र मनुष्य का जन्म कहते हैं ।

मनुष्य की मृत्यु एवम् जन्म के बीच का प्रत्यक्ष अन्तर वह अवधि है जिसमें स्थूल-चेतनायुक्त आत्मा, अपने पूर्णतया विकसित सूक्ष्म और कारण सरीरों के साथ अपना साहचर्य करने में, अभी हाल में त्यागे गये मनुष्य-शरीर के सञ्चित विपरीत संस्कारों के प्रबल प्रतिरूप का अनुभव करती है । मृत्यु एवम् जन्म के बीच के प्रत्यक्ष अन्तर में, आत्मा की यह अवस्था, आमतौर पर नर्क या स्वर्ग कहलाती है, और मनुष्य-योनि में चेतन आत्मा,—जो अब पूर्णतया चैतन्य है,—की चेतना के पारी-पारी से होने वाले साहचर्य एवम् पृथक्ता की इस प्रक्रिया को **"पुनर्जनम प्रक्रिया"** कहते हैं ।

यदि द्वन्द्वों (जैसे पुण्य और पाप, भला और बुरा, पुरुष और स्त्री, इत्यादि) के संस्कारों का प्रबल प्रतिरूप, जैसाकि आत्मा को अनुभव होता है, जो अब केवल प्राण और मन से सम्बद्ध है, पुण्य अथवा भलाई का है (अर्थात् विपरीत संस्कारों का भावात्मक '*positive*' पहलू है), तब आत्मा **स्वर्ग** में स्थित कही जाती है । यदि वह प्रतिरूप पाप अथवा बुराई का है (अर्थात् विपरीत संस्कारों का नकारात्मक पहलू है), तब आत्मा **नर्क** में स्थित कही जाती है ।

स्वर्ग और नर्क की अवस्थायें केवल आत्मा की चेतना के प्रचण्ड अनुभवों की अवस्थायें हैं, जिस समय आत्मा मनुष्य शरीर से पृथक् रहकर विपरीत संस्कारों के किसी एक प्रबल प्रतिरूप का अनुभव करती है । स्वयं आत्मा स्वर्ग अथवा नर्क नहीं जाती, जैसाकि आमतौर पर लोग विश्वास करते हैं, क्योंकि वह शाश्वतः अनन्त है और शाश्वतः परमात्मा में स्थित है । आत्मा की चेतना ही संस्कारों का अनुभव करती है ।

जैसे ही संस्कारों के प्रबल प्रतिरूप का अनुभव हो चुकता है और वह शून्य हो जाता है, और ठीक जिस समय त्यागे हुये पिछले

through the subtle and mental bodies the impressions of the dropped or dissociated first-most human-form, and the soul again associates itself with the next-most human-form to experience the impressions of the previous human-form dropped. In fact, the next-most human-form is nothing but the consolidated mould of the past impressions retained of the previous body or form that dissociated from the soul. Thus the association of the soul with the next-most human-form is called universally the birth of a human being.

The apparent gap between the death and the birth of a human being is that period in which the gross-conscious soul, in its association with its fully developed subtle and mental bodies, has experiences of the predominant counterpart of the opposite impressions gathered by the recently dissociated human-form. This state of the soul, in the apparent gap between death and birth, is generally called hell or heaven, and this process of intermittent association and dissociation of consciousness of the conscious soul in human-form, now fully conscious, is termed the "Reincarnation Process."

If the predominant counterpart of the impressions of opposites (such as virtue and vice, good and evil, male and female, etc.), as experienced by the soul now associated only with the subtle and mental, is of virtue or goodness (i.e., the positive aspect of the opposite impressions), then the soul is said to be in heaven. If it is of vice or evil (i.e., the negative aspect of opposite impressions), then the soul is said to be in hell.

The states of heaven and hell are nothing but states of intensive experiences of the consciousness of the soul, experiencing either of the predominant counterparts of the opposite impressions while the soul is dissociated from the gross human body or form. The soul itself does not go to heaven or hell, as is the general belief, because it is eternally infinite and eternally in the Over-Soul. It is the consciousness of the soul which experiences the impressions.

As soon as the predominant counterpart of impressions is experienced and exhausted, and just when equilibrium is about to be maintained between the opposites of impressions of the last human-form

मनुष्य-शरीर के संस्कारों के द्वन्द्वों के बीच सन्तुलन स्थिर होने के करीब होता है, उसी क्षण आत्मा आपहीआप निकटतम-अगले मानव-शरीर से साहचर्य करती है, जो उन द्वन्द्वों के संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड होता है जो सन्तुलन की अवस्था में होने वाले थे ।

इस प्रकार आत्मा की स्थूल चेतना, स्वर्ग अथवा नर्क का अनुभव करने के बाद, पिछले जन्म के बचे हुये विपरीत संस्कारों को अनुभव एवम् शून्य करने के लिये, अगली मनुष्य-योनि से साहचर्य करती है (अथवा दूसरा जन्म लेती है) । जैसाकि पहले कहा जा चुका है, आत्मा का यह अगला मानव-शरीर पिछले शरीर के बचे हुये विपरीत संस्कारों का मूर्तमान पिण्ड होता है ।

इस रीति से ही मानव-शरीरों अथवा मानव पाणियों के जन्मों और मृत्युओं की प्रत्यक्षतया अनन्त शृङ्खला बनती और नष्ट होती रहती है । यह आत्मा के मानव शरीरों में पुनर्जन्म का अनुक्रम है, जब आत्मा स्थूल चेतना की पूरी विकास शृङ्खला के द्वारा पूर्ण स्थूल चेतना प्राप्त कर चुकती है । आत्मा की अचेतन अवस्था से लेकर (जिसकी तुलना मनुष्य की गहरी निद्रा की अवस्था से की जाती है), उसके, अन्न भुवन का अनुभव करने के दौरान में, पूर्ण स्थूल चेतना प्राप्त कर लेने के समय तक (जिसकी तुलना मनुष्य की जागृत अवस्था में बिल्कुल खुली आँखों से की जाती है), आत्मा **'एक'** है—अखण्ड्य, अनन्त, निराकार है—और शाश्वतः परमात्मा में स्थित है ।

विकास की पूरी प्रक्रिया के आद्योपान्त, पुनर्जन्म प्रथम लहर का एक निपट स्वयंभू परिणाम था, जो लहर अचैतन्य आत्मा में, आत्मा की अपनी सनातन एवम् अनन्त सत्ता की चेतना प्राप्त करने के लिये, प्रकट हुई थी ।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, अब हम समझ सकते हैं कि **आत्मा** की चेतना के विकास-चक्र ने, निम्नतर प्रकारों की पृथक् हुई येनियों के संस्कार शून्य करने के दौरान में, उच्चतर और उच्चतर प्रकारों की **योनियें** का विकास करने के साथ-साथ, अधिकतर एवम् उच्चतर **चेतना** का विकास किया था ।

इस प्रकार आत्मा की चेतना का विकास प्रत्यक्षतया आत्मा को अन्न भुवन की योनियों की उच्चतर और उच्चतर स्थूल उपजातियों से तादात्म्य करने तथा उनके विविध असंख्य संस्कार संचित करने के लिये प्रवृत्त करता है ।

(४१)

that was dropped, at this juncture the soul automatically associates with the next-most human-form, moulded of the consolidated impressions of opposites which were about to be in a state of equilibrium.

Thus the gross consciousness of the soul, after experiencing either hell or heaven, associates with the next human-form (takes another birth) to experience and exhaust the residual opposite impressions of the last birth. As has already been said, this next human-form of the soul is nothing but the consolidated mould of the residual opposite impressions of the last form.

It is in this manner that an apparently unending chain of births and deaths of human-forms or beings continues to form and dwindle. This is the course of reincarnation in human forms of the soul, after it has gained full gross consciousness through the whole series of evolution of the gross consciousness. Right from the unconscious state of the soul (comparable to the deep-sleep state of man), until it has gained full gross consciousness (comparable to the wide-open eyes of man in the awake state) while experiencing the gross world, the soul is One—indivisible, infinite, formless—and is eternally in the Over-Soul.

Throughout the whole process of evolution, reincarnation was an absolutely spontaneous outcome of the first urge, manifested in the unconscious soul, to become conscious of its eternal and infinite Self.

As has been mentioned already, we can now understand that the cycle of evolution of **consciousness** of **soul** evolved further and greater consciousness, together with the evolution of **forms** of higher and higher types, while exhausting the impressions of the dissociated forms of lower types.

Thus the evolution of consciousness of soul apparently causes the soul to identify itself with, and gather varied innumerable impressions of, higher and higher gross species of forms of the gross world.

स्पष्ट-आकारयुक्त एवम् प्रधान ठोस स्थूल योनियाँ *gross forms* (सर्व-प्रथम सात प्रधान, अत्यन्त अमूर्त गैसरूप एवम् तरल योनियों के बाद) जिनसे आत्मा की चेतना ने साहचर्य किया था (उच्चतर और उच्चतर चेतना की प्रत्येक छलाँग के साथ), सात छलाँगों द्वारा अलग होती हैं—**पत्थर** से धातु, **धातु** से वनस्पति, **वनस्पति** से कृमि, **कृमि** से मछली, **मछली** से पक्षी, **पक्षी** से पशु, और अन्ततः **पशु** से **मनुष्य** ।

प्रथम लहर के अत्यन्त-परिमित प्रथम संस्कार ने **अचैतन्य** आत्मा को अत्यन्त-परिमित **प्रथम चेतना** प्रदान की । क्रमशः, विविध संस्कारों ने आत्मा के लिये उच्चतर परिमित चेतना प्राप्त की, और अन्ततः चेतना का विकास पूरा हो गया जिस समय कि आत्मा ने सर्व-प्रथम मनुष्य-योनि से अपना तादात्म्य किया ।

मनुष्य-योनि में आत्मा को भरपूर एवम् पूर्ण चेतना प्राप्त हो जाती है ।

इसलिये आत्मा को, अब मनुष्य-योनि में भरपूर एवम् पूर्ण चेतना प्राप्त कर चुकने पर, चेतना का विकास करने के लिये किन्हीं अधिक अथवा किन्हीं अन्य उच्चतर योनियों की आवश्यकता नहीं होती ।

यह चेतना भरपूर और पूर्ण होती है ।

यद्यपि यह आत्मा भरपूर और पूर्ण चेतना प्राप्त कर चुकी है, फिर भी उसको अब भी अपनी सत्ता (*self*) के एक, अखण्ड्य, सनातन, एवम् अनन्त स्वरूप की बिल्कुल चेतना नहीं है, और न उसको अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति एवम् अनन्त आनन्द का अनुभव होता है । किन्तु उसको मनुष्य-योनि और उसके विविध पहलुओं से अपनी एकरूपता की केवल पूर्ण चेतना प्राप्त होती है, और वह पूर्णरूपेण अन्न भुवन का अनुभव करती है ।

पूर्ण चेतनायुक्त आत्मा को अब भी अपनी मूल अनन्त अवस्था की चेतना मनुष्य-योनि के स्थूल संस्कारों के अवांछित (यद्यपि अनिवार्य) बोझ के कारण नहीं होती, जिस मानवदेह से आत्मा की चेतना पृथक् हो जाती है जबकि वह शरीर मृत हो जाता है । जो मनुष्य-शरीर अब मृत हो चुका है, उसके ये संस्कार प्राप्त हुई पूर्ण चेतना से अब भी चिपटे रहते हैं; और, सदैव की भाँति, आत्मा की चेतना अपने को अभी त्यागे गये मनुष्य-शरीर के इन स्थूल संस्कारों में केन्द्रितरखती है ।

(४२)

The clean-cut and major concrete gross forms (after the most-first seven major, most abstract gaseous and fluid forms) with which the consciousness of the soul associated (with every leap of greater and greater consciousness) are separated by the seven leaps from stone to metal, from metal to vegetable, from vegetable to worm, from worm to fish, from fish to bird, from bird to animal and lastly from animal to human being.

The most-finite first impression of the first urge gave to the unconscious soul the most-finite first consciousness. Gradually, varied impressions gained greater finite consciousness for the soul, and eventually the evolution of consciousness was complete when the soul identified itself with the most-first human-form.

In human-form the soul achieves full and complete consciousness.

Therefore the soul, having now gained full and complete consciousness in human-form, does not need any more or any other higher forms to evolve consciousness.

This consciousness is full and complete. Though this soul has gained full and complete consciousness, it is still not at all conscious of its Self as One, indivisible, eternal and infinite, and does not experience infinite knowledge, power and bliss. But it is only fully conscious of its identity with human-form and its varied aspects, and experiences the gross world in full.

The soul with full consciousness is still unconscious of its original infinite state because of the unwanted (though necessary) burden of the gross impressions of the human-form from which the consciousness of the soul dissociates as that form drops dead. These impressions, of the human-form now dead, still cling to the full consciousness gained; and, as usual, the consciousness of the soul centralizes itself in these gross impressions of the human-form just dropped.

चेतना के ऊपर से इन संस्कारों का बोझ हटाने के प्रयास में, आत्मा की स्थूल चेतना आत्मा को असंख्य विपरीत अनुभवों के द्वारा, जो कितने ही पुनर्जन्मों तक प्राप्त किये जाते हैं, इन संस्कारों को अनुभव तथा शून्य करने के लिये प्रवृत्त करती है । पुनर्जन्म की इस प्रक्रिया में आत्मा की चेतना, अपने को संस्कारों के बोझ से मुक्त करने का प्रयत्न करने के दौरान में, पुनर्जन्म के प्रत्येक क्रम में और भी अधिक फँस जाती है । जिस समय विपरीत संस्कारों के अनुभवों का पूर्ण सन्तुलन होने के करीब होता है, ठीक उसी समय यह सन्तुलन आत्मा की चेतना से भङ्ग हो जाता है जो अपना साहचर्य अगली नई मनुष्य-योनि से करती है । इस साहचर्य के न होने से संस्कारों का प्रभाव क्रमशः विपरीत अनुभवों के बराबर सन्तुलन के द्वारा अन्यथा सम हो गया होता और इस प्रकार उससे आत्मा की चेतना द्वन्द्वों के सब संस्कारों से मुक्त हो गई होती ।

इस स्थल पर एक "पूर्ण तराज़ू" की उपमा उपयुक्त होगी । आत्मा द्वारा विकास की प्रक्रिया के दौरान में प्राप्त की गई चेतना पूर्ण तराज़ू की डाँड़ी के सदृश है, और तराजू के दोनों पलड़े पुण्य और पाप, इत्यादि जैसे संस्कारों के द्वन्द्वों के असमान भारों से भरे हैं ।

इस प्रकार चेतना, डाँड़ी का कार्य करती हुई, सन्तुलन प्राप्त करने का प्रयत्न करती है, किन्तु यह असम्भव है जब तक कि द्वन्द्वों के असमान संस्कार अनुभव किये जाने के लिये शेष बने हुये विद्यमान रहते हैं । अतएव यही कारण है कि आत्मा की स्थूल चेतना द्वन्द्वों के संस्कारों का पूर्ण सन्तुलन प्राप्त करने के लिये **प्रबल** विपरीत संस्कारों का अनुभव करने की निरन्तर चेष्टा करती है ।

किन्तु दुखद बात यह है कि जैसे ही आत्मा की स्थूल चेतना, **प्रबल विपरीत** संस्कारों का अनुभव क्रमशः करने के द्वारा, सम्तुलन के शून्य बिन्दु पर पहुँचने के लिये प्रवृत्त होती है, वैसे ही ऐसा होता है कि आत्मा की चेतना प्रबल विपरीत संस्कारों का अनुभव करने में अनिवार्यतः अत्यधिक लीन हो जाती है, और इस सीमा तक उनका अनुभव करती है अथवा उनको शून्य करती है कि ये प्रबल विपरीत संस्कार अब इस स्तर तक कम हो जाते हैं (अर्थात्, अनुभव के द्वारा) कि, वे संस्कार जिनका भार मूल प्रबल विपरीत संस्कारों के भार से कम हो गया था, अब पबल हो जाते हैं; और सन्तुलन अथवा साम्यावस्था में एक बड़ी

In trying to unburden consciousness of these impressions, the gross consciousness of the soul tends the soul to experience and exhaust these impressions through innumerable opposite experiences taken through a series of reincarnations. In this process of reincarnation the consciousness of the soul, while trying to liberate itself from the burden of impressions, gets still further entangled at every stage of reincarnation. When a complete balance of experiences of opposite impressions is just about to be attained, it is just then disturbed by the consciousness of the soul associating itself with the next new human-form. Absence of this association would otherwise have neutralized the effect of the impressions by an equal balance of respective opposite experiences and would thus have liberated the consciousness of the soul from all impressions of opposites.

Here the simile of a "perfect balance" would be appropriate. The consciousness gained by the soul during the process of evolution resembles the indicator at the fulcrum of a perfect balance, and the two pans of the balance are filled with the unequal weights of opposites of impressions such as virtue and vice, etc.

In this way consciousness, acting like the indicator at the fulcrum, tries to gain equilibrium, which is impossible as long as there are in existence unequal impressions of opposites remaining to be experienced. It is therefore that the gross consciousness of the soul constantly seeks to experience the **predominant** opposite impressions in order to gain a total equilibrium of the impressions of opposites.

But the tragedy is this, that as soon as the gross consciousness of the soul tends to reach the zero point of equilibrium by gradually experiencing the predominant opposite impressions, it so happens that the consciousness of the soul invariably gets too engrossed in experiencing the predominant opposite impressions, and experiences them or exhausts them to such a degree that these predominant opposite impressions are now reduced (i.e., through experience) to such a level, that those impressions which were over-balanced by the original predominant opposite impression s now become predominant; and a great disturbance of balance or equipoise occurs; wherefore consciousness, acting like the indicator at the fulcrum, swings or switches in just the opposite direction of its original experience.

गड़बड़ी हो जाती है; और इसलिये डाँड़ीवत् कार्य करती हुई चेतना, अपने मूल अनुभव की विपरीत दिशा में झूम जाती है ।

इस सन्धिबेला में ही आत्मा की चेतना दूसरी मनुष्य-देह के द्वारा **नवीन प्रबल** विपरीत संस्कारों के अनुभव की ओर मुड़ती है । मानव प्राणी, आत्मा की चेतना की तकाज़ा करतू हुई आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये, एक माध्यम के रूप में जन्म लेता है अथवा देह धारण करता है, जो चेतना अब अधिकतर प्रबल विपरीत संस्कारों को शून्य करने अथवा ख़र्च करने अथवा अनुभव करने का प्रयत्न करती है ।

यह निपट स्वाभाविक है कि अब इस मानवी आत्मा द्वारा अभिव्यक्त किये गये प्रबल गुण प्रबल विपरीत संस्कारों के अनुसार होंगे, जिन संस्कारों की यह नई मानव-योनि मूर्तमान पिण्ड मात्र है ।

इस प्रकार, पुनर्जन्म की प्रक्रिया में, पूर्ण स्थूल-चेतनायुक्त मानवी आत्मा को, जो पूर्णतया विकसित सूक्ष्म और कारण शरीरों के बल से सम्पन्न होती है, यद्यपि उसको इनका भान नहीं होता, अनन्त अनुभवों की शृङ्खला में द्वन्द्वों के संस्कारों के—ऐसे संस्कार जो बिल्कुल विपरीत होते हैं—असंख्य विविध और अगणित भिन्न भिन्न अनुभवों का अनुभव अनिवार्यरूप से करना पड़ता है ।

स्थूल शरीर के साथ अपना साहचर्य रखने के द्वारा, आत्मा अपने पिछले सञ्चित विपरीत संस्कारों को शून्य करने का प्रयत्न करती है, किन्तु ऐसा करने में वह कदाचित् ही सफल होती है । इसके विपरीत, वह बहुधा द्वन्द्वों के **नये** संस्कार सञ्चित कर लेती है । जब स्थूल शरीर उन संस्कारों को शून्य करने के क़रीब होता है जिनके कारण ऊसका अस्तित्व हुआ था, तब वह छूट जाता है । बचे हुये विपरीत संस्कार आत्मा को, पुण्य अथवा पाप की प्रबलता के अनुसार, स्वर्ग अथवा नर्क में पहुँचाते हैं । आत्मा के शरीर से पृथक् हुये अस्तित्व में भी, सब विपरीत संस्कार तीव्र हुये संस्कारों का आत्मिक अनुभव करने के द्वारा शून्य होने का प्रयत्न करते हैं । किन्तु यहाँ भी, स्वर्ग अथवा नर्क की अवस्ता में, संस्कार-शून्यता का सन्तुलन आमतौर पर सीन्नकट होता है किन्तु हाथ में नहीं आता, और बचे हुये प्रबल विपरीत संस्कार आत्मा की चेतना को एक नवीन स्थूल माध्यम से साहचर्य करने के लिये कोंचते हैं । पूर्ण सन्तुलन का अभाव मृत्यु में तथा जन्म में भी रहता है । वह केवल स्थूल जगत में प्राप्त किया जा सकता है । इसलिये बचे हुये

It is at this juncture that the consciousness of the soul turns towards the experience of the **newly** predominant opposite impressions through another human-form. A human being takes form or birth as a medium to satisfy the demanding need of the consciousness of the soul, which now seeks to exhaust or spend or experience the more predominant opposite impressions.

It is but natural that the predominant qualities manifested now by this human soul will be in accordance with the predominant opposite impressions, of which this new human-form is but the mould.

Thus, in the process of reincarnation, the fully gross-conscious human soul, fortified with fully developed subtle and mental bodies, though unconscious of these, must necessarily experience countless varied experiences of impressions of opposites—the impressions which are diametrically opposite—in a chain of unending experiences.

Through its association with the gross body, the soul seeks to exhaust its previously accumulated opposite impressions, but rarely succeeds in doing so. On the contrary, it often accumulates **fresh** impressions of opposites. When the gross form is about to exhaust the impressions which brought it into existence, it is dropped. The residual opposite impressions lead the soul to heaven or hell, in accordance with the predominance of virtue or vice. In discarnate existence also, all opposite impressions seek to be exhausted through the subjective experiencing of vivified impressions. But even here, in the state of heaven or hell, the equipoise of impressionlessness is generally approximated but missed, and the residual predominant opposite impressions goad the consciousness of the soul to associate with a new gross medium. Complete equipoise is lacking in death as well as in birth. It can only be achieved in the g ross world. Therefore an endless chain of lives in the gross sphere is

संस्कार स्थूल जगत में जीवनों की अनन्त शृङ्खला क़ायम रखते हैं, जब तक कि चेतना संस्काररहित सम्तुलन में स्थापित हो जाने में सफल नहीं होती ।

प्रत्येक स्थिति में और पुनर्जन्म की प्रत्येक अवस्था में, पूर्णतया मानव-चेतनायुक्त आत्मा की चेतना तादात्म्य किये गये तथा पृथक् किये गये मनुष्य-योनियों के अधिक और अधिक केन्द्रीकृत संस्कारों में दृढ़तापूर्वक केन्द्रित हो जाती है । इन केन्द्रीकृत संस्कारों से कोई चुटकारा* होना प्रतीत नहीं होता । इन संस्कारों का अनुभव करना तथा इन्हों शून्य करना आवश्यक होता है, और संस्कारों का जितना अधिक अनुभव किया जाता है उतने हो अधिक संस्कार केन्द्रीकृत होते हैं ।

(४५)

* इस बात का ज्ञान रखते हुये कि "सृष्टि" कोई आकस्मिक घटना नहीं है और इसके दृष्टिगोचर स्वरूप की अपेक्षा इसमें गहनतर अर्थ भरा है, सभी युगों के ऋषियों और मुनियों ने पुनः दुनियाँ का ध्यान इस सत्यता की ओर खींचा है कि भले ही मनुष्य इस पथ्वी ग्रह पर अपने जीवन की एक ख़ास अवधि के लिये अपना तादात्म्य अनन्यतः इन्द्रिय-जीवन से किये रहे, उसका श्रेष्ठ "अतीत" प्रारब्ध ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त करना है ।

मौलाना रूमी ने अपनी पुस्तक "मसनवी" में एक दृष्टान्त दिया है जो इस बात को स्पष्ट करता है : चीता के एक बच्चे का पालन-पोषण भेड़ों के मध्य हुआ । जैसे जैसे चीता का वह बच्चा बढ़ता गया, उसमें भेड़ों के सब लक्षण आते गये और वह भेड़ों की तरह घास चरने तथा मिमियाने लगा, जिससे वह कभी भी अपने को भेड़ों से भिन्न न सोचता था । एक दिन, एक चीता जङ्गल से आकर उसके पास पहुँचा और उससे कहने लगा, "क्या तुम्हें मालूम है कि तुम मेरे समान ही एक चीता हो, और भेड़ नहीं हो ?" उसके बाद वह चीता उस भटके हुये चीता को फुसलाकर एक निकटवर्ती नाले के पास ले गया और उससे पानी में अपनी परछाई देखने के लिये कहा, और इस प्रकार वह उसको उसकी यथार्थ प्रकृति का ज्ञान कराने में सफल हुआ ।

इस कहानी का यह उपदेश है कि मनुष्य भी अपना तादात्म्य इन्द्रिय-जगत से होने देता है, और उससे बचने का कोई उपाय उसको प्रतीत नहीं होता । किन्तु उससे छूटने का एक उपाप है, क्योंकि अन्ततः एक मानस-शिरोमणि (*master mind*) प्रकट होता है जो उसको ज्योति प्रदान करता है । तब उसका उद्धार हो जाता है, और कुछ समय में वह अपने को अपने अन्तिम लक्ष्य—ईश्वर-साक्षात्कार—के आमने-सामने पाता है ।

sustained by residual impressions, until consciousness succeeds in getting established in impressionless equipoise.

At every stage and in every state of reincarnation, the consciousness of the fully human-conscious soul gets firmly centralized in the more and more concentrated impressions of human-forms with which it has identified and from which it has dissociated. There seems to be no escape* from these concentrated impressions. These impressions must be experienced and exhausted, and the more the impressions are experienced the more the impressions become concentrated.

* Knowing that Creation is not an accident and that it has a deeper meaning than is apparent to the eye, the seers of all ages have time and again drawn the attention of the world to the fact that, although for a certain period of his life on this planet man may identify himself exclusively with the life of the senses, his transcendental destiny is God-realization.

Maulana Rumi, in his Masnavi, has a parable that illustrates this: The cub of a tiger happened to be reared amongst a flock of sheep. As the cub grew up, it developed all the traits of the sheep and grazed and bleated like them, so that it never thought of itself as anything different from the sheep. One day, however, a tiger from the jungle approached the one from the flock and said to him, "Do you know that you are a tiger like me, and not one of the sheep?" Thereafter he coaxed the strayed tiger to look at its image in a rivulet nearby, and succeeded in enlightening it as to its true nature.

The moral of this fable is that man also allows himself to be identified with the world of the senses and seems to have no way of escape. But there is a way of escape, for eventually a Master appears who enlightens him. He is then redeemed, and finds himself in the course of time face to face with his ultimate goal—God-realization.

पूर्णतया मानवी-चेतनायुक्त आत्मा की चेतना के लिये संस्कारों की इस एकाग्रता को "क्षीन" करने का एकमात्र हल यह है कि वह इस रीति से, तथा इतनी अधिक तीव्रता के साथ, इन संस्कारों को प्रचुरतया एवम् अधिकतर शीघ्रतापूर्वक अनुभव करे कि प्रत्येक अनुभव किया गया संस्कार, और इस अनुभव से पैदा हुआ संस्कार, किसी प्रकार एक विपरीत संस्कार के द्वारा सम्तुलन हो जाय ।

पुनर्जन्म की प्रक्रिया के आद्योपान्त द्वन्द्वों के संस्कारों के सन्तुलन और प्रतिसन्तुलन का यह खेल जारी रहता है, और इसी खेल पर पुनर्जन्म की प्रक्रिया क़ायम रहती है । इस खेल पर मानवी-चेतनायुक्त आत्मा की अज्ञानता के बन्धनों से, अन्तिम मुक्ति तथा आत्म चेतना का अन्तिम साक्षात्कार निर्भर होते हैं ।

इस प्रकार, पुनर्जन्म की प्रक्रिया में, पूर्णतया स्थूल-चेतनायुक्त मानवी आत्मा को अनिवार्यतः द्वन्दों के संस्कारों के—ऐसे संस्कारों के जो एक-दूसरे से बिल्कुल विपरीत होते हैं—असंख्य एवम् नानाविध अनुभवों का अनुभव करना पड़ता है, और यह अनुभव आत्मा को अविचल अनुभवों की एक प्रत्यक्ष अनन्त शृङ्खला में करना पड़ता है ।

इसलिये, जिस समय स्थूल-चेतनायुक्त मानवी आत्मा, जो अब पूर्णतया चैतन्य है, स्थूल जगत में 'द्वन्द्वों के अनुभव से गुज़रती है, उस अवधि में आत्मा की चेतना को अपना तादात्म्य (अथवा पुनर्जन्म) असंख्य बार पूरुष के रूप में, फिर स्त्री के रूप में, और फिर इसके उलट-पलट रूपों में, भिन्न-भिन्न आतियों, धर्मों, राष्ट्रीयताओं, रंगों, तथा विभिन्न स्थानों में; कभी धनी के रूप में, और फिर कंगाल के रूप में; कभी स्वस्थ्य रूप में, और कभी रोगी के रूप में, इत्यादि करना पड़ता है, जबकि वह हर समय विपरीत संस्कारों का पुनर्निरीक्षण करती रहती है, विपरीत संस्कार पैदा करती है, तथा साथ-साथ उन्हें विपरीत अनुभवों के द्वारा शून्य करती रहती है ।

इन्हों नानाविध विपरीत संस्कारों तथा उनके क्रमशः विपरीत अनुभवों के द्वारा ही, स्थूल-चेतनायुक्त मानवी आत्मा स्थूल जगत में सम्भवतः एक दिन, करोड़ों जन्मों एवम् मृत्युओं के बाद, और जन्मों एवम् पृत्युओं के इन विपरीत अनुभवों के द्वारा, शेष बचे अथवा

The only solution to "thin out" this concentration of impressions is for the consciousness of the fully human-conscious soul to experience increasingly and more rapidly these impressions in such a way, and in so great a frequency that every impression experienced, and the impression that this experience created, should be counter-balanced somehow by an opposite impression.

Throughout the process of reincarnation this play of balancing and counter-balancing the opposites of impressions continues, and on this play is sustained the reincarnation process. On this play depends the eventual emancipation of the human-conscious soul from the chains of ignorance, and the ultimate realization of Self-consciousness.

Thus, in the process of reincarnation, the fully gross-conscious human soul must necessarily experience innumerable and diverse experiences of impressions of opposites—the impressions which are diametrically opposite—in an apparently unending chain of consistent experiences.

Therefore, while the gross-conscious human soul, which is now fully conscious, undergoes the experience of **opposites** in the gross world, the consciousness of the soul has to identify (or reincarnate) itself a number of times as a male, then as a female, and vice versa, in varied castes, creeds, nationalities, colours, and in different places; as rich one time and then as a pauper; sometimes healthy and sometimes sick, and so forth, all the while reviewing opposite impressions, creating opposite impressions, and simultaneously exhausting them by opposite experiences.

It is only through these diverse opposite impressions and their respective opposite experiences, that the gross-conscious human soul in the gross world could possibly one day, after millions of births and deaths,

केन्द्रीकृत हुये विपरीत संस्कारों† को सम्तुलन करने में अथवा क्षीण करने में समर्थ हागी ।

मानव-शरीरों की असंख्य मृत्युओं और उनके फलस्वरूप होने वाले जन्मों के इस चक्र के अन्तिम परिणामस्वरूप ही स्थूल-चेतनायुक्त मानवी आत्मा की पूर्णतया विकसित चेतना इस चेतना का इतनी गहराई तक **प्रतिवर्धन करने** (*involve* ऊर्ध्वगमन) के लिये अत्प्रेरित होती है जहाँ इस आत्मा की पूर्णतया प्रतिवर्धित (*involved*) चेतना को **आत्मा** (*self*) की अनन्त, सनातन अवस्था की सत्यता का साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है ।

चेतना के प्रतिवर्धन की यह प्रक्रिया क्रमशः होती है जैसे जैसे द्वन्द्वों के स्थूल संस्कार क्रमशः अधिक क्षीण तथा कम केन्द्रीकृत होते ताते हैं ।

इस स्थिति में स्थूल-चेतमायुक्त मानवी अत्मा की चेतना क्रमशः स्थूल जगत से विच्छिन्न होती जाती है, जैसे जैसे चेतना का प्रतिवर्धन होता है; और वह क्रमशः अन्न भुवन के संस्कारों का अनुभव करने से पृथक् हो जाती है ।

स्थूल चेतना का यह प्रतिवर्धन केवल तभी सम्भव होता है जबकि विपरीत संस्कार क्रमशः, एक बहुत-बहुत लम्बी प्रक्रिया के बाद, अटल पुनर्जन्म की पक्रिया के द्वारा क्षीण हो जाते हैं, जो पुनर्जन्म की प्रफिया द्वन्द्वों के स्थूल संस्कारों की तथा द्वन्द्वों के स्थूल अनुभवों की सीमा तक ले जाती है ।

(४७)

† सरापा आरज़ू होने ने बन्दा कर दिया हमको
वगरना हम खुदा थे गर दिले बे मुद्दुआ होते ।
—मीर तक़ी
"इस तथ्य ने कि मैं सिर से पैर तक इच्छाओं के बोझ से लदा हूँ, मुझको गुलाम बना दिया है; यदि मेरा हृदय और मेरा मन इच्छारहित होते तो मैं वास्तव में परमात्मा होता ।"

and through these opposite experiences of births and deaths, be able to balance or thin out the residual or concentrated opposite impressions.*

It is this cycle of deaths and consequent births of human-forms that ultimately results in inciting the fully evolved consciousness of the gross-conscious human soul to involve this consciousness to that depth where the fully involved consciousness of this soul realizes the reality of the infinite, eternal state of the Self.

This process of involution of consciousness gradually takes place as the gross impressions of the opposites gradually become fainter and less concentrated.

At this stage the consciousness of the gross-conscious human soul gradually gets dissociated from the gross world, as the involution of consciousness infolds, and gradually dissociates from experiencing the impressions of the gross world.

This involution of gross consciousness is only possible when the opposite impressions gradually, after a very, very long process, thin out through the process of unfailing reincarnation, which leads to the limit of gross impressions of the opposites and gross experiences of the opposites.

dil-e muddu'ā

* *Sarāpā ārzū hone ne bandah kar diyā ham ko*
Vagarnah ham khudā the gar dil-ī be mudu'ā hotā.
—Mīr Taqī
"The fact that I am weighed down from head to foot with desires has made a slave of me; I should be God in reality, were my heart and mind desireless."

भाग ५

भूमिकायें

मूक्तकारी चेतना का प्रतिवर्धन

जिस समय आत्मा की चेतना स्थूल जगत से सूलझने के लिये परिपक्व[२] होती है, तब वह आध्यात्मिक मार्ग में प्रवेश करती है और अन्तर की ओर मुड़ती है । उसके स्थूल संस्कार अब कम गहरे हो जाते हैं । वे क्षीणतर अथवा अधिक सूक्ष्म हो जाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप आत्मा अब **सूक्ष्म-चेतनायुक्त** (*subtle-conscious*) हो आती है । चेतना के त्तोतवर्धन में यह पहली सीढ़ी है, जो संस्कारों के बोझ से मुक्त होने के लिये प्रयास कर रही है । मनुष्य योनि में जन्मों और मृत्यूओं के असंख्य चक्रों को स्थूल अनुभव की उस परिपक्वता के लिये सहायता करनी पड़ती है, जो परिपक्वता अन्ततः आत्मा की चेतना को मुक्तकारी प्रतिवर्धन के पथ पर आगे को ठेलनी है, जिस पर संस्कार क्षीणतर और क्षीणतर होते जाने हैं और अन्ततः लुप्त हो जाते हैं । स्थूल संस्कार सूक्ष्म संस्कार बन जाने हैं; सूक्ष्म संस्कार मनो संस्कार बन जाते हैं; और मनो संस्कार अन्ततः पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं, जिससे चेतना 'सत्य' को प्रतिबिम्बित करने के लिये स्वतन्त्र हो जाती है ।

प्रतिवर्धन की प्रक्रिया सामान्यतः क्रम-क्रम से वोती है । मनुष्य को शरीर तथा संस्कारों की परम्परा पशुओं से प्राप्त होती है, इसलिये स्थूल संस्कार बहुत बलशाली होते हैं । अत्यन्त दुर्लभ दशाओं में, स्थूल संस्कार एकाएक नष्ट हो सकते हैं, और आत्मा की मुक्त हुई चेतना परमात्मा का अनुभव करती है, किन्तु अधिक सामान्यतः स्थूल संस्कार क्षीणतर और क्षीणतर होते जाते हैं (इस प्रकार वे सूक्ष्म एवं मनो संस्कारों में परिवर्तित हो जाते हैं), और फिर पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं । सामान्यतः आत्मा, जो घर की ओर अपनी यात्रा पर चल पड़ी है, स्थूल जगत में वापिस नहीं आती जिसमें वह जङ्गल में जैसी खो गई

PART 5

The Planes

Involution of Liberating Consciousness

When the consciousness of the soul is ripe[2] for disentanglement from the gross world, it enters the spiritual path and turns inwards. Its gross impressions now become less deep. They become fainter or more subtle, with the result that the soul now becomes **subtle-conscious.** This is the first step in the involution of consciousness, which is striving for liberation from the burden of impressions. A number of cycles of births and deaths in the human form have to contribute towards that ripeness of gross experience, which ultimately propels the consciousness of the soul onto the path of liberating involution, on which impressions become fainter and fainter and eventually disappear. Gross impressions become subtle impressions; subtle impressions become mental impressions; and mental impressions are ultimately wiped out, leaving consciousness free to reflect the Truth.

The process of involution is generally gradual. Man's heritage of form as well as impressions is from animals, so the gross impressions are very strong. In extremely rare cases, the gross impression s can suddenly disappear, and the freed consciousness of the soul experiences the Over-Soul. But it is more usual for the gross impressions to become fainter and fainter (thus getting converted into subtle and mental impressions), and then fade away completely. As a general rule the soul, which has started on its homeward journey, does not come back to the gross world in which it had lost itself as if in a wilderness. This does not mean that the subtle-conscious soul does not take a gross form or dwell in the gross world with

थी । इसका यह अर्थ महीं है कि सूक्ष्म-चेतनायुक्त आत्मा स्थूल रूप नहीं लेती और न अपने स्थूल शरीर के साथ स्थूल जगत में रहती है । इसका अर्थ यह होता है कि आत्मा की चेतना और आगे स्थूल रूप से अथवा स्थूल जगत से फँसी नहीं रहती, और यह कि वह मुख्यरूप से सूक्ष्म जगत में लीन रहती है । सामान्य नियमानुसार आत्मा पहले अन्न भुवन से अपना सम्बन्ध तोड़ती है, फिर प्राण भुवन से तोड़ती है और अन्त में मन भुवन से तोड़ती है, और अपने को इन सबसे परे अनुभव करती है । इस मार्ग को पार करने में वह छः भूमिकायें पार करती है, जिनमें से प्रथम तीन भूमिकायें प्राण भुवन से सम्बन्ध रखती हैं, चौथी भूमिका प्राण भुवन और मन भुवन की सीमान्त रेखा पर होती है, और पाँचवीं तथा छठवीं भूमिकायें मन भुवन से सम्बन्ध रखती हैं । आत्मा, जो शश्वतः परमात्मा में निवास करती है, सब भूमिकाओं के परे है ।

पहली और दूसरी भूमिकायें

जैसे जैसे स्थूल-चेतनायुक्त मानवी आत्मा की स्थूल चेतना का क्रमशः प्रतिवर्धन होता है, यह प्रतिवर्धित होती हुई स्थूल चेतना प्राण भुवन की पहली भूमिकाट[३] का **आंशिक** अनुभव आत्मा के पूर्णतया विकसित सूक्ष्म शरीर के माध्यम से करती है ।

इस स्थिति में स्थूल-चेतनामय मानवी आत्मा की प्रतिवर्धित स्थूल चेतना को प्राण भुवन की पहली भूमिका की प्रथम झलकें मिलती हैं और वह इन झलकों अथवा संस्कारों का कुछ अनुभव स्थूल शरीर के द्वारा और कुछ सूक्ष्म शरीर के द्वारा करती है । इस स्थल पर स्थूल और सूक्ष्म दोनें इन्द्रियों का प्रयोग साथ-साथ होता है ।

यही स्थिति है जबकि यह कहा जाता है कि मानवी आत्मा मानो सीमाविभाजन की रेखा पर खड़ी होती है, जैसाकि रेखाचित्र‡, में दिखाया गया है, जो अन्न भुवन को प्राण भुवन से विभाजित करती है । इस मानवी आत्मा की चेतना को विचित्र चीज़ों के अनुभव होते हैं । अपने स्थूल नेत्रों से वह प्राण भुमिका की झलवकें दोखता है, अपने स्थूल कानों से वह प्राण भूमिका का अलौकिक संगीत सुनता है, अपनी स्थूल नासिका से वह सूक्ष्म सुगन्धियों का आनन्द लेता है, इत्यादि । संक्षेप में, स्थूल-चेतनामय मानवी आत्मा, जो अंशतः प्राण भुवन की प्रथम भुमिका (४९)

‡ पृष्ठ के सामने (यह चार्ट पृष्ठ ४८-४९ के बीच देखिये)

its gross body. It means that the consciousness of the soul is no longer entangled with the gross form or the gross world, and that it is chiefly engrossed in the subtle world. As a general rule the soul first snaps its link with the gross world, then with the subtle world and lastly with the mental world, and comes to realize itself as beyond all these. While it traverses this path it crosses six planes, of which the first three belong to the subtle world, the fourth is on the border line of the subtle and mental worlds, whereas the fifth and the sixth belong to the mental world. The soul, abiding everlastingly in the Over-Soul, is beyond all planes.

First and Second Planes

As the gross consciousness of the gross-conscious human soul gradually involves, this involving gross consciousness experiences **partially** the first plane[3] of the subtle world through the medium of the fully developed subtle body of the soul.

At this stage the involved gross consciousness of the gross-conscious human soul gets the first glimpses of the first plane of the subtle world and experiences these glimpses or impressions partially through the gross body and partially through the subtle body. Here both the gross and the subtle senses are used simultaneously.

This is the stage when it is said that the human soul stands as it were on the line of demarcation, as shown in the sketch,* which demarks the gross world from the subtle world. The consciousness of this human soul experiences strange things. With his gross eyes he sees glimpses of the subtle plane, with his gross ears he hears celestial music of the subtle plane, and with his gross nose he enjoys subtle scents. In short, the gross-

* Facing p. 55 in *God Speaks* 1987.
Facing p. 59 in *God Speaks* 1967.

पर है, स्थूल इन्द्रियों से सूक्ष्म संस्कारों का अनुभव करती है ।

क्रमशः, स्थूल चेतना के और अधिक प्रतिवर्धित होने पर, स्थूल-चेतनामय मानवी आत्मा प्राण भुवन की पहली भूमिका का अनुभव पूर्णतया करती है । अब स्थूल-चेतनायुक्त मानवी आत्मा स्थूल-चेतनामय नहीं रहती बल्कि वह सूक्ष्म-चेतनामय हो जाती है । इस सूक्ष्म-चेतनामय मानवी आत्मा को क्रमशः प्राण भुवन की दूसरी भूमिका[४] की चेतना प्राप्त हो जाती है । यह प्राण भुवन अनन्त प्राणशक्ति का, ईश्वर की अनन्त शक्ति का, प्रदेश है, जो शक्ति सीमित में रूपान्तरित होने पर, यहाँ प्राण भुवन की अनन्त प्राणशक्ति के रूप में प्रकट होती है ।

जब मनुष्य योनि में आत्मा को सूक्ष्म चेतना प्राप्त होती है, तो उसको शरीर (स्थूल) और मन (*mental body*) का भान नहीं रहता; किन्तु वह शरीर के द्वारा तथा मन (कारण शरीर) के द्वारा कार्य करती है; सीधे नहीं, बल्कि सूक्ष्म भुमिका पर ।

इसलिये यद्यपि सूक्ष्म-चेतनायुक्त मानवी आत्मा को शरीर एवम् मन का भान नहीं होता और इसलिये वह अन्न भुवन तथा मन भुवन का अनुभव नहीं करती, तथापि वह स्थूल शरीर का प्रयोग स्थूल के विवध पहलुओं के द्वारा कर सकती है, जैसे खाना, पीना, सोना, देखना, स्पर्श का अनुभव करना, सुनना, इत्यादि, और वह मन (कारण शरीर) का उपयोग मन के विविध पहलुओं के द्वारा कर सकती है, जैसे इच्छायें विचार और भावनायें ।

प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा दूसरी भुमिका पर, चेतना के उच्चतर प्रतिवर्धन के साथ, प्राण भुवन की अनन्त प्राण शाक्त की चेतना क्रमशः प्राप्त करती है और वह मायावी लीलायों करने अथवा निम्न कोटि के छोटे-छोटे चमत्कार करने में समर्थ होती है । उदाहरण के लिये, एक इच्छामात्र से वह सूखे वृक्ष को हरा कर सकती है और इसका उल्टा भी, वह रेलगाड़ियाँ और मोटरें रोक सकती है, मूखे कुआँ को ताजे पानी से भर सकती है, इत्यादि । यह प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्मा दूसरी भूमिका पर अपने सूक्ष्म शरीर की सूक्ष्म इन्द्रियों के द्वारा प्राण भुवन का अनुभव करती है । अब उस मनुष्य को अन्न भुवन की बिल्कुल चेतना नहीं होती, यद्यपि सभी बाहरी दिखावों में वह एक साधारण मनुष्यवत् रहता है और कार्य करता है—खाना, सोना, दुख और सुख का अनुभव करना, इत्यादि—तथापि वास्तव में उसकी

conscious human soul, partially on the first plane of the subtle world, experiences subtle impressions with gross senses.

Gradually, with further involution of gross consciousness, the g ross-conscious human soul experiences completely the first plane of the subtle world. Now the gross-conscious human soul is no longer gross-conscious but he is subtle-conscious. This subtle-conscious human soul gradually becomes conscious of the second plane[4] of the subtle world. This subtle world is the domain of infinite Energy, the infinite power of God, which when translated into the finite, here manifests in the form of the infinite energy of the subtle world.

When in human form the soul has subtle consciousness, it is unconscious of the body (gross) and mind (or the mental body); but it does work through the gross body and through the mind (mental body), not directly, but on the subtle plane.

So even if the subtle-conscious human soul is unconscious of the gross body and mental body and therefore does not realize the gross and mental worlds, he can use the gross body through various aspects of the gross, such as eating, drinking, sleeping, seeing, feeling, hearing, etc.; and he can use the mental body through various aspects of mind (mental body), such as desires, thoughts and emotions.

The subtle-conscious human soul on the second plane, with greater involution of consciousness, is gradually gaining consciousness of the infinite energy of the subtle world and is capable of performing tricks, or minor miracles of lower degree. For instance, with one wish he can make a dry tree green and vice versa; he can stop railway trains and motor cars, fill a dry well with fresh water, and so forth. This subtle-conscious human soul on the second plane experiences the subtle world with the subtle senses of his subtle body. He is now totally unconscious of the gross world, although from all outward appearances he remains and functions as an ordinary man—eating, sleeping and having feelings of pain and pleasure, etc.—yet actually his involving consciousness experiences not

प्रतिवर्धशील चेतना अन्न भुवन का नहीं बल्कि प्राण भुवन का अनुभव करती है और केवल देखने, सूँघने एवम् सुनने के नवीन सूक्ष्म संस्कार पैदा करती है ।

तीसरी भुमिका

प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्मा की प्राण चेतना का और आगे प्रतिवर्धन होने पर आत्मा को प्राण भुवन की तीसरी भूमिका का अनुभव[५] होता है । यहाँ प्राण-चेतना को प्राण भुवन की अनन्त प्राण-शक्ति की और अधिक चेतना प्राप्त होती है और आत्मा को और अीधक परिमित शक्ति का अनुभव होता है । यहाँ वह भारी चमत्कार करने में समर्थ होती है जैसे अन्धों को दृष्टि प्रदान करना, अंगहीन लोगों को अंग प्रदान करना । यहाँ यह प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा, प्राण भुवन की विभिन्न भूमिकाओं एवं जगतों का अनुभव करने में भी समर्थ होती है, जिस प्रकार एक स्थूल-चेतनामय मानवी आत्मा, अपनी इच्छानुसार, अपने को प्राप्त स्थूल साधनों का प्रयोग करती हुई एशिया से आस्ट्रेलिया अथवा अमरीका की यात्रा करने में समर्थ होती है ।[६]

प्राण भुवन की दूसरी और तीसरी भूमिकायें दो बड़ी भूमिकायें हैं जो केवल प्राण भुवन के प्रदेश में होती हैं । पहली भुमिका कुछ अंशों में प्राण भूवन के प्रदेश में होती है । इसी प्रकार चौथी भूमिका वुछ अंशों में प्राण भुवन की होती है और कुछ अंशों में मन भुवन की होती है । यह चौथी भूमिका **मन भुवन** की देहली कहलाती है ।

चौथी भूमिका

प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा की चेतना में क्रमशः और अधिक प्रतिवर्धन होने पर, आत्मा की चेतना आत्मा को प्राण भुवन की चौथी भुमिका का अनुभव करने के लिये प्रवृत्त करती है । चौथी भूमिका में आत्मा को **अनन्त प्राणशक्ति** की पूर्ण चेतना होती है । यह वही अनन्त पाणशक्ति है जो ईश्वर की उस अनन्त शक्ति का छायादार अङ्ग है । यहाँ आत्मा पूर्ण शक्ति से सम्पन्न होती है और वह मुदों को ज़िन्दा करने में तथा जीवन से सम्पन्न नई योनियाँ व दुनियायों रचने में‡ समर्थ होती (५१)

‡ कुतुब अवस्था की विज्ञान-चेतनायुक्त आत्मायें अथवा सद्गुरु ऐसी घतना का नियंत्रण करती हैं और वे इस बात की देख-रेख रखते हैं कि ऐसी भोंड़ी दुर्भाग्यपूर्ण घटनायें कभी न होने पावें, अब वे पहले से निर्दिष्ट न हों ।

the gross but the subtle world and creates fresh subtle impressions only of the sights, scents and sounds of the subtle world.

Third Plane

Further involution of the subtle consciousness of the subtle-conscious human soul makes the soul experience the third plane[5] of the subtle world. Here the subtle consciousness gains greater consciousness of the infinite energy of the subtle world and the soul experiences greater finite power. Here he is capable of performing grand miracles such as giving sight to the blind and restoring limbs to the maimed. Here this subtle-conscious human soul is also capable of experiencing the different planes and worlds of the subtle sphere, just as a gross-conscious human soul is capable of travelling from Asia to Australia or America using the gross vehicles at his disposal.[6]

The second and third planes of the subtle sphere are the two major planes which are solely in the domain of the subtle sphere. The first plane is partially in the domain of the subtle sphere and partially in the gross sphere. Similarly the fourth plane is partially of the subtle sphere and partially of the mental sphere. This fourth plane is known as the threshold of the **mental sphere.**

Fourth Plane

With a gradual and further gain in the involution of the consciousness of the subtle-conscious human soul, the consciousness of the soul inclines the soul to experience the fourth plane. On the fourth plane the soul is fully conscious of **infinite energy.** It is the very same infinite energy which is the shadowy aspect of that infinite power of God. Here the soul is equipped with full power and is even capable of raising

* The vidnyan-conscious souls of Qutub state or Perfect Masters control such a happening and see that such gross mishaps do not come to pass unless preordained.

है । चौथी भुमिका पर कोई गूढ़ शक्तियाँ नहीं होतीं, वे दिव्य शक्तियाँ हैं ।

जैसाकि पृष्ठ ४९ के सामने वाले रेखाचित्र में दिखाया गया है, प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा चौथी भूमिका पर, अनन्त शक्ति के भण्डार की कुन्जी अपने हाथ में लिये हुये, मन भुवन के द्वार पर दिखाई पड़ती है, और ऊसका सामना प्रचण्ड इच्छाओं एवं विकारों के पूरे तूफ़ान से होता है जो मन भुवन के मन के पहलू हैं । इस स्थिति में आत्मा मानो सबसे अन्धेरी रात की अवस्था का अनुभव करती है । वह अपने को दैत्य और सागर के बीच में फँसा हुआ पाती है । इस अनन्त पाणशक्ति को इच्छानुसार सँभालने और इस्तेमाल करने के लिये प्रचण्ड इच्छाओं द्वारा पैदा की गई प्रबल ऊत्तेजना, इस सन्धि बेला में एक विश्वासघाती शत्रु सिद्ध होती है जबकि इस प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्मा की चेतना का प्रतिवर्धन सकल इच्छाओं के ऊपर प्रभुत्व प्राप्त करने की दिशा में अटलतया तेज़ गति से अग्रसर हो रहा है ।

यदि ये इच्छायें अपने शिरोबिन्दु पर पहूँचकर चौथी भूमिका की आत्मा को पराजित कर लेती हैं, और यदि शक्तियों का दुरुपयोग किया जाता है, तब इस अनन्त प्राणशक्ति को मुक्त करने का अनुभव चतुर्थ भूमिका पर स्थित आत्मा को इस बेला में अनिवार्यरूप से प्राण-घातक सिद्ध होता है । इसका परिणाम यह होता है कि आत्मा द्वारा प्राप्त की गई सब चेतना प्रचण्डता के साथ खण्ड-खण्ड हो जाती है, और आत्मा में केवल अत्यन्त परिमित चेतना रह जाती है और वह पुनः पत्थर योनि से अपना तादात्म्य करती है । तब इस आत्मा को पुनः पूर्ण चेतना प्राप्त करने के लिये पत्थर-योनि से लेकर आगे विकास की पूरी प्रक्रिया को पार करना पड़ता है ।

चौथी भूमिका की आत्मा को अर्घ-सूक्ष्म और अर्घ-मानस संस्कार प्राप्त होते है । वह अत्यन्त ललचाने वाले प्रलोभनों के अधीन होती है, क्योंकि वह प्रचण्ड एवम् प्रबल, अच्छी अथवा बुरी, इच्छायें रखती है । अपने अधिकार में प्रचण्ड शक्ति रखने के कारण, वह उसका अच्छा अथवा बुरा प्रयोग करने के लिये प्रेरित होती है । यदि वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग कामवासना की तुष्टि के लिये अथवा नाम और ख्याति की उत्कट अभिलाषा की पूर्ति के लिये अथवा किसी अन्य नीच अद्देश्य के लिये करती है, तो आत्मा की इस चेतना का अकस्मात् पतन हो जाता है, जिसके कारण वह चेतना की पाषाण अवस्था में पुनः पहूँच जाती है ।

the dead and of creating new forms and worlds* breathing with life. On the fourth plane there are no occult powers. They are divine powers.

As shown in the sketch facing page 59, the subtle-conscious human soul on the fourth plane, possessing the key to the store of infinite power, is seen on the threshold of the mental world, confronted by the full blast of intense desires and emotions which are the aspects of Mind of the mental world. At this stage, the soul experiences, as it were, a state of the darkest night. He finds himself caught up between the Devil and the deep. The overpowering incitement by intense desires to wield and use this infinite energy at will proves a treacherous foe at this juncture when the involution of consciousness of this subtle-conscious human soul is unfailingly progressing rapidly towards gaining mastery over all desires.

If these desires at their zenith overpower the soul on the fourth plane, and if the powers are misused, then the experience of liberating this infinite energy invariably proves fatal at this juncture for the soul on the fourth plane. The result is that all of the consciousness gained by the soul is violently disintegrated, and the soul retains only the most finite consciousness and identifies itself once again with the stone-form. This soul then has to pass through the whole process of evolution from the stone-form onward to regain full consciousness.

The soul of the fourth plane has semi-subtle and semi-mental impressions. He is subject to most tantalizing temptations because he has intense and overpowering desires, good or bad. Being in possession of tremendous power, he is impelled to make good or bad use of it. If he misuses his power for the satisfaction of lust or for the sake of craving for name and fame or for some other low purpose, there is a sudden fall of this consciousness of the soul, causing it to revert to the stone stage of consciousness. But if, by overcoming his temptations, he makes good use of his tremendous powers, or does not make any use of his powers, he goes into the fifth plane, where he is safe and has no possibility of

किन्तु यदि, अपने प्रलोभनों पर विजय प्राप्त करके, वह मनुष्य अपनी प्रचण्ड शक्तियों का सदुपयोग करता है, या अपनी शक्तियों का कोई प्रयोग नहीं करता, तो वह पाँचवों भूमिका में चला जाता है, जहाँ वह सुरक्षित रहता है और उसके अधःपतन की कोई सम्भावना नहीं होती । किन्तु, यदि वह शक्तियों का सदुपयोग करता है, तो कभी-कभी वह कुतुब अवस्था की विज्ञान-चेतनामय आत्माओं अथवा सद्गुरुओं द्वारा (किन्तु जीवनमुक्तों अथवा मजज़ूबों द्वारा नहीं) ऊपर छठवीं भूमिका में खींच लिया जाता है ।

अन्न भुवन में शक्ति का सदुपयोग भौतिक तथा आध्यात्मिक उद्देश्यों की ओर संचालित किया जा सकता है । उदाहरण के लिये, दूसरों के भौतिक हित के लिये धन ख़र्च किया जा सकता है, जैसे धर्मार्थ चिकित्सालयों के लिये, भूखों मरते तथा विपदाग्रस्त लोगों की सहायता के लिये, इत्यादि, **अथवा** उनके **आध्यात्मिक** वल्याण के लिये, लैसे उनके लिये आध्यात्मिक शिक्षा तथा आध्यात्मिक सम्भावनायें जुटाना । परन्तु चौती भूमिका में, शक्तियों का सदुपयोग अनिवार्यतः केवल दूसरों के आध्यात्मिक कल्याण के लिये ही उनको लगाने में निहित होता है । इन शक्तियों का उपयोग किसी की भौतिक समृद्धि करने में कभी नहीं किया जा सकता । वह निश्चितरूप से उनका दुरुपयोग होगा । हम चौथी भूमिका की शक्तियों के सदुपयोग का नीचे लिखा उदाहरण ले सकते हैं :— मान लो कि कोई आध्यात्मिक तीर्थयात्री एक रेगिस्तान से होकर जा रहा है और वह तीव्र पिपासा के कारण मरने ही वाला है । ऐसी अवस्था में चौथी भूमिका की आत्मा उसको सामने स्थूल शरीर में प्रकट हो सकती है और उसको एक पात्र भर जल देकर उसकी सहायता कर सकती है और फिर अन्तर्धान हो सकती है । ऐसे उपयोग को सदुपयोग कहा जा सकता है ।

शक्तियों का उपयोग व्यक्तिगत अथवा सामूहिक भलाई के लिये किया जा सकता है । **किन्तु सदुपयोग से भी आत्मा की अगली उन्नति बन्धन में पड़ जाती है और रुक जाती है** । यही कारण है कि चौथी भूमिका को पार करना अत्यन्त कठिन होता है और **वह सबसे बड़े ख़तरों से भरी होती है** । चौथी भूमिका पर स्थित व्याक्त को अपने को प्राप्त प्रचण्ड शक्तियों का उपयोग अपनी प्रबल इच्छाओं की पूर्ति के लिये करने से बचना अत्यन्त कठिन मालूम होता है ।

(५३)

downfall. But also if he makes good use of the powers, he is sometimes pulled up into the sixth plane by the vidnyan-conscious souls of Qutub state or Perfect Masters (but not Jivanmuktas nor Majzoobs).

Good use of power in the gross world may be directed toward s material and spiritual ends. For example, wealth might be spent for the material well-being of others, as for charitable hospitals, relief for the starving and the distressed, etc., or for their spiritual well-being, by providing them with spiritual instruction and spiritual possibilities. But in the fourth plane, good use of powers invariably consists in harnessing them only for the spiritual well-being of others. These powers can never be used to bring about material prosperity for anyone. That definitely is a bad use. We might take the following as an example of good use of the powers of the fourth plane: Suppose a spiritual pilgrim is going through a desert and is on the point of death due to unquenchable thirst. The soul of the fourth plane can appear to him in the gross body and give him relief by giving him a jug of water and then disappear. Such use can be termed good use.

Powers can be used for individual or collective good. **But even good use binds and arrests the further progress of the soul.** That is why the fourth plane is the most difficult to cross and is fraught with greatest dangers. The person who is stationed on the fourth plane finds it most difficult to abstain from wielding the tremendous powers at his command for the fulfillment of his overpowering desires.

चौती भुमिका मन भुवन का द्वार है । इस भूमिका पर, अन्य किसी भी सूक्ष्म भूमिका से अधिक, आध्यात्मिक पथ का यात्री विशेषतया इतना अधिक भावग्राही (*susceptible*) होता है कि उसके एकदम बिल्कुल नीचे गिर जाने की सम्भावना होती है । चौथी भूमिका की आत्मा के सामने उपस्तित संकट गम्भीर तथा जोखिमभरा होता है, क्योंकि चौथी भूमिका पर स्थित व्यक्ति को अपने मन को पूर्णतया वश में करने के पहले प्रचण्ड अलौकिक अथवा गू. ढ शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं । वह अपने मन को पूर्णतया नियन्त्रित नहीं रख सकता क्योंकि, जब तक कि वह ऊँचा उठकर मन भुवन की पाँचवीं भूमिका में नहीं पहूँच जाता, वह अपने मन का सीधा अनुभव अथवा उपयोग नहीं कर सकता । स्थूल-चेतनामय मानवी आत्मा के समान, चौथी भूमिका की प्राण-चेतनामय आत्म्ता भी अपने मन का उपयोग परीक्षरूप से करती हैं । अब इस चौथी भूमिका पर मन पूर्णतया जीवन-सम्पन्न होता है । वह, अपने सब पूर्णतया विकसित विचारों, भावों और इच्छाओं के पहलुओं में कार्य करता है, जो अपनी प्रचण्डता के शिखर पर होते हैं । एक ओर, आत्मा अपने ही विप्लवी मन के ऊपर प्रभुता प्राप्त करने और छुट्टा छूटी हुई इच्छाओं की विध्वंसकारी शक्तियों को अपने अधीन करने का प्रयत्न केरती है । दूसरी ओर, भूमिकाओं की अपार प्राणशक्ति पूर्णतया उसके हाथ में होती है और वह सतत् किसी प्रकार प्रगट अथवा प्रयुक्त होने की चेष्टा करती है ।

यदि आत्मा अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करने के प्रबल प्रलोभनों के सामने झुक जाती है, तो एक अकल्पनीय विस्तार का भीषण आध्यात्मिक विस्फोट होता है । उस विस्फोट से मुक्त हुई विस्फोटक शक्तियाँ चेतना को पूर्णतया छिन्न-भिन्न कर देती हैं, और वे चेतना का **प्रलयंकारी अधःपतन करके उसको चौथी भूमिका की प्राण चेतना के शिखर से गिराकर मौलिक पाषाण चेतना की निम्नतम तहों पर पहूँचा देती हैं** जिनका अनुभव आत्मा ने विकास के बिल्कुल प्रारम्भ में किया था । छिन्न-भिन्नता के इस आध्यात्मिक प्रलय की तुलना विद्युत-धारा की असंशोधनीय रुकावट के कारण बल्ब के गलने से की जा सकती है । अधःपतित आत्मा के सामने अब इसके सिवाय और कोई विकल्प नहीं रहता कि वह विकासमुखी चेतना की लम्बी एवं श्रमपूर्ण चढ़ाई को पुनः असंख्य योनियों में युगों तक आवागमन तथा पूनर्जन्म से गुज़रती हुई,

The fourth plane is the threshold of the mental world. On this plane, more than on any other subtle plane, the spiritual pilgrim is particularly susceptible to having a precipitous fall. The crisis which confronts the soul of the fourth plane is grave and hazardous, because he comes into the possession of stupendous divine powers before having brought his mind into complete subjugation. He cannot control his mind completely because, unless and until he rises onto the fifth plane which is of the mental world, he cannot directly experience or use his mind. Like the gross-conscious human soul, the subtle-conscious soul of the fourth plane also uses his mind indirectly. Now on this fourth plane the mind is fully alive. It is functioning in all its fully developed aspects of thoughts, feelings and desires, which are at the zenith of their overwhelming intensity. On the one hand, the soul is trying to gain mastery over its own insurgent mind and bring into subjugation the subversive forces of desires let loose. On the other hand, the limitless energy of the planes is completely at his disposal and is constantly seeking some expression or use.

If the soul yields to the overpowering temptations to put his powers to wrong use, there is an enormous psychic crash of unimaginable magnitude. The explosive forces thereby released bring about a complete disintegration of consciousness, subjecting it to a **cataclysmic downfall from the heights of the subtle consciousness of the fourth plane to the very lowest depths of rudimentary stone consciousness** which the soul experienced in the very beginnings of evolution. This psychic cataclysm of disintegration is comparable to the fusing of an electric bulb due to an irreparable short-circuit. The fallen soul has now no alternative except that of again going through the long and laborious ascent of evolving consciousness, through ages of evolution and reincarnation through numberless forms, and then again gradually and patiently ascending through the planes.

पार करे और फिर क्रमशः एवम् धैर्यपूर्वक भूमिकाओं से होकर ऊपर चढ़े ।

चेतना की यह छिन्न-भिन्नता केवल चौथी भूमिका की चेतना की स्थिति में होती है और वह भी बिरले ही—केवल उस समय होती है जबकि चौथी भूमिका की शक्तियों का दुरुपयोग किया जाता है । सामान्यतः सच बात यह है कि एक बार चेतना प्राप्त हो जाने पर उसका ह्रास कभी नहीं हो सकता, किन्तु चौथी भूमिका की चेतना की अवस्था इस नियम का एकमात्र अपवाद है ।

यदि आत्मा अपने हाथ में आई शक्तियों का दुरुपयोग महीं करती बल्कि इच्छाओं के वश में हुये बग़ैर उनका सदुपयोग भवाई के लिये करती है, तब चेतना के और अधिक प्रतिवर्धनके साथ प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा की चेतना कभी-कभी मन भुवन की छठवीं भुमिका का अनुभव सीधे-सीध करती है और मन भुवन की पाँचवीं भूमिका के अनुभवों को अछूता छोड़कर लाँघ जाती है । ‡

किन्तु, यदि चेतना की चौथी भूमिका पर स्थित आत्मा की यह चेतना चौथी भूमिका की शक्तियों का न तो प्रयोग करती है और न दुरुपयोग करती है, तब क्रमशः, चेतना के अधिकतर प्रतिवर्धन (*involution* ऊर्ध्वगमन) के साथ, चौथी भूमिका पर स्थित प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्मा चौथी भूमिका की देहली पार करती है और मन भुवन में पाँचवीं भूमिका पर प्रवेश करती है ।

पाँचवीं और छठवीं भुमिकायें

चौथी भूमिका पर स्थित प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्मा की चेतना का और अधिक प्रतिवर्धन होने पर, प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा की चेतना अपनी एकरूपता मन भूमिकाओं के मन से और मन भुवन के अनुभवों से करती है ।

मन भूमिकाओं के इस '**मन**' के दो विभाग होते हैं । पहले विभाग में मन की अवस्था छान-वीन करने वाली अथवा **विमर्शकारी** होती है । इस अवस्था में मन **विचारों** के रूप में कार्य करता है—ऊँचे

‡ पाँचवीं और छठवीं भूमिकाओं को धारण करने वाले मन भुवन में प्रवेश करने की तुलना प्रवेश-द्वार—चौथी भूमिका की चेतना—को पार करने के बाद कमरे में प्रवेश करने से की जा सकती है ।

This disintegration of consciousness occurs only in the case of fourth plane consciousness and that, too, rarely—only when the powers of the fourth plane are misused. It is a fact normally that when consciousness is once gained it can never be lost, but the case of fourth plane consciousness is the one exception.

If the soul does not misuse the powers at his command but uses them for good without being overpowered by desires, then, with further involution of consciousness the consciousness of the subtle-conscious human soul sometimes experiences directly the sixth plane of the mental world and skips over the experiences of the fifth plane of the mental world.*

But if this consciousness of soul on the fourth plane of consciousness neither uses nor misuses the powers of the fourth plane, then gradually, with further involution of consciousness, the subtle-conscious human soul on the fourth plane crosses the threshold of the fourth plane and enters the mental world on the fifth plane.

Fifth and Sixth Planes

With greater involution of consciousness of the subtle-conscious human soul on the fourth plane, the consciousness of the subtle-conscious human soul identifies itself with Mind of the mental planes and experiences the mental world.

This Mind of the mental planes has two sections. In the first section the state of Mind is inquiring or reflecting. In this state Mind functions as

* Entry into the mental world comprising the fifth and sixth planes may be compared to an entry into a room after crossing the threshold—the fourth plane of consciousness.

विचार, नीचे ीविचार; अच्छे विचार, बुरे विचार; भौतिक विचार, आध्यात्मिक विचार, इत्यादि ।

दूसरे विभाग में मन की अवस्था प्रभावात्मक अथवा संवेदनात्मक होती है । इस अवस्था में **मन संचेदनों** (*feelings*) के रूप में कार्य करता है—कष्टों के संवेदन, भावनाओं (*emotions*) के संवेदन; इच्छाओं के संवेदन, उत्कण्ठाओं के संवेदन; पीड़ाओं के संवेदन, वियोग के संवेदन, इत्यादि ।

जब मन भुवन के **मन** के स्पष्ट द्वैत कार्य होते हैं तब यह आवश्यक है कि मन के क्षेत्र में (अर्थात् मन भूवन में) अनुभव भी अनिवार्यतः स्पष्टरूप से दो प्रकार के होने चाहिये ।

इस प्रकार मन भुवन में दो प्रदेश हैं—**विचारों** की चेतना की पाँचवीं भूमिका का प्रदेश तथा संवेदनों की चेतना की छठवीं भूमिका का प्रदेश ।*

इसलिये पाँचवीं भूमिका पर स्थित[७] मन-चेतनामय मानवी आत्मा की चेतना केवल मन के पहले विभाग से अपनी तद्रूपता करती है और उसको मन की उस अवस्था का भान होता है जो छान-बीन करने वाला अथवा प्रतिबिम्बन करने वाला मन है । इस प्रकार पाँचवीं भूमिका की यह मनो-चेतनायुक्त मानवी आत्मा विचारों को पैदा करने वाली तथा उनके ऊपर प्रभुत्व रखने वाली होती है और वह स्थूल-एवं सूक्ष्म प्राण-चेतनायुक्त सब आत्माओं के **केवल विचारों को** नियन्त्रित वरने में समर्थ होती है । इसका बहुधा यह ग़लत अर्थ लगाया जता है कि वह सभी स्थूल-एवं सूक्ष्म प्राण-चेतनायुक्त आत्माओं के **मनों को नियन्त्रित करती है** । (वह समग्र मन को नियन्त्रित नहीं करती वरन् मन की उस अवस्था को नियन्त्रित करती है जो केवल **विचारों** के रूप में कार्य करती है ।)

(५६)

* पाँचवीं और छठवीं भूमिकाओं की प्रतिवर्धित होती हुई चेतना के मध्य के अन्तर की तूलना कमरे—मन भुवन—में पवेश करते हुये मनुष्य के दृष्टिकोण के बीच के अन्तर से की जा सकती है । कमरे में प्रवेश करने पर, यदि वह व्यक्ति अपने ठीक सामने को देखता है तो वह ईश्वर को सहजतया आमने-सामने 'देखता' है, और इस प्रकार सीधे-सीध छठवीं भूमिका की चेतना प्राप्त करता है; किन्तु यदि ऊसकी दृष्टि कमरे के किसी एक कोने में केन्द्रित हो जाती है, तब पहले उसको केवल पाँचवीं भूमिका की चेतना प्राप्त होती है ।

thoughts—high thoughts, low thoughts; good thoughts, bad thoughts; material thoughts, spiritual thoughts; and so forth.

In the second section the state of Mind is impressive or sympathetic. In this state Mind functions as feelings—feelings of sufferings, emotions; feelings of desires, longings; feelings of pangs, separation; and so forth.

When Mind of the mental world has distinct dual functions it is necessary that the experiences in the field of Mind (i.e., the mental world) must be distinctively of two kinds also.

Thus the mental world has two domains—the domain of the fifth plane of consciousness of **Thoughts** and the domain of the sixth plane of consciousness of **Feelings.***

Therefore the consciousness of the mental-conscious human soul on the fifth plane[7] identifies with the first section of Mind only and is conscious of that state of Mind which is inquiring or reflecting Mind. Thus this mental-conscious human soul of the fifth plane is the creator and master of thoughts and is capable of controlling **only the thoughts** of all gross- and subtle-conscious souls. This is often misinterpreted as **controlling the minds** of all gross- and subtle-conscious souls. (He does not control the mind as a whole but controls only that state of Mind which functions as thoughts only.)

* The difference between the involving consciousness of the fifth and sixth planes may be compared to the difference between the angles of vision of a man entering a room—the mental world. On entering the room, if the man looks straight ahead of him he spontaneously sees God face to face, thereby gaining directly consciousness of the sixth plane; but if his vision happens to focus on one of the corners of the room, then he first gains only the consciousness of the fifth plane.

चेतना की पाँचवीं भूमिका पर स्थित मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मा, अनवेषक अथवा प्रतिबिम्बक 'मन' के रूप में अपनी तद्रूपता करने के दौरान में, केवल विचार उत्पन्न करती है, 'मन' की दूसरी अवस्था से अपनी तद्रूपता नहीं करती और इसलिये वह संवेदनों, भावों एवं इच्छाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में असमर्थ होती है ।

तथापि, चेतना के और अधिक प्रतिवर्धन होने के साथ, पाँचवीं भूमिका की मन-चेतनामय मानवी आत्मा छठवीं भूमिका में मन भुवन के मन की दूसरी अवस्था की चेतना प्राप्त करती है और इस प्रकार दूसरी अवस्था में उस मन के रूप में—प्रभावात्मक अथवा संवेदनात्मक **मन** के रूप में—अपनी तद्रूपता करने के लिये प्रवृत्त होती है । इस प्रकार मनो-चैतन्य मानवी आत्मा की चेतना ने मन भुवन की छठवीं भूमिका की चेतना का समावेश कर लिया है ।

छठवीं भूमिका की चेतना की मनो-चैतन्य मानवी आत्मा **संवेदनों** की पूर्ण चेतना के द्वारा मन भुवन का अनुभव करती है और इस प्रकार वह विचारों से निपट शून्य होती है, किन्तु उसको वास्तव में ऐसी अनुभूति होती है कि उसे ईश्वर को आमने-सामने निरन्तर, प्रत्येक वस्तु में एवम् सर्वत्र, देखने की अनुभूति की चेतना प्राप्त है । वह ईश्वर को निरन्तर "देखती"‡ है किन्तु वह खुद को ईश्वर में ईश्वरवत् नहीं देख पाती । इसलिये वह अपनी ईश्वर को दोखने-की-अनुभूति का ताल-मेल ईश्वर से अपनी एकरूपता के साथ नहीं कर पाती; और इस प्रकार वह ईश्वर से मिलने के लिये, जिसे वह आमने-सामने "देखती" है, लालायित होती है, तड़पती है, पीड़ित होती है । 'मन' की दूसरी अवस्था—संवेदन—के साथ यह एकरूपता दैवी प्रेम का प्रबल पहलू है जिससे अन्ततः ईश्वर से मिलन प्राप्त हो जाता है ।

मन भुवन की पाँचवीं भूमिका विचार की पूर्ण चेतना की अवस्था है इसलिये विचारों के नियंत्रण एवम् सृजन के ऊपर केवल प्रभुता स्थापित होती है, जबकि संवेदनाओं अथवा मनोविकारों और इच्छाओं के ऊपर न तो प्रभुत्व और न नियन्त्रण स्तापित होता है ।

(५७)

‡ भ्रमवश इस देखने का अर्थ हमारे साधारण नेत्रों से किसी वस्तु को देखने की हमारी साधारण रीति से न जोड़ना चाहिये । ईश्वर को आमने-सामने "देखने" का अर्थ है ईश्वर को मन भूमिका की एकमेव ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा ग्रहण करना, और यह ज्ञानेन्द्रिय "देखने" की है । यहाँ आध्यात्मिक पथ के यात्री को ईश्वर की नैसर्गिक पहिचान होती है ।

The mental-conscious human soul on the fifth plane of consciousness, while identifying himself as inquiring or reflecting Mind, emanates only thoughts, does not identify himself with the second state of Mind and is therefore incapable of establishing mastery over feelings, emotions and desires.

However, with greater involution of consciousness, the mental-conscious human soul on the fifth plane gains consciousness of the second state of Mind of the mental world in the sixth plane and thus tends to identify himself as that Mind in the second state—the impressive or sympathetic Mind. Thus the consciousness of the mental-conscious human soul has involved sixth plane consciousness of the mental world.

The mental-conscious human soul of sixth plane consciousness experiences the mental world through complete consciousness of feelings and thus has no thoughts at all, but actually feels that he is conscious of the feeling of seeing God face to face continuously in everything and everywhere. He "sees"* God continuously but cannot see himself in God as God. Therefore he cannot reconcile his feeling-of-sight of God with his own identity with God; and thus he longs for, feels for, has pangs for union with God Whom he "sees" face to face. This identification with the second state of Mind—feeling—is the predominant aspect of divine love which ultimately leads to union with God.

The fifth plane of the mental world is the state of full consciousness of thought, hence only mastery over the control and creation of thoughts is established, whereas no mastery nor control over feelings or emotions and desires is established.

* This is not to be confused with our ordinary way of seeing an object with our ordinary eyes. To "see" God face to face is to apprehend God through the one and only sense of the mental plane, and this sense is of "seeing." Here the pilgrim has the intuitive recognition of God.

मन भुवन की छठवीं भूमिका **संवेदन** की पूर्ण चेतना की अवस्था है, और इस प्रकार संवेदनों के नियन्त्रण एवं सृजन के ऊपर प्रभुत्व स्थापित हो जाता है और संवेदनों के प्रदेश में एक भी विचार के प्रवेश करने के लिये कोई गुन्जाइश नहीं रह जाती । छठवीं भूमिका की चेतना विचार-रहित होती है और वह स्थूल-एवम् प्राण-चेतनायुक्त आत्माओं की भावनाओं को नियन्त्रित करती है । इस नियन्त्रण का बहुधा ग़लत अर्थ लगाकर इसे सब स्थूल-एवम् प्राण-चेतनायुक्त आत्माओं के हृदयों के ऊपर प्रभुत्व समझा जाता है । (छठवीं भूमिका की चेतना से सम्पन्न आत्मा तथा-कथित हृदय को नियन्त्रित अथवा नियमित नहीं करती वरन् वह मन भूमिका में **मन की उस अवस्था** को नियन्त्रित एवम् शासित करती है जो मनोविकार एवम् इच्छाओं की भावनायें पैदा करती है ।)

ईश्वर से प्रेम तथा उससे ऐक्य प्राप्त करने की लालसा का यथार्थ एवम् पूर्ण प्रदर्शन छठवीं भूमिका में होता है; जबकि मन भुवन की छठवीं भूमिका भी पार हो जाती है, माया का लोप हो जाता है और ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है ।

मनुष्य योनि में जबकि आत्मा को मनो-चेतना‡ प्राप्त होती है, उसको स्थूल शरीर एवम् सूक्ष्म शरीर का भान नहीं होता; किन्तु वह स्थूल और सूक्ष्म शरीरों के द्वारा निश्चय ही कार्य करती है, सीधे-सीध महीं वरन् मन भूमिका पर । इसलिये यद्यपि मनो-चैतन्य मानवी आत्मा को शरीर और प्राण का भान नहीं होता और इसलिये उसको अन्न भुवन एवम् प्राण भुवन का अनुभव नहीं होता, तथापि वह अचेतनतया स्थूल का उपयोग स्थूल के विविध **पहलुओं** के द्वारा कर सकती है और इस प्रकार वह स्थूल-चेतनायक्त साधारण मानव की भाँति खाती, पीती, देखती, सुनती और महसूस करती दिखाई पड़ती है, यद्यपि उसको "देखने" की अपनी मनो ज्ञानेन्द्रिय से केवल मन भुवन का भान इस पूरी अवधि में रहता है । इसी रीति से, वह अचेतनतया प्राण का उपयोग प्राणशक्ति के विविध स्थूल **पहलुओं** के माध्यम से अणु शक्तियों के रूप में कर सकती है, जबकि उसको हर समय अपनी मनो ज्ञानेन्द्रिय से केवल "देवने" की चेतना रहती है । मन भुवन के अन्तर्गत

(५८)

‡ [यह भी पढ़िये : मेहेरबाबा, "मनो-चेतना", सबकुछ और कुछनहीं (*Beacon Hill, N. S. W.*, आस्ट्रेलिया : मेहेर हाऊस पब्लिकेशन्स, *1963*), पृष्ठ *63–65* । —सम्पादक]

The sixth plane of the mental world is the state of full consciousness of feeling, and thus mastery over the control and creation of feelings is established and no more scope is left for even a single thought to penetrate into the domain of feelings. The sixth plane consciousness is thoughtless and governs the feelings of the g ross- and subtle-conscious souls. This is often misinterpreted as mastery over the hearts of all gross- and subtle-conscious souls. (A soul with sixth plane consciousness does not govern or regulate the so-called heart but controls and governs that state of Mind in the mental plane which emanates feelings of emotion and desires.)

The loving of God and the longing for His union is really and fully demonstrated in the sixth plane; when even the sixth plane of the mental world is transcended, illusion vanishes and God is realized.

In the human form when the soul is mental-conscious† it is unconscious of the gross body and the subtle body; but it does work through the gross and subtle bodies, not directly, but on the mental plane. So even if the mental-conscious human soul is unconscious of the gross body and the subtle body and therefore does not realize the gross and subtle worlds, he can unconsciously utilize the gross through various **aspects** of the gross and is thus seen eating, drinking, sleeping, seeing, hearing and feeling as an ordinary gross-conscious human being, though he is all the while conscious only of the mental world with his mental sense of "seeing." Similarly, he can unconsciously utilize the subtle through various gross **aspects** of energy in the form of nuclear energies, etc., while all the time being only conscious of "seeing" with his mental

† [See also Meher Baba, "Mental Consciousness," *The Everything and the Nothing* (Beacon Hill, N.S.W., Australia: Meher House Publications, 1963), 63–65. Ed.]

† [See also Meher Baba, "Mental Consciousness," *The Everything and the Nothing* (Myrtle Beach, SC: Sheriar Foundation, 1995), 101–104. Ed.]

मनो-चैतन्य मानवी आत्मा को अब केवल एक ज्ञानेन्द्रिय प्राप्त रहती है और वह है "देखने" की ।

इसलिये पाँचवीं भूमिका पर स्थित यह मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मा मन भुवन की पहली अवस्था का अनुभव कारण शरीर अथवा मन के द्वारा करती है और मन की पहली अवस्था की चेतना प्राप्त करती है । यहाँ यह आत्मा मन की पहली अवस्था के ऊपर (अर्थात् स्थूल-चेतनायुक्त एवम् प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्माओं के विचारों के ऊपर) नियन्त्रण रखने में समर्थ होती है, किन्तु अब वह कोई भी चमत्कार करने में निपट असमर्थ रहती है क्योंकि उसको प्राण भुवन की अनन्त प्राणशक्ति की तथा अपनी शक्तियों की बिल्कुल चेतना नहीं होती । फिर भी, चूँकि यह मनो-चेतना मानवी आत्मा प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्माओं के मन की पहली अवस्था के ऊपर नियन्त्रण रखती है, इसलिये प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्मा की चमत्कार करने की ऊत्तेजना उसी अनुसार रुकती, नियन्त्रित होती अथवा बढ़ती है जैसीकि मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मा के मन की इच्छा एवम् अभिलाषा होती है, जो मन-चेतनायुक्त आत्मा दूसरे मनों के विचारों की उत्पत्ति करने तथा उनको नियन्त्रित रखने में समर्थ होती है और वह खुद स्थिर होती है तथा उनकी चेतना में पुनः कभी भी किचित्मात्र अधःपतन नहीं हो सकता ।

क्रमशः, जैसे जैसे मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मा की चेतना का प्रतिवर्धन गहरा और गहरा होता जाता है, वह मन की दुसरी अवस्था (**अर्थात् संवेदन**) के ऊपर अपने प्रभुत्व का अनुभव करती है और अब उसको मन की अथवा कारण शरीर की पूरी चेतना प्राप्त हो जाती है, और वह समग्र कारण शरीर का अनुभव छठवीं बूमिका[८] पर करती है । यह अनुभव ईश्वर को आमने-सामने "देखने" का है—ईश्वर को सर्वत्र और सर्वस्व में देखने का है ।

ठीक पहली भूमिका से लेकर ऊपर छठवीं भूमिका के आद्योपान्त चेतना का ऊर्ध्वगमन वैसे ही वैसे क्रमशः एवम् दृढ़तापूर्वक अग्रसर हुआ जैसे जैसे आत्मा की चेतना को क्षीणतर और क्षीणतर होते हुये बहुमुखी एवम् नानाविध विपरीत संस्कारों के अनुभव कम और कम तीव्र होते गये । इसलिये, जिस समय आत्मा का प्रतिवर्धन अपनी प्रगति में अग्रसर हो रहा था, विविध विपरीत संस्कार क्रमशः न्यूनतर एवम् क्षीनतर होते गये यहाँ तक कि छठवीं भूमिका पर स्थित की प्रतिवर्धित चेतना

sense. The mental-conscious human soul in the mental world has now only one sense and that is of "seeing."

So this mental-conscious human soul on the fifth plane experiences the first state of the mental world with the mental body or the mind and gains consciousness of the first state of Mind. Here this soul is capable of controlling the first state of Mind (i.e., thoughts of the gross-conscious and subtle-conscious human souls) but is now totally incapable of performing any miracles because of his total unconsciousness of the infinite energy of the subtle world and its powers. However, as this mental-conscious human soul controls the first state of Mind of the subtle-conscious human souls, the incitement in the subtle-conscious human soul to perform miracles is checked, controlled or aggravated according to the desire and will of the mind of the mental-conscious human soul, who is capable of creating and controlling thoughts of other minds and is himself stable and can never again slide down to any lower level of consciousness.

Gradually, as the involution of the consciousness of the mental-conscious human soul progresses deeper and deeper, he experiences mastery over the second state of Mind (i.e., feeling) and he now becomes fully conscious of the mind or the mental body, and experiences the whole of the mental body on the sixth plane.[8] This experience is of "seeing" God face to face—seeing God everywhere and in everything.

Right from the first plane up through the sixth plane the involution of consciousness progressed gradually and steadily as the consciousness of the soul had less and less frequent experiences of multifarious and diverse opposite impressions which grew fainter and fainter. Therefore, while the involution of the soul's consciousness was in progress, the diverse opposite impressions became gradually scarcer and fainter until the involved consciousness of the soul on the sixth plane is fully conscious of

को कारण शरीर का पूरा भान हो गया और वह पूर्णतया मन भुवन का अनुभव करती है और उसमें द्वन्द्वों के अवशेष संस्कारों के एक क्षीण अन्तिम चिन्ह के अतिरिक्त व्यावहारिकतया और कोई संस्कार बिल्कुल शेष नहीं रहे । अर्थात्, प्रतिवर्धित चेतना मन के साथ पूर्णतया अपनी तद्रूपता करती है, और आत्मा यह अनुभव करने के लिये प्रवृत्त होती है कि वह **मन** है; और इस आत्मा को, **मन** के रूप में, ऐसा अन्तिम एवम् समूचा (*total*) संस्कार होता है कि वह **ईश्वर** को आमने-सामने हर वस्तु में "देखती हौ" किन्तु वह खुद अपने को ईश्वर में नहीं देख पाती ।

छठवीं भूमिका की यह मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मा, जो प्राय : सभी संस्कारों से शून्य है‡ और जिसे केवल मन की चेतना है, अब ईश्वर को अपने आमने-सामने पाती है और ईश्वर को हर वस्तु में देखती है किन्तु खुद अपने को ईश्वर में नहीं देखती क्योंकि, उसको अब भी मन की चेतना होने के कारण, वह अपने को मन ही मानती है । यह मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मा मन से अपना साहचर्य करती है, और उसको भान होता है कि वह स्वयं मन है, और वह अपनेआप को ऐसा अनुभव करती है कि वह अब भी ईश्वर से भिन्न अन्य कोई चीज़ है । छठवीं भूमिका पर स्थित यह मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मा ईश्वर को यथार्थतः अपने आमने-सामने उससे अधिक स्पष्टतया एवम् प्रगाढ़तया "देखती" है जितना कि स्थूल-अथवा प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्मा अन्न भुवन अथवा प्राण भुवन की वस्तुओं को दोखती है ।

इस स्थिति में आत्मा की चेतना, जिसने विविध, असंख्य एवम् विपरीत संस्कारों का अनुभव किया था, अब द्वन्द्वों के द्वैध संस्कारों के ओन्तम अवशेष का अनुभव करती है । छठवीं बूमिका की इस मन-चेतनायुक्त आत्मा को अब भी दुई की चेतना होती है, जिसमें वह अपनी एकरूपता मन से करती है और अपने को परमात्मा[९] से भिन्न मानवी है ।

(६०)

‡ पीड़ा देते हुये दाँत के समान, जो क्रमशः ढीला होता जाता है किन्तु बहुत समय तक नहीं उखड़ता, मिथ्या अहं प्रथम आध्यात्मिक यात्रा की अन्तिम स्थिति तक बना रहता है, यद्यपि वह उत्तरत्तिर क्षीण होता जाता है जैसे जैसे आत्मा पथ पर अग्रसर होती है, और सातवीं भूमिका के अन्तिम फ़ना में सदैव के लिये उसका लोप हो जाता है और उसका स्थान असीमित यथार्थ अहं ले लेता है ।

the mental body and experiences the mental world in full with practically no impressions at all except a faint last trace of residual impressions of opposites. That is, the involved consciousness fully identifies with Mind, and the soul tends to realize that he is Mind; and this soul, as Mind, has a last and total impression that he "sees" God face to face in everything but he cannot see himself in God.

This mental-conscious human soul of the sixth plane, almost void of all impressions* and only conscious of mind, now is confronted with God face to face and sees God in everything but does not see himself in God because, being still conscious of mind, he takes himself as Mind. This mental-conscious human soul associates himself with mind, and is conscious of himself as Mind, and experiences himself as still something other than God. This mental-conscious human soul on the sixth plane actually "sees" God face to face more vividly and intensively than the gross- or subtle-conscious human soul sees objects of the gross or subtle worlds.

At this stage the consciousness of the soul, which had experienced diverse, innumerable and opposite impressions, now experiences the last trace of dual impressions of the opposites. This mental-conscious human soul on the sixth plane is still conscious of duality, identifying himself as mind and differentiating himself from God.[9]

* Like an aching tooth that gradually works loose but does not fall out for a long time, the false ego remains until the last stage of the first spiritual journey, although it becomes increasingly faint as the soul advances on the Path, only to vanish forever in the final fana of the seventh plane, to be replaced by the unlimited Real Ego.

सातवीं भूमिका

दुई का यह अनुभव आगे और आगे चलता ही जाता है, जब तक कि मनो-चैतन्य मानवी आत्मा की चेतना का अन्तिम प्रतिवर्धन आत्मा को मन से विच्छिन्न होने की स्थिति तक नहीं पहूँचा देता (मन की चेतना ने ईश्वर को प्रत्यक्षरूप में उपस्थित किया था), और आत्मा का साहचर्य खुद उसकी ही **सत्ता**—अर्थात् **आत्मा**—से करा देता है ।

इस प्रकार अब ऐसा कहा जाता है कि आत्मा की चेतना आख़िरकार सातवीं भूमिका की चेतना का अनुभव करती है । यहाँ सातवीं भूमिका पर आत्मज्ञानी मानवी आत्मा को अपने ईश्वर होने की चेतना होती है और वह अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान एवम् अनन्त आनन्द का अनुभव करती है ।

मनो-चैतन्य मानवी आत्मा के लिये, अपने खुद के प्रयत्नों‡ से छठवीं भूमिका को पार करना और सातवीं भूमिका का अनुभव करना बिल्कुल असम्भव है[१०] । इस स्थिति पर सद्गुरु की **कृपा** निपट आवश्यक होती है जो मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मा को मन की चेतना से पृथक् होने में सहायता करे और उसको अनन्त अवस्था से उसके ऐक्य का साक्षात्कार करावे, जिससे वह चेतनतया अनन्त आनन्द का अनुभव कर सके और यह अनुभव कर सके कि वह (आत्मा) **शाश्वतः आनन्द** में थी ।

इस प्रकार से ही सातवीं भूमिका की आत्मज्ञानी मानवी आत्मा को अब आत्मा के अनन्त एवं शाश्वत स्वरूप की पूर्ण चेतना है और अब उसको प्राणशक्ति एवम् मन के मूल की चेतना भी है, जो उसकी ही अनन्त शक्ति एवं अनन्त ज्ञान के पहलुओं की क्षयामात्र थी ।

यह आत्म-चेतनायुक्त मानवी आत्मा, जो अब आत्मसाक्षात्कार-प्राप्त अथवा ईश्वर साक्षात्कार-प्राप्त है, अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान एवम् अनन्त आनन्द का अनुभव करने के सात-साथ उनको प्रसारित भी करती है । कभी-कभी, किन्हीं स्थितियों में, ऐसी आत्मज्ञानी मानवी आत्मायें इस अनन्त शक्ति, ज्ञान एवं आनन्द का उपयोग सीधे-सीध एवम् चेतनतया दूसरी आत्माओं को उनके संस्कारों से तथा शरीर, प्राण और

‡ तथापि, चेतना की छठवीं भूमिका में स्थित आत्मायें अपने शरीरों को त्यागते समय परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त कर लेती हैं ।

Seventh Plane

This experience of duality lingers on and on until the final involution of consciousness of the mental-conscious human soul leads the soul to dissociate itself from the mind (the consciousness of the mind had objectified God), and makes the soul associate itself with its own Self—the Soul or Atma.

Thus the consciousness of the soul is now said to experience at last the consciousness of the seventh plane. Here on the seventh plane the Self-conscious human soul is conscious of himself as God and experiences infinite power, infinite knowledge and infinite bliss.

For the mental-conscious human soul to cross the sixth plane and experience the seventh plane by his own efforts* is quite impossible.[10] At this stage the **grace** of a Perfect Master is absolutely essential to help the mental-conscious human soul to dissociate himself from the consciousness of mind and to make him realize his unity with the infinite state, to experience infinite bliss consciously and to realize that he (*atma*) was **eternally in bliss.**

So it is that the Self-conscious human soul of the seventh plane is now fully conscious of the Self as infinite and eternal and is now also **conscious of the Source** of energy and mind, which were nothing but the shadowy aspects of his own infinite power and infinite knowledge.

This Self-conscious human soul which is now Self-realized or God-realized, not only experiences infinite power, knowledge and bliss, but simultaneously radiates them. Sometimes, in certain cases, such Self-conscious human souls also make use of this infinite power, knowledge and bliss directly and consciously for the emancipation of other souls from

* However, those in the sixth plane of consciousness realize God at the time of dropping their bodies.

मन, एवम् अन्न भुवन, प्राण भुवन और मन भुवन के साथ उनके साहचर्यों से मुक्त करने के लिये भी करती हैं ।

आत्म-चेतना प्राप्त करने के अपने घोर प्रयास में व्यक्तिगत सनातन आत्मा ने, जिसे परमात्मा के अन्तर्गत अपनी अनन्त अवस्था की चेतना न थी, असंख्य विविध संस्कारों का सञ्चय एवम् अनुभव किया, और वह पूरे दौरान में परिमित एवम् नश्वर अस्तित्वों के साथ साहचर्य करती हुई अन्न, प्राण एवम् मन भुवनों के विस्तारों को **खोलती गई और उसके साथ-साथ वह अन्न भुवन की स्थूल चेतना का विकास** करती गई तथा प्राण एवम् मन भुवनों की प्राण एवम् मन भूमिकाओं की चेतना का **प्रतिवर्धन** करती गई ।

आत्मा की चेतना का प्रतिवर्धन सद्गुरु की कृपा से अपनी पराकाष्ठा पर पहूँचा, जिससे आत्मा को परमात्मा में अपनी अनन्त अवस्था का आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हो गया ।‡

इस प्रकार से ही जब आत्मा की चेतना को आत्म-चेतना प्राप्त हो गई और उसने अनन्त शक्ति, ज्ञान एवम् आनन्द का अनुभव किया, तब आत्मा को इस सत्यता का ज्ञान हुआ कि वह शाश्वतः अस्तित्व में है; और आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये किये गये घोर प्रयास के पूरे दौरान में, शरीर, प्राण एवम् मन तथा अन्न भुवन, प्राण भुवन और मन भुवन के संस्कार, अनुभव एवम् साहचर्य केवल खोखले स्वप्न थे; तथा शरीरों, जीवों एवम् मानव प्राणियों से तादात्म्य और तीनों भुवनों एवम् छः भूमिकाओं के, तथा उनके सभी साजो-सामान के, सभी अनुभव सापेक्ष अस्तित्व रखनेवाले थे जो तभी तक पोषित एवम् स्थित रहे जब तक कि आत्मा की चेतना अपरिपक्व थी । परिपक्वता केवल सातवीं भूमिका में चेतना के पूर्णतया प्रतिवर्धित हो जाने पर प्राप्त हुई । इससे आत्मा को आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हुआ, अथवा आत्मा को ईश्वर-साक्षात्कार की पूर्ण चेतना प्राप्त हो गई । दूसरे शब्दों में, आत्मा

‡ सौ बार तेरा दामन हाथों मेरे आया
जब आँख खुली देखा अपना ही गरीबाँ है ।

—असग़र

"मुझे सैकड़ों बार महसूस हुआ कि मैं तेरा दामन दृढ़तापूर्वक अपने हाथों से पकड़े था; परन्तु जब मेरी आँखें खुलों तो मुझे अचरज मालूम हुआ कि मैं अपना ही दामन पकड़े था ।"

their impressions and their respective associations with the gross, subtle and mental forms and worlds.

In its travail to gain Self-consciousness the individual eternal *atma* (soul), unconscious of its infinite state in *Paramatma,* gathered and experienced innumerable diverse impressions, and all the while associated itself with finite and ephemeral existences, unfurling the gross, subtle and mental worlds while **evolving** gross consciousness of the gross world and while **involving** consciousness of the subtle and mental planes of the subtle and mental worlds.

Involution of consciousness of the *atma* (soul), culminated by the grace of a Perfect Master, led the *atma* to Self-realization of its infinite state in *Paramatma*.*

Thus it is that when the consciousness of the atma gained Self-consciousness and experienced infinite power, knowledge and bliss, the atma realized that it exists—eternally; that all through the travail to gain Self-consciousness, the impressions, experiences and associations of the gross, subtle and mental bodies and worlds were nothing but a vacant dream; and that the identification with gross bodies, creatures and human beings and all the experiences of the three worlds and the six planes, with all of their paraphernalia, had their relative existences sustained and maintained as long as the consciousness of the atma was immature. Maturity was only gained in the seventh plane with consciousness fully involved. This led the atma to realize the Self, or made the *atma* fully

Sau bār terā dāman hāthoñ mere āyā
Jab ānkh khulī dekhā apnā hī garībāñ hai.

* *Sav bār tahīrā dāman hā thoñ mīre āyā*
Jab ānkh khulī dīkhā apnā hī garībāñ hai.

—Asghar

"A hundred times I felt that I held your garment firmly in my hands; When I opened my eyes I was amazed to discover it was my own garment that I was holding."

को परमात्मा में अपनी अनन्त अवस्था का चैतन्य साक्षात्कार हो गया ।†

मन के अन्तिमरूप से नाश हो जाने एवम् मनो संस्कारों के मोटे पर्दा के जर्जर हो जाने पर ही चेतना सभी संस्कारी बन्धनों से पूर्णतया स्वतन्त्र रहकर कार्य कर सकती है । इसका अर्थ है अथाह गहराई को पार करना जो छठवीं भूमिका को सातवीं से अलग करती है । सातवीं बूमिका ऊँचे से ऊँचे परमात्मा का **निराकार निवासस्थान** है ।* सबसे ऊँचे अथवा अनन्त ईश्वर के सत्य स्वरूप का साक्षात्कार कल्पना के पूरे प्रदेश को लाँघकर उस पार जाने से ही हो सकता है । केवल इस सातवीं भूमिका पर ही आत्मा की आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के हेतु उठी मूल लहर की सिद्धि प्राप्त होती है जिसमें वह अपनी **सत्ता** को निर्विकार, सनातन, अखण्ड्य एवम् निराकार परमात्मा से अभिन्न, और साथ ही अनन्त ज्ञान, अनन्त यथार्थता (सत्य), अनन्त शक्ति एवम् अनन्त आनन्द से सम्पन्न अनुभव करती है ।

(६३)

† ईश्वरसाक्षात्कार-प्राप्त मनुष्य सर्वशक्तिमान, धन (+) ज्ञान एवम् चेतना है । वह पूर्ण जागृत अवस्था में होता है । वह ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय होता है । वह प्रेम, प्रेमी और प्रियतम होता है । वह जानता है कि वह प्रत्येक इन्सान अथवा जीवात्मा में है, और प्रत्येक जीवात्मा उसमें है । ईश्वरसाक्षात्कार-प्राप्त मनुष्य जानता है कि वह अस्तित्व का सर्वस्व है, और वह सदैव सत्य का अनन्त महासागर था और वही बना रहेगा । किन्तु साधारण मनुष्य को यह "ज्ञान" नहीं होता कि वह कहाँ से आया है और कहाँ जायगा ।

* (पाठक के लिये फ़रीदउद्दीन अत्तार कृत मन्तिक-उल-तायर का उल्लेख किया जाता है, जो एक सूफ़ी वर्णन है और आमतौर पर "पक्षियों का सम्मेलन" कहलाता है, जिससे भूमिकाओं से होकर यात्रा करने का आनन्ददायी वर्णन प्राप्त होता है । —सम्पादक)

conscious of God-realization. In other words, the *atma's* own infinite state in *Paramatma* was consciously realized.†

It is only after the final annihilation of the mind and the wearing out of the curtain of mental impressions that consciousness can function in full freedom from all impressional bindings. This means crossing the deep abyss which separates the sixth plane from the seventh plane. The seventh plane is the formless abode of the Highest of the High.‡ The Most High or the infinite God as Truth can be realized only by transcending the entire realm of imagination. Only on this seventh plane does the soul fulfill the initial urge for self-knowledge by experiencing its own Self as identical with the unchanging, eternal, indivisible and formless Over-Soul, with infinite knowledge, infinite reality (Truth), infinite power and infinite bliss.

† The God-realized man is the Almighty, plus knowledge and consciousness. He is in the perfect wakeful state. He is knowledge, knower and the known. He is love, lover and the beloved. He knows that he is in every *jiv-atma* and that everyone is in him. The God-realized man knows that he is the be-all and the end-all of existence, and that he always was and will remain the same one, infinite Ocean of Truth. But the ordinary man does not **know** whence he came and whither he will go.

‡ [The reader is referred to Fariduddin Attar's *Mantiq-ut-Tayr,* a Sufi allegory generally known as The Conference of the Birds, for a delightful description of the journey through the planes. Ed.]

भाग ६

दैवी चेतना की अवस्थाओं का सारांश

मनुष्य-योनि धारण करने और पूर्ण चेतना प्राप्त कर लेने के बाद—वह पूर्ण चेतना प्राप्त कर लेने के बाद जिसकी लालसा आत्मा **परमात्मा** का अनुभव करने के लिये करती थी—आत्मा को अब भी परमात्मा का अनुभव नहीं होता; क्योंकि पूर्ण चेतना प्राप्त कर लेने के बाद भी, जब तक यह चेतना स्थूल संस्कारों में केन्द्रित बनी रहती है, आत्मा को बलात् स्थूल शरीर का भान होता है और इसलिये उसको अनिवार्यतः अन्न भुवन का अनुभव होता है ।

मनुष्य-योनि प्राप्त हुये बग़ैर, आत्मा का प्राण एवं मन की तथा अपनी **सत्ता** की चेतना प्राप्त करना असम्भव है । इसी प्रकार, प्राण भुवन, मन भुवन एवं **परमात्मा का** अनुभव करना असम्भव है । चेतना के विकास के लिये और शरीर के विकास के लिये तथा अन्न भुवन के अनुभव के लिये, स्थूल संस्कार रखना निपट आवश्यक होता है, और जब तक स्थूल संस्कार रहते हैं, तब तक आत्मा को सूक्ष्म एवम् कारण शरीरों की चेतना नहीं होती ।

मनुष्य-योनि में, पूर्ण चेतना के विकास के कारण तथा मानव प्राणी के रूप में एक पूर्ण शरीर के विकास के कारण और अन्न भुवन का पूरा अनुभवा हो चुकने के कारण, अब स्थूल संस्कारों की और अधिक अवश्यकता नहीं रहती । स्थूल संस्कार सूक्ष्म संस्कार बन जाने हैं, सूक्ष्म संस्कार मनो संस्कार बन सकते हैं, और मनो-संस्कार का लोप हो सकता है । इसलिये मानव देह में आत्मा को सूक्ष्म एवम् कारण शरीरों की तथा स्वयं आत्मा की चेतना प्राप्त हो सकती है, और प्राण भुवन एवम् मन भुवन का तथा **परमात्मा** का अनुभव हो सकता है । किन्तु दुखद बात यह है कि मनुष्य-योनि में पूर्ण चेतना प्राप्त करने के बाद तत्क्षण, आत्मा को प्राण एवम् मन की तथा स्वयं आत्मा की चेतना प्राप्त नहीं

PART 6

Summary of States of Divine Consciousness

AFTER taking human-form and gaining full consciousness, that full consciousness which the atma (soul) craved in order to experience Paramatma, the atma still does not experience Paramatma; because even after attaining full consciousness, as long as this consciousness remains centred in gross impressions, the atma perforce is made conscious of the gross body and must therefore experience the gross world.

Without having human-form, it is impossible for the atma to gain consciousness of subtle and mental bodies and of Self. Similarly, it is impossible to gather experience of the subtle world, the mental world and of Paramatma. For the evolution of consciousness and for the evolution of form and for the experience of the gross world, it is absolutely necessary to have gross sanskaras (impressions), and as long as there are gross impressions, the atma has no consciousness of the subtle and mental bodies.

In human-form, because of the evolution of full consciousness and because of the evolution of perfect form in the shape of a human being, and because of having taken full experience of the gross world, there is now no more need of gross impressions. Gross impressions can become subtle impressions, subtle impressions can become mental impressions, and mental impressions can disappear. So in human-form the *atma* can have consciousness of the subtle and mental bodies and of *atma* itself, and experience of the subtle world, mental world and of *Paramatma*. But the tragedy is that immediately after gaining full consciousness in human form, the *atma* does not gain consciousness of subtle (*pran*) and mental

भूमिकायें और जगत

चार्ट १

परमात्मा (अनन्त शक्ति, ज्ञान, आनन्द)

आत्म की चेतना

सातवीं भूमिका | (अनन्त शक्ति, ज्ञान, आनन्द) का अनुभव चैतन्य रूप से करता है

शक्ति का अभाव

मन की दूसरी अवस्था की पूर्णतः चेतना युक्त और सबके मनों का स्वामी । संवेदनों (इच्छाओं और भावनाओं) का कर्त्ता और नियन्ता

छठवीं भूमिवा

कारण जगत

(मन का प्रदेश)

मन

मन अर्थात् विचारों की प्रथम अवस्था की चेतना-युक्त और केवल विचारों प्र नियन्त्रण करता है

पाँचवीं भुमिका

चौथी भूमिका | (देहली)

जीवन शक्ति (पूर्ण शक्ति) की पूर्णतया चेतनायुक्त और मन के पराभूतकारी पहलुओं के ख़तरों का सामना करता हुआ

सूक्ष्म जगत

(जीवन शक्ति का प्रदेश)

सूक्ष्म शक्ति

शक्ति

जीवन शक्ति की अधिकतर चेतना प्राप्त करता है

तीसरी भूमिका

जीवन शक्ति की चेतना प्राप्त करता है

दूसरी भूमिका

स्थूल नाक, नेत्रों, कानों के द्वारा सूक्ष्म गंध, दृश्यों, संगीत का अनुभव करता है ।

पहली भुमिका

स्थूल जगत

(दृश्य और अदृश्य जगतों समेत)

(अ) जीवन शक्ति के स्तूल पहलुओं के द्वारा, जैसे अणु शक्ति, सौर शक्ति इत्यादि, सूक्ष्म जगत से जविन शक्ति ग्रहण करता है ।

(ब) कारण गगत के मन के पहलुओं, जैसे इच्छाओं, विचारों, भावनाओं को ग्रहण करता है ।

PLANES AND WORLDS

CHART 1

GOD (Infinite Power, Knowledge, Bliss)

Conscious of Self

7th Plane | Experiences Consciously (Infinite Power, Knowledge, Bliss)

NO POWER

Fully conscious of second state of MIND and Master of minds of all. The Creator and Controller of FEELINGS (desires and emotions)

6th Plane

MENTAL WORLD

(DOMAIN OF MIND)

MIND

Conscious of the first state of MIND i.e. THOUGHTS and controls only thoughts

5th Plane

4th Plane | (Threshold)

Fully conscious of ENERGY (Full Power) and threatened by overpowering aspects of MIND

SUBTLE WORLD

(DOMAIN OF ENERGY)

POWER

Gains greater consciousness of ENERGY

3rd Plane

ENERGY

Gains consciousness of ENERGY

2nd Plane

With gross nose, eyes, ears, experiences SUBTLE smell, sights, music.

1st Plane

GROSS WORLD

(INCLUDES UNIVERSES VISIBLE AND INVISIBLE)

(a) Imbibing Energy from Subtle world through gross aspects of Energy such as nuclear, solar, etc.

(b) Imbibing the aspects of Mind of the Mental world such as desires, thoughts, emotions.

होती, और प्रकार उसे प्राण भुवन एवम् मन भुवन का तथा **परमात्मा** का अनुभव प्राप्त नहीं होता । इसका कारण यह है कि स्तूल संस्कार न तो सूक्ष्म संस्कार अथवा मनो संस्कार बनते हैं और न वे मनुष्य-योनि में आत्मा के पूर्ण चेतना प्राप्त कर लेने के बाद तत्काल लुप्त होते हैं । इसका कारण यह है कि अन्तिम पशु-योनि से निर्मित प्रथम मानव-शरीर, जब छूटता है, अपने पीछे प्रथम मानव-शरीर के संस्कारों की बपौती छोड़ जाता है, और फिर बाद में जन्म लेने वाला प्रत्येक मनुष्य-शरीर अन्तिम मनुष्य-शरीर के संस्कारों से निर्मित होता है । इसलिये आत्मा, पूर्ण चेतना रखती हुई भी, असंख्य मनुष्य-शरीर धारण करती है जब तक कि स्थूल संस्कार विद्यमान रहते हैं ।

अन्ततः, दो बातें में से एक घटित होती है :— आत्मा के स्थूल संस्कार एकाएक पूर्णतया लुप्त हो सकते हैं, और आत्मा शरीर की चेतना खो सकती है एवम् आत्म-चेतना प्राप्त कर सकती है और इस प्रकार वह अन्न भुवन का अनुभव खोकर परमात्मा का अनुभव प्राप्त कर सकती है । अथवा, दूसरी अधिकतर सम्भव सम्भावना यह है कि अन्ततः स्थूल संस्कार क्षीन होंगे और सूक्ष्म संस्कर बन जायेंगे, सूक्ष्म संस्कार और अधिक क्षीन होंगे और मनो संस्कार बन जायेंगे, और आख़िरकार मनो संस्कार इस सीमा तक क्षीन होंगे कि वे नष्ट हो जायेंगे । इस दशा में आत्मा पहले शरीर की चेतना एवम् अन्न भुवन के अनुभव खोती है, और प्राण की चेतना तथा प्राण भुवन का अनुभव प्राप्त करती है । फिर आत्मा प्राण की चेतना खोती तथा मन की चेतना प्राप्त करती है और प्राण भुवन का अनुभव खोती तथा मन भुवन का अनुभव प्राप्त करती है । अन्ततः, आत्मा मन की चेतना खोती है, और उसके द्वारा स्वयं आत्मा की चेतना प्राप्त करके मन भुवन का अनुभव खोती है और परमात्मा का अनुभव प्राप्त करती है ।

जब आत्मा आत्म-चेतना प्राप्त कर चुकती है और परमात्मा का अनुभव करती है, तब आत्मा **तीन अवस्थाओं** में से एक का उत्तराधिकतर पाती है (दो या चार अवस्थायें नहीं वरन् निश्चितरूप से तीन अवस्थायें) :

प्रथम अवस्था अ : ऊँचे से ऊँचे के इस अनुभव के पश्चात् शीघ्र ही, आत्मा सामान्यतः अपने सब छाया शरीर (स्थूल, सूक्ष्म, कारण) त्याग

(*mana*) bodies and Self, and likewise does not experience the subtle and mental worlds and does not have experience of *Paramatma*. This is because gross *sanskaras* do not become subtle *sanskaras* or mental *sanskaras* nor disappear immediately after the *atma* has gained full consciousness in human-form. The reason for this is that the first human-form made out of the last animal-form, when dropped, leaves behind a legacy of impressions of the first human-form, and then each following incarnated human-form is made up of the last human-form *sanskaras*. So the *atma*, in spite of having full consciousness, takes a number of human-forms as long as gross *sanskaras* exist.

Eventually, one of two things happens: the atma's gross sanskaras may entirely disappear all of a sudden, and the atma lose consciousness of the gross body and gain consciousness of the Self, thus losing the experience of the gross world and gaining experience of Paramatma. Or, the second more likely possibility is that eventually the gross sanskaras will fade and become subtle sanskaras, subtle sanskaras fade more and become mental sanskaras, and finally mental sanskaras fade to such an extent that they disappear. In this case the atma first loses consciousness of the gross body and the experiences of the gross world, and gains consciousness of the subtle body and experience of the subtle world. Then the atma loses consciousness of the subtle body and gains consciousness of the mental body and loses experience of the subtle world and gains experience of the mental world. Finally, the atma loses consciousness of the mental body, thereby gaining consciousness of the atma itself and loses the experience of the mental world and gains experience of Paramatma.

After the atma has gained Self-consciousness and experiences the Paramatma the atma inherits one of the THREE STATES (not two or four states but three states definitely):

First State A: Soon after this experience of the Highest of the High, the atma generally drops all of its shadowy bodies (gross, subtle and

देती है और शाश्वतः समग्र रूपेण वैयक्तीकृत (*individualized*) अनुभव का उपभोग करती है—ईश्वर की अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान एवम् अनन्त आनन्द का अनुभव—**उसके गुणों का उपयोग किये बगैर करती है** ।

प्रथम अवस्था ब : आत्मा के ये तीनों शरीर कुछ समय बाद तक बने रह सकते हैं, यद्यपि असको इन शरीरों की बिल्कुल चेतना नहीं रहती । इन शरीरों को बनाये रखने के अलावा, आत्मा की अवस्था यथार्थ में वैसी ही होती है जैसी कि "अ" ।

दूसरी अवस्था : आत्मा तीनों शरीर बनाये रखती है और, आत्म-चेतना के साथ-साथ, उसको अपनी तीनों छायाओं (शरीर, प्राण एवम् मन) की चेतना भी रहती है और साथ-साथ वह ईश्वर की अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान एवम् अनन्त आनन्द का अनुभव करती है । वह अन्न भुवन, प्राण भुवन एवम् मन भुवन का अनुभव भी ईश्वर की छायाओं के रूप मे करती है, परन्तु वह ईश्वर की अनन्त शक्ति, ज्ञान एवम् आनन्द का उपयोग दूसरी आत्माओं के लिये नहीं करती जो मन-चेतनामय, प्राण-चेतनामय तथा स्थूल-चेतनामय होती हैं और इसलिये **वह स्वाधीन होती है** ।

तीसरी अवस्था : यह बिलकुल दूसरी अवस्था के समान होती है सिवाय इसके कि आत्मा अपनी अनन्त शक्ति, ज्ञान एवम् आनन्द का **उपयोग** स्थूल-चेतनायुक्त आत्माओं को प्राण-चेतनायुक्त बनाने में करती है; और प्राण-चेतनामय आत्माओं को मन-चेतनामय बनाने में करती है; और मन-चेतनायुक्त आत्माओं को आत्म-चेतनामय बनाने में करती है; और वह **एक प्रयास में ही** स्थूल-चेतनायुक्त आत्माओं को आत्म-चेतनामय बना देती है ।

मनुष्य योनि में प्राण और मन का पूर्ण विकास तथा चेतना का प्रतिवर्धन

केवल मनुष्य-योनि में ही प्राण और मन का पूर्ण विकास होता है । इसलिये, उस समय भी जबकि आत्मा को स्थूल चेतना प्राप्त होती है और प्राण एवं मन की चेतना नहीं होती, वह प्राण एवं मन के द्वारा कार्य करती है, सीधे-सीध नहीं वरन् अन्न भूमिका पर । इसलिये यद्यपि स्थूल-चेतनामय मानवी आत्मा को प्राण और मन की चेतना नहीं होती

mental) and eternally enjoys individualized experience as a whole—the infinite power, knowledge and bliss of God—**without using the attributes thereof.**

First State B: The atma may not drop these three bodies until some time afterwards, although it is absolutely unconscious of these bodies. Except that it retains the bodies, its state is actually the same as "A."

Second State: The atma retains the three bodies and, simultaneously with Self-consciousness, is also conscious of its three shadows (gross, subtle and mental bodies) and at the same time experiences the infinite power, knowledge and bliss of God. It also experiences the gross world, subtle world and mental world as God's shadows, but it does not use the power, knowledge and bliss of God for the other atmas who are mental-conscious, subtle-conscious and gross-conscious and so **it is independent.**

Third State: This is exactly like the second state except that the *atma* **uses** its infinite power, knowledge and bliss in making gross-conscious atmas subtle-conscious; and subtle-conscious atmas mental-conscious; and mental-conscious *atmas* Self-conscious; **even at one stroke** making gross-conscious *atmas* Self-conscious.

Full Development of Subtle and Mental Bodies in Human Form, and Involution of Consciousness

Only in the human-form are subtle (*pran*) and mental (*mana*) bodies fully developed. Therefore, even when the atma has gross consciousness and is unconscious of *pran* and *mana,* it does work through *pran* and *mana,* not directly, but on the gross plane. So even if the gross-conscious

और इसलिये उसको प्राणशक्ति एवम् मन का **प्रत्यक्ष अनुभव** महीं होता, तथापि वह प्राणशक्ति का प्रयोग प्राणशक्ति के विविध पहलुओं (अर्थात् अणुशक्ति) के द्वारा कर सकती है और मन का उपयोग मन के विविध पहलुओं के द्वारा कर सकती है—जैसे विचार, इच्छायें और भवनायें ।

मनुष्य-योनि में जब आत्मा को प्राण चेतना प्राप्त रहती है, उसको शरीर और मन का भान नहीं होता, फिर भी वह **शरीर और मन** के द्वारा कार्य करती है, सीधे-सीध नहीं वरन् प्राण भूमिका पर । इसलिये यद्यपि प्राण-चेतनामय मानवी **आत्मा** को **शरीर एवं मन** का भान महीं होता और इसलिये उसको अन्न भुवन तथा मन भुवन का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता, तथापि वह शरीर का उपयोग शरीर के विविध अङ्गों के द्वारा कर सकती है, जैसे खाना, पीना, सोना, देखना, संवेदन प्राप्त करना, सुनना, इत्यादि, और वह मन का उपयोग मन के विविध अङ्गों के द्वारा कर सकती है, जैसे विचार, इच्छायें और भावनायें ।

मनुष्य-योनि में जबकि आथ्मा मनो-चेतनामय होती है, उसको **शरीर** एवम् **प्राण** की चेतना नहीं होती किन्तु फिर भी वह शरीर और प्राण के द्वारा कार्य करती है, सीधे-सीध नहीं वरन् मन भूमिका पर । इसलिये यद्यपि मन-चेतनामय मानवी **आत्मा** को **शरीर** एवम् **प्राण** का भान नहीं होता और इसलिये उसको अन्न भुवन तथा प्राण भुवन का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता, तथापि वह शरीर का उपयोग शरीर के विविध पहलुओं के द्वारा कर सकती है—जैसे खाना, सोना, देखना, सवेदन प्राप्त करना, सुनना, इत्यादि, और वह प्राणशक्ति का उपयोग प्राणशक्ति के विविध पहलुओं के द्वारा कर सकती है, जैसे अणुशक्ति, इत्यादि ।

इसकी अपना देने के लिये, हम उदाहरण स्वरूप एक स्थूल-चेतनामय मानवी आत्मा को पृथ्वी पर (जिसे हम अन्न भूमिका के लिये एक स्तर मानते हैं) स्थित एक आत्मावत् मान लें जो सूर्य से अत्यन्त दूर है, जिस सूर्य को हम उदाहरण स्वरूप, केवल अपनी उपमा के अभिप्राय के लिये ही, प्राण भुवन की प्राणशक्ति का मूल एवम् मन भुवन के मन का मूल मानते हैं । (इस उपमा के सूर्य को और पृथ्वी को भ्रान्तिपूर्वक सूर्यमण्डल के सूर्य एवम् पृथ्वी न मानना चाहिये) ।

यह सूर्य, जिसे हमने अब अपना तुलना का स्तर मान लिया है, प्राणशक्ति एवम् मन की अपनी किरणें निरन्तर और साथ-साथ पृथ्वी

human atma is unconscious of pran and mana and therefore does not realize Energy and Mind, it can use Energy through various aspects of energy (e.g., nuclear) and it can use Mind through various aspects of mind—such as thoughts, desires and emotions.

In the human-form when the *atma* has subtle consciousness it is unconscious of the gross (*sharir*) and mental (*mana*) bodies, yet it does work through *sharir* and *mana,* not directly, but on the subtle plane. So even if the subtle-conscious human atma is unconscious of *sharir* and *mana* and therefore does not **realize** the gross and mental worlds, it can use the gross, through various aspects of the gross, as eating, drinking, sleeping, seeing, feeling, hearing, etc., and it can use Mind through various aspects of the mind, as thoughts, desires and emotions.

In the human-form when the *atma* has mental consciousness it is unconscious of the gross (*sharir*) and subtle (*pran*) bodies, but it does work through *sharir* and *pran,* not directly, but on the mental plane. So even if the mental-conscious human *atma* is unconscious of *sharir* and *pran* and therefore does not realize the gross and subtle worlds, it can use the gross through various aspects of the gross—such as eating, sleeping, seeing, feeling, hearing, etc., and it can use Energy through various aspects of energy such as nuclear, etc.

To give a simile, let us consider, for instance, a gross-conscious human *atma* as a soul on earth (which we take as a standard for the gross plane) far flung from the sun, which, for instance, for the purpose of our simile only, we take as the source of Energy of the subtle and the source of Mind of the mental. (The simile of sun and earth must never be misconstrued as the sun and earth of the solar system.)

This sun, which we have now adopted as our standard, sheds its rays of Energy and Mind continuously and simultaneously on the earth (which

पर फेंकता है (जिसे हमने अन्न भूमिका का स्तर मान लिया है); और पृथ्वी पर स्थित स्थूल-चेतनामय मानवी आत्मा—जिसे केवल स्थूल भूमिका का भान है—सूर्य की किरणों से प्राण भुवन की प्राणशक्ति की किरणें अचेतनतया अपने में ग्रहण करती है और इस प्रकार इस प्राणशक्ति के पहलुओं का भरपूर प्रयोग अन्न भुवन में अणुशक्ति के रूप में करती है । पृथ्वी पर स्थित यह स्थूल-चेतनामय मानवी आत्मा अन्न भुवन में अचेतनतया मन के पहलुओं का अपयोग भी करती है, जैसे विचार, इच्छायें एवम् भाव, और जिन्हें वह इस सूर्य की किरणों से भी ग्रहण करती है ।

अपनी उपमा को जारी रखने के अभिप्राय से, अब हम प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा को वायु में स्थित, और इसलिये पृथवी पर स्थित स्थूल-चेतनामय मानवी आत्मा की अपेक्षा सूर्य से निकटतर, आत्मावत् मानेंगे । वायु में स्थित इस प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्मा को केवल प्राण भुवन का भान होता है—वह इस सूर्य से, जो प्राणशक्ति का मूल है, चेतनतया परिपूर्ण प्रानशक्ति ग्रहण करती है और इस पचण्ड प्राणशक्ति का उपयोग चेतनतया उसके उदीयमान (*nascent*) रूप में करती है । इस प्रकार यह प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा प्रचण्ड शक्ति सँभालने में समर्थ होती है और वह मुर्दों को ज़िन्दा करने में अथवा अन्धों को आँखें देने में अथवा अङ्गहीनों को अङ्ग देने में पूर्णतया समर्थ होती है । यह प्रथम तीन भूमिकाओं का प्रदेश है, और प्राणशक्ति को किसी भी मात्रा में मुक्त करने की इस आत्मा की क्षमता प्राण-चेतना की उस मात्रा के अनुसार प्राप्त होती है जो आत्मा को दुसरी और तीसरी भूमिकाओं में प्राप्त हुई थी ।

जबकि यह प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा, प्राणशक्ति के अपने प्रदेश में, चेतनतया प्राणशक्ति का प्रयोग उसकी उदीयमान अवस्था में करती है, तब उसको मन भुवन का भान नहीं होता । इसलिये वह अचेतनतया मन के पहलुओं का प्रयोग करती है, जैसे विचार, इच्छायें और भावनायें । इस प्रकार, यद्यपि वह प्राणशक्ति की अपनी चेतना के द्वारा पचण्ड शक्ति को सँभालने में समर्थ होती है, तथापि वह एसी भावग्राही भी होती है कि वह चेतनामय मन के पहलुओं का उपयोग करने के दौरान में मन के फन्दे में फँस सकती है । इस कारण से यह प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा, महती शक्तिशाली होती हुई भी, चेतनामय

we have taken as the standard for the gross); and the gross-conscious human soul on earth—conscious only of the gross—unconsciously imbibes from the sun's rays the Energy of the subtle, by making in the gross world the fullest use of the aspects of this Energy in the form of nuclear energy. Also this gross-conscious human soul on earth unconsciously makes use in the gross world of the aspects of Mind such as thoughts, desires and emotions, which it also imbibes from this sun's rays.

For the purpose of continuing our simile we shall now take the subtle-conscious human soul as a soul in air and hence much nearer this sun than the gross-conscious human atma on earth. This subtle-conscious human soul in air is conscious only of the subtle— consciously imbibes the fullest energy from this sun, which is the source of energy, and consciously makes use of this tremendous energy in its nascent form. Thus this subtle-conscious human soul is capable of wielding tremendous power and is quite capable of giving sight to the blind or limbs to the maimed. This is the domain of the first three planes, and the capability of this soul to liberate energy in any intensity is achieved according to the degree of subtle consciousness gained by it in the second and third planes.

While this subtle-conscious human soul, in its realm of Energy, consciously makes use of energy in its nascent state, it is unconscious of the mental. Therefore, unconsciously, it makes use of the aspects of Mind, such as thoughts, desires and emotions. Thus, though it is capable of wielding tremendous power through its consciousness of Energy, it is susceptible to getting entangled by mind while making use of the aspects of Mind unconsciously. For this reason this subtle-conscious human soul, although mighty powerful, sometimes slides down to the lower level of

अपनी शक्ति का प्रयोग चमत्कारी शक्तियों के रूप में करने के समय बहुधा नीचे गिरकर चेतना के निचले धरातल पर पहूँच जाती है ।

और भी सही रूप में, पाण-चेतनामय मानवी आत्मा प्राप्त की हुई प्राण चेतना की मात्रा के अनुसार या तो पहली अथवा दूसरी अथवा तीसरी बूमिका में होती है; अथवा, हम कह सकते हैं कि सूक्ष्म लोक के प्रदेश में पहली, दूसरी और तीसरी भूमिकायें होती हैं । अब चौथी भूमिका चेतना की वह अवस्था है जो प्राण भुवन के प्रदेश एवम् मन भुवन के प्रदेश के बीच सीमाविभाजन की रेखा खींचती है । दूसरे शब्दों में, चौथी भूमिका पर स्थित प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा (मन भुवन की) **देहली** पर खड़ी हुई मानवी आत्मा के समान है, जो देहली प्राण भुवन और मन भुवन की सीमा स्थिर करती है ।

इसलिये चौथी भूमिका की चेतना की स्थिति में प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा को प्रथम, द्वितीय ओर तृतीय भूमिकाओं की पूर्ण चेतना होती है और वह प्राण भुवन का पूर्ण अनुभव करती है, और इसलिये उसको प्राण भुवन की प्रचण्ड शक्ति का पूरा भान होता है । इस प्रकार, मन भुवन के द्वार पर खड़ी हुई यह मानवी आत्मा, जिसके हाथ में अपने शिखर पर पहूँची हुई प्राणशोक्त है, अब मन के प्रदेश के—मन भुवन के—निकटतम है, जो मन भुवन है, और इस प्रकार उसमें विचार, इच्छायें एवम् भाव जैसे मन के पहलुओं की प्रबल शक्तियों के वशीभूत होने के लिये अत्यधिक भावग्राहिता होती है । और यद्यपि चौथी भूमिका पर स्थित यह प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा प्राण भुवन की उच्चतम शक्ति का चेतनामय पयोग करती है, तथापि उसको अब भी मन का भान नहीं होता । इसलिये वह अचेतनतया मन के पहलुओं का प्रयोग करती है, जो अब अत्यन्त प्रबल होते हैं और इस प्रकार इस आत्मा के लिये अत्यन्त प्रलोभनकारी होते हैं, जिसे अब सर्वोच्च सीमा पर पहूँचे हुये मन के पहलुओं (विचारों, इच्छाओं और भावों) के पुरे तूफ़ान का सामना करना पड़ता है और उसे सहन करना पड़ता है ।

चौथी भूमिका पर स्थित मानवी आत्मा के लिये यह स्थिति अत्यन्त ख़लरनाक होती है, क्योंकि यह अत्यन विश्वासघाती होती है । यहाँ आत्मा को जो सर्वोच्च प्राणशक्ति से सूसज्जित होती है, जिसका प्रयोग सर्वेच्च हित अथवा सर्वोच्च अहित के लिये किया जा सकता है, अपने शिरोबिन्दु पर पहूँची हुई दो शक्तियों का एक प्रकार का सम्तुलन

subtle consciousness while making conscious use of its energy in the form of miraculous powers.

To be more precise, the subtle-conscious human soul is either in the first or second or third plane according to the degree of subtle consciousness gained; or, one may say that the domain of the subtle sphere comprises the first, second and third planes. Now the fourth plane is that state of consciousness which draws a line of demarcation between the domain of the subtle world and the domain of the mental world. In other words, the subtle-conscious human atma on the fourth plane is like a human soul standing on the **threshold** (of the mental world), which delimits the subtle world from the mental world.

Therefore the subtle-conscious human soul at the stage of consciousness of the fourth plane is fully conscious of the first, second and third planes and experiences in full the subtle world, and so is completely conscious of the tremendous energy of the subtle world. Thus this human soul on the threshold of the mental world, commanding the energy at its height, is now nearest to the domain of Mind, which is the mental world, and thus is much more susceptible to the overpowering forces of the aspects of the mind, viz., the thoughts, desires and emotions. And although this subtle-conscious human soul on the fourth plane consciously makes use of the subtle world's energy at its zenith, it is still unconscious of Mind. It therefore unconsciously makes use of the aspects of Mind, which are now too overpowering and thus most alluring for this soul which, so to speak, has to face and bear the full blast of the aspects of the mind (thoughts, desires and emotions) at their highest.

This situation for the human soul on the fourth plane is extremely dangerous, since it is extremely treacherous. Here the soul, equipped with highest energy, which can be put to use either for the best or for the worst, has to maintain a sort of equilibrium of two forces at their zenith, i.e., the

रखना पड़ता है—अर्थात्, प्राण भुवन की उच्च प्राणशक्ति का शिखर और मन भुवन के मन के पहलुओं की प्रबल चरमसीमा । यदि चौथी भूमिका पर स्थित यह मानवी आत्मा, अचेतनतया मन के पहलुओं का प्रयोग करती हुई, इन पहालुओं (विचारों, इच्छाओं एवं भावों) के प्रबल प्रलोभनों के वशीभूत हो जाती है, तब वह अपनी प्रबल इच्छाओं की तृप्ति के लिये ही चरम प्राणशक्ति का अत्यन्त अहितकर प्रयोग शक्तिशाली चमत्कारों के रूप में किये बग़ैर नहीं रह सकती, जैसे मुर्दे ज़िन्दा करना, अन्धों को आँखें देना, रोगियों एवम् अङ्गहीनों को चङ्गा करना । वह अखिल रूप जगत की रचना, उसकी पूरी सृष्टि के सहित कर सकने में समर्थ होती है । इस प्रकार चरम प्रणशक्ति से प्राप्त हुई वह शक्ति अत्यन्त महान होती है जिसका भान इस प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा को होता है ।

इस प्रकार, अपने शिखर पर पहूँचे हुये मन के पहलुओं के माध्यम से, तथा उनके प्रबल प्रलोभनों के द्वारा किया गया चरम प्राणशक्ति का यह दुरुपयोग दो मूलभूत अलौकिक शक्तियों में—अतुल महाबल के रूप में चरम प्राणशक्ति, और दुर्निवार्य (*irresistible*) इच्छा के रूप में मन की चरम शक्ति—एक प्रकार की भीषण, असाध्य रुकावट पैदा करता है जिसके फलस्वरूप चौथी भूमिका की प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा की उन्नत चेतना में एक अकल्पनीय भीषण संघर्ष एवम् विस्फोट होता है । इस प्रकार इस आत्मा की चेतना में पूर्ण अव्यवस्था पैदा हो जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि इस मानवी आत्मा की उन्नत चेतना पूर्णतया छिन्न-भिन्न हो जाती है । तब यह प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा अनिवार्यतः पतित होकर चेतना के नीचे से नीचे धरातल पर पहूँच जाती है । इसलिये इस मानवी आत्मा को पत्थर योनि धारण करनी है और पुनः विकास की प्रक्रिया पार करनी पड़ती है ।

एक स्थूल-चेतनायुक्त वैज्ञानिक का उदाहरण

अब हम इस स्थिति को एक दृष्टान्त के द्वारा समझाने का प्रयत्न करते हैं कि स्थूल भूमिका पर भी कभी कभी एक साधारण

height of the energy of the subtle world and the overpowering height of aspects of the mind of the mental world. If this human soul on the fourth plane, while unconsciously using the aspects of Mind, is overcome by the overpowering allurements of these aspects (thoughts, desires and emotions), he then cannot resist using energy at its climax for the worst by performing powerful miracles such as raising the dead, curing the blind, the sick and the maimed, etc., just to satisfy his own overpowering desires. He is even capable of creating the whole world of forms with all of its creation, so great is the power obtained from the energy at its height of which this subtle-conscious human soul is conscious.

Thus this misuse of energy at its zenith, through the medium and the overpowering allurements of the aspects of mind, also at their zenith, creates a sort of tremendous, irreparable short-circuit in the two fundamental supernatural forces—of energy at its zenith in the shape of stupendous power, and of mind at its zenith in the shape of irresistible desire—resulting in an unimaginably tremendous clash and explosion in the advanced consciousness of the subtle-conscious human soul of the fourth plane. Absolute disturbance is thus created in the consciousness of this soul resulting in downright disintegration of the advanced consciousness of this human soul. Thereupon this subtle-conscious human soul invariably falls to the lowest level of consciousness, which is the most finite type of consciousness of the crudest form. Therefore this human soul has to take the form of stone and has again to go through the process of evolution.

Example of a Gross-Conscious Scientist

Let us try to explain this situation by an illustration of what sometimes occurs, even on the gross plane, to an ordinary human being

मनुष्य के प्रति क्या घटित होता है जिसके हाथ में प्रचण्ड शक्ति है और जो बहुधा अपनी शक्तियों का प्रदर्शन करने की प्रगाढ़ इच्छा के वशीभूत हो जाता है ।

तब हम चौथी भूमिका की एक प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्मा की (जैसी कि ऊपर बताई जा चुकी है) तुलना स्थूल जगत के एक प्रख्यात महान वैज्ञानिक से करते हैं । उस वैज्ञानिक को शोक्त-विज्ञान के क्षेत्रों में अत्यधिक अनुसन्धान के द्वारा तथा निपट पयास के बल से स्थूल बूमिका की पूर्ण चेतना होती है, इसलिये वह विशेष परीक्षणों के माध्यम से भीषण प्राणशक्ति को मुक्त करने की सम्भावना का अनुभव पूर्णतया करता है ।

अपने दृष्टान्त के प्रयोजन के लिये, हम कल्पना करते हैं कि उस वैज्ञानिक को क्रमशः प्रचण्ड प्राणशक्ति की पूर्ण चेतना प्राप्त होती है, जो (शक्ति) उसकी पहूँच के भीतर आ गई है और जो अन्ततः प्रूर्णतया ऊसके नियन्त्रण में आ जायगी । तब उसे उसका प्रयोग करने की उत्कट इच्छा होती है ।

उस समय भी जबकि स्थूल जगत में इस स्थूल-चेतनामय वैज्ञानिक को प्राणशक्ति के उच्चतम सम्भव स्थूल रूप का भान होता है, उसको उस प्राणशक्ति का उसकी उदीयमान अवस्था में बिल्कुल भान नहीं होता, जो केवल सूक्ष्म जगत के प्रदेश की होती है और जिसका अनुभव एवम् नियन्त्रण केवल **सूक्ष्म**-चेतनामय मानवी आत्मा कर सकती है, और जिसका परीक्षण अथवा अनुभव कभी, किन्हीं परिस्थितियों में भी, कोई **स्थूल**-चेतनामय मनुष्य नहीं कर सकता ।

इसलिये, जबकि स्थूल जगत में पृथ्वी पर इस स्थूल-चेतनामय वैज्ञानिक को अणुशक्ति के उच्चतम सम्भव स्थूल रूपों का भान होता है, उसको वास्तव में प्राण भुवन के प्रदेश की प्राणशक्ति के उच्चतम स्थूल रूपों में केवल एक की पूर्णतया चेतना प्राप्त होती है ।

और, जब यह वैज्ञानिक, जिसे प्राणशक्ति के उच्चतम स्थूल रूपों में एक की चेतना प्राप्त होती है, जो अब पूर्णतया उसके नियन्त्रण में है, इस शक्ति का प्रयोग करने की उत्कट इच्छा के वशीभूत हो जाता है—जो इच्छा भी मन भुवन के मन का सर्वोच्च रूप है—तब इस वैज्ञानिक का पूरा चरित्र अनिश्चित और इस प्रकार बहुधा ओखिन में होता है ।

(७१)

who handles tremendous power and who is, more often than not, overcome by an intense desire to demonstrate his powers.

Let us compare then a subtle-conscious human soul on the fourth plane, such as described above, with a great scientist of repute in the gross world. The latter, being fully conscious of the gross plane, by sheer dint of effort and much investigation into the fields of the science of energies, fully realizes the possibility of releasing tremendous energy through certain experiments.

This scientist, we will assume for the purposes of our illustration, gradually becomes fully conscious of the tremendous energy that has come within his reach and which will ultimately come under his complete control. He then desires intensely to make use of it.

Even when this gross-conscious scientist in the gross world is conscious of the highest possible gross aspect of Energy, he is not at all conscious of that Energy in its nascent state, which is only of the domain of the subtle world and which can only be experienced and controlled by the **subtle-**conscious human soul, and which can never, under any circumstances, be experimented with or experienced by any **gross-**conscious human being.

Therefore, when this gross-conscious scientist in the gross world on earth is conscious of the highest possible gross aspects of nuclear energy, he is actually fully conscious of only one of the highest gross aspects of energy of the domain of the subtle world.

And, when this scientist, who is conscious of one of the highest gross aspects of energy, which is now entirely under his control, is overpowered by an intense desire—which is also the highest aspect of Mind of the mental world—to use it, then the scientist's whole career hangs in the balance, and it is thus very often at stake.

परस्पर-विरोधी विचारों की इस सन्धि बेला में ही, जो एक ओर तो वैज्ञानिक को अपनी शक्तियों का प्रदर्शन करने के लिये उत्तेजित करते हैं और दुसरी ओर उसको मौनव्रती होने के लिये सान्त्वना देते हैं, वैज्ञानिक को सन्तुलन रखने के लिये अत्यन्त सावधान रहना पड़ता है—अर्थात्, अपने हाथ में प्रस्तुत प्राणशक्ति के प्रचण्ड रूपों का सन्तुलन रखने के लिये । यह उसकी मर्ज़ी पर निर्भर रहता है कि वह इस शक्ति का प्रयोग विश्व के हित के लिये करे, अथवा इसका दूरुपयोग करके विनाश करे, अथवा इसका बिल्कुल प्रयोग न करे । उसका सामना मन के प्रबल पहलू की दुर्निवार्य, प्रबल शक्ति से उत्कट इच्छाओं के रूप से होता है, जो इच्छायें नाम, ख्याति एवम् शक्ति प्राप्ति के लिये उसके ऊपर हावी होती हैं, और वे उसके अहङ्कार को स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों की ओर अत्यधिक उत्तेजित करती है, और वे उस गहन विनाश एवं ध्वंस का लिहाज़ नहीं करतीं जो इस प्रकार हो सकता है ।

इसलिये, यदि वैज्ञानिक इस अतिशय अहङ्कारी इच्छा के सामने झुक जाता है, जो अब अपने शिखर पर है, और उसके द्वारा वह उस शक्ति का दुरुपयोग, जो उसके अधिकार में पाणशक्ति के सर्वोच्च पहलुओं में से एक के रूप में होती है, अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु करने में प्रवृत्त होता है तो वह अपने हाथ में प्राप्त अत्यन्त धातक अस्त्र का विस्फोट करने के प्रयत्न में चेतनतया अग्रसर होता है—जो अस्त्र नवीनतम हाइड्रजिन बम से अधिक शक्तिशाली है ।

इसी स्थिति में ही ख़तरनाक स्थल आता है ।

वह वैज्ञानिक अपने अस्त्र का विस्फोट करता है और इस प्रकार विनाशकारी परिणाम फैलाता है; और शक्ति के प्रयोग एवम् प्रबल इच्छा के बीच जो सन्तुलन अब तक अत्यन्त कठिनाई से स्थिर था वह पूर्णतया छिन्न-भिन्न हो जाता है ।

यह वैज्ञानिक सन्तुष्ट न रह सका और वह एक ओर प्राणशक्ति के पचण्ड पहलू के, जो उसको शक्ति से सम्पन्न करने वाले उसके अस्त्र में अन्तर्निहित थी, तथा दूसरी ओर अकल्पनीय परिणाम की परवाह न करके उस अस्त्र का चेतनतया विस्फोट करने की अत्कट इच्छा के बीच साम्य अथवा सम्तुलन रखने में असमर्थ थी ।

इस सबकुछ में दु:खद बाद यह थी कि इस वैज्ञानिक को बम के विस्फोट के परिणाम की चेतना तथा उस परिणाम में उत्कट स्वार्थ होने

It is at this juncture of conflicting thoughts, which on the one hand provoke the scientist to demonstrate his powers, and on the other hand soothe him to become reticent, that the scientist has to be extremely careful to maintain an equilibrium—that is, balancing the tremendous aspects of energy at his disposal. It rests with him either to use it for the welfare of the world, or to misuse it for its devastating effects, or, not to use it at all. He is confronted with the irresistible, overpowering force of the predominant aspect of mind in the shape of intense desires which haunt him with fame, name and power, tickling his ego to the utmost towards selfish ends, irrespective of the potential destruction and devastation which can be wrought.

If the scientist succumbs, therefore, to this overweening desire, which is now at its zenith, and is thereby directed for his selfish ends to misuse the power that he controls in the form of one of the highest aspects of energy, he then consciously leads himself to attempt to explode the most deadly weapon in his control—more powerful than, say, the latest hydrogen bomb.

It is at this stage that the crucial point is reached.

The scientist explodes his weapon, spreading devastating results; and the equilibrium which was thus far very narrowly maintained between use of power and overpowering desire is absolutely disturbed.

This scientist could not content himself and was incapable of maintaining an equilibrium or balance between the tremendous aspect of energy that lay latent in his weapon, which fortified him with power, and the intense desire to explode the weapon consciously, unmindful of the unimaginable result.

The tragedy of the whole thing was that this scientist, being conscious of and intensely self-interested in the result of the explosion of

के कारण, विस्फोट के धड़ाके का सीधा त्तभाव, सभी आवश्यक सावधानी बरतने पर भी, पहले पहल उसी वैज्ञानिक पर हुआ । उसके ऊपर तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि पहले वह अपने ही परीक्षण से पूर्णतया पराभूत एवं हक्का-बक्का हो गया; और, वह बिल्कुल अचेत होकर पृथ्वी पर गिर गया । इस दुःखद घटना में और भी दुर्भाग्यपूर्ण बात हुई; जब उसको होश आया, तो वह उसको किस कीमत पर पुनः प्राप्त हुआ ? वह महान एवं उन्नत वैज्ञानिक होते की अपनी अवस्था को बिल्कुल भूल गया था और वह अपने अतिशय सन्निहित भूल, अपने लड़कपन तथा अपने युवाकाल के क्रियाकलाप को एवं पत्नी, बच्चों और मित्रों के साथ उनके सभी संसर्गों को स्मरण करने में भी असमर्थ था । उसमें जो सबसे बड़ा परिवर्तन हो गया वह यह था कि उसको प्रतीत भी न होता था कि उसका **कुछ खो गया** था—अर्थात्, एक महान वैज्ञानिक होने की उसकी स्मृति एवं उसकी चेतना । डाक्टर लोग ऐसी घटना को स्मृति-भ्रन्श की दशा कहते हैं । उसको केवल इस सत्यता की चेतना थी कि वह एक अत्यन्त प्राथमिक प्रकार का व्यक्ति है । तब उसने अपना जीवन नये सिरे से प्रारम्भ किया, और उसको कभी एक बार भी कल्पना न हुई कि वह एक महान वैज्ञानिक का जीवन व्यतीत कर चुका था, जिसके अधिकार में विशाल एवं पचण्ड शक्तियाँ रह चुकी थी । इसी रीति से चौथी भूमिका पर स्थित अत्यन्त उन्नत प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा को दुःखद घटना घटित होती है । वह, प्राणशक्ति की साक्षात् मूर्ति होने के कारण, प्राण भुवन में अपने शिखर पर पहूँची हुई प्राणशक्ति का दुरुपयोग करती है, और उसके परिणाम स्वरूप अत्यन्त परिमित चेतना को छोड़कर उसकी सारी चेतना का ह्रास हो जाता है, और, विकास के नियम के अनुसार उसको उस अत्यन्त परिमित चेतना का अनुभव करने के लिये पत्थर की अत्यन्त अपक्व योनि धारण करती पड़ती है ।

सद्गुइओं के कार्यों में एक कार्य यह होता है कि वे चौथी भूमिका की आत्मा को गूढ़ शक्तियों के दुरुपयोग से अपने आध्यात्मिक चरित्र का नाश करने से बचाते हैं ।‡ बहुधा, यदि चौथी भूमिका की आत्मा अपने

‡ सम्पादकों ने ईसा के "प्रलोभनों" के विषय में पूछा, तो बाबा ने उत्तर दिया : "सच बात यह है कि ईसा को शैतान ने प्रलोभन न दिया था, बल्कि ईसा ने "स्वयं अपने को प्रलोभित कराया था, और उन्होंने प्रलोभनों के ऊपर . . .

the bomb, was the first to be directly affected by the blast of the explosion despite all of the necessary precautions taken. The immediate consequence to himself was that at first he was completely overpowered by his own experiment and was aghast; and, he fell flat on the ground, absolutely unconscious. To add to this tragedy, when he regained his consciousness, he regained it at what cost? He had completely forgotten his state as a great and advanced scientist and he was also incapable of remembering his immediate past, his boyhood and his activities as a young man with all of their associations with wife, children and friends. The greatest change that took place in him was that he did not even feel that he had **lost anything**—*i.e.*, his memory and his consciousness of being a great scientist. The doctors call such an occurrence a case of amnesia. He had consciousness only of the fact that he was a man of the most rudimentary type. He then started his life afresh, never once imagining that he had lived the life of a great man of science, who had had under his control vast and tremendous forces of energy. In a similar fashion occurs the tragedy of the most advanced subtle-conscious human soul on the fourth plane. He, being energy personified, misuses the energy at its zenith in the subtle world, and consequently loses all consciousness except the most-finite consciousness which, according to the law of evolution, has to take the most crude form of stone to experience that most finite consciousness.

One of the functions of Perfect Masters is to guard the soul of the fourth plane from wrecking his spiritual career through the misuse of divine powers.* Very often, if the soul of the fourth plane is about to lose

* Being asked by the editors about Jesus' "temptations," Meher Baba replied:

"The truth is that Jesus was not tempted by Satan, but that Jesus got Himself tempted, and He overcame the temptations. There was a great purpose behind this. He had to get Himself tempted; thereby He shouldered the burden of the forces of temptations that predominated in the world. Jesus then overcame all the temptations and in that way created a tremendous force which acted as a great set-back to the forces of universal temptations. The same was true in the case of Buddha, and it is the same every time in Avataric periods. Whenever God manifests on earth as Avatar, His Godhood gives a universal push and the result is universal, i.e., not only the humanity reaps the benefit but everything in the whole Creation reaps the benefit of the universal push."

मन का नियन्त्रण खोने के करीब होती है, तो उसकी शक्तियाँ सद्गुरु छीन लेते हैं, जो सभी प्राण-चेतनामय एवं स्थूल चेतनामय आत्माओं के मनों पर नियन्त्रण रख सकते हैं । अतएव वास्तविक अधःपतन के उदाहरण बिरले ही होते हैं और वे नियम के अपवाद स्वरूप घटित होते हैं । उनका सम्बन्ध अन्ततः, सद्गुरुओं द्वारा रखी गई सतर्कता की असफलता से न ठहराना चाहिये, किन्तु स्वयं परमात्मा के अन्दर विद्यमान मूल लहर से ठहराना चाहिये । अतः यह अक्षरशः सत्य है कि छोटी अथवा बड़ी प्रत्येक चीज़, जो भी विश्व में घटित होती है, **सर्वशक्तिमान ईश्वर की मरजी से ही घटित होती है** ।

इस स्थल पर यह जान लेना महत्त्वपूर्ण होगा कि यद्यपि यह एक स्थापित सत्य है कि एक बार मनुष्य योनि में पूर्ण चेतना प्राप्त हो जाने पर, उसका वस्तुतः कभी ह्रास नहीं होता; फिर भी, चौती भूमिका की प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा के इस उदाहरण में, प्राप्त हुई चेतना के नष्ट होने की सम्भावना होती है । यह तब होता है जबकि चौथी भूमिका की शक्तियों का दुरुपयोग किया जाता है, और यदि हाथ में आई हुई सर्वोच्च प्राणशक्ति का सन्तुलन अनन्त इच्छाओं के प्रबल प्रलोभनों के द्वारा, जो मन के सर्वोच्च पहलू हैं, नहीं सँभलता । यद्यपि मन के तीन मूलभूत पहलू हैं—विचार, इच्छायें और भाव, तथापि "इच्छायें" मन का सर्वोच्च पहलू हैं ।

किन्तू, यदि चौती बूमिका पर स्थित प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा अपने हाथ में आई हुई प्राणशक्ति का दुरुपयोग नहीं करती, और वह अनन्त प्राणशक्ति का प्रयोग सावधानी के साथ सर्वोच्च हित के लिये

(७४)

. . . विजय प्राप्त की थी । इसके पीछे भारी प्रयोजन छिपा था । उन्हें अपनेआप को प्रलोभित करना पड़ा था; उसके द्वारा उन्होंने प्रलोभनकारी शक्तियों का बोझ अपने कन्धों पर ले लिया जो उस समय विश्व में प्रबल थीं । फिर ईसा ने सब प्रलोभनों पर विजय प्राप्त की और उस रीति से एक पचण्ड शक्ति उत्पन्न की जिसने विश्वव्यापी प्रलोभनों की शक्तियों को एक महान ठेल द्वारा पीछे को ठेल दिया । यही बात बुद्ध के उदाहरण में सत्य थी, और यही बात हर बार 'अवतारिक' अवधियों में होती है । जब कभी ईश्वर अवतार के रूप में पृथवी पर प्रकट होता है तो उसका ईश्वरत्व एक विश्वव्यापी ठेल देता है और उसका परिणाम विश्वव्यापी होता है, अर्थात् न केवल मानवजाति ही उससे लाभ प्राप्त करती है वरन् अखिल सृष्टि के अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु उस विश्वव्यापी ठेल से लाभान्वित होती है ।"

control of his mind, his powers are snatched away by the Perfect Masters, who can control the minds of all subtle-conscious and gross-conscious souls. The cases of actual down-fall are accordingly rare and occur as exceptions to the rule. They must ultimately be attributed, not to any failure in the vigilance maintained by the Perfect Masters, but to the original urge within God Himself. So it is literally true that each and everything, small or great, that happens in the universe, happens only according to the will of the Almighty.

Here it is important to know that though it is an established fact that once full consciousness is gained in the human form, it is virtually never lost; yet, in this case of the subtle-conscious human soul on the fourth plane, there is the possibility of losing the consciousness gained. This occurs if the powers of the fourth plane are misused, and if the equilibrium is not maintained with the highest energy at command, counter-balanced by the overpowering allurement of infinite desires which are the highest aspect of Mind. Though the three fundamental aspects of Mind are thoughts, desires and emotions, the desires form the highest aspect of Mind.

But, if the subtle-conscious human soul on the fourth plane does not misuse the energy commanded by it, and maintains the equilibrium by discreet use of infinite energy for the best, then this soul on the fourth

करके सन्तुलन बनाये रखती है, तब यह चौथी भूमिकावाली आत्मा न केवल चौथी भूमिका के इस द्वार को पार करके मन भुवन की पाँचवीं एवं छठवीं भूमिकाओं के प्रदेश में प्रवेश करती है, बल्कि वह छठवीं भूमिका की चेतना **सीधे-सीध** प्राप्त करती है । इसका यह कारण है कि यह आत्मा (चरम प्राणशक्ति की चेतना तथा उसके विचारपूर्ण प्रयोग के द्वारा) मन के अत्यन्त प्रलोभनकारी एवम् प्रबल सर्वोच्च पहलुओं—इच्छाओं, विचारों और भावों—के ऊपर, जो अपने शिखर पर अत्यन्त प्रबलतया विश्वासधाती होते हैं, काबू पाने में तथा उनका प्रतिरोध करने में समर्थ थी । इस प्रकार यह प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा अपने शिखर पर पहूँची हुई इच्छाओं, विचारों एवम् भावनाओं के ऊपर काबू प्राप्त करके सीधे-सीध छठवीं भूमिका की चेतना प्राप्त करती है और उनकी स्वामी बन जाती है, जिनके ऊपर अब वह नियन्त्रण रखती है और जिनका सृजन करने की क्षमता भी रखती है ।

कुछ प्राण-चेतनामय मानवी आत्मायें प्राण-भुवन में विमुक्त हुई चरम प्राणशक्ति की भीषण बाढ़ का न तो उपयोग करती हैं और न दुरुपयोग करती हैं; और जब ऐसी आत्मायें अपनी इच्छाओं के फन्दे में नहीं फँसतीं, जबकि वे इच्छायें भी अपने शिरोबिन्दु पर होती हैं, तब ये प्राण-चेतनामय मानवी आत्माओं चौथी भूमिका का प्रदेश-द्वार पार करती हैं और मन भुवन के प्रदेश में पाँचवीं बूमिका की चेतना प्राप्त करती हैं । यहाँ ये मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मायें अपने मनों की गुलाम नहीं रहतीं क्योंकि अब उन्हें मन की पहली अवस्था की चेतना होती है जो विचारों पर नियन्त्रण रखती है ।

पाँचवीं और छठवीं भूमिकाओं की इस मन-चेतनायुक्र मानवी आत्माओं को अब पूर्णतया मन की चेतना होती है और वे पाँचवें एवं छठवीं भूमिकाओं की चेतना की उन्नति की मात्रा के अनुसार मन भुवन का अनुभव करती हैं । पाँचवीं एवं छठवीं भूमिकाओं की इन मन-चेतनामय मानवी आत्माओं को प्राणभुवन की पहली, दुसरी, तीसरी और चौथी भूमिकाओं की चेतना की मात्रा का भान नजें रहता और न उन्हें प्राण भुवन का और अधिक अनुभव रहता है । इसलिये इन मन-चेतनायुक्त मानवी आत्माओं को प्राण-भुवन की प्रचण्ड प्राणशक्ति की चेतना नहीं होती । अस्तु इन मन-चेतनामय मानवी आत्माओं को, यद्यपि वे मन की चैतन्य स्वामी होती है, अब प्राण

plane not only crosses this threshold of the fourth plane and enters the domain of the fifth and sixth planes of the mental world but gains consciousness of the sixth plane **directly.** This is because this soul (with subtle consciousness and discreet use of Energy at its zenith) was capable of overcoming and resisting the most alluring and overpowering highest aspects of Mind, the desires, thoughts and emotions, which were most powerfully treacherous at their zenith. Thus this subtle-conscious human soul gains directly the consciousness of the sixth plane by overpowering the desires, thoughts and emotions at their zenith and becomes their master, who now controls them and even has the capacity to create them.

Some subtle-conscious human souls neither use nor misuse the tremendous flood of energy at its height liberated in the subtle world; and when such souls do not fall prey to their desires, which are also at their height, these subtle-conscious human souls cross the threshold of the fourth plane and gain the consciousness of the fifth plane in the domain of the mental world. Here these mental-conscious human souls are no longer the slaves of their minds because they are now conscious of the first state of Mind which controls thoughts.

The mental-conscious human souls on the fifth and sixth planes are now fully conscious of Mind and experience the mental world according to the degree of advancement of consciousness of the fifth and sixth planes. These mental-conscious human souls of the fifth and sixth planes are no longer conscious of the degrees of consciousness of the first, second, third and fourth planes of the subtle world nor do they experience the subtle world any longer. Therefore these mental-conscious human souls are unconscious of the tremendous energy of the subtle world. Hence these mental-conscious human souls, although they are conscious masters

भुवन की प्राणशक्ति के बल की बिल्कुल चेतना नहीं होती, और इस कारण से ह्य ये मन-चेतनामय मानवी आत्मायें कभी कोई चमत्कार नहीं कर सकतीं । उनकी उन्नत चेतना प्राण चेतनामय मानवी आत्माओं की चेतना से अधिकतर होने पर भी, वे न मुर्दे ज़िन्दा कर सकती हैं, न अन्धों को आँखें और न अङ्गहीनों को अङ्ग प्रदान कर सकती हैं । तथापि, चूँकि ये मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मायें मन की चेतन स्वामी होती हैं इसलिये वे स्थूल-चेतनायुक्त एवं प्राण-चेतनायुक्त मानवी आत्माओं के मनों की उत्पत्ति कर सकती हैं तथा उनका नियन्त्रण कर सकती हैं । आवश्यकता होने पर, मनों का सृजन एवं नियन्त्रण करना उनके लिये केवल बच्चों का जैसा खेल है ।

मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मा के प्रसङ्ग में, हम कल्पना करते है कि उसकी स्थिति सूर्य के निकट है (जिसे हमने उपमा के लिये अपना आधार मान लिया है) । मानव रूप में यह आत्मा मन के पहलुओं पर जैसे विचार, इच्छातें और भावनायें, चेतनतया अपने में ग्रहण करती है और उन पर नियन्त्रण करती है, और मन भुवन में मन का भरपूर पयोग करती है जो सूर्य से उद्भूत होता है (जिसको हम, स्पष्ट करने के अपने प्रयोजन के लिये, मूल स्त्रोत के रूप में समझते हैं) । इस प्रकार यह मन-चेतनायुक्त मानवी आत्मा, पाँचवीं और छठवीं भूमिकाओं के प्रदेशों में, मन और उसके पहलुओं की पूर्ण चेतना रखने के साथ-साथ अन्य सब मनों के भी विचारों, इच्छाओं एवं भावों का सृजन तथा नियन्त्रण करने में भी समर्थ होती है । अब आत्मा पूर्णतया स्थिर होती है और वह कभी भी गिर अथवा फिसल कर चेतना के किन्हीं निम्नतर स्तरों पर नहीं जा सकती जैसे कि चौथी भूमिका पर स्थित प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा गिर सकती थी (क्योंकि स्थूल-चेतनामय मानवी आत्मा एवं प्राण-चेतनामय मानवी आत्मा अपने मनों की गुलाम होती है, जबकि मन-चेतनामय मानवी आत्मा अपने मन की स्वामी होती है) ।

अन्ततः, आत्म-चैतन्य मानवी आत्मा की स्थिति स्वयं सूर्य में स्थित आत्मा के समान होती है । (इस व्याख्या को समझने का प्रयत्न करते समय, पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि सूर्य का प्रसङ्ग केवल उपमा के रूप में दिया गया है । उन्हें ग़लत अर्थ लगाकर इस सूर्य को हमारा सान्सारिक सूर्य न समझना चाहिये और न उनहें ग़लत समझकर हमारे सान्सारिक सूर्य को अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान एवं अनन्त आनन्द

of Mind, are now absolutely unconscious of the power of Energy of the subtle world, and it is for this reason that these mental-conscious human souls never can perform any miracles. They can neither raise the dead nor can they give sight to the blind nor limbs to the maimed in spite of their advanced consciousness being greater than the consciousness of the subtle-conscious human soul. However, as these mental-conscious human souls are the conscious masters of Mind, they can create and control the minds of the g ross-conscious and subtle-conscious human souls. For them, creating and controlling minds is but child's play, if necessary.

In the case of the mental-conscious human soul, let us suppose that its position is near the sun (which we have taken for our standard as a simile). This soul in human form consciously imbibes and controls the aspects of Mind such as thoughts, desires and emotions, and makes in the mental world the fullest use of Mind which proceeds from the sun (which we, for our purpose of explanation, consider as the source). Thus this mental-conscious human soul, in the realms of the fifth and sixth planes, is not only fully conscious of the mind and its aspects but it is also capable of creating and controlling the thoughts, desires and emotions of all other minds too. The soul is now quite stable and can never fall or slide down to any lower levels of consciousness as could the subtle-conscious human soul on the fourth plane (because the gross-conscious human soul and subtle-conscious human soul are the slaves of their minds, whereas the mental-conscious human soul is the master of his mind).

Finally, the case of the Self-conscious human soul is like a soul in the sun itself. (While trying to understand the explanation, one should bear in mind that the reference to the sun is given only as a form of simile. One must not misunderstand this sun as our earthly sun nor misunderstand our earthly sun as the real standard of the infinite and eternal source of infinite

के अनन्त एवं शाश्वत मूल का वास्तविक स्तर मान लेना चाहिये, और न हमें अपने सान्सारिक सूर्य को कोई महत्व देना चाहिये क्योंकि हमारा सान्सारिक सूर्य स्वयं आत्मा की रची हुई **सृष्टि** के पदार्थों में से एक है ।)

सातवीं भूमिका की इस आत्म-ज्ञानी आत्मा को इस सूर्य की चेतना होती है (जिसको हमने प्राणशक्ति एवं मन के उद्‌गम के एक उदाहरण के रूप में माना है), और यद्यपि वह अनिवार्यतः अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान एवं अनन्त आनन्द का सतत् अनुभव करती है तथा उनको निरन्तर प्रसारित करती है, तथापि कुछ स्थितियों में ऐसी आत्मा इस अनन्त शक्ति, ज्ञान एवं आनन्द का **प्रयोग** सीधे-सीध तथा चेतनतया आत्माओं को स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगतों के **संस्कारों** से मुक्त करने के लिये भी करती है ।

(७७)

power, knowledge and bliss, nor must we attach any significance whatsoever to our earth's sun, for our earth's sun is nothing but one of the objects of Creation of the soul's own creating.)

This Self-conscious human soul of the seventh plane is conscious of this sun (which we have taken as an example of the source of Energy and Mind), and although he invariably experiences and radiates eternally the infinite power, knowledge and bliss, in some cases such a soul also makes **use** of this infinite power, knowledge and bliss directly and consciously for the emancipation of souls from the sanskaras of the gross, subtle and mental worlds.

भाग ७

सात परत का परदा

कबीर सद्गुरु थे और कवि भी थे । इसलिये उनकी कवितामय कृति **कबीरवानी** बहुत निराली है क्योंकि उसमें ईश्वर, ईश्वर के प्रति प्रेम, दैवी मार्ग तथा मायावी सृष्टि पर कबीर की निर्मल वाणियाँ हैं । सद्गुरु मोने के कारण, कबीर ने समानरूप से जनसाधारण तथा आध्यत्मिक मार्ग में दोक्षित वोगों के लिये चीज़ें कही हैं । उन्होंने, रूपकमय ढँग से और साथ-साथ स्पष्ट शब्दों में, कुछ आध्यात्मिक रहस्यों को खोलने में सङ्कोच नहीं किया, जो साधारण मनुष्य की पहूँच के भीतर होते हुये भी अब तक केवल आध्यात्मिक ज्योति से प्रकाशित व्यक्तियों वो ही ज्ञान हैं जो कबीर की अधिकांश वाणियों में छिपे हुये गहनतर अर्थ को यथार्थरूप से समझते हैं ।

ऐसे योगी (वे लोग जो गूढ़ ज्ञान के किसी नियम-बद्ध मार्ग का अभ्यास करते हैं) होते हैं जो अपनी क्षीणक **समाधि** की अवधि में आपही आप अपने स्थूल शरीरों को बीच-हवी में लट्का सकते हैं । कुछ ऐसे योगी होते हैं जो बाह्य साधनों की सहायता के बगैंर अपने स्थूल शरीर से पानी के ऊपर चल सकते हैं अथवा हवा में उड़ सकते हैं, तथापि यह इस बात का लक्षण अथवा प्रमाण नहीं है कि उन्हें दैवी प्रेम का अनुभव हो गया है । आध्यात्मिक तराज़ू पर तौले जाने पर ये चमत्कार कोई महत्व नहीं रखते । वास्तव में, औसत योगी द्वारा चमत्कार का प्रदर्शन करना न केवल आध्यात्मिक मार्ग से बिल्कुल अलग होता है, बल्कि वह वास्तव में आध्यात्मिक उन्नति की दिया में व्यक्ति के विकास में एक बाधा सिद्ध होता है ।[११,१२] एक हिन्दू गरू के जीवन ी निम्नलिखित घटना प्रदर्शित करती है कि सद्गुरु, जो सत्य की साक्षात् मूर्ति होते हैं, किस प्रकार चमत्कार की उपेक्षा करते हैं : वह गुरु एक दिन नदी के किनारे पर बैठा हुआ छोटी सी नौका की प्रतीक्षा कर रहा था जो याविंयों से एक आना तुच्छ किराया लेकर उनको नदी

PART 7

The Sevenfold Veil

KABIR was a Perfect Master as well as a poet. Kabirwani, his book of poems, is therefore the more unique because of his lucid expositions on God, love for God, the divine path and illusory Creation. Being a Perfect Master, Kabir has said things as much for the man in the street as for the initiate. He does not hesitate to disclose, both allegorically as well as in plain words, some of the spiritual secrets which, though within the grasp of ordinary man, are yet known only to the spiritually illumined ones who alone truly understand the deeper meaning underlying most of his sayings.

There are yogis (those who practice a systematic course of esoteric knowledge) who can of themselves suspend their physical bodies in mid-air during the time they are in a temporary *samadhi* (trance). There are some who can bodily walk on water or fly in the air without the aid of external means, and yet all this is no sign or proof of their having experienced divine love. Weighed on spiritual scales these miracles have no value whatsoever. In fact, miracle mongering by the average yogi is not only poles apart from the spiritual path, but is actually a hindrance to the individual's evolution towards spiritual progress.[11,12] The following incident in the life of a Hindu Master shows the disregard in which it is held by Perfect Masters, who are Truth personified: The Master was one day by the river's edge waiting for one of the little ferry boats that take passengers across the stream for the diminutive fare of one *anna*. A yogi

के पार उतारती हैं । उसको स प्रकार प्रतीक्षा में बैठा हुआ देखकर एक योगी उसके पास आयाम् शब्दशः नदी के ऊपर चलता हुआ उस पार गया और फिर चलता हुआ वापिस आ गया, और फिर उस गुरु से बलिा, "इस प्रकार नदी को पार करना बहुत आसान था, क्या एसा नहीं था ?" उस सद्गुरु ने मुस्काते हुये उत्तर दिया, "हाँ ऐसा था, और नौका के किराया—**एक आना**—की अपेक्षा उसका मूल्य कम था ।"

अपनी अधम इच्छाओं के ऊपर निरन्तर नियन्त्रण रखने की क्षमता कोइर कम वीरता का कार्य नहीं है । सभी इच्छाओं की स्थायी उत्कृष्टता स्थापित करने में सफलता प्राप्त करना सचमुच एक महानतर कार्य है । किन्तु अपनी सभी इच्छाओं को सदैव के लिये जलाकर भस्म कर देना सबसे महान कार्य है, जो केवल दैवी प्रेम कर सकता है । दैवी प्रेम के विषय में कभी कोई दिखावा नहीं होता; प्रेम में यह "जलना" सदैव "धुआँ" से रहित होता है, अर्थात् उसमें दिखावा नहीं होता । ऐसे अवसर आते हैं जबकि दैवी प्रेम का बह्य प्रकाशन वीरतापूर्ण हो सकता है, किन्तु किसी भौ समय ईश्वर के प्रति अपने प्रेम का दिखावा मात्रा, दिखावा के लिये ही करना, ईश्वर का अपमान करने के समान होता है । इसी कारण से कबीर ने कहा है कि ध्यान करने की क्रिया में [१३,१४] जिस समय कोई ईश्वर ळा ध्यान करने के लिये **आसन** जमाता है, उस समय उसको कोई भी दिखावा न करना सीखना चाहिये, जैसे मस्त होकर इधर-उधर झूमना, चाहे वह केवल उसी व्यक्ति की तुष्टि के लिये ही हो ।

स्वप्नों से तुलना किये जाने पर, भौतिक जीवन वास्तव में एक सत्यता है । इसी प्रकार से, आध्यात्मिक मार्ग की सत्यता से तुलना किये जाने पर दुनियाँ और सभी दुनियाबी जीवन मनुष्य के पक्ष में एक ख़ाली स्वप्न हैं । किन्तु जिस प्रकार विश्व और उसके सब अनुभव मायावी हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक मार्ग मायावी है जो **सत्यता** की ओर ले आता है । विश्व और उसके अनुभवों को हम झूठी माया कह सकते हैं और आध्यात्मिक मार्ग को यथार्थ माया कह सकते हैं । तथापि, दोनों के बीच भारी अन्तर होने पर भी, वे दोनों भी भ्रमजाल हैं, क्योंकि ईश्वर ही **एकमेव सत्यता** है ।

जब ज्ञान* प्राप्त होता है तो अज्ञानता हठ जाती है, किन्तु

* सान्सारिक ज्ञान के अर्थ में न होकर "विवेक" के अर्थ में । —सम्पादक

seeing him thus waiting, came up to him, literally walked across the river and back, and said, "That was much easier, was it not?" The Master smilingly replied, "Yes, and had less value than that of the boat fare—one *anna*."

The ability to exercise constant control over one's low desires is no mean achievement. Success in establishing a lasting sublimation of all desires is indeed a greater one. But the greatest is the burning away of all one's desires once and for all, which divine love alone can do. As there is never any show about divine love, this "burning" in love is always without "smoke," i.e., without show. There are times when an outward expression of God-love may amount to heroism, but to make at any time a mere show of one's love for God, for the sake of show, amounts to an insult to God. That is why Kabir says that in the act of meditation [13, 14] when one assumes an asan (posture) to meditate upon God, one should at that time learn to avoid making any display such as the swaying motion of one's body, even if it is only for one's own gratification.

As compared with dreams, the physical life is indeed a reality. Similarly, compared with the reality of the path, the world and all worldly life is vacant dreaming on the part of man. But as the world and all of its experiences are illusory, so is the spiritual path that leads to Reality. The former may be termed false illusion and the latter real illusion. Nevertheless, despite the vast difference between them, they are both illusions, for God alone is the only Reality.

When Knowledge* is gained ignorance is banished, but for ignorance to go, Knowledge must be gained. On the one hand, God, and

* [In the sense of "wisdom" rather than of worldly knowledge. Ed.]

अज्ञानता के चले जाने के लिये, **ज्ञान** का प्राप्त होता आवश्यक है । एक ओर, ईश्वर और ईश्वर को देखने तथा उसमें समाकर उससे एकरूप होने की मनुष्य की क्षमता, सदैव विद्यमान रहते हैं । दूसरी ओर, सत्यता मनुष्य से छिपी रहती है जब तक कि वह वस्तुतः आध्यात्मिक मार्ग पर नहीं पहूँच जाता अथवा ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर लेता । यह प्रत्यक्ष असंगति दो भिन्न खण्डों के कारण होती है : सत्यता के विषय में मनुष्य की अज्ञानता, और यह तथ्य कि सत्यता युक्ति की शक्ति के परे है तथा बुद्धि के क्षेत्र से बहुत ऊपर है । यह तथ्य अटल रहता है कि मनुष्य ईश्वर बन गया है और मनुष्य ईश्वर बन सकता है जिसका सीधा-सादा कारण यह है कि, जानते अथवा न जानते हुये, मनुष्य ईश्वर है । केवल जब तक मनुष्य की अज्ञानता रहती है तभी तक मायावी चीजों की जाता है तब उसको अनुभव होता है कि ईश्वर की असण्ड्य एकता का कोई अन्त नहीं है । जगद्द्वैत की माया में मनुष्य और ईश्वर के बीच प्रत्यक्ष पृथक्ता का उल्लेख सद्गुरु अुबवार्यतल मदयवर्ती "परदा" और "पट" (वेलि न्द चुरतन्) वें नाम सेकरते हैं । हाफ़िज़, जो सद्गुरु थे और साथ-साथ एक महान कवि भी थे, कहते हैं :

"मियाने आशिक़ो माशूक़ हेच हायल नीस्त;
तु खूद हिवाबे खुदी, वाफ़िज़, अज़ मियाने बरखेज़ ।"

"प्रेमी और प्रियतम के बीच में कोई आड़ नहीं है; हाफ़िज़ ! तुम अपने आपा की उठाकर एक तरफ़ कर दो, क्योंकि तुम खुद अपने को ढाँकने वाला पर्दा हो ।"

परदा के सात परत हटाने के त्तसंग में कबीर कहते हैं :

"तेरे घूँघट के पट खोल, तुझे राम मिलेगा ।"

"तू अपने परदे के परत खोल, और तुझे ईश्वर प्राप्त होगा ।"

घूँघइ का शाब्दिक अर्थ जै वज आवरण जो स्त्रौ अपने सिर और चेहरे के ऊपर कई परतों में डालती है; आध्यात्मिक भाषा में यह अज्ञानता कौ भारी परतों का संकेत करता है जो मनुष्य को उसके, हटना आध्यात्मिक पथ के पथिक की पहली भूमिका से लेकर पाँचवीं भूमिका तक की क्रमिक यात्रा के सदृश होता हहै ।

वह "परदा" जो अज्ञान-में-लिपटे मनुष्य को सर्वज्ञ ईश्वर से

the capacity of man to see and become one with God, are always there. On the other hand, Truth remains hidden from man until he actually arrives upon the path or realizes God. This apparent anomaly is due to two different factors: man's ignorance of Truth, and the fact that Truth is beyond the faculty of reason and far, far above the sphere of intellect. The fact remains that man has become God and man can become God for the simple reason that, knowingly or unknowingly, man is God. Only so long as man's ignorance lasts will there seem to be no end to the plural diversity of illusory things. When divine knowledge is gained he realizes that there is no end to the indivisible oneness of God. Under the illusion of cosmic duality the apparent separation between man and God is invariably referred to by masters in terms of the intervenient "veil" and "curtain." Hafiz, who was a Perfect Master as well as a great poet, says:

میان عاشق و معشوق هیچ حایل نیست
تو خود حجاب خودی حافظ از میان برخیز

Miyān ?

Miyānah 'āshiq o m'ashūq hīc ḥāyal nīst
Tū khvud hijāb-i khvudī, Ḥāfiẓ, az miyān barkhīz.

"There is no barrier between the lover and Beloved; Hafiz, lift yourself aside, you are yourself the covering over Self."

Kabir, referring to the removal of the seven folds of the veil, says:

Tere ghuṁghaṭa ke paṭa khola tujhe Rāma milegā.

"Open the folds of your veil, and you shall find God."

The *ghunghat* literally means the covering that a woman extends over her head and face in a number of folds; in spiritual parlance it represents the heavy folds of ignorance that keep man hidden from his real identity. The lifting of it, fold by fold, corresponds to the stage-by-stage journey of a pilgrim from the first through the fifth plane of the divine path.

The veil that separates a man-in-ignorance from God Who is All Knowledge is so subtle that even the highest and finest thought can-not

अगल करता है, इतना सूक्ष्म होता है कि ऊँचे से ऊँचे एवम् महीन से महीन विचार भी उसको नहीं बेल सकता । यह परदा सात बिन्न भिन्न, गहरे रङ्गों की सात परतों का बना होता है । प्रत्येक परत एक अलग गाँठ से बँधी होती है; इस प्रकार सात परतों में सात गाँठ होती हैं । सात रंग सात मूल इच्छायें प्रदर्शित करते हैं, जो सात मूलभूत संस्कारों के अनुभव होती हैं, अर्तात्, कामवासना, लोभ, क्रधि, इत्यादि, जिनका सम्बन्ध चेहरे में सात इन्द्रिय द्वारों से होता है, जैसे (१) मुख, (२) दाहिना मथुना, (३) बायाँ नथुना, (४) दाहिना काल, (५) बायाँ काल, (६) दाहिना नेत्र, (७) बायाँ नेत्र ।

सत्यता में और एकमेव सत्यता के रूप में, आत्मा सदैव ईश्वर है जो आदिरहित एवं अन्तरहित है । सात भौतिक स्थितियों में आत्मा का अवतरण प्रारम्भ होने के साथ मिथ्या माया पारम्भ हो जाती है और आत्मा के सातवीं आध्यात्मिक भूमिका पर पहूँचने के साथ यथार्थ माया का अन्त हो जाता है ।

ईश्वर अखिल विश्व है, ईश्वर सूक्ष्म विश्व है और ईश्वर **सदैव** इन दोनों के परे भी है । जान में मनुष्य शरीर है और मनुष्य मन है, परन्तु अनजान में, गहरी नींद की अवस्था के समान, मनुष्य उन दोनों के परे भी है ।

तुलनात्मक दृष्टि से यह सच है कि मनुष्य ईश्वर की प्रतिमा में बना है । उसके सिर का शिख **विज्ञान भूमिका, अर्शे-आला,** सर्वोच्च आध्यात्मिक अवस्था, अथवा **ब्रह्म** का स्थान त्तदर्शित करता है । उसका मस्तक ईश्वरत्व को प्राप्त करने के प्रवेशद्वार के समान है । उसके मस्तक का वेन्द्रा, दो बाहरी नेत्रों के ठीक ऊपर, भीतरी अथवा तीसरे नेत्र का स्थान है । जिस समय "परदा" अपनी सातों परतों सहित अन्ततः हट जाता है, तब मनुष्य, तीसरे नेत्र से, ईश्वर का आमने-सामने देखने में समर्थ होता है और उसको अधिक यथार्थरूप से तथा स्वाभाविकरूप से उसकी अपेक्षा अधिक दोखता है जो वह आमतौर पर अपने शरीर को और दुनियाँ को दो वाहरी नेत्रों से देखने में समर्थ होता है । मस्तक में स्थित ईश्वरीय प्रवेशद्वार पर प्हूँचने के लिये, मनुष्य को सात द्वार पार करना पड़ते हैं जो चेहरे में सात स्थूल इन्द्रिय-द्वारों के रूप में विद्यमान हैं ।

जब आध्यात्मिक मार्ग में दीक्षित व्यक्ति दैवी मार्ग में यथार्थतः

pierce through it. This veil consists of seven folds of seven different, deep colours. Each fold is tied with a separate knot; thus there are seven knots to the seven folds. The seven colours represent the seven root desires, corresponding to the seven fundamental impressions, i.e., lust, greed, anger, etc., connected with the seven openings of sensation in the face, viz., (1) mouth, (2) right nostril, (3) left nostril, (4) right ear, (5) left ear, (6) right eye, (7) left eye.

In Reality and as the only Reality, the soul is always God without beginning and without end. False illusion begins with the descent of the soul in seven material stages and real illusion ends with the ascent of the soul to the seventh spiritual plane.

God is a macrocosm, God is a microcosm and God is also **always** beyond both. Knowingly man is body and man is mind, but unknowingly, as in deep sleep, man is also beyond both.

Analogically it is true that man is made in the image of God. The top of his head represents the *vidnyan bhumika*, *arsh-e-ala*, the high-est spiritual state, or the seat of Brahman. The forehead corresponds to the entrance to divinity. The centre of the forehead, just above the two external eyes, is the seat of the inner or third eye. When the veil with all its seven folds is finally removed, man is then able, through the third eye, to see God face to face and sees Him more actually and naturally than what he is ordinarily able to see of his body and the world through the two external eyes. In order to arrive at the divine entrance situated in the forehead, man has to pass through the seven doors as represented by the seven physical openings in the face.

When an initiate succeeds in actually entering the divine path it is for him a single seven-in-one achievement, and it applies to the first of the

प्रवेश करने में सफल होता है तब उसके लिये वह केवल एक सप्तमुवी सिद्धि होती है, एक सिद्धि प्राप्त होती है, और वह परदे की सात परतों में से पहली परत से सम्बद्ध होती है, जैसे (१) पहली गाँठ का खुलना, (२) प्रथम परत का लोप होता, (३) प्रथम मूल इच्छाओं का नष्ट होता, (४) सापेक्ष मूलभूत संस्कारों का मिटना, (५) सात गहरे, काले रंगों में से प्रथम का समाप्त होना, (६) [मुख द्वारा प्रस्तुत किये गये] पथम द्वार से प्रवेश, और (७) प्राण भुवन में प्रथम भूमिका, **प्राण-भुवन** अथवा **आलम-ए-मलकूत**[१५] पर पहूँचना ।

स्वप्नों में, साधारण मनुष्य सूक्ष्म चेतना के द्वारा अपने सूक्ष्म शरीर का **आंशिक** प्रयोग व्रने में समर्थ होता है, किन्तु वहा केवल स्थूल अनुभव के विषय में तथा केवल स्थूल पदार्थों के सम्बन्ध में ऐसा करने में समर्थ होता है । जिस प्रकार वह स्थूल है, उसी प्रकार पहली भूमिका में प्रविष्ट हुआ व्यक्ति अपने सूक्ष्म शरीर के माध्यम से सूक्ष्म चेतना के साथ प्राण भुवन का अनुभव करने लगता है ।

यदि पहली भूमिका में प्रविष्ट हुआ व्यक्ति और आगे बड़ने में समर्थ होता है और प्रगति बनाये रखता है, तो वह चौथी भूमिका तक प्राण भुवन में बना रहता है । इस पगति के अन्तर्गत क्रमशः दूसरी और तीसरी अकेली सप्तमुखी (*seven-in-one*) सिद्धियाँ होती हैं जिनके सप्त-परता परिणाम पहली सिद्धि में प्राप्त हुये सात परिणामों के समानान्तर होते हैं । (दाहिने और बायें नथुनें द्वारा प्रस्तुत किये गये) दूसरे और तीसरे द्वारों से होकर यह गुज़रना यथार्थ माया की और भी महानतर पगाढ़ता, अर्थात् मार्ग की उच्चतर चेतना, पैदा करता है । दूसरे द्वार को पार करने के बाद, पथिक को प्राण भुवन की अद्‌भूत चीज़ों का और अधिक अनुभव होता है और साथ-साथ वह अचरज की भूलभूलैयों में खो जाने के ख़तरे से होकर गुज़रने लगता है । तीसरे द्वार के परे मिल्ने वाले मार्ग के रहस्यपूर्ण जादू और भी अधिक होते हैं, और इसी प्रकार उन आदुओं में मुग्ध होकर फँस जाने की सम्भावनायें भी अधिक होती हैं । जिस प्रकार स्थूल-चेतनामय व्यक्ति स्थूल जगत् एवम् उसके मायावी अनुभवों को यथार्थ मानते हैं, उसी प्रकार प्राण भुवन में स्थित पथिक, अपनी अपनी स्थिति की भूमिका के कोतुक में निमग्न रहने के दोरान में, उसको ग़लती से अन्तिम सत्यता मान सकते हैं ।

(८२)

seven folds of the veil, viz., (1) unfastening of the first knot, (2) disappearance of the first fold, (3) crushing out of the first root desires, (4) wiping out of the relative fundamental impressions, (5) doing away with the first of the seven deep, dark colours, (6) entrance through the first door (as represented by the mouth), and (7) arriving on the first plane in the subtle sphere, the *pran bhuvan* or the *alam-e-malakut*.[15]

In dreams, an ordinary man is able to make **partial** use of his subtle body with subtle consciousness, but only in respect to gross experience and concerning only gross objects. Just as he experiences the gross world with full gross consciousness through his gross body, so the initiate on the first plane begins to experience the subtle world with subtle consciousness through his subtle body.

If the initiate is able to proceed further and manages to maintain progress, he continues in the subtle sphere up to the fourth plane. This progress involves the second and third successive single seven-in-one achievements that parallel the sevenfold results achieved in the first. This passing through the second and third doors (represented by the right and left nostrils) brings a still greater intensification of the real illusion, i.e., higher consciousness of the path. After going through the second door, the initiate realizes even more the wonderful things of the subtle world and at the same time begins to run the risk of being lost in the maze of wonderment. The mystical enchantments of the path beyond the third door are still greater, and so also are the chances of becoming spellbound by them. Just as those with gross consciousness take the gross sphere and its illusory experiences to be real, so the pilgrims in the subtle sphere, while absorbed in the wonder of the plane on which they are, may mistake it for

इसलिये पथिक बहुधा किसी भूमिका पर, उसके आश्वर्यों में फँसकर भ्रमित हो जाने के कारण उसे लक्ष्य मानकर, अटर कर रह जाता है, जब तक कि कोई सद्गुरु अथवा मनो-चेतनामय आत्मायें ही उसकी सहायता करके उसे अगली भूमिका पर नहीं ठेल देते ।

चौथी सप्तमुखी सिद्धि दोहरी सिद्धि होती है क्योंकि उसमें उसी समय एकसाथ (१) चौथी और पाँचवीं गाँठें खुल जाती हैं, (२) चौथी और पाँचवीं परतों का लोप हो जाता है, (३) चौथी और पाँचवीं मुल इच्छायें नष्ट हो जाती हैं, (४) चौथे और पाँचवें गहरे, काले रंग समाप्त हो जाते हैं, (५) चौथे और पाँचवें सापेक्ष मूलभूत संस्कार मिट जाते प्रस्तुत होते हैं, (६) चौते और पाँचवें द्वार (जो दाहिने तथा बायें कानों द्वारा प्रस्तुत होते हैं) पार हो जाते हैं, और (७) पथिक प्राण भुवन की सर्वोच्च भूमिका, चौथी भूमिका, पर पहुँच जाता है ।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, चौथी भूमिका आध्यात्मिक विभव की तथा दैवी शक्तियों (**अनवर-ओ-तवल्लियत** अथवा **सिद्धियों**) की बूमिका है । इस भूमिका तक पहूँचे हुये पथिक, अन्य चमत्कार करने के साथ-साथ मुर्दे भी ज़िन्दी कर सकते हैं । वे इस शक्तियों का दुरुपयोग करने के बहुत भारी ख़तरे से गुज़रते हैं, और इस प्रवर अपने लिये विपत्ति बुलाते हैं, और केवल बहुत थोड़े से लोग ही इन भ्रमकारी शिखरों को सद्गुरु की सहायता के बिना स्वतरत्रतायूर्वक सही-सलामत प्रार कर सकते हैं । इन्हों के विषय में हाि. फज़ ने कहा है :

"दर आस्ताने जानां आसमां बिअन्दीश
कज़ औजे सर बुलन्दी उफ्ती बिखाके पस्ती ।"

"प्रियतम की देहली त्रर आसमानी प्रलोभनों से सावधान रहो, जिससे ऐसा न हो कि तुम उन्नति और महानता के शिखर से गिरकर अध:पतन और बर्बादी की तह पर पहूँच जाओ ।"

ऐसी सूरत में, मनुष्य न वेवल उस आध्यात्मिक उन्नति से वंचित हो जाता है जो उसको आध्यात्मिक मार्ग में प्राप्त हुई है, वरन् देह विकास के द्वारा उसने जो स्थिति प्राप्त कर ली है उससे गिरकर वह पत्थर योनि की अवस्था में पहूँच जाता है ।

जिस प्रकार रात के घोर अन्धकार में अज्ञान मार्ग पर यात्रा करते हुये मनुष्य के साथ कोई भी घटना हो सकती है, उसी प्रकार सद्गुरु के पथ प्रदर्शन के बिना चौथी भूमिका से गुज़रता हुआ मनुष्य

the ultimate Reality. Hence a pilgrim often gets stuck on a plane, deluded by its raptures into accepting it as the Goal, until a Perfect Master or even mental-conscious souls help him by pushing him on to the next plane.

The fourth seven-in-one achievement is a double achievement because at one and the same time (1) the fourth and fifth knots are unfastened, (2) the fourth and fifth folds disappear, (3) the fourth and fifth root desires are crushed, (4) the fourth and fifth deep, dark colours vanish, (5) the fourth and fifth relative fundamental impressions are wiped out, (6) the fourth and fifth doors (as represented by the right and left ears) are passed through, and (7) the pilgrim arrives on the highest plane of the subtle sphere, the fourth plane.

As said before, the fourth plane is the plane of spiritual splendour and of divine powers (*anwar-o-tajalliyat* or *siddhis*). Pilgrims advanced this far can, among many other things, even raise the dead. They run a very grave risk of misusing these powers, thereby inviting disaster, and only a very few can independently cross these dizzy heights safely without the aid of a Perfect Master. It is of them that Hafiz says:

Dar āsitān-i jānān āsmān biyandīsh
Kaz auj-i sar bulandī uftī bikhāk-i pastī. **should be italic**

"On the threshold of the Beloved, beware of the allurements of the heavens, lest you bring about your fall from the heights of progress and greatness to the depths of degradation and ruin."

In such case, a man is not only deprived of the spiritual progress he has made on the path, but is thrown back from the position that he had achieved through physiological evolution to the state of the stone-form.

Just as anything may happen to a man travelling over an unknown path in the pitch blackness of the night, so anything may happen to one who must pass through the fourth plane without the guiding hand of a

किसी भी घटना का शिकार हो सकता है । इसी कारण से, चौथी भूमिका के चौथियाने वावे सभी विभव एवं शक्ति के रहते हुये, चौथी भूमिका से गुज़रने की अवधि को ईसाई रहस्यवाद में "आत्मा की अँधेरी रात"‡ कहा गया है ।

यदि उन्नत पथिक "आत्मा की अँधेरी रात" के प्रवोभनों एवं विश्वासघातों का प्रतिरोध करने में किसी तरह से समर्थ होता है, तै वह मन भुवन (**मनो-भुवन** अथवा **आलम-ए-जबरूत**) में पाँचवीं तथा अन्तिम दहिरी सप्तमुखी सिद्धि के द्वारा प्रवेश करता है, जो उन्हों सदृशताओं सहित प्राप्त होती है जैसीकि चौथी सिद्धि में होती है । तब परदे की सब परतें तत्सम्बन्धी गाँठोंम इच्छाओं और सातवें द्वार (जो दाहिने और बायें नेत्रों द्वारा प्रस्तुत होते हैं) पार हो जाते हैं तथा ज्योति एवं प्रेम की पाँचवीं भूमिका प्राप्त हो जाती है ।

जो लगि पाँचवीं भूमिका पर सही-सलामत पहूँच जाते हैं वे **वली-अल्लाह** (जिसका शाब्दिक अर्थ होता है "ईश्वर के मित्र") कहलाते हैं उनकी अन्तर्दृष्टि, अथवा तीसरी आँख, अब पूर्णतया विकसित हो वाती हैम परन्तु यद्यपि परदे की बना रहता है । इसलिये पथिक अब भी ईश्वर के आमने-सामने नहीं होता और वह प्रियतम को नहीं देख पाता ।

ईश्वर के लिये अपने निर्मल प्रेम के कारण, जो मिथ्या अहं से मिश्रित नहीं होता, पाँचवीं भूमिका के इन पथिकों की स्थिति सुरक्षित

‡ आदयात्मिक मार्ग के पोथकों के लिये चौथी भूमिका की शक्तियाँ "दानव" के समान हैं जिसके विषय में आम लोगों का विश्वास है कि वह लोगों को राह से भइका देती हैं । "सद्गुरु" ज्ञानेश्वर की सामयिक सहायता के बिना, महान योगी चांग देव इसी भूमिका पर आपत्ति में फँस गये होते । इसी प्रकार से, जब बाबा फ़रीद गंजे-शकर इस भूमिका पर पहूँचे तो वह उड़ते हुये पक्षियों को पृथ्वी पर मरा हुआ गिराकर और फिर उन्हें पुनः जीवित करके अपनी शक्रियों का परीक्षण किये बिना न रह सके । उन्हें भी पाँचवीं भूमिका की एक वृद्ध सन्त महिला ने समय के अन्दर बचा लिया । इस घटना के बाद ही बाबा फ़रीद अपने सद्गुरु के निकट सम्पर्क में आये, जिन्होंने अन्त में बाबा फ़रीद को "कुतुबियत" प्राप्त करा दी (सद्गुरु बना दिया) ।

Perfect Master. That is why, for all its dazzling splendour and power, the period of going through the fourth plane is termed in Christian mysticism, "the dark night of the soul."*

If the advanced pilgrim is at all able to resist the allurements and treacheries of the dark night of the soul, he enters the mental sphere (*mano bhuvan* or the *alam-e-jabrut*) by the fifth and final double seven-in-one achievement which occurs on the same lines as the fourth. All the folds of the veil are removed together with the relative knots, desires, colours and impressions; the sixth and seventh doors (as represented by the right and left eyes) are crossed and the fifth plane of light and love is reached.

Those who have safely arrived on the fifth plane are the *wali Allah* (literally meaning "friends of God"). Their inner sight, or the third eye, is now fully developed, but even though all the seven folds of the veil have disappeared, the veil itself is still there. The pilgrim is therefore not yet face to face with God and cannot see the Beloved.

Because of their pure love for God, unadulterated by the false ego, the position of these pilgrims on the fifth plane is secure, and there is no

* For those on the Path the powers of the fourth plane are like the "Devil" who is popularly believed to lead people astray. But for the timely help of the Sadguru Dnyaneshwar, the great yogi Chang Deva would have come to grief on this very plane. Similarly, when Baba Farid Ganje-Shakar reached this stage he could not help testing his powers by making birds on the wing fall down dead and trying to raise them to life again. He, too, was saved in time by an aged woman who was a saint of the fifth plane. It was after this incident that Baba Farid came into close contact with his Master, who finally led him to *qutubiyat* or Perfect Masterhood.

होतौ है, और उनके अधःपतन की सम्भावना नहीं होती । अपने को कोई क्षति पहूँचाये बग़ैर, व स्तूल एवम् सूक्ष्म जगतों में दूसरी को, चेतनामय अथवा अचेतनतया, अमित सहायता दे सकते हैं और देते हैं ।

बिरले अपवादों को छड़िव अब अपनेआप और आगे बढ़ना असम्भव होता है । सद्गुरु कौ सहायता अथवा कृपा से पथिक परदे को पूर्णतया हटाने में और इस प्रकार छठवीं भूमिका पर पहूँचने में समर्थ होता है, जो मन भुवन की सर्वोच्च भूमिका है, "दिव्य दृष्टि" की भूमिका है, (मस्तक द्वारा प्रस्तुत किया गया) ईशवरत्त्व को पाने का प्रवेशद्वार है जहाँ मनुष्य ईश्वर ो आमने-सामने, सर्वत्र एवम् सर्वस्व में, यथार्थतया देखने में समर्थ होता है । यह दृष्टि द्वारा प्राप्त दृढ़ विश्वास कहलाता है ।

अन्न भुवन में स्थित जो लोग ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करने हैं उनका विश्वास (**यक़ीन**) उनकी निर्मल एवं सीधी-सादी श्रद्धा तथा आस्था पर अवलम्बित होता है । यह दृढ़ विश्वास **इल्म-उल-यक़ीन** (बौद्धिक दृढ़ विश्वास) है, और वह नीचे दिये गये स्पष्ट यक़ीनों से भिन्न होता है :

(१) सहज ज्ञान द्वारा प्राप्त विश्वास (**यक़ीन-उल-यक़ीन**);

(२) दृष्टि द्वारा प्राप्त विश्वास (**ऐन-उल-यक़ीन**);

(३) यथार्थ अनुभव द्वारा प्राप्त विश्वास (**हक़-उल-यक़ीन**) ।[१६]

आध्यात्मिक मार्ग के पथिक, ऊपर पाँचवीं भूमिका के अन्त तक, एक निश्चित नैसर्गिक निश्चत (**यक़ीन-उल-यक़ीन**) के साथ **जानते हैं** कि ईश्वर है; उनका विश्वास निश्चित ज्ञान पर अवलम्बित होता है । छठवीं भूमिका के पथिक ईश्वर को सर्व्त्र देखते हैं; उनका यक़ीन यथार्थ दृष्टि द्वारा प्राप्त होता है । सातवीं भूमिका के लोगों का विश्वास, उनके ईश्वर में समाकर एक हो जाने के कारण, यथार्थ अनुभव से प्राप्त होता है ।

छठवीं भूमिका का अति उन्नत पथिक अब भी दुई के प्रदेश के अन्तर्गत होता है । यद्यपि वह ईश्वर के आमने-सामने होता है, तथापि एक गहरी, अगाध घाटी "दृष्टा" और "दृश्य" को अलग-अलग किये रहती है जो केवल सद्गुरु के स्पर्श से ही पार की जो सकती है । जबकि प्रथम पाँच सिद्धियों की प्राप्ति मनुष्य के लिये स्वतन्त्ररूप से सम्बव है, पाँचवीं बूमिका पर परदा सामान्यतः सद्गुरु के पथप्रदर्शन की कृपा से

possibility of retrogression. Without any harm to themselves they can and do give, consciously or unconsciously, immense help to others in the subtle and gross spheres.

With rare exceptions further progress on one's own is now impossible. By the help or grace of a Perfect Master one is able to remove the veil entirely and thereby arrive on the sixth plane, the highest plane of the mental sphere, the plane of "divine sight," the entrance to divinity (as represented by the forehead) where one is able actually to see God face to face, everywhere and in everything. This is known as conviction by sight.

Those on the gross sphere who believe in the existence of God have their conviction (*yaqin*) based on their pure and simple faith and belief. This conviction is *ilmul-yaqin* (intellectual conviction), and is different from the distinctive convictions that follow:

(1) conviction by intuitive perception (*yaqin-ul-yaqin*);

(2) conviction by sight (*ain-ul-yaqin*);

(3) conviction by actual experience (*Haqq-ul-yaqin*).[16]

Those on the path, up through the fifth plane, know there is God, with a definite intuitive certainty (*yaqin-ul-yaqin*); their conviction is based on sure knowledge. Those on the sixth plane see God everywhere; theirs is conviction by actual sight. Those on the seventh plane, having become one with God, have conviction by actual experience.

The highly advanced pilgrim on the sixth plane is still within the domain of duality. Although face to face with God, the "see-er" and the "seen" remain separated by a deep, fathomless valley which can be spanned only by the touch of a Perfect Master. Whereas the first five achievements are possible for man to obtain independently, the actual removal of the veil on the fifth plane is usually accomplished by the grace of a Perfect Master's guidance. The **jump** from illusion of the sixth plane

यथार्थतः हटता है । फिर भी, छठवीं भूमिका की माया से सातवीं बूमिका की सत्यता तक की छलाँग पथिक के खुद के प्रयास असम्भव है और वह पूर्ण पुरुष सद्गुरु के सीधे स्पर्श पर **पूर्णतया** निर्भर होती है ।

सातवीं भूमिका पर, जो अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति एवं अनन्त आनन्द की भूमिका है, मनुष्य ईश्वरर में समा जाता है और ईश्वर बन जाता है, सदैव के लिये और सदैव से परे पूर्ण पुरुष बन जाता है । तब भौतिक शरीर के बने रहने अथवा छूट जाने का महन्व नहीं होता । नियमानुसार, साक्षात्कार होने के पश्चात् थोड़े समय में स्थूल शरीर छूट जाता है, परन्तु कुछ दशाओं में भौतिक शरीर बहुत समय तक बना रहता है । ये ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त पुरुष मजज़ूब अथवा ब्रह्मी-भूत कहलाते हैं ।

प्रुनः, केवल सद्गुरु की सीधी तथा व्यक्तिगत सहायता से ही उन ईश्वर-पाप्त प्ररुषों में से कोई एक साधारण मनुष्य के स्तर पर वापित आता है, जिसे सभी भुवनों (अन्न, प्राण और मन भुवनों) की चेतना पुनः प्राप्त होती है और फिर भी साथ-साथ उसमें पूर्ण ईश-चेतना बनी रहती है । तब वह नर-हरि, पूर्ण पुरुष, सद्गुरु अथवा कुतुब होता है ।

जहाँ प्रकाश है, वहाँ अन्धकार नहीं रहता । जहाँ ज्ञान है, वहाँ अज्ञानता नहीं होती । और, चूँकि परतें, परदा तथा पृथक्ता की घाटी सब अज्ञानता के पदेश में होते हैं, इसलिये सद्गुरु—जो सर्व ज्ञान का "सूर्य" होता है—अपनी मरज़ी के अनुसार किसी को भी एक निमेष में ईश्वर-साक्षात्कार प्रदान कर सकता है ।†

एकमेव ईश्वर सत्य है, और चूँकि हम शाश्वतः दैवी प्रियतम में स्थित हैं, हम सब एक हैं ।

(८६)

† [इसे भी देखिये : मेहेरबाबा, 'दि फ़ेब्रिक आफ़ दि यूनीवर्स' "बीम्स फ़्राम मेहेरबाबा आन दि स्प्रिचुअल पनोरमा", पृष्ठ १३-१५ ।

और यह भी देखिये : मेहेरबाबा, 'दि वेज़ टू दि पाथ ऐण्ड इट्स स्टेट्स ऐण्ड स्टेजेज़', "लिसिन, ह्यूमैनिटी", पृष्ठ १६०-१६२, डी॰ ई॰ स्टीवेन्स (न्यूयीर्क : डाड, मीड ऐण्ड कम्पनी, १९५७) द्वारा वर्णित और सम्पादित ।

—सम्पादक]

to Reality on the seventh plane is, however, impossible on one's own and **entirely** dependent upon the direct touch of a Perfect One or a Perfect Master (*Sadguru*).

On the seventh plane, the plane of infinite knowledge, power and bliss, the individual merges into God and **becomes** God, a Perfect One for all time and beyond all time. It is then immaterial whether the physical body remains or drops. As a rule, the gross shell falls within a short time after realization, but in some cases the physical body holds on for a long time. These God-realized Ones are known as Majzoobs or *Brahmi Bhoots*.

Again, only by the direct and personal help of a Perfect Master does one from among those God-realized Ones return to the level of ordinary man, regaining consciousness of all the spheres (gross, subtle and mental) yet retaining at the same time full God-consciousness. He is then the Man-God, the Perfect Master, Sadguru or Qutub.

Where there is light, darkness is no more. Where there is Knowledge, ignorance is absent. And, as the folds, the veil and the valley of separation are all in the domain of ignorance, a Perfect Master—who is the "Sun" of all Knowledge—can, in the twinkling of an eye, impart God-realization to anyone he chooses.*

God alone is real, and as we are permanently lodged in the Divine Beloved, we are all one.

* [See also Meher Baba, "The Fabric of the Universe," *Beams from Meher Baba on the Spiritual Panorama*, 13–15.

And also see Meher Baba, "The Ways to the Path and Its States and Stages," *Listen, Humanity*, narr. and ed. D. E. Stevens (St. Helier, Jersey, Channel Islands: Companion Books, 1989), 160–162. Ed.] **GS 1987**

And also see Meher Baba, "The Ways to the Path and Its States and Stages," *Listen, Humanity*, narr. and ed. D. E. Stevens (New York: Dodd, Mead and Company, 1957), pp. 160–162. Ed.] **GS 1967**

भाग ८

परमात्मा की परात्पर परब्रह्म अवस्था, मूल लहर और चेतना के विकास एवं प्रतिवर्धन का चक्र

ईश्वर की परात्पर परब्रह्म अवस्था

आदि काल के परे से प्रारम्भ करते हुये, परमात्मा की परे-अति-परे अवस्था **परात्पर परब्रह्म**, की मूल अवस्था होती है । यह "ईश्वर-है" की मूल अवस्था है । सूफ़ी मत की भाषा में यह अवस्था "**वरा-उल-वरा**" की अवस्था कहलाती है ।

"**ईश्वर-है**" की इस मूल अवस्था में अपरिमित परम शून्यता रहती है ।

इस परम शून्यता में न तो ईश्वर की चेतन अथवा अचेतन अवस्था का कोई आविर्भाव होता है और न ईश्वर की चेतना अथवा अचेतना का आविर्भाव होता है । उसमें न तो असीमित "मैं"—दैवी अहं अथवा व्यापक अहं—होता है, और न सीमित "मैं" अथवा व्यक्तिगत अहं होता है । उसमें न व्यापक मन होता है और न सीमित मन होता है । उसमें न तो अपार प्राणशक्ति होती है और न परिमित प्राणशक्ति होती है । उसमें न तो विराट् शरीर—**महाकारण शरीर**—होता है और न परिमित शरीर होता है । उसमें न तो जगत होते हैं और न भुवन होते हैं । उसमें न तो चेतना—**महाचैतन्य**—का अथवा अचेतना का भान रहता है ।

यह अवस्था पूर्णतया **ईश्वर की मूल अपार पूर्ण शून्यता की अवस्था** है—ईश्वर की न **निर्गुण-निराकार** अवस्था और न **सगुण-साकार** अवस्थायें हैं—जहाँ "ईश्वर-है" और "चेतना नहीं- है" ।

PART 8

The Beyond the Beyond State of God, the First Urge and the Cycle of Evolution and Involution of Consciousness

The Beyond the Beyond State of God

To begin with the beyond the beginning, there is the original state of the Beyond the Beyond state of God or *Paratpar Parabrahma*. This is the original state of "God-Is." In Sufi terms this state is said to be the state of *Wara-ul-Wara*.

In this original state of "God-Is" unbounded absolute vacuum prevails.

In this absolute vacuum there is neither any manifestation of the conscious or unconscious state of God nor is there manifestation of the consciousness or unconsciousness of God. Neither is there the unlimited "I"—the Divine Ego or the Universal Ego—nor is there the limited "I" or the individual ego. Neither is there universal mind nor is there limited mind. Neither is there unbounded energy nor is there limited energy. Neither is there the universal body—the *mahakarana sharir*—nor is there the limited body. Neither are there universes nor are there worlds. There is not even consciousness of either the consciousness—mahachaitanya—or of the unconsciousness.

This state is absolutely the **original unbounded absolute vacuum state of God**—neither the *nirguna-nirakar*, nor the *saguna-sakar* states of God—where "God-Is" and "consciousness is-not."

जब कहा जाता है, "ईश्वर-है", तो इस कथन से उस अवस्था का वर्णन होता है जो सृष्टि के आदि के आदि परे व्याप्त रहती है ।

"ईश्वर-है" की यह अवस्था परात्पर अवस्था में "ईश्वर की मूल दैवी गहरी निद्रा अवस्था" भी कहलाती है ।

ईश्वर-है अवस्था अपारता की अवस्था है । अपारता अनन्त होने के अधिकार के कारण सबकुछ है । अर्थात्, "**सबकुछ**" अपारता का मूल स्वभाव है ।

सबकुछ में सब कुछ होने का गुण होने के कारण, उसके अन्तर्गत "**कुछनहीं**" भी होता है, अन्यथा "सबकुछ" का अर्थ सब कुछ कदापि नहीं हो सकता । यह कुछनहीं (*nothing*) सबकुछ में **अन्तर्हित** होता है । किन्तु कुछनहीं, यथार्थतः कुछ न होने के कारण, कुछ न होने का स्वयं अस्तित्व ही बिल्कुल कुछ नहीं है ।

चूँकि यह कुछनहीं सबकुछ में अन्तर्हित है, इसलिये कुछनहीं का कुछनहींपन सबकुछ के अन्तर्गत अदृश्य रूप में दृढ़ता से चिपटा है ।

इस प्रकार, ईश्वर-है अवस्था की अपारता में वह सबकुछ जो अनन्तता की प्रकृति में, जो सबकुछ है, अन्तर्निहित है, कुछनहीं है । इसलिये जो चीज़ भी सबकुछ में अन्तर्हित है वह कुछनहीं की है ।

संक्षेप में, अपारता की अनन्तता के अतिरिक्त, सभी चीज़ें सबकुछ की ईश्वर-है अवस्था में अन्तर्हित होती हैं; और वह सबकुछ जो अन्तर्हित है अपने शून्यतावत् पहलुओं के सहित शून्यता का है ।

"ईश्वर-है" अवस्था में, जहाँ कुछनहीं अन्तर्हित है, आपहीआप शून्यता (*nothingness*) के मूल स्वभाव से, चेतना का अस्तित्व भी शून्यवत् होता है । इसी अनुसार ईश्वर की परात्पर परब्रह्म अवस्था में, चेतना ईश्वर में सदैव और सदैव अन्तर्हित होती है जो (ईश्वर) अपने मूल स्वभाव से सबकुछ है—अपरिमित एवम् असीमित और अपार है । इस प्रकार आपहीआप, सबकुछ होने के अपने मूल स्वभाव से ही, ईश्वर-है अवस्था में ईश्वर अपने अन्तर्गत सदैव और सदैव अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द रखता है और वह सब कुछ रखता है जो अपारतया तेजोमय अथवा सुन्दार होता है ।

चूँकि ईश्वर सबकुछ है और अनन्त है, इसलिये सबकुछ के विलोम को, जो शून्य है, अत्यन्त परिमित होता चाहिये ।

(८८)

When it is said, "God-Is," it describes the state which prevails beyond the beginning of the beginning of Creation.

This state of God-Is is also called the "original divine sound sleep state of God" in the Beyond the Beyond state.

The God-Is state is the state of infinitude. Infinitude by virtue of being infinite is everything. That is, "EVERYTHING" is the nature of infinitude.

EVERYTHING by virtue of being everything embodies even "NOTHING," or else Everything can never mean everything. This Nothing is **latent** in the Everything. But Nothing, being literally nothing, the very being of being nothing is nothing at all.

As this Nothing is latent in the Everything, the Nothingness of the Nothing is embedded in the Everything as the Latency.

Thus, in the infinitude of the God-Is state all that is latent in the nature of Infinity, which is Everything, is the Nothing. Therefore anything that is latent in Everything is of the Nothing.

In short, except for the infinity of the infinitude, all things are latent in the God-Is state of Everything; and all that is latent is of the Nothing with all its aspects as Nothingness.

In the God-Is state where the Nothing is latent, automatically by the nature of nothingness, consciousness also exists as Nothing. Accordingly consciousness in the Beyond the Beyond state of God is ever and ever latent in God Who is by nature the Everything—infinite and unlimited and unbounded. Thus automatically, by His very nature of being the Everything, God in the God-Is state has in Him ever and ever infinite power, infinite knowledge, infinite bliss and all that is infinitely glorious or beautiful.

Because God is the Everything and the infinite, the opposite of the Everything, which is the Nothing, must be most finite.

इसलिये शून्य ईश्वर-है अवस्था में अत्यन्त परिमित रूप में अन्तर्हित है; अथवा, ईस्वर की अपार अवस्था में जोकि सबकुछ है, शून्य की अत्यन्त परिमित अवस्था अन्तर्हित है ।

यह निपट स्वाभाविक है कि जब इस अन्तर्हित एवं अत्यन्त परिमित शून्य का आविर्भाव होता है, तो वह आविर्भाव अत्यन्त परिमित रूप में होता चाहिये ।

परन्तु यह एक अत्यन्त असत्य भासित होने वाला तथ्य है कि जब यह अत्यन्त परिमित शून्य अभिव्यक्त होता है, तो इसका आविर्भाव क्रमशः **अनन्त विस्तार** तक फैलता है ।

जो चीज़ इस अत्यन्त परिमित शून्य को अनन्तता प्रदान करती है वह स्वयं ईश्वर की अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान एवं अनन्त आनन्द की अन्तर्हित त्रि-प्रकृति है जो, ईश्वर का मूल स्वभाव होने के गुण के कारण, स्पष्टतया "ईश्वर-है" अवस्था की अनन्तता में अप्रकटरूप से व्याप्त रहती है । स्वाभाविकतया, यह अनन्त त्रि-प्रकृति भी सबकुछ की अनन्तता में अन्तर्हित होने के समय इस अत्यन्त परिमित शून्य को भी ढाँके रहती है ।

"ॐ" बिन्दु

इसलिये, जब इस अत्यन्त परिमित **शून्य** का आविर्भाव **शून्यता** के रूप में होता है, तो अत्यन्त परिमित **शून्य** का आविर्भाव साथ-साथ ईश्वर की अन्तर्हित सर्वव्यापक अनन्त त्रि-प्रकृति के उभार (*projection*) से घनिष्ठतया सम्बद्ध, एवं उसके द्वारा विस्तारित होने से, क्रमशः **अनन्तरूप** से फैलता है और प्रत्यक्षरूप से अनन्त **शून्यता** अथवा **सृष्टि** के रूप में अभिव्यक्त होता है; और इसलिये **शून्यता** के जगत को, जो मायावी है, ईश्वर की "छाया" कहा जा सकता है और, ईश्वर के अनन्त होने के कारण, उसको छाया भी अनन्त है ।* (८९)

* सम्पूर्ण सृष्टि का आविर्भाव शून्य से हुआ है । शून्य के बाहर दो चीज़ें निकली हैं, विकास और उत्पत्ति । शून्य के बाहर, गैस की सात अवस्थाओं का आविर्भाव हुआ । सातवीं विकसित अवस्था हाइड्रोजन है । इस सातवीं गैस-जैसी अवस्था से विकास और उत्पत्ति का अस्तित्व हुआ ।

सृष्टि का समाधान विकास से किया जा सकता है क्योंकि सबकुछ सात स्थितियों में है; उत्पत्ति की सात स्थितियाँ, विकास की सात स्थितियाँ में है; उत्पत्ति की सात स्थितियाँ, विकास की सात स्थितियों, और प्रतिवर्धन की सात स्थितियाँ । इसलिये, ऐसा कहा जाता है कि ईश्वर ने विश्व की रचना सात दिनों में की । शून्य से, अत्यन्त सीमित छाया और अनन्त छाया का आविर्भाव एकसाथ हुआ ।

Therefore the Nothing is latent in the God-Is state as the most finite; or, in the infinite state of God which is the Everything there is latent the most finite state of the Nothing.

It is only natural that when this latent and most finite Nothing manifests, it ought to manifest as most finite.

But it is a most paradoxical fact that when this most finite Nothing manifests, its manifestation gradually expands ad infinitum.

The thing that gives infinity to this most finite Nothing is God's own latent trio-nature of infinite power, infinite knowledge and infinite bliss which, by virtue of being the nature of God, obviously pervades the infinitude of the God-Is state latently. Naturally, this infinite trio-nature also envelops this most finite Nothing when latent in the infinity of the Everything.

"*Om*" **Point**

Therefore, when this most finite Nothing becomes manifested as Nothingness, the manifestation of the most finite Nothing closely linked with, and stretched forth by, the simultaneous projection of the latent all-pervading infinite trio-nature of God, gradually expands ad infinitum and gets apparently manifested as infinite Nothingness or the Creation; and hence the universe of Nothingness which is illusory can be called God's **"shadow"** and, God being infinite, His shadow is also infinite.*

* The whole Creation has come out of the Nothing. Out of the Nothing two things have emerged, evolution and production. Out of the Nothing, seven states of gas came into being. The seventh evolved state is hydrogen. Out of this seventh gaseous state evolution and production came into being.

Creation can be reconciled with evolution because all is in seven stages: seven stages of production, seven stages of evolution, and seven stages of involution. So, it is said that God created the universe in seven days. From the Nothing, most finite shadow and infinite shadow emerged simultaneously.

आविर्भाव के समय, **शून्य**, जो अत्यन्त प्ररिमित तथा **सबकुछ** में अन्तर्हित है, **सबकुछ** के अन्तर्गत एक अत्यन्त परिमित बिन्दु से बाहर निकलता है जहाँ **शून्य** अत्यन्त परिमित रूप में सन्निहित (*embodied*) होता है ।

अत्यन्त परिमित बिन्दु, जहाँ से **शून्य शून्यता** के रूप में बाहर निकलता है, **सृष्टि बिन्दु** अथवा, "**ॐ**" **बिन्दु** कहलाता है । यह सृष्टि बिन्दु भी स्वाभाविकतया **सबकुछ** के अन्तर्गत होता है, जिसका अर्थ है कि ईश्वर की **परात्पर परब्रह्म** अवस्था के अन्तर्गत होता है ।

इसलिये अत्यन्त परिमित **शून्य** "**ईश्वर-है**" अवस्था की अनन्तता की अपरिमितता के अन्तर्गत, अत्यन्त परिमित "सृष्टि बिन्दु" से होकर अनन्त **सबकुछ** के बाहर **सृष्टि** के रूप में निकलता है ।

संक्षेप में, जब अत्यन्त परिमित **शून्य** ईश्वर की अनन्त त्रि-प्रकृति से व्याप्त अनन्तता के अन्तर्गत स्थित अत्यन्त परिमित सृष्टि बिन्दु से होकर **शून्यता** के रूप में अभिव्यक्त होता है, तो (ईशवर की सर्वव्यापक अनन्त त्रि-प्रकृति से छनिष्ठतया सम्भद्ध एवं परिपुष्ट) अत्यन्त परिमित **शून्यता** का आविर्भाव क्रमशः **अनन्तरूप** से फैलता है और प्रत्यक्षतया अनन्त **शून्यता** के रूप में अथवा अनन्त **सृष्टि** के रूप में प्रकट होता है ।

मौज (*Whim*) अथवा लहर

वह कारण, जिससे अनन्त सबकुछ में अन्तर्निहित, अत्यन्त परिमित **शून्य** का आविर्भाव अनन्त **शून्यता** के रूप में हुआ, **मूल** कारण है और वह "कारण" (*cause,* हेतु) कहलाता है ।

यह **हेतु** ईश्वर की "मौज" अथवा "**लहर**" ही है । इस मूल लहर को ईश्वर द्वारा मुखरित प्रथम "**शब्द**" (*word*)—"मैं कौन हूँ ?" भी कह सकते हैं ।

ईश्वर-है अवस्था की अनन्तता ने ईस्वर को पूर्णरूपेण स्वाधीन बनाया; और पूर्णरूपेण स्वाधीन होने के गुण के कारण ईश्वर को **अपनी ही** अनन्तता का अनुभव एवं उपभोग करने के लिये अपनी अनन्त मौज का प्रयोग करना बिल्कुल स्वाभाविक है । मौज का प्रयोग करना सदैव एक स्वाधीन प्रकृति का लक्षण है, क्योंकि स्वाधीन प्रकृति सदैव मनमौज से रन्जित होती है ।

मूल अनन्त लहर ही **शून्य** के अन्तर्हित-सकल को **शून्यता** के रूप में प्रकट होने के लिये **हेतु** प्रदान करने की ज़िम्मेदार है ।

किन्तु, इसके पूर्व कि ईश्वर ने उस अनतर्हित सकल को जोकि

When it manifests, the Nothing, which is most finite and latent in the Everything, projects out from a most finite point in the Everything where the Nothing as most finite is embodied.

The most finite point from where the Nothing projects out as Nothingness is called the **Creation Point** or the *Om* **Point**. This creation point is naturally also in the Everything, which means in God in the Beyond the Beyond state.

So the most finite Nothing projects as the Creation out of the infinite Everything through the most finite "creation point," into the infinity of the infinitude of the God-Is state.

In short, when the most finite Nothing gets projected as Nothingness through the most finite creation point, which is also in the infinity pervaded by the infinite trio-nature of God, the projection of the most finite Nothingness—closely linked with and upheld by the all-pervading infinite trio-nature of God—gradually expands ad infinitum and manifests apparently as infinite Nothingness or as infinite Creation.

The Whim or *Lahar*

The cause which led the most finite Nothing, latent in the infinite Everything, to manifest itself as infinite Nothingness, is the original cause called the "CAUSE."

This Cause is just nothing but the WHIM or lahar of God. This original whim can also be called the first "WORD" uttered by God—"WHO AM I?"

The infinitude of the God-Is state made God absolutely independent, and by virtue of being absolutely independent it is but natural for God to exercise His infinite whim to experience and enjoy His own infinity. To exercise a whim is always the mark of an independent nature, because it is whimsicality that always colours the independent nature.

It is the original infinite whim which is responsible for giving Cause to the latent-all that was of the Nothing to manifest as Nothingness.

But before God exercised His original infinite whim to make manifest the latent-all that was of the Nothing, this whim of God was itself

मूल लहर

चार्ट २

परात्पर परब्रह्म-परमात्मा

"है" अवस्था

आत्म की और माया की चेतना से रहित

परब्रह्म-परमात्मा

आत्म की और तीन अनन्त पहलुओं की चेतना से युक्त

किन्तु

माया की चेतना से रहित

(कोई खाका अथवा ढाँचा नहीं)

क्योंकि केवल "ऐक्य" है

ईश्वर

कर्त्ता-भर्त्ता-हर्त्ता

माया की चेतना से युक्त

"आत्म" की चेतना से रहित

I L L U S I O N

मा या

वही खाका और ढाँचा किन्तु पदर्शन के असंख्य और विविध रूप

= मूल लहर उठी और ईश्वर कर्त्ता,

भर्त्ता और हर्त्ता के रूप में अपने साजोसामान सहित प्रगट हुआ

कर्त्ता खुद सृजित होता है
भर्त्ता खुद पोषित होता है
हर्त्ता खुद नष्ट होता है

THE ORIGINAL WHIM

CHART II

Beyond Beyond-God

"IS" State

Unconscious of Self and of Illusion

Beyond-God

Conscious of Self and Three Infinite Aspects

but

Unconscious of Illusion

(no pattern or design)

since there is only

"ONENESS"

GOD

Creator—Preserver—Destroyer

conscious of illusion

unconscious of "SELF"

I L L U S I O N

same pattern and design but innumerable and varied forms of display

= Original Whim surged and **GOD** as Creator,

Preserver and Destroyer Manifested with His paraphernalia.

Creator is Himself Created
Preserver is Himself Preserved
Destroyer is Himself Destroyed

blank page

blank page

शून्य का था अभिव्यक्त करने के लिये अपनी मूल अनन्त लहर का प्रयोग किया, ईश्वर की स्वयं यह लहर ही **ईश्वर-है** अवस्था में स्थित पूर्णरूपेण स्वाधीन ईश्वर की अनन्तता के सबकुछ के अन्तर्गत **शून्य** के रूप में अन्तर्हित थी ।

तब अन्तर्हित मूल अनन्त मौज का ईश्वर में उठना और अपने-आपको तथा उस अन्तर्हित सकल को जो **शून्य** का है **शून्यता** के रूप में अभिव्यक्त करना, अन्तर्हित मूल अनन्त के लिये किस प्रकार सम्भव है ?

यह सब होते हुये, मौज मौज ही है; और, अपने मूल स्वभाव से ही, यह ऐसी होती है कि "क्यों—किसलिये—कब" के लिये कोई स्थान इसकी प्रकृति में नहीं होता । मौज किसी क्षण आ सकती है; वह अभी आ सकती है अथवा कुछ महीनों बाद या वर्षों बाद आ सकती है, और यह भी हो सकता है कि वह बिल्कुल न आवे ।

इसी प्रकार से, मूल अनन्त वहर आख़िरकार एक लहर है, और इस पर भी वह **अपारता** की अवस्था में स्थित ईश्वर की लहर है ! यह हो सकता है कि यह मौज ईशवर में बिल्कुल न उठे; और, यदि वह उठती है, किसी भी क्षण अथवा हज़ारों वर्षों बाद अथवा लाखों कालचक्रों के बाद, तो उससे हमें कोई आश्चर्य न होना चाहिये ।

इस प्रकार से ही, अनन्तता की अवस्था में मग्न ईश्वर की मूल अनन्त लहर **एक समय उठ पड़ी;** और वह पूर्णरूपेण स्वाधीन ईश्वर के अन्तर्गत, जो शाश्वतः **शाश्वत** है, स्वतः प्रवर्तित और बिल्कुल अचानक पैदा हो गई । इसलिये इस लहर ने, जो एकबार उठ पड़ी थी, एकबार सृष्टि में सब चीज़ें के **आदि** का आरम्भ कर दिया ।

संक्षेप में, अनन्तता की अवस्था में निमग्न ईश्वर की इस मूल अनन्त अन्तर्हित लहर ने, पूर्णरूपेण स्वाधीन ईश्वर में एक बार उठ पड़ने पर, अपनेआप को अभिव्यक्त किया, और अपनी अभिव्यक्त के साथ-साथ उस अन्तर्हित सकल को जो **शून्य** का था **शून्यता** के रूप में प्रकट किया । इस प्रकार लहर ने **शून्य** की उत्पत्ति कर दी ।

अब हम संक्षिप्तरूप में वर्णन करेंगे कि अनन्त **शून्य** अत्यन्त परिमित **सबकुछ** से कैसे पैदा हुआ :

परब्रह्म अवस्था में ईश्वर अनन्त **सबकुछ** है । अनन्त **सबकुछ** की तुलना अनन्त, सीमारहित महासागर से की जा सकती है । इसलिये यह सीमारहित महासागर अनन्त **सबकुछ** है । इस प्रकार महासागर के अन्दर

latent as the Nothing in the Everything of the infinitude of absolutely independent God in the God-Is state.

How is it then possible for the latent original infinite whim to surge in God and make manifest itself and all that is latent of the Nothing as Nothingness?

Whim after all is a whim; and, by its very nature, it is such that "why—wherefore—when" can find no place in its nature. A whim may come at any moment; it may come now or after a few months or after years, and it may not come at all.

Similarly, the original infinite whim, after all, is a whim, and too, it is the whim of God in the state of infinitude! This whim may not surge in God at all; and, if it surges, either at any moment or after thousands of years or after a million cycles, it need not be surprising.

Thus it is, that the original infinite whim of God in the state of infinitude **once surged;** and it surged both spontaneously and all of a sudden in absolutely independent God Who is eternally Eternal. Hence this whim, which once surged, once began the Beginning of all things in Creation.

In short, this original infinite latent whim of God in the state of infinitude, once it surged in God Who is absolutely independent, made itself manifest, and simultaneously with its manifestation, it manifested the latent-all that was of the Nothing as Nothingness. Thus the whim created the Nothing.

Let us recapitulate how infinite Nothing came out of most finite Everything:

God Beyond is infinite Everything. Infinite Everything may be compared to an infinite, limitless ocean. Therefore this limitless ocean is

प्रत्येक बिन्दु अत्यन्त परिमित **सबकुछ** है । संक्षेप में, यदि अनन्त महासागर अनन्त **सबकुछ** है तब महासागर की प्रत्येक बूँद अत्यन्त परिमित **सबकुछ** है ।

सीमारहित महासागर में लहर उठने से पहले तथा **सृष्टि** का आविर्भाव होने से पहले, सृष्टि बिन्दु (ॐ बिन्दु) जिससे होकर **सृष्टि** का उभार होता है स्वयं ही सीमारहित महासागर में अनन्त **सबकुछ** के रूप में होता है क्योंकि लहर के उठने के पूर्व, पूर्ण शान्ति छाई थी और सीमारहित महासागर में व्याप्त थी; तब महासागर की "बूँदों" का कोई प्रश्न न था और कोई पृथक्ता न थी । तब सीमारहित महासागर अनन्त **सबकुछ** के रूप में था ।

उस क्षण जबकि अनन्त **सबकुछ** में लहर उठी सृष्टि अथवा ॐ बिन्दु अत्यन्त परिमित **सबकुछ** के रूप में प्रकट हुआ ।

अनन्त **शून्य** अनन्त **सबकुछ** में अनतर्हित था, किन्तु जब लहर उठी तब अनन्त **शून्य** अत्यन्त परिमित **सबकुछ** से होकर, जोकि ॐ बिन्दु है, प्रकट हो गया ।

इस प्रकार, **अत्यन्त परिमित सबकुछ** से होकर, अनन्त शून्य का उद् भव क्रमशः होता है, जो अनन्त विस्तार के साथ फैलता हुआ अपने को प्रकट करता है ।

अन्तर्हित **शून्य** के उद्भव के साथ-साथ और **शून्यता** की अभिव्यक्ति के साथ, चेतना भी, जिसका अस्तित्व **शून्य** के रूप में था, और **ईश्वर-है** अवस्था की अनन्तता में अन्तर्हित था, उद्भूत हुई और उसने अपनेआपको क्रमशः ईश्वर की चेतना के रूप में प्रकट किया, जिससे ईश्वर ने अपनेआप को सकल चीज़ें के विधाता के रूप में अनुभव किया जो उसकी सबकुछ की अवस्था से **शून्यता** के रूप में उद्भूत हुईं ।

इसके बाद, क्रमशः पूर्ण चेतना प्राप्त करते हुये, विधाता की अवस्था में स्थित ईश्वर अत्यन्त-परिमित **शून्यता** की भूलभुलैयों में फँस गया और उसने अपनेआप को अपार, प्रसारित तथा खुद अपनी ही अनन्त त्रि-प्रकृति के द्वारा स्थापित पाया ।

असत्याभासपूर्ण व्याजोक्ति यह है कि ईश्वर की स्वयं अनन्तता के कारण, ईश्वर को **शून्यता** की मिथ्या प्रत्यक्ष अपारता से बचना कठिन हो जाता है, जो **शून्यता** अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द स्वरूप ईश्वर की घनिष्ठतया सम्बद्ध अनन्त त्रि-प्रकृति के **अनन्तरूप**

infinite Everything. Thus every drop in the ocean is most-finite Everything. In short, if infinite ocean is infinite Everything then every drop of the ocean is most finite Everything.

Before the whim surges in the limitless ocean and before Creation is manifested, the creation point (Om point) through which the Creation is ejected is itself in the limitless ocean as infinite Everything because, prior to the surging of the whim, perfect tranquility prevailed and pervaded the limitless ocean; there was no question of "drops" of the ocean and there was no separateness. There was limitless ocean as infinite Everything.

At the instant when the whim surged in the infinite Everything the creation point or Om point manifested as most finite Everything.

Infinite Nothing was latent in the infinite Everything, but when the whim surged the infinite Nothing got manifested through most finite Everything, which is the Om point.

Thus, through the **most finite** Everything, the infinite Nothing is ejected gradually, manifesting itself as expanding ad infinitum.

Simultaneously with the projection of the latent Nothing and with the manifestation of Nothingness, the consciousness which existed as Nothing, latent in the infinitude of the God-Is state, also got projected and manifested itself gradually as the consciousness of God, and made God experience Himself as God the Creator of all the things that projected out of His state of the Everything as Nothingness.

Whereupon, gradually gaining full consciousness, God in the state of Creator became entangled in the maze of most-finite Nothingness found as infinite, stretched out and upheld through His own infinite trio-nature.

The paradoxical irony is that the infinity itself of God makes it infinitely difficult for God to escape the false apparent infinity of Nothingness which goes on expanding ad infinitum through the closely

से फैलती जाती है ।[१७]

किन्तु यह गुन्थन निपट आवश्यक होता है जिससे **ईश्वर-है** अवस्था की अपारता में स्थित ईश्वर को अपनेआप के लिये तथा अपनी अनन्त सत्यता की परिपूर्ण एवं सम्पन्न चेतना प्राप्त हो जावे, और इस रीति से वह चेतनतया अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द की अपनी अपार, असीमित, अनन्त त्रि-प्रकृति का अनुभव करे ।

मूलभूत सत्य यह है कि एकबार पूर्ण चेतना प्राप्त हो जाने पर उसका ह्रास कभी नहीं हो सकता । वह स?तत क़ायम रहती है, चाहे वह पूर्णतया प्राप्त हुई चेतना सत्यवत् अनुभव किये गये मिथ्या **शून्यथा** की चेतना हो, अथवा वह चेतना **स्वयं सत्यता** की चेतना हो ।

अन्ततः वही चेतना पूर्ण परिपक्वता प्राप्त कर चुकने पर ईश्वर को उसकी ही सत्यता का अनुभव कराती है । सत्यता की अनुभूति करने के लिये चेतना केवल तभी पूर्णतया परिपक्व होती है जबकि उसका पोषण मिथ्या के प्रत्यक्ष भान द्वारा हो चुकता है । यथार्थता के रूप में मिथ्या का यह भान चेतना के विकास के दौरान में इतना प्रचण्ड हो जाता है कि मिथ्या भान में डूबी हुई चेतना ईश्वर को केवल मिथ्या का भान कराती है, जिसे ईश्वर यथार्थवत् अनुभव करता है । अर्थात्, **विधातावत् ईश्वर शून्य** के आविर्भाव का यथार्थवत् तथा **सबकुछ** के रूप में मिथ्या अनुभव करता है ।

इस प्रयोजन के लिये कि **ईश्वर-है** अवस्था में अन्तर्हित ईश्वरीय चेतना के द्वारा ईश्वरर को अपनी ही सनातन सत्यता का अनुभव करना सम्भव हो सके, **सबकुछ** के अन्तर्गत उस अन्तर्हित चेतना का उभार (जो चेतना बाहर की ओर निकलने पर **शून्यता** की मिथ्या अपारता में केन्द्रित हो जाती है) भीतर की ओर सिनटना चाहिये । भीतर की ओर ऐसे सिमटन के द्वारा, उसी चेतना का केन्द्र **सबकुछ** की अनन्तता में केन्द्रित हो जाता है (जिस सबकुछ से वह बाहर की ओर निकली थी और **सबकुछ** की अपारता के अनुभव की उत्पत्ति करने की अपेक्षा अपार **शून्यता** के अनुभव को जन्म दिया था) ।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, जब उभरी चेतना भीतर की ओर लौटती है अथवा उसका प्रतिवर्धन पूर्ण एवं सम्पन्न हो जाता है, तो वह **शून्यता** जिसका अनुभव एक समय सत्यता के रूप में होता था आपहीआप चेतना के लिये लुप्त हो जाता है, जो चेतना अब ईश्वर की

linked infinite trio-nature of God which is infinite power, infinite knowledge and infinite bliss.[17]

But this entanglement is absolutely necessary in order that God in the infinitude of the God-Is state should gain consciousness fully and completely for Himself and of His infinite reality, and in this way experience consciously His unbounded, unlimited, infinite trio-nature of infinite power, infinite knowledge and infinite bliss.

The fundamental fact is that full consciousness once gained can never be lost. It remains eternally, regardless of whether that consciousness fully gained is the consciousness of the false Nothingness experienced as real, or whether that consciousness is the consciousness of Reality Itself.

Eventually consciousness does make God realize His own reality after that same consciousness has attained complete maturity. Consciousness is fully matured to realize Reality only after it is nurtured by the apparent awareness of the false. This awareness of the false as real becomes so intensified during the course of the evolution of consciousness, that the consciousness, steeped in false awareness, makes God aware only of the false, which is experienced by God as the real. That is, God as Creator falsely experiences the manifestation of the Nothing as real and Everything.

In order that the latent consciousness of God in the God-Is state should make it possible for God to realize His own eternal reality, the projection of that latent consciousness in Everything (which, when projected outwards, becomes focussed on the false infinity of Nothingness) should be withdrawn inwardly. By such an inward withdrawal, the focus of the same consciousness becomes centred on the infinity of Everything (from which it had projected outwards and given rise to the experience of infinite Nothingness rather than the experience of the infinity of Everything).

As said before, when the projected consciousness withdraws inwards or undergoes full and complete involution, that Nothingness which was once experienced as reality automatically vanishes for the consciousness

अपारता की सनातन **सत्यता** में पूर्णतया केन्द्रित होती है ।

संक्षेप में, **सत्यता**—सनातन सत्यता—का साक्षात्कार करने के लिये कोई **नवीन** चेतना की प्राप्ति शेष नहीं रहती । यह **सबकुछ** में अन्तर्हित **वही** चेतना है जो, **शून्य** से निकलने पर, पहले क्रमशः विकसित होती है और, **शून्यता** से साहचर्य करती हुई, फिर **शून्यता** को सत्यवत् अनुभव करती है । जब इस चेतना का विकास परिपूर्ण एवं सम्पन्न हो जाता है, तब वही चेतना ईश्वर को मिथ्या **शून्यता** का अनुभव कराती है जो शून्यता यथार्थ और अनन्तवत् **अपरिमित** विस्तार के साथ फैलती है । पुनः, जब वही परिपूर्ण एवं सम्पन्न चेतना स्वयं अपने ही प्रतिवर्धन के द्वारा पूर्ण एवं सम्पन्न परिपक्वता प्राप्त कर लेती है, तब वह अनन्त सत्यता को एकमेव सत्यतावत् अनुभव करती है और ईश्वर को खुद उसकी ही यथार्थ एवं शाश्वत अपार अवस्था का अनुभव प्रदान करती है ।

अपारता की अपनी मूल अवस्था में ईश्वर अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द की अपनी अनन्त, अपार एवं असीमित त्रि-प्रकृति के द्वारा शाश्वतः अनन्त है । चूँकि ईश्वर शाश्वतः है, इसलिये ईश्वर की मूल अवस्था तथा ईश्वर की नई अवस्थाओं के बीच, जो उसे प्राप्त होती हैं, एकमेव वास्तविक अन्तर चेतना का होता है जोकि उभरी **शून्याता** के **संस्कारों** के द्वारा क्रमशः बढ़ती हुई प्राप्त होती है ।

अपनी मूल **ईश्वर-है** अवस्था में ईश्वर को अपने अपार सनातन अस्तित्व की चेतना नहीं होती और न उसको खुद अपनी अनन्त प्रकृति की चेतना होती है यद्यपि उसका अस्तित्व अनन्त तथा शाश्वतः रहता है । स्वयं अपनी ही अनन्त लहर के कारण ईश्वर को अपनी यथार्थता की चेतना प्राप्त होती है और अपनी अपार, सनातन असीमित सत्ता (*self*) का साक्षात्कार प्राप्त होता है विससे वह अपनी अपार, असीमित एवम् अनन्त त्रि-प्रकृति का अनुभव करता है ।

इस पकार ईश्वर को, अब शाश्वत चेतना की अपनी नवीन उपार्जित अवस्था से युक्त होने के द्वारा, चेतनतया तथा शाश्वतः **ईश्वर-है** स्थिति की अपनी मूल **परात्पर परब्रह्म** अवस्था का भान **ईश्वर-है** अवस्था की अपारता की चेतना नहीं रहती । इसलिये शश्वत एवम् अनन्त ईश-अवस्था का **चेतनतया** साक्षात्कार प्राप्त करना ही लक्ष्य है ।

जैसाकि पहले ही वर्णन किया जा चुका है, ईश्वर की मूल

which is now focussed completely on the eternal Reality of the infinitude of God.

In short, there is no **new** consciousness to be attained to realize Reality—the Eternal. It is the **same** consciousness latent in the Everything which, when it emerges out of the Nothing, first gradually evolves and, associating with the Nothingness, then experiences the Nothingness as real. When the evolution of this consciousness is complete and full, the same consciousness makes God experience the false Nothingness which expands ad infinitum as real and infinite. Again, when the same full and complete consciousness reaches full and complete maturity through its own involution, it realizes infinite Reality as the only reality and gives God the experience of His own real and eternal infinite state.

God in His original state of infinitude is eternally infinite through His infinite, unbounded and unlimited trio-nature of infinite power, infinite knowledge and infinite bliss. As God eternally Is, the only virtual difference between the original state of God and the new states of God that He acquires is that of the consciousness gained progressively through the **impressions** of the projected Nothingness.

God in His original state of God-Is is not conscious of His infinite eternal existence nor of His own infinite nature though He exists infinitely and eternally. Due to His own infinite whim God acquires the consciousness of His reality and realizes His infinite, eternal unlimited Self to experience His unbounded, unlimited and infinite trio-nature.

Thus God, now with His newly acquired state of eternal consciousness, is consciously and eternally aware of His original Beyond the Beyond state of God-Is, which is forever and ever unconscious of the infinitude of His own God-Is state. Therefore the goal is to realize the eternal and infinite God-state **consciously.**

As already described, the original state of God is that state of unbounded absolute vacuum where God is and consciousness **is-not.** This

अवस्था अपार पूर्ण शून्यता की वह अवस्था है जहाँ **ईश्वर-है** और चेतना **नहीं-है** । यह अवस्था **सृष्टि के आदि** के आरम्भ के परे ईश्वर की मूल दैवी गम्भीर निन्द्रा-अवस्था है ।

ईश्वर की मूल अनन्त लहर "कारण" (*cause*) के रूप में, ईश्वर की मूल दैवी गम्भीर निद्रा-अवस्था के मोहन को भङ्ग करने की उत्तरदायी है, और उसका परिणाम, जोकि सृष्टि है, "कार्य" (*effect*) कहलाता है ।

दैवी गम्भीर निद्रा अवस्था को स्पष्टरूप से समझने के लिये, तथा उस सबको और अधिक स्पष्टरूप से समझने के लिये जो ईश्वर में मुल अनन्त लहर के उठते ही तत्क्षण घटित होता है, और ईश्वर को दैवी गम्भीर न्द्रिा से जगा देता है, ईश्वर की दैवी गम्भीर निद्रा अवस्था की तुलना मनुष्य की गम्भीर निद्रा से कीजिये ।

मनुष्य की यह गम्भीर निद्रा अवस्था अक्षरशः ईश्वर की वही मूल दैवी गम्भीर निद्रा अवस्था है । **ईश्वर-है** अवस्था में ईश्वर शाश्वतः मूल दैवी गम्भीर निद्रा अवस्था में है, जबकि मानवी अवस्था में ईश्वर प्रतिदिन बारी बारी से गम्भीर निद्रा अवस्था एवम् जागृत अवस्था का अनुभव करता है ।

अनन्त, संस्काररहित एवम् निराकार, शाश्वत परमात्मा अपनेआपको, केवल **शून्यतावत्** पकट हुये **शून्य** के प्रथम अत्यन्त-परिमित संस्कार के जन्म के कारण से ही, परिमित, सीमित, जड़ अथवा चेतन शरीरों अथवा प्राणियों के रूप में अनुभव करता है ।

चेतना के विकास में एक स्थल पर **शून्य** के संस्कार ईश्वर को मानवी अवस्था के अनुभव प्रदान करते हैं ।

शून्य के ये संस्कार मूल अत्यन्त-परिमित प्रथम संस्कार की ही उत्पत्ति हैं । यह प्रथम संस्कार ईश्वर के अन्तर्गत चेतना की अत्यन्त परिमित प्रथम किरण ने प्राप्त किया था जो साथ-साथ उसी क्षण पकट हुई थी जबकि ईश्वर में अन्तर्हित मूल अनन्त लहर उठी थी और उसने अत्यन्त-परिमित **शून्य** के अन्तर्हित सकल को **शुन्यतवत्** बाहर को उभारा था ।

मूल अत्यन्त-परिमित संस्कार, चेतना के अत्यन्त-परिमित मूल प्रवाह के विकास के साथ ही साथ तथा उससे एकीभूत रहते हुये, संख्या एवं घनत्व में बढ़ता गया ।

(९५)

state is the original divine sound sleep state of God beyond the beginning of the Beginning of Creation.

The original infinite whim of God as the "cause" is responsible for breaking the spell of the original divine sound sleep state of God, and the result, which is Creation, is called the "effect."

In order to grasp clearly the divine sound sleep state and understand more clearly all that follows immediately after the original infinite whim surges in God, bestirring Him from the divine sound sleep, let the divine sound sleep state of God be compared with the sound sleep of man.

This sound sleep state of man is literally the same original divine sound sleep state of God. God in the God-Is state is eternally in the original divine sound sleep state, whereas God in the human state daily experiences alternately the sound sleep state and the awake state.

The infinite, impressionless and formless, eternal God experiences Himself as finite, limited, inanimate or animate forms or beings only because of the advent of the first most-finite impression of the Nothing that manifested as Nothingness.

At one stage in the evolution of consciousness the impressions of the Nothing impart to God the experiences of the human state.

These impressions of the Nothing are just the procreation of the original most-finite first impression picked up by the most-finite first ray of consciousness in God made manifest simultaneously when the latent original infinite whim surged in God and projected the latent-all of the most-finite Nothing as Nothingness.

The original most-finite impression multiplied and increased simultaneously and concurrently with the evolution of the most-finite original trickle of consciousness.

इस प्रकार पैदा हुये बहुमुखी एवं विविध संस्कारों के अनुभव, चेतना के महानतर विकास ने, परिमित अथवा स्थूल शरीरों के बहुमुखी एवं विविध माध्यमों के द्वारा किये, क्योंकि पैदा हुये संस्कारों का अनुभव चेतना को अनिवार्यरूप से करना होता है; किन्तु संस्कारों का अनुभव करने के लिये चेतना को उपयुक्त माध्यम नितान्त आवश्यक थे ।

इस प्रकार चेतना का विकास, सापेक्षतया उच्चतर और उच्चतर प्रकारों की योनियों के विकास के अनुसार, अधिकतर एवं उच्चतर चेतना का विकास करता जाता है, जिससे वह सापेक्षतया निम्नतर और निम्नतर प्रकारों के स्थूल माध्यमों के संसर्ग में पिछले सञ्चित हुये संस्कारों का अनुभव कर सके ।

संक्षेप में, ईश्वर में उठी मूल अनन्त लहर के अत्यन्त-परिमित पथम संस्कार ने अचेतन अनन्त ईश्वर को अत्यन्त-परिमित चेतना प्रदान की । क्रमशः, विविध संस्कार संख्या एवं घनत्व में वढ़ते गये और ईश्वर के लिये उच्चतर परिमित चेतना प्राप्त करते गये, जब तक कि अन्ततः चेतना का विकास पूर्ण न हो गया, जब तक कि प्राप्त हुई परिपूर्ण चेतना के संस्कारों ने ईश्वर की एकरूपता मानव रूप से न कर दी । अब मनुष्य-योनि में ईश्वर के पूर्ण चेतना प्राप्त कर चुकने से, चेतना का विकास करने के लिये अतिरिक्त अथवा उच्चतर योनियों की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि प्राप्त हुई यह चेतना परिपूर्ण तथा सम्पन्न होती है ।

चेतना के विकास की प्रक्रिया के दौरान में, चेतना ईश्वर का तादात्म्य चेतनतया विविध परिमित स्थूल रूपों—जड़ एवम् चेतन—से करती हुई, साथ-साथ ईश्वर की अभिन्नता अचेतनतया उसके सीमित सूक्ष्म शरीर तथा उसके सीमित कारण शरीर से भी किये रही थी । ये शरीर ईश्वर के सीमित स्थूल शरीर से, दृढ़ एवम् सजातीय अचेतन संसर्ग रखते हुये, चेतना के विकास की प्रक्रिया के आद्योपान्त, **सबकुछ** के अन्तर्गत अन्तर्हित **शून्य** का प्रथम मूल उद्भव होने के क्षण से ही, साहचर्य किये रहे ।

यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि, ईश्वर की उच्चतर एवं उच्चतर चेतना के विकास के साथ-साथ, उसी समय सीमित तथा परिमित प्राण और मन का विकास होता जाता है, यहाँ तक कि स्थूल मानव शरीर में ईश्वर के सीमित प्राण और मन का पूर्ण विकास हो जाता है ।

यद्यपि मनुष्य योनि में ईश्वर ने पूर्ण चेतना प्राप्त कर ली है, और

The multifarious and varied impressions so formed were experienced by the greater evolution of consciousness through multifarious and varied media of finite or gross forms, because the impressions formed must necessarily be experienced by the consciousness; but for consciousness to experience the impressions, suitable media were absolutely necessary.

Thus the evolution of consciousness goes on evolving further and greater consciousness in conformity with the evolution of gross forms of relatively higher and higher types, in order to experience the impressions gathered in conjunction with the preceding relatively lower types of gross media.

In short, the most-finite first impression of the original infinite whim surging in God gave to the unconscious infinite God the most-finite consciousness. Gradually, varied impressions multiplied and increased and gained greater finite consciousness for God, until eventually the evolution of consciousness was complete when the impressions of full consciousness gained identified God with human form. God having now gained full consciousness in human form, the need no longer persists for additional or higher forms to evolve consciousness as this consciousness gained is full and complete.

During the process of the evolution of consciousness, the consciousness, while identifying God consciously with varied finite gross forms—inanimate and animate—was also simultaneously though unconsciously identifying God with His limited subtle form and His limited mental form. These forms associated with the limited gross form of God in compact and homogeneous unconscious association throughout the process of evolution of consciousness, from the very advent of the first original projection of the latent Nothing in Everything.

It is but natural that, together with the evolution of greater and greater consciousness of God, the evolution of the limited and finite subtle and mental forms simultaneously takes place, till in human gross form the limited subtle and mental forms of God are fully developed.

Though God has gained full consciousness in human form, and though the limited subtle and mental forms are also fully developed in

यद्यपि सीमित प्राण और मन भी मानव-योनि में पूर्णतया विकसित हो चुके हैं, तथापि इस प्रकार प्राप्त हुई पूर्ण चेतना केवल स्थूल की चेतना है जो केवल स्थूल जगत का अनुभव प्रदान करती है । इसलिये, पूर्णतया प्राप्त हुई चेतना को अब भी प्राण और मन का भान नहीं है और न उसको चेतनतया प्राण एवं मन भूवनों का अनुभव होता है ।

संक्षेप में, यद्यपि ईश्वर ने मानव अवस्था में भरपूर और पूरी (*complete*) चेतना प्राप्त कर ली है, तथापि असको अब भी न अपने सूक्ष्म शरीर की सीमित प्राणशक्ति और न अपने कारण शरीर के अपने सीमित मन की चेतना होती है । और, इससे भी बहुत कम भान उसको इस सत्यता का है कि वह खुद अपार शक्ति और असीमित ज्ञान से सम्पन्न एक अखण्ड्य, सनातन एवं अनन्त परमात्मा है । इस अवस्था में ईश्वर को केवल मानव-योनि एवं ऊसके विविध स्थूल पहलुओं से अपनी एकरूपता का पूरा भान होता है, और वह केवल स्थूल जगत का पूर्ण अनुभव दुनियाँ के साधारण मानव प्राणी के समान पुरुष अथवा स्त्री के रूप में करता है ।

किन्तु मनुष्य की चेतना और साथ-साथ मन के रूप में ऊसका कारण शरीर, प्राणशक्ति के रूप में उसका सूक्ष्म शरीर और देह के रूप में उसका स्थूल शरीर, ये सब अनन्त **शून्यता** के रूप में, जो परमात्मा-है अवस्था में अन्तर्निहित था, अत्यन्त-सीमित **शून्य** के आविर्भाव की उपज हैं । दूसरी शब्दों में, सीमित मन, सीमित प्राणशक्ति तथा सीमित देह, ये सब **शून्य** के हैं, और परिमित मन, परिमित प्राण शक्ति और सीमित शरीर की चेतना भी **शून्य** की है ।

मनुष्य में, मन इच्छाओं और विचारों का स्थान है, प्राणशक्ति, बल और ओज का स्थान है, और शरीर, जो सुख की प्रतिरूपता प्रकट करता है, सुख और दुख का स्थान है । इसलिये ये इच्छायें और विचार, बल और ओज, सुख और दुख, क्रमशः मनुष्य के सीमित मन, प्राणशक्ति एवं देह के परिमित पहलू हैं ।

यद्यपि मनुष्य की त्रिगुण प्रकृति—अर्थात् मन, प्राणशक्ति और शरीर (सुख की प्रतिरूपता प्रकट करती हुई देह)—के परिमित आधार के ये पहलू परिमित हैं, क्योंकि ये अत्यन्त परिमित **शून्य** के आविर्भाव के परिणाम हैं, फिर भी मन, प्राणशक्ति और शरीर के ये परिमित पहलू अपनी क्षमतायें अनन्तरूप से प्रदर्शित करते हैं ।

(९७)

human form, yet the full consciousness so gained is only of the gross which gives experience only of the gross world. Hence, the fully gained consciousness is not yet conscious of the subtle and mental forms nor does it consciously experience the subtle and mental worlds.

In short, though God in the human state has gained full and complete consciousness, He is still not conscious of His limited Energy of the subtle form nor of His limited Mind of the mental form. Much less is He aware or conscious of Himself as the one indivisible, eternal and infinite God with unbounded power and unlimited knowledge. At this stage God is only fully conscious of His identity with human form and its varied gross aspects, and experiences in full only the gross world as an ordinary human being of the world in the form of man or woman.

But the consciousness of man together with his mental form as the mind, his subtle form as energy and his gross form as the body are all the outcome of the manifestation of the most-finite Nothing as infinite Nothingness which was latent in the God-Is state. In other words, the limited mind, the limited energy and the finite body are all of the Nothing, and the consciousness of the limited mind, the limited energy and the finite body is also of the Nothing.

In man, the mind is the seat of desires and thoughts, energy is the seat of force and vigour, and the body, typifying happiness, is the seat of happiness and misery. Hence these desires and thoughts, force and vigour, happiness and misery are respectively the finite aspects of the limited mind, energy and body of man.

Although these aspects of the finite basis of the triple nature of man—the mind, the energy and the body (typifying happiness)— are finite, due to the fact that they are the outcome of manifestation of the most finite Nothing, yet these finite aspects of mind, energy and body demonstrate their capabilities ad infinitum.

इसका कारण यह है कि मनुष्य की त्रिगुण प्रकृति—प्राणशक्ति, मन और शरीर (सुख की प्रतिरूपता प्रकट करता हुआ)—के इस परिमित आधारों में से प्रत्येक ईश्वर की त्रि-प्रकृति (सत्-चित्-आनन्द) के तीन अनन्त आधारों अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द में से प्रत्येक से धनिष्ठतया सम्बद्ध है तथा उसके द्वारा स्तापित है ।

सच बात यह है, कि जब ईश्वर की अन्तुर्हित अनन्त त्रि-प्रकृति परिमित **शून्य** के क्रमिक निकास से क्रमशः अभिव्यक्त होती है, और जब वह साथ-साथ परिमित **शून्य** के निकास को **अनन्तरूप** से अबिव्यक्त **शून्यता** के रूप में फैला देती है, तब ईश्वर की यही अनन्त त्रिगुण प्रकृति, अभिव्यक्ति की इस स्थिति में, **शून्यता** की प्रत्यक्ष एवं मिथ्या अनन्तता के जाल में फँस जाती है और इस प्रकार अपनेआप को **अनन्तरूप** से प्रदर्शित क्षमताओं से सम्पन्न परिमित मानवी त्रिगुण प्रकृति के रूप में प्रकट कराती है ।

(१) मन, (२) प्राणशक्ति और (३) शरीर, मनुष्य की त्रिगुण पकृति के रूप में, किस प्रकार अपनी क्षमतायें अनन्तरूप से माया के अन्तर्गत प्रदर्शित करते हैं इसका स्पष्ट अनुभव (१) वैज्ञानिक के आविष्कारी मन के द्वारा होता है, जिसे अनुसन्धानों एवं ओवष्कारों का कोई अन्त नहीं मिलता : (२) **माया** के अन्तर्गत अनुशक्ति के विमोचन के द्वारा होता है, जो ऐसी स्थिति में पहुँच गई है जहाँ कि वह अपने ही मायावी बल से स्वयं **शून्यता** का विनाश करने की धमकी दे रही है जिससे वह निकली थी तथा ऐसी भयंकर शक्ति के रूप में विकसित हुई थी; (३) शरीर (सुख को प्रतिरूपित करने वाला) के द्वारा होता है जो, अब **शून्य** के विकास की बढ़ती हुई प्रगति के साथ चलता हुआ, अधिकतर और अधिकतर सुख प्राप्ति की चाह करने के लिये इस सीमा तक अनन्ततया प्रेरित होता है कि सुख वास्तव में माया के जीवन का स्वयं आधार ही बन जाता है ।

शून्यता (जो **माया** है) के क्षेत्र में ऐसे अपार प्रदर्शन का एकमात्र कारण यह है कि मनुष्य की मूल परिमित त्रिगुण पकृति—प्राणशक्ति, मन और **शून्यता** का सुख—ईश्वर की मूल अनन्त त्रि-प्रकृति—अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान, और **सबकुछ** का अनन्त आनन्द, के द्वारा स्थापित होती तथा **अपारतया** फैलती है ।

अनन्त शक्ति असीमित है और वह कभी भी कम अथवा शून्य

This is because each of these finite bases of the triple nature of man—the energy, the mind and the body (typifying happiness)— is closely linked with and upheld by each of the three infinite bases of the trio-nature of God (sat-chit-anand), infinite power, infinite knowledge and infinite bliss.

The fact is, that when the latent infinite trio-nature of God is gradually manifested out of the gradual projection of the finite Nothing, and when it simultaneously protrudes the projection of the finite Nothing as Nothingness manifested ad infinitum, this very same infinite trio-nature of God, at this stage of manifestation, becomes enmeshed in the apparent and false infinity of the Nothingness and thus gets itself expressed as the finite triple nature of man with capabilities demonstrated ad infinitum.

How (1) the mind, (2) the energy and (3) the body, as the triple nature of man, demonstrate their capabilities ad infinitum in Illusion is clearly experienced (1) through the inventive mind of a scientist, who finds no end to discoveries and inventions; (2) through the release of nuclear energy in Illusion, which has reached a stage where it threatens with its own force of illusion to destroy the very Nothingness out of which it emerged and evolved into such a terrific force; (3) through the body (typifying happiness) which, now keeping pace with the advanced progress of the evolution of the Nothing, is infinitely urged to seek greater and greater happiness to such an extent that happiness actually becomes the very basis of the life of illusion.

The only reason for such infinite demonstration in the field of Nothingness (which is Illusion) is because the basic finite triple nature of man—energy, mind and happiness of Nothingness—is upheld and stretched out ad infinitum by the basic infinite trio-nature of God—infinite power, infinite knowledge and infinite bliss of Everything.

Infinite power is unbounded and is never reduced nor exhausted, whereas finite energy, though linked with infinite power, is reduced and

नहीं होती, जबकि परिमित प्राणशक्ति, अनन्त शक्ति से सम्बद्ध होते हुये भी, कम तथा शून्य हो जाती है क्योंकि वह केवल **शून्य** की उपज है जो **शून्यता** की परिमित प्राणशक्ति के रूप में प्रकट हुई है ।

अनन्त ज्ञान शाश्वत, एकरूप तथा सर्वव्यापक है और इसलिये उसका सातत्य अखण्ड होता है । तथापि, सीमित मन, अनन्त ज्ञान से सम्बद्ध होते हुये भी, नष्ट होता है और अनन्तः उसका लोप कर दिया जाता है क्योंकि वह **शून्य** का परिणाम है जो **शून्यता** के परिमित मन के रूप में अभिव्यक्त हुआ है ।

अनन्त आनन्द शाश्वत एवं सतत् आनन्द है और चूँकि वह नित्य है इसलिये वह किसी भी विपरीत पहलू से रहित है । दूसरी ओर, सुख अनन्त आनन्द से सम्बद्ध होते ?हुये? भी, नित्य नहीं है और इसलिये उसका विपरीत पहलू दुख है । इस परिमित सुख का लोप हो जाता है, यद्यपि यह मानव जीवन का मूल आधार है, क्योंकि सवयं जीवन नश्वर है । चूँकि माया का जीवन **शून्य** का परिणाम है जो **शून्यता** के जीवन के रूप में अभिव्यक्त हुआ है, इसलिये यह जीवन अवश्य नष्ट होना चाहिये ।

एक स्थिति आती है जबकि ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त करने के मनुष्य के घोर प्रयास में मनुष्य की मूल परिमित त्रिगुण प्रकृति का, अर्थात् शरीर, (सुख को पतिरूपित करने वाले) प्राणशक्ति और मन का, नाश हो जाता है, और उसको आनन्द, शक्ति एवं ज्ञान की मूल अनन्त त्रि-प्रकृति की अनुभूति हो जाती है । इस अवस्था में मनुष्य को अनुभव होता है कि उसकी प्रकृति (सुख को प्रतिरूपित करने वाला) परिमित शरीर नहीं है वरन् अनन्त आनन्द है; परिमित प्राणशक्ति (*energy*) नहीं है वरन् अनन्त शक्ति (*power*) है; परिमित मन नहीं है वरन् अनन्त ज्ञान है इस प्रकार मनुष्य की मूल परिमित त्रिगुण प्रकृति का नाश हो जाता है और उसे अनुभव होता है कि उसकी प्रकृति ईश्वर की मूल अनन्त त्रि-प्रकृति है । इसका यह अर्थ है कि मनुष्य की मूल परिमित त्रिगुण प्रकृति, जिसको ईश्वर की मूल अनन्त त्रि-प्रकृति स्थापित किये थी, ईश्वर की मूल अनन्त त्रि-प्रकृति से असम्बद्ध हो गई है ।

यद्यपि मनुष्य की मूल परिमित त्रिगुण प्रकृति का नाश हो जाता है, फिर भी पूर्ण चेतना का नाश नहीं होता जो उसको अपने घोर प्रयास के दौरान में प्राप्त हुई थी, क्योंकि एकबार पूर्ण चेतना प्राप्त हो जाने पर उसका नाश कभी नहीं होता, और उसका नाश केवल तब होता है

exhausted because it is only the outcome of the Nothing manifested as the finite energy of Nothingness.

Infinite knowledge is eternal, uniform and all-pervading and therefore is without a break in its continuity. The limited mind, however, though linked with infinite knowledge, is annihilated and made to vanish ultimately because it is the outcome of the Nothing manifested as the finite mind of Nothingness.

Infinite bliss is bliss eternal and continual and because it is perpetual it is without any opposite aspect. Happiness, on the other hand, although linked with infinite bliss, is not perpetual and therefore it has an opposite aspect of misery. This finite happiness vanishes, even though it is the very basis of the life of the human being, because life itself is transient. As the life of illusion is the outcome of the Nothing manifested as the life of Nothingness, this life must perish.

A stage is reached when man in his travail to realize God ultimately loses his basic finite triple nature, that is body (typifying happiness), energy and mind, and realizes the basic infinite trio-nature of bliss, power and knowledge. In this state man experiences that his nature is not the finite body (typifying happiness) but is infinite bliss; not the finite energy but infinite power; not the finite mind but infinite knowledge. Thus man loses his basic finite triple nature and realizes that his is the basic infinite trio-nature of God. This means that the basic finite triple nature of man, which was upheld by the basic infinite trio-nature of God, is unlinked from the basic infinite trio-nature of God.

Although the man loses his basic finite triple nature, the full consciousness that he gained in his travail is not lost, because full

जब उसका घोर दुरुपयोग चौथी भूमिका की शक्तियों से किया जाता है, जैसा कि पहले समझाया जा चुका है ।

इस अवस्था में, चेतना के अक्षत एवं पूर्ण रहने के साथ, सीमित तथा परिमित शरीर (सुख को प्रतिरूपित करने वाला), सीमित तथा परिमित प्राणशक्ति, और सीमित तथा परिमित मन, सबके सब क्रमशः असीमित एवं अनन्त आनन्द, शक्ति तथा ज्ञान से पूर्णतया असम्बद्ध हो जाते हैं ।

यह वह स्थिति है जब मनुष्य पूर्णतया चैतन्य होता है और फिर भी वह मिथ्या परिमित **शून्यता** को यथार्थ एवं अनन्तवत् अनुभव नहीं करता । (सुख को प्रतिरूपित करने वाला) शरीर, प्राणशक्ति और मन, जो **शून्यता** का अनुभव प्रदान करने के साधन थे, अब मनुष्य की चेतना को परिमित संस्कारों के चंगुल में नहीं फँसाये रखते । ये अब असम्बद्ध हो गये हैं और चेतना के केन्द्र-स्थल से केवल लुप्त हो गये हैं । उनका लोप होता अनिवार्य है क्योंकि वे स्वभावतः परिमित **शून्य** के थे, जिसका अक्षरशः अर्थ है परम शून्य ।

किन्तु शरीर, प्राणशक्ति और मन का चंगुल मनुष्य की चेतना के ऊपर से अन्ततः हटने के पहले, एक प्रबल अनुभव होता है जो मनुष्य को उसके दैनिक जीवन में प्राप्त होता है, और वह है प्रतिदिन सोना और जागना ।

एक सामान्य मनुष्य में यह मूलभूत अनूभव उसके दैनिक जीवन में तीन मूल अवस्थाओं को जन्म देता है :

पहली अवस्था — गम्भीर निद्रा अवस्था है अथवा मनुष्य में **खुदी** (*Self*) की पूर्ण अचेतना की अवस्था है ।

दूसरी अवस्था — स्वप्न अवस्था है अथवा अर्द्ध-चेतन या अर्द्ध-जागृत अवस्था है ।

तीसरी अवस्था — पूर्णतया जागृत अवस्था है अथवा मनुष्य में मनुष्य के रूप में "खुदी" की पूर्ण चेतना है ।

अब, मनुष्य को अभिज्ञान प्राप्त होता है कि उसमें **जीवन** है, और मनुष्य के **कर्मों** के द्वारा मनुष्य के जीवन को अभिज्ञान प्राप्त होता है । कर्मों की अत्पत्ति मनुष्य के संस्कारों से होती है और संस्कारों की उत्पत्ति कर्मों से । कर्म मनुष्य के इन संस्कारों को चुनते और उसके मन के ऊपर उनकी छाय बैठाते हैं । इस प्रकार संस्कार और कर्म

consciousness once gained is never lost, except in gross misuse of the powers of the fourth plane, as previously described.

In this state, with consciousness intact and complete, the limited and finite body (typifying happiness), the limited and finite energy, and the limited and finite mind are all totally unlinked from the unlimited and infinite bliss, power and knowledge respectively.

This is the stage when man is fully conscious and yet no longer experiences the false finite Nothingness as real and infinite. The body (typifying happiness), energy and mind, which were instrumental in giving the experience of the Nothingness, no longer grip the consciousness of man with finite impressions. These are now unlinked and have simply vanished from the focus of the consciousness. They must vanish because they were of the finite Nothing by nature, which literally means absolutely nothing.

But before body, energy and mind ultimately lose their grip over the consciousness of man, there is one predominant experience which he has in his everyday life, that of sleeping and waking each day.

This fundamental experience in a normal man gives rise to three basic states in his everyday life:

The first state — is the sound sleep state or the state of complete unconsciousness of the Self in man.

The second state — is the dream state or the semi-conscious or semi-awake state.

The third state — is the completely awake state or the state of complete consciousness of the Self in man as man.

Now, man's cognizance is **life** in man, and man's life is made cognizant through the **actions** of man. Actions are generated by the impressions of man and vice-versa. These impressions of man are picked up and imprinted on the mind of man by actions. Impressions and actions

परत्पर-आश्रित होते हैं क्योंकि संस्कार कर्मों से पोषित होते हैं और कर्म संस्कारों से प्रेरित होते हैं ।

जैसाकि पहाले कहा ज चुका है, संस्कारों के उद्‌गम का पता बहुत पीछे जाकर **सबकुछ** के अन्तर्गत प्रसुप्त **शून्य** के रूप में मिलता है, जिसका अर्थ है **ईश्वर-है** अवस्था में ईश्वर । जब **शून्य** पहले सृष्टि के रूप में **शून्यतावत्** प्रकट हुआ, तो शून्य की उस आदिम अभिव्यक्ति से ईश्वर में चेतना के प्रथम चिन्ह की उत्पत्ति हुई और इस पर **शून्यता** के प्रथम संस्कार का आविर्भाव हुआ । इस प्रथम संस्कार ने चेतना के विकास के साथ-साथ संस्कारों की उत्पत्ति की ।

तदनुसार, सब संस्कार **शून्य** के हैं, और चूँकि **शून्य** का अर्थ वस्तुतः कुछनहीं है, इसलिये ये संस्कार स्वभावतः केवल संस्कारों के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हैं । किन्तु, चूँकि **शून्य** के इन्हों संस्कारों के द्वारा ही मनुष्य में चेतना का विकास भरपूर और पूर्ण हुआ था, इसलिये मनुष्य की चेतना **शून्य** के इन संस्कारों से धनिष्ठतया सम्बद्ध है और उसके द्वारा मनुष्य चेतनतया इस मिथ्या **शून्य** को **सबकुछ** एवं यथार्थवत् अनुभव करता है ।

इस रूप में संस्कार मनुष्य के जीवन में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पार्ट अदा करते हैं, उस समय तक जब तक कि वे, चेतना को मिथ्या **शून्य** को सबकुछ और यथार्थवत् अनुभव करने से मुक्त और स्वतन्त्र करने के द्वारा, पूर्णतया नष्ट नहीं हो जाते । चेतना, सब संस्कारों से मुक्त हो जाने पर, मिथ्या **शून्य** को कदापि यथार्थवत् अनुभव न करेगी वरन् वह सत्यता को असीमित आत्मा (अर्थात् ईश्वर) के रूप में अनुभव करेगी ।

जब तक संस्कार बने रहते हैं और मनुष्य की चेतना पर अपना प्रभाव जमाते रहते हैं, तब तक ये संस्कार, जिनको मनुष्य की प्राणशक्ति क्रियाशील करती और पैदा करती है, मनुष्य के मन पर निरन्तर अङ्कित होते रहते है और उसकी आन्तरिक चेतना में संचित अथवा स्थिर बने रहते हैं ।

इनमें से कुछ संस्कार मनुष्य की आन्तरिक-चेतना में घन्टों तक, अथवा दिनों तक, अथवा वर्षों तक, और कभी-कभी जीवन पर्यन्त प्रसुप्त बने रहते हैं । किन्तु इनमें से अधिकांश संस्कार मनुष्य की अन्तर-चेतना के माध्यम से उसके जीवन के प्रत्येक क्षण में उभड़ते हैं जबकि वह

are thus interdependent because impressions are fed by actions and actions are motivated by impressions.

As said previously, the source of impressions is traced as far back as the latent Nothing in the Everything, which means God in the God-Is state. When the Nothing first became manifested as Nothingness in the shape of Creation, the primal manifestation of the Nothing gave rise to the first trace of consciousness in God and hereupon the first impression of Nothingness manifested. This first impression procreated impressions with the evolution of consciousness.

Accordingly, all impressions are of the Nothing, and as Nothing literally means nothing, these impressions are naturally nothing but mere impressions. But, because it was through these very impressions of Nothing that consciousness evolved fully and completely in man, the consciousness of man is closely linked with these impressions of Nothing and makes man consciously experience this false Nothing as Everything and real.

Impressions as such play a vital role in the life of man until such time as they are completely wiped away, relieving and freeing consciousness from experiencing the false Nothing as Everything and real. Consciousness, when relieved of all impressions, will no longer experience the false Nothing as real but it will experience Reality as the unlimited Self (i.e., God).

As long as impressions persist and continue to impress the consciousness of man, these impressions, activated and generated by the energy of man, are being constantly imprinted on the mind of man and are being retained or stored in his sub-consciousness.

Some of these impressions remain dormant in the sub-consciousness of man for hours, or days, or years, and sometimes for lifetimes. But most of them get projected through the sub-consciousness of man every

अर्द्ध-चेतन और पूर्ण चेतन अवस्थाओं का अनुभव करता है; अर्थात्, क्रमशः स्वप्न एवं जागृत अवस्थाओं का अनुभव करता है ।

जब ये संस्कार नितान्त प्रसुप्त अवस्था में रहते हैं तब मनुष्य अपनी गम्भीर निद्रा अवस्था में होता है । जब ये संस्कार मनुष्य की अन्तर-चेतना से उभड़ने लगते हैं, तो वे अपनी प्रारम्भिक स्थितियों में धूमिल होते हैं, क्योंकि वे **शून्यता** से रचित विविध अन्तर-सूक्ष्म (*sub-subtle*) रूपों में होते हैं, और मनुष्य अर्द्ध-चेतन अवस्था में कहा जाता है जिसमें वह अपनी अन्तर-चेतना के द्वारा स्वप्नों का अनुभव करता है । जब ये धूमिल संस्कार अपने उभाड़ की अन्तिम अथवा परिपक्व स्थितियों में अधिक स्पष्ट हो जाते हैं, तो अन्तर-सूक्ष्म रूपों में स्थित **शून्यता** का अनुभव स्थूल रूपोंवत् होता है और मनुष्य पूर्णतया चैतन्य अथवा जागृत अवस्था में कहा जाता है जिसमें वह स्थूल जगत का अनुभव अपनी पूर्ण चेतना के द्वारा पूर्णतया जागृत अवस्था में करता है ।

जब मनुष्य जाग उठता है, तो **शून्य** के संस्कारों के उभाड़ **सून्यता के उसी** स्वप्न को अधिक बलपूर्वक तथा अधिक सत्यरूप में अभिव्यक्त करते हैं । दूसरे शब्दों में, वही स्वप्न अब मनुष्य की जागृत अवस्था में अपनी सर्वोच्च स्थिति में कहा जाता है ।

इसलिये मनुष्य की जागृत अवस्था स्वप्नों को उसी धूमिल अवस्था का ही अनुभव करना है; केवल अब वे स्वप्न अपने शिखर पर और अपनी पूर्णतया परिपक्व एवं अन्तिम स्थितियों में होने के कारण, स्पष्टतया अनुभव किये जाते हैं ।

मनुष्य का स्वप्न केवल एक नाटक है जिसके नियम का निर्माण मनुष्य के ही प्रसुप्त संस्कारों का उभाढ़ करता है । ये संस्कार, जब ये मनुष्य की अन्तर-चेतना के माध्यम से उभड़ते हैं, स्वप्न की चीज़ों एवं प्राणियों का सृजन अन्तर-सूक्ष्म शरीरों के रूप में करते हैं ।

स्वप्न अवस्था में मनुष्य न केवल अपने स्वप्न के नाटक में फँसता है और, उस स्वप्न के कर्त्ता तथा उस स्वप्न के नाटक में नायक, दोनों के पार्ट अदा करता है, किन्तु इस नाटक में मनुष्य चीज़ों और प्राणियों के अन्तर-सूक्ष्म रूपों से घनिष्ठतया सम्बद्ध भी हो जाता है, जिन रूपों का सृजन वह खुद अपनी स्वप्न अवस्था में करता है, जिन रूपों का यह सृजन पूर्णतया मनुष्य के ही पिछले एवं वर्तमान संस्कारों के आविर्भाव के परिणाम स्वरूप होता है । इस प्रकार मनुष्य अपनी स्वप्न

moment of his life while he experiences semi-conscious and fully conscious states; that is, the dream and awake states, respectively.

When these impressions remain absolutely dormant the man is in his sound sleep state. When these impressions begin to get projected from the sub-consciousness of man, they are hazy in their initial stages, being in varied sub-subtle forms moulded out of the Nothingness, and the man is said to be in a semi-conscious state experiencing dreams through his sub-consciousness. When these hazy impressions grow clearer in their final or ripe stages of projection, the Nothingness in sub-subtle forms is experienced as gross forms and the man is said to be in a fully conscious or awake state, experiencing the gross world through his full consciousness in a completely awake state.

When the man wakes up, the projections of impressions of Nothing manifest the same dream of Nothingness more forcefully and realistically. In other words, the same dream is said to be at its height now in the awake state of man.

Therefore the awake state of man is the experiencing of that same hazy state of dreams, only now they are experienced clearly, being at their height and in their fully ripe and final stages.

The dream of a man is but a drama enacted by the projection of man's own dormant impressions. These impressions, when projected through man's sub-consciousness, create things and creatures of the dream, as sub-subtle forms.

Man in the dream state not only becomes involved in the drama of his dream and plays the roles of both the creator of that dream and of the hero in the drama of that dream, but in this drama man also gets closely associated with the things and the creatures in their sub-subtle forms, which are of his own creation in his dream state. This creation of sub-subtle forms comes entirely as a result of the manifestation of man's own

अवस्था में अन्तर-सूक्ष्म अवस्थाओं के अन्तर्गत रूपों से अन्तर-चेतना द्वारा साहचर्य करता है ।

जब मनुष्य जागृत अवस्ता में स्मरण करता है, तो स्वयं ये ही रूप जिन्हें स्वप्न में उसने देखा है तथा जिनसे स्वप्न में साहचर्य किया है, उसको स्थूल रूपों से उसके चेतन संसर्गों की याद दिलाते हैं जिन रूपों से वह अपने वर्तमान जीवन में दिन-प्रतिदिन चीज़ों, जन्तुओं और प्राणियों की शक्ल में साहचर्य रखता है, और उनको उसके सम्बन्धों तथा सम्पर्कों से सम्बद्ध करन्ते हैं जो उसके तात्कालिक भूत के और कभी-कभी सुदूर भूतकाल के जीवन में स्थापित हुये थे ।

किन्तु बहुधा, आदमी को अपनी चेतन जागृत अवस्था में यह भी स्मरण आता है कि कोई ख़ास शरीर चाहे वह किसी चीज़, जन्तु अथवा प्राणी का हो, जिससे वह घनिष्ठ संसर्ग रखता है और जिसकी वह वास्तव में चाह करता है, उसको याद दिलाता है कि उसने उसको ही अपने स्वप्न में भूतकाल में कभी कुछ दिनों, महीनों अथवा वर्षों पहले देखा था ।

इस प्रकार वस्तुतः ऐसा होता है कि भविष्य का कोई रूप (*form*) जिसको उसने भूतकाल के अपने स्वप्न में देखा था, मनुष्य के सामने उसके वर्तमान जीवन के संसर्गों में एक स्थूल रूप की शक्ल में फिर से प्रकट होता है ।

कुछ समय बीतने के बाद वही पदार्थ, जिसको अपने जीवन में पहले कभी देखने का अथवा उससे सम्पर्क करने का ज्ञान मनुष्य को बिल्कुल न था, उसके सामने (अब जागृत अवस्था में) ठीक उसी रूप में प्रकट होता है जिसमें उसने उसको पहले अपनी स्वप्न अवस्था में देखा था ।

इसी प्रकार के अनुभवों का उल्लेख भी मिलता है जिनमें मनुष्य अपने स्वप्नों में ख़ास धटनायें देखता है जो यथार्थ में घटित होने के वर्षों पहले गटित हुई थी ।

अपने स्वप्न के ड्रामा में, बविष्यकाल के ऐसे रूपों तथा घटनाओं को पहले से देख लेना किसी मनुष्य के लिये किस प्रकार सम्भव है, जबकि यह स्वप्न का ड्रामा केवल उसके भूत और वर्तमान दैनिक जीवन के संस्कारों का परिणाम है ?

वर्तमान काल के स्वप्न में क्या यह वास्तव में सम्भव है, कि

past and present impressions. Thus man in his dream state associates sub-consciously with forms in sub-subtle states.

When recollected by a man in the awake state, these very forms which he has seen and associated with in the dream state remind him of his conscious associations with the gross forms as things, creatures and beings associated with in his day-to-day life of the present, and link them with his connections and contacts established in his life of the immediate and sometimes distant past.

But more often than not, a man also recollects in his conscious awake state that a particular gross form, whether of a thing, creature or being, with which he closely associates and which he actually seeks, reminds him of having witnessed that same object in his dream at some time in the past, either some days, months or years ago.

Thus it actually happens that a form of the future which he happened to witness in his dream of the past, reappears to the man as a gross form in his life associations of the present.

After a lapse of time the same object, that the man was totally ignorant of ever having seen or contacted before in his lifetime, appears to him (now in the awake state) exactly as he had witnessed it before in his dream state.

Experiences of a similar nature are also recorded in which a man witnesses certain incidents in his dreams years in advance of their actual occurrence.

How is it possible for a man to witness in advance, in the drama of his dream, such forms and incidents of futurity, when this drama of the dream is only the outcome of his past and present everyday life impressions?

Is it really possible in the dream of the present, for one to come across and witness a certain object which is totally of the future, and to

मनुष्य का संसर्ग किसी ख़ास विषय से हो जाय और वह उसे देखे जो नितान्त भविष्यकाल का है, और उससे वह पहले से ही भविष्य के संसर्ग स्थापित करे, और फिर भी वह उस विषय से पूरे समय अनभिज्ञ बना रहो जब तक कि अन्ततः मुदूर भविष्यकाल में एक दिन जागृत अवस्था में उससे उसका सम्पर्क एवं चेतनतया साहचर्य न हो जाय ?

यदि ऐसी बात सचमुच सम्भव भी हो, और यदि मनुष्य भविष्य को अपने स्वप्न में बिना अटकल के इधर-उधर टटोल रहा हो, तब मनुष्य के वर्तमान में भविष्यकाल कहाँ से पैदा हो जाता है ?

वर्तमान में जीवन व्यतीत करता हुआ मनुष्य भूतकाल के अपने ही संस्कारों के द्वारा भविष्यकाल की पकड़ में, स्वप्न अवस्था तक में भी, कैसे आ सकता है, और आगामी घटनाओं एवं विषयों के संस्कारों से आगे से कैसे साहचर्य कर सकता है ? वह कौन सी चीज़ है जो मनुष्य को पूर्वज्ञान की शक्ति प्रदान करती है ?

भविष्यकालीन विषयों और घटनाओं के ये संसर्ग, यद्यपि उनका अनुभव मनुष्य वर्तमान में बिना उद्देश्य के तथा अनजान में करता है, आपहीआप विकसित होते है और मनुष्य के अपनी स्वप्न अवस्था में नाटक का कर्त्ता होने के कारण अनिवार्य रूप से वहाँ होते हैं ।

जैसे ही मनुष्य अपने प्रसुप्त संस्कारों के उभाड़ के द्वारा अपनी स्वप्न अवस्था के नाटक का कर्त्ता बनता है वैसे ही स्वयं उसके प्रसुप्त संस्कारों के इस उभाड़ से ही उसका भूत प्रतिविम्बित होता है, मानो वह सचमुच ही उसका वर्तमान हो, और तब वह मनुष्य अपने को इस नाटक में फँसा पाकर, अपने भूत को अब भी अपना वर्तमान बनाये हुये अपने भूत में लीन हो जाता है ।

इस रीति से मनुष्य, यद्यपि हर समय वर्तमान में रहता हुआ, अनभिप्रायपूर्वक तथा अनजान में अपने भूत को सुरक्षित किये रहता है और उसे अपना वर्तमान बनाये रखता है । किन्तु जब मनुष्य अपना भूत सुरक्षित किये रखता है, तब वह (साथ-साथ कर्त्ता होने के कारण) अपनी स्वप्न अवस्था के नाटक में विषयों के साथ अपने सहज संसर्गों के द्वारा अपनी सृष्टि का समकालिक रक्षक भी बन जाता है । स्वयं ये संसर्ग, यद्यपि अनभिप्रायपूर्वक स्थापित होते हुये, नाटक का सिलसिला बनाये रखने हैं और कर्त्ता को रक्षक की भी बूमिका प्रदान करते हैं ।

जोकुछ गुज़र चुका है उस सबकी रक्षा करने की प्रत्येक छोटी

establish future associations with it in advance, yet all the while remain ignorant of the object until it is eventually contacted and consciously associated with in an awake state one day in the distant future?

Even if such a thing be really possible, and if the future is being inadvertently probed by man in his dream, then from where does futurity spring into man's present?

How could man living in the present through his own impressions of the past ever come to grips with futurity, even in a dream state, and associate in advance with impressions of future incidents and objects? What is it that endows man with the faculty of prescience?

These very associations with future objects and incidents, though experienced inadvertently and unknowingly by man in the present, are automatically developed and are inevitably there by virtue of man's being the creator of the drama in his dream state.

No sooner does man become the creator of the drama of his dream state through the projection of his dormant impressions, than this very projection of his own dormant impressions reflects his past as if it were really his present, and man, finding himself involved in this drama, gets absorbed in his past while still maintaining his past to be his present.

In this manner, although all the time remaining in the present, the man inadvertently and unknowingly continues to preserve his past, maintaining it to be his present. But when man continues to preserve his past, he (being at the same time the creator) also concurrently becomes the preserver of his own creation through his spontaneous associations with the objects in the drama of his dream state. These very associations, though inadvertently established, maintain the continuity of the drama and endow the creator with the role of the preserver as well.

In every wee-bit act of preservation of all of that which has passed, man in his present, as the preserver of his past, inadvertently and

क्रिया में, मनुष्य अपने वर्तमान में, अपने भूत के रक्षक के रूप में, अनभिप्रायपूर्वक तथा अनजान में, अपने भूत को अपने वर्तमान के रूप में जो वर्तमान सदैव भूत के भविष्य के रूप में बना रहा था, सुरक्षित रखने की क्रिया के द्वारा साथ-साथ अपने तात्कालिक वर्तमान में भविष्य की स्थापित भी करता है ।

उदाहरण के लिये एक मनुष्य को ले लीजिये जो अपने को आज के वर्तमान में जीवन व्यतीत करता हुआ पाता है और जो गुज़रे हुये कल को अपना समस्त भूत समझता है, तथा आगामी कल को अपना सकल भविष्य मानता है ।

अब जैसे ही यह मनुष्य यह प्रतिपादन करता है कि वह आज के वर्तमान में जीवन व्यतीत कर रहा है, वैसे ही वह, आज वर्तमान में अपने को जीवित मानने के द्वारा ही, अनभिप्रायपूर्वक तथा अनजान में, गुज़रे हुये कल के उस भूत को न केवल आज के वर्तमान के रूप में सुरक्षित कर देता है वरन् उसको आगामी कल के भविष्य के रूप में भी सुरक्षित कर देता है ।

वह मनुष्य, आज के वर्तमान में अपने को जीवित मानता हुआ गत कल के उस भूत की रक्षा करने की प्रत्येक अल्प क्रिया में, अनभिप्रायपूर्वक तथा अनजान में आज के अपने वर्तमान में, इस आज को विगत कल के भविष्य के रूप में भी स्थापित करता है ।

यही कारण है कि यद्यपि भूत और भविष्य अपनी निजी स्थिति रखते हैं, फिर भी ये दोनें सतत् और साथ-साथ केवल वर्तमान में सुरक्षित हैं । केवल वर्तमान के कारण ही बूत और भविष्य दोनों को अपने संयोग का बिन्दु सतत् वर्तमान में प्राप्त होता है ।

सत् की अनन्तता में कोई काल नहीं है* । उसमें भूत नहीं है और न भविष्य है, केवल नित्य वर्तमान है । इसलिये अनन्तता में कभी कुछ भी घटित नहीं हुआ और न कभी कुछ घटित होगा । यदि कुछ किसी

* अन्न भुवन, प्राण भुवन और मन भुवन का अस्तित्व केवल कल्पना में है, इसलिये काल और देश का अस्तित्व केवल कल्पना में है, अतएव काल का कोई महत्व नहीं है, और तीन भुवनों में से प्रत्येक में वह केवल सापेक्ष माहात्म्य रखता है जो एक-दुसरे से बिल्कुल स्वतन्त्र होते हैं । इस प्रकार अन्न भुवन का काल प्राण और मन भुवनों के काल से स्वतन्त्र होता है; प्राण भुवन का काल अन्न और मन भुवनों के काल से स्वतन्त्र होता है; और मन भुवन का काल ...

unknowingly, also simultaneously establishes the future in his very present by the very act of preserving his past as his present, which present had remained always as the future of the past.

Take for example a man who finds himself living in the present of today and who looks upon yesterday as all of his past, and tomorrow as all of his future.

Now as soon as this man asserts that he is living in the present of today, he inadvertently and unknowingly has preserved that past of yesterday not only as the present of today but also as the future of tomorrow, just by maintaining himself as alive today in the present.

In every wee-bit act of preserving that past of yesterday while maintaining himself as living in the present of today, that man also inadvertently and unknowingly establishes in his present of today, this today as the future of yesterday.

So it is that although the past and the future have their own stand, yet both of these are consistently and concurrently preserved only in the present. It is only because of the present that both the past and the future find their point of fusion everlastingly in the present.

In the eternity of existence there is no time.* There is no past and no future, only the everlasting present. Therefore, in eternity nothing has ever happened and nothing will ever happen. Everything is happening in the

* The gross, subtle and mental spheres exist only in imagination, and so time and space exist only in imagination. Time therefore has no absolute value, and in each of the three spheres it has purely relative values that are quite independent of each other. Thus time on the gross sphere is independent of time on the subtle and mental spheres; time on the subtle sphere is independent of time on the gross and mental spheres; and time on the mental sphere is independent of time on the gross and subtle spheres. A dream is nothing more than an experience of gross things by means of the subtle organs, and we have all been told how a long and intricate dream may take place in an impossibly brief moment in that imaginary time which is measured by the movements of the hands on our wrist watch.

तरह से घटित हो रहा है, तो वह सब अनन्त वर्तमान में घटित हो रहा है; क्योंकि वह सब जो प्रत्यक्षतया घटित हो चुका है, वह सब जो प्रत्यक्षतया घटित हो रहा है और वह सब जो मायावी ऐहिक विश्व में सदैव पत्यक्षतया घटित होगा, वह सबकुछ है जो ईश्वर पहले ही स्वप्न में उस क्षण देख चुका है जबकि स्वयं उसकी मूल अनन्त लहर "**मैं कौन हूँ ?**" के रूप में उठी थी । इसलिये, यथार्थ में कुछ भी घटित नहीं हुआ और कभी कुछ भी घटित न होगा ।

जब मनुष्य अपनी स्वप्न अवस्था में भूत, वर्तमान और भविष्य तक के रूपों से साहचर्य करता है, तब वह साहचर्य पैदा करने की केवल बूमिकाओं का आविष्कार करता है, फिर उस साहचर्य को सुरक्षित करता है, और अन्ततः उस साहचर्य का नाश कर देता है, जबकि पूरे समय वह प्रतिपादित करता है कि वह अपनी स्वप्न अवस्था के वर्तमान में इन सबका साक्षी है ।

सभी सृजित एवं सुरक्षित चीज़ों, जीव-जन्तुओं तथा प्राणियों के सृजन और सुरक्षा के—चाहे वह स्वप्न अवस्था में हो या जागृत अवस्था में हो—इन्हों आधारों पर ही वर्तमान के प्रत्येक कदम में एक अनिवार्य विनाश सृजित तथा सुरक्षित सकल चीज़ों के भविष्य के रूप में झूमता है ।

जिस चीज़ का भी आदि है उसका अनिवार्य अन्त अवश्य होना चाहिये; और सकल सृजित चीज़ों का विनाश अनिवार्यरूप से अवश्यमेव होना चाहिये चाहे, चेतनतया अथवा अचेतनतया भविष्यकाल की प्रत्याशा विनाश के रूप में करते हुते, ऐसी चीज़ों को कितना ही अधिक क्यों न सुरक्षित किया जाय । रक्षा करने की क्रिया में ही, मनुष्य वर्तमान में आपहीआप उन सब चीजों का रक्षक बन जाता है जिनका सृजन उसने भूत में किया था । मनुष्य रक्षक बन जाता है, क्योंकि उसे भविष्य का ज्ञान होता है जो निश्चित विनाश के भेस में अटलतया उसके सामने रहता है, और जो विनाश भविष्यकाल के रूप में अपनी अनिवार्य बारी

... अन्न और प्राण भुवनों के काल से स्वतन्त्र होता है । स्वप्न सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा प्राप्त हुये स्थूल चीज़ों के अनुभव के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है, और हम सबको बताया जा चुका है कि एक लम्बा और पेचीदा स्वप्न किस प्रकार एक असम्भवतया सूक्ष्म क्षण में अस काल्पननिक काल के अन्तर्गत घटित हो सकता है जिस काल की नाप हमारी हाथ की घड़ी की सुइयों की चाल से की जाती है ।

unending NOW, if there is anything happening at all; because all that has apparently happened, all that is apparently happening and all that will ever apparently happen in the illusory cosmic universe is all that which God has already dreamt the moment His own original infinite whim surged as "WHO AM I?" So, really speaking, nothing has happened and nothing will ever happen.

When man in his dream state associates with past, present and even future forms, he simply invents the roles of creating association, then preserving that association and eventually destroying that association, while all the time maintaining that he is the witness to all these in the present of his dream state.

On these very bases of the creation and preservation of all things, creatures and beings created and preserved—whether in the dream state or in the awake state—there hinges at every step in the present an inevitable destruction as the future of all things created and preserved.

Anything that has its beginning must have its inevitable end; and all things created must inevitably be destroyed however much such things be preserved, anticipating futurity, advertently or inadvertently, as destruction. In the very act of preservation, man in the present automatically becomes the preserver of all things that he created in the past. Man becomes the preserver, being in the know of the future that consistently confronts him in the garb of unfailing destruction that awaits its inevitable turn as futurity. Of course, man himself is really not aware that he knows the future, but the very fact that he is the preserver shows

की प्रतीक्षा करता है । निःसन्देह, स्वयं मनुष्य को सचमुच यह **भान नहीं होता** कि वह भविष्य का ज्ञान रखता है, किन्तु स्वयं यह तथ्य कि वह रक्षक है प्रदर्शित करता है कि वह अवश्य ही विनाश की प्रत्याशा करता होगा; और चूँकि विनाश भविष्यकाल के प्रदेश से सम्बन्धित है इसलिये पनुष्य, भविष्य का ज्ञान रखने का भान न रखते हुये भी, हर समय यह जानता है कि वह वर्तमान में रक्षक का पार्ट अदा करने में तत्पर है ।

सृष्टि बनने की क्रिया ही में, सकल सृजित चीज़ों का संरक्षण पीछे लगा आता है और सृष्टा को उसके साथ-साथ बलात् रक्षक का पार्ट अदा करना पड़ता है । साथ ही साथ, रक्षक बनने की क्रिया ही में, सकल संरक्षित चीज़ों के विनाश की प्रत्याशा की जाती है । इसलिये, जान में अथवा अनजान में, सकल चीज़ों की रक्षा की जाती है, और इसलिये संरक्षक, अनिवार्य विनाश की प्रत्याशा करता हुआ, सकल सृजित एवं संरक्षित चीज़ों के भविष्य की स्थापना वर्तमान में करता है ।

अपनी मूल अनन्त दैवी स्वप्न अवस्था में ईश्वर एक ही समय कर्त्ता, धर्त्ता और हर्त्ता के तीनों पार्ट शाश्वतः अदा करता है ।

जब ईश्वर अपनी ही अनन्त प्रकृति की रक्षा करने की प्रक्रिया में होता है, तो वह उसी समय पहले से ही भविष्य में होता है, और जोकुछ उसने रचा था उसकी रक्षा करने से, जो बीत चुका है, उसके सामने उसके सनातन वर्तमान तक में भविष्य निश्चितरूप से स्थापित हो जाता है, जो भविष्य भूत में सृजित तथा वर्तमान में संरक्षित उसकी सकल सृष्टि का विनाश कर देगा । इसलिये ईश्वर, सर्वज्ञ तथा शाश्वतः वर्तमान का होने के कारण, भूत का ज्ञान रखता है जिसे वह वर्तमाण के रूप में नित्य सुरक्षित रखता है; और साथ-साथ वह अपने शाश्वत वर्तमान में, आगे से भविष्य के सकल का अनुभव भी निरन्तर करता है ।

इसी प्रकार से, मानव अवस्था में ईश्वर, मनुष्यवत्, हर समय अपनी स्वप्न अवस्था में अनजान में वह देखता है जिसका अनुभव उसको उसकी जागृत अवस्था के भविष्य में भी होगा । इस प्रकार मनुष्य को मालूम होता है कि उसको कभी-कभी ऐसी चीज़ों का पूर्वज्ञान प्राप्त होता है जो समय गुज़रने के बाद घटित होती हैं ।

सारांश यह है कि :— सृजन की क्रिया ही में, संरक्षण और विनाश की क्रियायें भी विद्यमान होती हैं; इसलिये, माया का सृजन

that he must be anticipating the destruction; and as destruction belongs to the domain of futurity, the man, though not aware that he knows the future, is knowing it all the time that he is engaged in playing the role of the preserver in the present.

In the very act of becoming the creator, preservation of all things created follows and the creator, perforce, simultaneously has to play the role of the preserver. Concurrently, in the very act of becoming the preserver, destruction of all things preserved is anticipated. Therefore, all things are advertently or inadvertently preserved, and the preserver therefore establishes in the present the future of all things created and preserved, anticipating the inevitable destruction.

God in His original infinite divine dream state eternally plays the three roles of the Creator, the Preserver and the Destroyer simultaneously.

When God is in the process of preserving His own infinite Creation, He is already at the same time in the future, and having preserved what He created, which has passed, the future is definitely established before Him even in His eternal present, which future will destroy what He created in the past and what He preserved in the present. Therefore God, being omniscient and eternally of the present, knows of the past which He eternally preserves as the present; and also, at the same time, He constantly experiences in advance, in His eternal present, all that which is of the future.

Similarly, God in the man state, as man, inadvertently witnesses all the time in his dream state that which is also to be experienced in the future of his awake state. Man thus finds that he sometimes has prescience of things that come to pass after a lapse of time.

To sum up: In the very act of creation, the acts of preservation and destruction are also present; so, by creating illusion God, as it were, simultaneously preserves and destroys it.

करने के द्वारा ईश्वर साथ ही साथ, मानो उसका संरक्षण और विनाश भी करता है ।

इसलिये यथार्थ में किसी चीज़ की सृष्टि नहीं होती जो संरक्षित और नष्ट होने के लिये रहती हो, क्योंकि रचित सृष्टि **शून्य** की होती है, और इस **शून्य** का वास्तव में अर्थ है सर्वथा बिल्कुल कुछनहीं ।

यद्यपि यह **शून्य** वास्तव में बिल्कुल कुछ नहीं है, फिर भी जब यह कहा जाता है कि **शून्य** का सृजन **ब्रह्मा** करता है, संरक्षण **विष्णु** करता है और संहार **महेश** अथवा **शिव** करता है, तो यह कथन केवल अनन्त माया की भाषा में किया जाता है, अर्थात् ईश्वर के मायावी विश्व—ब्रह्माण्ड‡—से सम्बन्धित अपार दैवी स्वप्न अवस्था की भाषा में किया जाता है ।

सत्यता की अनन्तता में रचना, संरक्षण अथवा विनाश जैसी कोई चीज नहीं है, न उसमें देश (*space*) है, और न उसमें सापेक्षता के लिये कोई गुन्जाइश है, और उससे बी बहुत कम उसमें काल के, भूत, वर्तमान और भविष्य जैसे, परस्पर सम्बद्ध खण्डों का कभी कोई अस्तित्व नहीं हो सकता ।

सत्यता की अनन्तता में, एक, अपार, सनातन, सर्व-व्यापक सत् है ।

संक्षेप में, जब किसी मनुष्य की चेतना उसको **शून्य** के संस्कारों का अनुभव अन्तर-चेतना द्वारा कराती है, तब यह कहा जाता है कि वह मनुष्य स्वप्न देख रहा है । जब मनुष्य की चेतना उसको उसी **शून्य** के संस्कारों का अनुभव पूर्ण चेतनतया अत्यधिक सत्यरूप में कराती है, तब यह कहा जाता है कि वह स्वप्न के अन्दर एक और स्वप्न देख रहा है, अथवा वह स्वप्न के अन्दर एक खाली स्वप्न देख रहा है, और वह **शून्य** में शून्य का अनुभव कर रहा है । इसलिये यह कथन अत्यन्त उपयुक्त है कि दुनियाँ और उसके कार्य **शून्य** के अन्दर **शून्य** हैं—स्वप्न के अन्दर स्वप्न हैं । इसका यह अर्थ है कि ईश्वर मानव अवस्था में मनुष्य के जीवन का अनुभव दैवी स्वप्न के अन्दर एक खाली स्वप्न के रूप में करता है,

(१०८)

‡ तीन पहलुओं में—"कर्त्ता", "भर्त्ता", और "हर्त्ता"—भर्त्ता अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि 'वर्तमान' जो भूत को और भविष्य को धारण करता है अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसलिये, "परवरदिगार (विष्णु)"—अर्थात् भर्त्ता—ईश्वर का अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है ।

In reality, therefore, nothing is created that remains to be preserved and destroyed, because the created Creation is of the Nothing, and this Nothing in reality means absolutely nothing in all respects.

Though this Nothing is indeed nothing at all, yet when it is said that the Nothing is created by Brahma, preserved by Vishnu and destroyed by Mahesh or Shiva, it is spoken of only in terms of the infinite illusion, i.e., in terms of the infinite, divine dream state of God related to the illusory universe—the brahmand.*

In the eternity of reality there is absolutely no such thing as creation, preservation or destruction, neither is there space, nor is there any scope for relativity, much less could there ever be the correlated factors of time, such as the past, present and future.

In the eternity of Reality, the one, infinite, eternal, all-pervading existence is.

In short, when the consciousness of a man makes him experience the impressions of the Nothing sub-consciously, the man is said to be dreaming a dream. When the consciousness of the man causes him to experience more realistically the impressions of the same Nothing full-consciously, the man is said to be dreaming yet another dream into the dream, or he is said to be dreaming into the dream a vacant dream, experiencing the Nothing into Nothing. Hence it is said most appropriately that the world and its affairs are Nothing into Nothing—dream into dream. This means that God in the man state experiences the life of man as a

* Of the three aspects—Creator, Sustainer and Dissolver—Sustainer is the most important because "The Present" which sustains the past and the future is most important. Therefore, Parvardigar (Vishnu)—the Sustainer—is the most important aspect of God.

जिसका अर्थ है **सृष्टि** । अथवा, दूसरे शब्दों में, मनुष्य का जीवन ईश्वर का केवल एक और स्वप्न है जो ईश्वर दैवी स्वप्न अथवा सृष्टि के अन्तर्गत देखता है ।

यद्यपि ईश्वर ने मानव अवस्था में पूर्ण चेतना प्राप्त कर ली है और वह **शून्यता** की मिथ्या अपारता के विविध संस्कारों का मिथ्या अनुभव, स्थूल जगत की सत्यन्त के रूप में, करता है, तथापि यह पूर्ण चेतना और ये असंख्य संस्कार सब लीन हो जाते हैं अथवा निकल जाते हैं जिस समय ईश्वर मानव अवस्था में गहरी निद्रा अवस्था में हो जाता है, और दैवी गहरी निद्रा की अपनी मूल दैवी अवस्था का दृढ़ प्रोतपादन परोक्षरूप से करता है । जब ईश्वर मानव अवस्था में प्रतिदिन अपनी गहरी निद्रा अवस्था से पूर्णतया जागता है, तो पूर्ण चेतना जो गहरी निद्रा के समय प्रसुप्त पड़ी रही थी तथा असंख्य संस्कार जो गहरी निद्रा में लुप्त हो गये थे (अर्थात् अदृश्य और अनुभव के बाहर हो गये थे) सबके सब अब उभड़ कर बाहर आते हैं और पुनः परिमित **शून्य** के मिथ्या अनुभव पैदा करके उसको यथार्थ और अपरिमित **शून्यता** के रूप में अभिव्यक्त करते हैं ।

बारी-बारी से आने वाली गहरी न्द्रिा और जागृत अवस्थाओं में चेतना तथा संस्कारों के बारी-बारी से होने वाले अन्तर्निधान एवं उभाड़ की यह अनन्त शृङ्खला तब तक जारी रहती है जब तक कि अन्ततः सकल संस्कार चेतना के पुनर्जन्म और प्रतिवर्धन की प्रक्रिया में विपरीत संस्कारों का अनुभव करने के द्वारा पूर्णतया समाप्त नहीं हो जाते । तब इस प्रकार केवल संस्काररहित चेतना ही ईश्वर को उसकी मूल, शश्वत, अनन्त, यथार्थ ईश-अवस्था का चेतन अनुभव प्रदान करने के लिये रह जाती है ।

चूँकि ईश्वर को मनुष्य-योनि के द्वारा अनिवार्यरूप से पूर्ण एवं संस्कार-शून्य चेतना प्राप्त होती है, इसलिये मनुष्य की विभिन्न अवस्थायें ईश्वर की विभिन्न अवस्थाओं से तुलना करने के लिये उदाहरण स्वरूप ली जा सकती हैं ।

मानव अवस्था में ईश्वर की गहरी निद्रा अवस्था न केवल ईश्वर की दैवी गम्भीर निद्रा के सदृश है वरन् वह **ईश्वर-है की** परात्पर परब्रह्म

vacant dream into the divine dream, which means Creation. Or, in other words, the life of man is yet but another dream of God in the dreaming of His divine dream or the Creation.

Although God in the man state has gained full consciousness and falsely experiences the multifarious impressions of the false infinity of Nothingness as the reality of the gross world, this full consciousness and these innumerable impressions are all absorbed or gulped in while God in the man state passes away in the sound sleep state, indirectly asserting His original divine state of divine sound sleep. When God in the man state completely wakes up every day from His sound sleep state, the full consciousness which lay dormant during sound sleep and the multitude of impressions which had vanished (i.e., out of sight and out of experience) in the sound sleep are now all catapulted out to produce once again the false experiences of the finite Nothing manifesting as real and infinite Nothingness.

This unending chain of alternating absorption and ejection of consciousness and impressions in the alternating sound sleep and awake states continues until ultimately all of the impressions are ousted or wiped off clean through the experiencing of the opposite impressions in the processes of reincarnation and involution of consciousness. Thus impressionless consciousness alone remains to give God the conscious experience of His original, eternal, infinite, real God-state.

As God invariably gains full and unimpressioned consciousness through the human-form, the different states of man may be taken as examples with which to compare the different states of God.

The sound sleep state of God in the man state not only resembles the divine sound sleep state of God but is literally the same original divine

अवस्था में, जहाँ कि अनन्त, पूर्ण शून्यता व्याप्त रहती है,† शब्दशः ईश्वर की वही मूल दैवी गम्भीर निद्रा अवस्था है ।

अब मनुष्य गहरी निद्रा अवस्था में हो जाता है, तो उसमें निपट रिक्तता, और चेतना का पूर्ण अभाव व्याप्त होते हैं, और यद्यपि मनुष्य में "आत्मा" (*self*) सामान्यतः श्वास लेती रहती है, तथापि मनुष्य की उस "आत्मा" में उसके सीमित "मैं" अथवा अहं की चेतना नहीं होती, और न उसमें सीमित मन, प्राण, शरीर अथवा अहं की चेतना नहीं होती, और न उसमें सीमित मन, प्राण, शरीर अथवा जगत की चेतना होती है । मनुष्य के अनतर्गत आत्मा को स्वयं अपने अस्तित्व की भी चेतना नहीं होती । संक्षेप में, मनुष्य की गहरी निद्रा अवस्था में "आत्मा-है" और चेतना "नहीं-है" ।

जिस समय मनुष्य अपनी गहरी निद्रा अवस्था से प्रतिदिन जागता है, वह सामान्यतः किसी कारण से जागृत नहीं होता सिवाय इसके कि स्वयं उसकी ही संस्कारों की प्रसुप्त चेतना उसकी आन्तरिक चेतना को प्रेरित अथवा उत्तेजित करती है जिससे वह चेतना को उभाड़े और प्रसुप्त

(११०)

† ईश्वर-साक्षात्कार और गम्भीर निद्रा के बीच गहरा तथा बहुत वास्तविक सम्बन्ध है । आत्मा की सनातन अभिलाषा ईश्वर से ऐक्य प्राप्त करने के लिये होती है, किन्तु चूँकि चेतना स्थूल जगत से अपना लगाव कर लेती है इसलिये आत्मा केवल स्थूल जगत से अपना ऐक्य करती हुई प्रतीत होती है । उदाहरण के लिये, पाषाण अवस्था में स्थूल चेतना आत्मा को पत्थर से अपना तादात्म्य करने के लिये प्रवृत्त करती है यद्यपि वास्तव में हर समय आत्मा का ऐक्य ईश्वर से रहता है । इसको और स्पष्ट करने के लिये, मान लीजिये कि आप अफ़सि खाते हैं अथवा कोई नशा पीते हैं । उससे आप उत्तेजित अथवा खिन्न चित्त होते हैं, यद्यपि आपके शरीर में कोई आमूल परिवर्तन नहीं होता, और उससे केवल आपकी चेतना प्रभावित होती है और आपकी भावनाओं को उत्पन्न करती है । इस प्रकार आप, व्यक्तिगत आत्मा के रूप में, चौबीसों-चन्टे ईश्वर के अन्तर्गत हैं तथा उसके साथ-एक हैं, यद्यपि आपको केवल स्थूल चेतना की अनुभूति होती है ।

पुनः, मान लीजिये कि आपको थकान तथा अकबकाई मालूम पड़ती है और आप सो जाते हैं । आप यह क्या करने का प्रयत्न कर रहे हैं ? यह और कुछ नहीं है, केवल ईश्वर में—अपनी स्वाभाविक एवं अन्तर्वर्ती अवस्था में—आश्रय लेने का प्रयत्न है । इसलिये कुछ समय के लिये गहरी निद्रा अवस्था में प्रवेश करके परमात्मा में आश्रय लेने की यह चेतन अथवा अचेतन प्रवृत्ति अखिल सृष्टि में विद्यमान है ।

sound sleep state of God in the Beyond the Beyond state of God-Is where unbounded, absolute vacuum prevails.*

When man passes away in the sound sleep state, absolute vacuum and no consciousness prevails, and though the "self" in man continues to breathe normally, yet in that "self" of man there is no consciousness of its limited "I" or ego, nor is there consciousness of the limited mind, energy, body or the world. The self in man is not even conscious of its own being. In short, in the sound sleep state of man the "self-is" and consciousness "is-not."

When a man wakes up daily from his sound sleep state he normally just wakes up for no reason whatsoever except that his own dormant consciousness of impressions urges or excites his sub-consciousness to eject out the consciousness, and experience the dormant impressions

* There is a profound and very real relationship between God-realization and sound sleep. The eternal desire of the soul is to become one with God, but because consciousness attaches itself to the gross, the soul seems to become one merely with the gross. In the stone state, for instance, gross consciousness makes the soul identify itself with the stone although, in reality, the soul is all the time one with God. To make this clearer, let us suppose that you take opium or an intoxicating drink. You feel elated or depressed, although there is no radical change in your body, and it is only the consciousness that is affected and gives rise to your feelings. Thus you, as an individual soul, are twenty-four hours within and one-with God, although you feel merely gross-conscious.

Again, let us suppose that you feel tired and fed up and that you go to sleep. What is it that you are trying to do? It is nothing but to try to take refuge in God—your natural and inherent state. The whole Creation therefore has this conscious or unconscious tendency to take shelter in God the Over-Soul by entering the state of sound sleep for a time.

blank page

blank page

चार्ट ३

यथार्थ जागृति



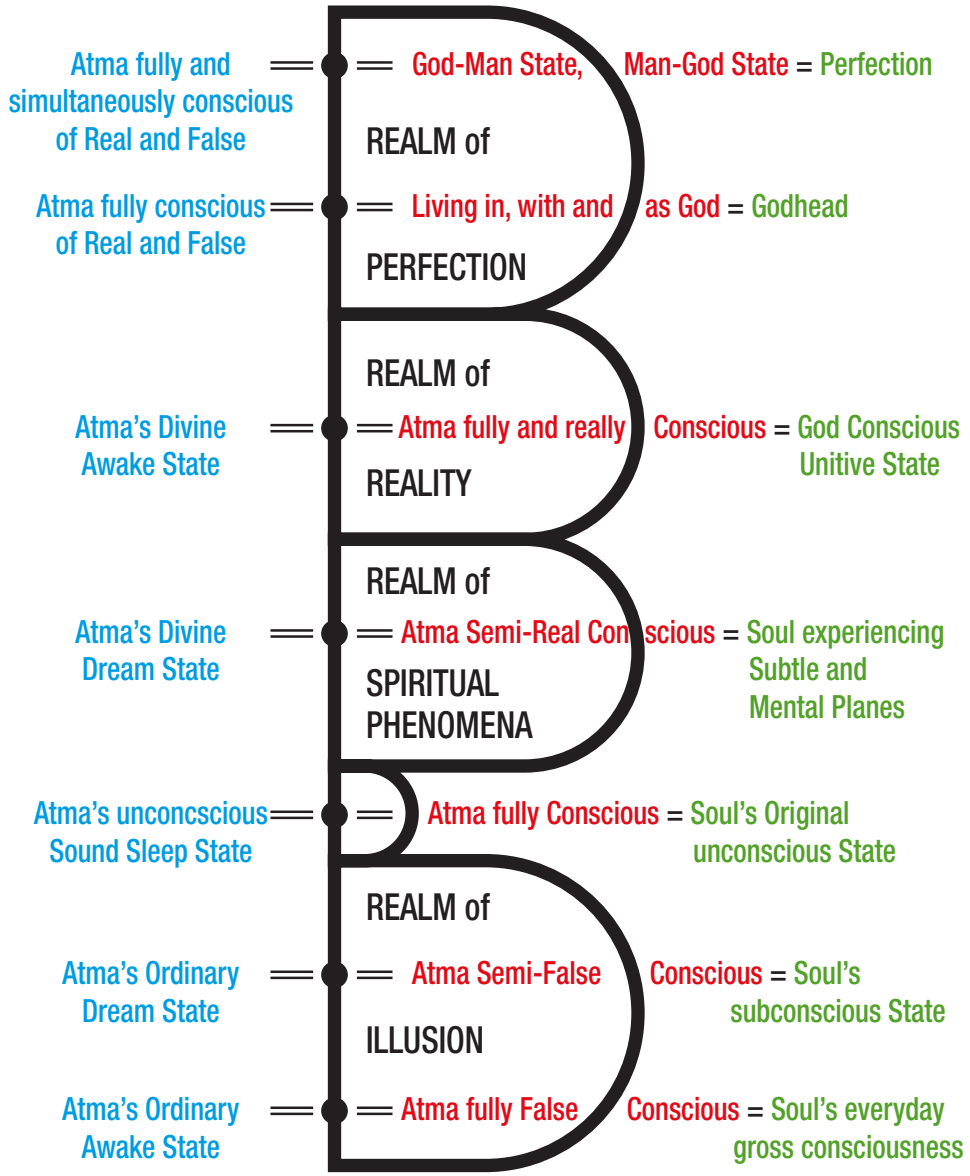
एक समुचे जीवन के दौरान, चेतना के विकास के प्रारम्भ से लेकर चेतना के प्रतिवर्धन के अन्त तक, तमाम मृत्युयें एक जीवन काल के दौरान, तमाम निद्राओं के समान हैं ।

वह मनुष्य जो खुद के लिये जीवित रहता है यथार्थ में मुर्दा है और जो मनुष्य ईश्वर के लिए मरता है यथार्थ में जीवित है ।

मेहेर बाबा

CHART III

REAL AWAKENING



The so many deaths during the one whole life, from the beginning of evolution of consciousness to the end of involution of consciousness, are like so many sleeps during one lifetime.

One who lives for himself is truly dead and one who dies for God is truly alive.

— Meher Baba —

संस्कारों का अनुभव करे जो गहरी निद्रा में प्रत्यक्षतया लुप्त हो जाते हैं । इसलिये जैसे ही मनुष्य जागता है, वैसे ही उसको अनिवार्यरूप से तथा साथ-साथ पहले उसके पास-पड़ोस की चेतना प्राप्त होती है और फिर क्रमशः खुद उसकी "खुदी" की तथा उस खुदी के सकल साजो-सामान की—अर्थात् सीमित "मैं", मन, प्राण, शरीर और जगत की—चेतना प्राप्त होती है ।

इसी प्रकार से, मूल दैवी गम्भीर निद्राा अवस्था में स्थित ईश्वर की अपार, मूल रिक्तता से जागृत करने के लिये यथार्थ **हेतु**—मूल हेतु—नितान्त स्वाधीन ईश्वर की मूल, अनन्त लहर की थी और उसके अतिरिक्त कोई अन्य अर्थ, युक्ति तथा कारण न था ।

जिस प्रकार किसी मनुष्य को, जो अपनी गहरी निद्रा अवस्था* से जागता है, पहले अनिवार्यरूप से स्वप्न की अवस्था से गुज़रना पड़ता है और फिर स्वप्न की अर्ध-चेतन अवस्था के बाद (जो स्वप्न लम्बे समय तक टिक सकता है अथवा केवल एक क्षण रह सकता है) पूर्ण चेतना प्राप्त करके पूर्णतया जागृत होना पड़ता है, उसी प्रकार "**ईश्वर-है**" अवस्था में स्थित ईश्वर की भी स्थिति होती है । अपनी मूल दैवी गम्भीर निद्रा अवस्था से पूर्णतया जागने के पहले, ईश्वर अनिवार्यरूप से दैवी अर्ध-चेतन अवस्था का अनुभव करता है जो दैवी स्वप्न अवस्था अथवा विधाता अवस्था है ।

मूल, अनन्त लहर ने, **हेतु** के रूप में, ईश्वर में अत्यन्त-परिमित चेतना की प्रथम धारा का आविर्भाव किया । इस अत्यन्त-परिमित चेतना ने ईश्वर को, जो अब अर्ध-चेतन अवस्था में था, अन्तर-चेतना के द्वारा अन्तर्हित **शून्य** के अत्यन्त-परिमित संस्कार का अनुभव कराया, जो **शून्त** भी **शून्यता** के रूप में अभिव्यक्त हो गया था । **शून्यता** के अत्यन्त-परिमित प्रथम संस्कार के इस अनुभव ने "**दैवी स्वप्न**" का—अर्थात् विश्व की रचना का—प्रारम्भ कर दिया ।

इस प्रकार **ईश्वर-है** अवस्था के अन्दर चेतना की इस प्रथम धारा ने ईश्वर को दैवी अन्तर-चेतना से भर दिया जिसने बदले में ईश्वर को दैवी अर्ध-चेतन अवस्था प्रदान की जो दैवी गम्भीर निद्रा अवस्था में था । इस दैवी अर्ध-चेतन अवस्था में, ईश्वर दिव्यरूप से स्वप्न देखता है और

* पृष्ठ १११ के सामने लगे चार्ट "यथार्थ जागृति" को देखिये ।

which apparently vanish in sound sleep. Therefore, as soon as the man wakes up, he invariably and simultaneously gains consciousness at first of his surroundings and gradually then of his own "self" with all of its paraphernalia of the limited "I," the mind, energy, the body and the world.

Similarly, no rhyme, no reason and no cause other than the original, infinite whim of the absolutely independent God was the actual Cause—the original cause—for God in the original divine sound sleep state to wake up out of the unbounded, original vacuum.

Just as a man, who wakes up from his sound sleep state,* has invariably to pass through the state of dreaming first and then wake up completely, gaining full consciousness after the semi-conscious state of the dream (which may last for a very long duration or may last only for a split second), so, too, is it the case with God in the God-Is state. Before completely waking up from His original divine sound sleep state, God necessarily experiences the divine semi-conscious state which is the divine dream state or the creator state.

The original, infinite whim, as the Cause, manifested the first trickle of most-finite consciousness in God. This most-finite consciousness made God, now in a semi-conscious state, experience through sub-consciousness the most-finite impression of the latent Nothing which was also manifested as the Nothingness. This experience of the most-finite first impression of Nothingness began the "divine dream"—the creation of the universe.

Thus the first trickle of consciousness in the God-Is state in-fused God with the divine sub-consciousness which in turn bestowed the divine semi-conscious state upon God Who was in the divine sound sleep state. In this divine semi-conscious state, God dreams divinely and experiences

* See chart "Real Awakening" facing this page.

दैवी स्वप्न, अथवा **सृष्टि**, का अनुभव, यथार्थ दैवी जागरण अवस्था के बहुत पहले करता है, जो अवस्था, उसको पूर्णतया जागृत करके, उसे ईश्वर का अनुभव प्रदान करेगी जो अपनी अनन्त, अपार, और असीमित दैवी प्रकृति की पूर्ण चेतना से सम्पन्न होगा ।

ईश्वर की यह दैवी अन्तर-चेतना भी **शून्य** से निकली थी जो शून्य **सबकुछ** की **ईशवर-है** अवस्था में अन्तर्हित था, और इसका उभाड़ अनिवार्यरूप से **सून्य बिन्दु,** अथवा ॐ बिन्दु, से होकर **सबकुछ** की मूल निपट शून्यता में हुआ था ।

मूल निपट रिक्तता के अन्दर सृष्टि बिन्दु से होकर निकली हुई, ईश्वर की दैवी अन्तर-चेतना के उभाड़ की तरंगों ने, ईश्वर की दैवी गहरी निद्रा अवस्था में मन्थन पैदा कर दिया और ईश्वर की मूल श्वास, अथवा मूल **शब्द**—ब्रह्म **नाद**—का आविर्भाव किया तथा साथ-साथ देश, काल और ब्रह्माण्ड का आविर्भाव, उसके सकल साजो-सामान, अर्थात् सीमित एवं परिमित अहं, मन, प्राणशक्ति तथा व्यक्तिगत और बहुविध योनियों, सहित किय ।

जैसे ही दैवी स्वप्न अवस्था में ईश्वर की अपार दैवी अन्तर-चेतना का उभाड़ गतिशील होता है वैसे ही दैवी स्वप्न, अथवा **सृष्टि,** का विकास प्रारम्भ हो जाता है, और ईश्वर दैवी अर्ध-चेतन अवस्था में न केवल दैवी स्वप्न का अनुभव करने लगता है वरन् साथ-साथ वह, उन सब चीज़ों से जिनको वह जगद् विकास के क्षेत्र में अनुभव करता है अपना तादात्म्य एवं साहचर्य करके, अपने दैवी स्वप्न में ग्रस्त हो जाता है ।

जब ईश्वर की अनन्त दैवी अन्तर-चेतना सृष्टि बिन्दु से होकर निपट रिक्तता में अपारतया उभड़ आती है, तब अखिल **सृष्टि** का उभाड़ क्रमशः होता है और वह दैवी अन्तर-चेतना के उभाड़ की प्रचण्डता के अनुसार आकार, शक्ल, शरीर, रंग, इत्यदि में विकसित होती है ।

इस स्थिति पर ईश्वर, दैवी गहरी निद्रा की परात्पर परब्रह्म अवस्था में, दैवी अपार अन्तर-चेतना का, जो ईश्वर में प्रसुप्त थी, पूर्ण उभाड़ हो जाते के बाद भी, तत्क्षण ही दैवी गहरी निद्रा से जागता है—पूर्णतया नहों वरन् अर्ध-चेतनापूर्वक ।

अब ईश्वर, अधिकतर विकसित दैवी अर्ध-चेतन अवस्था में होने के कारण, अधिक प्रबलता के साथ दैवी सप्न का अनुभव करता है और अपनी उसी **सृष्टि** के साथ अधिक प्रगाढ़तया अपना तादात्म्य तथा

the divine dream, or the Creation, much before the real, divine awakening state, which state, awakening Him completely, would give Him the experience of God fully conscious of His infinite, unbounded and unlimited divine nature.

This divine sub-consciousness of God also emerged from the Nothing which was latent in the God-Is state of the Everything, and necessarily was projected through the creation point, or Om point, in the original absolute vacuum of the Everything.

The very vibrations of the projection of the divine sub-consciousness of God, through the creation point in the original absolute vacuum, bestirred the divine sound sleep state of God and made manifest the original breath of God, or the original Word—the divine nad—together with space, time and the cosmic universe, with all of its paraphernalia of the limited and finite ego, mind, energy and the individual and multiple forms.

As the projection of the infinite divine sub-consciousness of God in the divine dream state gathers momentum, the divine dream, or the Creation, begins to evolve, and God in the divine semi-conscious state not only begins to experience the divine dream but simultaneously gets involved in His divine dream by identifying and associating Himself with all the things which He experiences in the field of cosmic evolution.

When the infinite divine sub-consciousness of God has projected infinitely through the creation point in the absolute vacuum, the whole Creation projects forth gradually and evolves in size, shape, form, colour, and so forth, in accordance with the intensity of the projection of the divine sub-consciousness.

At this stage God, in the Beyond the Beyond state of divine sound sleep, is just aroused from the divine sound sleep—not completely but semi-consciously—even after the complete emergence of the divine infinite sub-consciousness that was latent in God.

God, being now in the more evolved divine semi-conscious state, experiences more forcefully the divine dream and also identifies and associates Himself more intensely with His very Creation.

सहचर्य भी करता है ।

क्रमशः, यद्यपि अब अधिक पबलतया, ईश्वर अपने को जगद्विकास में, सबकुछ के रूप में अनुभव करता है और अपना तादात्म्य विश्वों, पवनों, जड़ और चेतन प्राणियों से करता है—जैसे पत्थर, धातुयें, वनस्पति, पक्षी, कृमि-कृटि, मछलियाँ, पशु और मनुष्य । इस प्रकार ईश्वर **अपने प्रथम शब्द "मैं कौन हूँ ?"** के प्रत्यक्षतया यथार्थ, किन्तु यथार्थतया मिथ्या, ऊपर पाता है, जैसे—"मैं पत्थर हूँ", "मैं धातु हूँ" इत्यादि, और अन्ततः उसको उत्तर प्राप्त होते है "मैं पुरुष हूँ", "मैं स्त्री हूँ" ।

जब ईश्वर अपनी एकरूपता मानव प्राणियों से करता है, तो वह अर्ध-चेतन नहीं रहता; क्योंकि दैवी स्वप्न अवस्था के अन्दर इस स्थिति पर, जैसे ही ईश्वर अपनी एकरूपता मानव योनि से करता है वैसे ही उसको पूर्ण चेतना प्राप्त हो जाती है ।

अब पूर्ण चेतना प्राप्त हो चुकने पर, इस चेतना को सकल स्वप्न हटा देने चाहिये, और ईश्वर को ईश्वर होने की अनुभूति प्रदान करके, उसको यथार्थ जागृत अवस्था का अनुभव कराना चाहिये । इस स्थिति पर, यद्यपि ईश्वर मानव प्राणियों से अपनी एकरूपता करता है और यद्यपि ईश्वर अब, महानतम चेतना‡ के भाव सहित, पूर्णतया चैतन्य होता है, तथापि ईश्वर को अपनी यथार्थ, दैवी जागृत अवस्था की अनुभूति नहीं होती, क्योंकि अब तक प्राप्त हुई पूर्ण चेतना **शून्य** की **शून्यता** की होती है जो अन्तर्हित था और जो अब खुद ईश्वर की दैवी अपार अन्तर-चेतना के उभाड़ के द्वारा सबकुछ के रूप में प्रत्यक्षतया प्रकट हो गया है । इससे ईश्वर यथार्थ सबकुछ के रूप में खुद की चेतना तथा ईश्वरवत् अपने स्वरूप की चेतना प्राप्त करने की बजाय अपनी आविर्भूत सृष्टि से अपनी एकरूपता करने में प्रवृत्त होता है ।

संक्षेप में, यह वह स्थिति है जिसमें कि ईश्वर, मानव प्राणियों से पूर्ण चेतनतया अपना तादात्म्य किये हुये, अब भी **ईश्वर-है** की अपनी यथार्थ एवं मूल अवस्था को भूला रहता है ।

(११३)

‡ मनुष्य योनि प्राप्त होने के पहले चेतना होती है किन्तु भान नहीं होता । गम्भीर निद्रा में न तो चेतना होती है न भान होता है । छठवीं भूमिका तक भान रहता है । सातवीं भूमिका में केवल चेतना होती है ।

Gradually, though now more forcefully, God experiences Himself as everything in the cosmic evolution and identifies Himself with the universes, the airs, the inanimate and animate beings—such as stones, metals, vegetation, birds, worms, fishes, animals and human beings. God in this way receives apparently real, but really false, answers to His First Word "Who am I?"—such as "I am stone," "I am metal," and so forth, and finally obtains the answers "I am man," "I am woman."

When God identifies Himself with human beings, He is no longer semi-conscious; because at this stage in the divine dream state, as soon as God identifies Himself with a human form He gains full consciousness.

Full consciousness now having been gained, this consciousness ought to dispel all dreams and cause God to experience the real awake state, giving Him the realization that He is God. At this stage, although God identifies Himself with human beings and although God is now fully conscious, with a feeling of greatest awareness,* yet God has not realized His real, divine awake state because the full consciousness thus far gained is of the Nothingness of the Nothing which was latent and which is now manifested apparently as Everything through the projection of His own divine infinite sub-consciousness. This leads God to identify Himself with His projected creation rather than to become conscious of Himself as the real Everything and of His own identity as God.

In short, this is the stage at which God, while identifying Himself with human beings in full consciousness, still remains quite oblivious of His own real and original state of God-Is.

* Before attaining human form there is consciousness but not awareness. In sound sleep there is neither consciousness nor awareness. Till the sixth plane there is awareness. In the seventh plane there is only consciousness.

पूर्ण चेतना की इस अवस्था में भी ईश्वर अब भी अपनी की सृष्टि की दुनियाँ का अनुभव करता रहता है, और महानतम भान के सहित वह उसी समय मानव प्राणियों से अपनी एकरूपता किये रहता है, और इस प्रकार संस्कारों की प्रबलता के अनुसार, जो स्वभाव में विपरीत होते हैं, वह कभी अपने को मनुष्य पाता है और कभी स्त्री के रूप में पाता है । दुसरे शब्दों में, ईश्वर मानव अवस्था में, यद्यपि भरपूर चेतना तथा पूर्ण भान रखते हुये, अपने को **ईश्वर-है** अवस्था में स्थित ईश्वर के रूप में अनुभव नहीं करता वरन् मानव अवस्था में स्थित मानव के रूप में, अपरिमित रूप में नहीं वरन् परिमित रूप में, अनुभव करता है ।

असत्य भासित होने वाली दुःखद बात यह है कि यथार्थ **ईश्वर** अब माया में अपनी यथार्थता को खो चुकने के कारण तथा **सत्यता** का अनुभव करने में स्वयं अपनी ही सत्यता को बाधक बना देने के कारण, मिथ्या सृष्टि को यथार्थवत् पाता है ।

इस हेतु कि मनुष्य-में-स्थित-ईश्वर अपने को सत्यता-में-स्थित-ईश्वर के रूप में अनुभव करे, ईश्वर की पूर्ण चेतना के उभाड़ को, जो कि अब मनुष्य में आरोपित है, इस प्रकार अन्तर्मूखी करना चाहिये कि वही पूर्ण चेतना, जो बहिर्मूखी रहने के काल में ईश्वर की एकरूपता मनुष्यवत् किये रही थी, अब ईश्वर का तादात्म्य ईश्वर के रूप में करे । यह ईश्वर अवस्था का साक्षात्कार है और यह साक्षात्कार दैवी लक्ष्य है और केवल यही दैवी स्वप्न का अन्त करता है ।

दैवी लक्ष्य की प्राप्ति का यह अर्थ होगा कि इस स्थिति पर मानव-स्थित-ईश्वर को, चेतना के प्रतिवर्धन की क्रमिक प्रक्रिया के द्वारा, अन्ततः पूर्ण शून्यता की उस मूल दैवी गहरी निद्रा अवस्था की अन्तर-गमन-समाप्ति (*passing-away-in*) का अनुभव प्राप्त हो और साथ-साथ उसको पूर्ण चेतना बनी रहे जो उसको प्राप्त हो चुकी है । इस प्रकार ईश्वर अपनी शाश्वत "मैं-ईश्वर-हूँ" अवस्था का साक्षात्कार चेतनतया करने में समर्थ होगा । तब, अपनी मूल अवस्था चेतनतया प्राप्त कर लेने पर, ईश्वर अपने ही दैवी सनातन सत् का अनुभव करेगा और अपनी ही दैवी प्रकृति का अनुभव करेगा जो **सबकुछ** है—अनन्त और यथार्थ है; और इस प्रकार आखिरकार वह अपने **प्रथम शब्द** अथवा पश्न "मैं कौन हूँ ?", का यथार्थ उत्तर पावेगा, "मैं ईष्वर हूँ" ।

इसे और भी स्पष्ट करने के लिये, विकसित पूर्ण चेतना सहित

Even in this state of full consciousness God still continues to experience the world of His own creation, and with greatest awareness simultaneously continues to identify Himself with human beings, thus finding Himself sometimes as man and sometimes as woman according to the predominance of impressions which are opposite in nature. In other words, God in the man state, although fully conscious and completely aware, experiences Himself not as God in the God-Is state but as man in the human state, not as infinite but as finite.

The paradoxical irony is that God the Real now finds false creation as real, having lost His own reality in illusion and having made His own reality an obstacle to experiencing Reality.

In order that God-in-man should experience Himself as God-in-Reality, the projection of the full consciousness of God, which is now fixed on man, should be so drawn inward that the same full consciousness, which when projected outward identified God as man, should now identify Him as Himself. This is realization of the God state and this realization is the divine goal which alone brings about the end of the divine dream.

Attainment of the divine goal would mean that at this stage God-in-man, through the gradual process of involution of consciousness, should eventually experience the passing-away-in that original divine sound sleep state of absolute vacuum while retaining the legacy of the full consciousness which has been gained. Thus God would be able to realize His eternal "I am God" state consciously. Whereupon, attaining His original state consciously, God would experience His own divine eternal existence and His own divine nature which is the Everything—infinite and real; and so at last get the real answer to His First Word or question of "Who am I?" as "I am God."

To make it clearer, to attain the divine goal with full consciousness evolved, the human-conscious God strives, through further experiences by

दैवी लक्ष्य को प्राप्त करने के हेतु, मानवी-चेतनायुक्त ईश्वर, पुनर्जन्म की ~~की~~ प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त हुये और अधिक अनुभवों के माध्यम से, पहले ही उभड़ चुकी पूर्ण चेतना को खुद अपनी ओर भीतर की तरफ़ समेटने का प्रयत्न करता है, जो पूर्ण चेतना अस्को उस क्षण प्राप्त हुई थी जिस क्षण उसने अपने दैवी स्वप्न (सृष्टि) के अन्तर्गत प्रथम मनुष्य-योनि से अपनी एकरूपता की थी ।

जैसे ही दैवी स्वप्न के अन्त के प्रारम्भ की यह स्थिति आती है, वैसे ही ईश्वर की पूर्ण चेतना जो मनुष्य-योनि में मिथ्या जागृत अवस्था का अनुभव करती है, इस पूर्णतया विकसित चेतना को, जिसका उभाड़ स्वयं ईश्वर की ओर अन्तर्मुख होने की अत्रेक्षा ब्रह्माण्ड के अन्दर सकल चीज़ों की ओर बहिर्मूख हो रहा है, प्रतिवर्धन की प्रक्रिया के द्वारा भीतर की ओर ईश्वर तक समेटने का भरसक प्रयत्न करती है ।

उन विविध स्थितियों का वर्णन करने के लिये जिनके द्वारा कि अपनी मूल गम्भीर निद्रा अवस्था में स्थित ईश्वर की पूर्ण अचेतना ने चेतना की विकास प्रक्रिया से होकर क्रमशः पूर्ण चेतना का उभाड़ किया, और उभड़ी हुई चेतना किस प्रकार, असंख्य पुनर्जन्मों के बाद, "मैं-ईश्वर-हूँ" की यथार्थ दैवी जागृत अवस्था का वस्तुतः अनुभव करने के पूर्व, अन्ततः चेतना के प्रतिवर्धन की प्रक्रिया द्वारा अन्दर की ओर समिट गई थी, हम विभिन्न स्थितियों को क्रम-क्रम से देखें, और ईश्वर की चेतना में क्रमिक प्राप्ति की प्रत्येक स्थिति की तुलना सामान्यतः चेतन मनुष्य की सापेक्ष अवस्थाओं से करें जो मनुष्य पहले गम्भीर निद्रा में है और जो तदनन्तर पर्याप्त चेतना प्राप्त करके अन्ततः अपनी साधारण आगृत-अवस्था का अनुभव प्रतिदिन करता है ।

प्रथम स्थिति

एक आदमी की कल्पना कीजिये जिसके नेत्र बिल्कुल बन्द हों और जो गहरी निद्रा में हो । यह मनुष्य पूर्णतया अचैतन्य है और उसको अपने सकल पास-पड़ोस की विस्मृति है । अब साथ-साथ ईश्वर की मूल दैवी गहरी निद्रा अवस्था की कल्पना कीजिये जैसाकि वह **ईश्वर-है** अवस्था की मूल निपट शून्यता में है । दोनों दशाओं में, अर्थात् ईश्वर की निराकार अवस्था तथा पुरुष अथवा स्त्री के रूप में ईश्वर की मानव-योनि अवस्था दोनों में, चेतना का पूर्ण अभाव है, और दोनों दशाओं में

the process of reincarnation, to withdraw inwards towards Himself the already projected full consciousness, which He gained as soon as He identified Himself with the first human-form in His divine dream (Creation).

As this stage of the beginning of the end of the divine dream approaches, the full consciousness of God which experiences the false awake state in the human form strives to the utmost through the process of involution to withdraw inwards, unto Himself, this fully evolved consciousness which is projecting outwards onto all things in the cosmic universe rather than unto Himself.

In order to describe the various stages by which the complete unconsciousness of God in His original sound sleep state gradually projected full consciousness through the process of evolution of consciousness, and how the projected consciousness was eventually withdrawn inwards through the process of involution of consciousness, after numerous reincarnations, before actually experiencing the real divine awake state of "I am God," let the different stages be visualized step by step, comparing each stage of gradual gain in consciousness of God with the relative states of a normally conscious man who is at first in sound sleep and who subsequently gains consciousness enough to realize eventually his ordinary awake state every day.

First Stage

Visualize a man with eyes completely shut and in sound sleep. This man is completely unconscious and is oblivious of all that surrounds him. Now picture at the same time the original divine sound sleep state of God as He is in the original absolute vacuum of the God-Is state. In both cases, that is, both in God's formless state and God's state of human-form as man or woman, there is complete absence of consciousness, and in both cases absolute vacuum prevails. Simultaneously, also picture the total absence of

निपट शून्यता व्याप्त है । उसी समय, दोनों दशाओं में चेतना के पूर्ण अभाव की कल्पना भी गहरी निद्रा में स्थित मनुष्य के पूर्णतया बन्द नेत्रों से तुलना के रूप में कीजिये ।

द्वितीय स्थिति

उस आदमी की अगली स्थिति की कल्पना कीजिये जैसे वह अब भी सो रहा हो लेकिन अपनी आँखें बहुत तनिक, तनिक खोलनी शुरू कर रहा हो, क्योंकि अभी-अभी ही उसकी गहरी नींद की अवस्था में हलचल पैदा हो गई है और निपट शून्यता की उसकी निमग्नता अन्तःस्थित संस्कारों के उभाड़ से छिन्न-भिन्न हो गई है जो संस्कार उस मनुष्य की आन्तरिक चेतना के द्वारा, जो उसकी गहरी निद्रा अवस्था में भी उसमें सुसुप्त पड़ी थी, अब उभड़ना शुरू हो रहे हैं । इस मनुष्य की आन्तरिक चेतना के द्वारा विविध संस्कारों का उभाड़ होने के कारण, अब वह स्वप्नों का अनुभव करने लगता है जबकि वह अब भी सोया हुआ है, यद्यपि अब वह गहरी नींद की अवस्था में नहीं है, क्योंकि अब उसमें निपट शून्यता नहीं रही । उस आदमी के लिये सपनों का अनुभव करना प्रारम्भ करने का अर्थ यह है कि अर्द्ध-चैतन्य अवस्था की अपनी प्रारम्भिक स्थिति में वह अपनी आन्तरिक चेतना के माध्यम से उप-सूक्ष्म रूपों में **शून्यता** के सुसुप्त संस्कारों का अनुभव करने लगता है । वह आदमी अब न केवल अर्द्ध-चैतन्य अवस्था की प्रारम्भिक स्थिति में है और न वह केवल सपनों का अनुभव करना शुरू कर रहा है, वरन् वह साथ-साथ वुद अपने पैदा किये हुये जीवधारियों के उप-सूक्ष्म रूपों से सहचर्य करना प्रारम्भ करता हुआ सपनों में फँसना भी प्रारम्भ कर रहा है । इस प्रकार संस्कारों का उभाड़, जो मनुष्य की आन्तरिक चेतना में सुसुप्त पड़े थे, उस आदमी से उसके सपनों के ड्रामा में उससे मुख्य अभिनेता अथवा निर्माता का पार्ट अदा कराता है । क्योंकि यह आदमी इस स्वप्न अवस्था में अभी-अभी केवल अपनी गहरी नींद से उदका है और उसने अभी-अभी अर्द्ध-चैतन्य अवस्था पाई है, इसलिये सपनों का अनुभव करते हुये इस आदमी की कल्पना उस आदमी के रूप में कीजिये जो अब अपनी आँखें बहुत तनिक, तनिक खोलना शुरू कर रहा है । उसकी आँखें खुलने का प्रारम्भ चेतना के प्रथम चिन्ह के आगमन से मिलता जुलता है जो मनुष्य में आन्तरिक चेतना के रूप में प्रगट हुई है ।

(११६)

consciousness in both cases as comparable to the completely shut eyes of a man in sound sleep.

Second Stage

Visualize the next state of the man as being still asleep but beginning to open his eyes very, very slightly, because he is just bestirred from his sound sleep state and the spell of absolute vacuum is shattered by the emergence of the dormant impressions now commencing to project through the sub-consciousness of the man which also lay latent in him in his sound sleep state. Because of the projection of the varied impressions through the sub-consciousness of this man, he now begins to experience dreams while still asleep, although no longer in the sound sleep state, because the absolute vacuum no longer prevails. For the man to commence experiencing dreams means that in his initial stage of the semi-conscious state he begins to experience through his sub-consciousness the dormant impressions of the Nothingness in sub-subtle forms. The man now is not only in the initial stage of the semi-conscious state and is not only beginning to experience dreams, but he is also starting to get involved in the dreams by beginning to associate with the creatures in sub-subtle forms of his own creation. Thus the projection of impressions, which lay dormant in the sub-consciousness of man, makes man play the role of the hero or the creator in the drama of his dreams. Because this man in this dream state has only just stirred from his sound sleep and has just attained the semi-conscious state, picture this man experiencing the dreams as one who is starting now to open his eyes very, very slightly. The beginning of the opening of the eyes resembles the advent of the first trace of consciousness as sub-consciousness manifested in man.

तुलना के रूप में मनुष्य की इस अवस्था की कल्पना करने समय, उसी प्रकार परमात्मा की उस अवस्था की कल्पना कीजिये जिसमें उसकी मूल ईश्वरीय गहरी-निद्रा अवस्था में अभी-अभी हलचल पैदा हुई है । अब परमात्मा केवल ईश्वरीय स्वप्न अवस्था का, अथवा **विधाता** अवस्था का, अनुभव करना शुरू करता है, जैसे ही **शून्यता** का प्रथम अत्यन्त-सीमित संस्कार परमात्मा की दिव्य आन्तरिक चेतना के माध्यम से उभड़ता है । ये दोनों चीज़ों—अर्थात् **शून्यता** और परमात्मा की दिव्य आन्तरिक-चेतना—**सबकुछ** स्वरूप परमात्मा की मूल अवस्था में **शून्य** के रूप में सुसुप्त थीं । अब ईश्वरीय अर्द्ध-चेतन अवस्था की प्रारम्भिक स्थिति में, परमात्मा अपनी एकरूपता खुद अपनी सृष्टि के प्राणयों से तत्क्षण करने लगता है (यानी खुद अपने दिव्य स्वप्न से कारने लगता है) और ऐसा वह अपार दिव्य आन्तरिक चेतना के माध्यम से करता है जो बिल्कुल अभी ही सृष्टि का उभार करने लगती है, यानी **शून्यता** के संस्कारों का आविर्भाव करने लगती है ।

तीसरी स्थिति

उस आदमी की तीसरी अवस्था की कल्पना कीजिये जैसे वह अब भी सोया हो किन्तु आधे खुले नेत्रों से सो रहा हो, क्योंकि इस अवस्था में मनुष्य अब अर्द्ध-चेतन अवस्था का अनुभव पूरेतौर से करता है । अब भी सोते हुये आदमी की इस पूर्ण अर्द्ध-चेतन अवस्था की कल्पना करने के लिये, उसकी ऐसी कल्पना करने रहिये जैसे उसकी आँखें बहुत, बहुत तनिक खुली हों, जो अर्द्ध-चेतन अवस्था के प्रारम्भ की द्योतक हैं । जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, इस अवस्था में वह **शून्यता** के मिथ्या, मायावी संस्कारों के कारण स्वप्न का अनुभव करने लगता है, जो संस्कार आन्तरिक-चेतना में सञ्चित हो गये थे और अब अन्तरिक-चेतना के उभाड़ के द्वारा बाहर निकल रहे हैं, और मनुष्य की स्वप्न अवस्था के प्रारम्भ को जन्म दे रहे हैं । लेकिन, जैसे जैसे स्वप्न जारी रहते हैं, और जैसे जैसे उनको मनुष्य की आन्तरिक चेतना के माध्यम से बहुमुखी तथा नानाविध सुसुप्त संस्कारों के उभाड़ की प्रचण्डता के कारण वेग प्राप्त होता है, वैसे वैसे मनुष्य अवचेतन रूप से अधिक और अधिक फँसता जाता है । इसके फलस्वरूप वह अब स्वप्नों के

While visualizing this state of man, as a parallel, picture likewise that state of God in which He has just stirred from His original divine sound sleep state. God now only begins to experience the divine dream state, or the Creator state, as soon as the first most-finite impression of the Nothingness is projected through the divine sub-consciousness of God. Both of these—i.e., the Nothingness and the divine sub-consciousness of God—were latent as of Nothing in the original state of God as the Everything. God, now in the initial stage of the divine semi-conscious state, just begins to identify Himself with the creatures of His own Creation (i.e., His own divine dream) through the infinite divine sub-consciousness which just begins to project the Creation, that is, the impressions of the Nothingness.

Third Stage

Visualize the third state of the man as still asleep, but with half-open eyes, because a man in this state now completely experiences the semi-conscious state. In order to picture this complete semi-conscious state of the still-sleeping man, continue to visualize him with eyes very, very slightly open, representing the beginning of the semi-conscious state. In this state, as said above, he starts to experience dreams due to the false, illusory impressions of the Nothingness which were collected sub-consciously and are now ejected out through the projection of the sub-consciousness, giving rise to the beginning of the dream state of man. But, as the dreams continue, and as they gather momentum due to the intensity of the projection of multifarious and varied dormant impressions through the sub-consciousness of the man, he gets more and more involved sub-consciously. As a result he now firmly associates himself with the creatures of his own creation in the dreams and he is completely in the semi-conscious state. This semi-conscious state of the man represents that

अन्तर्गत खुद पैदा किये प्राणियों के साथ अपना दृढ़ संसर्ग करता है और वह पूरेतौर से अर्द्ध-चेतन अवस्था में होता है । मनुष्य की अर्द्ध-चैतन्य अवस्था वह अवस्था प्रदर्शित करती है जो न तो चेतना से रहित पूर्ण गहरी निद्रा अवस्था है और न पूर्ण-चेतना सहित पूर्ण जागृत अवस्था है । यों कहा जा सकता है, कि यह अवस्था अर्द्ध-जागृत अवस्था है । अब उस आदमी की इस तीसरी अवस्था की कल्पना कीजिये जैसे वह अर्द्ध-चेतना की अवस्था हो जिसमें आधी आँखें खुली हों और जिसमें मनुष्य स्वप्नों का अनुभव अधिक ज़ोर से और अधिक एकाग्रता के साथ कर रहा हो ।

मनुष्य की इस अवस्था की कल्पना करते हुये, तुलना के रूप में दिव्य स्वप्न के अन्दर परमात्मा की उस अवस्था की कल्पना कीजिये जहाँ परमात्मा एक अर्द्ध-चैतन्य अवस्था का अनुभव कर रहा है । इस स्थिति पर, परमात्मा सृष्टि के कर्त्ता के रूप में अपार, दिव्य अर्द्ध-चैतन्य अवस्था के द्वारा कर्त्ता अवस्था का अनुभव करता है । इस स्थल पर अपार दिव्य आन्तरिक-चेतना, सृष्टि का घना आविर्भाव करती हुई, खुद परमात्मा की सृष्टि के प्राणियों के साथ परमात्मा की एकरूपता की निरन्तर पुष्टि करती है । इससे परमात्मा के दिव्य स्वप्न के अन्तर्गत अधिक ज़ोरदार किस्म के अनन्त अनुभवों को जन्म मिलता है, जबकि परमात्मा अपनेआप को अपनी **सृष्टि** के प्राणियों के रूप में यथार्थतः पाता है ।

चौथी स्थिति

उस आदमी की चौथी अवस्था की कल्पना कीजिये जिसमें वह अब भी सो रहा हो वेकिन जो अब भी अपनी स्वप्न अवस्था में रहता हुआ आन्तरिक-चेतना के माध्यम से होते हुये अधिक और अधिक संस्कारों के उभाड़ की अधिक और अधिक प्रगाढ़ता के अनुसार अपने पहले से ही आधे-खुले नेत्रों को धीरे-धीरे और अधिक खोलने का प्रयत्न कर रहा हो । इस स्थल पर वह मनुष्य न केवल अर्द्ध-चैतन्य अवस्था में है बलिक वह पूर्ण चैतन्य होने के किनारे पर आ रहा है, और वह अपनी जागृत अवस्था का अनुभव करने के निकट है ।

अब इसके समानान्तर, परमात्मा की उस अवस्था की कल्पना कीजिये जिसमें वह अपनी दिव्य स्वप्न अवस्था की चौथी स्थिति में है ।

(११८)

state which is neither the complete sound sleep state without consciousness nor the complete awake state with full consciousness. This state, so to speak, is the semi-awake state. Now visualize this third state of the man as the state of semi-consciousness represented by half-opened eyes experiencing the dreams more forcefully and much more intently.

While visualizing this state of the man, picture as a parallel that state of God in the divine dream state where God is experiencing a semi-conscious state. At this stage, God as the creator of Creation experiences the creator state through the infinite, divine semi-conscious state. Here the infinite divine sub-consciousness, intensively projecting Creation into being, continually affirms God's identification with the creatures of His own creation. This gives rise to infinite experiences of a more forceful nature in the divine dream of God, when God actually finds Himself as the creatures of His Creation.

Fourth Stage

Visualize the fourth state of the man as that in which he is still asleep but trying gradually to open wider his already half-opened eyes in accordance with the greater and greater intensity of the projection of more and more impressions through the sub-consciousness of the man still in his dream state. Here the man is not only in a semi-conscious state but is verging on being fully conscious, and is about to realize his awake state.

Now paralleling this, picture also that state of God in the fourth stage of His divine dream state. Compare the fourth state of the man in the

अर्द्ध-चेतन अवस्था में निमग्न उस आदमी की चौथी अवस्था की **तुलना** परमात्मा की दिव्य स्वप्न अवस्था के अन्तर्गत एक बहुत ही नाज़ुक स्थिति से कीजिये । यहाँ अपार संस्कारों का उभाड़, परमात्मा की अपार दिव्य आन्तरिक-चेतना के माध्यम से, परमात्मा की चेतना के ऐहिक विकास के दौरान में इतना अधिक प्रगाढ़ होता है कि यह उभाड़ **शून्यता** की अनन्तता पर इतने पूरेतौर से स्थिर होने, अथवा इतने पूरेतौर से केन्द्रित होने, के करीब होता है कि वह ईश्वर की एकरूपता उसकी सृष्टि के दिव्य स्वप्न के अन्तर्गत खुद उसकी अत्यन्त पूर्ण प्रतिमा से करने के करीब होता है । इस प्रकार दिव्य स्वप्न अवस्था के अन्तर्गत इस स्थिति में, **विधाता परमात्मा** अपनी सृष्टि के अन्तर्गत, जड़ और चेतन पदार्थों समेत, सबसे तथा हर चीज़ से असंख्य एकरूपतायें कर चुकने के बाद, एक मानव रूप से अपनी एकरूपता करने के करीब होता है । दिव्य अपार अर्द्ध-चैतन्य अवस्था में स्थित परमात्मा, अब मनुष्य-रूप से अपनी एकरूपता स्थापित करने के समानान्तर पूर्ण-चेतना प्राप्त करने के किनारे के पास पहुँच रहा है ।

पाँचवीं स्थिति

उस आदमी की पाँचवीं अवस्था की कल्पना कीजिये जैसे वह अब भी सो रहा हो लेकिन उसकी आँखें अब **लगभग** खुली हों । इस अवस्था में वह मनुष्य **अब भी** अर्द्ध-चैतन्य अवस्था अथवा अर्द्ध-जागृत अवस्था में है, और स्वप्नों का अनुभव उनकी अन्तिम स्थिति में उनकी चरमसीमा पर कर रहा है, जिस स्थिति में उसकी आन्तरिक-चेतना के माध्यम से संस्कारों का उभाड़ अत्यधिक प्रगाढ़ता के साथ हो रहा है । इस स्थिति में दोनों चीज़ें शिरोबिन्दु पर पहुँचती हैं; बहुत कम धुँधले रूपों में, अथवा यथार्थता की अधिकतर मात्रा में, संस्कारों का प्रचण्ड उभाड़, और उनसे सम्बद्ध स्वप्न जो अब और अधिक स्पष्टरूप से अथवा अपनी परिपक्व स्थिति में देखे जाते हैं । स्वप्नों में यह वह स्थिति है जब कि **शून्यता** के उप-सूक्ष्म रूप अपनी चोटी पर पहुँच गये हैं, और अधिक साफ़तौर से दिखाई पड़ते हैं । अपनी चोटी पर पहुँचे स्वप्नों का बन्द हो जाता अब आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य की आन्तरिक-चेतना के माध्यम से प्रगट होने वाले संस्कारों के उबाड़ों की प्राप्त हुई चरमसीमा किसी भी क्षण पूर्ण चेतना के उभाड़ अथवा प्रकटीकरण को उकसाने और प्रेरित

semi-conscious state with a very critical stage in the divine dream state of God. Here the projection of infinite impressions, through the infinite divine sub-consciousness of God, is so intensified in the course of the cosmic evolution of the consciousness of God, that this projection is about to be so completely fixed, or so perfectly focussed, onto the infinity of Nothingness as to identify God with His own most perfect image in His divine dream of Creation. Thus at this stage in the divine dream state, God the Creator is about to identify Himself with a human form after innumerable identifications with all and everything that is in His Creation including inanimate and animate objects. God, in the divine infinite semi-conscious state, is now nearing the verge of gaining full consciousness concurrently with His identification with human form.

Fifth Stage

Visualize the fifth state of the man as being still asleep but with eyes now **almost** open. The man in this state is **still** in the semi-conscious or semi-awake state, experiencing the dreams at their height in their final stage, in which the impressions are projected through his sub-consciousness with the greatest intensity. The zenith is reached both by the intensified projection of the impressions in much less hazy forms, or in greater degree of realism, and by relevant dreams which are dreamt in a greater degree of clarity or in their ripe stage. This is the stage in dreams when the sub-subtle forms of Nothingness have reached their zenith and appear more clearly. The dreams at their height now must stop, because the zenith reached by the projections of impressions through the sub-consciousness of the man is at this point sufficient to excite and urge the emergence or manifestation of full consciousness at any moment. This

करने के लिये इस स्थल पर पर्याप्त होती है । अस्तु, लगभग पूर्ण चैतन्य मनुष्य की इस अवस्था की कल्पना हम उस मनुष्य के रूप में कर सकते हैं जिसकी आँखें **लगभग** पूरी खुली हैं, यद्यपि वह अब भी सोया हुआ है । यह वह स्थिति है जिस पर मनुष्य पूर्ण जागृत होने के लिये अपनी स्वप्न अवस्थाा से जागकर उठने के निमेष मात्र पहले पहुँचा है । यह आन्तरिक-चेतना की पूर्णतया परिपक्व अर्द्ध-चैतन्य अवस्था है ।

मनुष्य की पाँचवीं अवस्था की कल्पना करने समय, उसके बराबर-बराबर अपनी दिव्य स्वप्न अवस्था में मग्न परमात्मा की उस अवस्था की कल्पना कीजिये जहाँ परमात्मा दिव्य, अपार अर्द्ध-चैतन्य अवस्था की पूर्णतया परिपक्व अवस्था का अनुभव कर रहा है और लगभग पूर्ण चेतना प्राप्त करने वाला है । इस अवस्था के शिखर पर परमात्मा की दिव्य, अनन्त आम्तरिक-चेतना के माध्यम से अनन्त संस्कारों के उभाड़ की प्रगाढ़ता ने परमात्मा की एकरूपता अर्द्ध-चेतनतया सृष्टि और रूपों के ऐहिक विकास के अन्तर्गत अन्तिम जीवधारियों के साथ करनी प्रायः बन्द कर दी है । दिव्य, अनन्त आम्तरिक-चेतना से युक्त, परमात्मा अपनी दिव्य, अनन्त अर्द्ध-चेतन अवस्था में है, जो **लगभग परिपक्व हो जाने** के समय परमात्मा की एकरूपत पशु रूपों के अनन्त संस्कारों के साथ करती थी । किन्तु अब दिव्य स्वप्न अवस्था की पाँचवीं स्थिति में जहाँ परमात्मा **पूर्णतया परिपक्व** दिव्य, अनन्त अर्द्ध-चेतन अवस्था में है, परमात्मा की एकरूपता पशु रूपों के संस्कारों से नहीं कराई जा सकती यद्यपि वे संस्कार उसकी दिव्य, अनन्त आन्तरिक चेतना के माध्यम से घने रूप से तथा अपार रूप से उभरते हैं । इस स्थल पर दिव्य स्वप्न अवस्था में एक ऐसी स्थिति आती है जिसमें, संस्कारों की अनन्तता तक उसका उभाड़ होने के साथ जो संस्कार परमात्मा की अपनी चोटी पर पहुँची हुई दिव्य अनन्त आन्तरिक-चेतना के माध्यम से अपार रूप से उभड़ते हैं; उन संस्कारों ने इस अनन्त उभाड़ में प्रायः परमात्मा की एकरूपता एक मानव-रूप से कर दी है और परमात्मा प्रायः पूर्णतया चैतन्य हो गया है ।

छठवीं स्थिति

उस आदमी की छठवीं अवस्था की कल्पना कीजिये जैसे वह अपनी नींद से पूरेतौर से जाग गया हो और उसकी आँखें पूरीतौर से

state of the man **almost** fully conscious may therefore be pictured as a man with his eyes almost wide open, though still asleep. This is the stage reached a split second before the man has roused from his dream state to become wide awake. This is the completely matured semi-conscious state of sub-consciousness.

While visualizing the fifth state of the man, side by side with it picture that state of God in His divine dream state where God is experiencing the completely matured state of the divine, infinite semi-conscious state and is almost about to gain full consciousness. At its zenith the intensity of the projection of infinite impressions through the divine, infinite sub-consciousness of God has almost ceased to identify God semi-consciously with the last of the creatures in the cosmic evolution of Creation and forms. With divine, infinite sub-consciousness, God is in His divine, infinite semi-conscious state, which when **almost matured** identified God with infinite impressions of animal forms. But now in the fifth stage of the divine dream state where God is in the **completely matured** divine, infinite semi-conscious state, God can no longer be made to identify with impressions of animal forms even though they are intensively and infinitely projected through His divine, infinite sub-consciousness. At this point a stage is reached in the divine dream state wherein, with the projection to infinity of impressions projected infinitely through the divine, infinite sub-consciousness of God at its zenith, this infinite projection has almost identified God with a human form and God is almost fully conscious.

Sixth Stage

Visualize the sixth state of the man as having completely awakened from his sleep and as having his eyes completely wide open. In this state

खुली हों । इस अवस्था में वह मनुष्य अब अर्द्ध-चेतन अवस्था में नहीं है, जिसमें वह स्वप्न देख रहा ता जो स्वप्न उस मनुष्य की आन्तरिक-चेतना में संचित थे, तथा उसकी आन्तरिक-चेतना के माध्यम से शून्यता के उप-सूक्ष्म रूपों में अनुभव किये गुये, **शून्यता** के सुसुप्त संस्कारों के धूँधले एवं क्षीन उभाड़ मात्र थे । मनुष्य की अवस्था में यह वह स्थिति है जहाँ वह बिल्कुल अभी पूरेतौर से जागा है, किन्तु यद्यपि वह पूर्णतया चैतन्य है तो भी उसे अपनी "**आत्मा**" (*Self*) की अब भी चेतना नहीं है । वह आदमी अब अपनी गहरी निद्रा तथा अर्द्ध-चैतन्य अवस्थाओं में नहीं है, और पूर्ण चेतना प्राप्त कर लेने पर अब उसकी कल्पना उसके पूरे खुले नेत्रों सहित की जाती है । इसका अर्थ है स्वप्न का अन्त, अथवा पनुष्य की मिथ्या अवस्था का अन्त, जहाँ वह गुप्त अथवा सुप्त **शून्य** का अनुभव करता था जो शून्य अपनी अपक्व अवस्था में धुँधले और क्षीण उप-सूक्ष्म रूपों की शक्ल में **शून्यतावत्** प्रगट हुआ था । अब जागृत अवस्था में वह मनुष्य किसी धूँधली अथवा क्षीण चीज़ के रूप में **शून्यता** का अनुभव अथवा अवलोकन नहीं करता जैसा वह उसको अपनी स्वप्न अवस्था में देखा करता था । उसकी आँखें बिल्कुल अभी पूरी खुल जाने पर, वह चौंधिया गया है और वह चीज़ों को शून्य भाव से टकटकी लगाकर देखता है जो अब उसकी नज़र के अधिक वास्तविक रूप से आती हैं । वह आदमी अब अपनी नज़र के सामने आने वाली चीज़ों को ऐसे देखता है जैसे वह उसी **शून्यता** के, परिपक्व, स्पष्ट और पूर्णतया विकसित रूपों को देख रहा हो, जिस **शून्यता** को वह अपने स्वप्न में अपक्व, धूँधला और क्षीण देखता था । इस अवस्था में वह आदमी मानो अब भी दूसरा स्वप्न देखता है, लेकिन वह यह दूसरा स्वप्न उस स्वप्न की अपेक्षा अधिक वास्तविक रूप से देखता है जिससे वह एक निमेष पहले जागा था ।

मनुष्य की अवस्था में यह छठवीं स्थिति है जहाँ मनुष्य, चौधियाया हुआ, चीज़ों के देखने का अनुभव केवल और अधिक भास्तविक रूप से करता है लेकिन अब भी वह इस रूप में अनुभव करता है जैसे वह एक बिल्कुल खाली सपना हो । अर्थात्, वह मनुष्य अधिक ज़रि के साथ और अधिक वास्तविक रूप से, लेकिन अब भी खाली रूप से, अपनी स्वप्न-अवस्था का स्वप्न देखता है, जो उसको उसकी स्वप्न-अवस्था के स्वप्न के अन्तर्गत अब भी एक और स्वप्न का बोध कराता है ।

(१२१)

the man is no longer in the semi-conscious state, dreaming the dreams which were nothing but the hazy and faint projection of the dormant impressions of Nothingness which were stored in the sub-consciousness of the man, and realized through his sub-consciousness in sub-subtle forms of Nothingness. This is the stage in the state of the man where he has just awakened completely, but albeit he is fully conscious, he is not conscious of his "Self" as yet. The man is no longer in his sound sleep and semi-conscious states and, with full consciousness gained, is pictured now with wide-open eyes. This means the end of the dream, or the end of the false state of man where he experienced the latent or dormant Nothing manifested in its raw state as Nothingness in the shape of hazy and faint sub-subtle forms. The man now in the awake state no longer experiences or sees the Nothingness as some-thing hazy or faint as he used to see it in his dream state. With his eyes just opened wide and fully, he is dazed and stares vacantly at things that now confront his sight more realistically. The man now observes things that confront his sight as if he were seeing the ripe, the clear and the fully developed forms of the same Nothingness that he saw in his dream as raw, hazy and faint. In this state the man sees, as it were, yet another dream, but he sees it much more realistically than the dream from which he awakened a split second before.

This is the sixth stage in the state of man where the man, dazed, simply experiences the sight of things much more realistically but still as if it were just a vacant dream. That is, the man sees more forcefully and realistically but still vacantly the dream of his dream state, giving him the sense of yet another dream within the dream of his dream state.

यह अवस्था उस अवस्था के समान है जिसमें मनुष्य के जागने के बाद कुछ क्षण ही बीते हैं और जिसमें वह सबसे पहले खुद अपनी आत्मा की अपेक्षा अपनी नज़र के अन्दर आने वाली चीज़ों को ही देख पाता है । इसका कारण यह है कि सुप्त अवस्था के बाद जैसे ही उसकी आँखें खुलती हैं वैसे ही उसकी लम्बे अरसे बन्द आँखें का अपनेआप सहजरूप से खुद जाना उसमें एक प्रकार की चौंधियाई अवस्था पैदा कर देता है, और यद्यपि वह व्यक्ति जाग उठा है तथा पूरेतौर से चैतन्य है, फिर भी उसे अब भी अपने **स्वत्व** (*Self*) का अथवा खुद उसके **स्वत्व** को चारों ओर घेरे हुये पदार्थों के सम्बन्ध में उसकी स्थिति का भान नहीं है । वह केवल उन पदार्थों की ओर टकटकी लगाकर देखता है जिनके ऊपर उसकी नज़र पड़ती है ।

उस आदमी की छठवीं अवस्था की कल्पना करने हुये, उसकी समानता में परमात्मा की उस अवस्था की कल्पना उसी प्रकार कीजिये जैसे वह अवस्था उस क्षण की हो जब परमात्मा ने **बिल्कुल अभी** अपनी एकरूपता एक मनुष्य-रूप से की है और **बल्किुल अभी** पूर्ण चेतना प्राप्त की है । उस क्षण परमात्मा दिव्य, अपार अर्द्ध-चेतन अवस्था में नहीं होता, जिसमें वह मूल दिव्य स्वप्न देख रहा था जो गुप्त **शून्य** का उभाड़ था और जो सृष्टि के रूप में, अथवा पूर्णतया विकसित **शून्यता** के रूप में, दिव्य, अपार आन्तरिक-चेतना के द्वारा विमुक्त हुआ था ।

इस छठवीं अवस्था में, परमात्मा अब अपनी मूल दिव्य गहरी निद्रा तथा अपनी दिव्य अपार अर्द्ध-चैतन्य अवस्थाओं से बाहर है क्योंकि अब उसे पूर्ण-चेतना प्राप्त हो चुकी है । इस स्थल पर परमात्मा को अपने असीमित **स्वत्व** का भान नहीं है और न अनन्त शक्ति, ज्ञान एवं आनन्द की अपनी अपार, अपरिमित तथा असीमित त्रि-प्रकृति का भान है, किन्तु उसको **बिल्कुल** पूर्ण चेतना प्राप्त है । अब परमात्मा को इस अर्थ में पूर्ण चेतना प्राप्त है कि परमात्मा चेतनतया **शून्यता** में निमग्न है जो अब उसकी पूर्ण चेतना के माध्यम से स्पष्ट और सुनिश्चित वास्तविक स्थूल अवस्थाओं के रूप में प्रगट होती है और ये अवस्थायें प्रत्यक्ष रूप से अपने अपार पहलुओं को **अनन्त रूप से** प्रदर्शित करती है ।

सातवीं स्थिति

उस आदमी की सातवीं अवस्था की कल्पना कीजिये जहाँ उसकी

This state corresponds to the few seconds immediately after a man has awakened and cannot help but see at first the objects that come within range of his vision rather than his own self. This is because, as soon as his eyes open after the sleep state, the spontaneous opening of the long-shut eyes creates in him a sort of dazed state and, although the man has awakened and is fully conscious, he is still unaware of his Self or of its position in relation to the objects surrounding his very self. He simply stares at the objects upon which his gaze falls.

While visualizing the sixth state of the man, make a parallel of it by picturing in the same way that state of God as of that instant when God has **just** identified Himself with a human form and has **just** gained full consciousness. At that moment God is no longer in the divine, infinite semi-conscious state, dreaming the original divine dream which was the projection of the latent Nothing released by the divine, infinite sub-consciousness as the Creation, or as completely evolved Nothingness.

In this sixth state, God is now out of His original, divine sound sleep and His divine, infinite semi-conscious states because He is now fully conscious. Here God is conscious not of His unlimited Self nor of His infinite, unbounded and unlimited trio-nature of infinite power, knowledge and bliss, but is **just** fully conscious. God is fully conscious now in the sense that God is consciously absorbed in the Nothingness which now manifests through His full consciousness as clear and well defined, realistic gross states apparently demonstrating their infinite aspects ad infinitum.

Seventh Stage

Visualize the seventh state of the man where he has his eyes wide open and is completely and fully awake in the sense that he now asserts

आँखें पूरी खुली हैं और वह इस अर्थ में पूर्णतया तथा भरपूर आगृत है कि अब वह अपनी सीमित खुदी अथवा अहं का दृढ़ प्रतिपादन करता है, और उसको अपने मानव-रूप अथवा स्थूल शरीर का भान है, अपने चारों तरफ़ की चीज़ों का तथा स्थूल जगत का भान है । यद्यपि यह आदमी पूर्णतया चैतन्य है और उसको स्थूल जगत का पूरा भान है और वह पूर्णरूप से स्थूल जगत का अनुभव करता है, फिर भी उसको अब भी सीमित प्राण शक्ति तथा मन का भान नहीं है जिनका प्रयोग वह परोक्षरूप से अचेतनतया करता है, क्योंकि उसको उनके पहलुओं का भान केवल उसके स्तूल शरीर की परिमितताओं के माध्यम से ही प्राप्त होता है । इस अवस्था में मनुष्य पूर्णतया चैतन्य होता है, किन्तु स्थूल-चेतना के अर्थ में चैतनय होता है, और अपने चारों ओर की दुनियाँ में उसे मनुष्य के रूप में अपनी खुदी की पूरी चेतना होती है ।

मनुष्य को न केवल स्थूल जगत का, और न केवल दुनियाँ की उन सब चीज़ों का जो उसकी नज़र के सामने आती हैं, पूरा भान होता है, वरन् वह उनमें सीमित खुदी की अपनी पूर्णतया चैतन्य तथा पूरे होश की अवस्था का समावेश करके उनका यथार्थ अनुभव भी करता है । अब वह स्थूल जगत के पदार्थों को अपनी पाँच प्रमुख स्थूल इन्द्रियों के द्वारा पहिचानता है और उनको एक-दूसरे से भिन्न करता है और वह, अब पूर्णतया विकसित हुई शक्ति एवं मन का उपयोग विवेक अथवा अविवेकपूर्वक, आप से आप तथा अप्रत्यक्षरूप से करता हुआ, स्थूल इन्द्रियों का प्रयोग उनसे उनके सापेक्ष मूल सम्बद्ध करने में करता है जिस समय और जब भी उसकी सीमित खुदी उसके पुनः गहरी नींद† में सो जाने के पहले उसकी जागृत अवस्था में अपना दृढ़ प्रतिपादन करती है ।

उस आदमी की सातवीं अवस्था की कल्पना करते हुये, उसी तरह परमात्मा की उस अवस्था की कल्पना कीजिये जहाँ वह अपनी पूरी एकरूपता मनुष्य-रूप से करता है और पूरी तथा भरपूर चेतना प्राप्त

† जागृत अवस्था में, मन ही स्थूल नेत्रों के द्वारा देखता है, स्थूल कानों के द्वारा सुनता है, स्थूल नाक के द्वारा सूँघता है, स्थूल मूँह के द्वारा खाता है और स्थूल अङ्गों के द्वारा कार्य करता है ।

स्वप्नावस्था में (अन्तर-चैतन्य अवस्था में) मन ही उप-सूक्ष्म नेत्रों के द्वारा देखता है, उप-सूक्ष्म कानों के द्वारा सुनता है, इत्यादि ।

गम्भीर निद्रावस्था में, मन ही शान्त और स्थिर रहता है ।

his limited self or ego, and is conscious of his human form or the gross body, of his surroundings and of the gross world. Though this man is fully conscious and completely aware of the g ross, and experiences the gross world in full, yet he is still unconscious of the limited energy and mind of which he indirectly makes unconscious use, being aware of their aspects through the limitations of his gross body alone. In this state the man is fully conscious, but gross-consciously, and is fully aware of his self as a man in the world of his surroundings.

The man is not only completely aware of the gross world, and of all things in the world which confront his view, but he also actually experiences them by involving his fully conscious and fully aware state of limited self in them. He now recognizes the objects of the gross world through his five predominant gross senses and differentiates them one from another, using them discriminately or indiscriminately, automatically and indirectly utilizing energy and mind which are now fully developed, in attaching to them their relative values as and when his limited self asserts in his awake state before he passes away once again in sound sleep.*

While visualizing the seventh state of the man, picture likewise that state of God where God identifies Himself completely with the human form and gains full and complete consciousness. God now no longer

* In the awake state, it is the mind that sees through the gross eyes, hears through the gross ears, smells with the gross nose, eats through the gross mouth and acts through the gross limbs.

In the dream state (sub-conscious state) it is the mind that sees through the sub-subtle eyes, hears through the sub-subtle ears, and so on.

In the sound sleep state, it is the mind that is at peace and at rest.

करता है । इस अवस्था में अब परमात्मा दिव्य रूप से मूल दिव्य स्वप्न नहीं देखता, बल्कि अब पूर्णतया प्राप्त हुई भरपूर चेतना के साथ, वह मिथ्या रूप से पूर्ण भान का अनुभव करता है । यह भान परमात्मा को मिथ्या रूप से उस मूल **शून्य** का ज्ञान प्रदान करता है जो खुद उसकी अनन्तता की अवस्था में गुप्त था, और जो, अभी प्राप्त हुई पूर्ण चेतना के साथ, परमात्मा को उस **शून्य** का अनुभव ऐसे वास्तविक रूप में कराता है जैसे वह अनन्त और यथार्थ **सबकुछ** हो । दूसरे शब्दों में, जब परमात्मा दिव्य, अपार अर्द्ध-चेतन अवस्था में था तब वह अपने दिव्य स्वप्न के रूप में **शून्यतवत्** प्रगट हुये गुप्त **शून्य** का अनुभव कर रहा था । अब, जबकि परमात्मा पूर्ण चेतन अवस्था में है, वह प्रत्यक्षरूप से उस **शून्य** का अनुभव करता है, **शून्यता** के दिव्य स्वप्न के रूप में नहीं, बल्कि अब इस **शून्य** के भान का सचमुच ऐसा अनुभव करता है जैसे वह **सबकुछ** हो ।

इस स्थिति में ज्ञान के आ जाने पर, यद्यपि परमात्मा ने विधाता की अवस्था में दिव्य रूप से मूल दिव्य स्वप्न देखता बन्द कर दिया है, फिर भी उसके परिपूर्ण चेतना और पूर्ण भान प्राप्त कर लेने के कारण, अब परमात्मा को मूल दिव्य स्वप्न का पूरा ज्ञान हो जाता है—एक स्वप्न के रूप में नहीं बल्कि कुछ वास्तविक चीज़ के रूप में, माया के रूप में नहीं बल्कि सत्यता के रूप में, **शून्य** के रूप में नहीं बलिक **सबकुछ** के रूप में; और वह **शून्य** की बनाये रखता है जिसको ऊसने पैदा किया था । इस प्रकार से ही, यद्यपि परमात्मा को विधाता की अवस्था में पूर्ण चेतना प्राप्त हो गई थी, और पूर्ण भान का अनुभव हो गया था, विधाता परमात्मा का खुद यही भान धोखा सिद्ध होता है और उसके कारण अब परमात्मा शून्य के खुद अपने दिव्य स्वप्न (अथवा सृष्टि) को सत्यता के रूप में अनुभव करता है जिस समय वह अपनी एकरूपता मानवप्राणी से करता है ।

संक्षेप में, मानव-के अन्तर्गत-परमात्मा (*God-in-man*) के रूप में विधाता परमात्मा यद्यपि अब पूर्णतया चैतन्य और पूरी तरह होश में हो गया है और अपनी मूल दिव्य स्वप्न अवस्था के बाहर आ गया है, फिर भी वह अपने को ईश्वर के रूप में नहीं पाता बलिक पूर्ण स्थूल चेतना से युक्त मनुष्य की तरह पाता है और खुद अपनी मूल दिव्य स्वप्न अवस्था की सृष्टि का अनुभव **सत्यता** के रूप में करता है । इस स्थल पर

dreams divinely the original divine dream but, with full consciousness now completely gained, He experiences falsely the complete awareness. This awareness makes God falsely aware of that original Nothing which was latent in His own state of infinitude, and which, with the present gain of full consciousness, makes God experience that Nothing realistically as the Everything, infinite and real. In other words, God, when He was in the divine, infinite semi-conscious state, was experiencing the latent Nothing manifested as the Nothingness as His divine dream. Now, when God is in a fully conscious state, He apparently experiences that Nothing, not as the divine dream of Nothingness, but He now actually experiences the awareness of this Nothing as the Everything.

In this stage with the advent of awareness, although God in the state of creator has stopped dreaming divinely the original divine dream, yet, because of His having gained full consciousness and complete awareness, God now becomes completely aware of the original divine dream not as a dream but as something realistic, not as illusion but as reality, not as the Nothing but as the Everything, preserving the Nothing that He created. Thus it is that, although God gained full consciousness and experienced complete awareness in the state of creator, this very awareness of God the Creator proves a deception and makes God now experience His own divine dream (or the Creation) of the Nothing as Reality while He identifies Himself with the human being.

In short, God the Creator as the God-in-man, though now fully conscious and completely aware and out of His original divine dream state, yet finds Himself not as God but as man with complete gross consciousness, experiencing the creation of His own original divine dream state as Reality. Here it is to be said that the God-in-man continues to

यह करना है कि मनुष्य-में स्थिति-परमात्मा (*God-in-man*) मिथ्या सत्यता का ज्ञान लिये हुये जागृत अवस्था में अब भी खाली दिव्य स्वप्न का अनुभव उस मूल दिव्य स्वप्न के अन्दर परमात्मा के एक और स्वप्न के रूप में करना जारी रखता है ।

परमात्मा की अवस्था में यह अत्यन्त ललचाने वाली स्थिति है जब, पूर्ण चेतना प्राप्त कर लेने पर, परमात्मा प्राप्त हुये मिथ्या ज्ञान के द्वारा भटक कर अपनी एकरूपता अपनी अपरिमित और अनन्त सत्ता (*Self*) से न करके, मानव प्राणी की शक्ल में अपनी अत्यन्त पूर्ण प्रतिमा से करता है, जबकि परमात्मा खाली दिव्य स्वप्न का अनुभव करना जारी रखता है ।

यद्यपि यह अत्यन्त मनमौजी कल्पना मालूम पड़ती है, फिर भी यह सच बात है कि मनुष्य का स्वयम् जीवन परदा है जो परमात्मा के सनातन सत् की सत्यता को दाँकता है ।

यह ईश्वरी प्रारब्ध का दुर्भाग्य है कि परमात्मा अपनेआप को पाने के लिये मनुष्य में खो जाता है, और जिस क्षण वह मनुष्य परमात्मा में खो जाता है उसी क्षण ईश्वर को अपनी सत्यता का साक्षात्कार सनातन एवं अनन्त सत् के रूप में हो जाता है ।

दूसरे शबदों में, अनन्त परमात्मा यत्नपूर्वक अपनी अनन्तता को खोजता हुआ खुद अपनी अपारतया पूर्ण प्रतिमा में अपारतया मग्न हो जाता है; और यद्यपि परमात्मा इसके द्वारा पूर्ण चेतना प्राप्त करता है, फिर भी उसे इसके अन्तर्गत खुद उसके सनातन अनन्त सत् की सत्यता का साक्षात्कार नहीं होता । लेकिन जिस क्षण प्रकार प्राप्त हुई पूर्ण चेतना परमात्मा की एकरूपता उसकी अपारतया पूर्ण प्रतिमा की अपार छाया से करना बन्द कर देती है उसी क्षण यह प्रतिमा परमात्मा की चेतता से लुप्त हो जाती है, और परमात्मा को सहजतया तथा आप ही आप एवम् चैतन्य रूप से खुद अपने स्वरूप का साक्षात्कार अनन्त सत् रूप परमात्मावत् हो जाता है, और उसे मालूम होता है कि अकेला वही सदैव एकमेव सत्यता था, वही सदैव एकमेव सत्यता है और वही शाश्वतः **एकमेव सत्यता** रहेगा ।

इस प्रकार मानव अवस्था में परमात्मा ने, पहलेपहल अपने को पनुष्य रूप अनुभव करके, सीमित आपा अथवा सीमित अहं, सीमित मन, सीमित प्राण शक्ति और सीमित स्थूल शरीर के द्वारा अपने सीमित

experience in the awake state with the awareness of false reality the vacant divine dream as yet another dream of God within that original divine dream.

This is the most alluring stage in the state of God when, with full consciousness gained, God is led astray, by the false awareness attained, to identify Himself not with His unlimited and infinite Self, but with His most perfect image in the shape of the human being, while God continues to experience the vacant divine dream.

Although it appears as the most fantastic imagination, yet it is a fact that the very life of man is the veil that shrouds the reality of the eternal existence of God.

It is the irony of divine fate that God gets lost in man to find Himself, and the instant that man gets lost in God, God realizes His Reality as Existence, eternal and infinite.

In other words, infinite God becomes infinitely absorbed in His own infinitely perfect image intently seeking His infinity; and although God does gain full consciousness through it, He does not realize the reality of His own eternal, infinite existence in it. But, the instant the full consciousness thus gained ceases to identify God with the infinite reflection of His infinitely perfect image, this image vanishes from the consciousness of God, and God spontaneously and automatically and consciously realizes His own identity as God, the infinite Existence, and finds that He alone ever was, always is and eternally will remain the **Only Reality.**

Thus God in the man state, at first realizing Himself as man, asserted His limited aspects through the limited self or the limited ego, the limited mind, the limited energy and the finite gross body. Then eventually and

पहलुओं को दृढ़ता से प्रतिपादित किया । फिर, अन्ततः तथा चरमरूप से अपने को ईश्वरवत् अनुभव करने पर, वह अपनी दिव्य असीमित **सत्ता** के द्वारा अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्द की अपनी असीमित, अपरिमित, अनन्त त्रि-प्रकृति प्रगट करता है ।

सात विभिन्न प्राथमिक स्थितियों से होकर, परमात्मा की मूल, अचेतन, दिव्य गहरी निद्रा अवस्था में परमात्मा की गुप्त चेतना के उधार की प्रक्रिया का चित्रण करते हुये, जिसकी तुलना मनुष्य की सात विभिन्न प्राथमिक अवस्थाओं से की गई है जो अपनी अचेतन गहरी निद्रा अवस्था से लेकर उस अवस्था तक चेतना प्राप्त करता है जिसमें उसे पूर्ण चेतना प्राप्त हो जाती है और वह पूरी खुली आँखों के साथ पूरी तरह जाग उठता है, हमें यह मालूम होता है कि यह परमात्मा की चेतना के विकास की प्रक्रिया है, जो अन्ततः परमात्मा की एकरूपता, **सृष्टि** के दिव्य स्वप्न के ड्रामा में, पत्येक जड़ और चेतन चीज़ से तथा सबसे करने के बाद, अन्ततः पूर्णतया चैतन्य परमात्मा की एकरूपता पूर्णतया चैतन्य मनुष्य से करती है ।[१८]

ठीक अचेतन अवस्था से लेकर (जिसकी तुलना दिव्य गहरी निद्रा अवस्था से की जाती है) मनूष्य अवस्था में पूर्ण और भरपूर चेतना प्राप्त हो जाने तक (जिसकी तुलना स्थूल जगत का अनुभव करते हुये मनुष्य की पूरी खुली आँखों से की जाती है), परमात्मा एक, अखण्ड्य, अपार, निराकार और शाश्वतः सर्व-व्यापी बना रहता है । लेकिन परमात्मा की सर्व-व्यापी अनन्त प्रकृति ही उसके सनातन दिव्य सत् को, प्रत्यक्षरूप से तथा अप्रत्यक्ष रूप से, सभी अवस्थाओं और रूपों में स्वयम् उनके अस्तित्व के प्रकाशनों के द्वारा, चैतन्य तथा अचैतन्य रूप से प्रकट करती है ।

विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया मूल, अनन्त लहर का निपट सहज परिणाम थी, जो लहर अचैतन्य परमात्मा में अपने समातन और अनन्त सत् की चेतना प्राप्त करने के लिये पैदा हुई ती । और, यह बात विरोधाभासपूर्ण मालूम हो सकती है, कि विकास की प्रक्रिया में परमात्मा की **अचैतन्यता** ने परमात्मा की सुप्त **चेतना** के उघार को, क्रमशः प्रेरित किया, और वह चेतना, परमात्मा की एकरूपता विविध और असंख्य स्थूल रूपों से करने के द्वारा विविध और असंख्य संस्कारों का सञ्चय तथा अनुभव करने की क्रमिक, नियमबद्ध और प्रगतिशील प्रक्रिया से

ultimately realizing Himself as God, He manifests His unlimited, unbounded, infinite trio-nature of infinite knowledge, infinite power and infinite bliss through His divine unlimited Self.

While depicting, through the seven different primary stages, the process of unfoldment of the latent consciousness of God in His original, unconscious, divine sound sleep state, as compared with the seven different primary states of man gaining consciousness right from his unconscious sound sleep state to the state wherein he gains full consciousness and wakes up completely with wide-open eyes, it is found that this is the process of the evolution of consciousness of God which eventually identifies the fully conscious God with the fully conscious man, after identifying God with all and everything inanimate and animate in the drama of the divine dream of Creation.[18]

Right from the unconscious state (compared to the divine sound sleep state) until full and complete consciousness is gained in the man state (compared to the wide-open eyes of man experiencing the gross world), God remains One, indivisible, infinite, formless and eternally all-pervading. But it is the all-pervading, infinite nature of God that expresses consciously and unconsciously His eternal divine existence, directly and indirectly, in one and all states and forms, through their expressions of their very being.

The whole process of evolution was an absolutely spontaneous outcome of the original, infinite whim surging in the unconscious God to become conscious of His eternal and infinite existence. And, paradoxical as it may seem, in the process of evolution the **unconsciousness** of God urged the gradual unfoldment of the latent **consciousness** of God, which consciousness grew greater and greater through a gradual, systematic and progressive process of gathering and experiencing varied and innumerable

गुज़रती हुई अधिक और अधिक बढ़ती गई ।

इस प्रकार से ही ईश्वर की विकसित होती हुई चेतना रूपों के साथ-साथ ऊँचे और ऊँचे प्रकार के रूपों की अवस्थाओं के साथ परमात्मा की एकरूपता को जन्म देती है । परमात्मा की यह एकरूपता अपनी पारी में, रूपों और प्राणियों के संसर्गों तथा विच्छेदों की, अथवा तथाकथित जन्मों और मृत्युओं की, प्रत्यक्षरूप से अनन्त शृङ्खला को जन्म देती है, जो रूप और प्राणी **शून्यता** के अन्तर्गत बनना और अपने को दृढ़ता से जतलाना और फिर नष्ट हो जाता जारी रखते हैं और वे अपने पीछे संस्कारों की बपौती छोड़ जाते हैं । ये संस्कार अपनी पारी में ईश्वर की विकसित होती हुई चेतना को फिर से अग्रसर करके ईश्वर की एकरूपता एक और रूप से कराते हैं जो नष्ट हुये रूप के पीछे छूटे हुये संस्कारों के हो ढाँचे में ढला होता है ।

विकास की प्रक्रिया से गुज़रकर, अचैतन्य परमात्मा ने अन्ततः पूर्णचेतना प्राप्त की जबकि परमात्मा की विकसित हुई चेतना ने अन्ततः परमात्मा की एकरूपता मनष्यरूप से की । लेकिन यह प्राप्त हुई पूर्ण चेतना संस्कारों से पगी चेतना थी इसलिये उसने परमात्मा को उसकी मूल अनन्त अवस्था का साक्षात्कार न कराया । इसके विपरीत, परमात्मा को अनुभव हुआ कि वह मनुष्ता है । इस प्रकार परमात्मा, अपने प्रथम, **शब्द** ("मैं कौन हूँ ?") की मूल लहर प्राप्त करने के बाद, इस स्थिति पर अपने को मनुष्य पाता है और स्थूल जगत का अनुभव करता है, और उसमें प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य की तरह रहता है और उसको अपने अनन्त एवं सनातन सत् की बिल्कुल स्मृति नहीं रहती जब तक कि उसको अपने प्रथम **शब्द "मों कौन हूँ ?"** का यथार्थ उत्तर **"मैं परमात्मा हूँ"** नहीं मिल जाता ।

इस प्रकार से ही मूल लहर ने **शून्य** की **उत्पत्ति की;** और **संस्कारों** ने उस **शून्य** को **शून्यता** के रूप में, अर्थात् सृष्टि और सृष्टि के प्राणियों के रूप में, **सुरक्षित रक्खा;** और अन्ततः विपरीत संस्कार आख़िरकार इन संस्कारों को उखाड़ फेंकेंगे और **सत्यता** का साक्षात्कार प्रदान करने के लिये उस **शून्यता** को नष्ट कर देंगे ।

परमात्मा की मूल लहर ने ही परम स्वतन्त्र परमात्मा में कर्त्ता परमात्मा—रक्षक परमात्मा—हर्त्ता परमात्मा (अर्तात् **ब्रह्मा-विष्णु-महेष**) के एकसाथ तीन अनन्त गुण पैदा कर दिये । परमात्मा की खुद मूल लहर

impressions through identifying God with varied and innumerable gross forms.

So it is that the evolving consciousness of God gives rise to the identification of God with forms and states of forms of higher and higher types. This identification of God in turn gives rise to an apparently unending chain of associations and dissociations, or the so-called births and deaths, of forms and beings which continue to form and assert and then dwindle away in the Nothingness, leaving behind the legacy of impressions which in turn again lead the evolving consciousness of God to identify Himself with yet another form moulded of the very impressions left behind by the form that dwindled away.

Through the process of evolution, the unconscious God did eventually gain full consciousness when the evolved consciousness of God eventually identified God with the human form. But this full consciousness gained was impressioned consciousness and therefore did not make God realize the original, infinite state of God. On the contrary, God realized that He is man. Thus God, after having the original whim of His First Word ("Who am I?"), at this stage finds Himself to be man and experiences the gross world, apparently living in it as man and quite oblivious of His infinite and eternal existence until He finds the real answer to His First Word of "Who am I?" to be "I am God."

So it is that the original whim **created** the Nothing; and the impressions or the sanskaras **preserved** that Nothing as the Nothingness, i.e., the Creation and the creatures of Creation; and eventually the opposite impressions will ultimately uproot these impressions and destroy that Nothingness to give realization of Reality.

It was the original whim of God that effected in the absolutely independent God the infinite triune attributes of God the Creator—God the Preserver—God the Destroyer (i.e., Brahma—Vishnu—Mahesh). It is

ही परमात्मा को **कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता** जैसे अनन्त गुण प्रदान करने के लिये उत्तरदायी है ।

परमात्मा के ये एकसाथ तीन अनन्त गुण, अस्तित्वधारी सभी चीज़ों और प्राणियों की अटल रचना, संरक्षण और विनाश करने के द्वारा, अविचल रूप से अपने को बलात् आरूढ़ करते हैं । मनुष्य के और सृष्टि के अन्तर्गत सब प्राणियों के रोज़ रोज़ के जीवन में भी, परमात्मा का यह अनन्त त्रिगुण पहलू अविचल जन्मों—जननक्रियाओं (संरक्षण क़ायम रखते हुये) और मृत्युओं के द्वारा अटलरूप से आरूढ़ होता मालूम पड़ता है ।

मूल प्रथम शब्द ने, परमात्मा की मूल लहर के द्वारा, प्रसुप्त **शून्य** से "मैं कौन हूँ ?" के प्रसुप्त मूल प्रथम संस्कार की उत्पत्ति की, और इस मूल प्रथम संस्कार ने पसुप्त **शून्यता** की उत्पत्ति मूल सृष्टि **के** रूप में की । अपनी पारी में, **शून्यता** की उत्पत्ति संस्कारों की उत्पत्ति करती है जो **शून्यता** को मूल सृष्टि के रूप में अटलतया सुरक्षित किये रखते हैं, जब तक कि आख़िरकार यह **शून्यता** पुनर्जन्म और चेतना के प्रतिवर्धन की प्रक्रियाओं से गुज़र कर विपरीत संस्कारों के द्वारा नष्ट नहीं हो जाती, और प्रथम शब्द "मैं कौन हूँ ?" का अन्तिम उत्तर "मैं परमात्मा हूँ" नहीं मिल जाता ।

जड़ और चेतन रूपों एवं प्राणियों के विविध व्यक्तिगत चैतन्य प्रतिपादनों से उत्पन्न हुये संस्कारों के अनुसार ही, माया अविचल रूप से अपनी प्रत्यक्षतया अनन्त एवं विविध स्थिति क़ायम रखती है । विविध व्यक्तिगत जनित संस्कारों की इस अटूट तथा प्रत्यक्षतया अनन्त शृङ्खला के कारण ही मूल प्रकृति, जो परमात्मा की मूल लहर से पैदा होती है, अटलरूप से रक्षित रहती है, जबकि वह साथ-साथ विकसित होती रहती है जिससे प्रत्येक अस्तित्वधारी व्यक्तिगत रूप एवं प्राणी प्रथम शब्द "मैं कौन हूँ ?" के उत्तरों का अनुभव चैतन्य रूप से कर सके कि "मैं एक जड़ चीज़ हूँ", "मैं एक चेतन प्राणी हूँ", "मैं एक विवेकशील प्राणी हूँ", "मैं एक पुरुष हूँ" और "मैं एक स्त्री हूँ" ।

उदाहरण के लिये, जब मानव अवस्था में परमात्मा, मनुष्यवत् गहरी निद्रा में होता है, और जब काल एवं देश (*time and space*) मनुष्य के दिन तथा विश्व के रूप में उसके लिये सबके सब प्रत्यक्षतया नष्ट हो चुकते हैं, तब वह कौन सी चीज़ है जो उसके लिये प्रतिदिन

God's original whim itself that is responsible for bestowing upon God infinite attributes such as the Creator—the Preserver—the Destroyer.

These infinite triune attributes of God consistently force assertion through consistent formation, conservation and dissolution of all things and beings in existence. Even in the everyday life of man and of all creatures in Creation, this infinite triune aspect of God consistently appears to assert through consistent births, procreations (maintaining the preservation) and deaths.

The original first word, through the original whim of God, created out of the latent Nothing the latent original first impression of "Who am I?" and this original first impression procreated the latent Nothingness as the original Creation. In turn, the procreation of the Nothingness procreates the impressions which continue to preserve the Nothingness consistently as the original Creation, until eventually this Nothingness is destroyed by opposite impressions through the processes of reincarnation and involution of consciousness, and the final answer of "I am God" is obtained to the first word "Who am I?"

It is in accordance with the procreated impressions of the varied individualized conscious assertions of inanimate and animate forms and beings that illusion consistently maintains its apparently infinite and varied stand. It is because of this unfailing and apparently unending chain of varied individualized procreated impressions that the original Creation, originating out of the original whim of God, is consistently preserved, while being concurrently evolved so that every individualized form and being in existence may consciously experience the answers to the first word "Who am I?" as "I am an inanimate thing," "I am an animate creature," "I am a rational being," "I am a man" and "I am a woman."

For example, when God in the man state, as man, is in sound sleep, and when time and space as the day and the universe of the man have all been apparently destroyed for him, then what is it that every day

उसके दैनिक प्रभात की उत्पत्ति अटल रूप से करती है ? और पुनः, जब मनुष्य प्रतिदिन जागता है, तब वह कौन सी चीज़ है जो उसके लिये उसके विश्व की और सब चीज़ों की जो विश्व की हैं और विश्व के अन्दर हैं अटल रूप से उत्पत्ति करती है । चेतना के विकास के दौरान में, और पुनर्जन्म की प्रक्रिया के दौरान में, सञ्चित हुये मनुष्य के खुद अपने प्रसुप्त संस्कार की उसको प्रतिदिन बिना अभिप्राय के जगाने के लिये उसकी गहरी निद्रा में खुद उसकी प्रसुप्त चेतना को उकसाते हैं, जिससे कि मनुष्य के खुद अपने प्रसुप्त संस्कारों को उसकी जागृत अवस्था के दौरान में चैतन्य अनुभवों के द्वारा समाप्त हो जाने के लिये आवश्यक अवकाश मिल सके । इस रीति से खुद मनुष्य के प्रसुप्त अवस्था के संस्कार ही उस मनुष्य के लिये रोज़ खुद उसके प्रभात और खुद उसके विश्व की उत्पत्ति करते हैं । यद्यपि मनुष्य के प्रतिदिन के प्रभात एवं विश्व दोनों की उत्पत्ति उसके लिये एकसाथ खुद उसके प्रसुप्त संस्कारों के द्वारा हुई थी, फिर भी वे दोनों उसके लिये पहले ही दैनिक जागृत अवस्था के अन्तर्गत उसके जीवन के उसके निजी संस्कारों के द्वारा **रक्षित** रहे थे, और वे पहले से ही विद्यमान माया, अथवा परमात्मा की मूल लहर से उत्पन्न हुई मूल सृष्टि, के गहरे और गहरे संस्कारों से युक्त खुद उसके दैनिक जीवन में जनन त्रिया के द्वारा भी रक्षित रहे थे । अन्ततः मनुष्य के प्रभात (अथवा दिन) और उसके विश्व दोनों का **नाश** मनुष्य के खुद अपने विपरीत संस्कारों से हो जाता है जिनका अनुभव वह अपनी निद्रा अवस्था में करता है, और जो उसकी जागृत अवस्था के संस्कारों के बिल्कुल विपरीत होते हैं ।

अस्तु, नियमित अटल क्रम में, मनुष्य अवस्था में परमात्मा मनुष्यवत्, मनुष्य के प्रसुप्त संस्कारों के द्वारा खुद अपनी सृष्टि के विधाता के रूप में अटल रूप से अपना प्रतिपादन करता है; जागृत अवस्था में मनुष्य का दैनिक जीवन व्यतीत करते, और सृष्टि के संस्कारों का जनन करते हुये खुद अपनी सृष्टि के धर्त्ता के रूप में अटलरूप से अपना प्रतिपादन करता है; और मनुष्य के विपरीत संस्कारों के द्वारा, जब वह सो जाता है और अन्ततः गहरी निद्रा अवस्था में हो जाता है, खुद अपनी सृष्टि के हर्त्ता के रूप में अटलरूप से अपना प्रतिपादन करता है । प्रतिदिन, मनुष्य अपनी चेतना के द्वारा व्यक्तिगत की हुई सृष्टि को

unfailingly creates his daily morning for him? And again, when man wakes up every day, then what is it that unfailingly creates for him his universe and all the things that are of it and in it? It is the man's own dormant impressions gathered during the course of the evolution of consciousness, and during the process of reincarnation, that incite his own dormant consciousness during sound sleep to wake him up inadvertently every day, so that the man's own dormant impressions may have the necessary scope to become exhausted through conscious experiences during his awake state. In this manner the man's own impressions in the dormant state create for the man his own morning and his own universe every day. Although both the daily morning and the universe of the man were simultaneously created for him by his own dormant impressions, yet both were already handily preserved for him by his own impressions of his life in the everyday awake state, and also through the procreation in his own everyday life of deeper and deeper impressions or sanskaras of the already existing Illusion, or of the original Creation, which sprang from the original whim of God. Eventually, both the morning (or the day) and the universe of that man are **destroyed** by the man's own opposite impressions experienced in his sleep state, which are diametrically opposite to the impressions of his awake state.

Hence, in regular unfailing succession, God in the man state as man, consistently asserts Himself as the Creator of His own Creation through the dormant impressions of man; as the Preserver of His own Creation through man's leading the everyday life in the awake state, procreating the impressions of creation; and as the Destroyer of His own Creation through the opposite impressions of man when he falls asleep and ultimately passes away in the sound sleep state. Every day, finally destroying the very creation as individualized by his consciousness, man once again

अन्ततः नष्ट करता हुआ, संस्कारों की पीड़ा के द्वारा एक बार फिर से पूरी सृष्टि को रचता है, उसकी रक्षा करता है और उसको नष्ट करता है । हर चीज और हर प्राणी के स्वयं अस्तित्व के द्वारा भी, परमात्मा **कर्त्ता, भर्त्ता** और **हर्त्ता** के रूप में अपने अनन्त त्रिमुखी गुणों का अटलतापूर्वक प्रतिपादन करता है ।

जैसे मनूष्य अवस्था की प्रकृति में, वैसे ही परमात्मा की प्रत्येक अवस्था की प्रकृति में भी, परमात्मा **कर्त्ता, भर्त्ता** और **हर्त्ता** के अपने अनन्त त्रिमुखी गुणों का अटल प्रतिपादन एकसाथ सीधे और परोक्षरूप से, प्रगटरूप से और यथार्थ रूप से, करता है । हृदय की धड़कन और फेफड़ों की क्रिया तक में भी अनन्त त्रिमुखी गुणों के तीन पहलू अपना दृढ़ प्रतिपादन करने में कभी नहीं चुकते । हृदय की प्रत्येक धड़कन के साथ, हृदय फैलता है, शिथिल होता है (संकुचन की अवधि में) और सिकुड़ता है, और उसके साथ-साथ वह एक ओर एक प्राणी के जन्म के आगमन की सूचना देता है, और दूसरी ओर उस प्राणी के जीवन को स्थिर रखता है, और अन्ततः, आखिरी तथा चरम संकुचन के साथ उस प्राणी की भोतिक मृत्यु कर देता है ।

इस प्रकार से ही परमात्मा के कर्त्ता परमात्मा, भर्त्ता परमात्मा और हर्त्ता परमात्मा (**ब्रह्म, विष्णु** और **महेश** अथवा **शिव**), रूपेण त्रिमुखी गुण सब चीज़ों में और प्रत्येक जीवधारी में और सब प्राणियों में, चेतना के विकास के दौरान में हर स्थिति पर परमात्मा की हर अवस्था में, और चेतना के प्रतिवर्धन में हर भूमिका पर, स्वाधीनतापूर्वक तथा एकसाथ अपना दृढ़ प्रतिपादन करते हैं, जब तक अन्ततः मूल ऐहिक सृष्टि, युगों, कालचक्रों और अवधियों तक स्थिर रहने के बाद और ऐहिक संस्कारों की क्रीड़ा के द्वारा रक्षित रहने के बाद, परमात्मा के ऐहिक विपरीत संस्कारों की क्रीड़ा के द्वारा अन्तिम रूप से नष्ट नहीं हो जाती । यह अन्तिम विनाश आमतौर पर "**महाप्रलय**" कहलाता है, जिसका अर्थ है "लय हो जाने की महान से महान घटना", जबकि **शून्यतावत्** अखिल ऐहिक सृष्टि **सबकुछ** में अनन्ततया समा जाती है ।

विकास की प्रक्रिया में अचैतन्य परमात्मा ने पूर्ण चेतना प्राप्त की, अपनी मूल अनन्त अवस्था की नहीं बल्कि स्थूल और सीमित अवस्था की चेतना प्राप्त की । विकास के दौरान में पूरे संघर्ष के बाद, जिसने परमात्मा के लिये पूर्ण चेतना प्राप्त की, निःसन्देह वह चेतना किस

creates, preserves and destroys the whole creation through the play of impressions. Even through the very being of every thing and of every creature, God consistently asserts His infinite triune attributes as the Creator, the Preserver and the Destroyer.

As in the nature of the man state, so also in the nature of every state of God, God consistently asserts directly and indirectly, apparently and really, His infinite triune attributes of Creator, Preserver and Destroyer at one and the same time. Even in the very pulsation of the heart and in the functioning of the lungs, the three aspects of the infinite triune attributes never fail to assert. With every pulsation of the heart, the heart expands, relaxes (in the refractory period) and contracts, simultaneously heralding the advent of the birth of a being on the one hand, and sustaining the life of the being on the other hand, and finally, with the eventual and final contraction, leading to the physical death of the being.

Thus it is that the triune attributes of God, as God the Creator, God the Preserver and God the Destroyer (*Brahma, Vishnu* and *Mahesh* or *Shiva*), assert independently as well as simultaneously in all things and in every creature and in all beings, in every state of God at every stage in the evolution of consciousness, and on every plane in the involution of consciousness, until eventually the original cosmic Creation, having sustained the ages, cycles and periods, and being preserved by the play of cosmic impressions, is finally destroyed by the play of cosmic opposite impressions of God. This final destruction is generally known as *mahapralaya,* meaning the "Greatest of the great event of absorption," when the whole cosmic Creation as Nothingness is absorbed infinitely by the Everything.

In the process of evolution, unconscious God did obtain full consciousness, not of His original infinite state but of the gross and finite. After all the struggle during the course of evolution, which achieved full consciousness for God, no doubt—at what price was it gained? The cost

कीमत पर प्राप्त की गई थी ? वह कीमत थी स्थूल रूप में सञ्चित हुये संस्कारों की बपौती का बोझ—जो स्थूल रूप परमात्मा की विकासशील चेतना के संसर्ग का आख़िरी माध्यम था—जिसके माध्यम से भरपूर चेतना पूर्णतया विकसित हो गई जिस क्षण परमात्मा ने अपनी एकरूपता मनुष्य-रूप से की । इसलिये मनुष्य अवस्था में परमात्मा को, भरपूर चेतना प्राप्त कर लेने पर भी, अपनी मूल अवस्था का ज्ञान अब भी नहीं होता । यह अज्ञान स्थूल संस्कारों के अवांछित (यद्यपि आवश्यक) बोझ के कारण होता है जो स्थूल संस्कार प्राप्त हुई पूर्ण चेतना से अब भी चिपटे रहते हैं ।

वह प्रक्रिया जिसके द्वारा मनुष्य अवस्था में परमात्मा इन सीमित संस्कारों का बोझ हटाने के लिये संघर्ष करता है ऐसी प्रक्रिया है जो विपरीत संस्कारों के माध्यम से होती है, और वह पूनर्जन्म[१९] की प्रक्रिया कहलाती है ।

चेतना के ऊपर से सीमित संस्कारों का बोझ हटाने का प्रयत्न करने में परमात्मा की स्थूल चेतना को इन संस्कारों का अनुभव आवश्यकरूप से करना पड़ता है और फिर उन्हें पूनर्जन्मों की एक शृङ्खला से गुज़र कर असंख्य विपरीत संस्कारों के द्वारा समाप्त करना पड़ता है । स्वभाव से विपरीत अनुभव संस्कारों को समाप्त करने के लिये बिल्कुल आवश्यक होते हैं, क्योंकि केवल विपरीत अनुभव ही गहरी जड़ जमाये हुये अथवा दृढ़ता से स्थापित हुये विविध संस्कारों की जड़ों को हिला सकते हैं ।

पुनर्जन्म की प्रफिया में मनुष्य में स्थित पूर्णतया स्थूल-चैतन्य परमात्मा, जो पूर्णतया विकसित सूक्ष्म एवं कारण शरीरों से युक्त होता है, जिन शरीरों का उपयोग अटल रूप से, यद्यपि अचेतनतया, करता है, अनिवार्यरूप से विविध और असंख्य अनुभवों की अनन्त शृङ्खलाओं का अनुभव करता है, जो अनुभव स्वभाव से विपरीत होते हैं, जिससे कि द्वन्द्वों के संस्कार समाप्त हो सकें । इन संस्कारों की छाप निरन्तर मनुष्य के कारण शरीर अथवा मन पर पड़ती रहती है, अथवा वह उनका चयन करता रहता है, और मनुष्य में विद्यमान आन्तरिक चेतना उन संस्कारों को धारण किये रहती अथवा उन्हें मुक्त करती रहती है । मनुष्य में स्थित, मनुष्यवत् परमात्मा की आन्तरिक चेतना और पूर्ण चेतना के द्वारा जब ये संस्कार मुक्त होते हैं, तब उसको मुक्त हुये संस्कारों की विविधता और प्रगाढ़ता के अनुसार विविध अनुभव होते हैं । जबकि

was the burden of the legacy of impressions accumulated in the gross form—the last medium of association of the evolving consciousness of God—through which full consciousness was completely evolved in the instant that God identified Himself with the human form. Therefore God in the man state is still unaware of His original state despite having gained full consciousness. This unawareness is due to the unwanted (though necessary) burden of the gross impressions still clinging to the full consciousness gained.

The process through which God in the man state struggles to unburden these finite impressions is one which takes place through opposite impressions, and is called the process of reincarnation.[19]

In trying to unburden consciousness from the finite impressions the gross consciousness of God necessarily has to experience these impressions and then exhaust them by innumerable opposite experiences through a series of reincarnations. Experiences opposite by nature are absolutely essential to exhaust the impressions, because opposite experiences alone can shake up the roots of thickly set or firmly established varied impressions.

In the process of reincarnation the fully gross-conscious God in man, fortified with fully developed subtle and mental bodies, which are consistently though unconsciously used, must necessarily experience a series of unending chains of varied and innumerable experiences, opposite by nature, in order that the impressions of opposites might be exhausted. These impressions are constantly being imprinted upon, or picked up by, the mental body or the mind of man, and are retained or released by the sub-consciousness in man. When these impressions are released through the sub-consciousness and full consciousness of God in man, as man, he has varied experiences according to the variety and the intensity of the impressions released. Whereas the subtle body of man, which is the seat of

मनुष्य का सूक्ष्म शरीर, जो शक्ति का केन्द्र है, मनुष्य वो उसके स्वप्न अथवा जागृत अवस्था के (जैसे भी अवस्था हो) दैनिक जीवन में कर्म करने के निमित्त क्रियाशील करने के लिये इन संस्कारों को शक्ति प्रदान करता है । ये कर्म भी स्वभाव में विविध सम्बन्धित विपरीत संस्कारों के विपरीत होते हैं ।

इस प्रकार स्थूल भूमिका पर स्थित मानव अवस्था में, यद्यपि प्राण (*energy*) और मन का पूरा विकास हो जाता है और उसका उपयोग निरन्तर तथा अविचल रूप से किया जाता है, तो भी वे परोक्ष और अचेतन रूप से काम में लाये जाते हैं । प्राण भूमिका पर होने के समय (यानी सूक्ष्म भूमिकाओं पर), इस **प्राण शक्ति** (*energy*) का उपयोग दिव्य रूप से और चेतनतया किया जाता है; लेकिन सूक्ष्म भूमिकाओं पर **मन** का उपयोग परोक्षरूप से तथा अचेतनतया किया जाता है । मनो भूमिकाओं पर, जबकि इस **मन** का उपयोग दिव्य रूप से तथा चेतनतया किया जाता है, **प्राण शक्ति** का उपयोग केवल परोक्षरूप से तथा अचेतनतया किया जाता है ।*

इससे अनिवार्यरूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि जबकि मानव अवस्था में यह स्थूल-चैतन्य परमात्मा स्थूल जगत में द्वन्द्वों का अनुभव करता है, वह विविध आतियों, धर्मों, राष्ट्रीयताओं और रंगों में तथा विविध विभिन्न, स्थानों और महाद्वीपों में, कभी पुरुष के रूप में, कभी स्त्री के रूप में, असंख्य बार पुनर्जन्म लेता है, और हमेशा द्वैध संस्कारों का पुनर्निरीक्षण करता तथा उन्हें द्वन्द्वों के अनुभव द्वारा समाप्त करता है ।

इन विविध द्वन्द्वात्मक संस्कारों और क्रमशः उनके विपरीत अनुभवों के द्वारा ही सदैव सथूल-चैतन्य परमात्मा मानव अवस्था में पृथ्वी पर, सम्भवतः एक दिन, लाखों पुनर्जन्मों के बाद, गहरे गड़े संस्कारों को क्षीण कर सकता है । मानव-योनियों की तथाकथित मृत्युओं और जन्मों के इस कालचक्र की प्रक्रिया ही अन्ततः मानव अवस्था में स्थित स्थूल-चैतन्य परमात्मा की चेतना को प्रतिवर्धन के लिये उत्प्रेरित करती है ।

(१३२)

* [इसे भी पढ़िये : मेहेरबाबा, "प्राण शक्ति और द्रव्य के ऊपर मन का नियंत्रण", सर्वोत्तम जीवन, आईवी ओ॰ द्यूश (सैनफ्रांसिस्को : सूफ़ीज़्म रिओरियेण्टेड, इन्कारपोरेटेड, १९५७), द्वारा सम्पादित, पृष्ठ ३८ । सम्पादक]

energy, energizes these impressions to activate man into committing actions in his everyday life of either the dream or awake state (as the case may be). These actions are also opposite in nature to the varied related opposite impressions.

Thus in the man state on the gross plane, although energy and the mind are fully developed and are continually and consistently used, yet they are employed indirectly and unconsciously. When on the planes of Energy (i.e., on the subtle planes), this Energy is divinely and consciously made use of; but on the subtle planes the Mind is made use of indirectly and unconsciously. On the mental planes, when this Mind is made use of divinely and consciously, Energy is only made use of indirectly and unconsciously.*

It necessarily follows that while this gross-conscious God in the man state experiences the opposites in the gross world, He reincarnates a number of times, sometimes as a male, sometimes as a female, in the varied castes, creeds, nationalities and colours and in varied different places and continents, always reviewing opposite impressions and exhausting them by experiences of opposites.

It is always through these diverse oppositional impressions and their respective opposed experiences that gross-conscious God in the man state on earth can possibly one day, after millions of rebirths, thin out the thick-set impressions. It is the process of this cycle of so-called deaths and births of human-forms that ultimately urges the consciousness of the gross-conscious God in the man state to involve. This process of involution of

* [See also Meher Baba, "Control of Mind over Energy and Matter," *Life at Its Best*, ed. Ivy O. Duce (San Francisco: Sufism Reoriented, Inc., 1957), 38. Ed.]

चेतना के प्रतिवर्धन की यह प्रक्रिया क्रमशः साकार होत ी है जब स्थूल संस्कार क्रमशः अधिक क्षीण ओधक न्यून होते जाते हैं ।

मानव स्थिति में परमात्मा की चेतना का प्रतिवर्धन केवल तब सम्भव होता है जब द्वैध संस्कार, एक बहुत-बहुत लम्बी प्रक्रिया के बाद, क्रमशः अटल पुनर्जन्मों की प्रक्रिया के द्वारा, जो स्थूल संस्कारों की सीमा की ओर ले जाती है, धीरे-धीरे क्षीण होते हैं ।

जब स्थूल संस्कारों की हद आ जाती है, तब वह स्थिति प्राप्त होती है जहाँ मानव अवस्था में स्थित स्थूल-चैतन्य परमात्मा क्रमशः स्थूल जगत से विच्छिन्न हो जाता है जैसे ही चेतना का प्रतिवर्धन चेतना को **अन्तर्मुखी** (*infold*) करने लगता है । उसके साथ-साथ, चेतना के प्रतिवर्धन के प्रारम्भ के साथ, मानव स्थिति में परमात्मा स्थूल जगत के द्वन्द्वों के संस्कारों का अनुभव करने से क्रमशः अलग होता जाता है ।

यह देखा गया था कि परमात्मा ने चेतना के विकास की प्रतिक्रिया के द्वारा पूर्ण चेतना प्राप्त की थी; लेकिन प्राप्त हुई वह पूर्ण चेतना ऐसी चेतना थी जो संस्कारों से भरी थी । पूर्ण चेतना प्राप्त हुये इन संस्कारों का सफाया करने के लिये, पुनर्जन्म की प्रक्रिया और चेतना के पतिवर्धन की प्रक्रिया से गु. जरना अवश्यम्भावी है ।

परमात्मा की चेतना के विकास की प्रक्रिया की तुलना मनुष्य की आँखें धीरे-धीरे खुलने से की गई थी । जब मनुष्य ने अपनी आँखें पूरीतौर से खोल दीं तो उसकी तुलना चेतना के विकास के अन्त से की गई थी, क्योंकि तब परमात्मा ने भरपूर चेतना प्राप्त कर ली थी ।

मानव स्थिति में परमात्मा के पूनर्जन्म की प्रक्रिया की तुलना उस मनुष्य से की जा सकती है जो पूरी तरह से जागृत है और पूर्णतया चैतन्य है और उसकी आँखें पूरी खुली हैं, और वह विविध अनुभव प्राप्त कर रहा है जो उन संस्कारों के विपरीत थे जो उसने अपने जीवन के वर्षों में सञ्चित कर लिये थे, और जिनका अनुभव वह अब अपने मौजूदा जीवन काल में क्रियात्मक रूप से करता है, और अपने नानाविधि क्रियाकलाप के करने में खुद अपने को भूल जाता है ।

अब मानव स्थिति में स्थित परमात्मा की चेतना के प्रतिवर्धन के लिये उत्प्रेरणा की तुलना एक आदमी से की जा सकती है जिसे, अपने दिन के क्रियाकलाप में व्यस्त रहने के बाद, आख़िरकार समय मिलता है, जब उसका दिन का काम प्रायः समाप्त हो जाता है, जिससे

consciousness gradually takes shape when the gross impressions gradually grow fainter and scarcer.

Involution of the consciousness of God in the man state is only possible when the opposite impressions, after a very, very long process, gradually thin out through the process of unfailing reincarnations which leads to the limit of gross impressions.

When the limit of gross impressions is reached, then the stage is attained where gross-conscious God in the man state gradually becomes dissociated from the gross world as the involution of consciousness begins to **infold** the consciousness. Simultaneously with the beginning of the involution of consciousness, God in the man state gradually dissociates from experiencing the impressions of the opposites of the gross world.

It was seen that God attained full consciousness through the process of evolution of consciousness; but the full consciousness gained was a consciousness that was impressioned. In order to wipe the impressions off of the full consciousness gained, the process of reincarnation and the process of involution of consciousness must be followed through.

The process of the evolution of consciousness of God was compared to the gradual opening of the eyes of man. When man opened his eyes completely it was compared with the end of the evolution of consciousness, because God then had gained full consciousness.

The process of the reincarnation of God in the man state may be compared with the man completely awake with full consciousness and with eyes wide open, gaining diverse experiences opposite to the impressions he gathered during the years of his life, and which he now actively experiences during the course of his days, forgetting his own self amid the execution of his multifarious activities.

Now the urge for the involution of the consciousness of God in the man state may be compared with a man who, having been engrossed in his activities of the day, at last finds time, when the day's work is practically over, to pay attention to his own self rather than to his activities. Thus

वह अपना ध्यान अपने क्रियाकलाप के बजाय खुद अपनी ओर कर सकता है । इस प्रकार उत्प्रेरित होने पर मनुष्य का ध्यान अपने बाहरी क्रियाकलाप से खुद अपनी ओर उचित ध्यान देने की ओर अपनेआप खिच जाता है ।

ठीक जिस तरह पूर्ण चेतना का विकास सात विभिन्न क्रमों में हुआ था, उसी प्रकार विकसित पूर्ण चेतना का पूर्ण विकास सात विभिन्न क्रमों में पतिवर्धन की प्रक्रिया के द्वारा होता है । चेतना के प्रतिवर्धन की ये सात स्थितियाँ "चेतना की सात भूमिकायें" कहलाती हैं । सातवीं भूमिका चेतना के प्रतिवर्धन की प्रक्रिया में सातवीं और अन्तिम स्थिति है जहाँ चेतना पूर्ण रूप से विकसित है और परमात्मा चैतन्य रूप से अपने शाश्वत अनन्त सत् का अनुभव करता है; अर्थात्, परमात्मा को, जो मूल रूप में अचैतन्य था, अब स्वयं विस्मृति की विस्मृति हो जाती है ।

मानव अवस्था में स्थित परमात्मा की चेतना के क्रमिक प्रतिवर्धन की इन सात स्थितियों की तुलना मनुष्य के पूरे खुले नेत्रों से की जा सकती ह, जो पहले ठीक अपने से आगे और अपने से दूर टकटकी लगाये हुये है । फिर, खुद अपनेआप को देखने के प्रयास में, वह अपने नेत्र क्रमशः नीचे को करता है, और उनको सात श्रेणियों में घुमाता है, जब तक कि आख़िरकार उसकी दृष्टि का विस्तार उसको खुद अपने में समाविष्ट नहीं कर लेता ।

निश्चित, असंख्य पुनर्जन्मों के माध्यम से, जहाँ स्थूल अनुभवों की एक सीमा पहुँच जाती है, और जब स्थूल संस्कार क्षीण और प्रायः निर्जीव हो जाते हैं, तब मानव अवस्था में स्थित स्थूल-चैतन्य परमात्मा की स्थूल चेतना क्रमशः प्रतिवर्धित होने लगती है, और मनुष्य की अवस्था में स्थित परमात्मा चेतना के पतिवर्धन की प्रक्रिया में प्रवेश करता है ।

इस स्थिति में प्रतिवर्धित होती हुई स्थूल चेतना सूक्ष्म जगत की पहली अवस्था अथवा भूमिका का **आंशिक** अनुभव प्राप्त करती है; और इन अनुभवों को मानव अवस्था में स्थित परमात्मा पहले ही पूर्णतया व्किसित सूक्ष्म शरीर के माध्यम से करता है । पहली भूमिका के पहले यही मूल स्थिति है जहाँ मानव अवस्था में स्थित स्थूल-चेतनायुक्त परमात्मा की विकसित स्थूल चेतना को सूक्ष्म जगत की प्रथम भूमिका की पहली झलकें प्राप्त होती हैं, और वह उनके संस्कारों का अनुभव आंशिक रूप से स्थूल शरीर के द्वारा और आंशिक रूप से सूक्ष्म शरीर

urged, man's attention shifts automatically from external activities towards paying proper attention to his own self.

Just as full consciousness was evolved in seven different stages, so too, evolved full consciousness is completely involved through the process of involution in seven different stages. These seven stages of involution of consciousness are named "the seven planes of consciousness." The seventh plane is the seventh and last stage in the process of involution of consciousness where consciousness is completely involved and God consciously realizes His eternal infinite existence. That is, God, Who was originally unconscious, now becomes oblivious of oblivion itself.

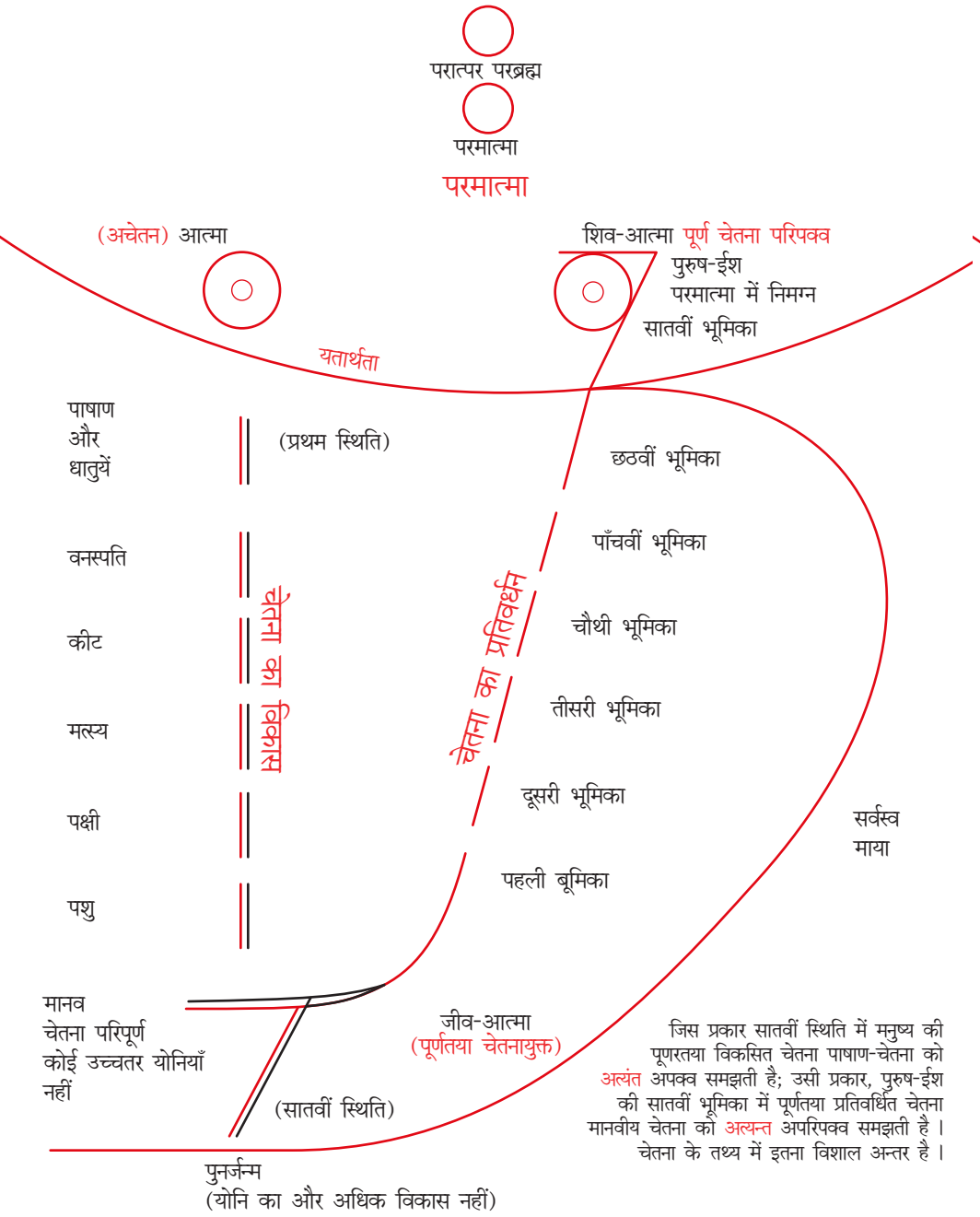
These seven stages of gradual involution of the consciousness of God in the man state may be compared with the wide-open eyes of a man, at first gazing straight ahead of him and away from him. Then, in an attempt to behold his own self, he lowers his eyes gradually, shifting them in seven stages, until eventually his range of vision includes his own self.

Through unfailing, numerous reincarnations wherein a limit to gross experiences is reached, and when the gross impressions become faint and almost defunct, the gross consciousness of gross-conscious God in the man state gradually begins to involve, and God in the state of man is initiated into the process of involution of consciousness.

At this stage the involving gross consciousness experiences **partially** the first stage or plane of the subtle world through the medium of the already fully developed subtle body of God in the man state. This is the initial stage before the first plane where the involved gross consciousness of gross-conscious God in the man state obtains the first glimpses of the first plane of the subtle world, and experiences their impressions partially through the gross body and partially through the

चार्ट ४

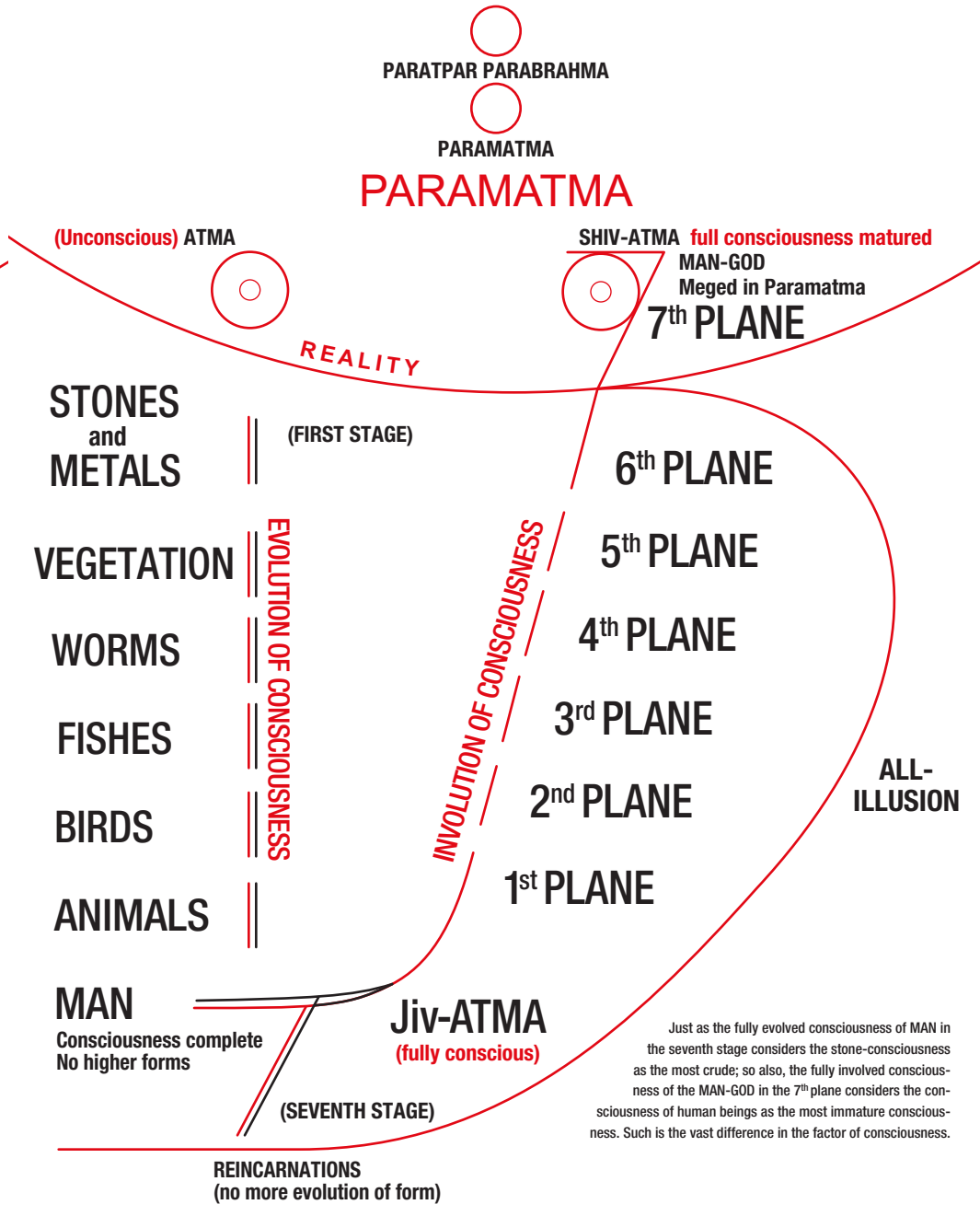
विकास और प्रतिवर्धन



जिस प्रकार सातवीं स्थिति में मनुष्य की पूणरतया विकसित चेतना पाषाण-चेतना को अत्यंत अपक्व समझती है; उसी प्रकार, पुरुष-ईश की सातवीं भूमिका में पूर्णतया प्रतिवर्धित चेतना मानवीय चेतना को अत्यन्त अपरिपक्व समझती है। चेतना के तथ्य में इतना विशाल अन्तर है।

CHART IV

EVOLUTION AND INVOLUTION



Just as the fully evolved consciousness of MAN in the seventh stage considers the stone-consciousness as the most crude; so also, the fully involved consciousness of the MAN-GOD in the 7th plane considers the consciousness of human beings as the most immature consciousness. Such is the vast difference in the factor of consciousness.

blank page

blank page

द्वारा करता है । इस स्थल पर स्थूल और सूक्ष्म दोनों इन्द्रियों का एकसाथ प्रयोग किया जाता है ।

यह वह स्थिति है जहाँ मानव अवस्था में स्थित परमात्मा, मानो सीमान्त रेखा पर खड़ा होता है, जो स्थूल जगत और सूक्ष्म जगत के बीच की सीमा स्थिर करती है और जहाँ मानव अवस्था में स्थित परमात्मा की चेतना को विचित्र चीज़ों के अनुभव प्राप्त होते हैं । अपने स्थूल नेत्रों के द्वारा उसको सूक्ष्म भूमिका की झलकें प्राप्त होती हैं, उसको अपने स्थूल कानों के द्वारा सूक्ष्म भूमिका का आलौकिक सङ्गीत सुनाई पड़ता है, और अपनी स्थूल मासिका के द्वारा वह सूक्ष्म सुगन्धित वस्तुओं का आनन्द लेता है । संक्षेप में, मानव अवस्था में स्थित स्थूल-चैतन्य परमात्मा, आंशिक रूप से सूक्ष्म जगत की पहली भूमिका पर, स्थूल इन्द्रियों के द्वारा सूक्ष्म संस्कारों का अनुभव करता है ।

स्थूल चेतना का और अधिक प्रतिवर्धन होने पर, स्थूल-चैतन्य परमात्मा को सूक्ष्म जगत की पहली भूमिका का अनुभव क्रमशः पूर्णरूप से हो जाता है । अब मानव अवस्था में स्थित परमात्मा की स्थूल चेतना और अधिक **स्थूल** चेतना नहीं रहती, वरन् वह **सूक्ष्म** चेतना होती है ।

मानव स्थिति में सूक्ष्म-चैतन्य परमात्मा को क्रमशः सूक्ष्म जगत की दूसरी भूमिका की चेतना आ जाती है जैसे-जैसे चेतना का प्रतिवर्धन चेतना को उघारने के लिये आगे और आगे अग्रसर होता है ।

यह सूक्ष्म जगत अनन्त प्राणशक्ति का प्रदेश है । अनन्त और असीमित शक्ति, जो परमात्मा की अनन्त त्रि-प्रकृति का एक अंग होती है, जब वह असीमित अनन्तता के केन्द्र से फैलकर माया के सीमित जगतों में जाती है, सीमितता में परिवर्तित होती है और सूक्ष्म जगत की अनन्त प्राण शक्ति के रूप में सूक्ष्म जगत के प्रदेश में अभिव्यक्त होती है ।

इस प्रकार, दूसरी भूमिका में, मानव-रूपधारी परमात्मा सूक्ष्म चेतना से सम्पन्न होता है, और इसलिये ऊसको स्थूल शरीर की और कारण शरीर, अर्थात् मन, की चेतना नहीं होती । किन्तु मानव-रूपधारी परमात्मा निश्चय ही स्थूल शरीर के माध्यम से और मन (कारण शरीर) के माध्यम से कार्य करता है—प्रत्यक्ष रूप से नहीं, किन्तु सूक्ष्म भूमिका पर और सूक्ष्म भूमिका से कार्य करता है ।

इसलिये यदि मानव अवस्था में स्थित सूक्ष्म-चैतन्य परमात्मा को

subtle body. Here both the gross and the subtle senses are simultaneously used.

This is the stage where God in the man state stands, as it were, on the line of demarcation which delimits the gross world from the subtle world and where the consciousness of God in the man state experiences strange things. With His gross eyes He obtains glimpses of the subtle plane, with His gross ears He hears celestial music of the subtle plane, with His gross nose He enjoys subtle scents. In short, gross-conscious God in the man state, partially on the first plane of the subtle world, experiences subtle impressions with the gross senses.

With further involution of gross consciousness, gross-conscious God gradually experiences completely the first plane of the subtle world. Now the gross consciousness of God in the man state is no longer **gross** consciousness, but is **subtle** consciousness.

Subtle-conscious God in the man state gradually becomes conscious of the second plane of the subtle world as the involution progresses on and on to infold consciousness further and further.

This subtle world is the domain of infinite energy. The infinite and unlimited power, which is an aspect of the infinite trio-nature of God, when radiated from unbounded infinity into the finite worlds of illusion, is translated into the finite and manifested in the domain of the subtle world in the form of infinite energy of the subtle world.

Thus, in the second plane, God in human-form is subtle-conscious, and therefore He is not conscious of the gross body and the mental body—the mind. But God in human-form does work through the gross body and through the mind (the mental body), not directly but on and from the subtle plane.

Therefore even if subtle-conscious God in the man state is unconscious of the gross body and of the mental body, and does not

स्थूल शरीर की और कारण शरीर की चेतना नहीं भी होती, और उसको अन्न भुवन तथा मन भुवनों का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता, तब भी मानव अवस्था में स्थित परमात्मा स्थूल शरीर का उपयोग स्थूल जगत के विविध अङ्गों के माध्यम से करता है (प्रत्यक्ष रूप से नहीं वरन् सूक्ष्म भूमिका से), और इसलिये वह सकल बाह्य रूपों से साधारण स्थूल-चैतन्य मानववत् दिखाई पड़ता है जो खाता है, पीता है, सोता है, देखता है, महसूस करता है, सुनता है इत्यादि, इत्यादि । इसी प्रकार, मानव अवस्था में स्थित परमात्मा, जब उसको सूक्ष्म जगत की दूसरी भूमिका की चेतना प्राप्त होती है, अपने कारण शरीर (अर्थात् मन) का निश्चित रूप से प्रयोग करता है—प्रत्यक्ष रूप से नहीं वरन् विविध अङ्गों के माध्यम से जिनसे वह बाहरी दिखावों में, विचारों, वासनाओं, भावनाओं से युक्त साधारण स्थूल-चैतन्य मानव-रूप में दिखाई पड़ता है ।

इस स्थिति पर, चेतना के और अधिक प्रतिवर्धन से सम्पन्न, दूसरी भूमिका पर स्थित सूक्ष्म-चेतनायुक्त परमात्मा को प्राण भुवन की अनन्त प्राण शक्ति का और अधिक भान प्राप्त होता है और अब वह इस अनन्त प्राण शक्ति का और अधिक भान प्राप्त होता है और अब वह इस अनन्त प्राणशक्ति को मुक्त करने के द्वारा नीचे दर्जे के छोटे छोटे चमत्कार अथवा खेल करने में समर्थ होता है, और ऐसी शक्तियाँ प्रदर्शित कर सकता है जैसे सूखे पेड़ को हरा पेड़ बना देना और हरे पेड़ को सूखा बना देना, रेलगाड़ियों को और मोटरकारों को रोक लेना, सूखे कुये को पानी से भर देना, इत्यादि ।

दूसरी भूमिका पर मानव-अवस्था में स्थित यह सूक्ष्म-चैतन्य परमात्मा सूक्ष्म जगत का अनुभव अपने सूक्ष्म शरीर की सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा करता है । अब उसको स्थूल जगत की बिल्कुल चेतना नहीं होती, यद्यपि समस्त बाहरी दिखावों में वह एक साधारण पुरुष की तरह रहता और कार्य करता है, जैसे खाना, सोना, सुख और दुख की भावनायें रखना, इत्यादि, फिर भी यथार्थ में उसकी प्रतिवर्धित चेतना अन्न भुवन का नहीं बलिक प्राण भुवन का अनुभव करती है और उसकी सूक्ष्म इन्द्रियों के द्वारा नये सूक्ष्म संस्कार पैदा करती है, जिनकी संख्या तीन होती है, और जिनमें केवल देखने, सूँघने और सुनने की आन्तरिक शक्तियाँ होती हैं ।

चेतना का और अधिक प्रतिवर्धन होने पर मानव अवस्था में स्थित परमात्मा के लिये प्राण भुवन की तीसरी भूमिका का अनूभव

experience directly the gross and mental worlds, still, God in the man state does make use of the gross body (though not directly but from the subtle plane) through various aspects of the gross, and is therefore observed from all outward appearances as an ordinary gross-conscious human-form which eats, drinks, sleeps, sees, feels, hears, and so forth. Similarly, God in the man state, when conscious of the second plane of the subtle world, does use His mental body (i.e., the mind), not directly but through various aspects which give it the outward appearance of being an ordinary gross-conscious human-form having thoughts, desires and emotions.

At this stage, with greater involution of consciousness, subtle-conscious God in the man state on the second plane, gains greater awareness of the infinite energy of the subtle sphere and is now capable of performing tricks or minor miracles of lower degree through the release of this infinite energy, and can demonstrate such powers as converting a dry tree into a green one and vice versa, stopping railway trains and motor cars, filling a dry well with water, and so forth.

This subtle-conscious God in the man state on the second plane experiences the subtle world with the subtle senses of His subtle body. He is now totally **not-conscious** of the gross world, though from all outward appearances He remains and functions as an ordinary man, eating, sleeping, having feelings of pain and pleasure, and so forth, yet actually His involved consciousness experiences not the gross but the subtle sphere and creates fresh subtle impressions through His subtle senses, which are three in number, with faculties only of seeing, smelling and hearing.

Further involution of consciousness makes it possible for God in the man state to experience the third plane of the subtle world. Here subtle

करना सम्भव हो जाता है । इस स्थल पर सूक्ष्म चेतना को प्राण भुवन की अनन्त प्राणशक्ति का और अधिक भान प्राप्त को जाता है, और मानव अवस्था में स्थित परमात्मा को और अधिक सीमित शक्ति का अनुभव प्राप्त होता है । इस स्थिति में उसको बड़े चमत्कार करने की, जैसे अन्धों को आँखें देना, लँगड़े-लूलों को फिर से अङ्ग प्रदान करना और कभी-कभी मुर्दों को ज़िन्दा करने तक की क्षमता‡ प्राप्त होती है । इस अवस्था में मानव अवस्था में स्थित सूक्ष्म-चैतन्य परमात्मा कप् प्राण भुवन की विभिन्न भूमिकाओं और दुनियाओं का अनुभव करने की भी क्षमता होती है, ठीक जिस प्रकार से स्थूल-चैतन्य मानव-रूप को, उसको प्राप्त स्थूल माध्यम का उपयोग करते हुये, एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप की यात्रा करने की क्षमता प्राप्त होती है ।

प्राण भुवन की दूसरी और तीसरी भूमिकायें वे दो बड़ी भूमिकायें हैं जो केवल प्राण भूवन के प्रदेश के अन्तर्गत होती हैं । पहली भूमिका आंशिकरूप से प्राण भुवन के प्रदेश में और आंशिकरूप से अन्न भुवन के प्रदेश में होती है । इसी प्रकार से चौथी भूमिका आंशिकरूप से प्राण भुवन की और आंशिकरूप से मन भुवन होती है । इस कारण से चौथी भूमिका मन भुवन का प्रवेशद्वार कही जाती है ।

अब, मानव अवस्था में स्थित सूक्ष्म-चैतन्य परमात्मा की चेतना के प्रतिवर्धन में हुई क्रमिक यद्यपि प्रगतिशील प्राप्ति के साथ, परमात्मा की चेतना सूक्ष्म-धन-कारण (*subtle-cum-mental*) जगत की चौथी भूमिका का अनुभव करती है ।

चौथी बूमिका में परमात्मा को मानव अवस्था में सूक्ष्म शरीर की भरपूर चेतना प्राप्त होती है और उसको प्राण भुवन का पूर्ण अनुभव प्राप्त होता है, और इसलिये उसको प्राण भुवन की सूक्ष्म प्रकृति का पूरा भान रहता है जो अनन्त प्राण शक्ति है । यह वही अनन्त प्राण शक्ति है जो, परमात्मा की उस अनन्त एवम् असीमित शक्ति की **शून्यता** में सीमित अङ्ग है, जो शक्ति परमात्मा की **सबकुछ** की अवस्था में अन्तर्हित थी ।

चौथी भूमिका में मानव अवस्था में स्थित परमात्मा अनन्त प्राण शक्ति से पूर्णतया सम्पन्न होता है और इस प्रकार अब उसको मुर्दों को

‡ चेतना की तीसरी भुमिकाओं में स्थित आत्मायें केवल उप-मानव योनियों के मुर्दों को ही ज़िन्दा कर सकती हैं ।

consciousness gains greater awareness of the infinite energy of the subtle sphere, and God in the man state experiences greater finite power. In this stage He is capable of performing grand miracles such as giving sight to the blind, restoring limbs to the maimed and sometimes even raising the dead* into life. In this state subtle-conscious God in the man state is also capable of experiencing the different planes and worlds of the subtle sphere, just as a gross-conscious human-form is capable of travelling from one continent to another, using the gross vehicles at his disposal.

The second and third planes of the subtle world are the two major planes which are solely in the domain of the subtle world. The first plane is partially in the domain of the subtle world and partially of the gross world. Similarly the fourth plane is partially of the subtle world and partially of the mental world. For this reason the fourth plane is said to be the threshold of the mental world.

Now, with gradual though progressive gain in the involution of the consciousness of subtle-conscious God in the man state, the consciousness of God experiences the fourth plane of the subtle-cum-mental.

In the fourth plane God in the man state is fully conscious of the subtle body and completely experiences the subtle sphere, and therefore He is completely aware of the subtle nature of the subtle sphere which is infinite energy. This is the very same infinite energy which is the finite aspect in the Nothingness of that infinite and unbounded power of God which was latent in God's state of the Everything.

In the fourth plane God in the man state is fully equipped with infinite energy and thus He is now capable of raising the dead and of even

* Those on the third plane of consciousness can only raise the dead of the sub-human species.

ज़िन्दा करने की तथा नवीन जीवित योनियों तक की रचना, नये जगतों में, करने की क्षमता होती है । चौथी भूमिका में मानव अवस्था में सूक्ष्म-चैतन्य परमात्मा यथार्थ में मूर्तमान अनन्त प्राण शक्ति होता है ।

सूक्ष्म-धन-मन भुवनों की चौथी भूमिका की यह अनन्त प्राण शक्ति स्थूल जगत की तथाकथित मामूली शक्ति नहीं है । यह वह अनन्त प्राण शक्ति है जो "समग्र जीवन की श्वास", अथवा "**प्राण**" कहलाती है और जो सब चीजों को ज़िन्दा कर सकती है । यह वह प्राण शक्ति है जो, अनन्त होने पर, ख़ास से जीवित चीज़ों पैदा कर सकती है ।

यद्यपि यह प्राण शक्ति अनन्त है, फिर भी यह किसी प्रकार से भी परमात्मा की उस अनन्त शक्ति की यथार्थता के बराबर नहीं होती । परमात्मा की यह अनन्त शक्ति, जब वह माया के रूप में परिणत होती है, सूक्ष्म-धन-कारण जगतों की चौथी भूमिका की अनन्त शक्ति का सीमित पहलू बन जाती है ।

मानव अवस्था में स्थित सूक्ष्म-चैतन्य परमात्मा, जिसके हाथ में चौथी भूमिका की अनन्त प्राण शक्ति के भण्डार की कुन्जी होती है, अब कारण जगत के प्रवेशद्वार पर दृढ़ता के साथ स्थापित होता है, और उसका सामना प्रचण्ड इच्छाओं, भावनाओं, और विचारों के पूरे तूफ़ान से होता है । ये अच्छायें, भावनायें और विचार कारण जगत के मन के पहलू होते हैं ।

यद्यपि चौथी भूमिका चेतना की उच्च स्थिति है जहाँ परमात्मा मानव अवस्था में चैतन्य रूप से अपनेआप को मूर्तमान अनन्त प्राण शक्ति के रूप में अनुभव करता है, फिर भी यह तथा-कथित "निबिड़ अँधेरी रात" के अनुभवों की अवस्था है, क्योंकि यहाँ मानव अवस्था में स्थित परमात्मा की चेतना मानो "दैत्य और सिन्धु" (*devil and the deep*) के बीच फँसने के अनुभव से गुजरती है । प्रचण्ड इच्छाओं और भावनाओं से उत्तप्त होने की दशा में, परमात्मा को अपने अधिकार में प्राप्त अनन्त शक्ति का प्रयोग करने की प्रबल उत्तेजना अथवा प्रलोभन, इस बेला में एक धोखेबाज़ दुश्मन सिद्ध होता है जबकि मानव अवस्था में स्थित सूक्ष्म-चैतन्य परमात्मा की चेतना का प्रतिवर्धन अटल और तीव्र गति से मन भुवन की ओर अग्रसर होता है जहाँ उसको सकल इच्छाओं, भावनाओं और विचारों के ऊपर प्रभुता प्राप्त हो जायगी ।

यद्यपि मन भूमिका से निकली अपने शिखर पर पहुँची हुई

creating new forms, in new worlds, breathing with life. Subtle-conscious God in the man state in the fourth plane is in reality infinite energy personified.

This infinite energy of the fourth plane of the subtle-cum-mental worlds is not the ordinary so-called energy of the gross world. It is that infinite energy which is called the "breath of all life," or "pran," and which can cause all things to become alive. It is this energy which when infinite can create living things out of dust.

Although this energy be infinite, it is yet by no means equivalent to the reality of that infinite power of God. This infinite power of God, when translated into Illusion, becomes the finite aspect of the infinite energy of the fourth plane of the subtle-cum-mental worlds.

Subtle-conscious God in the man state, possessing the key to the store of the infinite energy of the fourth plane, is now firmly established on the threshold of the mental world, and is confronted by the full blast of the intense desires, emotions and thoughts which are the aspects of Mind of the mental world.

Though the fourth plane is the exalted stage of consciousness where God in the man state consciously experiences Himself as infinite energy personified, yet it is the state of experiences of the so-called "darkest night," because here the consciousness of God in the man state undergoes the experience of being caught, as it were, between "the Devil and the deep." Fired by intense desires and emotions, the overpowering incitement or temptation to wield and use the infinite energy which is at His command proves a treacherous foe at this juncture when the involution of consciousness of subtle-conscious God in the man state is unfailingly and rapidly progressing towards the mental sphere where it will gain mastery over all desires, emotions and thoughts.

If desires at their zenith emanated by the mental plane, confronting the consciousness of God in the man state in the fourth plane, overpower

इच्छायें, जो चौथी भूमिका में मानव अवस्था में स्थित परमात्मा की चेतना का सामना करती हैं, (चौथी भूमिका पर मानव अवस्था में स्थित) परमात्मा के ऊपर हावी हो जाती हैं, और यदि परमात्मा अनन्त प्राण शक्ति से पैदा हुई शक्तियों को, जो उसके अधिकार में होती हैं, विमुक्त कर देता है, तब इस बेला में अनन्त प्राण शक्ति की विमुक्ति का अनुभव बहुधा प्राणघातक सिद्ध होता है, ख़ासकर उस समय जब वह अनन्त शक्ति द्वारा विमुक्त हुई शक्तियों का भद्दा दुरुपयोग अविवेक के साथ स्वार्थी उद्देश्यों की तुष्टि करने के लिये करता है ।

इस बेला में चौथी भूमिका पर यदि प्राण भुवन की अनन्त प्रान शक्ति की शक्ति अविवेकपूर्वक विमुक्त की जाती है, तो उस प्राण शक्ति की पूर्ण विमुक्ति के परिणाम स्वरूप होने वाला प्रभाव स्थूल चेतना के लिये प्रायः अकल्पनीय होता है । तथापि, उस परिणाम का अनुमान अणु शक्ति की विमुक्ति के मनमौजी अनुभवों से लगाया जा सकता है, जो अणुशक्ति प्राण भुवन की अनन्त शक्ति का केवल एक स्थूल अंग होती है ।

इस प्रकार, यदि मानव अवस्था में स्थित परमात्मा की प्रतिवर्धित चेतना चौथी भूमिका में अनन्त शक्ति की पूर्ण विमुक्ति का अनुभव करने के प्रलोभन के अधीन हो जाती है तो उसका अनिवार्य अनुभव इतना कठोर होता है कि प्राप्त हुई पूर्ण चेतना, और अनुभव हुई सूक्ष्म चेतना बिल्कुल खण्ड-खण्ड होकर अत्यन्त-सीमित चेतना के रूप में हो जाती हैं, और एक बार फिर से परमात्मा की एकरूपता पत्थर की अत्यन्त सीमित स्थूल योनि से कर देती हैं । इसके फलस्वरूप, पाषाण-चेतनायुक्त परमात्मा की चेतना को अनिवार्यरूप से एक बार फिर चेतना की पूरी प्रक्रिया से होकर गुज़रना होता है, और उसको अपनी एकरूपता स्थूल रूपों से करनी पड़ती है जब तक कि वह मनुष्य से एकरूपता नहीं कर लेता और फिर से पूर्ण चेतना प्राप्त नहीं कर लेता ।

यह एक सत्य बात है कि जब चेतना एक बार प्राप्त हो जाती है तो फिर उसका कभी ह्रास नहीं हो सकता, किन्तु चौथी भूमिका से चेतना का खण्डित होता इस नियन का एकमेव अपवाद है । चेतना का यह खण्डन केवल चौथी भूमिका की चेतना के उदाहरण में होता है और वह भी केवल बहुत-बहुत दुर्लभ होता है, जब परमात्मा उस भूमिका की शक्तियों का दुरुपयोग करने के प्रलोभन के अधीन हो जाता है ।

यद्यपि परमात्मा मानव अवस्था में चौथी भूमिका में अनन्त

God (in the man state on the fourth plane), and if the forces generated by the infinite energy at His command are released by Him, then the experience of the liberation of infinite energy at this juncture often proves fatal, especially when He grossly misuses the forces liberated by infinite energy to satisfy selfish ends indiscriminately.

At this juncture on the fourth plane if the power of the infinite energy of the subtle world is indiscriminately liberated, the resultant effect of the complete liberation of that energy is almost unimaginable by gross consciousness. However, an idea could be gathered of that result from the fantastic experiences of the liberation of nuclear energy, which is merely one of the gross aspects of the infinite energy of the subtle world.

Thus, if the involved consciousness of God in the man state succumbs to the temptation of experiencing the complete liberation of infinite energy in the fourth plane of consciousness, the inevitable experience is so severe that the full consciousness gained, and the subtle consciousness experienced, totally disintegrate into the most-finite consciousness, identifying God once again with the most-finite gross form of stone. Consequently, the consciousness of stone-conscious God must once again go through the whole process of the evolution of consciousness, identifying Himself with gross forms until He identifies with man and again wins full consciousness.

It is a fact that when consciousness is once gained it can never be lost, but the disintegration of consciousness from the fourth plane is the one exception to this rule. This disintegration of consciousness occurs only in the case of fourth plane consciousness and that, too, only very, very rarely, when He succumbs to the temptation of misusing the powers of that plane.

If God in the man state in the fourth plane does not misuse the powers of infinite energy but uses them discriminately, without being

शक्ति की शक्तियों का दुरुपयोग नहीं करता वरन् उनका प्रयोग विवेकपूर्वक करता है, और इच्छाओं के वशीभूत नहीं होता,* तब चेतना के और अधिक प्रतिवर्धन के साथ सूक्ष्म-चेतना से सम्पन्न परमात्मा मानव अवस्था में मन भुवन की छठवीं भूमिका का प्रत्यक्ष अनुभव करता है, जबकि वह मन भुवन की पाँचवीं भूमिका के अनुभवों को लाँघ कर निकल जाता है ।

किन्तु, यदि चौथी भूमिका में मानव अवस्था में परमात्मा अनन्त प्राण शक्ति का न तो उपयोग करता है और न दुरुपयोग करता है, तब क्रमशः, चेतना के और अधिक प्रतिवर्धन के साथ, मानव अवस्था में सूक्ष्म चेतनायुक्त परमात्मा चेतना की चौथी भूमिका में मन भुवन के प्रवेशद्वार को लाँघ जाता है और चेतना की पाँचवीं भूमिका का अनुभव करने लगता है ।

चेतना की पाँचवीं और छठवीं भूमिकायें मूल रूप से मन के मनो-लोक की भूमिकायें होती हैं । मनो-जगत में मानव अवस्था में स्थित मनो-चेतनायुक्त परमात्मा अपने मन का स्वामी होता है, जबकि स्थूल और सूक्ष्म जगतों में, जब वह स्थूल- और सूक्ष्म-चेतनायुक्त था, तब वह अपने मन का दास था ।

मानव अवस्था में स्थित सूक्ष्म चेतनायुक्त परमात्मा की चेतना के प्रतिवर्धन की प्रगति के साथ, मन भुवन की पाँचवीं भूमिका के अनुभव मनो-इन्द्रिय द्वारा होने हैं जो **केवल** देखने का अनुभव होता है ।

(१४०)

* (इच्छाओं को "चैतन्यरूप से" सफ़ाया हो जाना चाहिये क्योंकि वे नये संस्कार पैदा कर सकती हैं और अगली पारी में और आगे इच्छायें पैदा कर सकती हैं जो और अधिक बन्धनकारी कर्मों की ओर अग्रसर कर सकती हैं । चेतना, यथार्थ "खुदी" के साथ लगी रहने के बजाय, ऐसे संस्कारों और उसके भौतिक आविर्भाव के साथ पहले से ही लगी रहती है । यदि ये संस्कार चैतन्यरूप से मिट जाते हैं, तो "आत्मा सत्य" को देखना प्रारम्भ कर देगी । और अपनेआपको सांसारिक इच्छाओं की क्रूरता से मुक्त करना प्रारम्भ कर देगी । व्यक्ति (जीवात्मा), इच्छाओं का जीवन से निकल जाने पर, आत्मा बन जाता है, और वह सदैव अचैतन्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा होता है । हमारे जीवित रहने के समय में ही जीवन को अवश्य त्याग देना चाहिये । अचैतन्यता की चेतनता क़ायम रखने के समय सांसारिक इच्छाओं का त्याग करना जीवन का लक्ष्य है । —सम्पादक)

overpowered by desires,* then with further involution of consciousness the subtle-conscious God in the man state experiences directly the sixth plane of the mental world, skipping over the experiences of the fifth plane of the mental world.

But if God in the man state in the fourth plane neither uses nor abuses the powers of infinite energy, then gradually, with further involution of consciousness, subtle-conscious God in the man state in the fourth plane of consciousness crosses the threshold of the mental world and begins to experience the fifth plane of consciousness.

The fifth and sixth planes of consciousness are fundamentally the planes of the mental sphere of the Mind. In the mental world mental-conscious God in the man state is master of His mind, whereas in the gross and subtle worlds when gross-and subtle-conscious, He was the slave of His mind.

With the progress of the involution of consciousness of subtle-conscious God in the man state, the experiences of the fifth plane of the mental world are realized by the mental sense which is only that of **seeing.**

* [Desires must be **consciously** wiped out because they can create new impressions and in turn further desires which may lead to further binding actions. Consciousness is preoccupied with such impressions and their physical expression rather than with the real Self. If these impressions are wiped away consciously, the soul (atma) will then begin to perceive the Truth, and will begin to emancipate itself from the tyranny of worldly desires. The individual (jiv-atma) minus life (of desires) becomes soul (atma), and is always the unconscious Almighty. It is while we are living that life must be given up. To renounce worldly desires while retaining consciousness of unconsciousness is the goal of life. Ed.]

मानव अवस्था में स्थित, जब परमात्मा मने-चेतना से युक्त होता है तो उसको स्थूल अथवा स्थूल शरीरों की चेतना नहीं होती किन्तु वह स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर द्वारा, सीधेसीध नहीं बलिक मन भूमिका पर, और मन-भूमिका से, कार्य करता है । इस प्रकार मानव अवस्था में स्थित मनो-चेतनायुक्त परमात्मा को स्थूल और सूक्ष्म सरीरों की चेतना नहीं होती, और इसलिये उसको स्थूल और सूक्ष्म जगतों के अनुभवों की अनुभूति नहीं होती; वह अब भी अचैतन्य रूप से स्थूल सरीर का उपयोग स्थूल के विविध अङ्गों के द्वारा कर सकता है । इस प्रकार वह खाता, पीता, सोता, देखता, सुनता, और महसूस करता दिखाई पड़ता है जैसा मामूली स्थूल चेतनायुक्त मनुष्य-रूप में होता है, यद्यपि उसे पूरे समय केवल "देखने" की अपनी मने-इन्द्रिय के द्वारा केवल कारण शरीर की चेतना रहती है । इसी प्रकार वह अचैतन्य रूप से अपने सूक्ष्म शरीर का उपयोग अनन्त शक्ति के विविध पहलुओं के द्वारा कर सकता है और इस प्रकार वह तेज़ी के साथ इधर-उधर घूमता फिरता और काम करता देखा जाता है जबकि सारे समय उसे केवल कारण शरीर-मन-की चेतना रहती है और वह केवल चैतन्य रूप से मने-जगत का अनुभव अपनी मनो-इन्द्रिय से करता है । मामव अवस्थाा में मनो-लोक में मनो-चेतनायुक्त परमात्मा को अब केवल एक इन्द्रिय ज्ञान रहता है और वह है "देखने" का । मन चेतना की पाँचवीं भूमिका के आर-पार बलात् क़ायम रहता है । चेतना की छठवीं भूमिका में, मन स्वयं **अन्तर्चक्षु** बन जाता है और परमात्मा को देखता है । चेतना की सातवीं भूमिका में, मन का नाश हो जाता है ।

अतः यही कारण है कि मानव अवस्था में पाँचवीं भूमिका पर मानसिक-चेतनायुक्त परमात्मा उन संस्कारों का अनुभव करता है जो उसके "देखने" के मानसिक बोध के द्वारा पैदा होते हैं और उसके फलस्वरूप वह मन भुवन का अनुभव कारण शरीर (मन) के द्वारा करता है । अब उसको केवल मन की चेतना प्राप्त रहती है । इस स्थिति में, मानव अवस्था में परमात्मा, सूक्ष्म चेतनायुक्त और स्थूल चेतनायुक्त मानवरूपों में, स्थूल चेतनायुक्त और सूक्ष्म चेतनायुक्त अवस्थाओं के मनों के ऊपर नियन्त्रण रखने की क्षमता रखता है ।

किन्तु पाँचवीं भूमिका में, मनो-चैतन्य परमात्मा मानव स्थिति में कोई भी चमत्कार करने में बिलकुल असमर्थ होता है क्योंकि अब वह

In the man state, when God is mental-conscious He is not conscious of the gross or subtle bodies but He does work through the gross body and subtle body, not directly but on and from the mental plane. So even if mental-conscious God in the man state is not conscious of the gross and subtle bodies, and therefore does not realize the experiences of the gross and subtle worlds, He still can unconsciously utilize the gross body through various aspects of the gross. He is thus observed eating, drinking, sleeping, seeing, hearing and feeling as in an ordinary gross-conscious human-form, although He is all the while conscious only of the mental body with His mental sense of only "seeing." Similarly He can unconsciously utilize His subtle body through various aspects of infinite energy and is thus observed moving about actively and performing acts while all the time He is only conscious of the mental body—the mind—and only consciously experiences the mental world with His mental sense. Mental-conscious God in the man state in the mental sphere has now only one sense, and that is of "seeing." The mind persists through the fifth plane of consciousness. In the sixth plane of consciousness, the mind itself becomes the Inner Eye and sees God. In the seventh plane of consciousness, the mind is annihilated.

Hence it is that mental-conscious God in the man state in the fifth plane experiences the impressions generated through His mental sense of "seeing" and consequently experiences the mental world with the mental body (mind). He is now conscious only of mind. In this stage, God in the man state is capable of controlling the minds of gross-conscious and subtle-conscious states of God in subtle-conscious and gross-conscious human forms.

But in the fifth plane, mental-conscious God in the man state is totally incapable of performing any miracles because He is now in the

ननो-भुवन में होता है और अनन्त शक्ति के सूक्ष्म लोक में नहीं होता, जो अनन्त शक्ति, विमुक्त होने पर, चमत्कारी शक्तियों के रूप में फलीभूत होती है । फिर भी, क्योंकि वह मानव-चेतनायुक्त होता है और मूर्तमान "मन" बनने के लगभग होता है, इसलिये वह परमात्मा की सूक्ष्म-चेतनायुक्त अवस्था के मनों का नियन्त्रण करता है और वह स्त्रोत बन जाता है जो सूक्ष्म चेतना की अवस्था में होने वाले व्यक्तयों को चमत्कार करने के लिये उकसाता है । वह, वह एक है जो, मानव-चैतन्य अवस्था में, अपने मन की इच्छा तथा मर्ज़ी के अनुसार, सूक्ष्म-चैतन्य भूमिकाओं में स्थित लोगों के मनों को चमत्कार करने अथवा न करने में रोकने, नियन्त्रण करने अथवा पथ-प्रदर्शन करने में समर्थ होता है, यद्यपि वह खुद अपनी मानव-चैतन्य अवस्था में कोई चमत्कार नहीं कर सकता ।

परमात्मा मानसिक चेतना की मानव अवस्था में, स्थूल और सूक्ष्म-चेतन अवस्थाओं में स्थित सब मनों के विचारों, इच्छाओं और भावनाओं को पैदा करने और उन पर नियन्त्रण रखने में समर्थ होता है । वह खुद स्थिर होता है जैसे ही उसको पाँचवीं भूमिका की अवस्था का अनुभव होता है, जिस अवस्था से इतनी दूर तक प्रतिवर्धित हुई चेतना कभी अधःपतित अथवा खण्डित नहीं हो सकती ।

जैसे-जैसे मानव अवस्था में स्थित मनो-चेतनायुक्त परमात्मा की चेतना का प्रतिवर्धन क्रमशः गहरी और गहरी होता है, वैसे-वैसे उसको मन के ऊपर अपनी प्रभुता का अनुभव होता है, और मनो-चैतन्य परमात्मा की चेतना मूर्तमान मन कही जाती है । इस प्रकार मानव अवस्था में परमात्मा को अब मन अथवा कारण शरीर की भरपूर चेतना प्राप्त हो जाती है और उसे मने-चेतना की ~~छठी~~ छठवीं भूमिका में समस्त मनो-लोक अथवा मन भुवन का अनुभव होता है । यह अनुभव परमात्मा को उसकी मूल अवस्था में आमने-सामने "देखने" का होता है । यह "देखना", "देखने" के मानसिक बोध द्वारा मानसिक चेतना को देखने का है । दूसरे शब्दों में, मानव अवस्था में परमात्मा परमात्मा को हर जगत और हर चीज़ में देखता है ।

ठीक पहली भूमिका से छठवीं भूमिका तक, चेतना का प्रतिवर्धन क्रमशः और अटलरूप से उन्नत होता गया जैसे जैसे, परमात्मा की चेतना विविध और बहुमुखी विपरीत संस्कारों के अधिक कम और अधिक दुर्लभ अनुभवों से गुज़रती गई, और वे विपरीत संस्कार क्षीण और क्षीण

mental sphere and no longer in the subtle sphere of infinite energy which, when released, resulted in miraculous powers. Yet, because He is mental-conscious and is about to become "Mind" personified, He controls the minds of the subtle-conscious state of God and becomes the source which incites those in the state of subtle consciousness to perform miracles. He is the One Who, in the mental-conscious state, according to the desire and will of His mind, is capable of checking, controlling or guiding the minds of those in the subtle-conscious planes either to perform the miracles or not, though He Himself in His mental-conscious state cannot perform any miracle.

God in the man state of mental consciousness is capable of creating and controlling the thoughts, desires and emotions of all minds in gross- and subtle-conscious states. He is Himself stable as soon as He experiences the state of the fifth plane, from which state the consciousness involved thus far can never devolve nor disintegrate.

As the involution of consciousness of mental-conscious God in the man state gradually progresses deeper and deeper, He experiences His mastery over the mind, and the consciousness of mental-conscious God is said to be Mind personified. Thus God in the man state now becomes fully conscious of the mind or the mental body and experiences the whole of the mental sphere or the mental world in the sixth plane of mental consciousness. This experience is of "seeing" God in His original state face to face. This "seeing" is the seeing of the mental consciousness with the mental sense of "seeing." In other words, God in the man state sees God everywhere and in everything.

Right from the first plane up through the sixth plane the involution of consciousness progressed gradually and consistently as the consciousness of God underwent fewer and scarcer experiences of multifarious and diverse opposite impressions, which grew fainter and

होते गये । इसलिये, परमात्मा की चेतना के प्रतिवर्धन की प्रगति की अवधि में, विविध विपरीत संस्कार क्रमशः कम होते गये और क्षीण होते गये जब तक कि परमात्मा की प्रतिवर्धित चेतना को छठवीं भूमिका में कारण शरीर की पूर्ण चेतना प्राप्त न हुई और उसने मन भुवन का अनुभव किंचित्मात्र संस्कारों के बग़ैर भरपूर न किया, सिवाय द्वन्द्वों के शेष संस्कारों के एक अन्तिम क्षीण निशान के । दूसरे शब्दों में, प्रतिवर्धित चेतना मन के साथ पूर्ण एकरूपता करती है और परमात्मा यह अनुभव करने की ओर झुकता है कि वह **मन** है । अब परमात्मा मानव अवस्था में **मन** के रूप में अन्तिम सीमित संस्कार रखता है कि वह **मन** के रूप में परमात्मा को सब चीज़ों में, सिवाय खुद अपने में, आमने-सामने देखता है । परमात्मा की यह अवस्था मानव अवस्था में चेतना की छठवीं भूमिका की है ।

छठवीं भूमिका की मानव अवस्था में स्थित मनो-चैतन्य परमात्मा का सामना, जो इस बिन्दु पर प्रायः सक्रिय रूप से सकल संस्कारों से रहित होता है और उसे केवल मन की चेतना रहती है, अब **खुद परमात्मा से** होता है और वह उसको आमने-सामने देखता है, और वह उसको प्रत्येक चीज़ में भी देखता है, किन्तु वह अपनी **सत्ता** को परमात्मा में नहीं देखता क्योंकि उसमें अब भी की चेतना का संस्कार रहता है और वह अपने को **मन** के रूप में मानता है ।

मानव अवस्था में स्थित इस मनो-चैतन्य परमात्मा को, जो **मन** से अपना साहचर्य रखता है, **मन** के रूप में खुद अपनी चेतना होती है और वह अब भी अपने को ईश्वर के अलावा और कोई होने का अनुभव करता है, क्योंकि वह यथार्थ में परमात्मा को अपनी मनो-चेतना के द्वारा आमने-सामने देखता है । तब, वह परमात्मा को, परमात्मा की स्थूल अथवा सूक्ष्म अवस्थाओं में देखने की अपेक्षा, अधिक स्पष्ट और घने रूप में देखता है; वह स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों को स्थूल और सूक्ष्म जगतों में देख सकता है ।

इस क्रम में परमात्मा की चेतना, जिसने विविध और असंख्य विपरीत संस्कारों का अनुभव किया था, अब द्वन्द्वों के द्वैध संस्कारों के अन्तिम चिन्ह का अनुभव करती है । इसलिये, मानव अवस्था में मनो-चैतन्य परमात्मा को छठवीं भूमिका पर अब भी हुई की चेतना रहती है, अर्थात् वह अपनी अनुरूपता **मन** के रूप में करता है और अपने

fainter. Therefore, during the progress of the involution of consciousness of God, the diverse opposite impressions gradually lessened and became fainter until the involved consciousness of God in the sixth plane was fully conscious of the mental body and experienced the mental world in full with practically no impressions at all except for a last faint trace of residual impressions of opposites. In other words, the involved consciousness fully identifies with the mind and God tends to realize that He is Mind. Now God in the man state as Mind has the last finite impression that He as Mind sees God face to face in all things except in His Self. This is the state of God in the man state in the sixth plane of consciousness.

This mental-conscious God in the man state of the sixth plane, practically void of all impressions at this point and only conscious of Mind, is now confronted by God Himself and sees Him face to face, and also sees Him in all things, but He does not see His Self in God because He is still impressed with the consciousness of Mind and takes Himself as Mind.

This mental-conscious God in the man state, associating Himself with Mind, is conscious of Himself as Mind and experiences Himself as still something other than God, because He actually sees God face to face with His mental consciousness. Then, too, He sees God much more vividly and intensively than, in the gross or subtle states of God, He can see the gross and subtle objects in the gross and subtle worlds.

In this stage the consciousness of God, which had experienced diverse and innumerable opposite impressions, now experiences the last trace of dual impressions of opposites. Therefore, mental-conscious God

को परमात्मा से भिन्न मानता है ।

मन भुवन में चेतना के प्रतिवर्धन को अधिक स्पष्टरूप से समझने के लिये, यह समझना आवश्यक है कि चेतना की पाँचवीं और छठवीं भूमिकाओं का मानसिक क्षेत्र **मन** का प्रदेश है । मनो-भूमिकाओं के इस **मन** के दो विभाग होते हैं ।

पहले भाग में **मन** की अवस्था जाँच पड़ताल करने वाली अथवा प्रतिबिम्बित करने वाली है । इस अवस्था में **मन विचारों** के रूप में कार्य करता है—ऊँचे विचार, नीचे विचार, अच्छे विचार, बुरे विचार, भौतिक विचार, आध्यात्मिक विचार तथा हर प्रकार, नमूना और अवस्था के विचार ।

दूसरे भाग में **मन** की अवस्था प्रभावकारी अथवा सहानुभूतियुक्त होती है । इस अवस्था में **मन सम्वेदनों** के रूप में कार्य करता है—कष्ट भोगने और भावनाओं के सम्वेदन, इच्छाओं और आकांक्षाओं के सम्वेदन, वियोग की पीड़ा के सम्वेदन और हर प्रकार, नमूना तथा अवस्था के सम्वेदन ।

चूँकि मनोलोक (*sphere*) का **मन** स्पष्ट द्वैध क्रियायें करता है इसलिये यह अनिवार्य है कि **मन** के क्षेत्र में (अर्थात् मनोलोक में) अनुभवों को भी स्पष्ट रूप से दो प्रकार के होना चाहिये ।

इस प्रकार मनोलोक में दो प्रदेश होते हैं । इसलिये चेतना की पाँचवीं भूमिका का प्रदेश विचारों का होता है, और चेतना की छठवीं भूमिका का प्रदेश सम्वेदनों का होता है ।

इसके फलस्वरूप, मानव अवस्था में स्थित मनो-चैतन्य परमात्मा की चेतना पाँचवीं भूमिका में **मन** के पहले भान से एकरूपता करती है, जो जाँच पड़ताल करने वाली अथवा **मन** को प्रतिबिम्बित करने वाली होती है । इसलिये यह मनो-चेतनायुक्त परमात्मा पाँचवीं भूमिका की मानव अवस्था में विचारों का विधाता और प्रभु होता है, क्योंकि वह मूर्तमान "विचार" होता है, और तदनुसार वह परमात्मा की सभी स्थूल- और सूक्ष्म-चैतन्य अवस्थाओं के सभी मनों के केवल विचार भान पर नियन्त्रण रखने की क्षमता रखता है । इसका बहुधा ग़लत अर्थ लगाया जाता है कि यह परमात्मा की सकल स्थूल- और सूक्ष्म-चैतन्य अवस्थाओं के **मनों** का नियन्त्रण करता है, लेकिन सच बात यह है कि चेतना की पाँचवीं भूमिका में परमात्मा समग्र मन के ऊपर नियन्त्रण

in the man state on the sixth plane is yet conscious of duality, that is, identifies Himself as Mind and differentiates Himself from God.

In order to understand the involution of consciousness in the mental sphere more clearly it is necessary to understand that the mental sphere of the fifth and sixth planes of consciousness is the domain of the Mind. This Mind of the mental planes has two sections.

In the first section the state of Mind is inquiring or reflecting. In this state Mind functions as Thoughts—high thoughts, low thoughts, good thoughts, bad thoughts, material thoughts, spiritual thoughts and thoughts of every kind, type and state.

In the second section the state of Mind is impressive or sympathetic. In this state Mind functions as Feelings—feelings of sufferings and emotions, feelings of desires and longings, feelings of pangs of separation and feelings of every kind and type and state.

Since Mind of the mental sphere has distinct dual functions, it is inevitable that the experiences in the field of Mind (i.e., the mental sphere) must be distinctively of two kinds also.

Thus the mental sphere has two domains. Therefore the domain of the fifth plane of consciousness is of thoughts, and the domain of the sixth plane of consciousness is of feelings.

Consequently, the consciousness of mental-conscious God in the man state in the fifth plane identifies with the first section of Mind, which is inquiring or reflecting Mind. Therefore, this mental-conscious God in the man state of the fifth plane is the creator and master of thoughts, as He is "Thoughts" personified, and is accordingly capable of controlling only the thought section of all minds of all gross- and subtle-conscious states of God. This is often misinterpreted as controlling the **minds** of all gross- and subtle-conscious states of God, but the fact is that God in the fifth plane of

नहीं रखता, किन्तु **मन** की केवल उस अवस्था पर नियन्त्रण रखता है जो **विचारों** के रूप में कार्य करती है ।

मानव अवस्था में मनि-चैतन्य परमात्मा चेतना की पाँचवीं भूमिका में, केवल विचार उत्पन्न करने वाले, जाँच करने वाले अथवा प्रतिबिम्बित करने वाले **मन** के रूप में अपनी एकरूपता करता हुआ, **मन** के दुसरे भान से अपनी एकरूपता नहीं करता और इसलिये वह अब भी संवेदनों (अर्थात् भावनाओं और इच्छाओं) के ऊपर प्रभुता स्थापित करने में असमर्थ होता है ।

चेतना का प्रतिवर्धन और अधिक होने के साथ, मनो-चैतन्य परमात्मा पाँचवीं भूमिका की मानव अवस्था में अग्रसर होकर चेतना की छठवीं भूमिका में पहुँच जाता है जहाँ उसको मनोलोक के **मन** के दूसरे भान की चेतना प्राप्त होती है और इस प्रकार वह **मन** के उस दूसरे भाग (अर्थात् प्रभावकारी अथवा सहानुभूति युक्त मन) की चेतना से अपना तादात्म्य करने के लिये प्रवृत्त होता है ।

मानव अवस्था में चेतना की छठवीं भूमिका में मनो-चैतन्य परमात्मा को मनो-जगत का अनुभव होता है, और यह अनुभव उसको भावनाओं की पूर्ण एकरूपता के द्वारा "देखने" के मनो बोध से होता है, और इस प्रकार मानव अवस्था में परमात्मा **विचार** नहीं होता बल्कि मूर्तमान **भावनायें** होता है । इसलिये वह परमात्मा को आमने-सामने निरन्तर सब चीज़ों में और सब जगत देखने की भावनाओं का अनुभव चैतन्य रूप से करता है । उसे परमात्मा को निरन्तर हर जगह देखने की अनुभूति होती है किन्तु उसको खुद अपने को परमात्मा में परमात्मावत् देखने की अनुभूति नहीं हो सकती । इस कारण से वह परमात्मा को देखने की भावनाओं का पुनः मेल खुद अपनी ईश्वरवत् एकरूपता से नहीं कर पाता, क्योंकि वह अब भी अपनी एकरूपता भावनाओं से करता है । वह **ईश्वर से मिलन** प्राप्त करने के लिये तीव्र भावना रखता है, उत्कण्ठा करता है, और पीड़ित होता है, जिसको उसे इस स्थिति में आमने-सामने देखने की अनुभूति होती है ।

मन के दूसरे भान (संवेदनाओं) के साथ यह एकरूपता मानव अवस्था में ईश्वर की अवस्था है जहाँ ईष्वरीय प्रेम का प्रबल पहलू, जो अन्ततः ईश्वर से मिलन (अर्थात् चैतन्यरूप से ईश्वरीय अवस्था का साक्षात्कार) करा देता है, अत्यन्त शक्तिपूर्वक प्रगट होता है ।

(१४५)

consciousness does not control the mind as a whole, but controls only that state of Mind which functions as **thoughts.**

Mental-conscious God in the man state in the fifth plane of consciousness, while identifying Himself as inquiring or reflecting Mind emanating only thoughts, does not identify Himself with the second section of Mind and is therefore still incapable of establishing mastery over feelings (i.e., emotions and desires).

With greater involution of consciousness, mental-conscious God in the man state of the fifth plane progresses into the sixth plane of consciousness wherein He gains consciousness of the second section of Mind of the mental sphere and thus tends to identify Himself with that second section of Mind (i.e., impressive or sympathetic Mind).

Mental-conscious God in the man state in the sixth plane of consciousness experiences the mental world, with the mental sense of seeing, through complete identication with feelings, and thus God in the man state is not Thoughts but is Feelings personified. Wherefore He experiences consciously the feelings of seeing God face to face continuously in all things and everywhere. He feels seeing God everywhere continuously but He cannot feel seeing Himself in God as God. For this reason He cannot reconcile feelings of sight of God with His own identity as God, because He still identifies Himself with feelings. He feels for, longs for and pangs for **union with God** Whom He at this stage feels seeing face to face.

This identication with the second section of Mind (feelings) is the state of God in the man state where the predominant aspect of divine love, which eventually leads to union with God (i.e., realization of the God state consciously), is manifested most forcefully.

इसलिये यह स्पष्ट हो जाता चाहिये कि मनो-भुवन की पाँचवीं भूमिका केवल विचारों की पूर्ण चेतना की अवस्था मात्र है । केवल विचारों के नियन्त्रण और उत्पत्ति के ऊपर प्रभुता स्थापित होती है, और इच्छाओं तथा भावनाओं की अनुभूतियों के ऊपर प्रभुता अथवा नियन्त्रण नहीं रहता । किन्तु मनो-भुवन की छठवीं भूमिका भावनाओं की भरपूर चेतना की अवस्था है, और इस प्रकार नियन्त्रण के ऊपर तथा भावनाओं की उत्पत्ति के ऊपर प्रभुता स्थापित होती है और अब भावनाओं के प्रदेश में घुसकर जाने के लिये केवल एक विचार तक के लिये गुन्जाइश नहीं रहती ।

छठवीं भूमिका की चेतना **विचार-रहित** होती है और वह परमात्मा की सब स्थूल- और सूक्ष्म-चैतन्य अवस्थाओं की **भावनाओं** पर नियन्त्रण करती है । इसका बहुधा ऐसा ग़लत अर्थ लगाया जाता है कि वह उन सब लोगों के **हृदयों** के ऊपर प्रभुता है जो परमात्मा की स्थूल- और सूक्ष्म-चैतन्य अवस्थाओं में हैं । वह तथाकथित हृदयों का संचालन अथवा नियमन नहीं करता किन्तु वह मनो-भुवन में **मन** के उस दूसरे भान का नियन्त्रण और संचालन करता है जिससे भावनाओं और इच्छाओं की अनुभूतियों का प्रादुर्भाव होता है ।

ईश्वर से प्रेम करना और उससे मिलने की उत्कण्ठा करना चेतना की छठवीं भूमिका में यथार्थरूप में और पूर्णतया प्रदर्शित होता है । केवल जब मन-भुवन की छठवीं भूमिका पार कर ली जाती है, तब माया का लोप संस्कारों के अन्तिम चिन्हों के लोप के साथ-साथ हो जाता है, और **सत्य** का साक्षात्कार हो जाता है ।

मनो-चैतन्य परमात्मा मानव अवस्था में छठवीं भूमिका पर अब भी दुई का अनुभव करता है, क्योंकि चेतना की इस अवस्था में परमात्मा अपने को **मन** के रूप पाता है और परमात्मा के रूप में नहीं पाता ।

दुई का यह अनुभव आगे और आगे बढ़ता ही जाता है जब तक कि चेतना का अन्तिम प्रतिवर्धन चेतना की सातवीं भूमिका को प्राप्त नहीं कर लेता । चेतना के प्रतिवर्धन की प्रक्रिया में यह अन्तिम और सातवीं स्थिति है जबकि मानव अवस्था में परमात्मा की पूर्ण चेतना अब पूरी तरह से अन्तर्मूखी हो गई है, अतनी पूरी तरह से अन्तर्मूखी हो गई है कि अब वह स्वयं अपनी ही सृष्टि की चीज़ों में लिप्त रहने के बजाय खुद अपने में चिपट और केन्द्रित हो गई है ।

(१४६)

Hence it should be clear that the fifth plane of the mental sphere is the state of full consciousness of thoughts only. The mastery over control and creation of thoughts alone is established, and there is no mastery or control over feelings of desires and emotions. But the sixth plane of the mental sphere is the state of full consciousness of feelings, and thus the mastery over control and creation of feelings is established and no more scope is now left for even a single thought to penetrate into the domain of feelings.

The sixth plane consciousness is **thought-less** and governs the **feelings** of all of the gross- and subtle-conscious states of God. This is often misinterpreted as mastery over the **hearts** of all those in the gross- and subtle-conscious states of God. He does not govern or regulate the so-called hearts but controls and governs that second section of Mind in the mental sphere which emanates feelings of emotions and desires.

The loving of God and the longing for His union is really and fully demonstrated in the sixth plane of consciousness. Only when the sixth plane of the mental sphere is transcended, does Illusion vanish with the vanishing of the last trace of impressions, and Reality is realized.

Mental-conscious God in the man state on the sixth plane is still experiencing duality, because God in this state of consciousness finds Himself as Mind and not as God.

This experience of duality lingers on and on until the final involution of consciousness attains the seventh plane of consciousness. This is the final and seventh stage in the process of involution of consciousness when the full consciousness of God in the man state is now fully withdrawn inwards, so completely that it is now fixed and focussed onto Himself rather than onto the objects of His own creation.

अब चूँकि पूरी चेतना का प्रतिवर्धन भरपूर हो गया है, अतः **शून्यता** के पदार्थ, जो दिखाव में अस्तित्व रखते हुये प्रतीत होते थे, अपने संस्कारों के साथ पूर्णतया लुप्त हो जाते हैं ।

शून्य के समागमों के संस्कारों के पूर्णरूप से नष्ट हो जाने के साथ, मानव अवस्था में परमात्मा की संस्कारों से लिप्त चेतना अपनेआप ईश्वर की संस्कारों से अछूती अथवा संस्काररहित चेतना के रूप में बदल जाती है, जिससे मानव अवस्था में परमात्मा की अपनी निपट रिक्तता की मूल अवस्था के अन्तर्गत चले जाने (*passing-away-in*) का अनुभव होता है । यह निपट स्वाभाविक बात है कि पूरी चेतना को, जो भरपूर प्रतिवर्धित हो चुकी है, और जो अब किसी भी संस्कार के नामो निशान से भी मुक्त है, परमात्मा की मूल, परम शून्य अवस्था के सिवाय और कोई दूसरा अनुभव प्रदान न करना चाहिये, जो किसी समय प्रबलता से छाया था और जिसका अब **चैतन्यरूप से** अनुभव होता है ।

पूर्णतया प्रतिवर्धित यह भरपूर चेतना अलौकिक-चेतना अथवा **महा-चैतन्य** है । अचैतन्य परमात्मा को जो मूल, परम शून्य अवस्था में है, अब परात्पर परब्रह्म अवस्था में अपनी परमात्मा की मूल अवस्था की, अथवा अति-चेतना की, पूर्ण चेतना होती है ।

परमात्मा की मूल अवस्था के इस परम शून्यता (*vacuum*) के "अन्तर्गत चले जाने" को चेतना की सातवीं भूमिका के **फ़ना** का प्राप्त होता कहते हैं ।

सूफ़ी भाषा में **फ़ना** का अर्थ है "अन्तर-में-चला-जाता" । **फ़ना** की दो श्रेणियाँ होती हैं : **फ़ना** की पहली श्रेणी निपट शून्य अवस्था का चैतन्य अनुभव है, और **फ़ना** अथवा फ़ना-फ़िल्ला की दूसरी श्रेणी "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था का चैतन्य अनुभव है ।

फ़ना-फ़िल्ला, की दूसरी श्रेणी, मानव अवस्था में परमात्मा का लक्ष्य है जहाँ मानव रूप में, अर्थात् मनुष्यवत्, परमात्मा अन्ततः पूर्ण चैतन्यता के साथ "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था का अनुभव करता है । यह अन्तिम **मजज़ूबियत** की अवस्था है जैसा सूफ़ी भाषा में कहा जाता है ।

फ़ना की प्रथम श्रेणी के प्राप्त होने के बहुत पहले, मनुष्य रूप में परमात्मा को, मनुष्य रूपवत् सीमित अहं अथवा "मैं", मन, शक्ति, शरीर और दुनियाँ की भरपूर चेतना एक साधारण जागृत अवस्था में

Now that full consciousness has been fully involved, the objects of Nothingness, which apparently appeared to exist, vanish completely together with their impressions.

With complete annihilation of impressions of the associations of the Nothing, the impressioned consciousness of God in the man state is spontaneously transformed into the unimpressioned or impressionless consciousness of God which makes God in the man state experience the "passing-away-in" His original state of absolute vacuum. It is but natural that the full consciousness, fully involved, and now free from even the slightest trace of any impression, should give no other experience but that of the original, absolute vacuum state of God which once prevailed and which is now experienced **consciously.**

This full consciousness, fully involved, is the super-consciousness or the *mahachaitanya*. The unconscious God in the original, absolute vacuum state is now fully conscious, or super-conscious, of His original state of God in the Beyond the Beyond state.

This "passing-away-in" the absolute vacuum of the original state of God is called attaining the fana of the seventh plane of consciousness.

In Sufi terms *fana* means "passing-away-in." Fana has two stages: the first stage of fana is the conscious experience of the absolute vacuum state, and the second stage of fana or fana-fillah is the conscious experience of the "I am God" state.

Fana-fillah, the second stage, is the Goal of God in the man state where God in human form, that is, as man, ultimately realizes the "I am God" state with full consciousness. This is the state of final *majzoobiyat* as it is termed by the Sufis.

Much before the first stage of fana is attained, God in the man state, as man, had full consciousness of the limited ego or "I," mind, energy, body and the world in an ordinary awake state, because the full

थी, क्योंकि मनुष्य अवस्था में, मनुष्यवत्, परमात्मा की पूर्ण चेतना उसके ऊपर उनके सीमित संस्कारों के द्वारा सीधेसीध केन्द्रित थी । और जैसे ही परमात्मा की चेतना मानव अवस्था में, मनुष्यवत्, प्रतिवर्धित होता शुरू हुई, वैसे ही प्रतिवर्धित चेतना को क्रमशः संस्कारों के द्वारा, जो हर छठवीं भूमिका में संचित और ख़र्च हुये थे, अधिमानस की छः भूमिकाओं का अनुभव क्रमशः हुआ । जब उप-अधिमानस पूर्णतया प्रतिवर्धित हो गया, अर्थात् खुद उसकी ओर भीतर को खिच गया, तब मनुष्य अवस्था में परमात्मा ने, मनुष्यवत्, अधिमानस की सातवीं भूमिका प्राप्त की जो सब संस्कारों से रहित थी । उद्देश्य को प्राप्त करने में यह अन्तिम क्रम था ।

चेतना के पूर्ण प्रतिवर्धन के साथ-साथ, और अधिमानस प्राप्त कर लेने पर, मन अन्तिम रूप से पूर्णतया नष्ट हो जाता है और सभी संस्कारों के साथ हमेशा के लिये लुप्त हो जाता है । सीमित अहं अथवा "मैं", मन, प्राणशक्ति, शरीर और दुनियाँ के मिथ्या अनुभव सबके सब हमेशा के लिये नष्ट हो जाते हैं, और उनका पूर्ण लोप हो जाता है, क्योंकि ये सब अनुभव उन संस्कारों की उपज मात्र थे जिनका उद्भव **शून्य** से हुआ था, जिनका शब्दशः कोई अर्थ न था और जो कुछ न थे ।

इसके फलस्वरूप, सीमित अहं अथवा "मैं", मन, प्राणशक्ति, शरीर (आनन्द के प्रतिरूप में) और जगत अपने समस्त साजो सामान के सहित लुप्त हो जाने पर, परम शून्यता की एक अवस्था का अनुभव चेतना को स्वतः होता है, जो एकबार प्राप्त हो जाने के बाद शाश्वत रूप से बना रहता है । इस स्थल पर परमात्मा को, मानव अवस्था में मनुष्यवत्, अधिमानस के रूप में पूर्ण चेतना के साथ अब केवल परम शून्यता की चेतना होती है—अब चेतना स्वयं "परम शून्यत" पर स्थिर और केन्द्रित होती है ।

यह शून्यता (*vacuum*) अपनी पूर्णता के शिखर पर होती है; केवल शून्यता की प्रधानता रहती है और **शून्य** का तथा साथ-साथ **सबकुछ** का पूर्ण अभाव रहता है । इसलिये इसको "**दिव्य, परम शून्यता**", कहते हैं और इसका जन्म **माया** से नहीं होता, बल्कि इसकी उत्पत्ति **सत्यता** से होती है ।

दिव्य शून्यता की यह अवस्था ठीक उस क्षण प्रबल होती है जब

consciousness of God in the man state, as man, was directly focussed on them through their finite impressions. And as soon as the consciousness of God in the man state, as man, began to involve, the involved consciousness experienced gradually the six planes of sub-super-consciousness through impression s gathered and spent in each of the six planes. When the sub-super-consciousness completely involved, that is, was withdrawn inwards towards Himself, then God in the man state, as man, gained the seventh plane of super-consciousness devoid of all impressions. This was the final stage in attaining the Goal.

Simultaneously with the complete involution of consciousness, and on gaining super-consciousness, the mind is finally completely annihilated and vanishes once and for all time together with all impressions. The false experiences of the limited ego or "I," mind, energy, body and the world all disappear forever, vanishing completely, because all these experiences were but the outcome of the impressions generated out of the Nothing, which literally meant nothing and were nothing.

Consequently, with the vanishing of the limited ego or "I," mind, energy, body (typifying happiness) and worlds with all of their corresponding paraphernalia, a state of absolute vacuum is spontaneously experienced by the consciousness, which remains eternally when once it is gained. At this stage God, in the man state as man, with full consciousness as super-consciousness, is now only conscious of absolute vacuum—the consciousness is now fixed and focussed on "Absolute Vacuum" itself.

This vacuum is absolute in its entirety; vacuum alone prevails and there is an entire absence of the Nothing as well as of the Everything. This is therefore called the "Divine, Absolute Vacuum," and it is not born of Illusion, but it is born of Reality.

This state of divine vacuum prevails just at the instant when the Nothing disappears or vanishes and just immediately before the

शून्य का लोप हो जाता है अथवा नाश हो जाता है और तत्क्षण, उसके पहले कि **सबकुछ** "मैं-परमात्मा-हूँ" की अवस्था की यथार्थता का चैतन्य अनुभव देने के लिये, उस शून्यता में भर जाता है ।

यह **फ़ना** की पहली स्थिति है जहाँ **शून्य** का सबकुछ पूर्णतया समाप्त हो जाता है और जहाँ अधि-मानस केवल निपट शून्यता पर केन्द्रित होता हृ, जो अब इस प्रकार वयाप्त होती है वैसी वह शाश्वतरूप से परमात्मा की मूल **ईश्वर-है** अवस्था में उसकी मूल, दिव्य, गहरी निद्रा में व्याप्त रहती है ।

इसलिये, **फ़ना** की पहली अवस्था में परमात्मा की चेतना, मानव अवस्था में मनुष्यवत्, सीमित **सत्य** की अथवा अहं अथवा "मैं", मन, शक्ति, शरीर और जगतों को नहीं होती, और न तो वह ईश्वर तक की अथवा असीमित **सत्य** अथवा **अहं** अथवा "मैं" की, विराट मन, असीमित प्राणशक्ति, विराट शरीर और विश्वों की होती है; क्योंकि **फ़ना** की इस पहली स्थिति में केवल परम शून्यता की चेतना व्याप्त रहती है । यह शून्यता भी दिव्य शून्यता है; यह **माया** की नहीं है बल्कि यह **सत्य** की है । **फ़ना** की इस पहली स्थिति में परमात्मा की अति-चैतन्यता, मनुष्य अवस्था में मनुष्यवत्, मूल **परमात्मा-है** अवस्था की परम शून्य अवस्था के अन्तर-प्रवेश का अनुभव करती है, और अब उसको इस प्रकार केवल परम शून्यता की चेतना होती है ।

जैसा पहले कहा जा चुका है, यह परम शून्य अवस्था भी एक साधारण मनुष्य की गहरी निद्रा अवस्था में प्रतिदिन स्थापित होती है जहाँ सीमित अहं अथवा "मैं", मन, प्राणशक्ति, शरीर एवं जगतों का भी लोप हो जाता है और प्राप्त हुई चेतना प्रसुप्त बनी रहती है ।

एकमेव अन्तर, जो मनुष्य की प्रतिदिन की गहरी निद्रा की अवस्था की परम शून्य अवस्था के और **फ़ना** की पहली स्थिति में निपट शून्यता के अनुभव के बीच, वास्तव में बहुत भारी अन्तर पैदा करता है; वह यह है कि यद्यपि वही निपट शून्यता **फ़ना** में भी स्थापित होती है, फिर भी **फ़ना** में चेतना और अधिक प्रसुप्त नहीं रहती । इस स्थिति में वह पूर्ण और भरपूर परिपक्व चेतना होती है, जो अब यथार्थ में उसी परम शून्य अवस्था का अनुभव परमात्मा की मूल अवस्था के रूप में करती है ।

फ़ना की पहली स्थिति का अनुभव **निर्वाण** अवस्था का होता है ।

(१४९)

Everything falls in that vacuum to give conscious experience of the reality of the "I am God" state.

This is the first stage of fana where all that is of the Nothing vanishes completely and where the super-consciousness is focussed only on absolute vacuum, which now prevails as it prevails eternally in the original God-Is state of God in original, divine sound sleep.

Therefore, in the first stage of fana the consciousness of God, in the man state as man, is not of the limited self or ego or "I," mind, energy, body and worlds, nor is the consciousness even of God or of the unlimited Self or Ego or "I," universal mind, unbounded energy, universal body and universes; because, in this first stage of fana only the consciousness of absolute vacuum prevails. This vacuum is also divine; it is not of Illusion but it is of Reality. In this first stage of fana the super-consciousness of God, in the man state as man, experiences the "passing-away-in" the absolute vacuum state of the original God-Is state, and is thus conscious now only of ab-solute vacuum.

As has already been said, this same absolute vacuum state is also established in the everyday sound sleep state of a normal man where the limited ego or "I," mind, energy, body and the worlds also vanish and the consciousness gained remains dormant.

The only difference, which truly makes a world of difference, between the absolute vacuum state of the everyday sound sleep state of man and the experience of the absolute vacuum in the first stage of fana is, that although the same absolute vacuum is established also in fana, yet in fana the consciousness no longer remains dormant. In this stage it is fully and completely matured consciousness, now actually experiencing the very same absolute vacuum state as the original state of God.

The experience of the first stage of fana is of the nirvana state.

निर्वाण वह अवस्था है जहाँ प्रत्यक्ष रूप में "**परमात्मा नहीं है**" । केवल यही स्थिति है जहाँ "**परमात्मा महीं है**" और "**चेतना है**" । **फ़ना** की पहली स्थिति का यह अनुभव वह है जिस पर बुद्ध ने ज़ोर दिया था, किन्तु बाद में इसका ऐसा ग़लत अर्थ लगा लिया गया जैसे बुद्ध ने इस बात पर बल दिया हो कि परमात्मा नहीं है । तथापि, वास्तविकता यह है कि **परमात्मा** है; लेकिन **फ़ना** की पहली स्थिति की निपट शून्य अवस्था में केवल चेतना रहती है, और निपट शून्यता का अनुभव करती है ।

चूँकि ऐसा कभी नहीं हो सकता कि परमात्मा का अस्तित्व न रहे, अत: **निर्वाण** की अवस्था में परमात्मा स्वयं चेतना का पार्ट अदा करता है, जो चेतना कभी-कभी अति-चेतना अथवा **महा-चैतन्य** कही जाती है ।

फ़ना की दुसरी स्थिति इस **निर्वाण** अवस्था के पीछे-पीछे लगी आती है और "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था का अनुभव चैतन्य रूपसे होता है ।

तथापि, केवल कुछ उदाहरणों में **फ़ना** की पहली स्थिति के तत्काल पीछे **फ़ना** की दूसरी स्थिति आती है, जिसे "फ़ना-फ़िल्लाह" करते हैं, जहाँ नष्ट हुआ मिथ्या और सीमित अहं अथवा "मैं" का स्थान यथार्थ एवं अनन्त असीमित "मैं" ले लेता है जिसके ऊपर अब महा-चैतन्य अपनेआप केन्द्रित हो जाता है । इसी के साथ-साथ निपट शून्यता अपनेआप अनन्त के अनुभव से भर जाती है ।

मानव अवस्था मे, मानववत्, परमात्मा का महा-चैतन्य, जो अब असीमित "मैं" पर स्थिर और केन्द्रित होता है, स्वत: मनुष्य की एकरूपता अनन्त परमात्मा के साथ कर देता है । उसी समय एकरूपता के साथ-साथ, अनन्त परमाम्ता के महा-चैतन्य को "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था के अनुभव प्राप्त होते हैं । यही लक्ष्य है ।

लक्ष्य की प्राप्ति करना **निर्विकल्प समाधि*** को प्राप्त करना है ।

(१५०)

* आत्मा को मुक्ति प्राप्त करने के लिये 'निर्वाण' की अवस्था से अनिवार्य रूप से गुज़रना पड़ता है । जन्म और मरण के चक्र से छुटकारा 'निर्वाण' और 'निर्विकल्प' दोनों में प्राप्त हो जाता है । यही कारण है कि 'निर्वण' को 'लक्ष्य' माना जाता है, किन्तू यथार्थ बात यह है कि मानव रूप में स्थित मनुष्य के लिये वास्तविक 'लक्ष्य' 'निर्विकल्प' की प्राप्ति करना है । और, लक्ष्यवत् 'निर्वान' तथा 'निर्विकल्प' लक्ष्य के बीच, अमीन-आसमान का अन्तर होता है ।

Nirvana is that state where apparently "God Is Not." This is the only state where "God Is Not" and "Consciousness Is." This experience of the first stage of fana is what Buddha emphasized, but later on it was misinterpreted as Buddha having emphasized that there was no God. The reality, however, is that God Is; but in the absolute vacuum state of the first stage of fana only consciousness remains, experiencing absolute vacuum.

As it can never happen for God not to exist, in the state of nirvana God plays the part of consciousness itself, which consciousness is sometimes termed super-consciousness or *mahachaitanya*.

The second stage of fana follows this nirvana state and the "I am God" state is experienced consciously.

However, it is only in some cases that the first stage of fana is immediately followed by the second stage of fana called "fana-fillah" where the annihilated false and limited ego or "I" is replaced by the real and infinite, unlimited "I" on which the super-consciousness now becomes automatically focussed. Simultaneously the absolute vacuum is automatically filled by the experience of the infinite.

The super-consciousness of God in the man state, as man, now fixed and focussed on the unlimited "I," spontaneously identifies man with God the infinite. Simultaneously with the identification, the super-consciousness of God the infinite experiences the "I am God" state. This is the Goal.

Attainment of the Goal is to attain the *nirvikalpa samadhi*.*

* The soul has necessarily to pass through the state of nirvana to attain Liberation (*mukti*). Escape from the round of birth and death is attained both in *nirvana* and *nirvikalpa*. It is because of this that nirvana is supposed to be the Goal, but the fact is that the real Goal for one in human form is to attain *nirvikalpa*. And, there is a world of difference between *nirvana* as Goal and *nirvikalpa* the Goal.

ठीक जिस प्रकार मनुष्य रोज़ रात को सोता है और प्रतिदिन मनुष्य की अवस्था में उसे अनिवार्य रूप से जागना पड़ता है ऊसी तरह जब कोई मनुष्य दैवी निद्रा में हो जाता है तो उसे भी दिव्यता में जागृत होता अनिवार्य है । इसी प्रकार **फ़ना** की पहली स्थिति पूरी चेतना से सम्पन्न गहरी निद्रा अवस्था है, और **फ़ना** का दुसरा क्रम, जो **फ़ना फ़िल्लाह** है, परमात्मा में परमात्मावत् जागरण की अवस्था है ।

सारांश यह है कि, जब **फ़ना** की पहली स्थिति के पश्चात् तत्काल और अनिवार्यरूप से **फ़ना-फ़िल्लाह**[२०] की दुसरी अवस्था आती है, तब कुछ उदाहरणों में सीमित "मैं", "आत्मा", मन, प्राणशक्ति, शरीर और दुनियाओं की चेतना वापिस नहीं आती; किन्तु चेतना, अब केवल असीमित "मैं" की महाचैतन्यता के रूप में विद्यमान रहती है और वह विश्चवयापी "आत्मा" अर्थात् परमात्मा से एकरूप होने के रूप में विद्यमान रहती है । अब महा-चैतन्यता "मैं-परमात्मा-हूँ", "**अहं ब्रह्मास्मि**" अथवा "**अनल हक़**" अवस्था का अनुभव करती है । यह **निर्विकल्प समाधि** का अनुभव है, जिसका अर्थ है "मैं निःसन्देह परमात्मा हूँ" । इसका अनुभव इस कारण से होता है क्योंकि **फ़ना-फ़िल्लाह** में **आत्मा** चैतन्यरूप से **परमात्मा** में पूरी तरह समा जाती है, अथवा **फ़ना-फ़िल्लाह** में आत्मा को परमात्मा से पूर्ण योग प्राप्त हो जाता है ।

यह अनुभव लक्ष्य है और इसका प्राप्ति केवल चेतना के विकास के बाद, जो **शून्य** में प्रसुप्त था, हुई थी जब प्रसुप्त सीमित **शून्य** का अविर्भाव अनन्त **शून्यता** के रूप में हुआ था । विकसित हुई चेतना ने, जब वह अपने को शून्यता के क्षेत्र में अपार रूप से फँसाये थी, इस मिथ्या और सीमित **शून्यता** का अनुभव यथार्थ एवं अनन्त के रूप में किया । अन्ततः, जब इस चेतना का प्रतिवर्धन हुआ, वह अनन्त मिथ्या **शून्यता** की अनन्त असत्यता का अनुभव क्रमशः करने में समर्थ हुई, और अन्ततः अनन्त-परामात्मा की अनन्त सत्यता का यह अनुभव करने में समर्थ हुई कि वह निःसन्देह, और सीमितताओं के परे, **सबकुछ** है और **फ़ना-फ़िल्लाह** में "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था में शाश्वत सत् है ।

यह **फ़ना-फ़िल्लाह** वह लक्ष्य है जहाँ "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था का अनुभव होता है; उदाहरण के लिये, उन लोगों को अनुभव होता है जो "मज़जूब" (ऐसा मनुष्य जो परमात्मा द्वारा पराभूत हो गया है; अथवा ऐसा आदमी जिसका नियन्त्रण परमात्मा है) कहलाते हैं ।

Just as man goes to sleep every night and must wake up every day in the state of man, so also when one goes into divine sleep one must wake up in the Divine. Similarly the first stage of fana is the sound sleep state with full consciousness, and the second stage of fana which is fana-fillah is the state of awakening in God as God.

When the first stage of fana is immediately followed by the second stage of fana-fillah,[20] in some cases the consciousness of the limited "I," "self," mind, energy, body and the worlds does not come back; but the consciousness, now as super-consciousness, of the unlimited "I" only exists as identified with the universal Self, God. The super-consciousness now experiences the "I am God," "Aham Brahmasmi" or "Anal Haqq" state. This is the experience of nirvikalpa samadhi, meaning thereby "Undoubtedly I am God." This is experienced because in fana-fillah the atma consciously merges completely in Paramatma, or in fana-fillah the soul achieves complete union with the Over-Soul.

This experience is the Goal and it was attained only after the evolution of the consciousness, latent in the Nothing, took place when the latent finite Nothing manifested as infinite Nothingness. The evolved consciousness, while infinitely entangling itself in the field of the Nothingness, experienced this false and finite Nothingness as real and infinite. Ultimately, when this consciousness involved, it could gradually experience the infinite falsity of the infinitely false Nothingness, and eventually realize the infinite reality of the God-the-Infinite as the Everything beyond doubt and beyond limitations and as eternal existence in the "I am God" state of fana-fillah.

This fana-fillah is the goal where the "I am God" state is experienced, for example, by those persons who are called "Majzoobs" (one being overpowered by God, or one whom God controls). These

ये लोप "**ब्रह्मीभूत**" भी करे जाते हैं । इस अवस्था में मनुष्य लगातार निरन्तार और चेतन्यरूप से "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था का अनुभव करता है और उसके साथ-साथ वह परमात्मा की अपार त्रि-प्रकृति "**सत्-चित-आनन्द**" (अर्थात् अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द) का अनुभव चैतन्यरूप से खुद अपनी अनन्त प्रकृति के रूप में सतत् और चैतन्य रूप से करता है ।

इस प्रकार ही वह आत्म-चैतन्य परमात्मा, मानव अवस्था में मानववत् सातवीं भूमिका में, अब अनन्त और शाश्वत रूप में आत्म (*Self*) की पूर्ण चेतना रखता है । अब उसको प्राणशक्ति और मन के स्त्रोत की भी चेतना होती है जो खुद उसकी अनन्त शक्ति और अनन्त ज्ञान के केवल सीमित पहलू थे, जिनका अनुभव अब वह सतत् अनन्त आनन्द में रहते हुये करता है ।

आत्म-चेतना प्राप्त करने के अपने श्रम में, अखण्ड्य, शश्वत् परमात्मा ने, विसको अपनी अनन्त अवस्था की चेतना न थी, असंख्य विविध संस्कारों का सञ्चय एवं अनुभव किया, और पूरे समय अपना साहचर्य सीमित एवं नश्वर अस्तित्वों से किया और उसके द्वारा स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगतों का प्रसार किया, जबकि सूक्ष्म जगत की स्थूल चेतना **विकसित किया** और जबकि सूक्ष्म और कारण जगतों की सूक्ष्म और कारण भूमिकाओं की चेतना को **प्रतिवर्धित किया** । परमात्मा की चेतना का अन्तिम पतिवर्धन अपनी चरमसीमा पर परमात्मा की अनन्त अवस्था में उसके **सत्व** के चेतन साक्षात्कार में हुआ ।

इसके फलस्वरूप्र जब परमात्मा की चेतना को खुद की चेतना प्राप्त हो गई और उसको अनन्त शक्ति, ज्ञान एवं आनन्द का अनुभव हुआ, तो परमात्मा ने अनुभव किया कि वह शाश्वत रूप से अनन्त आनन्द में विद्यमान है; और आत्म-चेतना प्राप्त करने के श्रम के पूरे दौरान में, संस्कार, अनुभव तथा स्थूल, सूक्ष्म और मनो-देहों और भुवनें के संसर्ग एवम् विच्छिन्नतायें शून्य के थे और खाली स्वप्न थे । उसने यह भी अनुभव किया कि स्थूल शरीरों, जीवधारियों और मानव-प्राणियों के साथ एकरूपता, तथा तीनों भुवनों के और छः बूमिकाओं के सम्पूर्ण अनुभव, उनके साजो-सामान सहित, अपने सापेक्ष अस्तित्व स्थित और धारित थे जब तक कि परमात्मा की चेतना अपरिपक्व थी । परिपक्वता वेलूवल सातवीं भूमिका में प्राप्त हुई थी जिसमें चेतना पूर्णरूप

persons are also known as "*Brahmi Bhoots*." In this state one constantly, continually and consciously experiences the "I am God" state together with the continued and conscious experience of the infinite trio-nature of God, sat-chit-anand (i.e., infinite power, infinite knowledge and infinite bliss), as one's own infinite nature.

So it is that self-conscious God, in the man state as man in the seventh plane, is now fully conscious of Self as infinite and eternal. He is now also conscious of the source of energy and mind which were nothing but the finite aspects of His own infinite power and infinite knowledge, which He experiences now, while being continually in infinite bliss.

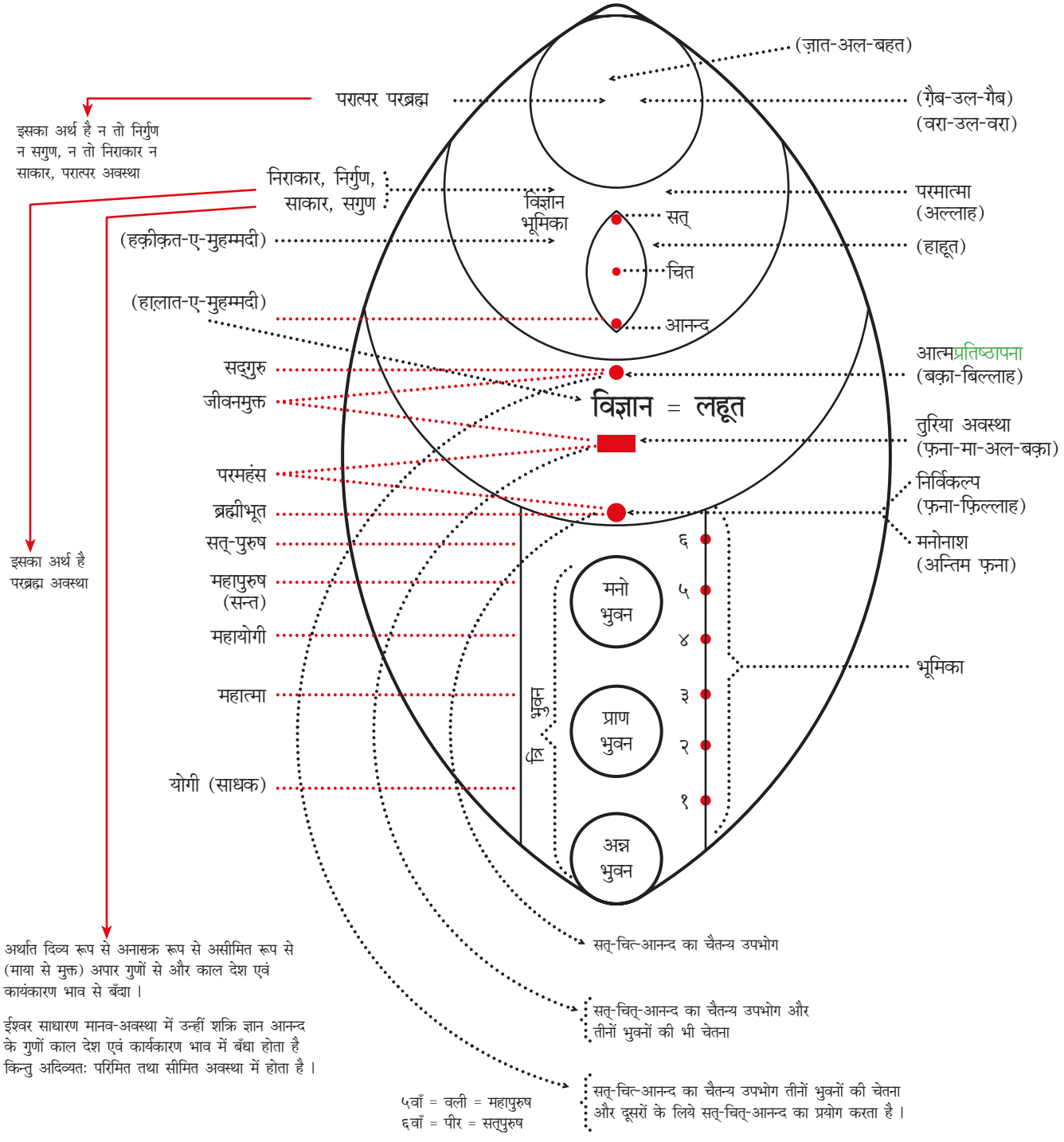
In His travail to gain Self-consciousness, the indivisible, eternal God, unconscious of His infinite state, gathered and experienced innumerable diverse impressions, and all the while associated Himself with finite and ephemeral existences, unfurling the gross, subtle and mental worlds, while evolving gross consciousness of the gross world and while involving consciousness of the subtle and mental planes of the subtle and mental worlds. The final involution of the consciousness of God culminated in conscious realization of His Self in His infinite state.

Consequently when the consciousness of God gained consciousness of Self and experienced infinite power, knowledge and bliss, God realized that He exists eternally in infinite bliss and that all through the travail of gaining Self-consciousness, the impressions, experiences and associations and dissociations of the gross, subtle and mental bodies and worlds were of the Nothing and were but vacant dreams. He realized, too, that identication with gross bodies, creatures and human beings, and all experiences of the three worlds and the six planes with all of their paraphernalia, had their relative existences sustained and maintained as

blank page

blank page

यात्रा



अर्थात दिव्य रूप से अनासक्त रूप से असीमित रूप से (माया से मुक्त) अपार गुणों से और काल देश एवं कार्यकारण भाव से बँधा ।

ईश्वर साधारण मानव-अवस्था में उन्हीं शक्ति ज्ञान आनन्द के गुणों काल देश एवं कार्यकारण भाव में बँधा होता है किन्तु अदिव्यत: परिमित तथा सीमित अवस्था में होता है ।

५वाँ = वली = महापुरुष
६वाँ = पीर = सत्पुरुष

वेदान्तिक	गूढ़	सूफ़ी
परात्पर परब्रह्म	ईश्वर की परात्पर परब्रह्म अवस्था	ग़ैब-उल-ग़ैब वरा-उल-वरा
परमात्मा	ईश्वर परब्रह्म अवस्था में	अल्लाह
अनन्त	अपार	ला महदूद
निर्गुण	गुणातीत	ला सिफ़ात
निराकार	रूपरहित	ल सूरत
सत्-चित्-आनन्द	शक्ति, ज्ञान, आनन्द	कुदरत, मारेफ़त, मसर्रत
विज्ञान भूमिका	प्रभुत्व का प्रदेश	आलम-ए-हाहूत अर्श-ए-आला
आत्मप्रतिष्ठापना सहज समाधि	ईश्वर के जीवन में स्थापित	बक़ा बिल्लाह
विज्ञान	सर्वोच्च दिव्य चेतता	अहादियत आलम-ए-लहुत
सगुण	गुणयुक्त	बा सिफ़ात
साकार	रूप में प्रकट	बा सूरत
ब्रह्मा	कर्ता	अफ़रीदगर
विष्णु	भर्ता	परवरदिगार
महेश	हर्ता	फनाकर
मनो भुवन	मनोलोक	आलम-ए-जबरूत
प्राण भुवन	सूक्ष्म लोक	आलम-ए-मलाकूत
अन्न भुवन	स्थूल लोक	आलम-ए-नासूत
उत्क्रान्ति	विकास	इरतेक़ा
पुनर्जन्म	पुनरावतरण	रिज'अत अथवा आवागवन
भूमिका	प्लेन	आसमान
आत्मा	जीवात्मा	जान अथवा रूह
जीव आत्मा	देहधारी आत्मा	जान-ए-जिस्मी
मानव	व्यक्ति	इन्सान
योगी (साधक)	जिज्ञासु	रहरव
साधु	उन्नत आत्मा	मुतवस्सित
महात्मा	महान आत्मा	अख्यार
महापुरुष (सन्त)	सन्त	अबरार = वली
सत्पुरुष	प्रवीण तीर्थयात्री (सन्त)	अफ़राद = पीर
मनोनाश (निर्वाण)	मन का नाश (आत्म)	अन्तिम फ़ना
निर्विकल्प	ईश्वर से ऐक्य	फ़ना-फ़िल्लाह
ब्रह्मीभूत	दिव्यत: निमग्न ग्र?	मजज़ूब-ए-कामिल
तुरिया अवस्था	दिव्य सन्धि	फना मा-उल-बक़ा (at) मुक़ाम-ए-फ़ुरूतात
परमहंस	दिव्य अन्तत-पुरुष	मजज़ूब-सालिक अथवा सालिक-मजज़ूब
जीवनमुक्त	बन्धनमुक्त देहधारी	आज़ाद-ए-मुतलक़
सद्गुरु	नर-नारायण	कुतुब
अवतार	ईश-पुरुष	साहब-ए-ज़माँ

वेदान्तिक और वेदान्तिक के निकट अर्थ वाले शब्द

THE JOURNEY

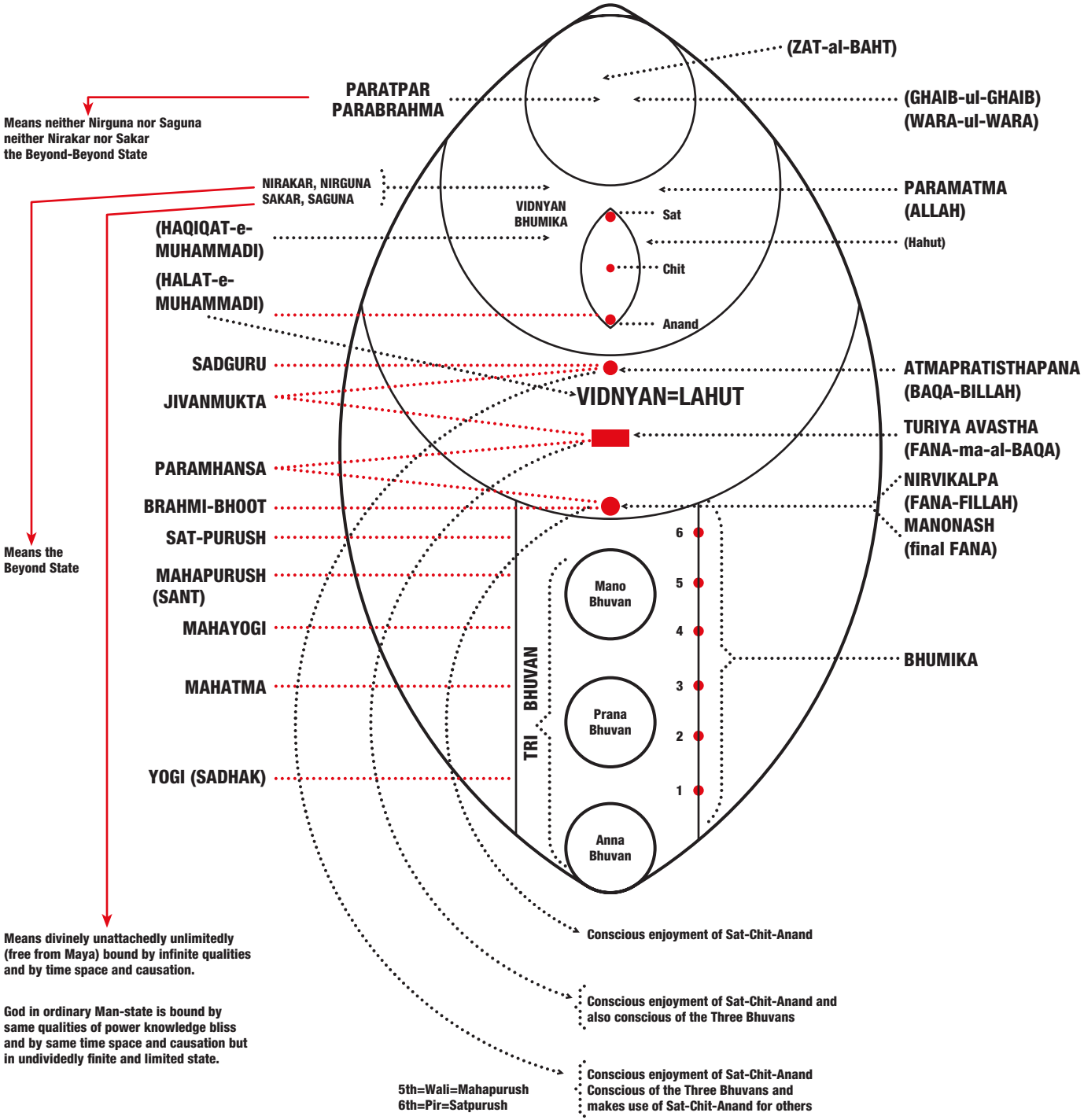


CHART V

VEDANTIC*	MYSTIC	SUFI
Paratpar Parabrahma	God's Beyond-Beyond State	Ghaib-ul-Ghaib Wara-ul-Wara
Paramatma	God in Beyond State	Allah
Anant	Infinite	La Mahdood
Nirguna	Attributeless	La Sifat
Nirakar	Formless	La Surat
Sat-Chit-Anand	Power, Knowledge, Bliss	Qudrat, Marefat, Musarrat
Vidnyan Bhumika	Realm of Mastery	Alam-e-Hahut
Atmapratisthapana Sahaj Samadhi	Established in the Life of God	Baqa-Billah
Vidnyan	Highest Divine Consciousness	Ahadiyat Alam-e-Lahut
Saguna	Qualitied	Ba Sifat
Sakar	Manifest in Form	Ba Surat
Brahma	Emanator	Afridgar
Vishnu	Sustainer	Parvardigar
Mahesh	Dissolver	Fanakar
Mana Bhuvan	Mental Sphere	Alam-e-Jabrut
Pran Bhuvan	Subtle Sphere	Alam-e-Malakut
Anna Bhuvan	Gross Sphere	Alam-e-Nasut
Utkranti	Evolution	Irteqa
Punar Janma	Reincarnation	Rij'at or Awagawan
Bhumika	Plane	Asman
Atma	Soul	Jan, or Ruh
Jiv-Atma	Embodied Soul	Jan-e-Jismi
Manava	Human	Insan
Yogi (Sadhak)	Aspirant	Rahrav
Sadhu	Advanced Soul	Mutawassit
Mahatma	Great Soul	Akhyar
Mahapurush (Sant)	Saint	Abrar = Wali
Satpurush	Adept Pilgrim (Saint)	Afrad = Pir
Manonash (Nirvana)	Annihilation of Mind (self)	The final Fana
Nirvikalpa	Oneness with God	Fana-Fillah
Brahmi Bhoot	The Divinely Absorbed	Majzoob-e-Kamil
Turiya Avastha	Divine Junction	Fana-ma-al-Baqa at Muqam-e-Furutat
Paramhansa	Divine Super-Man	Majzoob-Salik or Salik-Majzoob
Jivanmukta	Liberated Incarnate	Azad-e-Mutlaq
Sadguru	Man-God	Qutub
Avatar	God-Man	Saheb-e-Zaman

* Vedantic and near-Vedantic terms.

से प्रतिवर्धित हो गई थी । इस पक्रिया से परमात्मा को **अपना साक्षात्कार** हो गया, अथवा उसको ईश्वर-साक्षात्कार की पूर्ण चेतना प्राप्त हो गई । दूसरे शब्दों में, स्वयं परमात्मा की अपार अवस्था का साक्षात्कार चैतन्य रूप से स्वयं परमात्मा ने किया जब ऊसने "मैं-ईश्वर-हूँ" अवस्था प्राप्त ही ।‡

दूसरे शब्दों में, परमात्मा पहले स्थूल में निर्मित होने की प्रक्रिया से होकर गुज़रता है; अर्थात्, स्थूल में, परमात्मा **अन्न भुवन** का **शरीर** बन जाता है । इसके पश्चात् वह सूक्ष्म शरीर में **प्राण भुवन** (*subtle sphere*) की **प्राणशक्ति** बन जाता है । इसके पश्चात् वह मन के प्रदेश में **मनो भुवन** (*mental sphere*) का **मन** बन जाता है । इसके परे **विज्ञान** में परमात्मा परमात्मा बन जाता है—अर्थात् वह बन जाता है जो वह था और जो वह है और जो वह सदैव रहोगा । इसलिये परमात्मा, जो मूल रूप में अचैतन्य था, अब खुद विस्मृत को भूल जाता है और अपने मूल प्रथम शब्द, "मैं कौन हूँ ?" का यथार्थ और अन्तिम उत्तर "मैं परमात्मा हूँ" पाता है । इस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म और मनो लोकों में परमात्मा वास्तव में वह बन जाता है जो वहा वास्तव में नहीं है; और **विज्ञान** में वह यथार्थ में वह बन जाता है जो वह यथार्थ में है । मूल अवस्था में परमात्मा परमात्मा था; अब परमात्मा परमात्मा बन गया है ।

क्योंकि परमात्मा, **फ़ना** के पहले क्रम में परम शून्यता की अपनी मूल अवस्था में प्रविष्ट हो जाने के बाद, **फ़ना** की दूसरी स्थिति में "मैं-परमात्मा-हूँ" की खुद अपनी अनन्त अवस्था का साक्षात्कार करता है, इसलिये यह फ़ना (अर्थात् **फ़ना-फ़िल्लाह**) का लक्ष्य बन जाता है और लक्ष्य है ।

इस लक्ष्य की प्राप्ति का अर्थ है प्रथम **ईश्वरीय-यात्रा** का अन्त, जो ज्ञान-मार्ग से शुरू हुई थी, और जो चेतना की सभी भूमिकाओं को

‡ ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त करने का आनन्द सकल सृष्टि का उद्देश्य है । वास्तविक आनन्द जो ईश्वर का अनुभव प्राप्त करने से होता है वह विश्व में सकल शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं के महत्व के बराबर होता है । तब सभी क्लेश ऐसा होता है **लैसे** वह हुआ ही नहीं था । ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त करने का आनन्द आत्म-धारित होता है, शाश्वतरूप से नवीन और अटल होता है, असीमित और अकथनीय होता है; और इसी आनन्द के लिये दुनियाँ अस्तित्व में आई है ।

long as His consciousness was immature. Maturity was only attained in the seventh plane with consciousness fully involved. This led God to realize His Self, or made God fully conscious of God-realization. In other words, God's own infinite state was consciously realized by God Himself when He attained the "I am God" state.*

In other words, God first goes through the becoming process in the gross; that is, in the gross, God becomes the **body** of *anna bhuvan* (gross sphere). Then in the subtle He becomes the **energy** of *pran bhuvan* (subtle sphere). Then in the mental He becomes the **mind** of *mano bhuvan* (mental sphere). Beyond this in vidnyan, God becomes God—that which He was and is and always will be. Therefore God, Who was originally unconscious, now becomes oblivious of oblivion itself and gets the real and final answer to His original First Word—"Who am I?"—as "I am God." Thus in the gross, subtle and mental spheres God becomes actually what He really is not; and in vidnyan He becomes actually what He really is. Originally God was God; now God has become God.

Just because God, after "passing-away-in" His original state of absolute vacuum in the first stage of fana, realizes His own infinite state of "I am God" in the second stage of fana, this fana (i.e., fana-fillah) becomes and is the goal.

Attainment of this goal means the end of the First Divine Journey, which began with gnosis and which ended, after traversing all planes of consciousness, in deification.

* [The happiness of God-realization is the Goal of all Creation. The real happiness which comes through realizing God is worth all physical and mental sufferings in the universe. Then all suffering is as if it were not. The happiness of God-realization is self-sustained, eternally fresh and unfailing, boundless and indescribable; and it is for this happiness that the world has sprung into existence.

पार करने के बाद देवत्व की प्राप्ति में समाप्त हुई थी ।

फ़ना की दूसरी स्थिति ईश्वरत्व प्राप्त करने की क्रिया है, जिसका अर्थ है कि मनुष्य परमात्मा बन गया है । मनुष्य अब परमात्मा है और परमात्मा के ज्ञान का, परमात्मा की शक्तियों का और परमात्मा के आनन्द का अनुभव करता है; किन्तु यह अब भी "पूर्णता" नहीं है, यद्यपि यह लक्ष्य है । **फ़ना** अथवा **फ़ना-फ़िल्लाह** की दूसरी स्थिति में, जो पहली ईश्वरीय यात्रा का अन्त है, मनुष्य ईश्वर में **प्रविष्ट हो गया** है और इस प्रकार परमात्मा बन गया है, किन्तु वह अब भी ईश्वर के जीवन में प्रविष्ट नहीं हुआ । मनुष्य पहली ईश्वरीय यात्रा के अनत में केवल अनुभव करता है कि वह परमात्मा है और साधारण रूप में "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था का अनुभव करता है और उसके साथ-साथ अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द के अनुभव करता है, और अनन्त आनन्द की अवस्था का रस लेता है ।

पहली ईश्वरी यात्रा के अन्त में लक्ष्य प्राप्त हो जाने के बाद, किन्तु बहुत-बहुत दुर्लभ स्थिति में, मानववत् परमात्मा, अब परमात्मा की स्थिति में, अनन्त आनन्द को छोड़ सकता है और महा-चैतन्य "मैं-ईश्वर-हूँ" अवस्था से उतर कर साधारण चेतना में आ सकता है और **बक़ा** की अवस्था का अनुभव करने लगता है, और इस प्रकार वह **दूसरी ईश्वरी यात्रा** में प्रवेश कर सकता है ।

सूफ़ी शब्द "**बक़ा**" का अर्थ होता है "अन्तर-में-निवास करना ।"[२१]

महा-चैतन्य अवस्था "मैं-परमात्मा-हूँ" की अवस्था से उतर कर साधारण चेतना में आने और परमात्मा अवस्था में "अन्तर-निवास" का अनुभव करने का अर्थ होगा स्वयं ईश्वर के ही जीवन में स्थापित होना । इस प्रकार **बक़ा** में एक मानव प्राणी के अन्तर में परमात्मा का जीवन स्थापित होता है । इसका अर्थ यह है कि **बक़ा** में मनुष्य अपने को चैतन्य रूप से परमात्मा के रूप में स्थापित करता है । यह चेतना "**सुलूकियत**" अथवा "परमात्मा के जीवन में स्थापित होने" की साधारण चेतना कहलाती है । इस अवस्था से भिन्न, **मज़ूबियत** अथवा "मैं-परामात्मा-हूँ" अवस्था में "अनन्त आनन्द में डूब जाता अथवा समा जाना है ।" तदनुसार, मानववत् परमात्मा, **बक़ा** की अवस्था का अनुभव करता हुआ सूक्ष्म शबदावली में **यथार्थ** "**सालिक**" कहलाता है । यथार्थता

The second stage of fana is deification which means man has become God. Man now is God and experiences God's knowledge, God's powers and God's bliss; but this is not "Perfection" as yet, although it is the goal. At the second stage of fana or the fana-fillah, which is the end of the first divine journey, man has entered God and thus has become God, but has not yet **entered** God's life. Man at the end of the first divine journey simply realizes that he is God and simply experiences the "I am God" state together with the experiences of infinite power, knowledge and bliss, and enjoys the state of infinite bliss.

After the Goal is attained at the end of the first divine journey, but very rarely however, God as man, now in the God state, can leave in finite bliss and come down to normal consciousness from the super-conscious "I am God" state and begin to experience the state of *baqa*, thus entering the second divine journey.

The Sufi term "*baqa*" means "abiding-in."[21]

To come down to normal consciousness from the super-conscious "I am God" state and to experience the "abiding-in" God state would mean getting established in the very life of God. Thus in *baqa* the life of God in a human being is established. This means that in *baqa* man establishes himself as God consciously. This consciousness is called "*sulukiyat*" or the normal consciousness of being "established in the life of God." Distinct from this is the *majzoobiyat* or "being drowned or absorbed by infinite bliss" in the state of "I am God." Accordingly, God as man, experiencing the state of *baqa*, is called the real "Salik" in Sufi terminology. This *baqa*

और ईश्वरत्व का यह बक़ा "बक़ा-बिल्लाह" कहलाता है । वेदान्त में उसको "**आत्म-प्रतिष्ठापना**" कहते हैं ।

सालिक को न केवल अनन्त शक्ति और अनन्त ज्ञान का अनुभव अनन्त आनन्द की अवधि में होता है, जैसाकि **मजज़ूबियत** में होता है, बल्कि अब वह **सालिक** होते हुये, चैतन्य रूप से सम्पुर्ण अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द का सञ्चय करता है जबकि वह अपनी **सूलूकियत** की साधारण चेतना के सहित परमात्मा के जीवन में स्थापित होता है ।

किन्तु अन्तिम **फ़ना-फ़िल्लाह** अवस्था की यथार्थता में अन्तिम तथा यथार्थरूप से "प्रविष्ट होने" के पहले—जो भरपूर चेतना से पूर्णतया परिपक्व होती है, और ईश्वरत्व के अन्तिम **बक़ा-बिल्लाह** में स्थापित होने के पहले—आमतौर पर **माया** के शब्दों में प्रकट किया जा सकसा है कि **फ़ना-बक़ा** के व्यक्तिगत अनुभव इतने अधिक होते हैं जितने कि सृष्टि में जीवन की विविध और असंख्य उपजातियाँ एवं अवस्थायें होती हैं ।

तथापि, **फ़ना-बक़ा** के तीन मूल प्रकारों के अन्तर्गत **फ़ना-बक़ा** के सम्पूर्ण व्यक्तिगत अनुभव शामिल होते हैं ।

तीन मूल प्रकारों में से पहला प्रकार अविकसित होता है । यह प्रकार माया के अन्तर्गत चमत्कारिक मिथ्या जीवन का **फ़ना-बक़ा** है जिसका अनुभव उन सबको होता है जो, **फ़ना** में प्रतिदिन "प्रविष्ट-रहते-हुये", हर रोज़ माया में निवास करने के लिये (*abide in*), **बक़ा** प्राप्त करते हैं । साधारण चमत्कारी मिथ्या जीवन का यह अविकसित **फ़ना-बक़ा** सामान्य गहरी निद्रा अवस्था और सामान्य जागृत अवस्था से गठित होता है ।

जैसा पहले कहा जा चुका है, उस समय भी जब मनुष्य माया के सम्पूर्ण संस्कार लिये हुये गहरी निद्रा में "चला जाता है" तब भी **ईश्वर-है** अवस्था की वही मूल ईश्वरीय परम शून्यता स्थापित हो जाती है, जहाँ कभी किसी चीज़ का अस्तित्व न था और जहाँ कभी किसी चीज़ का अस्तित्व नहीं रहता, सिवाय एक अनन्त और एकमेव सत्य सबकुछ के रूप में रहता है, जो अपनी **परमात्मा-है** अवस्था में परमात्मा की अनन्तता कहलाती है । जब माया के संस्कार, जिनको लिये हुये मनुष्य सोता है, मनुष्य को जगाते हैं, तब मनुष्य जागृत अवस्था में स्वयं

of Reality and Divinity is called "*baqa-billah*." In Vedanta it is known as "*atmapratisthapana*."

The Salik not only experiences infinite power and infinite knowledge while in infinite bliss, as in *majzoobiyat*, but, now being the Salik, He consciously accumulates all the infinite power, infinite knowledge and infinite bliss while being established in the life of God with the normal consciousness of His *sulukiyat*.

But before finally and really "passing-away-in" the reality of the ultimate fana-fillah state with full consciousness completely matured, and before getting established in the final *baqa-billah* of Divinity, generally speaking in terms of Illusion, there are as many individualized experiences of *fana-baqa* as there are varied and innumerable species and states of life in Creation.

Nevertheless, three fundamental types of *fana-baqa* include all the individualized experiences of *fana-baqa*.

The first of the three fundamental types is the rudimentary. This type is the fana-baqa of the phenomenal, false life in Illusion experienced by all who, daily "passing-away-in" fana, gain baqa to "abide-in" Illusion every day. This rudimentary fana-baqa of the ordinary phenomenal, false life is composed of the ordinary sound sleep state and the ordinary awake state.

As stated before, even when one with all of the impressions of Illusion "passes-away-in" sound sleep, the same original divine absolute vacuum of the God-Is state is established, where never anything existed and where nothing ever exists except the one infinite and only Reality as the Everything, which is called the Infinitude of God in His God-Is state. When the impressions of Illusion, with which one goes to sleep, wake one

माया में वास करता है और **माया** के अन्तर्गत दैनिक जीवन स्थापित करता है ।

तदनुसार, दैनिक जीवन में, जब मनुष्य गहरी नींद में सो जाता है, तब **फ़ना** स्थापित हो जाता है जैसे ही मनुष्य प्रतिदिन चेतना के बग़ैर मूल परमात्मा अवस्था में "प्रविष्ट होता है" । और जब मनुष्य प्रतिदिन जागता है, तब उसको माया के प्रतिदिन के जीवन में "वास करने के लिये" **बक़ा** प्राप्त होता है, जब तक कि गहरी निद्रा उसको, एकबार फिर, दैनिक **फ़ना** की अवस्था में—जो मनुष्य की परम सून्यता की मूल दिव्य अवस्था है—बलात् घसीट नहीं ले जाती ।

दूसरे प्रकार का **फ़ना-बक़ा** लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में **मार्ग** पर भूमिकाओं का होता है और वह माया में अविकसित प्रकार के साधारण चमत्कारिक मिथ्या जीवन से भिन्न होता है, यद्यपि भूमिकाओं का यह दूसरी प्रकार का **फ़ना-बक़ा** भी भ्रम है ।

प्रत्येक भूमिका में, पथ में पहली भूमिका से लेकर छठवीं भूमिका के आर पार, विकसित हुई पूर्ण चेतना क्रमशः अन्तर की ओर खिंच रही है अथवा प्रतिवर्धित हो रही है । अस्तु भूमिकाओं का **फ़ना-बक़ा** उन संस्कारों के अनुसार होता है जो प्रतिवर्धित होती हुई चेतना में भरे रहते हैं और वह संस्कारों से रञ्जित चेतना के अविकसित फ़ना-बक़ा के प्रथम प्रकार से भिन्न होता है—जो संस्कारयुक्त चेतना पूर्णतया विकसित होती है अथवा अब भी विकास की प्रक्रिया में होती है ।

फ़ना-फ़िल्लाह के लक्ष्य की दिशा में मार्ग पर प्रत्येक भूमिका को अपना **फ़ना-बक़ा** प्राप्त होता है जबकि पूर्ण विकसित हुई चेतना, भूमिकाओं में प्रगतिशील उन्नति के योग से, क्रमशः प्रतिवर्धित हो रही है ।

किन्तु आमतौर पर सूफ़ी शब्द "**फ़ना**" का अर्थ होता है—मूल परमात्मा-है अवस्था की परम शून्यता में "समा जाता" । इसलिये, **फ़ना** चाहे साधारण चमत्कारी मिथ्या जीवन के अविकसित प्रकार का है अथवा मार्ग पर भूमिकाओं के दूसरे प्रकार का है, इससे बिल्कुल कोई अन्तर नहीं पड़ता । दोनों प्रकारों में **फ़ना** ("अन्तर में समा जाता") मूलरूप से वही है, क्योंकि प्रतिदिन गम्भीर निद्रा की अवस्था में संस्कारों से भरी चेतना, दोनों सूरतों में, परम शून्यता की उसी अवस्था में समा

up, one abides in Illusion itself in the awake state and establishes everyday life in Illusion.

Accordingly, in everyday life, when one goes into sound sleep, fana is established as one daily "passes-away-in" the original God state without consciousness. And when one wakes up daily, baqa is gained to "abide-in" the everyday life of Illusion, as long as sound sleep does not overpower and drag one, once again, into the state of the daily fana which is the One's original, divine state of absolute vacuum.

The second type of fana-baqa is of the planes on the Path towards attainment of the goal and differs from the rudimentary type of the ordinary phenomenal, false life in Illusion, although this second type of fana-baqa of the planes is also illusion.

In every plane, from the first through the sixth plane on the path, the full consciousness evolved is being gradually withdrawn inwards or involved. Hence the fana-baqa of the planes is in accordance with the impressions impregnating the involving consciousness and differs from the first type of rudimentary fana-baqa of the impressioned consciousness that is fully evolved or is still in the process of evolution.

Every plane on the path towards the goal of fana-fillah has its fana-baqa while the fully evolved consciousness is being gradually involved in conjunction with progressive advancement in the planes.

But the generalized meaning of the Sufi term "fana" is the "passing-away-in" the absolute vacuum of the original God-Is state. Therefore, whether the fana is of the rudimentary type of the ordinary phenomenal, false life or of the second type of the planes on the path, it does not make any difference at all. In both types the fana ("passing-away-in") is fundamentally the same, for daily in the sound sleep state the impressioned consciousness, in both cases, "passes-away-in" the same state of absolute

जाती है, और माया के संस्कारों के प्रकारों में भरे सकल भेदों पर कोई ध्यान नहीं देती ।

यद्यपि **फ़ना विकसित होती हुई** चेतना और प्रतिवर्धित होती हुई चेतना दोनों में सदैव वही रहती है, फिर भी चेतना माया के संस्कारों के प्रकारों से भरी होती है, जबकि वह आगृत अवस्था के दौरान में माया के अन्तर्गत वास करती है, वह वास्तव में महत्वपूर्ण होती है, और वह भिन्नता पैदा करती है जबकि वह गम्भीर निद्रा अवस्था में अथवा **फ़ना** की अवस्था में समा जाती है ।

उदाहरण के लिये, किसी पशु अथवा जीवधारी का **फ़ना** गहरी निद्रा अवस्था में, अपने निजी ख़ास मायावी संस्कारों को लिये हुये, परम शून्यता में "प्रविष्ट होता हुआ", एक मानव प्राणी के **फ़ना** से बिल्कुल भिन्न होता है जो माया के अपने निजी ख़ास संस्कारों के साथ परम शुन्य की गहरी निद्रा अवस्था में होता है । इसी प्रकार से, एक साधारण मानव प्राणी के **मायावी** संस्कार एक मानव प्राणी के मायवी संस्कारों से, मार्ग की भूमिकाओं में, बिल्कुल भिन्न होंगे ।

सब दशाओं में, यद्यपि **फ़ना** के विभिन्न प्रकार सदैव **फ़ना** के रूप में बने रहते हैं, फिर भी विभिन्न संस्कार जो जागृत अवस्था के **बक़ा** में व्यक्तिगत चेतना में भरे होते हैं, **सृष्टि** में जीवन की प्रत्येक और सब उप-जातियों के एवं अवस्थाओं के व्यक्तिगत हुये **फ़ना** को जन्म देते हैं ।

उसके विपरीत, जब व्यक्तिगत हुये जीवन का **बक़ा, फ़ना** की गहरी निद्रा अवस्था के बाद, जागृत अवस्था में प्राप्त हो जाता है, तब **बक़ा,** जिसका अर्थ सूफ़ी शब्दों में "अन्तर-में-निवास" करना है, माया में पतिदिन व्यक्तगत हुये मायावी जीवन को स्थापित करता है और यह स्थापना वह उन प्रबल संस्कारों के अनुसार करता है जिनके साथ व्यक्तिगत हुआ जीवन "गुज़र गया" था—गम्भीर निद्रा अवस्था में, उसके व्यक्तिगत हुये **फ़ना** की अवस्था में **माया** के विविध संस्कारों की विविधता से गुज़र गया था । इस रूप में, प्रत्येक व्यक्तिगत हुआ **बक़ा** पत्येक अन्य **बक़ा** से पूर्णतया भिन्न होता है, क्योंकि जब यह व्याक्तिगत हुआ **बक़ा** जागृत अवस्था में प्राप्त होता है, तो प्रत्येक व्यक्तिगत हुये जीवन के संस्कारों से भरी चेतना के संस्कार ही माया के व्यक्तिगत हुये जीवन को माया में स्थापित करने के ज़िम्मेदार होते हैं ।

(१५७)

vacuum, regardless of all the differences in the types of impressions of Illusion.

Although the fana is always the same in both the **evolving** consciousness and the **involving** consciousness, yet it is the type of impressions of Illusion with which the consciousness is impregnated, while abiding in Illusion during the awake state, that really matters, and that does create the differentiation when "passing-away-in" the sound sleep state or in the state of fana.

For example, the fana of an animal or a creature in the sound sleep state "passing-away-in" the absolute vacuum, with its own particular impressions of Illusion, differs completely from the fana of a human being in the sound sleep state "passing-away-in" the absolute vacuum with his own particular impressions of Illusion. Similarly, the impressions of Illusion of an ordinary human being will be quite different from the impressions of Illusion of a human being in the planes of the path.

In all cases, though the different types of fana remain always as fana, yet the different impressions impregnating individual consciousness in the baqa of the awake state give rise to the individualized fana of each and all species and states of life in Creation.

In contrast with that, when the baqa of the individualized life is gained in the awake state after the sound sleep state of fana, the baqa, which in Sufi terms means "abiding-in," establishes in Illusion the everyday individualized life of Illusion in accordance with the predominant impressions with which the individualized life had "passed away" from the variety of impressions of Illusion in the state of its individualized fana, in the sound sleep state. As such, every individualized baqa completely differs from every other baqa, because when this individualized baqa is gained in the awake state, the impressions of the impressioned consciousness of every individualized life are solely responsible for establishing in Illusion the individualized life of Illusion.

अस्तु, इसी प्रकार से ही नियमित, अटल अनुक्रम में माया के **फ़ना** के पीछे, गहरी निद्रा अवस्था में, माया का **बक़ा** जागृत अवस्था में अनिवार्यरूप से आता है, जो अपनी पारी में अनिवार्य **फ़ना** में लुप्त हो जाता है—केवल बार-बार बदलने और पुनः स्थापित करने के लिये, दिन प्रतिदिन, वर्ष के बाद वर्ष, जीवन के बाद जीवन तक—इस पर कोई ध्यान न देकर कि यह **फ़ना** अथवा **बक़ा** साधारण चमत्कारिक मिथ्या जीवन का है या मार्ग पर भूमिकाओं का है । यह कभी स्थिर नहीं होता जब तक कि यह **माया** का होता है ।

जब तक व्यक्तिगत हुआ जीवन सत्यता के **फ़ना-फ़िल्लाह** में यथार्थ एवं अन्तिमरूप से नहीं "समा जाता" और ईश्वरत्व के स्थायी **बक़ा-बिल्लाह** में स्थापित नहीं हो जाता, तब तक यह स्पष्ट है कि माया के **फ़ना-बक़ा** के असंख्य और विविध प्रकारों के वर्ग अनिवार्यरूप से होंगे और वे बलात् क़ायम रहने वाले संस्कारों के अनुसार होंगे जो अटलरूप से **बक़ा** के अन्तर्गत व्यक्तिगत हुये जीवन की विकसित और प्रतिवर्धित होती हुई चेतना पर संस्कार पैदा करते हैं ।

प्रत्येक भूमिका में भी, प्रतिवर्धित होती हुई चेतना की पहली भूमिका से लेकर छठवीं बूमिका तक, प्रत्येक ६ भूमिकाओं के लिये एक ख़ास प्रकार का **बक़ा**, प्रत्येक भूमिका की माया के ख़ास संस्कारों के अनुसार, होता अनिवार्य है ।

जब किसी मनुष्य को पहली भूमिका पर स्थित कहा जाता है तो उसकी पूर्णतया विकसित हुई चेतना प्रतिवर्धित होता शुरू हो रही है, और उसकी पूर्ण चेतना सूक्ष्म लोक की पहली भूमिका पर केन्द्रित बनी रहती है, क्योंकि पहली भुमिका के संस्कार ऊसकी पतिवर्धित होती हुई चेतना में दृढ़तापूर्वक भरते हुये उसको पहली भूमिका में रहने के लिये विवश करते हैं और उसको माया की इस भूमिका का अनुभव करने के लिये अग्रसर करते हैं । यद्यपि पहली भूमिका पर स्थित मनुष्य का स्थूल शरीर बिल्कुल उस आदमी के स्थूल शरीर के समान होता है जो पहली भूमिका पर स्थित **नहीं** है, और यद्यपि पहली भूमिका पर स्थित मनुष्य भी, बिल्कुल एक साधारण मनुष्य की तरह, जो प्रतिदिन के प्रपंचीय, मिथ्या जीवन का होता है, सोता है और जागता है, फिर भी, क्योंकि उसकी प्रतिवर्धित होती हुई चेतना पहली भूमिका पर सीधेसीध केन्द्रित

Hence it is that in regular, unfailing succession the fana of Illusion in the sound sleep state is invariably followed by the baqa of Illusion in the awake state, which in turn gets lost in the inevitable fana only to alternate and reestablish again and again—day after day, year after year, and life after life—irrespective of whether this fana or baqa is of the ordinary, phenomenal false life or is of the planes on the Path. It is never stable as long as it is of the Illusion.

As long as individualized life does not really and finally "pass-away-in" the fana-fillah of Reality and become established in the abiding baqa-billah of Divinity, it is obvious that there are bound to be innumerable and diverse types and groups of fana-baqa of Illusion in accordance with the persisting impressions that consistently impress the evolving and the involving consciousness of individualized life in baqa.

In every plane also, from the first through the sixth plane of involving consciousness, there is bound to be a particular type of baqa for each of the six planes, in accordance with the particular impressions of the Illusion of each plane.

When a man is said to be on the first plane his fully evolved consciousness is beginning to involve, and his full consciousness remains focussed on the first plane of the subtle sphere, because the impressions of the first plane consistently impregnating his involving consciousness make him abide in the first plane and lead him to experience the illusion of this plane. Even though the gross body of the man on the first plane is exactly like the gross body of a man not on the first plane, and though the man on the first plane also sleeps and wakes up exactly like an ordinary man of the everyday phenomenal, false life, yet, because his involving consciousness

होती है, इसलिये वह पहली भूमिका के **फ़ना** की गम्भीर निद्रा अवस्था में "प्रविष्ट हो जाता है" और पहली भूमिका की माया के संस्कारों को साथ लिये रहता है, और पहली भूमिका में "निवास करने" के लिये, और उस भूमिका के संस्कारों का अनुभव करने के लिये, पहली भूमिका के **बक़ा** में स्थापित होने के निमित्त रोज़-रोज़ जागता है ।

उस आदमी के **फ़ना-बक़ा** में जो मार्ग की बूमिकाओं में प्रवेश करना है, और उस मनुष्य के **फ़ना-बक़ा** में जो मार्ग की भूमिकाओं पर नहीं है, यह अन्तर है कि प्रथम फ़ना-बक़ा की समानता उस मनुष्य से की जा सकती है जो, अनेक वर्षों से एक ख़ास स्थान में रहने के पश्चात् अपने सब पिछले सम्बन्ध अलग कर लेता है और एक विश्व यात्रा पर चल पड़ता है, और एक जगह से दूसरी जगह की यात्रा करता है, तथा एक के बाद दूसरे महाद्वीपों को पार करता है । यद्यपि यह मनुष्य रोज़ सोवेगा, और दूसरे दिन जागेगा, जैसा वह अपनी पहली दशा में प्रतिदिन सोने और जागने का आदी था, फिर भी अब वह अपनी विश्व यात्रा के दौर में गहरी निद्रा में "प्रविष्ट" होगा और रोज़ जागेगा, और उसका यह जागरण स्पष्टरूप से उसके पूर्णतया परिवर्तित परिसरों एवं नवीन अनुभवों[२२] के प्रबल संस्कारों से युक्त होगा ।

संक्षेप में, जो मनुष्य प्रतिवर्धित होती चेतना की पहली भूमिका में प्रवेश करता है उसको अन्ततः पहली भूमिका का भरपूर अनुभव प्राप्त होता है । यह मनुष्य, जो पहली भूमिका में स्थापित हो रहा है, अपना जीवन इस "अपनी निजी दुनियाँ में" स्थापित करता है और इसलिये वह इस भूमिका में सोता है और इस भूमिका में रोज़ जागता भी है । ठीक इसी प्रकार से, समस्त व्यक्तिगत हुई चेतना अन्य सब भूमिकाओं में उन ख़ास भूमिकाओं के **फ़ना** में "प्रविष्ट होती" है, और ऐसी भूमिकाओं में जागृत होने के लिये तथा इन ख़ास भूमिकाओं में दैनिक जीवन के **बक़ा** को स्थापित करने के लिये, जागती है ।

फिर भी, पथ की प्रत्येक भूमिका का **फ़ना-बक़ा** मूल रूप से उसी प्रकार का होता है, क्योंकि वह केवल चेतना से सम्बन्ध रखता है जो क्रमशः **प्रतिवर्धित हो रही है** और उसका सम्बन्ध न तो विकसित होती हुई चेतना के **फ़ना-बक़ा** से होता है और न विकसित हुई चेतना के **फ़ना-बक़ा** से होता है । एक भूमिका के **फ़ना-बक़ा** का भेद दूसरी भूमिका के **फ़ना-बक़ा** से करने के लिये जो भी अन्तर है वह केवल ऐसा होगा

is directly focussed on the first plane, he "passes-away-in" the sound sleep state of the first plane fana with the impressions of the illusion of the first plane, and wakes up daily to get established in the first plane baqa to "abide-in" the first plane, and to experience the impressions of that plane.

The difference between the *fana-baqa* of the man who enters the planes of the path and of the man who is not on the planes of the path is that the former can be likened to a man who, after living for many years in a certain place, severs all of his past connections and sets out on a world tour, travelling from one place to another, crossing continents one after the other. Although this man would be daily going to sleep, and awakening the next day, as he was accustomed to sleeping and awakening every day in his first habitat, yet now in the course of his world tour he would be "passing-away-in" sound sleep and would be daily waking up evidently with the predominant impressions of his completely changed environments and novel experiences.[22]

In short, he who enters the first plane of involving consciousness eventually experiences the first plane fully. This man, who is getting established in the first plane, establishes his living in this "world of his own" and therefore he sleeps in this plane and wakes up every day in this plane as well. In exactly the same way, all individualized consciousness in all other planes "passes-away-in" the fana of those particular planes to wake up in such planes and establish the everyday life baqa in these particular planes.

Nevertheless, the fana-baqa of every plane of the path is fundamentally of the same type, because it pertains only to consciousness that is **involving** gradually and not to that of the evolving nor of the evolved consciousness. Whatever difference there is to differentiate the fana-baqa of one plane from another plane would only be such as would exist between two men living on two different continents of the same earth

जैसा दो पुरुषों के बीच में होगा जो उसी दुनियाँ के दो विभिन्न महाद्वीपों में रह रहे हैं, और उस दुनियाँ के उस विशिष्ट भाग के, जिस पर उनमें से प्रत्येक रहता है, और खुद अपने व्यक्तिगत संस्कार लिये रहता है । अमरीका का आदमी अपने व्यक्तिगत हुये जीवन के अपने निजी संस्कार और सम्बन्धित अनुभव रखता है; यही बात एशिया के मनुष्य के विषय में सही है जिसको अपने महाद्वीप से सम्बन्धित, जो अमरीका से बिल्कुल भिन्न है, अपने निजी संस्कार और अनुभव प्राप्त होते हैं ।

किन्तु यह मूलभूत तथ्य स्थिर बना रहता है कि वे दोनों पुरुष उसी पृथ्वी पर रहते हैं । इन दोनों पुरुषों के संस्कारों और उनके फलस्वरूप हुये अनुभवों के बीच भारी अन्तर होने के बावजूद, फिर भी जब दोनों सो जाते हैं, तो वे दोनों गहरी निद्रा में "समा जाते" हैं । और, चाहे उनमें से एक मखमल के बिछौने पर सता हो और दूसरा घास के बिछौने पर सोता हो, यह बिल्कुल सारहीन बात है जब वे दोनों उसी गहरी निद्रा अवस्था का आनन्द बराबर ले सकते हैं । इसी रीति से, जब वे दोनों जागते हैं तो वे दोनों उसी पृथ्वी पर माया के अन्तर्गत अपने व्यक्तिगत जीवन व्यतीत कर सकते हैं चाहे उनके संस्कारों और विभिन्न महाद्वीपों पर रहने से पैदा हुये सम्बन्धित अनुभवों में कुछ भी अन्तर रहा हो । इस प्रकार पथ पर सब भूमिकाओं का **फ़ना-बक़ा** किसी भी रीति से मूलरूप से भिन्न नहीं है, यद्यपि मार्ग पर प्रत्येक भूमिका अपना निजी **फ़ना और बक़ा** रखती है जब भूमिकाओं पर व्यक्तिगत हुआ जीवन विचाराधीन होता है ।

ठीक जिस प्रकार **फ़ना** और **बक़ा** के प्रथम अविकसित प्रकार में कुत्तों, घीड़ों, ऊँटों, हाथियों के और समस्त जीवधारियों एवं मानव प्राणियों के, जो स्थूल जगत में माया के प्रपंच का मिथ्या जीवन व्यतीत करने हैं, समस्त व्यक्तिगत हुये **फ़नाओं** और **बक़ाओं** का समाचेश होता है, उसी प्रकार पथ पर भूमिकाओं के दूसरी प्रकार के **फ़ना** और **बक़ा** में भी, मायावी सूक्ष्म एवं कारण जगतों की पहली भूमिका से लेकर छठवीं भूमिका के आर-पार तक, प्रत्येक और सब भूमिका के व्यक्तिगत हुये **फ़ना-बक़ाओं** का भी समावेश होता है ।

जब कोई आदमी किसी ख़ास भूमिका में, जिसकी चेतना क्रमशः प्रतिवर्धित हो रही है, चेतना के प्रलोभनकारी अनुभवों से बिल्कुल चौंधिया जाता है, तब उस आदमी को इस ख़ास भूमिका का

and having their own individual impressions of that particular part of the earth on which each lives. The man in America has his own impressions and relative experiences of his individualized life; the same is true of the man in Asia who has his own impressions and experiences related to his continent which is quite different from America.

But the fundamental fact remains that both men live on the same earth. Despite the vast difference between the impressions and the consequent experiences of these two men, yet when both sleep, they both "pass-away-in" sound sleep. And, whether one sleeps on a bed of velvet and the other on a bed of hay, it is quite immaterial when both can equally enjoy the same sound sleep state. In like manner, when both wake up they both can live their individual lives in illusion on the same earth, irrespective of the difference in their impressions and their consequent relative experiences due to living on different continents. Thus the fana-baqas of all the planes on the path are not in any way different fundamentally, although each and every plane on the path has its own fana and baqa when individualized life on the planes is under consideration.

Just as the rudimentary first type of fana and baqa includes all the individualized fanas and baqas of dogs, horses, camels, elephants, of all creatures and human beings that live the phenomenal, false life of illusion in the gross world, so also the second type of fana and baqa of the planes on the path includes all the individualized fana-baqas of each and all on every plane from the first through the sixth planes of the illusory subtle and mental worlds.

When a man in a particular plane, with his consciousness gradually involving, becomes completely dazed by the enchanting experiences of the

मजज़ूब कहा जाता है ।* ऐसा **मजज़ूब** भूमिका की माया के संस्कारों से, जो निरन्तर दृढ़तापूर्वक उसकी चेतना में भरे रहते हैं, बिल्कुल लीन और पराभूत होता है । जागृत अवस्था में भी भूमिका का यह **मजज़ूब** ऐसा व्यवहार करता है जैसे वह बिल्कुल नशे में चूर हो और भूमिका की माया में निमग्न हो । ऐसा मनुष्य आमतौर पर "मस्त" कहलाता है, विसका अर्थ यह होता है कि वह आदमी "परमात्मा के नशे में चूर है" ।

दूसरी ओर, यदि कोई आदमी किसी ख़ास भूमिका के मनमोहक अनुभवों में निमग्न और पराभूत नहीं होता, किन्तु वह लगातार अपना सन्तुलन बनाये रखता है जिस समय उसकी प्रतिवुर्धत होती हुई चेतना उस भूमिका की माया के संस्कारों से दृढ़तापूर्वक प्रभावित होती है, तब वह उस ख़ास भूमिका का "**सालिक**" कहा जाता है ।‡ ऐसा **सालिक,** सकल बाहरी दिखाओं में, दुनियाँ के बहुत साधारण मनुष्यों की तरह आचरण करता है यद्यपि उसकी चेतना प्रगति के साथ प्रतिवर्धित हो रही है और स्थूल जगत से बिल्कुल विच्छिन्न हो गई है, जहाँ तक उसकी चेतना का, जो ख़ास भूमिका पर पूर्णतया केन्द्रित है, सम्बन्ध है । प्रत्येक भूमिका की **सुलूवियत** और **मस्ती** भिन्न-भिन्न होती है ।

जो बी हो, कुछ ऐसी ख़ास दशायें हैं जबकि मनुष्य एक ख़ास भूमिका के अनुभवों के प्रलोभन में कभी-कभी बिल्कुल मग्न और लीन हो जाता है और एक **मजज़ूब** की तरह आचरण करता है, और अन्य अवसरों पर अपना सन्तुलन पुनः प्राप्त कर लेता है और उस भूमिका के सामान्य साधारण **सालिक** की तरह आचरण करता है । भूमिका पर स्थित ऐसा मनुष्य भूमिका का **मजज़ूब-सालिक** कहा जाता है यदि उसका प्रमुख आचरण एक **मजज़ूब** का होता है, और भूमिका के एक **सालिक-मजज़ूब** का होता है यदि उसका प्रमुख व्यवहार **सालिक** का होता है । **माया** के अन्तर्गत ऐसी अवस्था की तुलना सत्यता **में दैवी सन्धि पर तुर्यावस्था** से की जा सकती है ।

फ़ना-बक़ा का तीसरा प्रकार चेतना के अन्तिम प्रतिवर्धन की

* भूमिकाओं के 'मजज़ूब' और 'सालिक' को भ्रमवश सातवीं भूमिका का 'असली मजज़ूब' न समझना चाहिये जो 'मजज़ूब-ए-कामिल' (पूर्ण मजज़ूब) कहलाता है, और न सातवीं भूमिका का 'असली सालिक' समझना चाहिये ।

‡ (देखिये इसी पृष्ठ के नीचे दो गई टिप्पणी । सम्पाधक)

plane, the man is said to be a majzoob of this particular plane.* Such a majzoob is completely absorbed and overpowered by the impressions of Illusion of the plane which consistently impregnate his consciousness. Even in the awake state this majzoob of the plane behaves as if he were completely intoxicated by and drowned in the enchantment of the plane. Such a man is commonly known as a "mast," meaning thereby that the man is "God-intoxicated."

On the other hand, if a man in a particular plane does not get absorbed in and overpowered by the fascinating experiences of the plane, but continues to maintain his poise throughout while his involving consciousness is persistently impressed by the impression s of Illusion of that plane, he is then said to be a salik of the particular plane.† Such a salik, to all external appearances, behaves like a very normal man of the world even though his consciousness is progressively involving and is completely dissociated from the gross world as far as his consciousness, fully focussed on the particular plane, is concerned. The *sulukiyat* and *masti* of each plane are different.

There are, however, certain cases when a man in a particular plane is sometimes completely drowned in and absorbed by the fascination of the experiences of the plane and behaves like a majzoob, and at other times he regains his poise and behaves like an ordinary, normal salik of the plane. Such a man on the plane is said to be a majzoob-salik of the plane if the predominant behavior is that of a majzoob, and a salik-majzoob of the plane if the predominant behaviour is that of a salik. Such a state in Illusion may be compared with the *turiya avastha* at the Divine Junction in Reality.

The third type of fana-baqa is of the seventh plane of the final involution of consciousness and is the real fana-fillah of the Reality and

* The majzoob and salik of the planes should not be confused with the real Majzoob of the seventh plane known as "Majzoob-e-Kamil" (perfect Majzoob), nor the real Salik of the seventh plane.

† [See footnote above. Ed.]

सातवीं भूमिका का होता है और वह सत्यता का वास्तविक **फ़ना-फ़िल्लाह** होता है तथा **ईश्वरत्व** का असली **बक़ा-बिल्लाह** होता है । जब व्यक्तिगत हुये जीवन की संस्कार-रंजित चेतना बिल्कुल और अन्तिम रूप से **माया** के समस्त संस्कारों से मुक्त हो जाती है, और जब यह बोझ से मूक्त हुआ अथवा संस्काररहित हुआ व्यक्तिगत हुआ **आत्म** (*Self*) चैतन्यरूप से मूल, दैवी परम शून्यता में, फ़ना-फ़िल्लाह अथवा "**मों-परमात्मा-हूँ**" अवस्था प्राप्त करने के लिये "अन्तर-प्रविष्ट" हो जाता है, तब अन्ततः लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है । यह **असली मजज़ूबियत**[२३] की अवस्था है ।

समस्त विभिन्न व्यक्रिगत हुई उपजातियों और मायावी जीवन की अवस्थाओं तथा दिव्य जीवन के अन्तिम एवं वास्तविक **फ़ना** के बीच, एकमेव किन्तु अनन्त अन्तर यह है कि पहली दशा में चेतना **बिल्कुल नहीं** होती जबकि बाद की दशा में पूर्ण चेतना की प्रबलता रहती है ।

फ़ना-फ़िल्लाह की अवस्था के बाद, **बक़ा-बिल्लाह** की अवस्था स्थापित होती है और वह अवस्था कुछ व्यक्तिगत हुई आत्माओं के द्वारा पृथवी पर "**नर-नारायणवत्**" परमात्मा का जीवन व्यवहार में लाने के लिये स्थापित होती है । ऐसा "**नर-नारायण**" एक ही समय जीवन की सभी अवस्थाओं में और सभी भूमिकाओं में, **माया** के अन्तर्गत मनूष्य का जीवन—**माया** को **माया** के रूप में जानते हुये—और सत्यता में ईश्वर का जीवन आचरित करता है । यह यथार्थ **सुलुकियत** की अवस्था है ।

फ़ना-फ़िल्लाह की अवस्था प्राप्त करने के बाद और **बक़ा-बिल्लाह** की अवस्था स्थापित करने के पहले, **फ़ना-फ़िल्लाह** और **बक़ा-बिल्लाह** के बीच दैवी सन्धि के स्थल पर एक **तुर्या अवस्था** की अवस्था भी होती है । इस अवस्था में कभी-कभी **फ़ना-फ़िल्लाह** की असली **मजज़ूबियत** का अनुभव होता है और कभी-कभी **बक़ा-बिल्लाह** की असली **सुलूकियत** का अनुभव होता है । यह **असली मजज़ूब-सालिक** अथवा **सालिक-मजज़ूब** की अवस्था परिस्थितियों के अनुसार हो सकती है ।

मिथ्या सीमित "**मैं**" की चेतना, जो **फ़ना** के पहले वहाँ विद्यमान थी, प्रतिवर्धन की प्रक्रिया के द्वारा परिपक्व हुई, और सीमित मिथ्या "**मैं**" का स्थान **फ़ना-फ़िल्लाह** में असली असीमित "**मैं**" ने ले लिया । **बक़ा-बिल्लाह** में अब यह परिपक्व चेतना एकबार फिर से केन्द्रित होती

the real baqa-billah of the Divinity. When the impressioned consciousness of individualized life is totally and finally relieved of all impressions of the Illusion, and when this unburdened or impressionless individualized Self consciously "passes-away-in" the original, divine absolute vacuum to gain the fana-fillah or the "I am God" state, the goal is finally attained. This is the state of **real** *majzoobiyat*.[23]

The only but infinite difference between the fanas of all the different individualized species and states of illusory life and the final and real fana of the divine life is that in the former the consciousness is **nil** while in the latter full consciousness prevails.

After the state of *fana-fillah*, the state of *baqa-billah* is established by some individualized selves to live the life of God as "Man-God" on the earth. Such a "Man-God" lives at one and the same time in all states of life and in all planes, the life of man in Illusion—knowing Illusion as Illusion—and of God in Reality. This is the state of **real** *sulukiyat*.

After attaining the state of *fana-fillah* and before establishing the state of *baqa-billah*, there is also a state of *turiya avastha* at the Divine Junction between *fana-fillah* and *baqa-billah*. In this state there is sometimes the experience of real *majzoobiyat* of the *fana-fillah* and sometimes the experience of real *sulukiyat* of the *baqa-billah*. This is the state of the **real** *Majzoob-Salik* or *Salik-Majzoob* as the case may be.

The consciousness of the false limited "I," which was there before fana, matured through the process of involution, and the limited false "I" was replaced by the real unlimited "I" in *fana-fillah*. In **baqa-billah** this matured consciousness is now focussed once again and is fixed on the "I"

है और "**मैं**" के ऊपर असली असीमित "**मैं**" के रूप में, मन के ऊपर **विराट मन** के रूप में, शक्ति के ऊपर **अपरिमित प्राणशक्ति** के रूप में और शरीर के ऊपर **व्यापक शरीर** के रूप में, जो **महाकारण-शरीर** कहलाता है, दृढ़ता से लगी रहती है । इस स्थल पर एक महत्वपूर्ण बात को ध्यान में रखना चाहिये :— कि **बक़ा-बिल्लाह** की अवस्था में एक ही समय साथ-साथ वही चेतना सीमित अहं, मन, प्राणशक्ति और शरीर पर भी दृढ़तापूर्वक केन्द्रित एवं स्थिर रहती है, इसलिये सालिक चैतन्यरूप से मिथ्या को मिथ्या के साथ मिथ्यावत् अनुभव करता है, और **यथार्थता** को **यथार्थ** के साथ **यथार्थता** के रूप में अनुभव करता है ।

इसके फलस्वरूप, **बक़ा-बिल्लाह** की परमात्मा अवस्था में, वही चेतना **एक ही समय** "मैं-परमात्मा-हूँ" और "मैं-मानव-हूँ" के द्वैध अनुभवों का अनुभव करती है । इस द्वैध अनुभव के साथ-साथ वही चेतना सहजरूप से, लगातार परमात्मा के अपार ज्ञान, शक्ति और आनन्द के अनुभव भी, मानवजाति की निर्बलताओं और यातनाओं के अनुभवों के साथ-साथ, करती है ।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि **बक़ा-बिल्लाह** की परमात्मा अवस्था में, परमात्मा, एक साधारण मनुष्य के रूप में, अपनेआपको अपने दैवी जीवन में स्थापित करता है अथवा, मनुष्य परमात्मा के जीवन में "वास-करता है" ।

संक्षेप में, **बक़ा-बिल्लाह** परमात्मा की वह अवस्था है जहाँ "वास करने" अथवा परमात्मा "मैं स्थापित होने" का अनुभव उन लोगों को होता है जिन्हें "**सालिक**" अथवा "**जीवन मुक्त**"[२४, २५] कहा जाता है । सालिक निरन्तर और चैतन्यरूप से एक ही समय "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था और "मैं-मनुष्य-हूँ" अवस्था का द्वैध अनुभव करता है, और अनन्त ज्ञान, शक्ति एवं आनन्द, संचित करता है और उसी के साथ-साथ मानवी कमज़ोरियों और यातनाओं का अनुभव करता है, यह जानते हुये कि उनका मिथ्यापन सीमित शून्य की अभिव्यक्ति पर आधारित है जो **सबकुछ** और अनन्त होने की खुद अपनी अवस्था प्रगट करता है ।

बक़ा-बिल्लाह में, मनुष्य-में-परमात्मा का जीवन स्थापित हो जाने से, मनुष्य ईश्वर के रूप में **सहज-समाधि** का अनुभव करता है । इसका यह अर्थ है कि मनुष्य परमात्मा के रूप में, किंचित्मात्र प्रयास के बग़ैर,

as the real unlimited "I," on the mind as Universal Mind, on energy as Unbounded Energy and on the body as the Universal Body called the "*mahakarana sharir*." An important fact must be noted here: that in the state of *baqa-billah* **simultaneously** the same consciousness is also focussed and xed on the limited "I," mind, energy and body, wherefore the *Salik* consciously experiences the false as falsity with the false, and the Real as Reality with the Real.

Consequently, in God's state of *baqa-billah,* the same consciousness **simultaneously** experiences the dual experiences of "I am God" and "I am human." Along with this dual experience the same consciousness spontaneously also experiences, without break, the infinite knowledge, power and bliss of God along with the experiences of the weaknesses and sufferings of humanity.

It follows that in God's state of *baqa-billah,* God, in the form of an ordinary human being, establishes Himself in His divine life or, man "abides-in" the life of God.

In short, *baqa-billah* is that state of God where "abiding-in" or getting established in God is experienced by those who are defined as *"Saliks"* or *"Jivanmuktas."*[24, 25] The Salik continually and consciously experiences simultaneously the dual experience of the "I am God" state and "I am human" state, and accumulates infinite knowledge, power and bliss, simultaneously experiencing human weaknesses and sufferings, knowing their falsity to be based on the manifestation of the finite Nothing that manifests out of His own state of being Everything and infinite.

In *baqa-billah,* the life of God-in-human being established, man as God experiences the *sahaj samadhi*. This means that man as God

एकसाथ सतत् और स्वतः परमात्मा और मनुष्य का द्वैध अनुभव करता है । यह पूर्णता की अवस्था है ।

पूर्णता (*Perfection*) में आमतौर पर चरम शिखर की, अथवा हद से ज़्यादा प्रकार की, सिद्धि का, भाव भरा होता है, और इस रूप में पूर्णता और अधिक पूर्ण नहीं हो सकती । किन्तु अब "पूर्णता" शब्द का प्रयोग देवत्व के शब्द में किया जाता है, तो **बक़ा-बिल्लाह** की **सुलूकियत** की अवस्था में तीन प्रकार की पूर्णता होती है :—

पहला प्रकार "**कामिल**"—**पूर्ण पुरुष**—कहलाता है ।

दूसरा प्रकार "**अकमल**"—अत्यन्त पूर्ण पुरुष—कहलाता है ।

तीसरी प्रकार "**मुकम्मिल**"—परम पूर्ण पुरुष—कहलाता है ।

शाश्वत सत्य के उनके नित्य और चैतन्य अनुभव में बिल्कुल कोई अन्तर नहीं होता, किन्तु तुलना के जिन अन्शों का लगाव पूर्णता से होता है वह "पूर्णता" के **कार्य व्यापार** के भेद के कारण होता है । इसलिये, कार्य व्यापार में भेद होने के कारण, हर प्रकार की **पूर्णता** में विभिन्न गुणों का लगाव होता है ।

कामिल केवल **एक** मनुष्य को सहजतया ईश्वर-साक्षात्कार का चैतन्य अनुभव प्रदान कर सकता है और केवल उसी आदमी को यथार्थता के सतत् अनुभव में अपने समान बना सकता है । **अकमल** अनुभव में **अनेक** पुरुषों को अपनी तरह बना सकता है; जबकि **मुकम्मिल** न केवल **कितने ही जनों** को, यहाँ तक कि सृष्टि में सब लोगों को,‡ शाशवत सत्य के अनुभव में अपनी तरह बना सकता है, किन्तु वह सहजरूप से कितने ही लोगों को उनके भौतिक शरीरों को पुनर्जन्म दे सकता है और उनके शरीर को स्थूल जगत में खुद अपने भौतिक शरीर के समान आलोकित

‡ एक 'मुकम्मिल' अपनी इच्छानुसार सारी 'सृष्टि' को ईश्वर-साक्षात्कार प्रदान कर सकता है । सारी सृष्टि का अर्थ है समस्त मानव प्राणी एवं हर चीज़ जो सृष्टि में धूल के एक कण से लेकर एक हाथी तक है । किन्तु एक 'मुकम्मिल' ऐसा करने की कभी इच्छा न करेगा क्योंकि एसी इच्छा के पूरा करने का मतलब होगा ऐहिक माया (सारी सृष्टि) का अन्त । एहिक माया का अन्त करना ईश्वरीय लीला का अन्त करना होगा । और ईश्वरीय लीला का अन्त करना स्वयं परमात्मा की प्रकृति अथवा उसकी मूल अवस्था *II* के लक्षणों के विपरीत होगा जब वह अपारतया चैतन्य और साथ-साथ अपारतया अचैतन्य बना रहता है ।

simultaneously, without the least effort, has continually and automatically the dual experience of God and of man. This is the state of Perfection.

Perfection generally carries with it the sense of the highest pitch of, or the extreme type of, accomplishment, and Perfection as such cannot become more perfect. But when the term "Perfection" is used in terms of Divinity, there are three types of Perfection in the state of *sulukiyat* of *baqa-billah:*

The first type is known as *"Kamil"*—The Perfect One.

The second type is known as *"Akmal"* —The Most Perfect One.

The third type is known as *"Mukammil"*—The Supremely Perfect One.

There is absolutely no difference whatsoever in their continual and conscious experience of the eternal Reality, but the degrees of comparison that are attached to the perfection are due to the difference in the function of the **offices** of "Perfection." Hence, due to differences in function, different attributes are attached to each type of Perfection.

The *Kamil* can spontaneously give conscious experience of the realization of God to only one man and make only that man like unto him in the eternal experience of the Reality. The *Akmal* can make **many** like unto him in experience; whereas the *Mukammil* can make not only **any number,** even all in the Creation,* like unto him in the experience of the eternal Reality, but he can also spontaneously bestow on **any number** the transfiguration of their physical bodies and even make their physique **appear and live and experience** like unto his own physical body in the

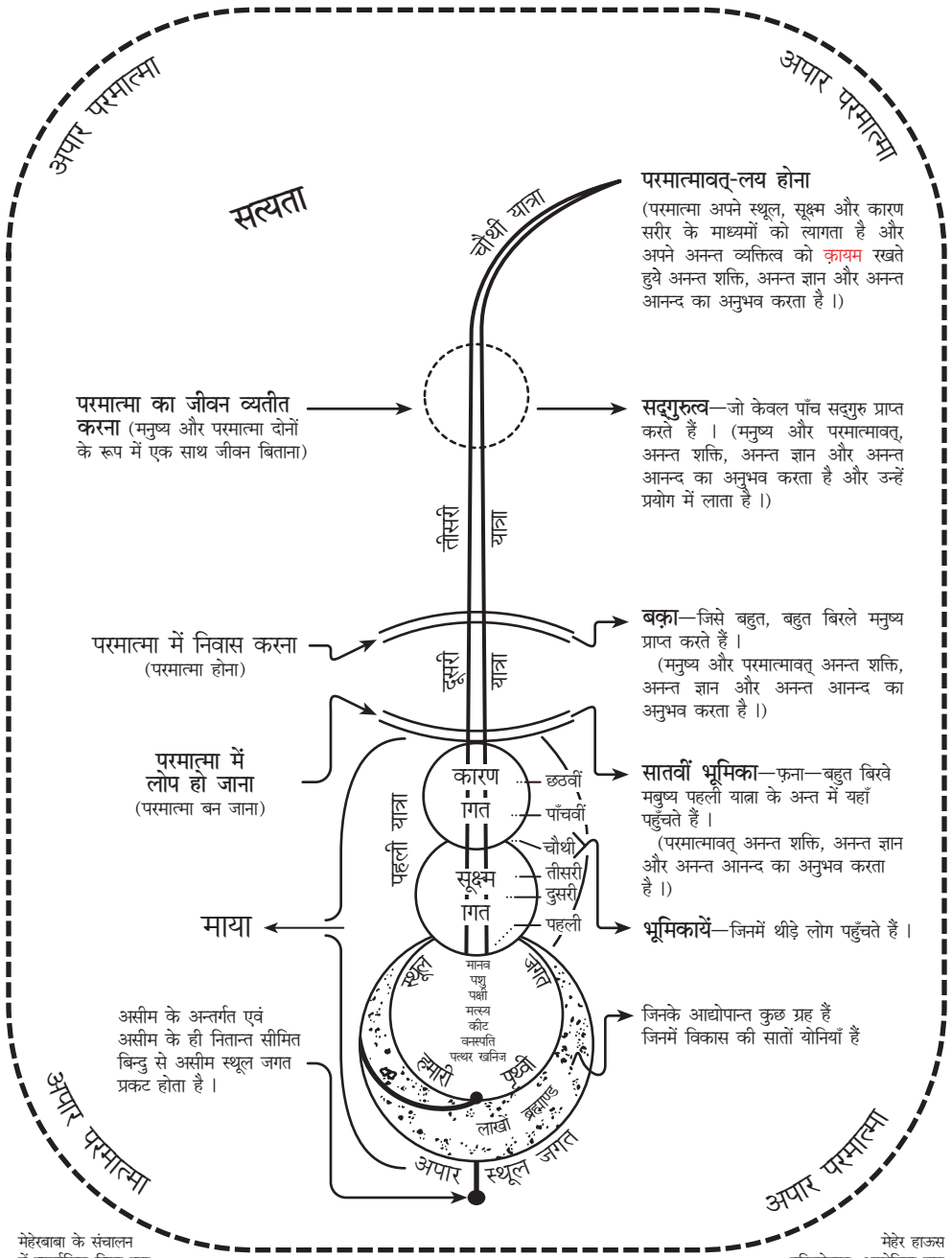
* A *Mukammil* can make **all** Creation God-realized if he wishes. All Creation means all human beings and everything that is in Creation from a particle of dust to an elephant. But a *Mukammil* will never wish to do so because the carrying out of such a wish would mean the end of cosmic Illusion (the whole Creation). To put an end to cosmic Illusion would amount to putting an end to the divine play. And to end the divine play would go against the very nature or characteristics of God in His original State II (described on page 172) when He remains infinitely conscious and simultaneously infinitely unconscious.

blank page

blank page

चार यात्रायें

चार्ट ६

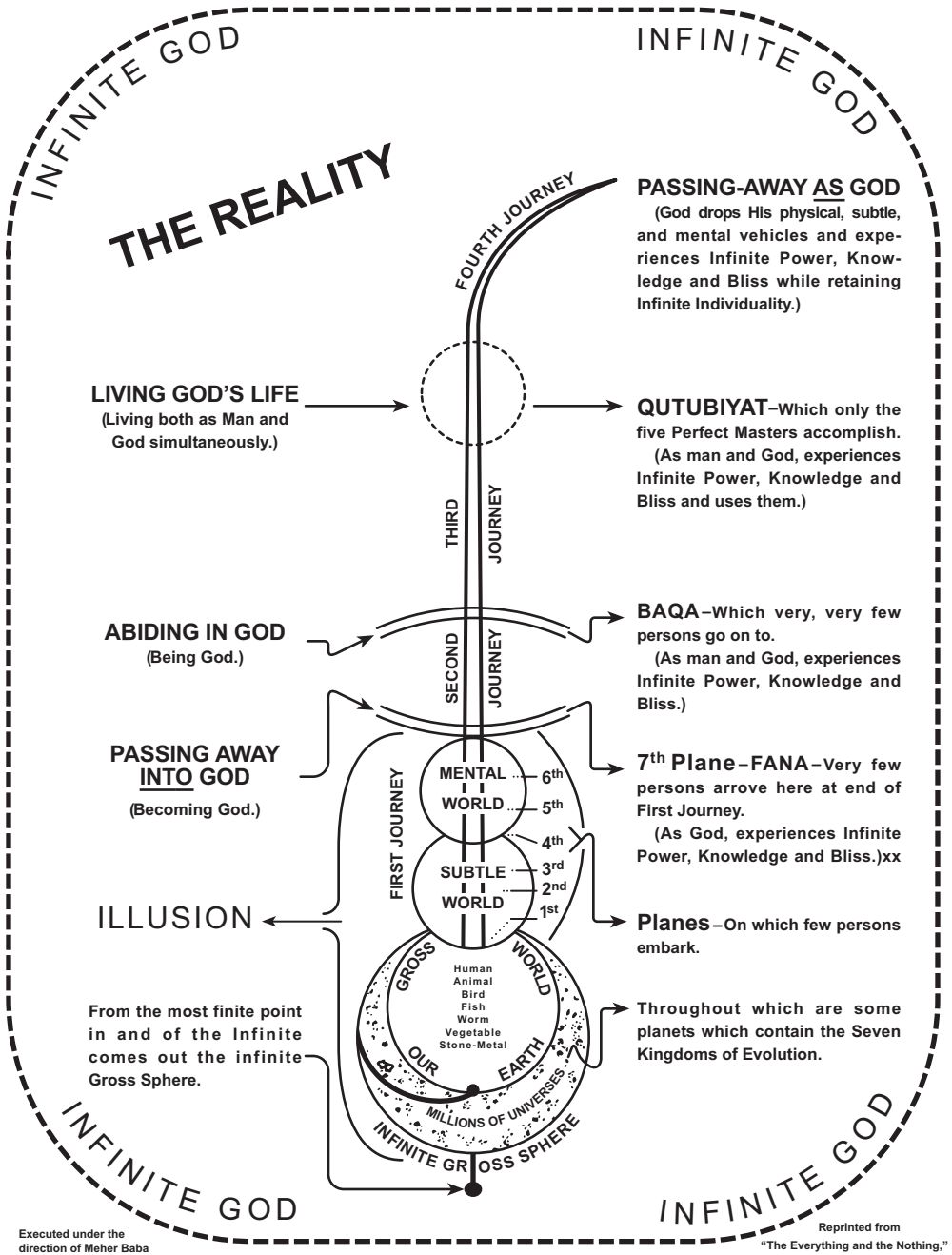


मेहेरबाबा के संचालन में कार्यान्वित किया गया

मेहेर हाऊस पब्लिवेशन्स, आस्ट्रेलिया द्वारा प्रकाशित "सबकुछ और कुछनहीं" से पुनः मुद्रित

THE FOUR JOURNEYS

CHART VI



Executed under the direction of Meher Baba

Reprinted from "The Everything and the Nothing," published by Meher House Publications, Australia.

कर सकता है और जीवित रख सकता है और अनुभव करा सकता है, और साथ-साथ उनको **सत्यता** का शाश्वत चैतन्य अनुभव प्रदान कर सकता है ।

बक़ा-बिल्लाह दूसरी ईश्वरीय यात्रा का अन्त है । **फ़ना-फ़िल्लाह** और बक़ा-बिल्लाह की अवस्थाओं के बीच में, दैवी सन्धि स्थल (**मुक़ाम-ए-फ़ुरूतत**), पर **तुरिया अवस्था** (**फ़ना-मये-अल-बक़ा**) की स्थिति होती है ।

तुरिया अवस्था वह अवस्था है जहाँ **कभी-कभी** महा-चैतन्यता "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था का अनुभव प्रदान करती है और जहाँ **कभी-कभी** महा-चैतन्यता सामान्य चेतना की "मैं-मानव-हूँ" अवस्था का अनुभव करती है ।

इस अवस्था का अनुभव वे लोग करते हैं जो "**मजज़ूब सालिक**" अथवा "**परमहंस**" कहलाते हैं और जो **तुरिया अवस्था** की इस अवस्था में कभी-कभी चेतनापूर्वक "मैं अपना खुद परमात्मा हूँ" का अनुभव करते हैं और कभी-कभी चेतनापूर्वक "मैं खुद अपना जीवन्धारी हूँ" का अनुभव करते हैं ।

ईश्वरीय सन्धि पर, पहली के अन्त और दूसरी ईश्वरी यात्रा के मध्य, "ईश्वरी" और "मानवी" दैवी चंचल अनुभवों का अनुभव पारी-पारी से होता है जब तक कि **फ़ना-फ़िल्लाह** की "मैं-परमात्मा-हुँ" अवस्था क्रमश; **बक़ा-बिल्लाह** की अवस्था में स्थापित नहीं हो जाती जहाँ परमात्मा की अन्तर-वास (*abiding-in*) अवस्था स्थापित होती है और जहाँ मनुष्य एक ही समय परमात्मावत्, किंचित्मात्र प्रयोग किये बग़ैर, स्वत: एक ही समय परमात्मा और मनुष्य के द्वैध अनुभव से गुज़रता है ।

जैसे ही **दैवी सन्धि** पार हो जाती है वैसे ही **फ़ना-फ़िल्लाह** की **मज़जूबियत बक़ा बिल्लाह** में **सुलूवियत** के रूप में स्थापित हो जाती है । **मज़जूबियत** का **मजज़ूब** केवल उस समय अनन्त ज्ञान और शक्ति का चैतन्य अनुभव कर सकता था जिस समय वह अनन्त आनन्द में निमग्न था† । तथापि **सुलूकियत** का **सालिक** न केवल अनन्त ज्ञान, शक्ति और

† [मेहेरबाबा से पूछा गया, "यदि 'मजज़ूबों' को समस्त लोकों (स्थूल, सूक्ष्म और मानस) की, और 'मैं-ईश्वर-हूँ' अवस्था के सिवाय हर चीज़ की चेतना नहीं होती, तब यह कैसे होता है कि वे जीवन के भौतिक पहलू की ...

gross world, together with giving the eternal conscious experience of the Reality.

Baqa-billah is the end of the second divine journey. In between the states of *fana-fillah* and *baqa-billah,* at the Divine Junction (*muqam-e-furutat*), there is the state of *turiya avastha* (*fana-ma-al-baqa*).

Turiya avastha is that state where **sometimes** the super-consciousness gives the experience of the "I am God" state and where **sometimes** super-consciousness gives the experience of the "I am human" state of normal consciousness.

This state is experienced by those who are termed *"Majzoob-Salik"* or *"Paramhansa"* and who in this state of *turiya avastha* **sometimes** experience consciously as "I am my own God" and **sometimes** experience consciously as "I am my own creature."

At the Divine Junction, between the end of the first and the beginning of the second divine journey, the fluctuating divine experiences of "divine" and "human" are experienced alternately until the "I am God" state of *fana-fillah* gradually becomes established in the state of *baqa-billah* where the "abiding-in" God state is established and where man as God simultaneously, without the least effort, automatically undergoes the dual experience of God and man at one and the same time.

As soon as the Divine Junction is crossed the majzoobiyat of fana-fillah becomes established as *sulukiyat* in baqa-billah. The Majzoob of majzoobiyat could only consciously experience infinite knowledge and power while being drowned* in infinite bliss. The Salik of sulukiyat,

* [Meher Baba was asked, "If Majzoobs are utterly unconscious of all the spheres (gross, subtle and mental), of everything except the 'I am God' state, then how is it they react to the physical side of life (eating, drinking, showing preference to certain things, antipathy to others)?"

Meher Baba replied, "The Majzoob may apparently like or dislike, ask or reject, seem happy or angry; it is an automatic reflex action of which he is unconscious, like the sound of snoring is to the fast-asleep man emitting it. Like the sleep walker who is unconscious of his actions, however normal or varied they may be, the Majzoob is oblivious to his body and surroundings, and is conscious only of his divine state of 'I am God.'" Ed.]

आनन्द का अनुभव चैतन्यरूप से करता है किन्तु वह चैतन्यरूप से उनको संचित भी करता है, यद्यपि वह इन अनन्त पहलुओं का उपयगि दूसरों के लिये नहीं करता जैसा कि **क़ुतुबियत** के **क़ुतुब** करते हैं ।

दूसरी ईश्वरी यात्रा का अन्त तीसरी ईश्वरी यात्रा तक पहुँचा देता है जो **क़ुतुबियत** की अवस्था है जहाँ परमात्मा का **जीवन** व्यतीत करना यथार्थ में उन लोगों को अनुभव होता है जो "**क़ुतुब**" अथवा "**सद्गुरु**" अथवा "**पूर्ण पुरुष**" कहलाते हैं ।

क़ुतुबियत की अवस्था, जो **बक़ा-बिल्लाह** की **सुलूकियत** के बाद आती है, वहाँ होती है जहाँ मनुष्य परमात्मा के रूप में, **बक़ा-बिल्लाह** में परमात्मा के जीवन में स्थापित हुआ, अब परमात्मा का जीवन **क़ुतुबियत** की अवस्था में **क़ुतुब** अथवा सद्गुरू के रूप में व्यतीत करना प्रारम्भ करता है । वह अब न केवल चैतन्यरूप से, अनन्त ज्ञान, शक्ति और आनन्द का अनुभव करता है जैसा वह **फ़ना-फ़िल्लाह** की अवस्था में करता था, और न चैतन्यरूप से संचित करता है जैसा वह **बक़ा-बिल्लाह** ही अवस्था में करता था, किन्तु वह **क़ुतुबियत** की इस अवस्था में इन अनन्त पहलुओं का प्रयोग उन लोगों के लिये करता है जो अब भी **माया** में फँसे हैं । **क़ुतुबियत** की अवस्था का ऐसा नर-नारायण सद्गुर[२६] कहलाता है, जो मनुष्य के रूप में न केवल परमात्मा बन गया है और परमात्मा के अन्तर में स्थापित हो गया है वरन् वह **माया** के अन्तर्गत परमात्मा के व्यक्तिगत प्रतिनिधि के रूप में परमात्मा का जीवन आचरित करता है ।

(१६६)

... ओर प्रतिक्रिया करते हैं (खाना, पीना, कुछ चीज़ों के प्रति बरीयता पदर्शित करना, और जन्म चीज़ों के प्रति घृणा प्रगट करना) ?"

मेहेरबाबा ने उत्तर दिया, "'मजज़ूब' दिखाव में पसन्द करे अथवा पसन्द न करे, याचना करे अथवा इनकार करे, खुद मालूम पड़े अथवा क्रोधित मालूम पड़े; यह एक स्वत: अनिच्छित क्रिया है जिसकी चेतना उसको नहीं होती, जिस तरह गहरी नींद में सोते हुये आदमी की खर्राटा लेने की आवाज़ होती है । जिस प्रकार रात्रि में सोते में चलते हुये मनुष्य के समान, जिसे अपने कर्मों की चेतना नहीं होती, चाहे वे कर्म जितने भी सामान्य अथवा विविध क्यों न हों, 'मजज़ूब' को अपने शरीर और पास-पड़ोस की स्मृति नहीं रहती, और उसको केवल अपनी दैवी अवस्था, "मैं-परमात्मा-हूँ" की चेतना रहती है ।" — सम्पादक]

however, not only consciously experiences but also consciously accumulates infinite knowledge, power and bliss, although He does not use these infinite aspects for others as Qutubs of the qutubiyat do.

The end of the second divine journey leads to the third divine journey which is the state of qutubiyat where living the life of God is actually experienced by those who are termed "Qutubs" or "Sadgurus" or "Perfect Masters."

The state of qutubiyat, which follows the sulukiyat of baqa-billah, is where man as God, established in the life of God in baqa-billah, now begins to live the life of God in the state of qutubiyat as a Qutub or a Sadguru. He now not only consciously experiences as in the state of fana-fillah and consciously accumulates, as in the state of baqa-billah, infinite knowledge, power and bliss, but uses these infinite aspects in this state of qutubiyat for those who are still in Illusion. Such a Man-God of the state of qutubiyat is called a Perfect Master,[26] who as man has not only become God and established himself in God but lives the life of God as God's individual representative in Illusion.

"मैं-परमात्मा-हूँ" और "मैं-मानव-हूँ" की द्वैध भूमिका जो **बक़ा-बिल्लाह** में स्थापित हुई थी, अब एकसाथ न केवल उसका अनुभव होता है किन्तु **क़ुतुबियत** की दशा में उसका जीवन्यापन भी होता है; और **नर-नारायण** (क़ुतुब, सद्गुरु अथवा पूर्ण पुरुष) अब एकसाथ परमात्मा का जीवन और मनुष्य का जीवन आचरित करता है और यह आचरण वह परमात्मा की अनन्त शक्ति, ज्ञान और आनन्द के बल से तथा मानव अवस्था की समस्त निर्बलताओं एवं त्रासों को भोगते हुये करता है ।

तीसरी ईश्वरी यात्रा के अन्त में सद्गुरु न केवल एकसाथ शक्ति एवं कमज़ोरी की द्वैध बूमिका अदा एवं प्रदर्शित करता है, किन्तु वह साथ-साथ अनन्त बल के इस प्रदर्शन का उपयोग अनन्त ज्ञान, शक्ति और आनन्द, तथा अनन्त निर्बलता के द्वारा उन लोगों के लिये करता है जो अज्ञान में डूबे हैं और जो अब भी मिथ्या, सीमित भ्रम को अनन्त एवं यथार्थ समझते हैं । इस अवस्था के विपरीत, **बक़ा-बिल्लाह** की अवस्था में परमात्मा अपने ईश्वरत्व का अनुभव निरन्तर, एकसाथ अपने मानवपन के सतत् और निरन्तर अनुभव के साथ करता है; और फिर भी वह अनन्त ज्ञान, शक्ति और आनन्द का प्रयोग नहीं कर सकता और अज्ञान में डूबे हुये मनुष्यों के लिये अनन्त निर्बलता एवं यातना का उपयोग भी नहीं कर सकता क्योंकि इस अवस्था में परमात्मा ईश्वर का जीवन व्यतीत नहीं करता जैसा वह **क़ुतुबियत** की अवस्था में करता है ।

क़ुतुब अथवा **सद्गुरु** की अवस्था में अपनी तीसरी ईश्वरी यात्रा का आदि और अन्त करना बहुत, बहुत दुर्लभ है और केवल बहुत, बहुत कम लोगों के लिये है । इस अवस्था में मनुष्य अब ईश्वर के रूप में ईश्वर का जीवन **आचरित** करता है । वह अब अनन्त ज्ञान, शक्ति और आनन्द का उपयोग करता है जिनका अनुभव उसको प्राप्त होता है । वह, वह "ईश्वर-और-मनुष्य" अथवा **नर-नारायण** है, जो **एक** अखण्ड्य सत् को अनेकता **में** उतार लाया है । वह, वह **नर-नारायण** है, जो स्वतन्त्र सत्य को **माया** में उतार लाया है और जो **माया** का नियन्त्रण अपनी परब्रह्म अवस्था **विज्ञान भूमिका** अथवा **मुक़ाम-ए-मुहम्मदी**[२७] के दैवी कार्यालय से करता है ।

इस **नर-नारायण** अथवा **पूर्ण पुरुष** का स्वयं जीवन ही **सहज समाधि** है । ऐसा सद्गुरु साथ-साथ, एक ही समय में, सभी विश्वों में

The dual role of "I am God" and "I am human" which was established in baqa-billah is now not only simultaneously experienced but is also lived through in the state of qutubiyat; and the Man-God (Qutub, Sadguru or Perfect Master) now simultaneously lives the life of God and the life of man with all of the strength of the infinite knowledge, power and bliss of the God state together with all of the weaknesses and sufferings of the man state.

At the end of the third divine journey the Perfect Master not only lives a dual role and displays strength and weakness simultaneously, but also simultaneously utilizes this display of infinite strength through infinite knowledge, power and bliss, and infinite weakness through infinite suffering for those who are in ignorance and who still conceive the false, finite Illusion to be infinite and real. In contrast to this state, in the state of baqa-billah God experiences His Godhood constantly, simultaneously with the continual and constant experience of His manhood; and yet He cannot use the infinite knowledge, power and bliss and also cannot utilize the infinite weakness and suffering for those in ignorance because God does not live the life of God in this state as in the state of qutubiyat.

It is very, very rare and it is for only very, very few to begin and to end their third divine journey in the Qutub or Sadguru state. In this state man as God now lives the life of God. He now uses the infinite knowledge, power and bliss that He experiences. He is that "God and man" or Man-God who has brought down the One indivisible existence into the Many. He is that Man-God who brought down Independent Reality into Illusion and controls Illusion from the divine office of His Beyond state *vidnyan bhumika* or *muqam-e-Muhammadi*.[27]

The very life of this Man-God or Perfect Master is the sahaj samadhi. Such a Perfect Master is at one and the same time,

और सभी लोकों में, सभी स्तरों तथा सभी भूमिकाओं में "एक का और सबका" जीवन आचरित करता है । उसका जीवन ख़ास स्तरों पर और ख़ास भूमिकाओं पर, प्रत्येक जीवधारी के रूप में, और उस ख़ास स्तर तथा उस ख़ास बूमिका के व्यक्ति के रूप में जीवन व्यतीत करने का भी होता है । उसी समय, ईश्वर का जीवन व्यतीत करने के साथ-साथ, वह इस पृथ्वी पर मनुष्य का जीवन व्यतीत करता है ।‡

क़ुतुबियत की इस अवस्था में यह कहा जा सकता है कि परमात्मा ईश्वरत्व के ऊपर आच्छादित हो जाता है, जिसका अर्थ यह है कि परमात्मा की चेतना हर चीज़ में व्याप्त होने के बाद, ईश्वर की परात्पर परब्रह्म अवस्था की चेतना सतत् बनाये रखती हुई, परमात्मा की इस परब्रह्म अवस्था में अब भी अनन्त, असीमित और अपरिमित बनी रहती है ।

चौथी ईश्वरीय यात्रा **क़ुतुब का शरीर** छूटने से सम्बन्धित है ।

अपना शरीर छोड़ देने के बाद भी, **क़ुतुब** नित्य चैतन्यरूप से और व्यक्तिगतरूप से, **अनन्त** परमात्मावत् बना रहता है; और **फ़ना-फ़िल्लाह** की अवस्था की "मैं-परमात्मा-हूँ" व्यक्तिगत एवम् अवण्ड्य अवस्था का, जो लक्ष्य है, अनुभव सदैव करता है । अर्थात्, चौथी दिव्य यात्रा में शरीर अथवा मनुष्य-योनि छोड़ देने के बाद भी, चैतन्य, अनन्त, अविभाज्य व्यक्तित्व का अनुभव शाश्वत रूप से, "मैं-परमात्मा-हूँ", **सबकुछ** हूँ, अनन्त और असीमित हूँ, "बिना किसी दूसरे के अद्वैत हूँ", सदैव बना रहता है ।

इसी प्रकार से, **बक़ा-बिल्लाह** की अवस्था में परमात्मा, जहाँ

‡ [मेहेरबाबा के शब्दों में, "पूर्णता ईश्वर के रूप में ईश्वर से सम्बन्धित नहीं होती, और न वह मनुष्य के रूप में मनुष्य की होती है । ... सीमित प्राणी, जिसे अपने सीमित होने की चेतना प्राप्त होती है, स्पष्टरूप से अपूर्ण है; किन्तु जब उसको अनन्त परमात्मा के साथ एक होने की चेतना होती है, तब वह पूर्ण होता है ... इस प्रकार हमको पूर्णता प्राप्त होती है जब हमारा सीमित अहं अपनी सीमाओं को लाँघ जाता है और अपनी 'अनन्तता' का साक्षात्कार करता है, अथवा जब अनन्त आत्मा अपनी कल्पित पृथक्ता त्याग देती है और मनुष्य बन जाती है; इन दोनों दशाओं में सीमित और 'असीमित' एक-दूसरी के बाहर स्थित नहीं रहते । जब सीमित और असीमित का आनन्दमय एवं चैतन्य मिश्रण होता है तब हमको 'पूर्णता' प्राप्त होती है ।" —सम्पादक]

simultaneously, in all the universes and in all the worlds, on all the levels and on all the planes, living the life of the "One and the All." His life is that of living also on particular levels and on particular planes, as every creature, and as an individual of that certain level, and of that particular plane. At the same time, together with living the life of God, he lives the life of man on this earth.*

In this state of *qutubiyat* it may be said that God overlaps Godhood, which means that the consciousness of God **after pervading everything** still **remains** infinite, unlimited and unbounded in this Beyond state of God, while remaining eternally conscious of the Beyond the Beyond state of God.

The fourth divine journey pertains to the dropping of the *Qutub's* body (*sharir*).

Even after dropping his body, the Qutub eternally remains consciously and individually as God the Infinite; and the individual and indivisible state of "I am God," of the state of fana-fillah, which is the goal, is everlastingly experienced. That is, even after the body or the human-form is dropped in the fourth divine journey, the experience of conscious, infinite, indivisible individuality is retained eternally as "I am God," Everything, infinite and unbounded, "One without a second."

Similarly, God in the state of *baqa-billah,* where the apparently dual role of consciousness of "I am God" and "I am human" is manifested, is

* [In the words of Meher Baba, "Perfection does not belong to God as God, nor does it belong to man as man.... The finite being, who is conscious of his being finite, is obviously short of Perfection; but when he is conscious of his being one with the Infinite, he is Perfect.... Thus we have Perfection when the finite transcends its limits and realizes its Infinity, or when the infinite gives up its supposed aloofness and becomes man; in both cases the finite and the infinite do not stand outside each other. When there is a happy and conscious blending of the finite and the infinite we have Perfection." Ed.]

स्पष्टरूप से "मैं-परमात्मा-हुँ" और "मैं-मनुष्य-हूँ" की चेतना की द्वैध भूमिका प्रगट होती है, स्वाभाविकरूप से नियमित होती है अब तक कि माया का जामा, जाने और अनजाने में धारण किये हुये, छूट नहीं जाता । अर्थात्, जब मनुष्या-योनि अथवा मनुष्य क शरीर छूट जाता है तब चैतन्य, अनन्त, अविभाज्य, व्यक्तित्व का अनुभव "मैं परमात्मा हूँ" "मैं सबकुछ हूँ", अनन्त हुँ और असीमित हूँ, "अद्वैत हूँ" शाश्वतरूप से स्थिर बना रहता है ।

परमात्मा सनातन सत्, अनन्त और सर्वव्यापी है । क्योंकि परमात्मा शाश्वतरूप से अनन्त सत् है, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि परमात्मा की अवस्थाओं की अनन्त संख्यायें हैं, जो अपार और सनातनरूप से अस्तित्व में हैं । किन्तु मूल रूप से परमात्मा की केवल दो अवस्थायें हैं : मूल अवस्था और अन्तिम अवस्था ।

मूल अवस्था परमात्मा की परात्पर परब्रह्म अवस्था है जहाँ शाश्वत: परमात्मा "**है**" और चेतना "**नहीं है**" । अन्तिम अवस्था परमात्मा की परब्रह्म अवस्था है जहाँ परमात्मा की परात्पर परब्रह्म अवस्था की "**परमात्मा-है**" अवस्था की चेतना नित्य रहती "है" ।

वही सत्, परमात्मा के रूप में, नित्य प्रचलित रहता है, चाहे वह परमात्मा की परात्पर परब्रह्म अवस्था के रूप में हो अथवा परमात्मा की परब्रह्म अवस्था के रूप में हो । उनमें एकमात्र भेद चेतना का होता है । परमात्मा की परब्रह्म अवस्था में, सत् अपनेआप को **चैतन्यरूप से** अनुभव करता है कि, वह "परमात्मा-है" की परात्पर परब्रह्म अवस्था के रूप में, सनातन रूप से नित्य विद्यमान है ।

अतएव दैवी लक्ष्य है, "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था का अनुभव करना, जहाँ **सत्** चैतन्यरूप से **खुद** को अनुभव करता है कि वह परमात्मा-है की परात्पर परब्रह्म अवस्था के रूप में नित्य अस्तित्व में है । यही **सत्यता** है, और इस **सत्यता** का चैतन्य साक्षात्कार एकबार प्राप्त हो जाने पर सनातन रूप से स्थायी रहता है । अनिवार्य रूप से वह अपने को किन्हीं अन्य रूपों में अभिव्यक्त नहीं करता किन्तु पृथ्वी के मानव रूपों में, परमात्मा की **विभिन्न ईश्वरीय अवस्थाओं में, मजज़ूबियत** की विभिन्न ईश्वरीय स्थितियों के द्वारा, **तुरिया अवस्था** के अथवा **फ़ना-मा-अल-बक़ा** के **सुलूकियत** और **क़ुतुबियत** के माध्यम से प्रकट करता है ।

परमात्मा की अन्य सब बीच वाली अवस्थायें **मायावी अवस्थायें**

naturally enacted until the cloak of Illusion, knowingly and consciously donned, is dropped. That is, when the human form or the body is dropped the experience of conscious, infinite, indivisible individuality is retained eternally as "I am God," Everything, infinite and unbounded, "One without a second."

God is Existence eternal, infinite and all-pervading. Since God is eternally infinite existence, it follows that there are an infinite number of states of God, infinitely and eternally existing. But fundamentally there are only two states of God: the original state and the final state.

The original state is the Beyond the Beyond state of God where eternally God "Is" and consciousness "Is Not." The final state is the Beyond state of God where consciousness "Is" eternally of the "God-Is" state of the Beyond the Beyond state of God.

The same Existence, as God, prevails eternally, whether it is as the Beyond the Beyond state of God or as the Beyond state of God. The only difference is one of consciousness. In the Beyond state of God, the Existence **consciously** realizes Itself as existing eternally as the Beyond the Beyond state of God-Is.

Therefore the divine goal is to realize the "I am God" state where Existence consciously realizes Itself as existing eternally as the Beyond the Beyond state of God-Is. This is the Reality, and the conscious realization of this Reality once gained is retained eternally. Invariably It manifests Itself in no other forms but in human forms of the earth in different divine states of God through **different divine states** of *majzoobiyat*, of *turiya avastha* or *fana-ma-al-baqa*, of *sulukiyat* and of *qutubiyat*.

All other intermediary states of God are **illusory states** where the same eternal, infinite, all-pervading, one, indivisible, formless Existence,

हैं जहाँ वही सनातन, अनन्त, सर्वव्यापी, एक, अखण्ड्य, निराकार सत्, परमात्मा के रूप में, यद्यपि उसका अनुभव सनातना सत् के रूप में नहीं हुआ, स्वयं अस्तित्व के माध्यम से प्रतिपादिन करता है, और यह प्रतिपादन वह अनन्त सत् की शाश्वत वास्तविकता की पूर्ण चेतना प्राप्त करने की प्राक्रिया के दौरान में, परमात्मा की निर्जीव एवं जीवित अवस्थाओं के रूप में, अनन्त अगणित जड़ और चेतन चीज़ों एवं जीवधारियों के रूप धारण करने में करता है ।

परमात्मा की ये सब बीच वाली मायावी अवस्थायें, ऐहिक सृष्टि की माया के अन्तर्गत माया के बहुविध एवं विविध स्थूल, सूक्ष्म एवं मनो-संस्कारों के द्वारा; और माया के अन्तर्गत सम्पूर्ण ऐहिक सृष्टि के माध्यम के द्वारा, पोषित होती हैं, फिर भी उससे एक ईश्वरीय अण्ड के पोषक का उद्देश्य सिद्ध होता है, जहाँ ईश्वरीय अण्ड-पोषकों की चेतना, और जहाँ ऐसा पोषण शाश्वत सत्य का साक्षात्कार करने की परिपक्वता पैदा करता है, और यह परिपक्वता वह, नाना रूपी, विविध और सीमित संस्कारों तथा स्थूल, सूक्ष्म एवं मनो-रूपों और ऐहिक सृष्टि के जगतों के द्वन्द्वों के, नाना रूप, विविध तथा सीमित संस्कारों और अनुभवों के द्वारा, चेतना के परिपक्व और क्रमशः विकसित हो जाने के बाद, करता है ।

परमात्मा की मायावी अवस्थाओं में, शाश्वत, निराकार अनन्त परमात्मा, स्वयं अपनी लौकिक सृष्टियों से संस्कारबद्ध होता हुआ, पहले स्थूल योनियों की चेतना प्राप्त करता है और स्थूल जगतों का अनुभव करता है, फिर वह सूक्ष्म रूपों की चेतना प्राप्त करुता है और सूक्ष्म जगतों का अनुभव करता है, फिर वह मानव रूपों की चेतना प्राप्त करता है और मनो-जगतों का अनुभव करता है और, अन्ततोगत्वा अपने अपरिमित **सत्** (*Self*) की चेतना प्राप्त करके, अपनी शाश्वत अवस्था का अनुभव करता है ।

उसके फ़लस्वरूप, जब परमात्मा को अपने स्थूल रूपों की चेतना होती है तब वह स्थूल शरीरों से अपनी एकरूपता करता है और अपने को एक ख़ास स्थूल शरीर के रूप में पाता है, और वह प्राप्ति उस स्थूल शरीर के विशेष संस्कारों के अनुसार होती है । इसका यह अर्थ है कि अनन्त, शाश्वत, निराकार परमात्मा अपने को सीमित, नश्वर और स्थूल रूप धारण किये हुये रूप में पाता है । इस अज्ञानता का कारन केवल संस्कार हैं ।

(१७०)

as God, though not realized as the eternal Reality, asserts through its very being, in assuming forms of infinitely innumerable inanimate and animate things and creatures, as lifeless and living states of God, while in the process of gaining full consciousness of the eternal reality of infinite existence.

All these intermediary illusory states of God thrive in the illusion of cosmic Creation through multifarious and diverse gross, subtle and mental impressions of illusion; and though the entire cosmic Creation is illusion, yet it serves the purpose of a divine incubator, where consciousness of the Divine incubates, and where such incubation produces the maturity to realize the eternal Reality after the consciousness is nurtured and progressively developed through multifarious, diverse and finite impressions and experiences of the opposites of the gross, subtle and mental forms and worlds of the cosmic Creation.

In the illusory states of God, the eternal, formless, infinite God, while being impressed by His own cosmic creations, gains consciousness first of the gross forms and experiences the gross worlds, then of the subtle forms and experiences the subtle worlds, then of the mental forms and experiences the mental worlds and, eventually attaining consciousness of His unlimited Self, experiences His eternal state.

Consequently, when God is conscious of His gross forms He identifies Himself with the gross bodies and finds Himself as a particular gross body according to the special impressions of that gross body. This means that the infinite, eternal, formless God finds Himself as finite, mortal and having gross form. The cause of this ignorance is but the impressions—sanskaras.

इस प्रकार परमात्मा, जो शाश्वतरूप से **परात्पर परब्रह्म** अवस्था की परे और परे अवस्था में होता है अथवा **परमात्मा-है** की अवस्था की अनन्तता में होता है, प्रारम्भ में अज्ञानता प्राप्त करता है और वह प्राप्ति अपनी सत्यता का ज्ञान प्राप्त करने के द्वारा करने की बजाय संस्कारों से प्रभावित होने के द्वारा करता है ।

इसलिये जब परमात्मा विशेष संस्कारों के अनुसार कोई ख़ास रूप अथवा शरीर प्राप्त करता है, तब वह अपने को उसी ख़ास रूप अथवा शरीर के रूप में महसूस और अनुभव करता है । परमात्मा अपनी पत्थर-योनि में अपने को पत्थर अनुभव करता है । तदनुसार, संस्कारों और उसकी चेतना के अनुसार, परमात्मा महसूस और अनुभव करता है कि वह धातु है, वनस्पति है, हीड़ा है, मछली है, पक्षी है, पशु अथवा मामव प्राणी है । स्थूल रूप चाहे जिन प्रकार का हो और रूप की शक्ल चाहे जिस प्रकार की हो, परमात्मा की विकसित होती हुई चेतना परमात्मा को उस रूप, शरीर और शक्ल से अपना साहचर्य स्वेच्छानुसार करने के लिये प्रवृत्त है और उसको संस्कारों के द्वारा अपनेआप को ऐसा अनुभव करने के लिये प्रेरित करती है कि वह वही रूप, शक्ल तथा शरीर है ।

इसी प्रकार, जब परमात्मा को सूक्ष्म शरीर (**प्राण**) की चेतना होती है तब परमात्मा को प्राण भुवन का अनुभव होता है और वह अपने को सूक्ष्म शरीर अथवा **प्राण** के रूप में मानता है । ऊसी प्रकार से, परमात्मा को कारण शरीर (मन) की चेतना प्राप्त हो जाती है, वह मनो-जगत का अनुभव करता है और अपने को कारण शरीर अथवा मन के रूप में मानता है ।

केवल संस्कारों के कारण ही अनन्त परमात्मा, जो निराकार और अनन्त है, यह अनुभव करता है कि वह अनिवार्यरूप से स्थूल जगत में एक सीमित स्थूल शरीर (अर्थात् **अन्न भुवन में जीव-आत्मा**) है, अथवा सूक्ष्म जगत में एक सूक्ष्म शरीर (अर्थात् **प्राण भुवन में जीव-आत्मा**) है, अथवा कारण जगत में कारण शरीर (अर्थात् **मनो भुवन** में **जीव-आत्मा**) है । परमात्मा, स्थूल रूपों के माध्यम से स्थूल जगत का अनुभव करता हुआ, असंख्य स्थूल रूपों के साथ साहचर्य करता है और उनसे सम्बन्ध विच्छेद करता है । स्थूल रूपों से उसज्ञ यह साहचर्य और विच्छिन्नता क्रमशः "अन्म" और "मृत्यु" कहलाते हैं ।

(१७१)

So God, Who is eternally in the Beyond the Beyond state of *Paratpar Parabrahma* or in the infinitude state of God-Is, in the beginning acquires ignorance through being impressed by the impressions rather than by acquiring knowledge of His reality.

Hence when God acquires a particular form, body or sharir according to particular impressions, He feels and experiences Himself as that particular form, body or sharir. God in His stone-form experiences Himself as stone. Accordingly, in consonance with impressions and their consciousness, God feels and experiences that He is metal, vegetation, worm, fish, bird, animal or human being. Whatever be the type of the gross form and whatever be the shape of the form, the evolving consciousness of God tends God spontaneously to associate Himself with that form, figure and shape which tends Him to experience Himself through impressions that He is that form, figure and shape.

Similarly, when God is conscious of the subtle body (i.e., the pran) then God experiences the subtle world and regards Himself as the subtle body or pran. Likewise, God becomes conscious of the mental body (i.e., the mana or the mind), experiences the mental world and regards Himself as the mental body or the mana (i.e., the mind).

It is only because of impressions that the infinite God, the Over-Soul, without form and infinite, experiences that He is veritably but a finite gross body in the gross sphere (i.e., the *jiv-atma* in *anna bhuvan*), or a subtle body in the subtle sphere (i.e., the *jiv-atma* in *pran bhuvan*), or a mental body in the mental sphere (i.e., the *jiv-atma* in the *mano bhuvan*). God, while experiencing the gross world through gross forms, associates with and dissociates from innumerable gross forms. The association with and dissociation from gross forms are called "birth" and "death," respectively.

संस्कारों के कारण ही शाश्वत, अनश्वर, निराकार ईश्वर, अथवा परमात्मा को, जन्मों और मृत्युओं के बग़ैर, असंख्य बार जन्मों और मृत्युओं का अनुभव करना पड़ता है । जब परमात्मा को संस्कारों के कारण इन असंख्य जन्मों और मृत्युओं का अनुभव करना पड़ता है, तब उसको न केवल स्थूल जगत का अनुभव करना पड़ता है जो सीमित है और इसलिये मिथ्या है, वरन् इसके साथ-साथ उसको उसके सुख और दुख का, उसकी बुराई और भलाई का अनुभव भी करना पड़ता है ।

समस्त योनियाँ, आकृतियाँ और शक्लें, समस्त जगत (*world*) और भूमिकायें, समस्त जन्म और मृत्युयें, समस्त भला और बुरा, समस्त सुख और दुख, जिनका अनुभव ईश्वर करता है, जो शाश्वत, निराकार और अनन्त है, संस्कारों से रन्जित हुई चेतना की उपज हैं । चूँकि समस्त संस्कार **शून्य** की उपज मात्र हैं जो **शून्यता** के रूप में अभिव्यक्त हुआ था, इसलिये इसका यह अर्थ है कि परमात्मा अपनी विकसित चेतता के द्वारा स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगतों में जोकुछ अनुभव करता है, वह **शून्य** का अनुभव है; और चूँकि यह **शून्य** स्वभावतः **कूछनहीं** है, इसलिये परमात्मा की बीच वाली मायावी अवस्थाओं में होने वाले सब अनुभव केवल शब्दशः माया हैं, और इस रूप में, वे मिथ्या और सीमित हैं ।

केवल जिस समय संस्कारों से रंजित चेतता समस्त संस्कारों से स्वतन्त्र हो जाती है तभी मनुष्य योनि में **निर्वाण** अथवा **फ़ना** के रूप में **मुक्ति** प्राप्त होती ह, जहाँ केवल चेतना "है" और जहाँ **शून्य** का अन्य सबकुछ, जो **शून्यता** के रूप में था, सदैव के लिये नष्ट हो जाता है । केवल उस आत्मा के उदाहरण में जो **निर्वाण** के बाद तीन से चार दिन‡ तक शरीर* को बनाये रखती है, मुक्त हुई (अथवा संस्कार से अछूती

(१७२)

‡ (मेहेरबाबा ने समझाया : "वे आत्मायें जो अपने शरीरों को तीन से चार दिनों तक बनाये नहीं रखती किन्तु 'निर्वाण' के बाद तत्काल अपने शरीर छोड़ देती है वे 'मुक्ति' प्राप्त करती हैं ।" —सम्पादक)

* [काल का अस्तित्व किसी के लिये भी नहीं रहता जो 'निर्वाण' में है अथवा उसके लिये नहीं रहता जिसको 'मुक्ति' प्राप्त हो गई है । ऊपर उल्लिखित अवधि (तीन से चार दिन) केवल उसकी समझ के लिये सार्थक होती है जो स्थूल-चेतनायुक्त है और समय से बँधे होते हैं । —सन्पादक]

It is because of impressions that the eternal, immortal, formless God, or the Over-Soul, without births and deaths, has to experience births and deaths a number of times. While God has to experience these innumerable births and deaths because of impressions, He has not only to experience the gross world which is finite and therefore false, but together with it He has also to experience its happiness and misery, its virtue and vice.

All forms, figures and shapes, all worlds and planes, all births and deaths, all virtue and vice, all happiness and misery, experienced by God, Who is eternal, formless and infinite, are the outcome of impressioned consciousness. Since all impressions are but the outcome of the Nothing that manifested as the Nothingness, it means that whatever God experiences through His evolved consciousness in the gross, subtle and mental worlds is the experience of the Nothing; and as this Nothing by nature is nothing, therefore all the experiences in the intermediary illusory states of God are nothing but literally illusion and, as such, false and finite.

Only when the impressioned consciousness is freed from all impressions is liberation or mukti in human form attained as nirvana or fana, where only consciousness "Is" and where all else of the Nothing, which was as Nothingness, vanishes forever. Only in the case of the one who retains the body* for three to four days† after nirvana does the

* [Meher Baba explained: "Those who do not retain their bodies for three to four days but drop their bodies immediately after nirvana attain Liberation (mukti)." Ed.]

† [Time does not exist for anyone who is in nirvana or for the one who has attained Liberation. The period mentioned (three to four days) holds meaning only for the understanding of those who are gross-conscious and are bound by time. Ed.]

या संस्काररहित हुई) चेतना अनिवार्यरूप से **फ़ना** की दूसरी स्थिति में (अर्थात् **फ़ना-फ़िल्लाह** में) शाश्वत ईश्वरत्व का अनुभव करती है और अपना प्रतिपादन **निःसन्देह** "मैं-परमात्मा-हूँ" के रूप में करती है । यह "मैं निःसन्देह परमात्मा हूँ" की निर्विकल्प अवस्था है जब, शब्दशः सीस्कार रहित अथवा संस्कार मुक्त चेतना, मानव योनि से जुड़ी हुई, अनुभव करती है "मैं-परमात्मा-हुँ, मैं परमात्मा थी और सदैव सत् शाश्वत एवं चैतन्यरूप में परमात्मा बनी रहूँगी" । इस रीति से मनुष्य परमात्मा बन जाता है; और यह कहा जाता है कि मनुष्य ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त है, अथवा यह कि **परमात्मा में जीव-आत्मा परमात्मा में शिव-आत्मा** बन गई है, अथवा परमात्मा (*Over-Soul*) बन गई है ।

शाश्वत सत्य यह है कि **परमात्मा** (अथवा *Over-Soul*), आत्मा (अथवा *soul*) है; और इस सत्यता का अनुभव केवल तब होता है जब जीवात्मा के रूप में संस्कार बद्ध चेतना संस्कार रहित अथवा संस्कार मुक्त चेतना के रूप में **शिव-आत्मावत्** बन जाती है, और वह **परमात्मा** की एकरूपता का प्रतिपादन एवं अनुभव करने के लिये **परमात्मा** में निमग्न हो जाती है ।

यदि वास्तव में **आत्मा परमात्मा** है, तब **आत्मा** को **परमात्मा** में निमग्न हो जाने के लिये कोई स्थिति कैसे पैदा हो सकती है ?

इस स्थिति को स्पष्ट करने, और '**परमात्मा** वास्तव में **आत्मा** है' को समझने के लिये, हम **परमात्मा** की तुलना एक अनन्त, अपार और तटरहित महासागर से करते हैं । इसलिये आत्मा, जो **परमात्मा** है, अपार एवं तट-रहित महासिन्धु (अर्थात् **परमात्मा**) की सीमाओं के बाहर कभी नहीं हो सकती । **आत्मा** कभी भी **परमात्मा** के बाहर नहीं हो सकती क्योंकि **परमात्मा,** जिसकी तुलना हमने अपरिमित और तटरहित महासागर से की है, अनन्त और स्सीमित है । जब **आत्मा परमात्मा** है तब **आत्मा** किस प्रकार अपार, सीमारहित के विस्तार के बाहर आ सकती है और उसके परे स्थान रख सकती है ?

इसलिये, **आत्मा परमात्मा** में भी है ।

अब, यह समझने के लिये कि आत्मा जो परमात्मा में है वास्तव में स्वयं **परमात्मा** है, हम कल्पना करें कि सीमारहित, और तटरहित महासागर के असीम विस्तार के बाहर समुद्र की एक बूँद निकालना अथवा अलग करना सम्भव है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि समुद्र

liberated (or the unimpressioned or impressionless) consciousness invariably realize eternal Godhood in the second stage of fana (i.e., in fana-fillah) and assert itself as "I am God" without doubt. This is the nirvikalpa state of "Undoubtedly I am God" when, literally, the impressionless or unimpressioned consciousness, linked with human-form, realizes "I am God, I was God and forevermore will remain God" as Existence, eternal and conscious. In this way man becomes God; and it is said that man is God-realized, or that the *jiv-atma* in *Paramatma* has become the *Shiv-Atma* in *Paramatma*, or the Over-Soul.

The eternal reality is that Paramatma, or the Over-Soul, is atma or the soul; and this reality is realized only when the impressioned consciousness as jiv-atma becomes the impressionless or unimpressioned consciousness as Shiv-Atma, merging in Paramatma to assert and realize the identity of Paramatma.

If in reality atma is Paramatma, how then could any situation arise for atma to merge in Paramatma?

In order to clarify this situation and understand that Paramatma is atma in reality, we compare Paramatma with an infinite, limitless and shoreless ocean. Therefore atma, which is Paramatma, can never be out of bounds of the limitless and shoreless ocean (i.e., Paramatma). Atma can never be out of Paramatma because Paramatma, which we have compared to the limitless and shoreless ocean, is infinite and unlimited. How could atma come out of or have a place beyond the expanse of the limitless when atma is Paramatma?

Hence, atma is in Paramatma, too.

Now, in order to understand that the atma which is in Paramatma is in reality Paramatma Itself, let us imagine that it is possible to separate or take one iota of the ocean out of the limitless expanse of the unlimited and shoreless ocean. It follows then that this iota of ocean, when in the

की यह किंचित् बूँद, अपार महासागर में रहने के समय, पृथक्ता के पूर्व, स्वयं महासागर है, और वह सीमारहित महासागर में समुद्र की बूँद के रूप में न थी वरन् स्वयं महासागर के रूप में थी (क्योंकि महासागर की प्रत्येक बूँद जब वह बूँद होने की सीमितताओं से सीमित नहीं होती तब वह स्वयं असीमित महासागर होती है) ।

केवल जब समुद्र की बूँद अपरिमित महासागर से अलग हो जाती है, अथवा असीमित महासागर के बाहर, बूँद के रूप में, निकाल ली जाती है, तभी समुद्र से पृथक् हुई यह बूँद असीमित महासागर की सीमित बूँद के रूप में मानी जाती है ।

दूसरे शब्दों मे, अनन्त, अपरिमित और तटरहित महासागर अब बूँद के माध्यम से, केवल उस अनन्त, अपरिमित और तटविहीन महासागर की सीमित बूंद के रूप में खुद को देखने लगता है; और अनन्त, असीमित तथा तटरहित माहसागर की तुलना में, महासागर की यह बूँद, अत्यन्त परिमित, अत्यन्त सीमित है, और अब वह अनन्त सीमितताओं से युक्त होती है ।

इसी प्रकार से, **आत्मा,** अनन्त महासागर की बूँद से तुलना की जाने पर, कभी भी अपार, असीमित और अनन्त परमात्मा की सीमितताओं से बाहर नहीं हो सकती जब उसकी तुलना असीमित, अपरिमित और तटविहीन महासागर से की जाती है ।

किन्तु जिन तरह से समुद्र की बूँद अपनी सीमिततायें महासागर की सतह के ऊपर एक बुलबुले के माध्यम से प्राप्त करती है, और ठीक जिस तरह यह बुलबुला समुद्र की बूँद के ऊपर, अनन्त, अपार महासागर से अलग, एक प्रत्यक्ष अलगानेवाला एवं सीमित ओस्तत्व प्रदान करता है, उसी प्रकार **आत्मा,** जो न केवल **परमत्मा** में है बलिक जो स्वयं **परमात्मा** है, प्रत्यक्षरूप से अलगानेवाले अस्तित्व का अनुभव एवं प्रतिपादन करती है—ऐसा वह अनन्त, असीमित परमात्मा से संस्कारों के बुलबुलों की सीमितताओं के द्वारा करती है, जो चैतन्य अज्ञानता प्रदान करते हैं, और जिनसे आत्मा अपने को ढाँक लेती है और अपने को सीमित तथा परमात्मा से अलग अनुभव करती है ।

इन सीमितताओं के द्वारा, जो संस्कारों के बुलबुलों से निर्मित होती है, **आत्मा** द्वारा स्वयं-रचित होती हैं, **आत्मा, परमात्मा** से एक पृथक्कारी और सीमित अस्तित्व का प्रत्यक्ष उत्तराधिकार प्राप्त करती

limitless ocean, is ocean itself before separation, and was in the unlimited ocean not as an iota of the ocean but as the ocean itself (because every iota of ocean when not limited by the limitations of being an iota is unlimited ocean itself).

It is only when the iota of the ocean is separated from the unlimited ocean, or is taken out of the unlimited ocean, as a drop, that this separated iota of the ocean is looked upon as the limited drop of the unlimited ocean.

In other words, the infinite, unlimited and shoreless ocean now is made to look upon itself through the drop as merely the limited drop of that infinite, unlimited and shoreless ocean; and in comparison to the infinite, unlimited and shoreless ocean, this drop of ocean is most finite, most limited, and has now infinite limitations.

Similarly, atma, as compared to the drop of the infinite ocean, can never be out of any limitations of the limitless and infinite Paramatma as compared to the infinite, unlimited and shoreless ocean.

But just as the iota of ocean acquires its limitations as a drop through a bubble on the surface of the ocean, and just as this bubble bestows upon the iota of the ocean an apparent separative and limited existence apart from the infinite ocean, likewise atma, which is not only in Paramatma but which is Paramatma Itself, apparently experiences and asserts separative existence from the infinite, unlimited Paramatma through the limitations of the bubble of impressions, which bestow conscious ignorance, and with which atma shrouds itself and experiences itself as limited and separate from Paramatma.

Through these limitations, formed by the bubble of impressions, self-created by atma, atma apparently inherits a separative and limited

है, और अनन्त **परमात्मा** से इस आत्मनिर्मित विलगता के कारण, **आत्मा,** जो स्वयं अनन्त, अपरिमित और असीमित है, संस्कारों द्वारा उपार्जित अनन्त परिमितताओं के साथ, अपने ऊपर अत्यन्त सीमित एवं अत्यन्त परिमित होने के पहलू धारण करती है ।

जैसे ही चेतना के समूचे प्रतिवर्धन के पूर्ण हो जाने पर संस्कारों के बुलबुले का विस्फोट हो जाता है, और चेतन अज्ञानता, संस्कारों से रंजित चेतना के रूप में, चेतन ज्ञान के रूप में बदलकर, संस्काररहित चेतना का रूप ले लेती है, वैसे ही **आत्मा** के सीमित और अत्यन्त परिमित अनुभवों का लोप हो जाता है । **आत्मा,** प्रत्यक्ष अलगानेवाले सीमित अस्तित्व से मुक्त हो जाने पर, **परमात्मा** में अपनेआप निमग्न हो जाती है, अथवा अपने को **परमात्मा** के साथ तथा **परमात्मा** के अन्तर्गत एकरस पाती है—**परमात्मा** की परब्रह्म अवस्था के अन्तर्गत शाश्वतः अनन्त, अपरिमित और असीमित पाती है; और यह **परमात्मा** अथवा **अल्लाह** के साथ आत्मा का मिलन कहलाता है । चेतना की इस अवस्था में, अब **आत्मा** वो **परमात्मा** की परे-अति-परे अचैतन्य **परात्पर परब्रह्म** अवस्था की पूर्ण चेतना प्राप्त हो गई है, जो परमात्मा की मूल अवस्था है, जब यह कहा जाता है कि "**परमात्मा-है**" । सूफ़ी शब्दों में, परब्रह्म परमात्मा अवस्था में परमात्मा को अल्लाह कहा जाता है, और परे-अति-परे परब्रह्म परमात्मा अवस्था में वह "**वरी-उल-वरी**" अथवा "ग़ैब-उल-ग़ैब" कहा जाता है ।

मनुष्य रूप में परमात्मा का सर्वोच्च और अत्यन्त उन्नत ईश्वरीय दर्जा **क़ुतुबियत** का है जहाँ **क़ुतुब,** अथवा **सद्गुरु** अथवा **पूर्ण पुरुष** को, न केवल अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्द तथा समस्त-भलाई और समस्त अनन्त सौन्दर्य और सार्थक महिमा का चैतन्य अनुभव होता है, किन्तु वह इन अनन्त पहलुओं का चैतन्य उपयोग उन **जीव-आत्माओं** के लिये करता है जो अब भी माया के अन्तर्गत परमात्मा की मायावी अवस्थाओं से गुज़र रहे हैं ।

क़ुतुबियत की इस उन्नत ईश्वरीय स्थिति में मनुष्य न केवल ईश्वर बन जाता है वरन् मनुष्य ईश्वर का जीवन भी **आचरित** करता है । इस नर-नारायण की पूजा करना अनन्त गुणोंयुक्त परमात्मा की पूजा करना है ।

(१७५)

existence from Paramatma, and because of this self-created separativeness from infinite Paramatma, atma, which is Itself infinite, unlimited and unbounded, bestows upon Itself the aspects of being most finite and most limited, with infinite limitations acquired through impressions.

As soon as the bubble of impressions bursts on completion of total involution of consciousness, and conscious ignorance, as impressioned consciousness, is transformed into conscious knowledge, as unimpressioned consciousness, the limited and the most finite experiences of the atma vanish. Atma, liberated from apparent separative finite existence, automatically merges in, or finds itself as one with and in Paramatma—eternally infinite, unlimited and unbounded in the Beyond state of God; and this is called atma's union with Paramatma or Allah. In this state of consciousness, atma is now completely conscious of the Beyond the Beyond unconscious *Paratpar Parabrahma* state of God, which is the original state of God when it is said "God-Is." In Sufi terms, God in the Beyond state is termed "Allah," and God in the Beyond the Beyond state is termed "*Wara-ul-Wara*" or "*Ghaib-ul-Ghaib*."

In human form the highest and the most exalted divine status of God is that of *qutubiyat* where the Qutub, or the Sadguru or Perfect Master, not only consciously experiences infinite knowledge, infinite power and infinite bliss and all-goodness and all that is infinite beauty, meaning glory, but He consciously uses these infinite aspects for those jiv-atmas still undergoing the illusory states of God in Illusion.

In this exalted divine status of qutubiyat not only man becomes God but man lives the life of God, too. To worship this Man-God is to worship God with infinite attributes.

मानव-रूप में चैतन्य रूप से परमात्मा का जीवन आचरण द्वारा प्रस्तुत करने का यह सबसे ऊँचा ईश्वरीय दर्जा बहुत-बहुत दुर्लभ रूप से बहुत-बहुत थोड़ी **शिव-आत्माओं** को प्राप्त होता है, और यह तब प्राप्त होता है जब अचैतन्य आत्मायें जीव-आत्माों के रूप में विकास, पुनर्जन्म और चेतना के प्रतिवर्धन की प्रक्रिया से होकर गुज़र चुकती हैं, और **निर्वाण** प्राप्त करती है, जिसके बाद कुछ उदाहरणों में महा-चैतन्य की **निर्विकल्प** समाधि तत्काल आकर **शिव-आत्माओं** के रूप में अपना प्रतिपादन करती है ।

सर्व कालों और सब युगों में, और साथ-साथ एक ही समय में, इस पृथ्वी पर सदैव छप्पन **शिव-आत्मायें** अथवा ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त **आत्मायें** होती हैं । इन छप्पन **शिव-आत्माओं** में से कुछ **मजज़ूबियत** की अवस्था में रहती हैं; कुछ आत्मायें ईश्वरीय सन्धि की अवस्था में—**तुरिया अवस्था में**—जिसे सूफ़ी भाषा में "**फ़ना-मल-बक़ा**" कहते हैं रहती हैं; उनमें से बहुत थीड़ी आत्मायें, ईश्वरीय सन्धि को पार करती हुई, **सुलूकियत** की अवस्था में बनी रहती हैं; और उनमें से केवल पाँच आत्मायें सदैव वहाँ **क़ुतुबियत** की अवस्था में रहती हैं, अब तक ये **सब** मानव-रूप धारण किये रहती हैं ।

इस प्रकार, सर्व कालों और सब युगों में, सदैव पाँच **क़ुतुब** (**सद्गुरु** अथवा पूर्ण-पुरुष) पृथ्वी पर मानवजाति के बीच में रहते हैं, और वे **माया** के क्षेत्र में सबकी प्रगतिशील मुक्ति के लिये अनन्त ज्ञान, शक्ति एवं आनन्द के रूप में, परमात्मा की परब्रह्म अवस्था की **विज्ञान भूमिका** के विज्ञान अथवा **अर्श-आला** की **अहदियत** के अनन्त पहलुओं को सँभालते हैं ।

ईश्वरीय विधान के अनुसार, ये पाँच **क़ुतुब** अथवा **सद्गुरु** अथवा **पूर्ण पुरुष,** प्रत्येक कालचक्र के अन्त में, परमात्मा को सीधे-सीध पृथवी पर मानवीय पुरुष (*male*) के रूप में उतारते हैं । अस्तु, प्रत्येक कालचक्र के अन्त में, जब परमात्मा पृथ्वी पर मनुष्यरूप में प्रगट होता है और अपना ईश्वरत्व मानवजाति को प्रगट करता है, तब वह **अवतार**—मसीहा—सिद्ध पुरष के रूप में पहिचाना जाता है । अवतार के रूप में पृथ्वी पर परमात्मा का **सीधा अवतरण** परमात्मा का वह **स्वाधीन दर्जा** है जब परमात्मा, **विकास, पुनर्जन्म और चेतना के प्रतिवर्धन की प्रफियाओं से होकर गुज़रने अथवा उनका अनुभव किये बग़ैर, सीधे-सीध**

This highest divine status of living the life of God consciously in human-form is attained very, very rarely by very, very few Shiv-Atmas, after the unconscious atmas pass through the process of evolution, reincarnation and involution of consciousness as jiv-atmas, and attain nirvana which in some cases is immediately followed by *nirvikalpasamadhi* of super-consciousness asserting as Shiv-Atmas.

At all times and in all ages, and at one and the same time, there are always on this earth fifty-six Shiv-Atmas or God-realized Atmas. Of these fifty-six Shiv-Atmas some remain in the state of majzoobiyat; some remain in the state of the Divine Junction—in *turiya avastha*—known in Sufi terms as "*fana-ma-al-baqa*"; a very few of them, crossing the Divine Junction, remain in the state of sulukiyat; and only five of them are always there in the state of *qutubiyat*, as long as all these retain human-forms.

Thus, at all times and in all ages, there are always five Qutubs (Sadgurus or Perfect Masters) living on the earth amongst humanity, wielding infinite aspects of *ahadiyat* of the *arsh-e-ala* or *vidnyan* of the *vidnyan bhumika* of the Beyond state of God in the form of infinite knowledge, power and bliss for the progressive emancipation of all in the field of Illusion.

According to the divine law, these five Qutubs or Sadgurus or Perfect Masters, at the end of every cycle, precipitate the advent of the direct descent of God on earth in human male form. Hence, at the end of every cycle, when God manifests on earth in the form of man and reveals His divinity to mankind, He is recognized as the Avatar—the Messiah—the Prophet. The **direct descent** of God on earth as Avatar is that

मनुष्य* बन जाता है । इसके फलस्वरूप, परमात्मा सीधे-सीध **ईश-पुरुष** बन जाता है, और मानवजाति के बीच मनुष्य का जीवन व्यवहार में लाता है और उस समय[२८] के इन **क़ुतुबों** अथवा **सद्गुरुओं** अथवा **पूर्ण पुरुषों** के द्वारा, ऊँचे से ऊँचा, अथवा पुरातन पुरुष, के अपने ईश्वरीय दर्जे का अनुभव करता है ।

मूल रूप से **सत्यता** के अनुभव में बिल्कुल कोई अन्तर नहीं होता, चाहे **शिव-आत्मायें मजज़ूबियत, तुरिया अवस्था, सुलूकियत** अथवा **क़ुतुबियत** की ईश्वरीय स्थिति में हों । एकबार लक्ष्य प्राप्त हो जाने पर, सब **शिव-आतमायें** सब ईश्वरूय स्थितियों में निस्सन्देह और चैतन्यरूप से सदैव-सदैव के लिये अनन्त आनन्द की उस दैवी विरासत के आनन्द का उपभोग करने लगती हैं, जबकि साथ-साथ वे स्वेच्छानुसार और निरन्तर अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्द[२९] की अपनी निजी त्रिमुखी पकृति का अनुभव करती रहती हैं ।

जो भी हो, उनकी ईश्वरीय स्थिति में अन्तर उनकी अनन्त त्रिमुखी प्रकृति के अनुभव के कारण नहीं होता, बलिक उसके खुद को अनन्त ज्ञान अथवा **सुलूकियत,** की **विज्ञान भूमिका** में स्थापित करने के बाद, और फिर, **क़ुतुब** के रूप में, नर-नरायाण का जीवन आचरित करने के बाद जो अनन्त आनन्द का उपभोग करते हुये अपनी अनन्त शक्ति को व्यवस्थित करने के हेतु अपने अनन्त ज्ञान का उपयोग करते हैं, की विभिन्न सीमा (*scope*) के कारण होता है ।

क़ुतुब अथवा सद्गुरु की ईश्वरीय स्थिति के और **युग-अवतार** के बीच यह अन्तर है कि **क़ुतुब,** ऐहिक (*cosmic*) विकास की पूरी प्रक्रिया से होकर गुज़रने के बाद, नर-नरायाण के रूप में परमात्मा के जीवन में प्रवेश करता है और उसे आचरित करता है, जबकि **अवतार** की विकास की प्रक्रिया से होकर बिल्कुल नहीं गुज़रना पड़ता क्योंकि अवतार परमात्मा की वह सर्वोच्च स्थिति है जहाँ परमात्मा सीधे-सीध (१७७)

* फ़ना-उल-फ़ना = परमात्मा के मनुष्य बनने की अवस्था (पृथ्वी पर अवतार के रूप में परमात्मा का सीधा अवतरण) ।
बक़ा-उल-बक़ा = परमात्मा की ईश-पुरुष बनने की अवस्था (परमात्मा को अवतार के रूप में खुद का ज्ञान) ।
साधारण पुरुष की अवस्था मनुष्य रूप में परमात्मा की अवस्था है ।

independent status of God when God **directly becomes man*** **without undergoing or passing through the processes of evolution, reincarnation and involution of consciousness.** Consequently, God directly becomes **God-Man,** and lives the life of man amongst mankind, realizing His divine status of the Highest of the High, or the Ancient One, through these Qutubs or Sadgurus or Perfect Masters of the time. [28]

Fundamentally there is absolutely no difference in the experience of Reality, whether the Shiv-Atmas are in the divine status of majzoobiyat, turiya avastha, sulukiyat or qutubiyat. Once the goal is attained, all Shiv-Atmas in all divine statuses undoubtedly and consciously begin to enjoy forever and ever that divine heritage of infinite bliss while spontaneously and continuously experiencing their own triune nature of infinite knowledge, infinite power and infinite bliss. [29]

However, the difference in their divine status is due not to their experience of their infinite triune nature but to a difference in the scope of wielding infinite power after establishing themselves in the vidnyan bhumika of infinite knowledge or sulukiyat, and then living the life of Man-God, as Qutub, exercising their infinite knowledge to wield infinite power while enjoying infinite bliss.

The difference between the divine status of a Qutub or Sadguru and the Avatar of the Age is that a Qutub, after having gone through the whole process of cosmic evolution, enters and lives the life of God as Man-God, while the Avatar does not have to go through the process of evolution at all

* Fana-ul-fana = the state of God becoming man (the direct descent of God on earth as Avatar).
Baqa-ul-baqa = the state of God becoming God-Man (God's knowing Himself as Avatar).
State of ordinary man is the state of God as man.

मनुष्य बन जाता है और पृथ्वी पर **ईश-पुरुष** के रूप में जीवन व्यतीत करता है ।

ईश्वर का जीवन व्यतीत करने में, **सद्गुरु** (अथवा **क़ुतुब**) और अवतार (अथवा साहेब-ए-ज़माँ) दोनों एक समान अनुभव रखने में बराबर होते हैं । दोनों परमात्मा का जीवन आचरित कर रहे हैं और दोनों माया के अन्तर्गत जीवन के प्रत्येक स्तर और भूमिका पर भी होते हैं । दोनों एक ही समय निम्नतम से लेकर उच्चतम स्तर पर होते हैं । इसके बावजूद, अत्यन्त महत्वपूर्ण और एकमात्र भेद यह है कि **क़ुतुब** उस स्तर पर अभिनय करता है और **अवतार** उस स्तर पर वही **बन जाता है**[३०] ।

"अभिनय करने" और "बन जाने" के विषय को स्पष्ट करने के लिये, अनेक और असंख्य उदाहरण उद्धृत किये जा सकते हैं, किन्तु साधारण मनुष्य की समझ के लिये उदाहरण के रूप में बीमारी को ले लीजिये ।

उदाहरण के लिये, एक **क़ुतुब** अथवा **सद्गुरु** बीमार नहीं को सकता और न **बीमार होगा,** और जब वह बीमार हो गया दिखलाई पड़ता है, तब वह उसका बिल्कुल बीमारी का "अभिनय" है । जब लोग उसको वास्तव में बीमार देखते हैं तो वे **उसको बीमार नहीं देखते** बलिक वे वास्तव में **उसकी बीमारी** को पूर्णतया अभिनय के रूप में देखते हैं क्योंकि वह **सद्गुरु** है और मूर्तमान पूर्णता है; वह ऐसा अभिनय करता है जैसे वह बीमार हो । दूसरी ओर, जब लोग **अवतार** को बीमार देखते हैं, तब वह **वास्तव में बीमार हो गया है** और वह शब्दशः रोग ग्रस्त हो गया है । किन्तु यद्यपि **अवतार** सचमुच रोगग्रस्त हो गया है, तथापि उसी समय उसके साथ-साथ उसके पीछे अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान एवं अनन्त आनन्द रहते हैं ।

प्रत्येक स्तर पर, प्रत्येक अवस्था में और सब भूमिकाओं में **सद्गुरु** एकसाथ जीवधारी अथवा उस स्तर एवं अवस्था की चीज़ के रूप में और उस भूमिका के मनुष्य के रूप में **आचरण करता है;** जबकि **अवतार** उस स्तर एवं अवस्था और उस भूमिका के मनुष्य के रूप में एकसाथ सबकुछ बन जाता है । और, एक ही समय सबकुछ बनते और होते हुये, सब स्तरों, अवस्थाओं और सब भूमिकाओं में सब स्तरों, अवस्थाओं और सब भूमिकाओं के परे, **केवल एकमेव अवतार** ही है जो सब

because the Avatar is that highest status of God where God directly becomes man and lives on earth as God-Man.

In living the life of God, both the Sadguru (or Qutub) and the Avatar (or the Saheb-e-Zaman) are equal in having the same experiences. Both are leading God's life and also both are on every level and plane of life in Illusion. Both are simultaneously on the level of the lowest to the highest. In spite of this, the most important and the only difference is that the Qutub acts on that level and the Avatar **becomes**[30] that on that level.

To make the point of "acting" and "becoming" clear, many and innumerable examples can be quoted, but for ordinary human understanding let illness serve as an example.

For instance, a Qutub or Sadguru cannot and will not **fall ill,** and when he appears to have fallen ill, it is just his "acting" of illness. When people actually see him ill they do not see him ill but in reality they **see his illness** perfectly enacted because he is the Perfect Master and perfection personified; he acts as if he were ill. On the other hand, when people see the Avatar ill, He has **actually fallen ill** and He has **literally become ill.** But though the Avatar has actually become ill, He has at His back simultaneously infinite power, infinite knowledge and infinite bliss.

On every level, in every state and in all planes simultaneously a Sadguru **behaves** as the creature or the thing of that level and state and as a man of that plane; whereas the Avatar **becomes** as the creature or the thing of that level and state and as a man of that plane all at once. And, at one and the same time becoming and being one and all on all levels, states

चीज़ों, सब जीवधारियों और समस्त मानवजाति को, विश्वव्यापी **ठेल** देने के लिये, उसी समय एकसाथ, चेतना की परिपक्वता की गति को तेज़ करने में अपारतया समर्थ होता है ।

वास्तव में परमात्मा **सबकूछ** है और हरेक में व्याप्त है । परमात्मा का **अवतार** न केवल **सबवुछ** में और हरेक में व्याप्त है वरन् वह वास्तव में **सबकुछ** और हरेक बन जाता है ।

अस्तु अवतार ओर सद्गुरु के बीच में मूल एवं एकमेव अन्तर यह है कि सद्गुरु प्रत्येक स्तर और सब भूमिकाओं पर अभिनय करता है जबकि अवतार अभिनय नहीं करता बल्कि यथार्थ में वही[३१] "बन जाता है" ।

संक्षेप में, समस्त कालावधियों में और समस्त युगों में, सदैव छप्पन ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आत्मायें अथवा शिव आत्मायें पृथ्वी पर मानव रूप में होती हैं[३२] ।

यह बात ध्यानपूर्वक नोट करनी चाहिये कि ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त समस्त छप्पन आत्मायें पूर्ण पुरुष (*perfect ones*) कही जा सकती हैं; किन्तु ये सब छप्पन पूर्ण पुरुष सबके सब **सद्गुरु** नहीं होते; यद्यपि ये सभी छप्पन पूर्ण पुरुष शाश्वत **सत्य** के उसी अनुभव का अनुभव करते हैं, और उस अनुभव में किंचित्मात्र अन्तर नहीं होता, और यद्यपि ये समस्त छप्पन अन्तिम लक्ष्य की चेतना में एक होते हैं—यथार्थ में सर्वथा पूर्ण और ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त होते हैं, फिर भी उनके कार्य में अन्तर होता है । इसलिये इन छप्पन ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आतमाओं के लिये "पूर्ण पुरुष" शब्द हो सकता है किन्तु **पूर्ण स्वामी** (*Perfect Master*) अथवा **सद्गुरु** अथवा **कुतुब** नहीं हो सकता ।

मानव रूप में विद्यमान छप्पन पूर्ण पुरुष अथवा **शिव-आत्माओं** में से, सब अवधियों में, सब युगों में, सदैव पाँच **पूर्ण पुरुष** अथवा **सद्गुरु** अथव **कुतुब** होते हैं और ये पाँचों अखिल विश्व के कार्यों का नियन्त्रण करते हैं ।

जब युग (*age*) **अवतारिक** अवधि का **नहीं** होता, तब ये पाँच **पूर्ण पुरुष** एकसाथ मिलकर विश्व के कार्यों की देखभाल करते हैं, और पाँच स् दगुरुओं में से एक को जो अखिल विश्व के सभी कार्यों के ऊपर नियन्त्रण रखने के लिये उत्तरदायी होता है, सूफ़ी लोग "**कुतुब-ए-इरशाद**" कहते हैं ।

and in all planes and beyond all levels, states and all planes, the Avatar is the **only one** infinitely capable of giving a universal push to all things, all creatures and to all mankind, at one and the same time, accelerating the maturity of consciousness.

In Reality God is Everything and is in every one. The Avatar of God is not only Everything and in every one but he actually becomes Everything and every one.

Hence the fundamental and only difference between an Avatar and a Sadguru is that on every level and on all planes a Sadguru acts whereas an Avatar does not act but actually "becomes" that.[31]

In short, there are always, at all times and in all ages, fifty-six God-realized souls or Shiv-Atmas in human form on the earth.[32]

It must be noted that all of the fifty-six God-realized ones may be called Perfect Ones; but all of these fifty-six Perfect Ones are not all Perfect Masters; although all fifty-six experience the same experience of the eternal Reality, without the least difference of experience whatsoever, and although all the fifty-six are one in consciousness of the ultimate goal—Reality, perfect in all respects and God-realized, yet there is a difference in their function. Therefore the term for the fifty-six God-realized ones may be "Perfect Ones" but **not** Perfect Masters or Sadgurus or Qutubs.

Out of the fifty-six Perfect Ones or Shiv-Atmas in human form, there are always at all times in all ages, five Perfect Masters or Sadgurus or Qutubs; and these five control the affairs of the whole universe.

When the age is **not** of the Avataric period, these five Perfect Masters conjointly look to the affairs of the universe, and the one from amongst the five Perfect Masters who is responsible for the control of all of the affairs of the whole universe is called by the Sufis *"Qutub-e-Irshad."*

किन्तु, जब युग कालचक्र‡ के अन्त में अवतारिक अवधि का होता है, तो **अवतार** (पुरातन पुरुष, ऊँचे से ऊँचा), स्वाधीन सत्यता (परमात्मा की परब्रह्म अवस्था की अनन्त चेतना), **माया** के अन्तर्गत सीधे पृथ्वी पर नर मानव प्राणी के द्वारा प्रगट की जाती है । परमात्मा की परब्रह्म अवस्था की इस अनन्त चेतना का यह प्रगटीकरण, पृथ्वी पर एक नर मानवरूप के द्वारा, आमतौर पर मनुष्य रूप में "पृथ्वी पर परमात्मा का सीधा अवतरण" कहा जाता है । परमात्मा का पृथ्वी पर यह अवतरण आमतौर पर "**अवतार**" माना जाता है ।

अस्तु यह स्पष्ट है कि जब युग **अवतारिक** अवधि का होता है, और जब **अवतार** (अथवा सत्यता, अथवा परमात्मा की परब्रह्म अवस्था की ईश-चेतना) पृथ्वी पर माया के अन्तर्गत प्रगट होने के लिये आविर्भूत कराई जाती है, और इस आविर्भूत सत्यता को मानवरूप दिया जाता है जिससे वह दुनियाँ की मानवजाति के लिये उपस्थित होने के योग्य हो सके; यह **अवतार,** अथवा यह **ईश-पुरुष,** अनिवार्यरूप से छप्पन ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त आत्माओं के अलावा कोई और होना चाहिये ।

उस समय विद्यमान, और कार्य करते हुये पाँच सद्गुरु, **अवतारिक** अवधि के उपयुक्त समय में, व्यक्तिगत रूप **से** और सब एकसाथ मिलकर **अवतार** को पृथ्वी पर उतारते हैं;[३३] और अज्ञान में डूबे हुये सृष्टि के अन्तर्गत मायावी जीवन व्यतीत करते हुये, सबके लिये अपनी अनन्त दया एवं प्रेम का प्रयोग करके, इस **अवतारिक** अवतरण को उतारने के लिये अपनी शक्ति और कृपा का प्रयोग करते हैं और शाश्वत, अनन्त परब्रह्म अवस्था में ईश-चेतना को, माया के अन्तर्गत इस पृथ्वी पर प्रगट करते हैं; और वे अपनी अनन्त शक्ति, ज्ञान एवं आनन्द के द्वारा सत्यता को नर मानवरूप की शक्ल में **माया** का एक अत्यन्त उपयुक्त "जामा" प्रदान करते हैं, जिससे सत्यता की दिव्यता, माया की दुनियाँ में, अत्यन्त दर्शनीय बनाई जा सके ।

इस प्रकार, जब अनन्त सत्य (अर्थात् परमात्मा) पृथ्वी पर एक मनुष्य के रूप में प्रगट होता है और मानवजाति के प्रति अपना

‡ माया के अन्तर्गत सब कालचक्र ७०० से १४०० वर्ष के बाद समाप्त एवं प्रारम्भ होते हैं, और कालचक्रों के एक कालचक्र में लाखों और करोड़ों कालचक्र हुये हैं और होंगे; इस प्रकार माया का कोई अन्त नहीं है जो सदैव माया बनी रहती है ।

But, when the age is of the *Avataric* period at the end of every cycle,* the Avatar (Ancient One, the Highest of the High), the Independent Reality (infinite Consciousness of the Beyond state of God), is made to manifest in Illusion directly on the earth through a male human being. This manifestation of infinite Consciousness of the Beyond state of God, through a male human-form on earth, is commonly called "the direct descent of God on earth" in human form. This descent of God on earth is generally known as the "Avatar."

Hence it is obvious that when the age is of the Avataric period and when the Avatar (or the Reality, or the God-consciousness of the Beyond state of God) is made to manifest into Illusion on the earth, by giving this Reality a human form to be made presentable to the humanity of the world, this Avatar, or this God-Man, must necessarily be other than the fifty-six God-realized ones.

The then existing and functioning five Perfect Masters, at the appropriate time of the Avataric period, individually and conjointly bring about the advent of the Avatar;[33] and exercising their infinite mercy and love for all in Ignorance living the illusory life in Creation, use their infinite power and grace to precipitate this advent and make manifest the infinite Reality of the eternal, infinite God-consciousness in the Beyond state, onto this earth into Illusion; and they bestow, through their infinite power, knowledge and bliss, onto the Reality a most suitable "cloak" of Illusion in the shape of a human male form, so that the divinity of the Reality may be made most presentable, in the world of Illusion.

Thus, when infinite Reality (i.e., God) manifests on earth in the form of a man and reveals His divinity to mankind, He is recognized as the Avatar, the Messiah, the Prophet. God thus becomes man.

* All cycles of time in Illusion end and begin after 700 to 1400 years, and there have been and will be millions and billions of such cycles in a Cycle of cycles; thus there is no end to Illusion which always remains illusion.

ईश्वरत्व उजागर करता है, तब वह **अवतार,** मसीहा, सिद्ध पुरुष (*Prophet*) के रूप में माना जाता है, और इस प्रकार परमात्मा मनुष्य बन जाता है ।

इस रीति से, अनन्त परमात्मा, युग-युग में, समस्त कालचक्रों के आद्योपान्त, अपनी अनन्त दया के द्वारा अपनी उपस्थिति मानवजाति के बीच करने की मरज़ी करता है, और ऐसा वह मनुष्य-रूप में मानवी स्तरों तक नीचे उतरने के द्वारा करता है, लेकिन मानवजाति के बीच उसकी शारीरिक उपस्थिति समझी नहीं जाती, इसलिये वह दुनियाँ के एक साधारण आदमी के समान माना जाता है । तथापि, जब वह अपनेआपको युग का **अवतार** होने की घोषणा करके पृथ्वी पर अपने ईश्वरत्व का प्रतिपादन करता है, तब कुछ लोग उसकी पूजा करते हैं जो उसको परमात्मा के रूप में स्वीकार करते हैं; और कुछ लोग उसकी महिमा का गुणगान करते हैं जो उसको पृथ्वी पर विद्यमान परमात्मा के रूप में जानते हैं । किन्तु, शेष मानवजाति के भाग्य में अनिवार्यरूप से केवल उसकी निन्दा करना होता है जबकि वह शरीर रूप में उनके बीच विद्यमान होता है ।

इसी तरह से ईश्वर ही मानवरूप में, अपने को **अवतार** घोषित करते हुये, अपने को मानवजाति द्वारा ताड़ना और दारुण दुख दिलवाता है, अपने को तिरस्कृत और निन्दित कराता है, जिस मानवजाति के लिये अपने अनन्त प्रेम के वश वह इतना नीचे उतरता है, जिससे मानवजाति, **अवतार** के रूप में परमात्मा के आविर्भाव की भर्त्सना करने की स्वयं-क्रिया में, चाहे जितने परोक्षरूप से हो, परमात्मा के सत् का प्रतिपादन उसकी अनन्त, शाश्वत अवस्था की वास्तविकता में करें ।

अवतार सदैव एक और वही होता है, क्योंकि परमात्मा सदैव एक और वही है‡ शाश्वत, अखण्ड्य, अनन्त है जो अपनेआप को मानवरूप में अवतारवत्, मसीहा, सिद्ध पुरुष, बुद्ध, पुरातन पुरुष,—ऊँचे से ऊँचा के रूप में प्रगट करता है । यह शाश्वत **एक** और वही **अवतार** समय-समय पर, विभिन्न कालचक्रों में, विभिन्न नाम और विभिन्न

‡ [मेहेरबाबा से पूछा गया कि क्या सद्गुरु, शरीर छोड़ देने के पश्चात्, कभी पृथ्वी पर वापिस आता है, अर्थात्, क्या वह कभी पुनः जन्म लेता है ? बाबा ने उत्तर दिया, "नहीं, कभी नहीं । केवल अवतार पुनः जन्म लेता है ।" —सम्पादक]

In this manner, infinite God, age after age, throughout all cycles, wills through His infinite mercy to effect His presence amidst mankind by stooping down to human levels in human-form, but His physical presence amidst mankind not being apprehended, He is looked upon as an ordinary man of the world. When, however, He asserts His divinity on earth by proclaiming Himself the Avatar of the Age, He is worshipped by some who accept Him as God; and gloried by a few who know Him as God on earth. But it invariably falls to the lot of the rest of humanity to condemn Him while He is physically in their midst.

Thus it is that God as man, proclaiming Himself as the Avatar, suffers Himself to be persecuted and tortured, to be humiliated and condemned by humanity for whose sake His infinite love has made Him stoop so low, in order that humanity, by the very act of condemning God's manifestation in the form of the Avatar should, however indirectly, assert the existence of God in His infinite, eternal state of Reality.

The Avatar is always One and the same because God is always One and the same,* the eternal, indivisible, infinite One who manifests Himself in the form of man as the Avatar, as the Messiah, as the Prophet, as the Buddha, as the Ancient One—the Highest of the High. This eternally One

* [Meher Baba was asked whether a Perfect Master, after leaving the body, ever comes back to earth, i.e., does he ever take birth again. Baba replied, "No, never. Only the Avatar takes birth again and again." Ed.]

मानवरूप धारण करके, विभिन्न स्थानों में, अपने को बारम्बार प्रगट करता है । वह बारम्बार अपनी अभिव्यक्ति मानवजाति को अज्ञान के खड्ड से निकालकर ऊपर लाने और माया के बन्धन से छुटकारा पाने में उसकी सहायता करने के प्रयजिन से, सत्य को विभिन्न लिबासों और विभिन्न भाषाओं में उजागर करने के लिये करता है ।

अवतारिक अवधि के दौरान में, उस समय के पाँच सजीव सद्गुरुओं में से एक, जो **कुतुब-ए-इरशाद** के रूप में कार्य किया करता था, अवतार के पृथवी पर आने पर इस दैवी पद को त्याग देता है और अपनी ड्यूटी एवं विश्व के कार्यों के लिये एकमेव उत्तरदायित्व का **कार्यभार** ईश-पुरुष के हाथों में सौंप देता है । जैसे ही वह क्राईस्ट—युगावतार—के रूप में अपने पद का कार्यभार सँभालने के योग्य को जाता है, और जब तक वह खुद स्थूल शरीर धारण किये रहता है, तब तक वह वही पद धारण किये रहता है जैसे अन्य चार सद्गुरु धारण किये रहते हैं ।

अवतार के अवतरण के बावजूद, छप्पन ईश्वर-सक्षात्कार-प्राप्त आत्माओं का मानव शरीर में रहना आवश्यक है, और इन छप्पन आत्माओं में से पृथ्वी पर पाँच सजीव सद्गुरुओं का होना आवश्यक होता है । जब इन पाँच सद्गुरुओं में से कोई एक अपना भौतिक शरीर त्याग देता है, तो वह पद कभी खाली नहीं छूटता; वह अनिवार्यरूप से एक अन्य सजीव ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आत्मा द्वारा पूरा कर दिया जाता है जिस आत्मा ने उस समय शाश्वत सत्य का साक्षात्कार कर लिया होता है । अस्तु, उस समय भी जब अवतार पृथ्वी पर विद्यमान होता है, छप्पन ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आत्मायें होती हैं, जिनमें मानव रूप धारण किये पाँच सद्गुरु सम्मिलित होते हैं, किन्तु अवतार एकमेव **सत्ता** बन जाता है ।

(१८२)

and the same Avatar is made to repeat His manifestation from time to time, in different cycles, adopting different names and different human-forms, in different places, to reveal Truth in different garbs and different languages, in order to raise humanity from the pit of ignorance and help free it from the bondage of delusions.

During the Avataric period, the one, from amongst the then living five Perfect Masters, who used to function as Qutub-e-Irshad, ceases to hold this divine office with the advent of the Avatar and delivers his **duty** and **charge** of the sole responsibility for the affairs of the universe into the hands of the God-Man as soon as He is able to assume His office as the Christ—the Avatar of the Age—and remains himself, as long as he is in a gross body, holding the same office of Qutub as the other four hold.

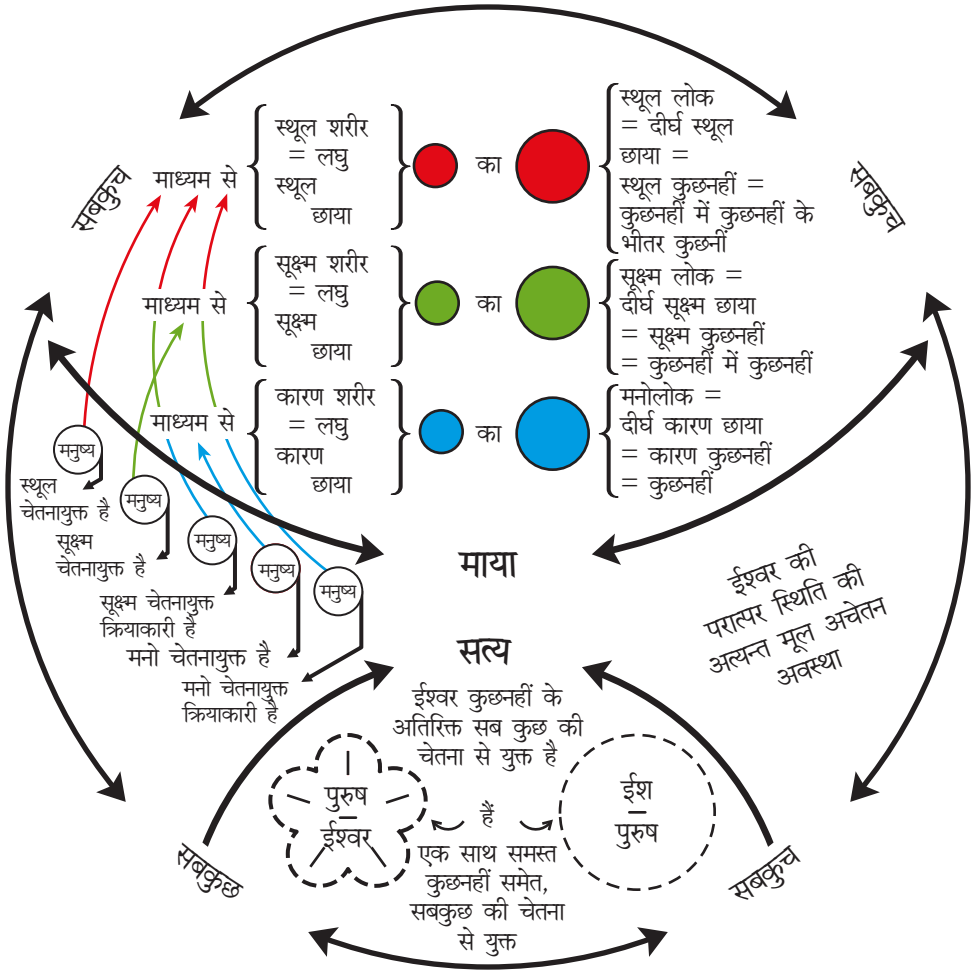
In spite of the advent of the Avatar, there must be fifty-six God-realized ones in human body, and from amongst these fifty-six there must be the five Perfect Masters living on earth. When one from amongst these five Perfect Masters drops his physical body, the office is never left vacant; it is invariably filled by another living God-realized one who has realized the eternal Reality at the time. Hence, even when the Avatar is on earth, there are fifty-six God-realized ones, including the five Perfect Masters in human-form, but the Avatar becomes the sole **Authority.**

blank page

blank page

चार्ट ७

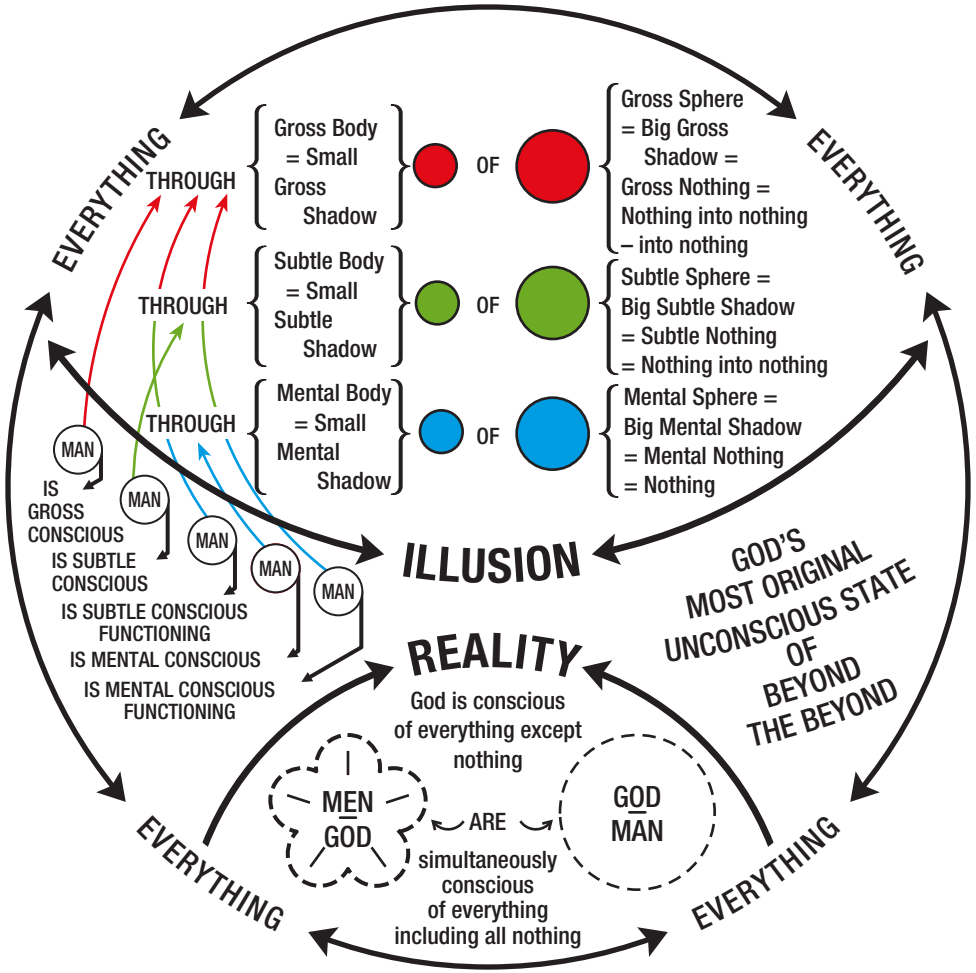
ईश्वर सत्य है और अन्य सब माया है



ईश्वर सबकुछ है और अन्य सब कुछनहीं है

CHART VII

GOD IS REALITY AND ALL ELSE IS ILLUSION



GOD IS EVERYTHING AND ALL ELSE IS NOTHING

इस पृष्ठ के सामने लगे ७ वें चार्ट के विषय में मेहेरबाबा का स्पष्टीकरण

प्राम भुवनों की प्राणशक्ति से और मन भुवनों के प्रकाश से, शंख-महाशंख वर्षों तक भूतकाल में और भविष्य में, स्थूल जगत असंख्य तारागणों, सूर्यों, नक्षत्रों, लोकों, चन्द्रमाओं और उल्कापानों के रूप में नर्मित एवं खण्डित होता रहा है और भविष्य में होता रहेगा । फिर भी, वास्तव में, काल और देश जैसी कोई चीज़ों नहीं हैं । एकबार आत्मा को माया से मुक्ति मिल जाने पर, माया का अस्तित्व न केवल समाप्त हो जाता है, बलिक तब मालूम पड़ता है कि उसका अस्तित्व कभी भी बिल्कुल न था ।

स्थूल जगत की धातु, वनस्पति और पशु जगतों के माध्यम से, लाखों, करोड़ों और असंख्य वर्षों की निश्चित तथापि अपरिमित अवधि तक, क्रमशः विकास होने के बाद, चेतना मनुष्य में पूर्ण हो जाती है । तब मनुष्य को सहीरूप से ईश-चेतना प्राप्त होना चाहिये, किन्तु संस्कारी बन्धनों के कारण ऐसा नहीं होता जो चेतना के विकास के दौरान में सञ्चित हुये मायावी अनुभवों के संस्कारों से पैदा होते हैं । इस प्रकार मनुष्य को केवल स्थूल की पूर्ण चेतना बनी रहती है ।

इसके पहले कि मनुष्य की पूर्ण किन्तु स्थूल चेतना ईश-चेतना की सत्यता में प्रतिवर्धित हो सके, उसको पहले सूक्ष्म चेतना के रूप में प्रतिवर्धित होना चाहिये, और सूक्ष्म चेतना से पूर्ण मनो चेतना के रूप में प्रतिवर्धित होना चाहिये । इसके निमित्त, स्थूल संस्कारों को सूक्ष्म संस्कारों के रूप में और सूक्ष्म संस्कारों से मनो संस्कारों के रूप में परिणत हो जाता चाहिये और, अन्श के अनुसार, प्रारम्भिक संस्कारों की क्षीणता एवं महीनता पुनः प्राप्त करनी चाहिये, जो संस्कार वनस्पति एवं धातु योनियों में सञ्चित हुये थे—मूल भेद चेतना में है ।

विकास की प्रक्रिया में अनुसरण किये गये निश्चित मार्ग के असमान, मनुष्य, मनुष्य के रूप में अपनी चेतना का उपयोग पूर्णतया और स्वतन्त्रता से कर सकता है । इसलिये पूर्णतया स्थूल-चेतनायुक्त मनुष्य, अपने **संस्कारी** बन्धनों को फलतः जकड़ने अथवा ढीला करने के अनुसार, पूर्णरूप से सूक्ष्म-चेतनायुक्त हो सकता है, और उसके पश्चात् पूर्ण मनो-चेतनायुक्त हो सकता है—कभी-वभी कुछ अथवा कभी-कभी असंख्य मानवी पूनर्जन्मों के बाद अपनी चेतना के दो प्रतिवर्धनों में से प्रत्येक के बीच कर सकता है । और यदि किसी मनुष्य को किसी "ईश्वर

(१८३ -- page number at bottom of page)

Meher Baba's Explanation of Chart VII Facing This Page

With the energy from the su btle and the illumination from the mental spheres, for trillions upon trillions of years in the past and in the future, the gross universe has been and will be forming and disintegrating into countless stars, suns, planets, worlds, moons and meteors. Yet, in fact, there are no such things as time and space. Once the soul is freed of illusion, Illusion does not merely cease to exist, but is then found never to have existed at all.

After a gradual evolution through the mineral, vegetable and animal kingdoms of the gross universe for a definite yet immeasurable period of millions, billions and trillions of years, consciousness reaches perfection in man. Man then rightly ought to be God-conscious, but does not become so because of the sanskaric bindings born of impressions of the illusory experiences gathered during the evolution of consciousness. Thus man remains fully conscious only of the gross.

Before man's perfect but gross consciousness can involve into the Reality of God-consciousness, it has first to involve into subtle consciousness, and from the subtle into full mental consciousness. For that, the gross impressions have to turn into the subtle and from the subtle into the mental impressions regaining, in degree, the faintness and fineness of earlier impressions as gathered in the vegetable and mineral forms—the fundamental difference being in consciousness.

Unlike the definite course followed in the process of evolution, man as man can make use of his consciousness fully and freely. Therefore the fully gross-conscious man, according to the resultant tightening or loosening of his sanskaric bindings, can become fully subtle-conscious, and thereafter fully mental-conscious, sometimes after a few or sometimes after numerous human reincarnations between each of the two involutions of his consciousness. And if one happens to be blessed with divine love from a "Lover of God," or if one has the guiding hand of a Perfect Master, the emancipation from all bindings, however great and complicated they

के प्रेमी" से दैवी प्रेम पाने का सोभाग्य प्राप्त होता है, अथवा यदि किसी व्यक्ति को सद्गुरु का पथ-प्रदर्शन प्राप्त होता है, तो उसको सब बन्धनों से मुक्ति, चाहे वे जितने बड़े और जटिल हों, बहुत सरलता से और तीव्रता से प्राप्त हो जाती है । इस नियम के कुछ अपवादों में एक भी पुनर्जनम लेने के बग़ैर तत्काल मुक्ति प्राप्त करना भी सम्भव है ।

जैसा भी हो, **माया** की दुई, अर्थात् दुख और सुख, भला और बुरा, पुरुष और स्त्री, बलवान और निर्बल, इत्यादि के विपरीत अनुभवों के द्वारा बन्धनों को स्वत: ढीला करने के लिये, मनुष्य को कुछ-कुछ पचास करोड़ मौत की निद्राओं के समान चौरासी लाख बार विविध अनुभवों की चेतना रखनी पड़ती है; तथापि, परमात्मा की सर्व-व्यापी कृपा के द्वारा मनुष्य, अनिवार्यरूप से सूक्ष्म-और मनो-चेतनायुक्त बन जाता है, और इस प्रकार बारम्बार होने वाले भौतिक जन्मों और मृत्युओं को थोड़ा-बहुत कम करने में समर्थ होता है ।

अन्तत:, ईश-पुरुष अथवा नर-नरायाण की कृपा से, मनुष्य एक क्षण से बहुत-बहुत कम समय में, पूर्ण चैतन्य परमात्मा बन जाता है और उसको मालूम होता है कि काल और देश खुद उसकी नित्यता एवं अनन्तता से पैदा हुये हैं, जिसमें काल और देश का बिल्कुल अस्तित्व नहीं होता ।‡

(१८४)

‡ [और अधिक स्पष्टियाँ माँगे जाने पर, एरच बी॰ जसावाला ने उत्तर देते हुये लिखा :

"पचास करोड़ मृत्यु की निद्राओं के प्रसंग का उल्लेख लगभग वह है जिससे एक आत्मा को चेतना के विकास की प्रक्रिया के दौरान में गुज़रना पड़ता है—योनियों की चेतना का विकास और पुनर्जन्म का विकास माध्यमों में होते परिवर्तनों की सहायता से, अर्थात् विभिन्न उपजातियों के विभिन्न रूपों से साहचर्य एवं विच्छिन्नता के माध्यम से होता है ।

"चौरासी लाख पुनर्जन्म मनुष्य योनि में होते हैं, किन्तु "मृत्यु की पचास करोड़ निद्राओं' में पूर्व-मानवी रूपों से साहचर्य एवं माध्यम से विच्छिन्नता तथा उनके संस्कारों के अनुभव सम्मिलित होते हैं ।

"मनुष्य को जितने बार वह जन्म ले सकता है उसकी अपेक्षा अधिक समय तक मरना आवश्यक नहीं है । मनुष्य मन के जन्म के साथ एकबार जन्म लेता है, और मन के नाश के साथ मनुष्य एकबार मरता है । इस रूप में, वास्तव में कोई पुनर्जन्म नहीं होता; वह मन के लिये मृत्यु की करोड़ों निद्राओं की केवल एक प्रक्रियाा है, जो एकबार पैदा होता है और एकबार मरता है । मन के जन्म में विकास, पुनर्जन्म और प्रतिवर्धन की प्रक्रियायें सन्निहित होती है । मन की मौत आत्मा का साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है ।"
—सम्पादक]

may be, is achieved much more easily and quickly. In exceptional cases, an instantaneous emancipation is also possible without involving a single reincarnation.

However, in order to loosen the bindings through the opposite experiences of the duality of Illusion, i.e., pain and pleasure, good and bad, man and woman, strong and weak, etc., on his own, man has to remain conscious of multifarious experiences for eighty-four lakhs of times through something like fifty crores of sleeps of death; yet invariably, on account of the all-pervading grace of God, man becomes subtle- and mental-conscious, and is thus able to cut short more or less the stalemate of recurring physical births and deaths.

Finally, by the grace of the God-Man or the Man-God, in far, far less than an instant's flash of time, man becomes fully conscious God and finds that time and space are born of His own eternity and infinitude in which time and space have no existence at all.*

* [Asked for further clarification, Eruch B. Jessawala wrote in reply: "The reference to fifty crores of sleeps of death is approximately what one soul has to undergo during the processes of evolution of consciousness of forms and of reincarnation with the help of changes in the media, i.e., association with and dissociation from different forms of different species. "Eighty-four lakhs of shakings or reincarnations are in human form, but 'fifty crores of sleeps of death' include pre-human forms' associations with and dissociations from media and the experiences of their impressions. "Man need not die more times than he can be born! Man is born once with the birth of mind, and man dies once with the annihilation of mind. As such, there is indeed no reincarnation; it is just a process of crores of sleeps of death for the mind that is born once and that dies once! Birth of mind involves the processes of evolution, reincarnation and involution. Death of mind is realization of the Self." Ed.]

परमात्मा की दस अवस्थायें

एरच बी॰ जसावाला कृत

"परमात्मा की दस अवस्थायें" जो नीचे दी गई हैं एरच बी॰ जसावाला ने मेहेरबाबा के प्रत्यक्ष संरक्षण में लिखी थीं । उनमें एक में मूल मानचित्र, "**परमात्मा की दस अवस्तायें**" का वर्णन और व्याख्या की गई है जिसका विचार मेहेरबाबा ने दिया था ।

—सम्पादकगण

The Ten States of God

By Eruch B. Jessawala

"The Ten States of God" which follows was written by Eruch B. Jessawala under the direct supervision of Meher Baba, describing and interpreting an original diagram, "The Ten States of God," devised by Meher Baba.

—The Editors

परमात्मा की दस मुख्य अवस्थायें

मेहेरबाबा द्वारा चित्रित‡

अवस्था १	परमात्मा	परे-अतिपरे अवस्था में
अवस्था २	परमात्मा	परब्रह्म उप-अवस्थाओं अ, ब, स में ।
अवस्था ३	परमात्मा	कर्त्ता, भर्त्ता और हर्त्ता के रूप में
अवस्था ४	परमात्मा	साकार आत्मा के रूप में
अवस्था ५	परमात्मा	विकास की अवस्था में आत्मा के रूप में
अवस्था ६	परमात्मा	पुनर्जन्म की अवस्था में मानवी आत्मा के रूप में
अवस्था ७	परमात्मा	अध्यात्म में उन्नत आत्माओं की अवस्था में
अवस्था ८	परमात्मा	दिव्य रूप से निमग्न रूप में
अवस्था ९	परमात्मा	शरीर धारी मुक्त हुई आत्मा के रूप में
अवस्था १०	परमात्मा	नर-नरायाण और ईश-पुरुष के रूप में

(१८६ -- page number at bottom)

‡ ८ वाँ चार्ट देखिये ।

The Ten Principal States of God

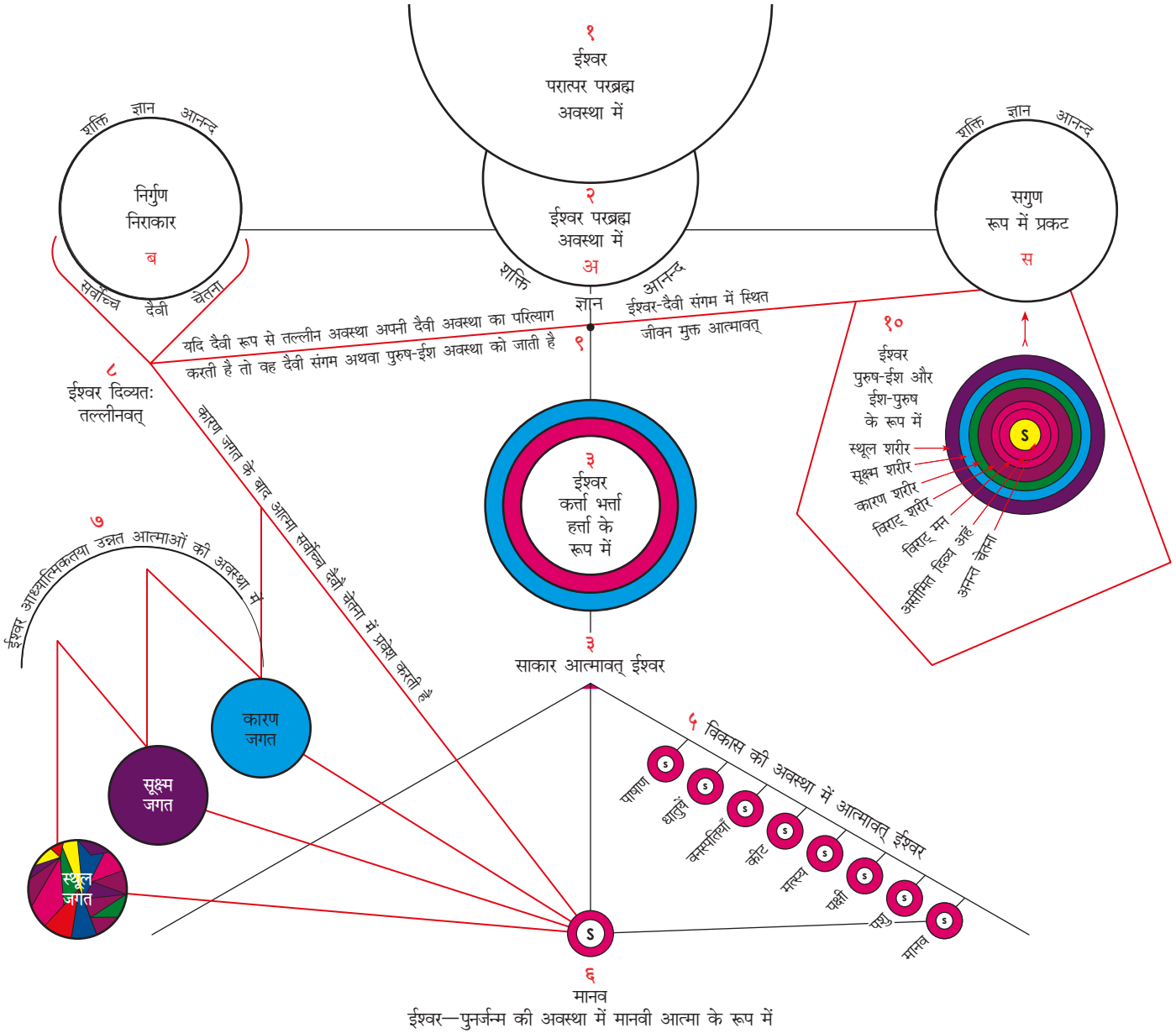
DEPICTED BY MEHER BABA*

STATE I	GOD	IN	BEYOND-BEYOND
STATE II	GOD	IN	BEYOND Sub-States A, B, C
STATE III	GOD	AS	EMANATOR, SUSTAINER AND DISSOLVER
STATE IV	GOD	AS	EMBODIED SOUL
STATE V	GOD	AS	SOUL IN THE STATE OF EVOLUTION
STATE VI	GOD	AS	HUMAN SOUL IN THE STATE OF REINCARNATION
STATE VII	GOD	IN	THE STATE OF SPIRITUALLY ADVANCED SOULS
STATE VIII	GOD	AS	THE DIVINELY ABSORBED
STATE IX	GOD	AS	LIBERATED INCARNATE SOUL
STATE X	GOD	AS	MAN-GOD and GOD-MAN

* See chart.

ईश्वर की दस अवस्थायें

अ—ईश्वर न तो चेतनतया शक्ति, ज्ञान, आनन्द का अनुभव करता है और न उनका प्रयोग करता है
ब—ईश्वर चेतनतया शक्ति, ज्ञान, आनन्द का अनुभव करता है किन्तु उनका प्रयोग नहीं करता है
स—ईश्वर चेतनतया शक्ति, ज्ञान, आनन्द का अनुभव करता है और उनका प्रयोग करता है



ईश्वर—पुनर्जन्म की अवस्था में मानवी आत्मा के रूप में

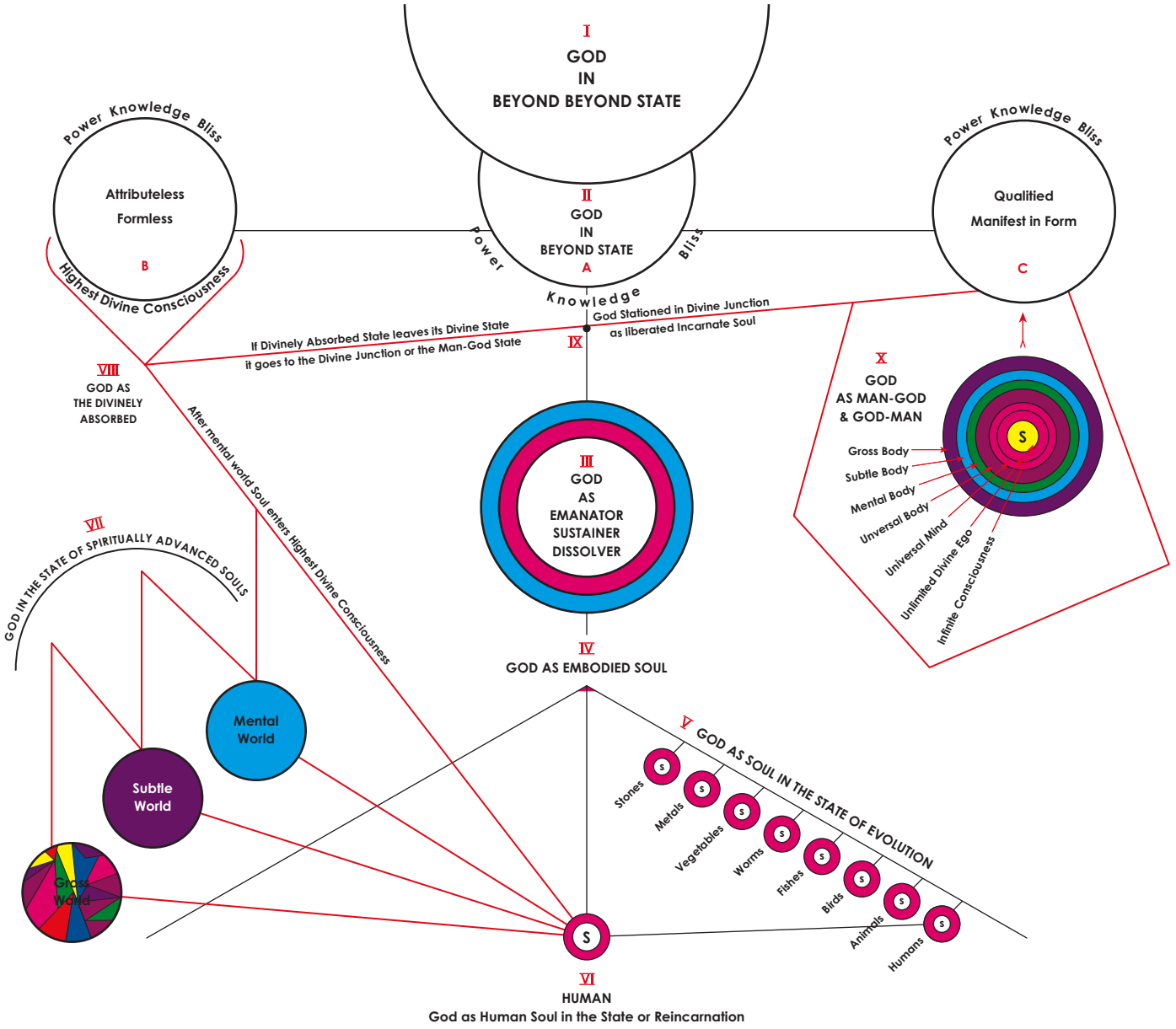
वेदान्तिक	गूढ़	सूफ़ी
परात्पर परब्रह्म	ईश्वर की परात्पर परब्रह्म अवस्था	ग़ैब-उल-ग़ैब वरा-उल-वरा
परमात्मा	ईश्वर परब्रह्म अवस्था में	अल्लाह
अनन्त	अपार	ला महदूद
निर्गुण	गुणातीत	ला सिफ़ात
निराकार	रूपरहित	ल सूरत
सत्-चित्-आनन्द	शक्ति, ज्ञान, आनन्द	कुदरत, मारेफ़त, मसर्रत
विज्ञान भूमिका	प्रभुत्व का प्रदेश	आलम-ए-हाहूत अर्श-ए-आला
आत्मप्रतिष्ठापना सहज समाधि	ईश्वर के जीवन में स्थापित	बक़ा बिल्लाह
विज्ञान	सर्वोच्च दिव्य चेतता	अहादियत आलम-ए-लहुत
सगुण	गुणयुक्त	बा सिफ़ात
साकार	रूप में प्रकट	बा सूरत
ब्रह्मा	कर्त्ता	अफ़रीदगर
विष्णु	भर्त्ता	परवरदिगार
महेश	हर्त्ता	फनाकर
मनो भुवन	मनोलोक	आलम-ए-जबरूत
प्राण भुवन	सूक्ष्म लोक	आलम-ए-मलाकूत
अन्न भुवन	स्थूल लोक	आलम-ए-नासूत
उत्क्रान्ति	विकास	इरतेक़ा
पुनर्जन्म	पुनरावतरण	रिज'अत अथवा आवागवन
भूमिका	प्लेन	आसमान
आत्मा	जीवात्मा	जान अथवा रूह
जीव आत्मा	देहधारी आत्मा	जान-ए-जिस्मी
मानव	व्यक्ति	इन्सान
योगी (साधक)	जिज्ञासु	रहरव
साधु	उन्नत आत्मा	मुतवस्सित
महात्मा	महान आत्मा	अख्यार
महापुरुष (सन्त)	सन्त	अबरार = वली
सत्पुरुष	प्रवीण तीर्थयात्री (सन्त)	अफ़राद = पीर
मनोनाश (निर्वाण)	मन का नाश (आत्म)	अन्तिम फ़ना
निर्विकल्प	ईश्वर से ऐक्य	फ़ना-फ़िल्लाह
ब्रह्मीभूत	दिव्यत: निमग्न ग्र?	मजज़ूब-ए-कामिल
तुरिया अवस्था	दिव्य सन्धि	फना मा-उल-बक़ा (at) मुक़ाम-ए-फ़ुरूतात
परमहंस	दिव्य अन्तत-पुरुष	मजज़ूब-सालिक अथवा सालिक-मजज़ूब
जीवनमुक्त	बन्धनमुक्त देहधारी	आज़ाद-ए-मुतलक़
सादगुरु	नर-नारायण	कुतुब
अवतार	ईश-पुरुष	साहब-ए-ज़मां

वेदान्तिक और वेदान्तिक के निकट अर्थ वाले शब्द

CHART VIII

THE TEN STATES OF GOD

A God neither consciously experiences Power, Knowledge Bliss nor uses them
B God consciously experiences Power, Knowledge, Bliss but does not use them
C God consciously experiences Power, Knowledge, Bliss and uses them



VEDANTIC*	MYSTIC	SUFI
Paratpar Parabrahma	God's Beyond-Beyond State	Ghaib-ul-Ghaib Wara-ul-Wara
Paramatma	God in Beyond State	Allah
Anant	Infinite	La Mahdood
Nirguna	Attributeless	La Sifat
Nirakar	Formless	La Surat
Sat-Chit-Anand	Power, Knowledge, Bliss	Qudrat, Marefat, Musarrat
Vidnyan Bhumika	Realm of Mastery	Alam-e-Hahut
Atmapratisthapana Sahaj Samadhi	Established in the Life of God	Baqa-Billah
Vidnyan	Highest Divine Consciousness	Ahadiyat Alam-e-Lahut
Saguna	Qualitied	Ba Sifat
Sakar	Manifest in Form	Ba Surat
Brahma	Emanator	Afridgar
Vishnu	Sustainer	Parvardigar
Mahesh	Dissolver	Fanakar
Mana Bhuvan	Mental Sphere	Alam-e-Jabrut
Pran Bhuvan	Subtle Sphere	Alam-e-Malakut
Anna Bhuvan	Gross Sphere	Alam-e-Nasut
Utkranti	Evolution	Irteqa
Punar Janma	Reincarnation	Rij'at or Awagawan
Bhumika	Plane	Asman
Atma	Soul	Jan, or Ruh
Jiv-Atma	Embodied Soul	Jan-e-Jismi
Manava	Human	Insan
Yogi (Sadhak)	Aspirant	Rahrav
Sadhu	Advanced Soul	Mutawassit
Mahatma	Great Soul	Akhyar
Mahapurush (Sant)	Saint	Abrar = Wali
Satpurush	Adept Pilgrim (Saint)	Afrad = Pir
Manonash (Nirvana)	Annihilation of Mind (self)	The final Fana
Nirvikalpa	Oneness with God	Fana-Fillah
Brahmi Bhoot	The Divinely Absorbed	Majzoob-e-Kamil
Turiya Avastha	Divine Junction	Fana-ma-al-Baqa at Muqam-e-Furutat
Paramhansa	Divine Super-Man	Majzoob-Salik or Salik-Majzoob
Jivanmukta	Liberated Incarnate	Azad-e-Mutlaq
Sadguru	Man-God	Qutub
Avatar	God-Man	Saheb-e-Zaman

* Vedantic and near-Vedantic terms.

Blank Page

Blank Page

भाग ९

परमात्मा की दस अवस्थायें

इस अध्याय के पृष्ठ उस मानचित्र के चारों ओर बनाये गये हैं जो **परमात्मा भी दस अवस्थाओं** का चित्रण करता है । यह मानचित्र स्वयं मेहेरबाबा ने प्रदान किया है; यह उनके परम ज्ञान के अथाह भण्डार का एक रत्न है । इस मानचित्र के आध्यात्मिक शब्द अत्यन्त सामान्यतः स्वीकार विये गये सूफ़ी, चेदान्तिक और ईसाई रहस्तवादी समानार्थक शब्दों से जोड़े गये हैं ।

यदि हम इस मानचित्र पर एक विहङ्गम दृष्टि डालें तो हमें मालूम होगा कि यह वह चित्रण करता है जो वास्तव में परमात्मा के मनुष्य रूप (इन्सान, जीवात्मा) की अवनति के सबसे नीचे बिन्दु तक की अधोमुखी यात्रा है, और उसकी ऊर्ध्वमुखी यात्रा पुनः चेतना की उधारती हुई भूमिकाओं से होकर, वापस मूल स्त्रोत तक है; पहले दिव्य रूप में निमग्न **मजज़ूब-ए-कामिल** के रूप में और अन्ततः सद्गुरु में (**इन्सान-ए-कामिल, शिव-आतमा**) परम शिखर पर पहुँचने में । परमात्मा की दास विभिन्न अवस्थायें इस यात्रा पर मुख्य स्थितियाँ हैं—एक यात्रा जिसमें अचैतन्य परमात्मा, चैतन्य परमात्मा होने के लिये, चैतन्य पुरूष बन जाता है ।

यद्यपि परमात्मा की ये अवस्थायों एक-दुसरे से प्रत्यक्ष रूप से भिन्न रूप में दिखाई गई, तथापि वे प्रभाव में **एक परमात्मा** के **दस पहलू** हैं, जो परमात्मा अभी विद्यमान है, और सदैव विद्यमान, एक, रहेगा । परमात्मा का अवतरण और उर्ध्वगमन केवल कल्पना में है, और कल्पना के समाप्त हो जाने पर व्यक्तिगत आत्मा के लिये पूर्ण चैतन्यता के साथ यह अनुभूति आती है कि केवल एकमेव परमात्मा का अस्तित्व और अन्य कोई भी चीज़ और सबकुछ, जो अस्तित्व में दिखाई पड़ता है, केवल उसकी छाया है ।

PART 9

The Ten States of God

The pages of this chapter are built around the diagram depicting THE TEN STATES OF GOD. This diagram has been given by Meher Baba himself; it is a gem from the fathomless treasure of his supreme gnosis. The spiritual terms of this diagram have been linked up with the most generally accepted Sufi, Vedantic and Christian mystical equivalents.

If we were to take a bird's-eye view of this diagram we should find that it depicts what is really the downward journey of the Over-Soul to the lowest point of devolution as man (*insan, jiv-atma*), and its upward journey again through the unfolding planes of consciousness, back to the original source, first as the divinely absorbed *Majzoob-e-Kamil* and culminating finally in the Perfect Man (*Insan-e-Kamil, Shiv-Atma*). The ten different states of God are principal stages on this journey, a journey in which unconscious God becomes conscious man, in order to become conscious God.

Although these states of God are depicted as apparently distinct from one another, they are in effect ten **aspects** of the One God Who is, and will always remain, One. The descent and ascent of the Over-Soul is in imagination only, and with the cessation of imagination comes the realization with full consciousness for the individual soul that God alone exists and that anything and everything else which appears to exist is but His shadow.

मेहेरबाबा का ज्ञान-पथ, बिना किसी वक्र-अक्ति के, सारूप्यवाद (**वहदत-उल-वुजूद**)[३४] का एवं अद्वैतवाद के सिद्धान्त दोनों का समर्थन करता है । "मेहेरबाबा द्वारा प्रदान की गई परमात्मा की दस अवस्थाओं" के चार्ट में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि एकमेव परमात्मा ही, यथार्थ और काल्पनिक विभिन्न भूमिकायें अदा करता है । आदि परमात्मा है और अन्त परमात्मा है; और बीच में आने वाली सभी स्थितियाँ परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकतीं । इस्लामिक शास्त्र का आध्यात्मिक सिद्धान्त है "**हुवल अव्वल, हुवल आख़ीर, हुवल ज़ाहिर, हुवल बातिन**" (वह आदि है, वह अन्त है, वह बाह्य है, वह आन्तरिक है) ।

मौलाना शाबिस्तरी ने गुलशन-ए-राज़ में कहा है :

अज़ अन दर कामद गर अन्दर आमद अव्वल हम बीदर शुद बिदर
अगर चे अगर्चे दर माद अज़ दर बीदर शुद ।

"वह पहले जिस दरवाज़े से बाहर आया था उसी दरवाज़े को वापिस आता है, यद्यपि वह अपनी यात्रा में दर-दर फिरा था ।"

अब हम परमात्मा की इन दस अवस्थाओं में से प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन देने का प्रयत्न करेंगे जैसा मेहेरबाबा ने समझाया है ।

स्थिति १
परमात्मा परे-अति-परे अवस्था में

परमात्मा की यह अवस्था इतनी ऊँची है कि वास्तव में इसकी कोई कल्पना नहीं की ना सकती । यह बिल्कुल निर्मल और निष्कलंक है और उसमें "दूसरेपन" का लेशमात्र नहीं है । यह समस्त गुप्त ज्ञान का ज्ञान है और समस्त आन्तरिक सत्यताओं का आन्तरिक सत्य है । यह समस्त शब्दों के परे है, इसलिये इसका पर्याप्त वर्णन नहीं किया जा सकता । यह न तो सीमित है और न असीमित है, न तो निर्गुण है और न सगुण है । इस प्रदेश में विचार, हस्तक्षेप, भेदभाव और समझ के पङ्गु लँगड़े तथा निरर्थक हैं ।

बेख़याल दर नगुन्जद, तु ख़याले खुद मरन्जान । तू
ज़े जहत बुअद मुबर्रा मतलब बेहिच सुयश । बेहीच सूयश

—हाफ़िज़

(१८८)

Meher Baba's gnosis upholds without equivocation both the theory of Identityism (wahdat-ul-wujud)[34] and the theory of Advaitism. In the chart "The Ten States of God" by Meher Baba, it is made clear that it is God alone who plays the different roles, real and imaginary. The beginning is God and the end is God; the intermediary stages cannot but be God. The spiritual dictum of Islamic theology is "Huwal awwal, Huwal akher, Huwal zaher, Huwal batin "(He is the first, He is the last, He is the external, He is the internal).

Az ān dar kāmad ??

Maulana Shabistari, in *Gulshan-e-Raz*, says:

Gar āndar āmad avval ham bidar shud از آن در کآمد اول هم به در شد
Agar cih dar ma'ād az dar bidar shud. اگر چه در معاش از در به در شد

"He returns to the door from which he first came out, although in his journey he went from door to door."

We shall now try to describe concisely each one of these ten states of God as explained by Meher Baba.

State I
God in the Beyond-Beyond State

This state of God is so transcendent that nothing can really be conceived of it. It is utterly pure and immaculate and has no tinge of "otherness." It is the hidden of all hidden knowledge and the internal of all internal realities. It is beyond all words and so it cannot be adequately described. It is neither finite nor infinite, neither attributeless nor with attributes. In this domain the wings of thought, inference, discrimination and understanding are limp and useless.

Bikhiyāl dar nagunjad, tū khiyāl-i khvud maranjān
Zi jahat buvad mubarrā maṭalab bihīc sūyash.

—Hafiz

"वह मन के द्वारा नहीं पकड़ा जा सकता, अतः तुम उसको समझने की कोशिश न करो; वह सभी दिशाओं से स्वतन्त्र है; अतः उसको कहीं ढूँढ़ने का प्रयत्न न करो ।"

मेहेरबाबा कहते हैं कि परमात्मा की इस अवस्था को प्राप्त हुआ मनुष्य जब इसका वर्णन दूसरे लोगों से करने का प्रयत्न करता है; तो इस क्रिया का परिणाम परमात्मा की पहली अवस्था के वर्णन में नहीं, बल्कि परमात्मा की दूसरी अवस्था—अर्थात् परमात्मा की परब्रह्म अवस्था—के वर्णन में होता है ।

वह समस्त नित्यताओं (*Eternity*) की नित्यता (**अज़ल-उल-अज़ल**) है क्योंकि इसके पहले अथवा इसके बाद किसी भी नित्यता के अस्तित्व की वल्पना नहीं की जा सकती । इस स्थल पर समस्त लक्षणों का सकाया हो जाता है (**मुन्क़ाता-उल-इज़्जारात**), क्योंकि किसी भी दूसरी चीज़ का अस्तित्व नहीं रहता जिसका संकेत किया जा सके अथवा उल्लेख किया जा सके । इस निर्मल तत्व (**ज़ात-उल-बहत**) को किसी भी चीज़ का, यहाँ तक कि खुद अपने का, भान नहीं रहता ।

इस अवस्था का उल्लेख सूफ़ी लोग **वरा-उल-वरा**—अर्थात् परमात्मा की **परे-अति-परे अवस्था**—के रूप में करते हैं । वेदान्त उसको **परात्पर परब्रह्म** करता है ।

यह वही अवस्था है जिसमें परमात्मा न तो **निर्गुण** (गुणरहित) है और न **सगुण** (गुण सहित) है, न तो **निराकार** (रूप रहित) है और न **साकार** (रूपधारी) है ।

परमात्मा की सभी मुख्य दस अवस्थाओं में, प्रथम और अत्यन्त-मूल अवस्था परमात्मा की **परात्पर-परब्रह्म अवस्था है** ।

जब परमात्मा के आदि के आदि के परे में परमात्मा की कोई दूसरी अवस्थायें न थीं, तब परमात्मा की केवल अत्यन्त-मूल अनन्त अवस्था (अर्थात्, "परमात्मा-है" अवस्था) परमात्मा की परात्पर-परब्रह्म अवस्था के रूप में व्याप्त थी ।

परमात्मा की इस परात्पर-परब्रह्म अवस्था की अनन्तता में केवल **अनन्तता** की अनन्तता असीमित, अखण्ड, अनन्त, **ईश्वरीय शून्यता** (*vacuum*) के रूप में प्रगट होती है; और परमात्मा की अन्य सब अवस्थायें, गुण तथा पहलू, अनन्त चेतना और अनन्त अचेतना के सहित, ये सब **शून्य** के रूप में उस असीमित, अखण्ड, अनन्त ईश्वरीय शून्यता

"He cannot be grasped by the mind, therefore do not exert yourself to understand Him; He is free of all directions, therefore do not try to seek Him anywhere."

Meher Baba says that when one who has **realized** this state of God tries to describe it to others, this act results in a description not of the first, but of the second state of God—God in the Beyond state.

It is the Eternity of all eternities (*Azl-ul-Azal*) because no eternity can be conceived of to precede or to follow it. Here all indications are blotted out (*Munqata-ul-Izharat*), since no other thing exists that can be pointed out or referred to. This pure essence (*Zat-al-Baht*) is not aware of anything, even of itself.

This state has been referred to by the Sufis as *Wara-ul-Wara*—The Beyond-Beyond state of God. Vedanta calls it *Paratpar Parabrahma*.

This is the state in which God is neither *nirguna* (attributeless) nor *saguna* (with attributes), neither *nirakar* (formless) nor *sakar* (with forms).

Of all the principal ten states of God, the first and the most-original state is the Beyond-Beyond state of God.

When there were no other states of God in the beyond the beginning of the Beginning, only the most-original infinite state of God (that is, "God-Is" state) prevailed as the Beyond-Beyond state of God.

In the infinitude of this Beyond-Beyond state of God only the infinity of Infinitude is manifest as the unbounded, absolute, infinite Divine Vacuum; and all other states, attributes and aspects of God, including infinite consciousness and infinite unconsciousness, are all latent

की अनन्तता में **सबकुछवत्** (**सबकुछ** में **शून्य** भी सीम्मलित होता है) अन्तर्हित होते हैं ।

इस प्रकार, परमात्मा की अत्यन्त-मूल परात्पर परब्रह्म अवस्था वह अवस्था है जहाँ कोई केवल यह कह सकता है : शाश्वतरूप से **प्ररमात्मा-है**; और यह कि इस अत्यन्त-मूल अवस्था में, परमात्मा को, खुद की अथवा खुद अपनी अनन्तता की अवस्था की, न तो अनन्त और न सीमित चेतना होती है, न अचेतना होती है । इस अवस्था में परमात्मा को **माया** अथवा **सत्यता** की न तो चेतना होती है और न अचेतना होती है ।

स्थिति २
परब्रह्म परमात्मा अवस्था में परमात्मा

हम यह पहले ही कह चुके हैं कि परमात्मा की परात्पर-परब्रह्म अवस्था का वर्णन कभी भी पर्याप्त रूप से नहीं किया जा सकता । ईश्वरानुभूति प्राप्त प्राणी, जब वे परात्पर-परब्रह्म अवस्था का वर्णन करने का प्रयत्न करते हैं, तो वे केवल परमात्मा की परब्रह्म अवस्था का वर्णन करने में ही सफल होते हैं, जो सूफ़ियों का **अल्लाह**, जुरथस्त्र के अनुयायियों का **अहूरमज़्द**, वेदान्तियों का **परमात्मा**, ईसाईयों का स्वर्ग निवासी पिता, और कुछ दार्शनिकों का **परमात्मा** (*over-soul*) है । परमाम्ता परब्रह्म अवस्था में पूर्ण, असीमित और अनन्त होता है—अद्वैत होता है ।

मेहेरबाबा ने, परमात्मा की इस दूसरी अवस्था को समझाते हुये, इस बात पर बल दिया है कि मूल रूप से अवस्था २ परमात्मा की अवस्था १ से किसी भी प्रकार से भिन्न नहीं है; परमात्मा की अवस्था २ की **अ**, **ब**, और **स** उप अवस्थायें ही भेद पैदा करती **हैं** ।

अन्तर किस प्रकार, कब और कहाँ पैदा हुआ इसका वर्णन मेहेर बाबा के स्पष्टीकरणों से निम्नलिखित रूप में वर्णन किया जाता है :

उस क्षण जबकि अनन्त परमात्मा की गुप्त मूल अनन्त लहर खुद को जानने के लिये कि ("मैं कौन हूँ ?"), **अत्यन्त-मूल** परात्पर-परब्रह्म की अवस्था के अमित, पूर्ण, अनन्त दैवी शून्यता (*vacuum*) की अमित एकरूपता में उभरने के निकट होती है (*surge*), तब इस अनन्त लहर को जानने की स्वयं आशा ही, परमात्मा के अमित, पूर्ण

as the Nothing in that Infinitude of the unbounded, absolute, infinite Divine Vacuum as the Everything (Everything also includes the Nothing).

Thus, the most-original Beyond-Beyond state of God is that state where one can only say: God-Is eternally; and that in this most-original state, God is neither infinitely nor finitely conscious, nor unconscious, of Self or of His own state of Infinitude. In this state, God is also neither conscious nor unconscious of Illusion or Reality.

State II
God in the Beyond State

We have already stated that the Beyond-Beyond state of God can never be adequately described. God-realized beings, when they try to describe the Beyond-Beyond state, succeed only in describing the Beyond state of God, which is the *Allah* of Sufis, the *Ahuramazda* of Zoroastrians, the *Paramatma* of Vedantists, God the Father of Christians, and the Over-Soul of some philosophers. God in the Beyond state is absolute, unlimited and infinite—the One without a second.

Meher Baba, while explaining this second state of God, stressed that fundamentally State II is in no way different from State I of God; the sub-states A, B and C of State II of God are what create the difference.

How, when and where the difference came into being is described as follows from the explanations of Meher Baba:

At the instant when the latent original infinite whim of the infinite God to know Himself ("Who am I?") is about to surge in the unbounded uniformity of the unbounded, absolute, infinite Divine Vacuum of the **most-original** Beyond-Beyond state of God, the very prospect of this

अनन्त दिव्य शून्यता के शाश्वतः शान्त सन्तुलन को प्रेरित करती हुई .अकल्पनीय हो जाती है ।

किन्तु अनन्त लहर के ऊभार और स्वयं उसकी अकल्पनीयता का **तथ्य,** स्वतः परमात्मा की स्थिति के दूसरे पहलू को अस्तित्व में ला देता है जो, परमात्मा की अत्यन्त-मूल परात्पर-परब्रह्म अवस्था के अमित, पूर्ण, अनन्त दिव्य शून्यता की अपेक्षा अन्य अवस्था होती है, जहाँ न पहलू की आशा होती है न गुण होता है; न अनन्त अथवा सीमित चेतना होती है, और न अनन्त अथवा सीमित अचेतना होती है; और जहाँ, सिवाय ईश्वर की अनन्तता के जो नित्य प्रकट है, प्रत्येक अन्य चीज़—अनन्त लहर और उसके फलस्वरूप जानने-की-अनन्त-लहर, भी गुप्त होती है ।

इस प्रकार से ही परात्पर-परब्रह्म अवस्था में उभरती हुई अनन्त लहर की प्रत्याशा की अकल्पनीयता अपनेआप प्रत्याशिता को उघारती है, जो भी सीमित अवस्था में गुप्त होती है, और यह अभिव्यक्ति (प्रत्याशिता की) परमात्मा की अत्यन्त-मूल परात्पर-परब्रह्म अवस्था को एक अनन्त पहलू की प्रत्याशा प्रदान करती है, जो अत्यन्त-मूल और शाश्वत **अवस्था** से भिन्न होता है ।

तदनुसार परमात्मा की दूसरी अवस्था अत्यन्त-मूल प्रथम अवस्था के दूसरे अनन्त पहलू के रूप में ही अस्तित्व में आती हैं । परमात्मा की दस मुख्य अवस्थाओं की यह दूसरी अवस्था **परमात्मा की मूल परब्रह्म** अवस्था कहलाती है ।

इस बात पर अच्छी तरह ध्यान देना चाहिये कि परमात्मा की यह मूल दूसरी अवस्था, जो चार्ट में २ (II) के रूप में दिखाई गई है और "परे अवस्था में परमात्मा" कही गई है, उसको किसी भी तरह से परमात्मा की अवस्था के रूप में न मानना चाहिये जो परमात्मा की अत्यन्त-मूल प्रथम अवस्था की अपेक्षा अन्य अवस्था से बिल्कुल भिन्न हो, जो चार्ट १ (I) के रूप में दिखाई गई है और "**परात्पर-परब्रह्म अवस्था में परमात्मा**" के नाम से प्रगट की गई है ।

परमात्मा की **अवस्था १** और **अवस्था २** में केवल यह अन्तर है कि अवस्था १ असीमित, अखण्ड, अनन्त ईश्वरी शून्यता की अवस्था है, जहाँ अनन्त लहर के उभार की सून्यता दर्शिता भी (*prospect*) अकल्पनीय है । इसलिये, केवल उस क्षण जबकि मूल अनन्त लहर

infinite urge-to-know, prompting the eternally tranquil poise of God in the unbounded, absolute, infinite Divine Vacuum, becomes inconceivable.

But the **fact** of the insurge of the infinite whim and its very inconceivability, spontaneously brings into being another aspect of God's state other than the most-original Beyond-Beyond state of unbounded, absolute, infinite Divine Vacuum, where there is neither prospect of aspect nor attribute; neither the infinite or finite consciousness nor the infinite or finite unconsciousness; and where, except for the infinity of God which is eternally manifest, every other thing is latent including the infinite whim and the consequent infinite urge-to-know.

Thus it is that the very inconceivability of the prospect of the infinite whim surging in the Beyond-Beyond state automatically unfolds the prospectiveness, which is also latent in the infinite state; and this manifestation (of prospectiveness) bestows upon the most-original Beyond-Beyond state of God the prospect of an infi-nite aspect different from that of the most-original and eternal state.

The second state of God accordingly comes into being only as another infinite aspect of the most-original first state. This second state of the ten principal states of God is called the Original Beyond State of God.

It is to be heeded well that this original second state of God, denoted in the chart as "II" and termed "God in Beyond State," is in no way to be taken as a state of God altogether other than the most-original first state of God, denoted in the chart as "I" and termed "God in Beyond-Beyond State."

The only difference between State I and State II of God is that State I is of unbounded, absolute, infinite Divine Vacuum, where even the remotest prospect of the insurge of the infinite whim is inconceivable.

परमात्मा-है अवस्था की अनन्तता में उभरती है, तभी अनन्त परमात्मा "मैं कौन हूँ ?" के रूप में जानने-की-अनन्त मूल लहर की कल्पना कर सकता है—अर्थात्, केवल जिस समय परात्पर-परब्रह्म परमात्मा में **अवस्था १** की पहलू रहित अवस्था परब्रह्म-परमात्मा अवस्था की **अवस्था २** के पहलू को प्राप्त करती है । इस प्रकार **परात्पर-परब्रह्म** को **परमात्मा** का अनन्त रूप प्राप्त होता है ।

इसे भी ध्यान से और बहुत सावधानी से नीट करना चाहिये कि चार्ट में २ के रूप में अङ्कित की गई परब्रह्म अवस्था मूलरूप से वही अवस्था है जो चार्ट में १ के रूप में अङ्कित परमात्मा की परात्पर-परब्रह्म अवस्था है । लेकिन चार्ट में ये दो अवस्थायें, **अवस्था १** और **अवस्था २**, अलग से चित्रित की गई हैं, क्योंकि यद्यपि परब्रह्म-परमात्मा अवस्था की **अवस्था २** परमात्मा की वही **मूल** अवस्था है, फिर भी परमात्मा की **अत्यन्त-मूल** अवस्था नहीं है जो परात्पर-परब्रह्म अवस्था है । इससे अनिवार्यरूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि चूँकि परमात्मा अनन्त मूल लहर के अनन्त उभार की कल्पना कर सकता था और, **केवल** अवस्था २ में, "मैं कौन हूँ ?" के रूप में, खुद को जानने-की अनन्त मूल लहर की अनन्त मूल अन्तः प्रेरणा प्राप्त कर सकता था, जब परमात्मा अवस्था १ में शश्वतः, स्वयं अपनी शाश्वत अवस्था १ के अन्तर्गत, जो अत्यन्त-मूल परात्पर-परब्रह्म अवस्था है, अवस्था २ का अनन्त मूल रूप धारण करता है ।

इसको और स्पष्टरूप में प्रकट करें; परमात्मा की इन दोनों अवस्थाओं में (अवस्था १ और अवस्था २), परमात्मा की शाश्वत अनन्तता की नित्य प्रगट अनन्तता के अलावा, (असीमित, अखण्ड, अनन्त दिव्य शून्यता के रूप में), सब गुण, सब पहलू, सब अवस्थायें, परमात्मा की अनन्त और अत्यन्त-सीमित चेतना एवं अचेतना, जिसमें परमात्मा की शक्ति, ज्ञान और आनन्द तथा अन्य सब चीज़ें खुद उसकी अनन्त त्रि-प्रकृति में सन्निहित होती हैं, सब असीमित, अखण्ड, अनन्त **ईश्वरीय शून्यता** में गुप्त होते हैं ।

यह सब जो **अनन्तता** में गुप्त है केवल परमात्मा की अवस्था २ में ही प्रगट होने की गुन्जाइश रख सकता था, जो केवल इस अर्थ में अवस्था १ से भिन्न कहा जा सकता है, कि वह सबकुछ जो अनन्त रूप से, और अत्यन्त-सीमित रूप में, प्रगट होने की इस अनन्त गुन्जाइस

Therefore, only at the instant when the original infinite whim insurges in the infinitude of the God-Is state could infinite God conceive the infinite original urge-to-know, as "Who am I?"—that is, only when the aspectless State I of God in Beyond-Beyond gets the aspect of State II of God in Beyond. *Paratpar Parabrahma* thus gets the infinite aspect of Paramatma.

It is also to be noted very carefully that the Beyond state marked in the chart as "II" is fundamentally the same as the Beyond-Beyond state of God marked in the chart as "I." But in the chart these two states, State I and State II, are depicted separately, because even though State II of God in Beyond state is the same **original** state of God, yet it is not the **most-original** state of God which is the Beyond-Beyond state. This necessarily follows because God could conceive the infinite insurge of the infinite original whim and could get the infinite original impulse of the infinite original urge-to-know, as "Who am I?" only in State II, when God eternally in State I assumes the infinite original aspect of State II within His own eternal State I which is the most-original Beyond-Beyond state.

To be more explicit, in both these states of God (States I and II) , except for the eternally manifest infinity of the eternal infinitude of God (as the unbounded, absolute, infinite Divine Vacuum), all attributes, all aspects, all states, infinite and most-finite consciousness and unconsciousness of God, including God's own infinite trio-nature of power, knowledge and bliss and all other things, are all latent in the unbounded, absolute, infinite Divine Vacuum.

All this that is latent in the Infinitude could only have the scope of manifestation in State II of God, which may be said to differ from State I only in this respect, of having this infinite scope of manifestation of all

रखने की, **सबकुछवत्** परमात्मा की अनन्तता के **शून्य** रूप में गुप्त होती है ।

इसके फलस्वरूप, परमात्मा की अत्यन्त मूल लहर, जो एकबार उठ जाने पर, केवल परमात्मा की अवस्था २ में ही उठने की सम्भावना रखती थी; और जब वह लहर उभर पड़ी, तो वह परमात्मा की अनन्तता में एकरूपता के साथ उठी । किन्तु जब लहर उठी, तब इस सहर के उभार का **अनुभव** परमात्मा अपनी अपारतया अत्यन्त स्वतन्त्र **परात्पर-परब्रह्म अवस्था** की अवस्था १ में कभी न कर सकता था; उसका अनुभव परमात्मा ने, शाश्वतरूप से अत्यन्त-मूल परात्पर-परब्रह्म अवस्था मे, केवल अपनी अवस्था २ के अनन्त पहलू के द्वारा "परब्रह्म-परमात्मा अवस्था में" परमात्मावत् किया ।

अस्तु, अनन्त मूल लहर का अनन्त उभार और उसके फलस्वरूप होने वाली अनन्त प्रतिक्रियायें वास्तव में **परब्रह्म परमात्मा की अवस्था २** में प्रभावित (*affected*) होती हैं ।

उस क्षण जब अनन्त मूल लहर उठी और परमात्मा को "मैं कौन हूँ ?" के रूप में, जानने की अनन्त मूल लहर प्राप्त हुई, तो लहर के अनन्त हिलोरन की अनन्त सरूपता ने स्वतः, परमात्मा की गुप्त अनन्त चेतना और गुप्त अनन्त अचेतना दोनों को एकसाथ परमात्मा की मूल परब्रह्म अवस्था में अभिव्यक्त किया, जो फिर भी शाश्वतः अत्यन्त-मूल **परात्पर-परब्रह्म** अवस्था में है ।

गुप्त अनन्त चेतना का और अनन्त अचेतना का **एकसाथ** हुआ यह स्वतः आविर्भाव, मानवी बुद्धि की पकड़ के परे होने के कारण समझ और विचार के परे है । यह वास्तव में **यथार्थता** के प्रदेश का असत्याभास है, और यह समस्त मानवी समझ को असफल कर देता है । परमात्मा स्वतः खुद अपनी अनन्त चेतना और अपनी अनन्त अचेतना एक ही समय कैसे प्राप्त कर सकता था ? इसको समझाते हुये, मेहेरबाबा ने घोषित किया था कि यह एक सत्य बात है, और यह **सत्यता** के प्रदेश की बात है, किन्तु यह मन के द्वारा कभी भी समझी और पकड़ी नहीं जा सकती; इसको केवल सत्यता का साक्षात्कार होने पर अनुभव किया जा सकता है । इसके साथ-साथ, इस उद्देश्य से कि हम कम से कम सत्यता में प्रभावित इस तथ्य की कुछ कल्पना प्राप्त कर सकें, और हम इसको केवल एक असत्याभास पूर्ण रहस्य न समझें,

that is infinitely, and most finitely, latent as the Nothing in the infinitude of God as the Everything.

Consequently, the infinite original whim of God, when it once surged, had the feasibility of surging only in State II of God; and when it surged, it did so uniformly in the infinitude of God. But when the whim surged, the insurge of this whim could never be **experienced** by God in His infinitely most independent Beyond-Beyond State I; it was experienced by God, eternally in the most-original Beyond-Beyond state, only through the infinite aspect of His State II as "God in the Beyond State."

Hence, the infinite insurge of the infinite original whim and its consequent infinite repercussions are in reality effected in the State II of God in the Beyond state.

At the instant when the infinite original whim surged and God had the infinite original urge-to-know—as "Who am I?"—the infinite uniformity of the infinite insurge of the whim spontaneously made manifest both the latent infinite consciousness and the latent infinite unconsciousness of God simultaneously in the original Beyond state of God, Who is nevertheless eternally in the most-original Beyond-Beyond state.

This spontaneous manifestation of the latent infinite consciousness and infinite unconsciousness **simultaneously,** is beyond the grasp of human intellect to understand and digest. It is indeed a paradox of the realm of Reality, and it defeats all human under-standing. How could God gain spontaneously His own infinite consciousness and His infinite unconsciousness simultaneously? Meher Baba, while explaining this, declared that this is a fact, and it is of the realm of Reality, but it can never be understood or grasped by the mind; it is only to be realized on realizing

मेहेरबाबा ने हमको इस प्रत्यक्ष असत्याभास को माँ के गर्भ में एक बच्चे के उदाहरण के द्वारा समझाया है ।

जब माँ गर्भ धारण करती है, तो बच्चा माँ के गर्भ में विकास की क्रिया में होता है; और जैसे ही विकास एक ऐसी स्थिति पर पहुँचता है जबकि, अन्य विकासों के साथ-साथ, बच्चे की आँखें पूरीतौर से ढल जाती हैं, तब बच्चे को एकसाथ "देखने" और "न-देखने" की शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं । चाहे बच्चा, जन्म लेने के बाद, देखता है अथवा नहीं देखता, स्वयं यह तथ्य कि आँखें उसकी माता के गर्भ में ढली हैं, बच्चे को खुद उसकी आँखें का द्वैत पहलू प्रदान करता है । आँखें में, जैसे ही वे विकसित हो जाती हैं, देखने और न-देखने की शक्तियाँ एकसाथ अन्तर्निहित होती हैं । जब बच्चा अपनी आँखें खलिता है तो वह देखेगा और जब वह अपनी आँखें बन्द करता है तब वह न-देखेगा; किन्तु यह तथ्य फिर भी क़ायम रहता है कि जैसे ही आँखें विकसित हुई थीं वैसे ही उनमें देखने और न-देखने की द्वैध शक्ति एकसाथ भर गई थी ।

इसी प्रकार से, परमात्मा में उठी मूल अनन्त लहर के आलोड़न (*insurge*) के साथ, अनन्त चेतना और अनन्त अचेतना दोनों, जो परमात्मा में अन्तर्हित थीं, एकसाथ अभिव्यक्त हुई, जो सीमित मन को असत्याभास मालूम पड़ता है ।

इस प्रकार परमात्मा ने अपनी परात्पर-परब्रह्म अवस्था (*beyond-beyond*) की अत्यन्त-मूल अवस्था १ में, परब्रह्म-परमात्मा की अपनी मूल अवस्था २ के द्वारा, खुद अपनी अनन्त चेतन अवस्था और खुद अपनी अनन्त अचेतन अवस्था, एकसाथ स्वतः प्राप्त कीं, जैसा चार्ट में "अ" और "ब" अवस्थाओं के रूप में क्रमशः दिखाया गया है ।

इसके फलस्वरूप, एक ओर, अनन्त अचेतना की सहज अभिव्यक्ति के साथ, परमात्मा अपनी अनन्त **अचैतन्य** परब्रह्म परमात्मा अवस्था में, जैसा चार्ट में "अ" रूप में दिखाया गया है, न केवल नित्य रूप से खुद अपने शशवत, अनन्त अस्तित्व के प्रति अनन्ततः अचैतन्य बना रहता है, जैसा वह **परम-अनन्तता** (*infinitude-absolute*) की अत्यन्त-मूल परात्पर-परब्रह्म अवस्था में होता है, किन्तु वह खुद अपनी पैदा की गई अनन्त मूल परब्रह्म-अवस्था के प्रति शाश्वतरूप से अपारतया अचैतन्य भी बना रहता है; यह चार्ट में २ के रूप में दिखाया गया है ।

(१९४)

the Reality. At the same time, in order that we may get at least some concept of this fact effected in Reality, and that we may not take it as a mere paradoxical mystery, Meher Baba made us understand this apparent paradox through the example of a child in a mother's womb.

When the mother conceives, the child is under development in the mother's womb; and as soon as the development reaches a stage when, along with other developments, the eyes of the child are fully moulded, the child gains the faculties of "seeing" and "not-seeing" simultaneously. Irrespective of whether the child, after birth, sees or does not see, the very fact that the eyes have been moulded in the womb of his mother gives to the child the dual aspect of his own eyes. In the eyes, as soon as they are developed, the faculties of seeing and not-seeing are simultaneously contained. When the child opens his eyes he will see and when he closes his eyes he will not-see; but the fact still holds good that no sooner were the eyes developed than there was contained in them the dual faculty of seeing and not-seeing simultaneously.

Similarly, with the insurge of the original infinite whim in God, both the infinite consciousness and unconsciousness, latent in God, were manifested simultaneously, which to the limited mind appears paradoxical.

Thus God in His most-original State I of the Beyond-Beyond gained spontaneously, through His original State II of the Beyond, His own infinitely unconscious state and His own infinitely conscious state simultaneously, depicted in the chart as states A and B, respectively.

Consequently, on the one hand, with the spontaneous manifestation of infinite unconsciousness, God in His infinite, unconscious Beyond state, shown as "A" in the chart, eternally remains not only infinitely unconscious of His own eternal, infinite existence, as in the most-original Beyond-Beyond state of Infinitude-Absolute, but He also eternally remains infinitely unconscious of His own begotten infinite original Beyond state, shown in the chart as "II."

दूसरी ओर, अनन्त चेतना के स्वतः आविर्भाव के साथ-साथ, परमात्मा को अपनी अनन्त, **चैतन्य** परब्रह्म अवस्था में, जैसा चार्ट में "ब" के रूप में दिखाया गया है, शाश्वतरूप से न केवल खुद अपने शाश्वत अनन्त अस्तित्व की अपार चेतना प्राप्त हो जाती है, जैसा परम-अनन्तता की अत्यन्त-मूल परात्पर-परब्रह्म अवस्था में होता है, किन्तु उसको खुद अपनी पैदा की गई अनन्त मूल परे अवस्था की अत्यन्त स्पष्ट अनन्त चेतना भी प्राप्त हो जाती है, जो चार्ट में २ के रूप में दिखाया गया है ।

दूसरे शब्दों में, परमात्मा की केवल परब्रह्म अवस्था में, जैसा चार्ट में अवस्था २ के रूप में दिखाया गया है, परमात्मा स्वतः अनन्त मूल लहर के उभार के साथ ही साथ अपनी शाश्वत अनन्त अचेतन अवस्था को जन्म देता है जैसा उप-अवस्था "**अ**" में दिखाया गया है, और अपनी शाश्वत, अनन्त चेतन अवस्था पैदा करता है, जैसा उप-अवस्था "**ब**" में अंकित किया गया है ।

उप-अवस्था **अ** परब्रह्म अवस्था में परमात्मा की अवस्था है, जैसा अवस्था २ के रूप में अंकित किया गया है । यह उप-अवस्था अ खुद परमात्मा की अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द की अनन्त अचैतन्यता की अवस्था है । परमात्मा इस उप-अवस्था **अ** में न तो अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द की खुद अपनी त्रि-प्रकृति का चैतन्य अनुभव करता है, और न उनका प्रयोग करता है ।

उप-अवस्था **ब** भी परब्रह्म-परमात्मा अवस्था की अवस्था है, जो अवस्था २ के रूप में अंकित की गई है । यह उप-अवस्था **ब** निर्गुण और निराकार होती है, किन्तु यह खुद परमात्मा की अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द की अनन्त त्रि-प्रकृति की सर्वोच्च दिव्य चेतना है । परमात्मा इस उप-अवस्था **ब** में चैतन्य रूप से खुद अपनी अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द का अनुभव करता है किन्तु वह उसका प्रयोग नहीं करता । उसको अपनी **यथार्थता** की चेतना होती है लेकिन माया की चेतना नहीं होती है ।

वेदान्तिक शब्दों में, इस प्रकार से ही **परात्पर-परब्रह्म की अवस्था १ परमात्मा की अवस्था २** की उत्पत्ति करती ह; और इस **अवस्था २** में, **परमात्मा** परमात्मा के रूप में नित्य अचैतन्य होता है और उसके साथ-साथ उसको **परात्पर-परब्रह्म** की खुद अपनी अत्यन्त-मूल

On the other hand, simultaneously with the spontaneous manifestation of infinite consciousness, God in His infinite, **conscious** Beyond state, marked in the chart as "B," eternally becomes not only infinitely conscious of His own eternal infinite existence, as in the most-original Beyond-Beyond state of Infinitude-Absolute, but He also becomes, most obviously, infinitely conscious of His own begotten infinite original Beyond state, shown in the chart as "II."

In other words, only in the Beyond state of God, marked in the chart as State II, God spontaneously, with the insurge of the infinite original whim, simultaneously begets His eternal, infinite unconscious state, marked as sub-state A, and His eternal, infinite conscious state, marked as sub-state B.

Sub-state A is of God in Beyond state, marked as State II. This sub-state A is of divine infinite unconsciousness of God's own infinite power, infinite knowledge and infinite bliss. God in this sub-state A neither consciously experiences His own trio-nature of infinite power, knowledge and bliss, nor uses them.

Sub-state B is also of God in Beyond state, marked as State II. This sub-state B is attributeless and formless, but is of highest divine consciousness of God's own infinite trio-nature of infinite power, knowledge and bliss. God in this sub-state B consciously experiences His own infinite power, infinite knowledge and infinite bliss but He does not use them. He is conscious of His Reality but is unconscious of Illusion.

In Vedantic terminology, it is thus that the State I of *Paratpar Parabrahma* begets the State II of Paramatma; and in this State II, God as Paramatma is eternally unconscious and simultaneously eternally conscious of His own most-original state of *Paratpar Parabrahma*. This

अवस्था की शाश्वत चेतना रहती है । **परमात्मा** अवस्था का यह अनन्त द्वैध पहलू चार्ट में क्रमशः अवस्था **अ** और अवस्था **ब** के रूप में दिखाया गया है ।

इसलिये, इससे स्वाभाविक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि **परमात्मा** की शाश्वत अचैतन्य अवस्था, जो **अ** के रूप में अंकित है, शाश्वत मूल परब्रह्म अवस्था में, २ के रूप में अंकित, **परमात्मा** की शाश्वत चैतन्या अवस्था को प्राप्त करने की नित्य अभिलाषा करती है, जो **ब** के रूप में अंकित है, जो मूल परब्रह्म परमात्मा अवस्था (**परमात्मा**) के द्वैध अनन्त पहलुओं में दूसरा पहलू है जो २ के रूप में अंकित है ।

इसके फलस्वरूप, दैवी लक्ष्य यह है कि **अ** में निहित ईश्वर की अचैतन्य अवस्था २ को **ब** में निहित परमात्मा की चैतन्य अवस्था की चैतन्य यथार्थता प्राप्त करनी चाहिये ।

संक्षेप में, जब अवस्था **अ** को अवस्था **ब** का चैतन्य अनुभव हो जाता है, तब दैवी लक्ष्य प्राप्त हो जाता है ।

अवस्था अ को अवस्था **ब** का चैतन्य अनुभव प्राप्त करने के लिये, इसके अलावा कोई दुसरा विकल्प नहीं है कि अवस्था **अ** आवश्यक रूप से क्रमशः अवस्था **ब** में परिवर्तन होने का अनुभव करे और अन्ततः सर्वथा चैतन्यरूप से अवस्था **ब** बन जाये ।

चेतन अनन्त अवस्था में ईश्वर की अचैतन्य अनन्त अवस्था का यह क्रमशः परिवर्तन, परमात्मा की दस अवस्थाओं के चार्ट में अवस्थाओं ३, ४, ५, ६ और ७ के द्वारा परमात्मा की विभिन्न अवस्थाओं के रूप में दिखाया गया है । अवस्था ८ में, ईश्वर की अवस्था अ को अवस्था ब की पूर्ण चेतना प्राप्त हो जाती है ।

इस अवस्था ८ में, परमात्मा की अचैतन्य अनन्त अवस्था को न केवल अवस्था **ब** की सर्वोच्च दिव्य चेतना प्राप्त हो जाती है, बल्कि परमात्मा खुद अपनी अनन्त चैतन्य अवस्था की सत्यता में दिव्य रूप से निमग्न हो जाता है और इस प्रकार वह परमात्मा की अनन्त चैतन्य अवस्था **ब** के साथ अपनी शाश्वत एकरूपता का अनुभव करता है ।

यदि परमात्मा, दिव्य रूप से निमग्न, जैसा **अवस्था ८** में बताया गया है, अपने मानसिक, सूक्ष्म और स्थूल पहलुओं—मूर्तमान पूर्ण मानव प्राणीवत्—के द्वारा मानसिक, सूक्ष्म और स्थूल लोकों की सामान्य चेतना पुनः प्राप्त करता और उसे बनाये रखता है, तब अवस्था ९, ८ और १०

infinite dual aspect of the Paramatma state is pointed out in the chart as state A and state B respectively.

It naturally follows, therefore, that the eternal unconscious state of Paramatma, marked "A," in the eternal original Beyond state, marked "II," eternally aspires to attain the eternal conscious state of Paramatma, marked "B," which is the second of the dual infinite aspects of the original Beyond God state (Paramatma) marked "II."

Consequently, the divine goal is that the unconscious state of God in "A" should attain the conscious Reality of the conscious state of God in "B."

In short, when state A consciously realizes state B, the divine goal is attained.

For state A to realize consciously state B, there is no other alternative but that state A must gradually experience transmutation into state B and eventually become state B in all respects consciously.

This gradual transmutation of the unconscious, infinite state of God into the conscious, infinite state is depicted through States III, IV, V, VI and VII as different states of God in the chart of the Ten States of God. In State VIII, state A of God becomes fully conscious of state B.

In this State VIII, the unconscious infinite state A of God not only gains the highest divine consciousness of state B, but God becomes divinely absorbed in the Reality of His own infinite conscious state and so realizes His eternal identity with the infinite conscious state B of God.

If God, divinely absorbed, as in State VIII, recovers and maintains normal consciousness of the mental, subtle and gross spheres through His mental, subtle and gross aspects as an embodiment of a perfect human

अवस्थाओं के बीच के ईश्वरीय संधिस्थल पर, प्राप्त हो जाती है । इस नवीं अवस्था के बाद, परमात्मा की १०वीं अवस्था चार्ट में दिखाई गई है और परमात्मा अवस्था "**स**" के साथ सम्बद्ध की गई है ।

परमात्मा की यह १०वीं अवस्था एक सद्गुरु के मनुष्य रूप में ईश्वरीय गुण एवं आविर्भाव से युक्त, परमात्मा की अवस्था है । अवस्था १० में परमात्मा को चेतनातया खुद अपनी अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द की त्रि-प्रकृति का अनुभव प्राप्त होता है, और वह ईश-अवस्था १०, जो चार्ट में "**स**" के रूप में अंकित है, के ईश्वरीय पद (*office*) के माध्यम से उनका प्रयोग भी करता है ।

यह बात भी अच्छी तरह ध्यान में रखनी चाहिये कि अनन अचेतन अवस्था **अ** में परमात्मा न तो **निर्गुण-निराकार** (गुण एवं रूप रहित) है, और न **सगुण-साकार** (गुण एवं रूप सहित) है । किन्तु अवस्था **ब निर्गुण-निराकार** की है, और अवस्था **स** (जो मूल परब्रह्म परमात्मा अवस्था की भी अवस्था है) **सगुण-साकार** की अवस्था है । यह **नर-नारायण** की वह सर्वोच्च अवस्था है जहाँ परमात्मा को **सत्य** और **माया** दोनों की अनन्त चेतना प्राप्त होती है ।

अवस्था ३
कर्त्ता, धर्त्ता और हर्त्तावत् परमात्मा

इस अवस्था में परमात्मा कर्त्ता, धर्त्ता और हर्त्ता के अपने तीन मुख्य गुणों (सिफ़त) को क्रिया में लाता है । यह एक-में-तीन अवस्था वेदान्त की त्रिभूर्ति के सदृश है : **ब्रह्मा** (अत्यन्त कर्त्ता) **विष्णु** (रक्षक), और **महेश** (विनाशक) के सदृश है—जिसके सूफ़ी पर्यायवाचक शब्द हैं **अफ़रीदगार, परवरदिगार,** और **फ़नाकार** ।

परमात्मा के तीन गुण तीन प्रधान देवदूतों द्वारा प्रगट किये जाते है, इसराफ़ील (वह फ़रिश्ता जो जीवन की उत्पत्ति करता है), **मिकाईल** (वह फ़रिश्ता जो जीवन का पषिण करता है), और इज़राईल (वह फ़रिश्ता जो जीवन का नाश करता है) ।

परमात्मा की **अवस्था ३** के त्रिमुखी गुण परमात्मा की अत्यन्त-मूल **अवस्था १** में अन्तर्निहित थे; इन्होंने साथ-साथ उसी समय अपनेआप को स्वत: उस क्षण उभारा जब परमात्मा में मूल अनन्त लहर उठी थी और जब परमात्मा ने अपनी **अवस्था २** में खुद को जानने की, कि "मैं

being, then State IX, at the Divine Junction between States VIII and X, is attained. After this ninth state, the tenth state of God is depicted in the chart and connected with the God state C.

This tenth state of God is the state of God qualitied and manifest in the human form of a Perfect Master. In State X God consciously experiences His own trio-nature of infinite power, infinite knowledge and infinite bliss, and also uses them through the Divine Office of God, State X, marked in the chart as "C."

It is also to be well noted that God in the infinite, unconscious state A is neither nirguna (attributeless)-nirakar (formless), nor saguna (with attributes)-sakar (with form). But state B is of nirguna-nirakar (attributeless and formless), and state C (which is also of the original Beyond God state) is of saguna-sakar (with attributes and form). It is that highest state of Man-God where God is infinitely conscious of both Reality and Illusion.

State III
God as Emanator, Sustainer and Dissolver

In this state God brings into play His three principal attributes (sifat) of emanating, sustaining and dissolving. This three-in-one state corresponds to the trinity of Vedanta: *Brahma* (Creator), *Vishnu* (Preserver)and *Mahesh* (Destroyer)—the Sufi synonyms of which are the terms *Afridgar, Parvardigar* and *Fanakar.*

The three attributes of God are expressed through the three Archangels, *Israfeel* (the angel who creates life), Mikaeel (the angel who sustains life) and Izraeel (the angel who destroys life).

The triple attributes of State III of God were latent in the most-original State I of God; these, simultaneously, unfolded themselves spontaneously at that instant when the original infinite whim surged in God and when He conceived in His State II the infinite urge-to-know

कौन हूँ ?", लहर की धारणा की थी । अनन्त लहर के उठने के उस क्षण, परमात्मा ने अपनी **अवस्था २** में उसी समय, अपारतया अचैतन्य होने के, जैसा कि उसकी अवस्था अ में दिखाया गया है और साथ-साथ अपारतया चैतन्य होने के, जैसा उसकी अवस्था **ब** में दिखाया गया है, अनन्त द्वैध पहलू प्राप्त किये ।

फिर भी, खुद को जानने की अनन्त मूल लहर प्रत्यक्ष रूप से अब भी परमात्मा अवस्था **अ** में, जिसे अब भी खुद की अपार अचेतना है, बलात् बनी रहती है । खुद को जानने की अनन्त लहर ने, जो परमात्मा की इस अनन्त अचैतन्य अवस्था **अ** में दृढ़तापूर्वक स्थित थी, **परमात्मा के सभी गुणों और पहलुओं के आविर्भावों को सम्भव बनाया, जा सबकुछवत् परमात्मा की अत्यन्त-मूल अवस्था १ की अनन्तता में शून्य के रूप में प्रसुप्त थे** । किन्तु वह सब जो **सबकुछ** में **शून्य** के रूप में प्रसुप्त है सम्भवतः केवल परमात्मा की परब्रह्म अवस्था २ में प्रसुप्त होने के रूप में कल्पित किया जा सकता था ।

इसलिये, वह सबकुछ जो परमात्मा की परब्रह्म अवस्था में गुप्त है और अनन्त लहर द्वारा आगे को ठेले जाने पर, क्रमशः उभरता है, और वह स्वतः उस सबके रूप में अभिव्यक्त होता है जो **शून्य** का है । अस्तु **शून्य** की **शून्यता** जो अभिव्यक्त हुई है **सृष्टि** है; और इस **सृष्टि** का उद्भव परमात्मा की अनन्त, अचैतन्य अवस्था **अ** के अन्तर्गत जानने की अनन्त लहर से होता है । तदनुसार, यह केवल स्वाभाविक है कि परमात्मा की अनन्त, अचैतन्य अवस्था **अ** तीन अनन्त गुणों में कर्त्ता (*emanator*) के रूप में—विधाता परमात्मा, रक्षक परमात्मा, संहारक परमात्मा—प्रथम गुण प्राप्त करती है ।

परमात्मा को कर्त्ता का गुण प्राप्त हो जाने पर, वह स्पष्टरूप से सृष्टि का रचयिता बन जाता है, जैसा वह अपनी **अवस्था ३** में होता है ।

तब इससे यह अत्यन्त स्वाभाविक निष्कर्ष निकलता है कि जब परमात्मा उत्पत्ति करता है, तो उसको अपनी उत्पन्न की हुई सृष्टि की स्वतः रक्षा भी करनी चाहिये । तब वह स्पष्टरूप से सृष्टि का रक्षक भी बन जाता है, जैसा उसकी अवस्था ३ में है ।

और अपनी की गई रचना की रक्षा करने की स्वयं क्रिया में, परमात्मा उसके साथ-साथ सृष्टि के अनिवार्य विनाश को भी स्थापित

Himself, as "Who am I?" At that instant of the insurge of the infinite whim, God in His State II gained simultaneously the infinite, dual aspects of being infinitely unconscious as in His state A and at the same time, of being infinitely conscious as in His state B.

Nevertheless the infinite original urge-to-know Himself obviously persists still in God state A which is yet infinitely unconscious of Himself. The infinite urge-to-know Himself persisting in this infinitely unconscious state A of God made possible the **manifestations of all the qualities and aspects of God latent as the Nothing in the infinitude of the most-original State I of God as the Everything.** But all that is latent as the Nothing in the Everything could be possibly conceived as latent in the Beyond State II of God only.

Wherefore, all that is latent in the Beyond state of God is gradually unfolded, propelled by the infinite urge, and is spontaneously made to manifest as all that is of the Nothing. Hence the Nothingness of the Nothing that is manifested is the Creation; and this Creation springs forth out of the infinite urge-to-know in the infinite, unconscious state A of God. Consequently, it is only natural that the infinite, unconscious state A of God gains the first attribute as Emanator, of the three infinite attributes: God the Creator, God the Pre-server and God the Dissolver or Destroyer.

For God to have gained the attribute of Emanator, He obviously becomes the Creator of Creation, as in His State III.

It then follows most naturally that when God creates, He must spontaneously also sustain what He creates. He then obviously becomes also the Preserver of Creation, as in His State III.

And in the very act of preserving what is created, God also simultaneously establishes the inevitable dissolution or destruction of

करता है । रक्षा करना निरर्थक होगा यदि विनाश का अग्र ज्ञान न होता । तदनुसार परमात्मा स्पष्टरूप से सृष्टि का हर्त्ता भी बन जाता है, जैसा उसकी **अवस्था ३** में है ।

परमात्मा की **अवस्था ३** वह अवस्था है जिसमें परमात्मा कर्त्ता बन जाता है और साथ-साथ खुद अपनी सृष्टि का पालनकर्त्ता अथवा रक्षक, तथा संहारक बना रहता है । उसी समय साथ-साथ, परमात्मा इस प्रकार **अवस्था ३** में **कर्त्ता, धर्त्ता** एवं **हर्त्ता** बन जाता है ।

परमात्मा में उठी अनन्त मूल लहर और उसके फलस्वरूप खुद को जानने की अनन्त लहर से परमात्मा में कर्त्ता, धर्त्ता और हर्त्ता के तीन अनन्त गुणों का आविर्भाव हुआ, और, उसके साथ-साथ प्रसुप्त **शून्य** की **शून्यता** का अपने सब साजी-सामान सहित आविर्भाव हुआ । यह शून्यता वास्तव में कुछनहीं है, यद्यपि यह भ्रम के द्वारा (जिसको कभी-कभी माया[३५] कहते हैं) **सृष्टि** के रूप में अस्तित्व रखती दिखाई पड़ती है ।

मेहेरबाबा ने हमको बतलाया है कि शाब्दिक अर्थ भाव में कोई **सृष्टि** नहीं है । जिसे हम **सृष्टि** कहते हैं वह शून्य के असंख्य रूपों का आविर्भाव है । यह शून्य वास्तव में "**कुछ नहीं**" है—किन्तु वह **माया** के खुद अपने क्षेत्र में अपना अस्तित्व रखता है । उसको इनकार नहीं किया जा सकता, लेकिन यह **सबकुछ,** अर्थात् परमात्मा, के परे नहीं है । यद्यपि **सबकुछ** में इस **शून्य** का समावेश है, तथापि **शून्य** में कभी **सबकुछ** का समावेश नहीं होता और न कभी समावेश हो सकता है और न उसका अर्थ **सबकुछ** हो सकता है । एकमेव सर्वशक्तिमान् परमात्मा **सबकुछ** है और उसमें **शून्य** सम्मिलित है; और **शून्य** का आविर्भाव होने के पहले, **सबकुछ** के रूप में सर्वशक्तिमान् परमात्मा के सिवाय शब्दशः और पूर्णतः "**कुछ-नहीं**" था ।

ज़ात थी अल्लाह की और जलवे सब रूपोश थे
एक सौत-ए-सरमदी था नग़मे सब ख़ामोश थे
था फ़क़त मयख़ाना, साक़ी था न वाँ मयमोश थे
का-इ-नाते दहर क्या रूह-उल-अमीन बेहोश थे
ज़िन्दगी जब मुस्कुराई है कज़ा के सामने ।

—मुन्सिफ़ असग़र

Creation. Preservation would be meaningless if dissolution or destruction were not anticipated. Accordingly God obviously becomes also the Dissolver or Destroyer of Creation, as in His State III.

State III of God is that state in which God becomes the Creator and simultaneously remains the Sustainer or Preserver and Dissolver or Destroyer of His own Creation. At one and the same time, God thus becomes the Creator, Preserver and Destroyer in State III.

The infinite original whim that surged in God and the consequent infinite urge-to-know Himself made manifest in God the infinite triple attributes of Creator, Preserver and Dissolver, with all the paraphernalia of the Nothingness of the latent Nothing. This Nothingness literally is nothing, although it appears to exist through Illusion (sometimes called Maya[footnote 35]) as the Creation.

Meher Baba has told us that there is no Creation in the literal sense of the word. What we call Creation is a manifestation of countless forms of the Nothing. This Nothing is really "no-thing"—but it exists in its own field of Illusion. It cannot be denied, but it is not beyond the Everything, that is, God. Although the Everything includes this Nothing, the Nothing never does and never can include or mean the Everything. The Almighty alone is the Everything, including the Nothing; and before Creation manifested itself, there was literally and absolutely "no-thing" but the Almighty as the Everything.

Z̲āt thī Allāh kī aur jalve sab rūposh the
Īk saut-i sarmadī thā nag̲hme sab k̲hāmosh the
Thā faqaṭ maik̲hānah sāqī thā nāh vāñ maīnosh the
Kā-yi nāte dahr kyā rūḥ ul-amīn bihosh the
Zindagī jab muskurā'ī hai qaz̲ā ke sāmne.

—Munsiff-Asg̲har

"एकमेव **अल्लाह** का अस्तित्व था और समस्त आविर्भाव उसके अन्दर प्रसुप्त थे;

एक शाश्वत नाद छाया था, और उसके अन्दर संगीत के सभी स्वर प्रसुप्त थे;

केवल वहाँ शराबखाना था—साक़ी और शराब पीने वाले कोई न थे;

स्थूल जगत का कोइ प्रश्न न था—यहाँ तक कि फ़रिश्तों की दुनियाँ का कोई अस्तित्व न था;

जब ईश्वर के हुक्म 'हो जाओ (*Be*)' से, जीवन मुस्कराता हुआ उत्पन्न हो गया ।"

केवल सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का अस्तित्व था, किन्तु वह केवल प्रसुप्त रूप से चैतन्य था, इसलिये उसको खुद अपना ज्ञान न था, और इसी तरह वह चेतना उसके अन्दर प्रसुप्त थी, इसी प्रकार **सृष्टि** भी उसके अन्दर प्रसुप्त थी ।

प्रसुप्त और प्रकट सृष्टि के बीच के अन्तर की तुलना एक बीज और एक वृक्ष के बीच के भेद से की जा सकती है । लेकिन चाहे बीज अथवा वृक्ष हो, प्रसुप्त अथवा प्रकट हो, सृष्टि **सदैव** "**शून्य**" है, क्योंकि प्रसुप्त **शून्य** ही **शून्यता** के रूप में आविर्भूत हुआ है ।

वह **सबकुछ,** जो **सबकुछवत्** के रूप में ईश्वर की परब्रह्म **अवस्था २** की अनन्तता में **शून्यवत्** प्रसुप्त है, ईश्वर की अनन्तता में एक अत्यन्त परिमित बिन्दु के माध्यम से प्रकट और आविर्भूत होता है । यह बिन्दु "सृष्टि बिन्दु" अथवा "ॐ बिन्दु"‡ कहलाता है । इस बिन्दु से निकलकर **सृष्टि** का पसारा हुआ है । यह सृष्टि-बिन्दु भी परात्पर-परब्रह्म अवस्था में, परमात्मा की अत्यन्त-मूल **अवस्था १** में प्रसुप्त था ।

उत्पत्ति, पोषण और नाश की प्रक्रिया, जो निरन्तर एवं नियमित रूप से चालू रहती है, का भी चित्रण एक उपमा द्वारा किया जा सकता है । कल्पना कीजिये कि एक मानव शरीर ईश्वर है, तब आँखें बन्द करके सोते हुये मनुष्य शरीर की तुलना ईश्वर की **परब्रह्म परमात्मा अवस्था, अवस्था** २अ के रूप में की जा सकती है । आँखें खोलने के

‡ [इसे भी देखिये : फ्रांसिस ब्रैबेज़ोन कृत, 'स्टे विद गाड' (वूम्बाई, क्वीन्स लैन्ड आस्ट्रेलिया : ऐडवर्ड्स ऐण्ड शा कृते गारूडा बुक्स, १९५९), पृष्ठ ६५-६६ । —सम्पादक]

"The existence of Allah alone was and all manifestations were latent therein;

One Eternal Sound prevailed, and all musical notes were dormant therein;

Only the tavern was there—no cup-bearers and wine-drinkers;

The gross universe was out of the question—even the angelic world was not in existence,

When, with the divine command 'Be,' life smilingly sprang up."

The Almighty alone existed, but He was only latently conscious, and hence He did not know Himself, and in the same way that consciousness was latent in Him, so also Creation was latent in Him.

The difference between the latent and the manifest Creation may be compared to that between a seed and a tree. But, whether seed or tree, latent or manifest, Creation is always "no-thing," because it is the latent Nothing that is manifested as the Nothingness.

All that is latent as the Nothing in the Beyond State II of the infinitude of God as the Everything is expressed and manifested through a most finite point in the infinitude of God. This point is called the "creation point" or the "Om point."* Through this point Creation has been precipitated. This creation point was also latent in the most original State I of God, in the Beyond-Beyond state.

The process of emanating, sustaining and dissolving, which is constantly and uniformly going on, may be illustrated by an analogy. Let us imagine that a human body is God. The human body sleeping with eyes shut may then be compared to the Beyond state of God, as State II–A. The

* [See also Francis Brabazon, *Stay with God* (Woombye, Queensland, Australia: Edwards and Shaw for Garuda Books, 1959), pp. 65–66. Ed.]

तुरन्त प्रथम क्षण की तुलना परमात्मा की **विधातावत्** अवस्था से की जो सकती है । इसके बाद की जागृत बने रहने की दशा की तुलना **पषकवत्** परमात्मा की अवस्था से की जा सकती है, और आँखें बन्द करके पुनः सो जाने की तुलना परमात्मा की **विनाशकर्त्तावत्** अवस्था से की जा सकती है । इस प्रकार परमात्मा कर्त्ता, भर्त्ता और हर्त्ता एकसाथ तीनों रूपों में होता है ।

अवस्था ४
शरीरधारी आत्मावत् ईश्वर

दिद अपनी थी उसे ख़्वाहिश
आपको हर तरह बना देखा
—नियाज़

"उसने खुद को देखने की इच्छा की; इसलिये उसने नाम और रूपों के विविध पहलू अपने ऊपर धारण किये ।"

यह समझने को लिये कि ईश्वर की अनन्त अचैतन्य **अवस्था अ** क्रमशः परमात्मा की अनन्त चैतन्य **अवस्था ब** के रूप में बदल जाती है और पूरी तथा अनन्त चेतना प्राप्त करती है, मेहेरबाबा ने नीचे लिखी हुई उपमा दी थी :—

अनन्त अचैतन्य ईश्वर **अवस्था** अ की कल्पना, सृष्टि की उत्पत्ति होने के पहले, निश्चल अनन्त महासागर के रूप में कीजिये । तब हवा के फुलाव ने इस महासागर की शान्त समानता में मन्थन पैदा कर दिया, और बड़ी-बड़ी लहरें, पानी की असंख्य बूँदें, और असंख्य बुलबुले अपरिमित, अनन्त महासागर की एकरूपता से निकल पड़े । समुद्र में मन्थन पैदा करने वाले हवा के फुलाव की कल्पना जानने की अनन्त मूल लहर के आवेग से की जा सकती है—जो लहर परमात्मा की अनन्त-मूल लहर के साथ पैदा हुई, और परमात्मा की अनन्त **अवस्था २** के द्वारा परमात्मा के खुद को जानने के लिये परमात्मा में उभरी ।

महासागर की सतह पर पैदा हुये **मन्थन** ने, जो अनन्त लहर ने पैदा किया था, उस अनन्त महासागर की प्रत्येक बूँद को खुद को जानने की अनन्त-मूल-लहर से भर दिया ।

इस प्रकार **परमात्मा** अपनी अनन्त अचैतन्य अवस्था अ में, खुद को जानने-की-लहर रखने के कारण, साथ-साथ परमात्मा के अन्तर्गत

very first moment of opening the eyes may be compared to the state of God as Creator. The subsequent condition of remaining awake may be compared to the state of God as Sustainer, and going back to sleep again with eyes shut may be compared to the state of God as Dissolver. Thus God is the Creator, Sustainer and Dissolver, all three in One, at one and the same time.

State IV
God as Embodied Soul

Dīd apnī thī ūse khvāhish
Āp ko har ṭaraḥ banā dekhā. *tarah ?*

—Niyāz

"He desired to see Himself; hence He assumed to Himself varied aspects involving names and forms."

In order to understand how the infinitely unconscious state A of God becomes gradually transmuted into the infinitely conscious state B of God and attains full and infinite consciousness, Meher Baba gave the following analogy:

Imagine the infinitely unconscious God state A, before the Creation came into being, as motionless infinite ocean. A puff of wind then stirred the tranquil uniformity of this ocean, and immense waves, countless drops of water, and innumerable bubbles appeared from out of the uniformity of the limitless, infinite ocean. The puff of wind that set the ocean into commotion may be compared to the impulse of the infinite, original urge-to-know originating with the infinite, original whim of God, surging in God to know Himself through His infinite God State II.

The stir on the surface of the ocean, caused by the infinite urge, surcharged every drop of that infinite ocean with the infinite original urge-to-know itself.

Thus *Paramatma* in His infinitely unconscious state A, being urged to know Himself, simultaneously bestirs the tranquil poise of every *atma*

प्रत्येक आत्मा के शान्त सन्तुलन को खुद को जानने-की-लहर से विलोड़ित कर देता है । यह केवल तभी समझ में आ सकता है जब परमात्मा की तुलना एक अनन्त महासागर से और **आत्माओं** की तुलना उस अनन्त महासागर की बूँदों से की जाती है । किन्तु यह बात भी अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिये कि महासागर की प्रत्येक बूँद, महासागर में होने के समय, स्वयं महासागर है, जब तक कि बूँदें महासागर की सतह के ऊपर बने हुये बुलबुलों के द्वारा व्यक्तित्वता धारण नहीं कर लेतीं । इस प्रकार बना हुआ प्रत्येक बुलबुला तब पत्येक बूँद के ऊपर एक अलग और ख़ास व्यक्तित्वता प्रदान करेगा । और यह पैदा हुई पृथक्ता अनन्त महासागर की बूँदों की एकसमान अखण्ड्यता के अन्तर्गत तब तक बनी रहेगी जब तक अलगाव पैदा करने वाले ये बुलबुले बने रहेंगे । जैसे ही बुलबुले फटेंगे, वैसे ही बूँदें, जो स्वयं महासागर में हैं और पहले से ही उसमें थीं; और उनको **अनन्त महासागर में अपनी शाश्वत अनन्तता** की यह चेतना केवल उसके बाद प्राप्त होती है जबकि वे पहले पृथक्ता का अनुभव करती है और फिर अज्ञानता के बुलबुलों को हटा देती हैं जिन बुलबुलों के माध्यम से उनको अपनी स्वाभाविक अखण्डता से अपनी प्रत्यक्ष पृथक्ता का अनुभव होता था ।

जब तक कि महासागर की अनन्ततया असंख्य बूँदों को प्रत्यक्ष पृथक्ता का अनुभव नहीं होता, तब तक उसको स्वयं महासागर के रूप में खुद अपने एकसमान और अखण्ड्य शाश्वत्, अनन्त अस्तित्व का अनुभव नहीं होता । **आत्माओं** केवल प्रत्यक्ष पृथक्ता के अनुभव के माध्यम से ही **परमात्मा** के रूप में अपने अखण्ड्य ऐक्य का चैतन्य अनुभव कर सकती हैं ।

"**देहधारी आत्मा के रूप में परमात्मा**" की ईश अवस्था ४ का वर्णन करने के लिये, हम अवस्था अ में **परमात्मा** की एक अनन्ततया अचैतन्य **आत्मा** का विचार करें ।

प्रारम्भ में, अवस्था **अ** में, **आत्मा** को कोई चेतना प्राप्त नहीं होती और न कोई **संस्कार** प्राप्त होते हैं ।

इसलिये, उस स्थिति में और उस अवस्था में **आत्मा** के कोई स्थूलरूप, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और न कारण शरीर होते हैं, **क्योंकि केवल स्थूल, सूक्ष्म और मनो संस्कारों का अस्तित्व ही स्तूल,**

(२०२)

in *Paramatma* with an urge to know itself. This could only be understood when *Paramatma* is compared to an infinite ocean and the *atmas* to the drops of that infinite ocean. But it must also be well noted that every drop of the ocean, when in the ocean, is ocean itself, until the drops inherit individuality through bubble formations over the surface of the ocean. Every bubble thus formed would then bestow a separate and a particular individuality upon every drop. And this created separateness would exist within the uniform indivisibility of the drops of the infinite ocean as long as these bubbles creating separateness exist. As soon as the bubbles burst, the drops, which are and were already in the ocean itself, come to realize that they are and were one with the infinite ocean; and they gain this consciousness of their **eternal infinity in the infinite ocean** only after they first experience separateness and then dispel the bubbles of ignorance that were instrumental in bestowing upon them the experience of their apparent separateness from their inherent indivisibility.

As long as the infinitely innumerable drops of the ocean do not experience apparent separateness, they fail to realize their own homogeneous and indivisible eternal, infinite existence as ocean itself. It is only through the experience of apparent separateness that atmas can consciously realize their indivisible Oneness as *Paramatma*.

In order to describe the God State IV of "God as Embodied Soul," let us think of one infinitely unconscious soul (*atma*) of *Paramatma* in state A.

In the beginning, in state A, the soul (*atma*) has no consciousness and has no impressions (*sanskaras*).

Therefore, at that stage and in that state the soul (atma) has no gross form, gross body, subtle body nor mental body, **because the existence of gross, subtle and mental impressions** (*sanskaras*) **only can give**

सूक्ष्म और कारण शरीरों को अस्तित्व प्रदान कर सकता है; और केवल इन्हीं शरीरों के अस्तित्व से ही स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगतों का अस्तित्व सम्भव हो सकता है ।

अस्तु, प्रारम्भ में ईश-अवस्था **अ** में आत्मा, अपारतया अचैतन्य और संस्कार रहित होने के कारण, उसे कोई स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की चेतना न थी, और उसको अपने अनन्त **सत्** की भी चेतना न थी । तब आत्मा को स्वाभाविकतया स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगतों का कोई अनुभव न था, और उसको **परमात्मा** का अनुभव भी न था ।

अब आत्मा की यह अनन्त, संस्कार रहित, अचैतन्य, निश्चल अवस्था प्रथम आवेग से विलोड़ित हुई, जिसको हम **प्रथम लहर कहते** थे (खुद को जानने की प्रथम लहर करते थे) ।

खुद को जानने की प्रथम लहर की प्रतिध्वनियों के साथ-साथ, एक **अत्यन्त-स्थूल प्रथम संस्कार** उभरा, जिसने आत्मा को निपट अनन्त परमात्मा के निपट विपरीत एवं अत्यन्त-सीमित प्रतिरूप के रूप में प्रत्यक्षतया प्रस्तुत किया ।

आत्मा, शाश्वतः **परमात्मा** में होती हुई और **परमात्मा** के साथ एकरूप होती हुई, परमात्मा की अनन्त क्षमतायें भी रखती है, यद्यपि वे उसकी अचैतन्य अवस्था में प्रसुप्त होती हैं । इस प्रकार आत्मा अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द के अधिकार से भी सम्पन्न होती है ।

इसलिये, जब संस्कार रहित, अनन्त आत्मा को सर्वप्रथम संस्कार प्राप्त होता है, तब यह संस्कार अत्यन्त-स्थूल संस्कार होने के अलावा और कुछ नहीं हो सकता था, क्योंकि स्वयं आत्मा, जो अनन्त ज्ञान से सम्पन्न होती है, स्वयं अपने निजी "**आत्म**" का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करती है । अनन्त ज्ञान के अधिकार के पक्ष की स्वयं यही धारणा अपारतया अपक्व अथवा स्थूल होती है, और अनन्त आत्मा की इस अपारतया अपक्व अथवा स्थूल धारणा मे संस्काररहित आत्मा को अत्यन्त-स्थूल प्रथम संस्कार प्रदान किया । अत्यन्त-स्थूल प्रथम संस्कार के साथ-साथ, अपारतया अचैतन्य आत्मा को **अत्यन्त-परिमित** प्रथम चेतना भी प्राप्त हुई । निरन्तर बढ़ते हुये स्थूल संस्कारों के साथ-साथ, चेतना का विकास होता गया और स्थूल योनियों के विकास को गति प्राप्त होती गई ।

(२०३)

existence to gross, subtle and mental bodies; and only the existence of these bodies can make possible the existence of gross, subtle and mental worlds.

Hence in the beginning the soul in God state A, being infinitely unconscious and being impressionless, had no consciousness of gross, subtle and mental bodies, and was also unconscious of its infinite Self. The soul naturally then had no experience of the gross, subtle and mental worlds, and also had no experience of the Over-Soul (Paramatma).

Now this infinite, impressionless, unconscious, tranquil state of the soul reverberated with the first impulse, which we called The First Urge (the first urge to know Itself).

Simultaneously with reverberations of the first urge to know Itself, a **most-gross** first impression emerged, objectifying the soul as the absolutely opposite and most-finite counterpart of the absolutely infinite Over-Soul.

The soul, being eternally in the Over-Soul and one with the Over-Soul, has also the infinite potentialities of the Over-Soul, though latent in its unconscious state. Thus the soul is also the possessor of infinite power, knowledge and bliss.

Therefore, when the impressionless, infinite soul receives the very first impression, this impression could be nothing other than the most-gross impression, because the soul itself, which is the possessor of infinite knowledge, tries to gain knowledge of its own "Self." This very conception on the part of the possessor of infinite knowledge is infinitely crude or gross, and this infinitely crude or gross conception of the infinite soul imparted to the impressionless soul the most-gross first impression. Simultaneously with the most-g ross first impression, the infinitely unconscious soul also gained the **most-finite** first consciousness. With the increasing gross impressions, the consciousness evolved and the evolution of gross forms gained momentum.

तदनुसार, चेतना के विकास, स्थूल योनियों के विकास और स्थूल जगत के अनुभवों के विकास, सब खुद को जानने की परमात्मा की पहली लहर के फलस्वरूप उत्पन्न हुये ।

प्रथम लहर के इस अत्यन्त-स्थूल संस्कार के कारण, अनन्त, अचैतन्य आत्मा को प्रथम बार **अनुभव** के पहलू प्राप्त हुये । अनन्त आत्मा का पहला अनुभव यह था कि आत्मा को **परमात्मा** की अनन्त, संस्काररहित, अचैतन्य अवस्था **अ** के साथ अपनी एकरूपता में एक विपरीतता का अनुभव हुआ (जो बिल्कुल विपरीत प्रकृति की थी) ।

विपरीतता के इस अनुभव ने अनन्त आत्मा की शाश्वत, अखण्ड्य स्थिरता में परिवर्तनशीलता पैदा कर दी; और अपनेआप एक प्रकार का विस्फोट हुआ, जिसने एक भीषण धड़ाके अथवा धक्के से अनन्त आत्मा के अखण्ड्य सन्तुलन और अचैतन्य निश्चलता को छिन्न-भिन्न कर दिया, और उस धड़ाके अथवा धक्के ने अपारतया अचैतन्य आत्मा की अपार अचैतन्यता में **परमात्मा** की अखण्ड्य अवस्था से उसकी प्रत्यक्ष पृथक्ता की प्रथम चेतना भर दी । किन्तु आत्मा के अनन्त होने के कारण, वह प्रथम चेतना जो उसको उसकी पृथक्ता के **निपट विपरीत** एवं अत्यन्त-स्थूल प्रथम संस्कार की ठमक अथवा धक्के से प्राप्त हुई, स्वाभाविकतया और आवश्यकरूप से अत्यन्त-सीमित प्रथम चेतना थी ।

आत्मा को जो प्रथम चेतना प्राप्त हुई वह स्पष्टरूप से, उसकी खुद की मूल, अनन्त अवस्था, जैसी "**अ**" में है, के परम द्वन्द्वों के अनुभव के अनुपात में अत्यन्त सीमित थी ।

तदनुसार, तब इसका यह अर्थ होता है कि प्रारम्भ में जब संस्काररहित, अनन्त आत्मा को प्रथम संस्कार प्राप्त हुआ, तो ऐसा प्रथम संस्कार एक निपट अत्यन्त-सीमित स्थूल संस्कार था । उसको (आत्मा को) जो प्रथम चेतना प्राप्त हुई वह अत्यन्त सीमित थी । स्वाभाविकतया, उस क्षण अनन्त आत्मा की अचैतन्यता को अत्यनत-स्थूल प्रथम संस्कार की अत्यन्त-सीमित प्रथम चेतना का यथार्थ अनुभव प्राप्त हुआ ।

अब यदि आत्मा को संस्कारों की चेतना प्राप्त है, तब आत्मा को **अनिवार्यरूप से इन संस्कारों का अनुभव करना चाहिये ।** और, संस्कारों का अनुभव करने के लिये, आत्मा की चेतना को अनिवार्यरूप

Consequently, the evolution of consciousness, the evolution of gross forms and the evolution of the experiences of the gross world were all effected as the result of the first urge of God to know Himself.

Because of this most-gross first impression of the first urge, the infinite, unconscious soul gained the aspects of **experience** for the first time. This first experience of the infinite soul was that it (soul, atma) experienced a contrariety (absolutely opposite by nature) in its identity with the infinite, impressionless, unconscious state A of Paramatma.

This experience of contrariety effected changeableness in the eternal, indivisible stability of the infinite soul; and spontaneously there occurred a sort of eruption, disrupting the indivisible poise and unconscious tranquility of the infinite soul with a recoil or tremendous shock, which impregnated the infinite unconsciousness of the infinitely unconscious soul (atma) with first consciousness of its apparent separateness from the indivisible state of Paramatma. But the soul being infinite, the first consciousness that it derived from the recoil or shock of the **absolutely opposite** and most-gross first impression of its separateness was naturally and necessarily most-finite first consciousness.

The first consciousness gained by the soul was obviously most-finite in proportion to the experience of absolute opposites of its own original, infinite state as in "A."

Consequently, it then means that in the beginning when the impressionless, infinite soul was first impressioned, such first impression was an absolutely most-finite gross impression. The first consciousness it (soul, atma) derived was most finite. Naturally, at that instant, the unconsciousness of the infinite soul actually experienced a most-finite first consciousness of the most-gross first impression.

Now if the soul is conscious of impressions (sanskaras), then the soul **must necessarily experience these impressions.** And in order to experience the impressions, the consciousness of the soul must experience

से उनका अनुभव उचित और उपयुक्त माध्यम के द्वारा करना चाहिये । जैसे संस्कार होते हैं, वैसे ही संस्कारों के अनुभव होते हैं, और उसी प्रकार संस्कारों का अनुभव करने के लिये वैसे ही उचित माध्यम होते हैं । अर्थात्, संस्कार अनुभवों की उत्पत्ति करते हैं, और संस्कारों का अनुभव करने के लिये उचित माध्यम का प्रयोग आवश्यक है ।

अस्तु, चूँकि अनन्त, शाश्वत और निराकार आत्मा को अब अत्यन्त-स्थूल प्रथम संस्कार की अत्यन्त-सीमित प्रथम चेतना प्राप्त हो गई है, अतः अत्यन्त स्पष्ट एवं अनिवार्यरूप से आत्मा की इस प्रथम चेतना को अत्यन्त-स्थूल प्रथम संस्कार का अनुभव करने के लिये अत्यन्त-सीमित एवं अत्यन्त-स्थूल प्रथम माध्यम का उपयोग करना अविश्यक है ।

परमात्मा ने अपनी **अवस्था ४** में (शरीरधारी आत्मा के रूप में परमात्मा) जो प्रथम माध्यम ग्रहण किया वह पहला रूप है जो, यद्यपि वह स्थूल है, फिर भी वह इतने अकल्पनीय रूप से अनन्ततया सीमित है कि वह स्थूलवत् भी नहीं समझा जा सकता । वह इतना अधिक अपारतया आकार रहित और तत्व रहित, द्रव्यरहित एवं रूपरहित होता है कि उससे कोई यह भी कल्पना नहीं कर सकता कि वह स्थूल है । तथापि यह रूप वही सर्वप्रथम स्थूल रूप है जिसका उद्भव साथ-साथ मानो तीन काँटों के रूप में, सर्वप्रथम सात "**गैस-सदृष्य**" रूपों के प्रथम तीन रूपवत् होता है । यदि इन प्रथम तीन गैस-समान रूपों का वर्णन करने का कभी प्रयास किया जाय तो उनका केवल घनत्व के सिद्धान्त से वर्णन किया जा सकता है,—पहले में अनन्त रूप से नाममात्र का घनत्व होगा, फिर अगले क्रम में नाममात्र का घनत्व होगा, और तीसरी अवस्था में घनत्व के प्रथम चिन्ह रखता प्रतीत होगा । इन प्रथम तीन रूपों का विकास नहीं होता । अगले तीन रूप हमारी कल्पना के विस्तार के अन्दर आ सकते हैं और उनका वर्णन "अर्द्ध-गैसियस और अर्द्ध-भौतिक" रूपों के रूप में किया जा सकता है । विकास चौथे गैस-सरीखे रूप से प्रारम्भ होता है । और अन्ततः, सात सर्वप्रथम गैस-समान रूपों की शृङ्खला का ७वाँ गैस-समान रूप होता है, जो हाईड्रजिन है, और उसमें इलेक्ट्रान (कण) का समावेश कहा आ सकता है ।

यह अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिये कि प्रथम छः गैस-स्वरूप स्थूल रूप विविध गैसों से समानता नहीं रखते, जैसे हाईड्रजिन,

them through proper and suitable media. As the impressions are, so are the experiences of the impressions, and likewise so are the proper media to experience the impressions. That is to say, the impressions give rise to experiences, and to experience the impressions, the use of appropriate media is essential.

Therefore, as the infinite, eternal and formless soul has now gotten the most-finite first consciousness of the most-gross first impression, most obviously and necessarily this first consciousness of the soul must utilize the most-finite and the most-gross first medium to experience the most-gross first impression.

This first medium adopted by God in His State IV (God as embodied soul) is a first form which, although it is gross, yet it is so inconceivably, infinitely finite that it cannot even be considered as gross. It is so very infinitely shapeless and substanceless, matterless and formless, that it cannot lead one even to imagine that it is gross. Yet this form is the very first gross form that emerges simultaneously as if in three prongs, as the first three of the fore-most seven **"gas-like"** forms. If a description of these first three gas-like forms could ever be attempted, they could only be described from the standpoint of density—the first having infinitely negligible density, then in the next stage negligible density, and in the third stage as having the first traces of density. These first three forms have no evolution. The next three forms may come within the scope of our imagination and may be described as "semi-gaseous and semi-material" forms. Evolution begins with the fourth gas-like form. And finally, there is the seventh gas-like form, of the series of seven foremost gas-like forms, which is hydrogen, and which may be said to include the electron.

It should be noted well that the first six gas-like gross forms bear no resemblance to the various gases such as hydrogen, nitrogen, and so forth.

नाईट्रजिन, इत्यादि । वे उन रूपों की अपेक्षा बहुत-बहुत बारीक (सूक्ष्म नहीं)‡ होते हैं जिनसे इस युग के वैज्ञानिक भलीप्रकार परिचित हैं ।

अवस्था ५
विकास की अवस्था में आत्मावत् परमात्मा

परमात्मा देहधारी आत्मा के रूप में अब चैतन्य होना **प्रारम्भ करता है** और सृष्टि (*nothingness*) को "जानना" **प्रारम्भ करता है,** यद्यपि इस अवस्था में उसका सृष्टि को "जानना" अपारतया उपेक्षनीय (*negligible*) होता है । जो भी हो, यह अत्यन्त सीमित चेतना और यह सूक्ष्मतम "जानना", और अधिक संस्कार पैदा करता है जिसके कारण "बूँद" (*soul, atma, Self*) मूल प्रथम बुलबुले (*form*) को छोड़ती अथवा उससे सम्बन्ध विच्छेद करती है । बुलबुले को छोड़ देना प्रथम रूप को त्यागने, अथवा उससे अलग होने के बराबर है ।

रूप के त्याग दिये जाने के बाद भी, आत्मा की विकसित होती हुई चेतना के द्वारा सञ्चित हुये संस्कार समाप्त नहीं होते । ये संस्कार विकसित हुई चेतना के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखते हैं और उनके कारण आत्मा की विकसित होती हुई चेतना एक अन्य उपयुक्त एवं अधिक श्रेष्ठ बुलबुले (रूप) से साहचर्य करती है । इस प्रकार आत्मा दूसरे रूप के माध्यम से **सृष्टि** को जानने अथवा उसका अधिक अनुभव करने के योग्य होती है । "दृष्टिकोण" विस्तृत होता है और "जानने" की चेतना रूप के विकास के साथ-साथ उसी अनुपात से बढ़ती है । स्थूल चेतना में विकास अथवा वृद्धि होने के साथ-साथ संस्कार भी बढ़ते जाते हैं, और वह उन संस्कारों के अनुसार, जो चेतना दूसरे स्थूल रूप को त्यागने के समय बनाये रखती है, आत्मा को और भी अधिक जटिल स्थूलरूप धारण करने अथवा उससे साहचर्य करने का कारण बनती है ।

इस प्रकार चेतना के विकास की प्रगति युगों-युगों तक होती रहती है, और वह उन रूपों के विकास के साथ-साथ होती रहती है, जो सञ्चित हुये संस्कारों का अनुभव करने में, और साथ-साथ नष्ट करने में, सहायता करने हैं, जब तक कि रूपों के असंख्य परिवर्तनों के बाद आत्मा,

‡ इसको सूक्ष्म जगत के किसी रूप अथवा पदार्थ से किसी भी प्रकार सम्बन्धित न करना चाहिये, क्योंकि ये रूप अकेले स्थूल जगत के हैं ।

They are much, much finer (not subtler)* than those with which the scientists of the age are well conversant.

State V
God as Soul in the State of Evolution

God as embodied soul now begins to become conscious and **begins** to "know" the Creation (the Nothingness), although His "knowing" of the Creation at this stage is infinitely negligible. Even this most finite consciousness and this minutest "knowing," however, creates more impressions (sanskaras) that cause the "drop" (soul, atma, self) to leave or dissociate from the original first bubble (form). Leaving the bubble is equivalent to a dropping off of, or dissociating from, the first form.

Even after the form is dropped, the impressions gathered by the evolving consciousness of the soul do not vanish. These impressions remain associated with the evolved consciousness and cause the evolving consciousness of the soul to associate with another appropriate and superior bubble (form). The soul is thus able to know or experience more of the Creation through the second form . The "angle of vision" widens and the consciousness of "knowing" increases in proportion to the simultaneous evolution of form. With the evolution or growth in gross consciousness the impressions (sanskaras) also increase and cause the soul to assume or associate with a still more complex gross form in accordance with the impressions retained by the consciousness when the second gross form is abandoned.

In this way the evolution of consciousness progresses for ages, concurrently with the evolution of forms which help to experience, and concurrently exhaust, the impressions gathered, until after countless changes of forms, through more concrete and successive stages of stones,

* This is in no way to be connected with any form or object of the subtle world, because these forms are solely of the gross world.

पत्थरों, धातुओं, पौधों, कीड़ों, मछलियों, पक्षियों एवं जीवधारियों के अधिक ठौस और क्रमबद्ध स्थितियों के माध्यम से, मानवरूप धारण नहीं कर लेती ।

दूसरे शब्दों में, आत्मा की चेतना का विकास चक्र उच्चतर और उच्चतर प्रकार के रूपों के विकास के साथ-साथ और आगे तथा और अधिक चेतता का विकास करता रहता है, जबकि वह अगले निम्नतर प्रकार के पृथक् हुये रूपों के संस्कारों को अनुभव एवं ख़र्च करता रहता है ।

तदनुसार आत्माओं की चेतना का विकास प्रत्यक्षरूप से आत्माओं को, स्थूल जगत में, बेशुमार उच्चतर और उच्चतर रूपों की उप-जातियों के विविध असंख्य संस्कारों से अपनी तद्रूपता करने और उनका सञ्चय करने के लिये प्रवृत्त करता है । स्पष्ट-विलग बृहत् रूप जिनसे आत्मायें साहचर्य करती हैं, अधिकतर और अधिकतर चेतना की प्रत्येक छलाँग के साथ, पत्थर से लेकर धातु तक, धातु से पौधे तक, पौधे से कीड़ा तक, कीड़ा से मछली तक, मछली से पक्षी तक, पक्षी से पशु तक चलाँगें मानवे के अनुसार होते हैं, और अन्ततः अन्तिम एवं सातवीं छलाँग पशु से मनुष्य योनि तक होती है ।

यह समझ लेना बहुत महत्वपूर्ण है कि चेतना के विकास की प्रक्रिया केवल बुलबुलों अथवा रूपों के विकास से ही सम्बन्ध रखती है, और "बूँदों" अथवा आत्माओं से नहीं रखती । आत्मायें चेतना के विकास के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इतनी अखण्ड्य एवं अनन्त बनी रहती हैं जितना कि अपरिमित महासागर (परमात्मा) बना रहता है, जिसका अन्त रूप के विकास के पूर्ण होने के साथ हो जाता है ।

केवल रूप के इस विकास के द्वारा अज्ञानता की चेतना, अथवा सृष्टि का "ज्ञान", विविध संस्कारों के कारण क़दम-ब-क़दम बढ़ता है; और केवल मनुष्य योनि में व्यक्तिगत हुई (*individualized*) आत्मा अन्ततः परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त करती है । चूँकि आत्मा अनन्त है, इसलिये आत्मा की चेतना को भी अवश्य अनन्त बन जाना चाहिये; और क्योंकि चेतना केवल मनुष्य योनि में अनन्त बन सकती है, अतः मनुष्य योनि रूप विकास की अन्तिम स्थिति है ।

आत्मा को मनुष्य में पुनर्जन्म लेना प्रारम्भ करने के बाद,

metals, plants, worms, fishes, birds and animals, the soul takes on the human form.

In other words, the cycle of evolution of consciousness of soul continues evolving further and greater consciousness with the evolution of forms of higher and higher types, while experiencing and exhausting the impressions of the dissociated forms of the next lower type.

Consequently the evolution of consciousness of souls apparently tends the souls to identify themselves with, and gather varied innumerable impressions of, higher and higher gross species of forms, unlimited in number, in the gross world. The clean-cut major forms with which the souls associate, with every leap of greater and greater consciousness, are in accordance with the leaps from stone to metal, from metal to plant, from plant to worm, from worm to fish, from fish to bird, from bird to animal, and ultimately the last and seventh leap is from animal to human form.

It is very important to understand that the process of evolution of consciousness concerns the evolution of bubbles or forms only, and not the "drops" or the souls. The souls remain as indivisible and infinite as the unlimited ocean (Paramatma) f rom the beginning until the end of evolution of consciousness, which terminates with the completion of evolution of form.

Only through this evolution of form does the consciousness of ignorance, or the "knowing" of Creation, increase step by step due to varied impressions; and only in the human form can the individualized soul (atma) eventually realize the Over-Soul or Paramatma. As the soul is infinite, the consciousness of the soul must also become infinite; and because consciousness can become infinite only in human form, the human form is therefore the final stage of evolution of form.

The soul has to pass through eight million, four hundred thousand (eighty-four lakhs) human forms after it has once commenced to

चौरासी लाख मनुष्य योनियाँ पार करनी पड़ती हैं, जब तक कि उसको ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त नहीं हो जाता । मनुष्य योनि में जन्म ले सकने के पहले उसको जिन पूर्व-मानव योनियों से गुज़रना पड़ता है, वे असंख्य होती हैं ।

वस्तुतः केवल एक योनि—मनुष्य योनि—है जो सभी पिछले रूपों में प्रसुप्त रहती है । धातु, पौधा और पशु योनियाँ यथार्थ में मनुष्य योनि को उसकी प्रसुप्त अवस्था में अपने में समाविष्ट रखती हैं, और यह क्रमशः तथा निरन्तर वढ़ती गति से अभिव्यक्त होता है जब तक कि अन्त में यह मनुष्य शरीर में मानव प्राणी के रूप में पूरी तरह से अभिव्यक्त नहीं हो जाता ।

मनुष्य योनि के नर देह में पूरीतौर से अभिव्यक्त होने के पहले, जैसे एक पुरुष अथवा स्त्री, प्रसुप्त मानव रूप श्रृङ्खलाबद्ध आंशिक मोड़ें लेता है । स्फटिक पाषाण अवस्था में (जैसे ग्रेनाईट पत्थर) प्रसुप्त मानवरूप बिल्कुल उल्टा होता है, और पौधे की अवस्था में भी प्रायः ऐसा ही होता है । रूपों की प्रगति अथवा विकास के साथ-साथ, शरीर की धुरी धीरे-धीरे घूमती है, जिससे वह अधिक और अधिक लम्बायमान हो जाता है; और जब हम पीठ की रीढ़वाले उच्चतर प्राणियों के पास पहुँचते हैं, तब हम सिर को अधिक और अधिक ऊँचा उठता हुआ पाते हैं, जैसे-जैसे शरीर की धुरी लम्बरूप की स्थिति पर पहुँचती है । पुरुषों और स्त्रियों में हम मानवरूप को पूर्णतया अभिव्यक्त एवं पूर्णतया लम्बरूप पाते हैं ।

इस योनि के विकास के विवरण अत्यन्त जटिल होते हैं । उदाहरण के लिये, पत्थर, धातु, पौधा और प्राणी की कुछ विशिष्ट उप-जातियाँ हैं जो मेहेरबाबा के वर्णन के अनुसार विकास में एक विशेष "स्थान" रखती हैं । रूपों की ये मूल उप-जातियाँ अधिकांशरूप से वे हैं जो विकास मार्ग पर मीलों के चिन्ह हैं, और वे रूपों की उप-जातियों की एक विशिष्ट प्रथम और अन्तिम सामान्य श्रेणी का चिन्ह होती है । उदाहरण के लिये, मत्स्य योनि की अन्तिम उप-जातियाँ के बाद आने वाली पक्षी योनि की प्रथम उपजातियों और पक्षी-योनि की अन्तिम उपजाति के पश्चात् आने वाली पशु-योनि की प्रथम उपजाति विकास में एक विशेष "स्थान" का महत्व रखती है ।

(२०८)

reincarnate in the human form until it has attained God-realization. The prehuman forms through which it has to pass before it can incarnate in the human form are innumerable.

Strictly speaking there is only one form—the human form — which is latent in all of the previous forms. The mineral, the plant and the animal forms actually contain the human form in its latent state, and this is gradually and increasingly manifested until it is at last completely expressed as a human being in a human body.

Before the human form becomes completely manifested in a human body, such as a man or a woman, the latent human form makes a series of partial turns. In the crystalline rock state (such as granite) the latent human form is completely upside down, and is almost so in the plant state as well. As the forms progress or evolve, the axis of the body rotates slowly, so that it becomes more and more horizontal; and when we reach the higher vertebrates, we find the head rising up more and more, as the axis of the body ap-proaches the vertical. In men and women we find the human form completely expressed and completely vertical.

The details of this evolution of form are extremely complex. There are, for example, certain species of stone, metal, plant and animal that have what Meher Baba described as a special "seat" in evolution. These key species of forms are mostly those that are milestones on the evolutionary road, and they mark the first and the last of a certain general class of species of forms. For example, the first species of bird-form to follow the last species of fish-form and the first species of the animal-form to follow the last species of the bird-form have a special "seat" significance in evolution.

मेहेरबाबा हमको बतलाते हैं कि उन्होंने इस विषय का पूरा-पूरा विवरण खुद अपने ग्रन्थ में‡ समझा दिया है जो अब भी दुनियाँ को दिया जाता है ।

जिन प्रकार चेतना का विकास होता है और योनियों का विकास होता है उसी प्रकार जगतों (*worlds*) का विकास भी होता है ।

आत्मा की विकसित हुई चेतना, विकसित हुये रूपों से आत्मा की एकरूपता किये हुये, अधिक और अधिक संस्कार प्राप्त करती है; और इन संस्कारों का नाश करने के लिये, वह अपने आविर्भाव का क्षेत्र अविचलठप से प्राप्त करती है; और वह इन संस्कारों का अनुभव पृथ्वी पर करती है, और पृथ्वी भी अन्य जगतों के साथ-साथ अखिल सृष्टि के प्रगतिशील विकास के अनुसार, विकसित हो रही है ।

आत्मा की चेतना के विकास के दौरान में, आत्मा विविध, सीमित स्थूल रूपों से **चैतन्यरूप से** अपनी एकरूपता किये हुये साथ-साथ—यद्यपि **अचैतन्यरूप से—अपनी एकरूपता अपने** सीमित सूक्ष्म रूप से और अपने सीमित मनो रूप से भी किये हुये थी, जो आत्मा के साथ अपना साहचर्य, ठीक पहली लहर के समय से लेकर चेतना के विकास के आद्योपान्त अविरल, सजातीय अचैतन्य साहचर्य के साथ सम्पर्क रखते थे ।

चेतना के समस्त विकास के आद्योपान्त जबकि आत्मा अपनेआप को बहुधा और **चैतन्यरूप से** सीमित स्थूल रूपों से अलग कर लेती है, जो रूप अधिक और अधिक चेतना का विकास करते हुये संस्कारों का अनुभव और विनाश करने के लिये माध्यन के रूप में कार्य करते हैं, आत्मा कभी भी अपनेआप को, चैतन्य अथवा अचैतन्यरूप से, अपने सीमित सूक्ष्म शरीर ओर अपने सूक्ष्म कारण शरीर, से अलग नहीं करती ।

इसके विपरीत, जब आत्मा सीमित स्थूल रूप के किसी एक माध्यम से अपनी एकरूपता से अपने को पृथक् करती है, तब आत्मा

‡ [उस उल्लिखित ग्रन्थ को भ्रमवश यह प्रकाशन न समझना चाहिये । मेहेरबाबा ने एक अतिरिक्त ग्रन्थ लिखा है, जो बाद में प्रकाशित किया जासकता है ।

—सम्पादक]

Meher Baba tells us that this whole theme has been explained down to the last detail in his own book* that is still to be handed over to the world.

Just as there is evolution of consciousness and evolution of forms, so also there is evolution of the worlds.

The evolved consciousness of the soul, identifying the soul with evolved forms, gets more and more impressioned; and in order to exhaust these impressions, it consistently finds its field of expression; and it experiences these impressions on the earth, which is also evolving concurrently with other worlds in accordance with the progressive evolution of the entire cosmic Creation.

During the course of evolution of consciousness of the soul, the soul, while consciously identifying itself with varied, finite gross forms, was also simultaneously, though unconsciously, identifying itself with its finite subtle form and its finite mental form, which associated with the soul (atma) in compact, homogeneous, unconscious association throughout the course of evolution of consciousness, right from the first urge.

During the whole course of the evolution of consciousness while the soul frequently and consciously dissociates itself from the finite gross forms, which act as media to experience and exhaust the impressions while evolving greater and greater consciousness, the soul never dissociates itself, consciously or unconsciously, from its finite subtle form and its finite mental form.

On the contrary, when the soul dissociates its identification with any one medium of finite gross form, it is the unconscious association of the

* [The book referred to should not be confused with this publication. Meher Baba has authored an additional work, which might be published later. Ed.]

का अपने सूक्ष्म शरीर के साथ अचैतन्य साहचर्य ही आत्मा को अपनी सीमित प्राणशक्ति के साथ सुरक्षित रखता है, जो तब बिना किसी स्थूल माध्यम के होती है—वह साहचर्य प्रेरक शक्ति होता है जो आत्मा की चेतना को फिर भी दुसरी योनि से अपनी एकरूपता करने की दिशा में प्रवृत्त करता है, अर्थात् अगले सीमित स्थूल रूप के अगले माध्यम की ओर प्रवृत्त करता है, जिससे वह पिछले पृथक् हुये सीमित स्थूल रूप के संस्कारों का अनुभव करे, जिन संस्कारों को आत्मा का सीमित कारण शरीर धारण किये था और प्रतिबिम्बित करता था, और उस कारण शरीर का भी अचैतन्य साहचर्य आत्मा के साथ है ।

यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि आत्मा की अधिक और अधिक चेतना के विकास के साथ-साथ, आत्मा के सीमित सूक्ष्म शरीर का विकास भी होता है जो आत्मा को और अधिक सीमित प्राणशक्ति से बलिष्ठ करके, उससे चेतना को अधिक और अधिक स्थूल-चैतन्य आत्मा को उच्चतर और उच्चतर सीमित स्थूल रूपों के साथ अपनी तद्रूपता करने के लिये प्रेरित करे, जो रूप अन्तिम निचले एवम् सीमित स्थूल रूप के संस्कारों द्वारा विकसित हुये थे ।

इसी प्रकार से, आत्मा के अन्तिम सीमित कारण शरीर का विकास भी साथ-साथ होता जाता है जिससे वह निरन्तर बढ़ते हुये असंख्य विविध संस्कारों को, जो संस्कार आत्मा की चेतना के अधिक और अधिक विकास के द्वारा प्राप्त और संचित हुये थे, धारण, स्थिर और प्रतिबिम्बित करे ।

इस प्रकार से ही केवल मानव योनि में सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर पूर्णतया विकसित होते हैं । अतः आत्मा, मनुष्य योनि के साथ चैतन्य रूप से अपना साहचर्य करती हुई, मनुष्य योनि में स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के साथ, मामव रूप में प्राप्त किये स्थूल की पूर्ण चेतना सहित, पूर्णतया सम्पन्न होती है ।

फिर भी, यद्यपि आत्मा को मानव योनि में पूर्ण चेतना प्राप्त हो गई है और इसलिये उसको स्थूल जगत का अनुभव होता है, तथापि स्थूल-चैतन्य मानवी-आत्मा को सूक्ष्म शरीर की चेतना नहीं होती और इसलिये वह सूक्ष्म जगत का अनुभव नहीं कर सकती; स्थूल-चैतन्य मानवी-आत्मा को भी कारण शरीर की चेतना नहीं होती इसलिये उसको कारण जगत का अनुभव नहीं हो सकता ।

(२१०)

soul with its subtle form that fortifies the soul, then without any gross medium, with finite energy—the driving force—to tend the consciousness of the soul towards identifying itself with yet another form, i.e., the next medium of the next finite gross form, to experience the impressions of the last dissociated finite gross form, retained and reflected by the finite mental form of the soul, which is also in unconscious association with the soul.

It is only natural that together with the evolution of greater and g reater consciousness of the soul, the evolution of the finite subtle form of the soul also takes place to fortify the soul with greater finite energy to tend the consciousness of the more and more gross-conscious soul to identify itself with higher and higher types of finite gross forms evolved by the impressions of the last lower and finite gross form.

Similarly, the evolution of the finite mental form of the soul also takes place simultaneously to accommodate, retain and reflect the increasingly innumerable, varied impressions gained and gathered by the evolution of greater and greater consciousness of the soul.

Thus it is that only in a human form are the subtle body and the mental body fully developed. Hence the soul, associating itself consciously with human form is, so to speak, fully equipped with gross body, subtle body and mental body in human form, together with the full consciousness of the gross gained in the human form.

Nevertheless, although the soul has gained full consciousness in human form and so experiences the gross world, yet the gross-conscious human soul is unconscious of the subtle body and therefore cannot experience the subtle world; the gross-conscious human soul is also unconscious of the mental body and therefore cannot experience the mental world.

अवस्था ६
पूनर्जन्म की अवस्था में
मानवी आत्मा के रूप में परमात्मा‡

प्रथम लहर के अत्यन्त-सीमित प्रथम संस्कार ने अचैतन्य आत्मा की अपारतया अचैतन्यता को अत्यन्त-सीमित प्रथम चेतना प्रदान की । क्रमशः, विविध और असंख्य संस्कारों ने, जिनका अनुभव विविध और असंख्य स्थूल माध्यम के द्वारा प्राप्त हुआ, आत्मा के लिये सीमिति स्थूल जगत की अधिक और अधिक चेतना प्राप्त की, और अन्ततगित्वा चेतना का विकास पूरा हो गया जबकि आत्मा की चेतना ने अपनी एकरूपता अत्यन्त-प्रथम मानव योनि से की । इसलिये आत्मा को, अब मानव रूप में पूर्ण चेतना प्राप्त कर लेने पर, चेतना का विकास करने के लिये और अधिक अथवा और अन्य उच्चतर रूपों का विकास करने की आवश्यकता नहीं होती । विकास की प्रक्रिया में क्रमशः प्राप्त की गई चेतना मानव योनि में पूर्ण और भरपूर हो जाती है ।

यद्यपि आत्मा को इस अवस्था में पूर्ण और भरपूर चेतना प्राप्त हो गई है, तथापि उसको अब भी अपने सूक्ष्म और कारण शरीरों की चेतना प्राप्त नहीं हुई और न उसको अपनी अपरिमित सत्ता की चेतना एक के रूप में प्राप्त हुई हौ—कि वह अखण्ड्य, शाश्वत् और अनन्त है; उसको मानव रूप और उसके स्थूल जगत के विविध पहलुओं और अनुभवों के साथ केवल अपनी एकरूपता की पूर्ण चेतना प्राप्त है ।

तदनुसार इस स्थिति में आत्मा, जिसको केवल अत्यन्त प्रथम स्थूल मानव रूप की पूर्ण स्थूल चेतना प्राप्त है, और फिर भी उसको सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर की चेतना प्राप्त नहीं है, स्थूल जगत में अन्तिम से अन्तिम स्थूल पशु रूप के सब संस्कारों का अनुभव करती है, जो अन्तिम-से-अन्तिम स्थूल रूप आत्मा की चेतना ने, चेतना के विकास के सबसे बाद के क्रम में, त्याग दिया था अथवा अलग कर दिया था ।

जब सबसे-अन्तिम स्थूल पशु योनि के सब संस्कार अत्यन्त प्रथम मानव स्थूल योनि द्वारा निरन्तर अनुभवों के माध्यम से समाप्त हो जाते हैं, तब यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि यह सर्व-प्रथम मानव रूप आत्मा

‡ [यह भी पढ़िये : मेहेरबाबा कृत, "पुनर्जन्म और कर्म", सम्भाषण (*Discourses*), ३ : पृष्ठ ५१-९८ । —सम्पादक]

State VI
God as Human Soul in the State of Reincarnation*

The most-finite first impression of the first urge gave to the infinite unconsciousness of the unconscious soul the most-finite first consciousness. Gradually, varied and innumerable impressions, experienced through varied and innumerable gross media, gained greater and greater consciousness of the finite gross world for the soul, and eventually the evolution of consciousness was complete when the consciousness of the soul identified itself with the most-first human form. Therefore the soul, having now gained full consciousness in human form, does not need any more or any other higher forms to evolve consciousness. The consciousness gradually gained in the process of evolution is full and complete in human form.

Though the soul in this state has gained full and complete consciousness, it is still not conscious of its subtle and mental bodies nor of its unlimited Self as One—indivisible, eternal and infinite; it is only fully conscious of its identity with human form and its varied aspects and experiences of the gross world.

Consequently the soul at this stage, only fully gross-conscious of the most-first human gross form, and still unconscious of the subtle and mental, experiences in the gross world all of the impressions of the most-last animal gross form dissociated or dropped by the consciousness of the soul in the latest stage of evolution of consciousness.

When all of the impressions of the most-last animal gross form are exhausted through incessant experiences by the most-first human gross form, then it is but natural that this most-first human form is dropped or

* [See also Meher Baba, "Reincarnation and Karma," Discourses, 301–338. Ed.]

की चेतना से अलग अथवा विच्छिन्न हो गया है । पूर्णतया चैतन्य आत्मा को प्राप्त हुआ यह अनुभव सारे जगत में मानव प्राणी की मौत माना जाता है । जैसा कि पहले समझाया जा चुका है, यद्यपि आत्मा की चेतना अत्यन्त-प्रथम मानव योनि से पृथक् हो जाती है, तथापि वह कभी भी अपने प्राण और कारण शरीरों के अपने अचैतन्य साहचर्यों से कभी विच्छिन्न नहीं हो सकती ।

आत्मा की चेतना बनी रहती है और वह छूटी हुई अथवा पृथक हुई सर्व-प्रथम मनुष्य योनि के संस्कारों का अनुभव अपने प्राण और कारण शरीरों के द्वारा करती है । इन संस्कारों को समाप्त करने के लिये आत्मा की चेतना को एक स्थूल रूप से अनिवार्य रूप से साहचर्य करना चाहिये; और इसलिये, वह पीछे त्यागे हुये मनुष्यरूप के शेष संस्कारों को अनुभव एवं ख़र्च करने के लिये, अपना साहचर्य अगले मानवरूप से करती है । वास्तव में यह अगला मनुष्यरूप चेतन आत्मा से विलग हुये पिछले शरीर अथवा मनुष्य रूप के सञ्चित रहे विगत संस्कारों का केवल मूर्तमान पिण्ड है । अगले मनुष्यरूप से आत्मा की चेतना का साहचर्य सर्वत्र मानव प्राणी का जन्म माना जाता है ।

संक्षेप में, पुनर्जन्म की अवस्था में मानवी आत्मा के रूप में परमात्मा की **अवस्था ६** में, आत्मा ने मनुष्य योनि में पूर्ण चेतना का विकास कर लिया है, इसलिये स्थूल रूप के और अधिक विकास की कोई आवश्यकता नहीं है । इस प्रकार स्थूल चेतना का विकास मनुष्य योनि को प्राप्त करने के साथ ही समाप्त हो जाता है; और मानवी एवम् उप-मानवी रूपों में पैदा हुये संस्कारों का अनुभव करने के लिये, आत्मा को मनुष्य रूप में पुनः पुनः जन्म लेना पड़ता है ।

जिस प्रकार के मानव रूपों से आत्मा की चेतना को साहचर्य करना होता है, वे भले या बुरे, सुख या दुख, इत्यादि के पिछले संस्कारों की प्रकृति से निर्धारित होते हैं । स्थूल जगत का अनुभव करने के दौरान में, आत्मा अपनी एकरूपता स्थूल शरीर से करती है, जो नश्वर होता है, यद्यपि स्वयम् आत्मा अनश्वर है ।

उप-मानव स्थिति में रूप और चेतना की विकासशील प्रक्रिया अनिच्छित होती है, फिर भी वह स्थिर और नित्य होती है, और उसमें विकास की निचली योनियों में खिसक कर गिर जाने की सम्भावता नहीं होती । मानव स्थिति में, जिसमें योनि के विकास का अन्त और

dissociated from the consciousness of the soul. This experience by the fully conscious soul is universally accepted as the death of the human being. As explained previously, although the consciousness of the soul gets dissociated from the most-first human form, yet it can never get dissociated from the unconscious associations of its subtle and mental bodies.

The consciousness of the soul retains and experiences the impressions of the dropped or dissociated most-first human form through its subtle and mental bodies. In order to exhaust these impressions the consciousness of the soul must necessarily associate with a gross form; and therefore, it associates itself with the next human form to exhaust and experience the residual impressions of the previous human form dropped. In fact this next human form is nothing but the consolidated mould of the past impressions retained of the previous body or human form that dissociated from the conscious soul. The association of consciousness of the soul with the next human form is universally accepted as the birth of a human being.

In short, in State VI of God as human soul in the state of reincarnation, the soul has developed full consciousness in human form, and therefore there is no need for any further evolution of the gross form. The evolution of gross consciousness thus comes to an end with the attainment of the human form; and to experience the impressions (sanskaras) cultivated in the human and the sub-human forms, the soul has to incarnate again and again into the human form.

The kind of human forms with which the consciousness of the soul has to associate is determined by the nature of previous impressions (sanskaras) of virtue or vice, happiness or misery, and so forth. While experiencing the gross world, the soul identifies itself with the gross body, which is destructible, although the soul itself is eternal.

In the sub-human stage the evolutionary process of form and consciousness is involuntary, yet sustained and continuous, with no possibility of slipping down to the lower forms of evolution. In the human

भरपूर चेतना की प्राप्ति होती है, मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति, पुनर्जन्म और अनुभूति की प्रक्रियाओं के द्वारा, स्वेच्छिक होती है, और वह किसी भी प्रकार से पीछे खिसक कर उप-मानवी अवस्था में गिरने के हर ख़तरे से बिल्कुल स्वतन्त्र भी होती है, सिवाय उस स्थिति के जब वह चौथी भूमिका की शक्तियों का क्रूर दुरुपयोग करती है । एक बार पूर्ण चेतना प्राप्त हो जाने पर, वह हमेशा के लिये प्राप्त हो जाती है और कभी नष्ट नहीं होती; और चेतना का विकास केवल तभी पूर्ण होता है वबकि आत्मा की चेतना मनुष्य योनि से अपना साहचर्य करती है । इसलिये आत्मा की चेतना के मानवरूप से अपनी एकरूपता कर लेने पर पीछे उलट कर पुनः जन्म लेना असम्भव होता है ।

मानवी स्थूल शरीर में स्थूल जगत की पूर्ण चेतना के विकास के साथ-साथ, आत्मा उसी के साथ-साथ पूर्णतया विकसित सूक्ष्म और कारण शरीरों से साहचर्य रखती है । किन्तु जब तक चेतना स्थूल जगत तक सीमित रहती है, आत्मा की चेतना अपने सूक्ष्म एवं कारण शरीरों का सीधे-सीध प्रयोग नहीं कर सकती । आत्मा को इन शरीरों की चेतना हो जाती है, और वह इन शरीरों के अनुरूप संस्कारों का अनुभव केवल तब सूक्ष्म और मनो जगतों के अनुरूप लोकों के माध्यम से करती है जब पूर्ण चेतना, जिसे इस स्थिति पर केवल स्थूल की चेतना प्राप्त रहती है, अन्तर की ओर खुद अपनी ओर मुड़ती है और चेतना के प्रातिवर्धन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है । यह केवल तब सम्भव होता है जब वैयक्तीकृत (*individualized*) हुई आत्मा की चेतना भौतिक अथवा स्थूल जीवन के विविध और असंख्य संस्कारों के सतत् अनुभवों से सन्तुष्ट हो जाती है, और केवल जब उसने दुख और सुख के द्वन्द्वों के बीच के झकझोरे सहन कर लिये हैं, जो पुनर्जन्म की प्रक्रिया में जन्मों और पृत्युओं की अटूट शृङ्खला के माध्यम से, युगों तक अनन्त प्रतीत हो सकते हैं । चेतना के विकास के क्रम में संस्कारों की "बन्धनकारी प्रक्रिया" चेतना को विकसित करने, उच्चतर और उच्चतर प्रकार के स्थूल रूपों का विकास करने, के लिये क्रियाशील रहती है । मानवी स्थिति में पूर्ण विकसित हुई चेतना बनी रहती है, किन्तु संस्कारों का फन्दा ढीला और क्षीण होने लगता है और ऐसा वह उन सतत् झटकों के फलस्वरूप होता है जिनका अनुभव आत्मा की चेतना को पुनर्जन्म की प्रक्रिया में जन्म और मरण की भासित अनन्त शृङ्खला के माध्यम से होता है ।

(२१३)

stage, which marks the end of the evolution of form and the attainment of full consciousness, the spiritual progress of man, through the reincarnation and realization processes, is voluntary, and is also absolutely free from any danger whatsoever of slipping down to a sub-human state except in flagrant misuse of the powers of the fourth plane. Once full consciousness is gained, it is gained forever and is never lost; and the evolution of consciousness is completed only when the consciousness of the soul associates itself with human form. Therefore retrograde incarnation is an impossibility once the consciousness of the soul identifies itself with a human form.

With the development of full consciousness of the gross world in the human gross body, the soul simultaneously is associated with the fully developed subtle and mental bodies. But as long as consciousness is confined to the gross world, the consciousness of the soul cannot make use of its subtle and mental bodies directly. The soul becomes conscious of these bodies and experiences the corresponding impressions of these bodies through the corresponding spheres of the subtle and mental worlds only when full consciousness, which is conscious only of the gross at this stage, turns inwards toward itself and the process of the involution of consciousness begins. This becomes possible only when the consciousness of the individualized soul becomes satiated with the incessant experiences of the varied and innumerable impressions of the material or gross life, and only when it has suffered oscillations between the opposites of pain and pleasure, for what may seem interminable ages, through the unfailing chain of births and deaths in the process of reincarnation. In the stage of evolution of consciousness the "winding process" of impressions (sanskaras) is at work with a view to evolving consciousness, developing higher and higher types of gross forms. In the human stage the fully evolved consciousness remains, but the grip of impressions (sanskaras) begins to loosen and thin out as a result of continuous jolts experienced by the consciousness of the soul through the seemingly unending chain of births and deaths in the reincarnation process.

अवस्था ७
अध्यात्म में ऊँची आत्माओं की स्थिति में परमात्मा

स्थूल जगत में स्थूल इन्द्रियों के जीवन से एक अत्यन्त लम्बा संघर्ष करने के बाद, आत्मा की चेतना स्थूल शरीर और उसके स्थूल वातावरण में वेन्द्रित रहने की अपेक्षा आत्मा के स्वत्व (*Self*) की ओर आकर्षित होने लगती है असंख्य जन्म और मरण के बाद स्थूल चेतना से सम्पन्न मानवी आत्मा आखिरकार अनिवार्यरूप से उस प्रक्रिया को प्रारम्भ करने की ओर आकर्षित होती है जो मनुष्य को अन्ततोगत्वा मानव योनि में ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त करने के लक्ष्य तक अग्रसर करेगी ।

इसलिये आत्मा की चेतना स्थूल इन्द्रियों की दुनियाँ से अपनेआप को पीछे को हटाने लगती है और अब वह प्रतिवर्धन की प्रक्रिया से गुज़रने के लिये तैयार होती है । इस प्रकार आत्मा सूक्ष्म और कारण लोकों के द्वारा अध्यात्म में आगे बढ़ती कही जाती है ।

सूक्ष्म लोक, अथवा सूक्ष्म जगत, आत्मा की प्रतिवर्धित होती हुई चेतना की प्रथम तीन भूमिकाओं का प्रदेश है; चौथी भूमिका सूक्ष्म लोक और मनो लोक के बीच स्थित होती है; और मनो लोक के अन्तर्गत पाँचवीं और छठवीं भूमिकायें होती हैं ।

परमात्मा की इस सातवीं अवस्था में, सूक्ष्म एवं मनो लोकों के द्वारा, आध्यात्मिक पथ के यात्रियों का अग्रगमन निहित होता है । जितना अधिक अग्रगमन होता है, उतना ही अधिक चेतना का प्रतिवर्धन होता है ।

जब आत्मा सूक्ष्म शरीर के माध्यम से सूक्ष्म लोक की चेतना प्राप्त कर लेती है, तो वह अपनी एकरूपता सूक्ष्म शरीर से कर लेती है; और जब वह कारण शरीर के द्वारा मन भुवन की चेतना प्राप्त कर लेती है, तब वह अपनी तद्रूपता कारण शरीर से कर लेती है, ठीक जिस प्रकार से उसने अपने तद्रूपता स्थूल शरीर से की थी जब उसको स्थूल शरीर के द्वारा स्थूल लोक की चेतना प्राप्त हुई थी ।

इन लोकों के माध्यम से आत्मा की आध्यात्मिक प्रगति पूर्णरूप से कल्पना में होती है । पीथक की प्रगति उसकी चेतना के प्रतिवर्धन में, प्रतिवर्धित होती हुई चेतना की बिल्कुल प्रथम भूमिका से लेकर छठवीं भूमिका तक, कल्पना के एक प्रदेश को हटाकर उसके स्थान पर कल्पना

State VII
God in the State of Spiritually Advanced Souls

After a long drawn out struggle with the life of the gross senses in the gross world, the consciousness of the soul **begins** to get drawn towards the Self of the soul rather than to remain focussed on the gross body and its gross environment. After a number of births and deaths the gross-conscious human soul is at last inevitably drawn to embark upon the process which will lead the man ultimately to the goal of God-realization in human form.

The consciousness of the soul therefore begins to withdraw itself from the world of gross senses and is now ready to undergo the process of involution. The soul is thus said to advance spiritually through the subtle and mental spheres.

The subtle sphere, or the subtle world, is the domain of the first three planes of the involving consciousness of the soul; the fourth plane lies between the subtle sphere and the mental sphere; and the mental sphere contains the fifth and sixth planes.

This seventh state of God comprises the advance by the pilgrims on the spiritual path through the subtle and mental spheres. The greater the advance, the greater the involution of consciousness.

When the soul becomes conscious of the subtle sphere through the subtle body, it identifies itself with the subtle body; and when it is conscious of the mental sphere through the mental body, it identifies itself with the mental body, just as it identified itself with the gross body when it was conscious of the gross sphere through the gross body.

The spiritual progress of the soul through these spheres is entirely in imagination. The pilgrim's progress in the involution of his consciousness consists in replacing one realm of imagination for a better and higher level

के अधिक अच्छे और अधिक ऊँचे स्तर को लाने में निहित होती है । सातवीं भूमिका में प्रतिवर्धन की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है, कल्पना का अन्त हो जाता है और सत्य का साक्षात्कार हो जाता है, और अब वह आगे कल्पना की चीज नहीं रहता ।

जो लोग आध्यात्मिक पथ पर प्रवेश करते हैं और सद्गुरु के पथप्रदर्शन की सहायता के बग़ैर उस पर चलते हैं वे बहुधा दृश्यों और प्रकाशों की भूलभुलैयों में खो जाते हैं, और उनको अपनेआप को उस स्थिति से मुक्त करने का कोई अवसर नहीं रहता । वे उन बच्चों के समान हैं जो, पाठशाला जाते हुये, रास्ते में बाज़ार के दृश्यों और आकर्षणों से विचलित हो हाते हैं ।

आध्यात्मिक मार्ग पर इतना अधिक भरमजाल एवं इतना प्रगाढ़ प्रलोभन होता है कि यात्रा की प्रारम्भिक अवस्थाओं में भी तीर्थयात्री को ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त होने का निथ्या-भान होता है जिससे वह सद्गुरुओं की सहायता के बग़ैर मुक्त नहीं हो सकता । सूक्ष्म लोक में अनेक ऊँचे तीर्थयात्री सोचते हैं कि उनको जन्मों और मृत्युओं से पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है—यद्यपि बात ऐसी नहीं है । भ्रमजाल विकसित होती हुई चेतना की छठवीं भूमिका तक रहता है, किन्तु वह तीसरी और चौथी भूमिकाओं के बीच अत्यन्त प्रत्यक्ष होता है । चेतना की चौथी भूमिका तीर्थयात्री की प्रगति में अत्यन्त विश्वासघाती स्थिति होती है, क्योंकि यह वह स्थिति है जब सूक्ष्म लोक की अनन्त प्राणशोक्त की सब शक्तियाँ सीधे उसके अधिकार में होती हैं । उन शक्तियों के दुरुपयोग का अर्थ होता है आत्मा की चेतना का अधःपतन और विधटन । यद्यपि यह एक मूल तथ्य है कि एकबार चेतना प्राप्त हो जाने पर वह कभी नष्ट नहीं हो सकती, फिर भी इस नियम में अपवाद हो सकता है, किन्तु वह केवल **चौथी भूमिका पर** हो सकता है, जहाँ आत्मा द्वारा प्राप्त की गई चेतना के छिन्न-भिन्न होने की बड़ी सम्भावना होती है । जबकि इसका पूर्ण ह्रास कभी नहीं होता, असका ह्रास पत्थर योनि की चेतना तक पतित हो जाता है । तब पूर्ण चेतना और मनुष्य योनि को पुनः प्राप्त करने के लिये चेतना के विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया से पुनः गुज़रना पड़ता है ।

इस प्रकार से ही आध्यात्विक पथ का तीर्थयात्री चौथी भूमिका से, तजल्लियत (**सिद्धियों**) के दुरुपयोग अथवा ग़लत प्रयोग करने के

of imagination, right from the first through the sixth plane of involving consciousness. In the seventh plane the involving process is complete, imagination comes to an end and Reality is realized and is no longer a concept.

Those who enter the spiritual path and tread upon it without the help of a Master to guide them very often get lost in the labyrinths of sights and illuminations, and have little or no chance of redeeming themselves from that position. They are like children who, on their way to school, get distracted by the sights and attractions of the market place.

The enchantment on the spiritual path is so great and the enticement so intense that even in the earlier stages of the journey the pilgrim has a pseudo-sense of God-realization from which he cannot emerge unless helped by Perfect Masters. Many an advanced pilgrim in the subtle sphere thinks that he has gained complete freedom from births and deaths—although this is not so. The delusion remains up to the sixth plane of involving consciousness, but it is most conspicuous between the third and fourth planes. The fourth plane of consciousness is the most treacherous stage in the pilgrim's progress, because this is the stage when all the powers of the infinite Energy of the subtle sphere are under his direct command. The misuse of these powers means the downfall and disintegration of the consciousness of the soul. Though it is a fundamental fact that once consciousness is gained it can never be lost, yet an exception to this rule can occur, but only **at the fourth plane** where there is a good possibility of the consciousness gained by the soul being disintegrated. While it is never lost completely, it disintegrates as far back as the consciousness of the stone-form. The whole process of evolution of consciousness then has to be repeated to regain the full consciousness and the human form.

Thus it is that from the fourth plane the pilgrim on the spiritual path may either fall back due to the abuse or wrong use of *tajalliyat* (*siddhis*),

कारण, या तो पीछे गिर सकता है, अथवा चेतना के और अधिक प्रतिवर्धन से अग्रसर होकर चेतना की पाँचवीं भूमिका पर पहुँच सकता है, और मनोलोक अथवा मन भुवन का अनुभव प्राप्त कर सकता है । चौथी भूमिका को पार करना और पाँचवीं भूमिका में प्रवेश करने का अर्थ होगा **ईश्वरीय द्वार** तक पहुँच जाता ।

छठवीं भूमिका में तीर्थयात्री परमात्मा को आमने-सामने "देखता" है । यह देखना मनो-दृष्टि के द्वारा देखना होता है **जब** आत्मा की चेतना आत्मा की एकरूपता कारण शरीर से करती है । उस समय भी जबकि तीर्थयात्री अपनी प्रतिवर्धित होती हुई छठवीं भूमिका में परमात्मा को आमने-सामने देखता है तब भी द्वैध का फन्दा नहीं छूटता, क्योंकि दृष्टा और दृश्य अब भी देखने के द्वारा भिन्नता प्रगट करते हैं ।

भूमिकाओं पर कल्पना समाप्त हो जाती है जैसे ही तीर्थयात्री माया के क्षेत्र पार करता है और पूर्णतया प्रतिवर्धित चेतना की सातवीं भूमिका में सत्यता के प्रदेश में प्रवेश करता है, जहाँ वह सब प्रकार के संस्कारों से बिल्कुल स्वतन्त्र होता है । सातवीं भूमिका की चेतना पूर्ण, साथ-साथ परिपक्व, चेतना होती है और वह संस्कार-रहित चेतना होती है जो आत्मा की एकरूपता उसके "आत्म" से करा देती है । तब आत्मा अपने परमात्मावत् शाश्वत अस्तित्व को चैतन्यरूप से महसूस एवम् अनुभव करती है । "बूँद" (आत्मा), किसी भी बुलबुले (माया के अन्तर्गत अज्ञानता के रूप) से रहित हुई, अपारतया अनन्त महासागर में अपने शाश्वत अस्तित्व का अनुभव स्वयं **परमात्मा** के रूप में करती है ।

अवस्था ८
दिव्यतः निमग्न रूप में परमात्मा

परमात्मा की यह अवस्था आत्मा के लिये विकास के लम्बे संघर्ष के अन्त, पुनर्जन्म की प्रक्रिया के अन्त, और बूमिकाओं के माध्यम से साक्षात्कार करने की प्रक्रिया के अन्त, की द्योतक है । व्यक्रिगत आत्मा के लिये कोई भी उच्चतर श्रेणी नहीं रहती जिसकी दिशा में वह अग्रसर होने की लालसा करे, क्योंकि परमात्मा से उसका ऐक्य हो जाने के द्वारा वह अपने लक्ष्य पर पहुँच गई है । इस श्रेणी का ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त यात्री सूफ़ी दुनियाँ को **मजज़ूब** के रूप में ज्ञात होता है

or progress by further involution of his consciousness to fifth plane consciousness, and capture the experience of the mental sphere or the mental world. Crossing the fourth plane and stepping into the fifth would mean gaining approach to the Divine Gate!

In the sixth plane the pilgrim "sees" God face to face. This seeing is through the mental eye when the consciousness of the soul identifies the soul with the mental body. Even when the pilgrim sees God face to face in the sixth plane of his involving consciousness, the grip of duality is not overcome, because the seer and the seen are still differentiated through the seeing.

Imagination on the planes ceases as soon as the pilgrim crosses the field of Illusion and enters the realm of Reality in the seventh plane of completely involved consciousness, where he is absolutely free of all traces of impressions. The seventh plane consciousness is full, as well as mature, and is the impressionless consciousness which identifies the soul with its "Self." The soul then feels and experiences consciously its eternal existence as God. The "drop" (soul), devoid of any bubble (form of ignorance in Illusion), realizes its eternal existence in the infinite ocean, as the ocean itself (the Paramatma or the Over-Soul).

State VIII
God as the Divinely Absorbed

This state of God signifies for the soul the end of the long evolutionary struggle, the end of the reincarnation process and the end of the realization process through the planes. For the individual soul there is no higher stage toward which to aspire, because it has reached the goal by becoming one with God. The God-realized pilgrim of this stage is known to the Sufi world as a *Majzoob* and the Vedantist calls him a *Brahmi*

और वेदान्ती लोग उसको ब्रह्मी-भूत कहते हैं । **मजज़ूब** को शरीर की चेतना प्राप्त नहीं होती और न तीनों लोकों—स्थूल, सूक्ष्म और मनों लोकों—की चेतना प्राप्त होती है । इसका यह अर्थ है कि इस **अवस्था ८** में, **मजज़ुब** के रूप में परमात्मा खुद अपनी अनन्त त्रि-प्रकृति (अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द) का **अनुभव चैतन्यरूप से करता है**, किन्तु वह अपनी प्रकृति के इन अनन्त पहलुओं का **प्रयोग** नहीं करता ।

इस **आठवीं अवस्था** में, परमात्मा की अचैतन्य अनन्त **अ** अवस्था (अचैतन्य **परमात्मा**) न केवल परमात्मा की अवस्था **ब** की (चैतन्य **परमात्मा**) सर्वोच्च दिव्य चेतना प्राप्त करती है, किन्तु इस अवस्था में परमात्मा खुद अपनी अनन्त चैतन्य अवस्था की यथार्थता में दिव्यरूप से निमग्न हो जाता है, और इस प्रकार वह अपनी शाश्वत तद्रूपता परमात्मा की अनन्त, चैतन्य अवस्था **ब** के साथ अनुभव करता है ।

परमात्मा की यह **अवस्था ८** सर्वोच्च दिव्य चेतना की होती है, जो **अहदियत** (**हालात-ए-मुहम्मदी**) अथवा **विज्ञान** है । सब ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त प्राणी—**मजज़ूब-ए-कामल** (**ब्रह्मीभूत**), **मजज़ुब-सालिक** (**परमहन्स**), **आज़ाद-ए-मुतलक़** (**जीवनमुक्त**), **क़ुतुब** (**सद्गुरु**), और **रसूल** (**अवतार**)—शरीर छोड़ देने के बाद परब्रह्म अवस्था में ईश्वर की इस **ब** अवस्था में चले जाते हैं । मेहेरबाबा ने समझाया था कि **पूर्ण पुरुष** की ऐसी शरीर से पृथक् हुई अवस्था को सूफ़ी लोग **हालात-ए-मुहम्मदी** (महम्मद की अवस्था) कहते हैं, जैसी वह मुक़ाम-ए-मुहाम्मदी (मुहम्मद के पद) से भिन्न होती है । **हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी** भौतिक शरीर में परमात्मा की दसवीं अवस्था है, और **मुक़ाम-ए-मुहम्मदी** (मुहाम्मद का पद) **विज्ञान भूमिका** (विज्ञान का पद) है जैसा चार्ट में **स** के रूप में दिखाया गया है ।

अवस्था ९
परमात्मा मुक्त हुई शरीरधारी आत्मा के रूप में

यदि परमात्मा, **अवस्था ८** के रूप में दिव्यरूप से निमग्न, मनो, सूक्ष्म और स्थूल लोकों की सामान्य चेतना, अपने मनो, सूक्ष्म और स्थूल पहलुओं के माध्यम से, मजज़ूब (दिव्यरूप से निमग्न) के रूप में

Bhoot. The *Majzoob* has no body-consciousness and no consciousness of the three spheres, the gross, the subtle and the mental. This means that in this State VIII, God as *Majzoob* **consciously experiences** His own infinite trio-nature of infinite power, knowledge and bliss, but does not make **use** of these infinite aspects of His nature.

In this State VIII, the unconscious, infinite state A of God (the unconscious *Paramatma*) not only gains the highest divine consciousness of state B of God (the conscious Paramatma) but in this state God becomes divinely absorbed in the reality of His own infinite, conscious state, and thus realizes His eternal identity with the infinite, conscious state B of God.

This State VIII of God is of the highest divine consciousness, which is the *ahadiyat* (*halat-e-Muhammadi*) or the *vidnyan*. All God-realized beings—the *Majzoob-e-Kamil* (*Brahmi Bhoot*), *Majzoob-Salik* (*Paramhansa*), *Azad-e-Mutlaq* (*Jivanmukta*), *Qutub* (*Sadguru*), and *Rasool* (*Avatar*)—retire to this state B of God in the Beyond after disembodiment. Meher Baba explained that such a disembodied state of the Perfect Master is referred to by the Sufis as *halat-e-Muhammadi* (State of Muhammad), as distinguished from *muqam-e-Muhammadi* (Office of Muhammad), when in a physical body. *Haqiqat-e-Muhammadi* is the tenth state of God in a physical body, and the *muqam-e-Muhammadi* (Office of Muhammad) is the *Vidnyan Bhumika* (the office of *vidnyan*) depicted in the chart as "C."

State IX
God as Liberated Incarnate Soul

If God, divinely absorbed as in State VIII, recovers and maintains normal consciousness of the mental, subtle and gross spheres through His

ज्ञान एक मूर्तमान पूर्ण मानवप्राणी के रूप में, पुनः प्राप्त करता और क़ायम रखता है, तब उसको परमात्मा की ८ और १० अवस्थाओं के बीच की दिव्य सन्धि पर अवस्था ९ का अनुभव प्राप्त होता है ।

यदि आत्मा को सानसिक, सूक्ष्म और स्थूल शरीरों एवम् लोकों की सामान्य चेतना पुनः प्राप्त हो जाती है, तो वह फ़ना-ोफ़ल्लाह को पार करके, **बक़ा-बिल्लाह,** अवस्था का अनुभव प्राप्त करने के लिये **मजज़ूब अवस्था ८** के बाहर आ जाती है । किन्तु, **बक़ा-बिल्लाह** में स्थापित होने के पहले, वह उस अवस्था में प्रवेश कर सकती है जिसे सूफ़ी मत वाले "**मुक़ाम-ए-फ़ुरुतत**" की "**फ़ना-मा-अल-बक़ा**" के रूप में जानते हैं, जिसको वेदान्ती लोग "**तुरिया अवस्था**" करते हैं । यह ईश्वरत्व के **फ़ना-फ़िल्लाह** और **बक़ा-बिल्लाह** के बीच की दिव्य सन्धि पर अवस्था ९ है ।

इस अवस्था में मानव देहधारी ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आत्मायें या तो **परमहन्स** (**मजज़ूब-सालिक** अथवा **सालिक-मजज़ूब**) अथवा **जीवनमुक्त** (**आज़ाद-ए-मुतलक़**) होती हैं । वे दोनों अनन्त ज्ञान, शक्ति और आनन्द का उपभोग करती हैं, और उनको "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था की चेतना प्राप्त होती है । वे **मजज़ूब-ए-कामिल** से इस बात में भिन्न होती हैं कि वे तीनों शरीरों और तीनों लोकों (मनो, सूक्ष्म और स्थूल लोक) की चेतना प्राप्त कर सकती हैं, और प्राप्त करती ही हैं । जबकि **मजज़ूब** अवस्था दिव्यतः निमग्न होने की सतत् अवस्था है, **परमहन्स** की अवस्था **कभी** दिव्यतः निमग्न होने की अवस्था है और **कभी** उसकी सामान्य चेतना पुनः प्राप्त करने की अवस्था है जो **सुलूकियत के सुलूक** का अनुभव करता है । उसका चैतन्य अनुभव कभी-कभी ऐसा होता है कि "मैं स्वयं अपना ईश्वर हूँ" और कभी ऐसा होता है कि "मैं स्वयं अपना प्राणी हूँ" । **जीवनमुक्त** की अवस्था उस व्यक्ति की अवस्था होती है जो सामान्यतः **सुलूकियत के सुलूक** का अनुभव करता है (अर्थात् उसका अनुभव करता है जो **बक़ा-बिल्लाह** की अवस्था में स्थायीरूप से स्थापित होता है) । **परमहन्स** और **जीवनमुक्त** दोनों **क़ुतुब** से इस बात में भिन्न होते हैं कि वे अनन्त ज्ञान, शक्ति और आनन्द का उपयोग नहीं कर सकते, जिसका अनुभव वे निरन्तर करते हैं ।

(२१८)

mental, subtle and gross aspects as an embodiment of a perfect human being known as Majzoob (divinely absorbed), He then experiences State IX at the Divine Junction between God States VIII and X.

If the soul recovers the normal consciousness of the mental, subtle and gross bodies and spheres, it comes out of the Majzoob State VIII, crossing the fana-fillah, to get the experience of the baqa-billah state. But, before becoming established in baqa-billah, it may enter the state known to Sufis as "*fana-ma-al-baqa*" of the "*muqam-e-furutat*," which the Vedantists call "*turiya avastha*." This is State IX at the Divine Junction between the fana-fillah and baqa-billah of Divinity.

The God-realized souls in a human body at this state are either the *Paramhansa* (*Majzoob-Salik* or *Salik-Majzoob*) or the *Jivan-mukta* (*Azad-e-Mutlaq*). They both enjoy infinite knowledge, power and bliss, and are conscious of the "I am God" state. They differ from the *Majzoob-e-Kamil*, however, in that they can and do be-come conscious of the three bodies and the three spheres (mental, subtle and gross). While the Majzoob state is a continual state of being divinely absorbed, the state of the Paramhansa is one of **sometimes** being divinely absorbed and **sometimes** recovering normal consciousness of one who experiences the *suluk* of *sulukiyat*. His conscious experience is sometimes that of "I am my own God" and sometimes "I am my own creature." The state of the *Jivan mukta* is of one who normally experiences the *suluk* of *sulukiyat* (*i.e.*, of one permanently established in the state of baqa-billah). Both the *Paramhansa* and *Jivanmukta* differ from the Qutub in not being able to use the infinite knowledge, power and bliss that they experience continuously.

परमहन्स अथवा **जीवनमुक्त** से दुनियाँ को कोई प्रत्यक्ष‡ आध्यात्मिक लाभ प्राप्त नहीं होता । तथापि, **जीवनमुक्त**, अपने जीवन के अन्त की ओर, केवल एक आत्मा को निश्चितरूप से अपनी तरह पूर्ण बना देता है; यद्यपि उसको तीनों लोकों में कोई ड्यूटी नहीं होती, वह **बक़ा-बिल्लाह** की अवस्था के आनन्द का उपभोग करता है ।

अवस्था १०

"नर-नारायण" के रूप में ईश्वर

यह मानवी शरीर में परमात्मा की पूर्ण पुरुष (**क़ुतुब, सद्गुरु**) की जैसी अवस्था है । इस अवस्था में पूर्ण पुरुष अथवा नर-नारायण दिव्य रूप से अनासक्त रूप से और असीमितरूप से माया के विधान से ऊपर होता है जो ऐहिक **सृष्टि** को अपारतया नियमितरूप से नियंत्रित करता है, और फिर भी वह अपने को काल, देश और कारण-कार्य के बन्धनों से बैघने देता है जबकि वह अपनी "मैं-ईश्वर-हूँ" अवस्था और अपनी शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द का सतत् चैतन्य अनुभव करता है । वह न केवल इन अनन्त गुणों का अनुभव करता है, बल्कि वह उनका **उपयोग** भी अन्य आत्माओं की मुक्ति के लिये करता है जो अज्ञानता के फन्दे में हैं और जिन्हें अब भी खुद अपनी शाश्वत सत्यता की चेतना नहीं होती ।

यह परम पूर्णता की अवस्था है; यहाँ परमात्मा गुणों और रूप से युक्त (**सगुण** और **साकार**) होता है ।

सूफ़ीयों के मतानुसार, **क़ुतुब** का अर्थ ऊर्ध्व यात्रा पर सर्वोच्च बिन्दु होता है; वह सृष्टि का **परम पुरुषार्थ** और मानवता का सुन्दरतम पुष्प होता है । **मजज़ूब** की अवस्था में, आत्मा ने, "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था के अनन्त आनन्द का उपभोग किया था; लेकिन पूर्ण पुरुष (**क़ुतुब, सद्गुरु**) "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था के अनन्त आनन्द का रस लेता है और "मैं सबकुछ हूँ" तथा "सबकुछ की उत्पत्ति मुझसे हुई है" की सर्वोच्च दिव्य चेतना का भी आनन्द लेता है ।

मनुष्य शरीर में परमात्मा की यह दसवीं अवस्था **हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी** की अवस्था है । पूर्ण पुरुष (**क़ुतुब** अथवा **सद्गुरु**) और **अवतार** (**रसुल**) सब इसी अवस्था के होते हैं । चाहे परमात्मा (२१९)

‡ [तथात्रि, परक्षिरूप से, उसके सम्पर्क में आने वाला कोई भी जन अपनेआप लाभान्वित होता है । —सम्पादक]

No direct* spiritual benefit accrues to the world from a *Paramhansa* or *Jivanmukta*. However, a *Jivanmukta,* towards the end of his life, does make one single soul perfect like himself; a;though he has no duty in the three spheres, he enjoys the *baqa-billah* state.

State X

God as Man-God and God-Man

This is the state of God in a human body such as a Perfect Master (Qutub, Sadguru). In this state the Perfect Master or the Man-God is divinely, unattachedly and unlimitedly above the law of Illusion that governs the cosmic Creation in an infinitely systematical order; and yet He permits Himself to be bound by the limitations of time, space and causation while continually experiencing consciously His "I am God" state and His infinite power, knowledge and bliss. He not only experiences these infinite attributes, but He also uses these for the emancipation of other souls in the grip of ignorance who are still unconscious of their own eternal reality.

This is the state of absolute perfection; here God is with attributes and with form (saguna and sakar).

According to the Sufis, the Qutub connotes the highest point on the upward journey; he is the summum bonum of Creation and the fairest flower of humanity. In the Majzoob state, the soul enjoyed the infinite bliss of the "I am God" state; but the Perfect Master (Qutub, Sadguru) enjoys the infinite bliss of the "I am God" state and also the highest divine consciousness of "Everything is I" and "Every-thing is from Me."

This tenth state of God in the human body is the state of *haqiqat-e-Muhammadi*. The Perfect Masters (Qutubs or Sadgurus) and the Avatar (Rasool) a re all of this state. Whether God is in the state of Man-God, as

* [Nevertheless, indirectly, anyone coming in contact with him automatically benefits. Ed.]

नर-नारायण के रूप में हो, पूर्ण पुरुष के रूप में हो, अथवा ईश-पुरुष की अवस्था में **अवतारवत्** हो, वह इस १० वीं अवस्था में होता है और वह **मुक़ाम-ए-मुहम्मदी** अथवा **विज्ञान भूमिका** के ईश्वरीय आफ़िस से नर-नारायण के रूप में एवं ईश-पुरुष के रूप में कार्य करता है, जो चार्ट में "**स**" के रूप में दिखाया गया है । परमात्मा के प्रथम आविर्भाव ने, उसकी अनन्त चेतना सहित, इस ईश्वरीय पद को धारण किया, और यह आफ़िस सदैव शाश्वतरूप से अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द को प्रसारित करने के लिये कार्य करता रहेगा, जिसका अनुभव सद्गुरु और **अवतार** न केवल सतत् करते हैं, बल्कि वे उसका प्रयोग समस्त आत्माओं की मुक्ति के लिये भी करते है जो अब भी अज्ञान के चंगुल में हैं, और परमात्मा के साथ ऐक्य की अपनी सनातन अवस्था की चेतना प्राप्त करने का प्रयास करती है ।

दूसरे शब्दों में, परमात्मा मानव शरीर में केवल इस ईश्वरीय आफ़िस के माध्यम से अपनी समस्त पूर्णता में अपने को निरन्तर प्रगट करता रहेगा जो "**परमात्मा की दस अवस्थायें**" शीर्षक चार्ट में "**स**" के रूप में अंकित है ।

केवल इसी ईश्वरीय पद के माध्यम से परमात्मा ने, ईश-पुरुष के रूप में, ज़ोरास्टर, राम, कृष्ण, ईसामसीह, बुद्ध, मोहम्मद और अन्य अवतारों के रूप में, प्रत्यक कालचक्र में, युग-युगान्तर में, अपनेआपको प्रगट किया और घोषित किया कि वह रक्षक है, नबी (*Prophet*) है, मसीहा है, परमात्मा-का-पुत्र है, **अवतार** है, **रसूल** है, **बुद्ध** है, इत्यादि । और, केवल इस ईश्वरीय आफ़िस के माध्यम से पाँच पूर्ण पुरुष अथवा **क़ुतुब** अथवा **सद्गुरु** के रूप में समस्त ऐहिक **सृष्टि** की **सर्वोच्च-सत्ता** के रूप में कार्य करते हैं ।

सूफ़ी लोग इस दिव्य आफ़िस को मोहम्मद नबी के नाम पर, **मुक़ाम-ए-मुहम्मदी** कहते हैं, उसकी **हक़ीक़त-ए-महिम्मदी** में खुदा का रसूल कहते हैं । इसी प्रकार, ईश्वर का पुत्र नज़ारेथ का जेसस—मोहम्मद, ज़ोरास्टर, कृष्ण, राम, बुद्ध के समान—ईश-पुरुश है; जबकि "क्राईस्ट", **हक़ीक़त-ए-महिाम्मदी** के समान, जेसस की दिव्य अवस्था है ।

जब हम परमात्मा की सब विभिन्न अवस्थाओं को संक्षेप में रखने का प्रयत्न करते हैं, तो पूर्ण चेतना प्राप्त करने के लिये अचैतन्य परमात्मा के कठोर श्रम में, पाँच स्पष्ट अवस्थायें प्रगट होती हैं ।

(२२०)

Perfect Master, or in the state of God-Man, as Avatar, He is in this tenth state and functions as a Man-God and as a God-Man from the divine office *muqam-e-Muhammadi* or vidnyan bhumika, depicted in the chart as "C." The first manifestation of God, with His infinite consciousness, assumed this divine office, and this office will ever continue to function eternally to radiate infinite power, knowledge and bliss, which the Perfect Masters and the Avatar not only eternally experience, but also use for the emancipation of all souls who are still in the grip of ignorance, trying to gain consciousness of their eternal state of oneness with the Over-Soul.

In other words, God in a human body will everlastingly manifest Himself in all of His perfection only through this divine office marked "C" in the chart "The Ten States of God."

It was only through this divine office that God, as God-Man, in the form of Zoroaster, Rama, Krishna, Jesus, Buddha, Muhammad and others, manifested Himself and proclaimed in every cycle, age after age, that He is the Saviour, the Prophet, the Messiah, the Son-of-God, the Avatar, the Rasool, the Buddha and so forth. And it is only through this divine office that the five Perfect Masters or the Qutubs or the Sadgurus function as the summum bonum of the whole cosmic Creation.

The Sufis call this divine office "*muqam-e-Muhammadi*," after the name of the Prophet Muhammad, the Rasool of God, in His haqiqat-e-Muhammadi. Similarly, Jesus of Nazareth, the Son of God, is—like Muhammad, Zoroaster, Krishna, Rama, Buddha—the God-Man; whilst "Christ," like *haqiqat-e-Muhammadi*, is the divine state of Jesus.

When we try to put together all the different stages of God in a nutshell, five distinct stages, in the travail of the unconscious Param-atma to gain complete consciousness, become conspicuous.

प्रतम स्थिति

(अ) शुरुआत में, **आत्मा** और **परमात्मा** दोनों "स्त्यता की अनन्त, अखण्ड्य एकता" में एक हैं ।

(ब) प्रारम्भ के प्रारम्भ से पहले, परमात्मा और सब आत्मायें अचैतन्य और संस्काररहित थे ।

(स) प्रारम्भ में, **आत्मा** को स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर अथवा कारण शरीर की कोई चेतना न थी, और इसलिये उसको स्थूल जगत, सूक्ष्म जगत अथवा कारण जगत का कोई अनुभव न था । **आत्मा** को खुद अपने **स्वत्व** तक की चेतना न थी और इसलिये उसको खुद अपनी **परमात्मा** अवस्था का अनुभव न था ।

यह वह स्थिति है जो **परमात्मा की दस अवस्थाओं** के चार्ट में अवस्था **अ** के रूप में प्रदर्शित की गई है ।

दूसरी स्थिति

आत्मा चेतना प्राप्त करती है और संस्कार-युक्त होती है । इस स्थिति में **आत्मा** को या तो स्थूल शरीर अथवा सूक्ष्म शरीर अथवा कारण शरीर की चेतना प्राप्त होती है और वह य तो अन्न भुवन अथवा प्राण भुवन अथवा मन भुवन का अनुभव करती है; किन्तु **आत्मा** को अब भी खुद अपने **स्वत्व** की चेतना नहीं होती और इसलिये वह अब भी **परमात्मा** अवस्था का अनुभव नहीं करती ।

यह वह स्थिति है जैसी चार्ट के अनुसार अवस्थाओं ३, ४, ५, ६ और ७ में है ।

तीसरी स्थिति

आत्मा संस्कार-रहित हो जाती है किन्तु पूर्ण और भरपूर चेतना बनाये रखती है । यह पूर्ण चेतना अब आगे स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर अथवा कारण शरीर की नहीं होती, और इसलिये **आत्मा** और आगे अन्न भुवन, प्राण भुवन अथवा मन भुवन का अनुभव नहीं करती ।

यह चेतना जो क़ायम रहती है वह आत्मा के खुद अपने अनन्त **स्वत्व** की होती है, और इसलिये अब **आत्मा परमात्मा** अवस्था का अनुभव

The First Stage

(A) To begin with, *atma* (soul) and *Paramatma* (Over-Soul) are both one in the infinite, indivisible "Oneness of Reality."

(B) Before the beginning of the Beginning, *Paramatma* and all *atmas* were unconscious and unimpressioned.

(C) In the beginning, atma had no consciousness of the gross body, subtle body or mental body, and therefore had no experience of the gross world, the subtle world or the mental world. *Atma* was even unconscious of its own Self and therefore had no experience of its own *Paramatma* state.

This is the stage depicted as state A in the chart of the Ten States of God.

The Second Stage

Atma gains consciousness and has impressions. At this stage atma is conscious either of the gross body or the subtle body or the mental body and experiences either the gross world or the subtle world or the mental world; but atma is still unconscious of its own Self and therefore does not experience the Paramatma state yet.

This is the stage as in States III, IV, V, VI and VII according to the chart.

The Third Stage

Atma becomes impressionless but retains full and complete consciousness. This complete consciousness is now no longer of the gross body, the subtle body or the mental body, and therefore atma no longer experiences the gross world, the subtle world or the mental world.

This consciousness that is retained is of *atma's* own infinite Self, and therefore atma now experiences the *Paramatma* state consciously and

चैतन्यरूप से करती है और "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था की अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द का अनुभव करती है ।

यह वह स्थिति है जो चार्ट अवस्था ८ के रूप में अङ्कित है ।

छौथी स्थिति

आत्मा को स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर की तथाकथित सामान्य चेतना पुनः प्राप्त होती है, और इसलिये एकबार फिर से, उसी समय, उसको साथ-साथ अन्न भुवन, प्राण भुवन और मन भुवन का अनुभव होता है । इस स्थिति में, **आत्मा** को उसी के साथ-साथ खुद अपने अनन्त **स्वत्व** की चेतना भी प्राप्त होती है और उसको खुद अपनी **परमात्मा** अवस्था की अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द का अनुभव होता है, लेकिन **आत्मा** इन अनन्त गुणों का **प्रयोग नहीं कर सकती,** यद्यपि, इस स्थिति में, उसको अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की चेतना प्राप्त होती है और उसके साथ-साथ तीनों भुवनों का अनुभव प्राप्त होता है ।

यह चार्ट में अवस्था ९ की स्थिति है ।

पाँचवीं स्थिति

आत्मा को अब पूर्णरूप से स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर की भरपूर चेतना प्राप्त होती है, और वह साथ-साथ अन्न भुवन, प्राण भुवन और मन भुवन का अनुभव, अपनी अनन्त सत्ता की सर्वोच्च दिव्य चेतना रखती हुई, करती है, और वह खुद अपनी **परमात्मा** अवस्था की अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द का अनुभव तथा प्रयोग भी करती है ।

यह अवस्था १० की स्थिति है जैसा ईश्वर की १० अवस्थाओं के चार्ट में दिखाया गया है ।†

(२२२)

† [पद (*status*), अवस्था (*state*), स्थिति (*stage*), तथा पहलू (aspect) के लिये और सत्यता के शाश्वत लोक में ज्ञान के लिये मेहेर बाबा का विभिन्न शबदों में दिया गया सारांश आगे पूरक के अन्त और उपसंहार के बीच में अङ्कित है । "मैं-परमात्मा-हुँ" का ज्ञान चार प्रकारों की पूर्णता के प्रत्येक प्रकार में सामान्यरूप से रहता है और भौतिक मृत्यु होने पर उसका अन्त नहीं होता । —सम्पादक]

experiences the infinite power, knowledge and bliss of the "I am God" state.

This is the stage noted as State VIII in the chart.

The Fourth Stage

Atma recovers the so-called normal consciousness of the gross body, the subtle body and the mental body and therefore once again experiences, at one and the same time, the gross world, the subtle world and the mental world. At this stage, atma is simultaneously also conscious of its own infinite Self and experiences the infinite power, infinite knowledge and infinite bliss of its own Paramatma state, but atma cannot use these infinite attributes even though, at this stage, it is conscious of its gross, subtle and mental bodies and experiences simultaneously the three worlds.

This is the stage of State IX in the chart.

The Fifth Stage

Atma is fully and completely conscious of the gross body, the subtle body and the mental body, and experiences the gross world, the subtle world and the mental world simultaneously with having the highest divine consciousness of its infinite Self, and also experiences and **uses** the infinite power, infinite knowledge and infinite bliss of its own *Paramatma* state.

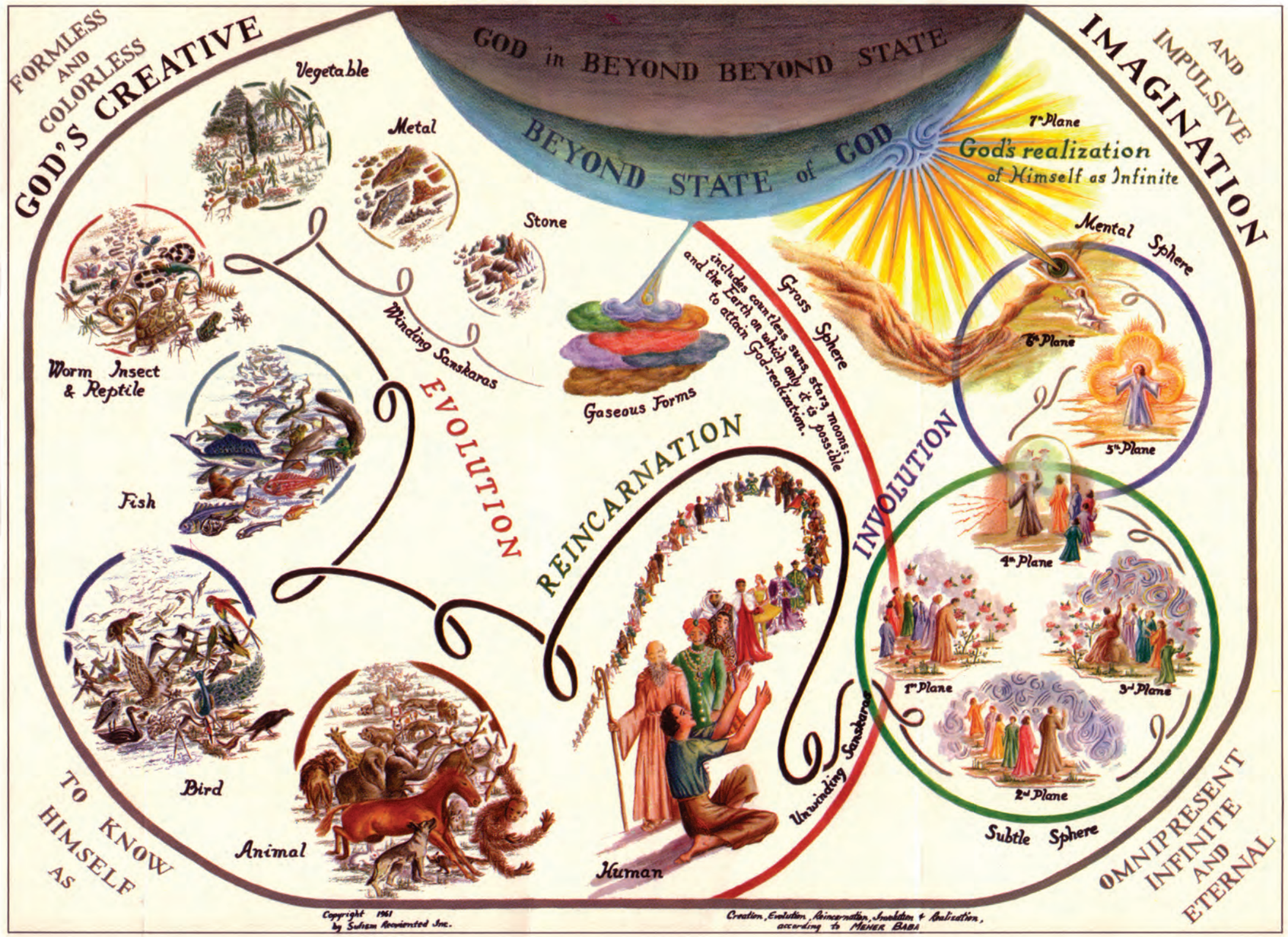
This is the stage of State X as shown in the chart of the Ten States of God.*

* [A summary by Meher Baba of different terms for status, state, stage or aspect and gnosis in the eternal sphere of Reality appears on pages 296–7. The gnosis of "I am God" is common to each one of the four types of perfection and does not end on physical death. Ed.]



कापीराइट १९६१ सूफ़ीज़्म रिओरियेन्टेड इन्कार्पोरेटिड द्वारा

मेहेर बाबा के अनुसार सृष्टि, विकास, पुनर्जन्म, प्रतिवर्धन और साक्षात्कार


FORMLESS AND COLORLESS
GOD'S CREATIVE
IMAGINATION
AND IMPULSIVE
GOD in BEYOND BEYOND STATE
BEYOND STATE of GOD
7th Plane
God's realization of Himself as Infinite
Vegetable
Metal
Stone
Mental Sphere
Gross Sphere
includes countless suns, stars, moons and the Earth on which only it is possible to attain God-realization.
6th Plane
5th Plane
Winding Sanskaras
EVOLUTION
Gaseous Forms
REINCARNATION
INVOLUTION
Worm Insect & Reptile
Fish
4th Plane
1st Plane
3rd Plane
2nd Plane
Bird
Animal
Human
Unwinding Sanskaras
Subtle Sphere
TO KNOW HIMSELF AS
OMNIPRESENT INFINITE AND ETERNAL
Copyright 1961 by Sufism Reoriented Inc.
Creation, Evolution, Reincarnation, Involution & Realization, according to MEHER BABA

चार्ट ८अ । मेहेरबाबा के मतानुसार, सृष्टि, विकास, पुनर्जन्म, प्रतिवर्धन और साक्षात्कार ।

यह चार्ट रानो गैली द्वारा मेहेरबाबा के संरक्षण में तैयार किया गया, ईश्वर वाणी ग्रन्थ का एक चित्रमय वर्णन है ।

ईश्वर परात्पर परब्रह्म अवस्था में ईश्वर को निर्मल सारतत्व, अनन्त, मूल और शाश्वत, के रूप में (अचैतना रूप में) प्रस्तुत करता है, उसको किसी भी चीज़ की, यहाँ तक कि खुद की भी चेतना नहीं होती । ईश्वर है ।

परब्रह्म अवस्था में परमात्मा परात्पर परब्रह्म का प्रतिनिधित्व करता है, सार रूप में उसी परात्पर अवस्था में ईश्वरवत् प्रदर्शित करता है सिवाय इसके कि यहाँ खुद को जानने की लहर उठी और उसको अनन्त शक्ति, ज्ञान और आनन्द की चेतना प्राप्त हो गई, और उसके साथ-साथ उसको माया की भी चेतना प्राप्त हो गई जिसका आविर्भाव सृष्टि के रूप में हुआ । रूप के जगतों के माध्यम से अपनी यात्रा पूरी करने के द्वारा वह उसकी प्रत्यक्ष सत्यता की माया को निकाल देता है ।

घड़ी के सीधे चक्कर के विपरीत अध्ययन करने से, आत्माओं द्वारा धारण किये गये प्रथम रूप, जिनका आविर्भाव सृष्टि बिन्दु से हुआ था, गैस रूप होते हैं । जैसे जैसे चेतना का विकास होता है, आत्मायें (*souls*), असंख्य रूप धारण करती हैं जो बढ़ते हुये संस्कारों के अनुभव से प्रदर्शित होता है । मानव की अवस्था पर पहुँचने पर, आत्मा ने पूर्ण चेतना प्राप्त कर ली है और वह असंख्यबार पुनर्जन्म लेती है जब तक कि वह प्रतिवर्धन का अनुभव करने के लिये तैयार नहीं होती, यह सब स्थूल जगत रूप धारण करने के समय में घटित होता है ।

संस्कारों से मुक्त होने के दौरान में, ऊपर की ओर चढ़ती हुई आत्मा को क्रमशः सात भूमिकाओं और उच्चतर लोकों का भान होता है जब तक कि वह सब बन्धनों से मुक्त नहीं हो जाती और ईश्वर में मिल कर एक (ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त) नहीं हो जाती ।

प्रथम तीन भूमिकायें सूक्ष्म भान चित्रित करती हैं; चौथी भूमिका विशाल शक्तियाँ और प्राण शक्तियाँ चित्रित करती है जिनका सामना उसको वहाँ होता है; पाँचवीं भूमिका सन्त होने की भूमिका है और वह मनोलोक में होती है; छठवीं भूमिका प्रकाश की भूमिका है और सातवीं भूमिका ईश्वर-साक्षात्कार; अर्थात् ईश्वर से मिलन, की भूमिका है ।

Chart 8A Creation, Evolution, Reincarnation, Involution, & Realization, according to Meher Baba.

This chart, painted by Rano Gayley under the supervision of Meher Baba, is a pictorial version of the book *God Speaks*.

God in the Beyond Beyond State represents God as pure Essence, infinite, original and eternal, unaware of anything, even of Himself. God Is.

God in the Beyond State represents the Oversoul (Paramatma), essentially the same as God in the Beyond Beyond State except that here surged the whim to know Himself and He became conscious of infinite power, knowledge and bliss, and simultaneously conscious of Illusion which manifested as the Creation. By completing His journey through the worlds of forms He sheds the illusion of their apparent reality.

Reading counter-clockwise, the first forms taken by souls emanating from the Creation point are gaseous. As consciousness evolves, souls take the innumerable forms indicated, experiencing increasing impressions (sanskaras). Arriving at the state of man, the soul has achieved complete consciousness and reincarnates innumerable times until it is ready to experience involution, all of which takes place while embodied in the gross world.

While getting free of sanskaras, the ascending soul gradually becomes aware of the seven planes and higher spheres until it is liberated from all bindings and becomes one with God (God-realized).

The first three planes depict subtle awareness; the fourth portrays the vast powers and energies encountered there; the fifth is the plane of sainthood and is in the mental sphere; the sixth is the plane of illumination and the seventh is the plane of God-realization, i.e. unity with God.

blank page

blank page

भाग १०

उपसंहार

ईश्वर समझाया नहीं जा सकता, वह बहस से सिद्ध नहीं हो सकता, वह सिद्धान्त के अन्तर्गत नहीं आ सकता, और न वह बहस-मुबाहसा से समझाया जा सकता है । ईश्वर को हम केवल आचरण में बरत सकते हैं ।
३६ अ, ब, स ।

फिर भी, वह सबकुछ जो बौद्धिक लोकों के और मनुष्य के मन को सन्तुष्ट करने के लिये ईश्वर के विषय में यहाँ कहा और समझाया गया है, उसमें अब भी तमाम और अधिक शब्दों का और अधिक व्याख्याओं का अभाव है क्योंकि **सत्य** यह है कि सत्यता का अनिवार्य अनुभव होता चाहिये और परमात्मा की दिव्यता को प्राप्त करना चाहिये और उसको जीवन के आचरण में बरतना चाहिये ।

सृष्टि की माया में व्यक्तिगत हुये प्रानियों का अनन्त, शाश्वत सत्यता को **समझना,** लक्ष्य **नहीं** है, क्योंकि सत्यता कभी समझी नहीं जा सकती; उसका **साक्षात्कार** तो चेतन अनुभव द्वारा प्राप्त होता है ।

इसलिये, लक्ष्य है, सत्यता का साक्षात्कार करना और "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था को मानवरूप में प्राप्त करना ।

PART 10

Conclusion

GOD cannot be explained, He cannot be argued about, He cannot be theorized, nor can He be discussed and understood. God can only be lived.
36

Nevertheless, all that is said here and explained about God to appease the intellectual convulsions of the mind of man still lacks many more words and further explanations because the TRUTH is that the Reality must be realized and the divinity of God must be attained and lived.

To **understand** the infinite, eternal Reality is **not** the GOAL of individualized beings in the Illusion of Creation, because the Reality can never be understood; it is to be **realized** by conscious experience.

Therefore, the GOAL is to realize the Reality and attain the "I am God" state in human form.

[Rano's chart appears here in the English version]

पुरुक की सूची

१.	संस्कारयुक्त चेतना	२२६
२.	व्यावहारिक रहस्यवाद	२२८
३.	प्रथम भूमिका	२३८
४.	दूसरी भुमिका	२३९
५.	तीसरी भूमिका	२४०
६.	तीसरी और चौथी भूमिकाओं के बीच की स्थिति	२४०
७.	मनो भुवन का तीर्थयात्री	२४२
८.	छठवीं भूमिका	२४४
९.	छठवीं भूमिका का ज्ञानपथ	२४४
१०.	सातवीं भूमिका	२४६
११.	चमत्कारों के विभिन्न प्रकार	२४६
१२.	शक्तियों (*Powers*) के प्रकार	२५५
१३.	ध्यान	२५८
१४.	मेहेरबाबा कृत ईश्वरीय विषय (*Divine theme*)	२६०
१५.	मेहेरबाबा के बताये हुये पाँच लोक	२७०
१६.	दृढ़ विश्वास और ज्ञान के प्रकार	२७७
१७.	**परमात्मा** अनन्त और **सबकुछ** है	२८०
१८.	पाँच आध्यात्मिक तथ्य	२८१
१९.	असली जन्म और असली मौत	२८२
२०.	**फ़ना** और **फ़ना-फ़िल्लाह**	२८३
२१.	फ़ना और बक़ा की सूफ़ी कल्पना	२८४
२२.	चेतना का प्रतिवर्द्धण	२८६
२३.	पाँच बीजगणित रूप परिभाषायें	२८७
२४.	चार प्रकार की **मुक्ति** अथवा मोक्ष	२८८

Contents of Supplement

1.	Impressioned Consciousness	192
2.	Practical Mysticism	193
3.	The First Plane	202
4.	The Second Plane	203
5.	The Third Plane	203
6.	The Stage Between the Third and Fourth Planes	203
7.	Pilgrim of the Mental Sphere	205
8.	The Sixth Plane	206
9.	Gnosis of the Sixth Plane	207
10.	The Seventh Plane	208
11.	Different Types of Miracles	208
12.	Kinds of Powers	215
13.	Meditation	218
14.	The Divine Theme by Meher Baba	220
15.	The Five Spheres Described by Meher Baba	228
16.	The Types of Conviction and of Knowledge	234
17.	Paramatma Is Infinite and Everything	237
18.	Five Spiritual Facts	237
19.	Real Birth and Real Death	238
20.	Fana and Fana-Fillah	239
21.	The Sufi Conception of Fana and Baqa	240
22.	Involution of Consciousness	242
23.	Five Algebraic Definitions	242
24.	The Four Types of Mukti or Liberation	243

२५. चार प्रकार की **मुक्ति** का सारान्श २९१
२६. पूर्णता के लक्षण २९१
२७. **हाल** और **मुक़ाम** २९४
२८. **अवतार** का अवतरण २९६
२९. सातवीं भूमिका का ज्ञानपथ २९७
३०. **अवतार** और **सद्गुरु** २९८
३१. कर्म और अकर्म ३००
३२. दिव्य शासक मण्डल के विषय में मेहेरबाबा का मत ३०२
३३. **अवतार** के रूप में परमात्मा का अवतरण ३०६
३४. **तौहीद** अथवा ईश्वर की ऐक्य अवस्था ३०७
३५. माया ३२२
३६. मेहेरबाबा करते हैं ३२२
३७. भूलोक की दुनियाँ ३३०

(२२६-१)

25. A Summary of the Four Types of Mukti 245
26. Signs of Perfection 245
27. Hal and Muqam 248
28. Advent of the Avatar 249
29. Gnosis of the Seventh Plane 250
30. The Avatar and the Sadguru 251
31. Action and Inaction 252
32. Meher Baba on the Hierarchy 254
33. Advent of God as Avatar 257
34. Tauhid or the Unitary State of God 258
35. Maya 269
36. Meher Baba Says 270
37. The World of the Astral 275

पूरक

१. संस्कारयुक्त चेतना (३२)‡

सम्पादकों के प्रार्थना करने पर, मेहेरबाबा ने निम्नलिखित सूचना जोड़ी है :

चेतना निश्चितरूप से पूर्ण हो जाती है जैसे ही प्रथम मानव योनि प्राप्त होती है, लेकिन वह ऊस बिन्दु पर प्रतिवर्धित होना प्रारम्भ नहीं करती । जब चेतना पहले प्रतिवर्धित होना प्रारम्भ करती है तो इसका अर्थ होता है कि मानव प्राणी आध्यात्मिक पथ पर केवल पहला क़दम रखना शुरू कर रहा है ।

पहले मानवी जन्म के समय और पथ पर चलने के समय के बीच, मानव प्राणी की पूर्ण चेतना को, जो अब भी संस्कारयुक्त चेतना है, अनिवार्यरूप से एक प्रक्रिया में लगता पड़ता है जो अनन्तः इन संस्कारों को उस पर क़ब्ज़ा जमाये रखने से (चेतना जो पूर्ण है) अनिवार्यतः हटा देती है ।

इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि ऊस अवधि के दौरान में, जिसमें हज़ारों पुनर्जन्म आते हैं, संस्कार जो कठरिता के साथ गड़े थे अथवा घने थे, उस पुनजन्म की प्रक्रिया से इतने पूर्णरूप से हिल जाने हैं कि उनका चेतना के ऊपर कठोर फन्दा ढीला पड़ जाता है । ये कठोरता से गड़े (घने अथवा स्थूल) संस्कार द्वन्द्वों के असंख्य एवम् विविध अमुभवों के द्वारा क्षीण अथवा निर्बल हो जाते हैं । इन अनुभवों की सीमा लगातार पुनर्जन्मों के द्वारा प्राप्त होती है जो द्वन्द्वों के अनुभव प्रदाम करते हैं ।

यह भी ध्यान से नोट करना चाहिये कि केवल जब ये घने, कठोरता से गड़े अथवा स्थूल संस्कार कम घने अथवा दर्बल हो जाते हैं, तब स्थूल जगत के अनुभवों की सीमा स्थूल संस्कारों के द्वारा, स्थूल माध्यम, मानव शरीर, के द्वारा प्राप्त होती है । जब घने, कड़ाई से गड़े

‡ संख्याओं का उल्लेख इस पुस्तक में दी गई पृष्ठ संख्या में मिलेगा ।

Supplement

1 Impressioned Consciousness (29)*

At the request of the editors, Meher Baba added the following information:

Consciousness is definitely complete as soon as the first human form is taken, but it does not start involving at that point. When consciousness first begins to involve it means that the human being is only beginning to take the first step on the spiritual path.

Between the time of the first human incarnation and the time of going on the path, the complete consciousness of a human being, which is still an impressioned consciousness, has necessarily to indulge in a process that eventually must dislodge these impressions from retaining their hold on it (the consciousness which is complete).

It is to be noted that during that period, which covers thousands of reincarnations, the impressions which were hard-set or dense get shaken up so thoroughly by the reincarnation process that their tight grip on consciousness becomes loose. These hard-set (dense or gross) impressions thin out or become feeble through innumerable and varied experiences of opposites. The limit to these experiences is reached by persistent reincarnations which give experiences of opposites.

It is also to be noted that it is only when these dense, hard-set or gross impressions become less dense or become feeble, that the limit to the experiences of the gross world through gross impressions is reached by

* Parenthetical numbers refer to the page number of this book where the supplement reference appears. **1987**

* Numbers refer to the page number of this book. **1967**

संस्कार कम घने हो जाते हैं, तो वे स्थूल अनुभवों को आगे जन्म नहीं देते क्योंकि ये कम घने संस्कार उत्कृष्ट अथवा सुन्दर होते हैं और उसके आगे भद्दे अथवा स्थूल नहीं होते । ऐसे विशुद्ध अथवा सुन्दर संस्कारों का योग सूक्ष्म संस्कार कहलाता है । ये सूक्ष्म संस्कार सूक्ष्म प्रकार के अनुभवों को जन्म देते हैं (अर्थात् सूक्ष्म जगत से सम्बन्धित अनुभवों को जन्म देते हैं) और सूक्ष्म शरीर इन सूक्ष्म संस्कारों का अनुभव करता है और उन्हें ख़र्च कर डालने का प्रयत्न करुता है ।

जब ये सूक्ष्म संस्कार उससे बी अधिक कम घने तथा और अधिक विशुद्ध हो जाते हैं, तो ऐसे संस्कारों का समूह मनो संस्कार कहलाता है । ये मनो संस्कार मनो जगत से सम्बन्धित अनुभवों को जन्म देते हैं, और कारण शरीर इन मानसिक संस्कारों का अनुभव करता है और उनको ख़र्च करने का प्रयत्न करता है ।

जब मनो संस्कारों के अन्तिम चिह्न, कारण शरीर द्वारा प्राप्त हुये अनुभवों के माध्यम से समाप्त हो जाते हैं, तब आत्मा की पूर्ण चेतना (जो लगातार संस्कारों के चंगुल में थी, उस क्षण से जब उसने अपनी एकरूपता अत्यन्त-प्रथम मनुष्य योनि से अन्तिम मानव-योनि तक की थी—जो मानसिकरूप से चैतन्य मानव प्राणी है), संस्कारों के बोझ से मुक्त हो जाती है । केवल ऐसी संस्कार-रहित पूर्ण चेतना ही आत्मा की "मैं-परमात्मा-हुँ" अवस्था का अन्तिम साक्षात्कार कर सकती है ।

जब स्थूल अथवा कड़ाई से गड़े संस्कार पुनर्जन्म की प्रक्रिया से क्षीण हो जाते हैं, तब वे सूक्ष्म संस्कार बन जाते हैं । ये सूक्ष्म संस्कार स्थूल जगत के अनुभवों की और अधिक उत्पत्ति नहीं कर सकते । इस स्थिति में स्थूल चेतना से सम्पन्न मामव प्राणी की चेतना स्वतः सूक्ष्म जगत के अनुभवों से अनुरक्त होने लगती है । यह चेतना के प्रतिवर्धन की प्रक्रिया के आगमन का चिह्न होता है और जिज्ञासु **पथ** पर चलने लगता है । यह स्पष्ट है कि सूक्ष्म संस्कारों को अनिवार्यरूप से प्राण भुवन के सूक्ष्म संस्कारों को जन्म देना चाहिये । ये सूक्ष्म संस्कार सूक्ष्म शरीर से सूक्ष्म जगत के अनुभवों के माध्यम से ख़र्च हो जाते हैं और चेतना के प्रतिवर्धन की प्रक्रिया जारी रहती है ।

(२२७)

the gross medium, the human body. When the dense, hard-set impressions become less dense, they no longer give rise to gross experiences because these less dense (feeble) impressions are refined or fine and no longer crude or gross. The aggregate of such refined or fine impressions is called subtle impressions. These subtle impressions give rise to experiences of the subtle type (i.e., pertaining to the subtle world) and the subtle body experiences these subtle impressions and tries to exhaust them.

When these subtle impressions become even less dense and still more refined, the aggregate of such impressions is called mental impressions. These mental impressions give rise to experiences pertaining to the mental world, and the mental body experiences these mental impressions and tries to exhaust them.

When the last traces of mental impressions are exhausted through experiences by the mental body, the complete consciousness of the soul (which was all along in the grip of impressions from the instant it identified itself with the most-first human-form up to the last human-form—which is the mental-conscious human being), is unburdened of impressions. Only such impressionless complete consciousness can realize the final experience of the "I am God" state of the soul.

When the gross or hard-set impressions get thinned out by the reincarnation process, they become subtle impressions. These subtle impressions can no longer give rise to experiences of the gross world. At this stage the consciousness of the gross-conscious human being automatically begins to indulge in experiences of the subtle world. This marks the advent of the process of involution of consciousness and the aspirant begins to tread the Path. It is obvious that the subtle impressions must give rise to the subtle experiences of the subtle world. These subtle impressions get exhausted by the subtle body through experiences of the subtle world and the process of involution of consciousness continues.

२.व्यावहारिक रहस्यवाद (४८)

सत्य तक पहुँचना व्योक्तगत है

जो लोग ईश्वर का साक्षात्कार करने की लालसा रखते हैं उन सबके लिये कोई सामान्य नियम अथवा पद्धति लागू नहीं है । प्रत्येक मनुष्य को खुद अपना उद्धार करना चाहिये, और अनिवार्यरूप से खुद अपनी पद्धति चुनना चाहिये, यद्यपि उसका चयन मनो-संस्कारों के पूर्ण प्रभाव द्वारा अधिकांशतः निश्चित होता है, जो संस्कार पूर्व जन्मों में प्राप्त किये गये थे । उसको अपने विवेक के मत के पथप्रदर्शन में चलना चाहिये, और उस पद्धति का अनुसरण करना चाहिये जो उसकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति, उसकी भौतिक योग्यता और उसकी बाहरी परिस्थितियों, के सबसे अधिक अनुकूल हो । **सत्य एक** है, किन्तु उस तक पहुँचना साररूप से व्याक्तिगत है । सूफ़ी लोग कहते हैं, "ईश्वर तक पहुँचने के इतने अधिक मार्ग हैं जितनी मनुष्यों की आत्मायें हैं" (**अत-तुरूक़ू इलाल्लाही कनफ़ूसी बनी आदम**) ।

जमाल-ए फ़ितरत के लाख परतू
कुतुब परतू की लाख शाखैं
तरीके इरफ़ान मैं क्या बताऊँ
यह राह किसकी वह राह किसकी ।

—अक़बर

"पकृति की सुन्दरता में हज़ारों पहलू हैं जिनके लिये स्वीकार करने के (समझने के) हज़ारों रास्ते और साघन हैं; **ज्ञान मार्ग** में, यह कौन निश्चित कर सकता है कि कौन सी ख़ास रीति अथवा भाव एक दिये गये व्यक्ति के लिये निश्चित है ?"

संन्यास

जब पथिक, यहाँ पथिक से हमारा अर्थ जिज्ञासु अथवा शिष्य से है, संन्यास की ओर खिंचता हुआ महसूस करता है, तो इसका यह अर्थ है कि संन्यास की भावना उसमें पहले से ही प्रसुप्त थी । संन्यास की यह तैयारी दुःख से सुख और सूख से दुःख के बीषण पेण्डुलम के झूलने के फलस्वरूप होती है, और वह विकास के असंख्य रूपों में तथा असंख्य प्रवेश द्वारों एवम् निकास द्वारों में, जन्म और मृत्यु के द्वारों के माध्यम

2 Practical Mysticism (41)

APPROACH TO TRUTH IS INDIVIDUAL

There is no general rule or method applicable to all who aspire to realize God. Every man must work out his own salvation, and must choose his own method, although his choice is mostly determined by the total effect of the mind impressions (sanskaras) acquired in previous lives. He should be guided by the creed of his conscience, and follow the method that best suits his spiritual tendency, his physical aptitude and his external circumstances. Truth is One, but the approach to it is essentially individual. The Sufis say, "There are as many ways to God as there are souls of men" (*Aṭ-ṭuruqu ilāllahi kanufūsī banī ādam*).

الطُّرُق الى الله كَالنُّفوسِ بنى آدم

Jamāl-i fiṭrat ke lākh partao
Qubūl partao kī lākh shākhiñ
Tarīq-i 'irfāñ maiñ kiyā batāūñ
Yah rāh kiskī wāh rāh kiskī.

—Akbar Aqbar ?

"Nature's beauty has thousands of facets for which there are thousands of ways and means of acceptance (understanding); in the Path of Gnosis, who can determine which particular mode or mood is earmarked for a given individual?"

RENUNCIATION

When a pilgrim, and by pilgrim we mean here aspirant or disciple, feels drawn to renunciation, it means that the spirit of renunciation was already latent in him. This readiness results from the swinging of the terrible pendulum from pain to pleasure and pleasure to pain, in the countless forms of evolution and in the countless entrances and exits

से होती है जिनका अनुभव पुनर्वन्म के दौरान में होता है । क्योंकि संन्यास की यह भावना गुप्त होती है, इसलिये उसको ऊपरी सतह तक लाने के लिये किसी उत्तेजक कारण की आवश्यकता होती है, और केवल जब वह सतह के ऊपर आती है तभी हम गुप्त भावना की शक्ति और प्रकृति को देखने में समर्थ होते हैं ।

यदि गुप्त भावना केवल अतिशय क्षीणक पीड़ा के आध्यात्मिक अजीर्ण के कारण होती है, जो, किसी और अधिक सुहावनी चीज़ के लिये कोमल इच्छा से मिश्रित होती है, तो बाहरी आत्मत्याग केवल क्षणिक और दुर्बल प्रकार का होगा, केवल अप्रियता से एक क्षणिक छुटकारा होगा । तथापि, अपनी चरमसीमा पर, यह गुप्त भावना दुनियाँ के लिये एक असाध्य घुना और परमात्मा के लिये एक उत्कट और जलती हुई प्यास के बीच हमले की एक गुप्त सन्धि है । जब यह उभर कर ऊपरी सतह पर आती है तब यह अपनेआप को अधो अहं (*lower self*) के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिये, और सबकुछ अस्वीकार करने के लिये, जो इस महान और भीषण संघर्ष के लिये असङ्गत होती है, पूरे अस्तित्व को क्रमबद्ध करने के एक अभेद्य संकल्प के रूप में दिखलाई पड़ती है । इस शब्द "अस्वीकार" (*reject*) को ध्यान से नोट कीजिये; इसका अर्थ होता है कि ऐसा पथिक असङ्गततताओं को एक ओर फेंक देता है । हम आत्मत्याग को आध्यात्मिक उत्कण्ठा के फुल का फल कह सकते हैं, जो अनन्त जन्मों और मृत्युओं की निरर्थकता के लिये घृणा के ढेर के द्वारा उपजाऊ बनाया जाता है । एक बार आत्मत्याग के अपनेआपको प्रगट करने पर उसको देखने के लिये अनेक रीतियाँ होती हैं, जिनमें से सबसे सीधी रीति उसको दो मुख्य प्रकारों, भीतरी और बाहरी, में विभाजित करने की होती है ।

बाह्य संन्यास का अर्थ है सभी सांसारिक सुखों और स्थूल चीज़ों के प्रति शारीरिक आसक्तियों को पूर्णतया त्याग देना । प्रारम्भिक अवस्थाओं में, यह संन्यास उस सीमा तक सहायक होता जिस सीमा तक वह उसको भीतरी आत्म संन्यास तथा परमात्मा के साथ पूर्व धारणा तक ले जाता है । हज़ारों तथाकथित **संन्यासी** भारत में पाये जाते हैं, जिनमें से बहुत अधिक ने इस बाहरी आत्मत्याग को केवल ऐशा के रूप में ग्रहण कर लिया है जो पेशा उसको आलस्यपूर्ण अनुत्पादक जीवन में अनुरक्त होने के योग्य बनाता हैं । तथापि, बाहरी आत्म-त्याग वास्तविक

through the doors of birth and death experienced during reincarnation. Because this spirit of renunciation is latent, it needs only some exciting cause to bring it to the surface, and it is only when it comes to the surface that we are able to see the power and nature of the latent spirit.

If the latent spirit is simply a spiritual indigestion from a temporary surfeit of pain, combined with a mild desire for something more pleasant, the overt renunciation will be only of a fleeting and feeble kind, a mere temporary escape from unpleasantness. At its best however, this latent spirit is a secret pact of aggression between an incurable disgust for the world and an ardent and burning thirst for God. When it comes to the surface it shows itself as an invincible determination to marshal the entire being to the attainment of victory over the lower self, and to reject everything that is irrelevant to this great and terrible struggle. Note this word "reject"; it means that such a pilgrim casts aside irrelevancies. We might call renunciation the fruit of the flower of spiritual longing, fertilized by the pollen of disgust for the futility of endless births and deaths. Once renunciation expresses itself there are many ways of looking at it, of which the simplest is to divide it into two main types, internal and external.

External renunciation means giving up completely all worldly delights and physical attachments to material things. In the early stages, this renunciation is helpful to the extent to which it leads to internal renunciation and preoccupation with God. Tens of thousands of so-called sanyasis (renunciators) are to be found in India, of whom far too many have adopted this external renunciation only as a profession that enables them to indulge in an unproductive life of idleness. External renunciation,

हो सकता है और बहुधा होता है । जब ऐसा होता है तो वह अनिवार्यरूप से आन्तरिक संन्यास की ओर ले जायेगा, और इसी संन्यास का महत्व है । आन्तरिक संन्यास का अर्थ है इच्छाओं के मूल स्त्रोत पर नियन्त्रण रखना जिससे मन कामवासना, लोभ और क्रोध की माँगों के चंगुल में नहीं पँसता । इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई पथिक ऐसे विचार रखना तुरन्त बन्द कर देगा । यह असम्भव है, क्योंकि ऐसे विचार दुखदायी होता बने रहेंगे और जब तक कि वे **संस्कार** जिनसे वे पैदा होते हैं उस पथिक के अङ्ग बने रहते हैं । यह लड़ाई आवश्यकरूप से कठोर और लन्बे समय तक होती है ।

ख़ासकर पश्चिमी जगत के लिये, बाह्य संन्यास अवांछित और अव्यावहारिक होता है । उसको प्रारम्भ से आन्तरिक और मानसिक होना चाहिये । व्यक्ति को दुनियाँ में रहना चाहिये, सभी न्यायसङ्गत कर्तव्य करना चाहिये और फिर भी सबकुछ से मानसिक रूप से विरक्त महसूस करना चाहिये । व्योक्त को दुनियाँ के अन्तर्गग होना चाहिये लेकिन दुनियाँ का ने होना चाहिये । सूफ़ी कहते हैं, "**दिल बा यार दस्त बिकार**" (हृदय ईश्वर के साथ; हाथ कार्य के लिये) ।

हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया से, जो दिल्ली के **सद्गुरु** थे, एक बार एक दर्शनार्थी ने पूछा कि मनुष्य को दुनियाँ में किस तरह रहना चाहिये । उस क्षण ऐसी घटना हुई कि कुछ स्त्रियाँ अपने सिरों पर ऊपर नीचे पानी से भरे घड़े रखे हुये वहाँ से गुज़र रहीं थीं और वे चलते हुये आपस में हाव-भाव के साथ गपशप करती जा रहीं थीं । उसकी ओर इशारी करते हुये निज़ामुद्दीन ने कहा, "उन औरतों को देखो—इसी प्रकार तुमको दुनियाँ में रहना चाहिये ।" उनसे इस रहस्यपूर्ण कथन को समझाने के लिये कहा गया तो सद्गुरु नि. जामुद्दीन ने कहा, "अपने सिरों के ऊपर सन्तुलित घड़ों को लिये हुये कुये से लौटती हुई ये औरतें एक-दुसरे से गपशप के अलावा अन्य किसी चीज़ का विचार नहीं करती मालूम पड़तीं; और फिर भी वे सब हर समय किसी और अधिक महत्वपूर्ण चीज़ पर अपने सिरों पर घड़ों को सन्तुलित करने पर, चित्त एकाग्र किये हैं । इस प्रकार, जिस किसी चीज़ में भी तुम्हारा शरीर, तुम्हारी इन्द्रियाँ अथवा तुम्हारे मन की निर्मल सतह का भाग, तल्लीन होवें, तुम इस बात का ध्यान रखो कि तुम्हारे मन का मूल निरन्तर ईश्वर पर केन्द्रित रहे ।"

(२३०)

however, can be and often is real. When this is so it will inevitably lead on to internal renunciation, and this is the renunciation that matters. Internal renunciation means the control of desires at their very source so that the mind does not fall a prey to the demands of lust, greed and anger. This does not mean that one shall cease at once to have such thoughts. This is impossible, as such thoughts will continue to be troublesome as long as the sanskaras from which they arise are part of one's being. The fight is necessarily hard and long.

For the West in particular, external renunciation is inadvisable and impracticable. It should be internal and of the mind from the start. One should live in the world, perform all legitimate duties and yet feel mentally detached from everything. One should be in the world but not of it. The Sufis say, "Dil ba yar, dast bikar" (The heart with God; the hands for work).

Hazrat Nizamuddin Awliya, the Perfect Master of Delhi, was once asked by a visitor how one should live in the world. At that moment it so happened that a few women were passing by with pitchers of water balanced on their heads, and, as they walked, they gossiped and gesticulated. Pointing to them Nizamuddin said, "Look at those women—**that's** how you should live in the world." Asked to explain this cryptic remark, the Master continued, "These women returning from the well with pitchers balanced on their heads seem to be thinking of nothing else but exchanging tid-bits of gossip with each other; and yet they are all the time concentrating on something far more important, on balancing the pitchers on their heads. Thus, whatever your body, your senses or the purely surface part of your mind may be occupied with, see that the root of your mind is constantly focussed on God."

चैताग और वैराग्य

यदि हम संन्यास को मन की एक अवस्था समझने हैं, तो हम समझ सकते हैं कि मन की यह अवस्था किस प्रकार क्षणिक अथवा स्थायी हो सकता है । इन दो अवस्थाओं में पहली अवस्था **वैताग** कही जाती है और बाद वाली अवस्था **वैराग्य** कही जाती है ।

वैताग (क्षणिक संन्यास) दुनियाँ और उसके कार्यों के लिये केवल एक क्षणिक घृणा है जो परमात्मा के लिये एक अस्पष्ट इच्छा के साथ मिश्रितम् किसी घक्का, निराशा अथवा होनि के फलस्वरूप उत्पन्न होती है; अथवा वह एक उचानक प्रेरणा से पैदा हो सकती है । **वैताग** में मन दुनियाँ से विमुख होता है और ईश्वरीय मार्गों की ओर मुड़ता हैं; किन्तु यह प्रवृत्ति स्थायी नहीं होती, और मन अपने पुराने मार्गों की ओर वापिस जाता है जैसे ही परिस्थितियाँ बदलती हैं, अथवा जैसे ही प्रेरणा का वेग समाप्त हो जाता है ।

वैराग्य (अखण्डनीय संन्यास) मन की एक प्रवृत्ति है जिसमें ईश्वर के लिये ऐसी अभिलाषा होती है और दुनियाँ की चीज़ों के प्रति ऐसी गहरी उदासीनता होती है कि, जो एक बार पैदा हो जाने पर, पीछे नहीं हटती और उसको त्याग देने के लिये सभी प्रलोभनों के विरूद्ध एक प्रमाण होती है । गौतम बुद्ध का प्रसिद्ध उदाहरण **वैराग्य** की चित्रित करता है ।

हमने यह पहले ही समझा दिया है कि संन्यास ईश्वर से मिलन के लिये गुप्त अभिलाषा का बाहरी प्रकाशन है जो दुनियाँ के लिये गुप्त घृणा भाव से मिश्रित होता है, और इसके लिये हमने फूल, पराग और फल की तुलना का प्रयोग किया था । जहाँ तक ऊत्यादकता का प्रश्न है, फूल और पराग स्वतः असहाय हैं, क्योंकि दोनों केवल किसी बाहरी एजेन्सी के माध्यम से, जैसे हवा से, मधु मक्खी से, अथव कीड़े से लाये जा सकते हैं; उत्पादकता प्रकृति में घटित होती है या नहीं यह हज़ारों अज्ञान तथ्यों पर निर्भर हो सकता है जिसकी भविष्यवाणी करने का प्रयत्न आधुनिक विज्ञान नहीं करता, और उसको संयोग की संज्ञा देता है । यह बात इस क्षण विषय के बाहर है, और अपनी तुलना में हम इस उत्पादकता पर एक देन के रूप में विचार करेंने ।

अब हम पीछे मुड़कर वैराग्य के विषय पर आवें । हम याद रक्खें कि ईश्वर से मिलन की अभिलाषा प्रत्येक जीवधारी में गुप्त है

Vaitag AND *Vairagya*

If we look upon renunciation as being a state of mind, we can understand how this state of mind may be either temporary or permanent. The former is known as vaitag and the latter as vairagya.

Vaitag (temporary renunciation) is simply a temporary disgust for the world and its affairs resulting from some shock, disappointment or loss, combined with a vague desire for God; or it may come from a sudden impulse. In vaitag the mind turns away from the world and takes to godly ways; but this attitude is not lasting, and the mind returns to its old ways as soon as circumstances alter, or as soon as the impulse dies down.

Vairagya (irrevocable renunciation) however is an attitude of mind involving such a longing for God and such a deep indifference to things worldly that, once roused, it knows no retreat and is proof against all temptations to give it up. The famous example of Gautama Buddha is illustrative of vairagya.

We have already explained that renunciation is the overt expression of a latent desire for union with God combined with a latent spirit of disgust for the world, and we used an analogy of flower, pollen and fruit. As far as fertilization is concerned the flower and the pollen by themselves are helpless, for the two can only be brought together by some outside agency, such as the wind, the bee or the insect. Whether or not fertilization takes place in nature may depend upon so many thousands of unknown factors that modern science gives up trying to predict it, and labels it chance. That, however, is beside the point at the moment, and in our analogy we shall think of this fertilization as a gift.

To return to vairagya, let us remember that the longing for union with God is latent in **every** living being. However, it only pushes its way

कुछ भी हो, वह केवल चेतना में बलात् प्रवेश करती है जब आत्मा उसके प्रारम्भ पर पहुँचती है जिसको मेहेरबाबा, "ईश्वरीय विषय" कृति में "साक्षात्कार प्रक्रिया" कहते हैं । दुनियाँ के लिये घृणा भी कुछ चीज़ है जो स्वाभाविक रूप से हम सबके अन्दर विकसित होती है, और जो अधिक और अधिक शक्तिशाली होती जाती है वैसे-जैसे हम इस साक्षात्कार प्रक्रिया के आरम्भ के निकटतर पहुँचते जाते हैं । जब फूल पूरा खिला होता है और पराग परिपक्क होता है, तब हवा अथवा शहद की मक्खी उत्पादकता की देन देती है जो फल का उत्पादन करती है । इसी प्रकार से भी, जब भीतरी तैयारी का यह क्षण आता है, तब एक ईश्वरीय देन, आत्मा के ऊपर उतरती है जो परमात्मा के लिये तीव्र अभिलाषा और दुनियाँ के लिये घृणा अथवा उदासीनता पैदा करती है, और इस प्रकार वैराग्य के अमुल्य फल की उत्पत्ति करती है । यह ईश्वरीय देन अन्तर-निवासी परमात्मा की आन्तरिक कृपा का स्पर्श हो सकती हैं, अथवा वह किसी सन्त या सद्गुरु के सम्पर्क का फल हो सकती है । किन्तु वह सदैव एक देन होती है ।

वैराग्य, जब वह पहलेपहल प्रगट होता है, कुछ समय के लिये अपनेआपको बाहरी संन्यास के रूप में प्रायः निश्चितरूप से प्रगट करेगा । इकन्तु **वैराग्य,** स्थायी होने के कारण, सदैव देर-सबेर वास्तविक संन्यास की ओर ले जायेगा जो आन्तरिक हैं ।

जब कोई साधक सत्य के लिये ऐसी प्रगाड़ अभिलाषा रखता है तो वह अध्यात्म पथ में प्रवेश करने के योग्य हो जाता है । एक पूर्ण पुरूष की कहानी है जिसे एक शिष्य वह बात बताने के लिये तङ्ग करता रहता था कि उसको ईश्वर-साक्षात्कार कब मिलेगा । एक बार जब वह एक नदी में स्नान करने के लिये गया तो सद्गुरु उस साधक को कुछ क्षण के लिये पानी में डुबोये रहा । जब शिष्य दस घुट्कर मर जाने के करीब आया तो सद्गुरु ने उसको बाहर निकाल लिया और पुछा कि उसने पानी के भीतर रहने के अधिकांश समय किस चीज़ का विचार किया था और किस चीज़ की अभिलाषा की थी । जिज्ञासु ने उत्तर दिया "हवा" । सद्गुरु ने समझाया कि जब उस साधक को ईश्वर-प्राप्ति के लिये ऐसी ही अभिलाषा पैदा हो जायेगी तब उसको **साक्षात्कार** प्राप्त हो जायेगा । मौलाना रूमी कहते हैं : "**आब कमजू, टिश्निगी आवर बिदस्त**"; पानी के लिये कम चिल्लाओ, लेकिन उसके लिये अधिक प्यास पैदा करो ।

(२३२)

into consciousness when the soul approaches the beginning of what Meher Baba, in the "Divine Theme," calls "the realization process." The disgust for the world is also something that develops naturally in all of us and which grows more and more powerful as we draw nearer to the beginning of this realization process. When the flower is in full bloom and the pollen ripe, the wind or the bee gives the gift of fertilization that produces the fruit. In the same way also, when this moment of inner readiness comes, a divine gift descends upon the soul which fertilizes the longing for God and the disgust or indifference for the world, and so brings about the priceless fruit of vairagya. This divine gift may be a touch of inner grace from the indwelling God, or it may be the result of contact with a saint or a Perfect Master. But it is always a gift.

Vairagya, when it first becomes manifest, will almost certainly express itself for a time as an external renunciation. But vairagya, being permanent, will always lead sooner or later to the real renunciation which is internal.

When an aspirant has such an intense longing for Truth he is qualified to enter the Path. There is a story of a Master who was pestered by a disciple as to when he would realize God. Once when they went to bathe in a river the Master held the aspirant under water for a few moments. When the disciple was on the verge of suffocation the Master pulled him out and asked what he had thought of and longed for most while under the water. The aspirant replied, "Air." The Master explained that when the disciple had just as intense a longing for God then Realization would come. Maulana Rumi says:

Ab kam jū, tishnigī āvar bidast. آب کم جو تشنگی آور بدست

"Call out for water less, but create thirst for it more."

मेहेरबाबा कहते हैं, "पथ एक गहनतर वास्तविकता के लिये चैतन्य अभिलाषा के साथ शुरू होता है । जैसे मछली पानी से बाहर निकाल ली जाने पर लौटकर पानी में वापिस जाने की उत्कण्ठा करती है, उसी प्रकार साधक जिसने उद्देश्य का भान पा लिया है ईश्वर से निलन की उत्कण्ठा करता है ।

"वास्तव में, स्रति के पास वापिस जाने की उत्कण्ठा प्रत्येक पाणी में उसी समय से विद्यमान है जबकि वह अज्ञानता के परदे के द्वारा स्रोत से विलग हो जाती है, किन्तु वह अचैतन्य रहती है जब तक कि साधक मार्ग में प्रवेश नहीं पा जाता ।"‡

सूफ़ी लोग मन की इस प्रवृत्ति को "**तौबा**" कहते हैं जिसका अर्थ है प्रायश्चित करना और आत्मा के जीवन के लिये इन्द्रियों के जीवन का त्याग करना अथवा उनसे विमुख होना । वह व्यक्ति जिसने यह महान कदम आगे बड़ा दिया है पुनः यह नहीं देखता जो उसने पीछे छोड़ दिया है ।

मेहेरबाबा कहते हैं कि ऐसे हज़ारों जिज्ञासु हो सकते हैं जो अनेक आदयात्मिक अनुभवों का आनन्द लेते हैं लेकिन केवल **ज्ञान का एक पथ** है । वह आन्तरिक है किन्तु वास्तविक मार्ग है । यद्यपि वह साधारण मार्ग नहीं है, फिर भी वह उस रूप में स्पष्टरूप से सच्चे तीर्थयात्री की भीतरी आँख को उस रूप में दिखाई पड़ता है जो उस पर चलता है । किन्तु वे रहस्यवादी भी विन्होंने सचमुच "अनुभव कर लिया है" केवल **मार्ग** के उन विभागों को समझा सकते हैं विनको वे खुद पार कर चुके हैं । जो साधक तीसरी भूमिका पर सङ्कटपूर्ण स्थल पर पहुँच चुके हैं वे चौथी भूमिका के विषय में कुछ नहीं जान सकते, और न वे किसी को खुद अपने स्तर तक पहुँच सकते हैं । उनका ज्ञान और अनुभव उन्हीं तक सीमित रहते हैं । केवल पाँचवीं और छठवीं भूमिकाओं के व्यक्ति ही दूसरों को खुद अपने स्तर तक ला सकते हैं और जिस किसी के ऊपर उनकी वृपा उतरती है उसको महान लाभ प्राप्त होता है ।

दुनियाँ की व्यक्तिगत आत्मायें स्थूल लोक की सीमाओं के भीतर

‡ [यह भी देखिये : मेहेरबाबा, "मार्ग की श्रेणियाँ," सम्भाषण, २ : १८–२६ । —सम्पादक]

In the words of Meher Baba, "The Path begins with a conscious longing for a deeper reality. As the fish which is taken out of water longs to go back to the water, so the aspirant who has sensed the Goal longs to be united with God.

"In fact, the longing to go back to the Source is present in each being from the very time that it gets separated from the Source by the veil of ignorance, but it is unconscious till the aspirant enters the Path."*

The Sufis call this attitude of mind "tauba" meaning repentance and implying the turning away from or renouncing of the life of the senses for the life of the spirit. One who has taken this great step does not look back again at that which he has left behind.

Meher Baba says that there may be a thousand seekers enjoying as many spiritual experiences, but there is only one Path of Gnosis. It is an internal but an actual pathway. Though not an ordinary path it is distinctly perceptible as such to the internal eye of the true pilgrim who travels along it. But even those mystics who have truly "experienced" can only explain the sections of the Path that they themselves have traversed. Those who have reached the critical point on the third plane can know nothing about the fourth plane, nor can they lead any one up to their own level. Their knowledge and experience are limited to themselves. Only those on the fifth and sixth planes can bring others up to their own level and anyone upon whom their grace descends will be greatly benefited.

The individual souls of the world are within the limits of the gross sphere which includes all the gross suns, moons, worlds and all space. A

* [See also Meher Baba, "The Stages of the Path," *Discourses,* 18–26. Ed.]

होती हैं जिसमें सभी स्थूल सूर्य, चन्द्रमा, दुनियायें और सम्पूर्ण देश (*space*) का समावेश होता है । एक असभ्य व्यक्ति, जिसे अत्यन्त मौलिक वैज्ञानिक नियमों का ज्ञान नहीं होता और न सही एवं गलत नियमों का ज्ञान होता है और एक महान दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक दोनों ही स्थूल जगत की सीमाओं के भीतर होते हैं । दार्शनिक सिद्धान्त में सूक्ष्म जगत से बिल्कुल परिचित हो सकता है; और वैज्ञानिक आधुनिक पदार्थ विज्ञान की चरमसीमा पर एक अधिकार पूर्ण ज्ञानी हो सकता है; किन्तु सूक्ष्म के दृष्टिकोण से, वे और असभ्य व्यक्ति स्थूल लोक से सम्बन्ध रखते हैं । जब तक सूक्ष्म लोक का अनुभव नहीं होता, तब तक ज्ञान मार्ग, उन सब लोगों के लिये जो स्थूल लोक से सम्बन्धित होते हैं, बौद्धिक बकवाद के लिये एक विषय बना रहता है क्योंकि "सूक्ष्म" शब्द से हमारा अर्थ केवल स्थूल का सर्वोत्कृष्ट रूप नहीं होता । इस शब्द के साधारण अर्थ में अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थों को, जैसे ईथर, अणु, कम्पन, प्रकाश और देश को, "सूक्ष्म" कहता सही हो सकता है; किन्तु वे निश्चितरूप से स्थूल हैं, यद्यपि वे बहुत सूक्ष्म रूप से ऐसे हैं ।

आध्यात्मिकता के अर्थ में, सूक्ष्म का अर्थ होता है कोई ऐसी चीज़ जो भौतिक रूप से बिल्कुल भिन्न होती है, चाहे भौतिक चीज़ें कितनी ही बारीक हों । यद्यपि स्थूल लोक की उत्पत्ति सूक्ष्म लोक से होती है और उस पर निर्भर रहती है, तथापि सूक्ष्म लोक पूर्णरूप से स्थूल लोक से स्वतन्त्र होता है । उदाहरण के लिये, हम भोजन करने की क्रिया को ले लें । स्थूल क्रिया की उत्प्पत्ति विचार से होती है, और उसके ऊपर निर्भर होती है; किन्तु विचार भौतिक क्रिय स्वतन्त्र होता है ।

विस्मृति

सत्य के पास पहुँचने और उसका साक्षात्कार करने का सम्पूर्ण तत्वज्ञान उस प्रश्न पर झूलता है जिसको हम विस्मृति कह सकते हैं । "विस्मृति" शब्द जिसका यहाँ उपयोग किया गया है, उसका सम्बन्ध एक पत्र छोड़ने की विस्मृति के, उसके आमतौर पर स्वीकार किये गये, अर्थ से न करना चाहिये, या उस मनो-दशा से न करना चाहिये जो केवल जड़ और खोखली है । इस विशेष अर्थ विस्मृति मन की एक प्रवृति है जिसका विकास क्रमशः आध्यात्मिक अनुभव में होता है । बाह्य संन्यास विस्मृति नहीं है क्योंकि वह अधिकांश रूप में भौतिक और आंशिक

savage, ignorant of the most elementary scientific laws and of the code of right and wrong, and a great philosopher or scientist are both within the bounds of the gross sphere. The philosopher may be quite familiar in theory with the subtle sphere; and the scientist may be an authority on the extreme frontiers of modern physics; but, from the standpoint of the subtle, they and the savage belong to the gross sphere. Until the subtle sphere is experienced, gnosis remains a subject for intellectual quibbling for all those belonging to the gross sphere because by "subtle" we do not mean merely the finest form of the gross. In the ordinary sense of the word it may be correct to call very fine substances such as ether, the atom, vibration, light and space, "subtle"; but they are unquestionably gross, though in a very fine form.

Spiritually speaking, subtle means something completely different from the physical, however attenuated physical things may be. Although the gross sphere is the outcome of the subtle sphere and is dependent on it, the subtle sphere is completely independent of the gross sphere. As an example, we may take the act of eating. The gross act is the outcome of the thought, and depends upon it; but the thought is independent of the physical act.

FORGETFULNESS

The whole philosophy of approaching and realizing the Truth hinges on the question of what we may call forgetfulness. The word "forgetfulness" used here must not be associated with its commonly accepted meaning of forgetting to post a letter, or of a state of mind that is simply dull and blank. Forgetfulness in this special sense is an attitude of mind that develops gradually into spiritual experience. External renunciation is not forgetfulness, because it is mostly physical and partly

रूप से मानसिक होता है; लेकिन आन्तरिक संन्यास, जब वह विशुद्ध रूप से मानसिक हो जाता है, विस्मृति का गुण और प्रतिष्ठा धारण करता है । इस प्रकार व्यक्ति दुनियाँ का त्याग कर सकता है, किन्तु उसको भूलना इतना आसान नहीं है ।

इस प्रकार इस विशेष अर्थ में विस्मृति वह रहस्य समझाती है जो आध्यात्मिक अथवा अन्य प्रकार के सब सुखों के पीछे गुप्त रहता है, जिसका अनुभव मानवप्राणी करते हैं । इस विस्मृति के लिये सूफ़ी शब्द बेखुदी है, और उसका मिश्रण **बेहोशी** (अचैतन्यता) से न करना चाहिये—यद्यपि ऐसा बहुधा लोग करते हैं ।

विस्मृति और अचैतन्यता के बीच का अन्तर महत्त्वपूर्ण है, और अचैतन्यता के प्रकारों के कुछ उदाहरण इस बात को स्पष्ट करने में सहायक होंगे । पहले पहल, व्यक्ति को अनिवार्यरूप से याद रखना चाहिये कि विस्मृति मन की भौतिक जगत से आंशिक अथवा पूर्ण **पृथक्‌ता** है, और अचैतन्यता भौतिक जगत से मन का आंशिक अथवा पूर्ण मरण है । पहले बताई गई पृथक्‌ता आध्यात्मिक परमानन्द के विविध अन्शों को जन्म देती है और बाद में बताया गया मरण सुख और दुःख के समाप्त होने के विविध अन्शों को जन्म देता है ।

आइये हम अचैतन्यता के एक या दो नमूने देखें । पूर्ण स्वास्थ्य में मनुष्य हृदय जैसे जीवनदायी अङ्ग की क्रिया के बारे में परवाह नहीं करता । इसका यह अर्थ है कि मनुष्य यह भूल जाता है कि यह अङ्ग मानव शरीर में जीवन और रक्षा के लिये निरन्तर और पूर्णरूप से स्पन्दन कर रहा है । तथापि, यदि हृदय की लय में गड़बड़ी हो जाती है तो तत्काल दुःख होता है, और यदि कोई हृदय सम्बन्धी गड़बड़ी होती है तो तत्काल पहले जैसी हार्दिक पीड़ा होती है । इनमें से किसी भी सूरत में मनुष्य को स्मरण होता है कि उसके हृदय है । दुःख अथवा पीड़ा की अनुभूति केवल मन की क्रिया के कारण होती है, यद्यपि वह हृदय से उत्पन्न होती है । मन जितना ही अधिक हृदय की ओर चलाया जाता है, उतनी ही अधिक असुविधा अथवा पीड़ा की अनुभूति होती है । जब पीड़ा अपने परम शिखर पर पहुंच जाती है, तब अचैतन्यता अचानक आ सकती है—अर्थात् चेतना के धागे टूट जाते हैं जिससे मनुष्य पीड़ा को भूलने में समर्थ होता है । लेकिन अपने आध्यात्मिक अर्थ में यह अचैतन्यता

mental; but internal renunciation, when it becomes purely mental, does assume the quality and dignity of forgetfulness. Thus one may renounce the world, but it is not so easy to forget it.

Forgetfulness in this special sense thus explains the secret that lies behind all happiness, spiritual or otherwise, that human beings experience. The Sufi term for this forgetfulness is *bikhudi*, and it should not be mixed up—though it often is—with *bihoshi* (unconsciousness).

The difference between forgetfulness and unconsciousness is important, and a few examples of types of unconsciousness will help to make it clear. To begin with, one must remember that forgetfulness is the partial or total **detachment** of the mind from the physical world, and unconsciousness the partial or total **deadening** of the mind to the physical world. The former gives rise to various degrees of spiritual ecstasy and the latter to various degrees of cessation of pleasure and pain.

Let us then look at one or two examples of unconsciousness. In perfect health one does not bother about the functioning of a vital organ like the heart. This means that one forgets that this organ is beating ceaselessly and perfectly in the human body for the maintenance of life and health. If, however, there is a disturbance in the cardiac rhythm there is immediate discomfort, and if there is a cardiac infarct there is immediate precordial pain. In either case one is reminded that one has a heart. The sensation of discomfort or pain, though it arises from the heart, is felt only because of the functioning of the mind. The more the mind is directed to the heart, the more the discomfort or pain is felt. When pain reaches its climax, unconsciousness may supervene—a break in the threads of

है और विस्मृति नहीं है । शल्य-चिकित्सक पहले से तैयारी करके कुछ नाड़ी सम्बन्धी मार्गों में दखल दे सकता है जो कैंसर के समान कुछ असाध्य बीमारियों की असहनीय पीड़ा के ऊपर मन का यह वेन्द्रीकरण करते हैं । इस चीज़-फाड़ के बाद भी पीड़ा वहाँ अब भी बनी रहती है, लेकिन रोगी अपना मन उसकी ओर लगाना बन्द कर देता है, और इसलिये उसके विषय में परेशान होना बन्द कर देता है । पुनः यह एक आंशिक अचैतन्यता है, जिसकी उत्पत्ति बिल्कुल भौतिक माध्यमों द्वारा होती है, और वह अपने आध्यात्मिक अर्थ में सच्ची विस्मृति नहीं होती । निद्रा अचैतन्यता की एक स्थिति है जो जीवन के सुख और दुःख को क्षणिक विश्राम प्रदान करती है; किन्तु निद्रा अपने आध्यात्मिक अर्थ में यथार्थ विस्मृति नहीं है ।

इसलिये सुख और दुःख का पूरा तत्वज्ञान किसी न किसी प्रकार की विस्मृति के प्रश्न पर अवलम्बित होता है, और किसी न किसी प्रकार की स्मृति के प्रश्न पर निर्भर होता है । स्मृति किसी ख़ास विचार, व्यक्ति, वस्तु अथवा स्थान के प्रति मन का एक लगाव है, और विस्मृति उसका विलोम है । एक बार यह समझ में आ जाने पर कि स्मृति कष्टवायी होती है, उससे यह नतीजा निकलता है कि किसी प्रकार की विस्मृति ही उसका इलाज है, और यह विस्मृति भावात्मक अथवा नकारात्मक हो सकती है । भावात्मक विस्मृति वह है जिसमें मन को बाहरी बन्धनों का ज्ञान रहता है, लेकिन वह उनके प्रति प्रतिक्रिया नहीं करता । नकारात्मक विस्मृति या तो निरी अचैतन्यता होती है—यानी जिस प्रकार गहरी नींद में मन रुक जाता है—अथवा उसकी गति ऐसी तेज़ हो जाती जैसी पागलपन में होती है, जिसकी परिभाषा ऐसी की जाती है कि वह क्लेश की स्मृति से बचने का एक उपाय है । निद्रा अथवा पागलपन नशीली चीज़ों अथवा दवाओं के प्रयोग से विभिन्न अन्शों में बनावटी रूप से पैदा की जा सकती हैं; किन्तु यह भी स्मृति पर विजय प्राप्त करने की नकारात्मक रीति है ।

तब, निश्चित विस्मृति इलाज है, और उसका दृढ़ सम्वर्धन मनुष्य में मन का वह सन्तुलन पैदा करता है जो मनुष्य को ऐसे श्रेष्ठ लक्षण जैसे उदारता, क्षमा, सहनशीलता, निःस्वार्थपरता और दूसरों की सेवा प्रगट करने के योग्य बनाता है । वह मनुष्य जो इस ठोस विस्मृति से सुसज्जित नहीं है, अपने पास-पड़ोस का बैरमिटर यन्त्र बन जाता है ।

(२३६)

consciousness that enables one to forget the pain. But this is unconsciousness and not forgetfulness in its spiritual sense. A surgeon by performing a prefrontal leucotomy can interfere with some of the nervous pathways that serve this focussing of the mind on the intractable pain of some incurable disease like cancer. After this operation the pain is still there, but the patient ceases to direct his mind towards it, and so ceases to bother about it. This again is a partial unconsciousness brought about by purely physical means, and not true forgetfulness in its spiritual sense. Sleep is a state of unconsciousness that affords a temporary respite from the wear and tear of life; but sleep is not true forgetfulness in its spiritual sense.

The whole philosophy of happiness and unhappiness therefore hinges on the question of forgetfulness of some kind or another, and of remembrance of some kind or another. Remembrance is an attachment of the mind to a particular idea, person, thing or place, and forgetfulness is its opposite. Once it is understood that remembrance causes pain, it follows that the only cure is some kind of forgetfulness, and this forgetfulness may be either positive or negative. The positive forgetfulness is one in which the mind remains aware of external stimuli, but refuses to react to them. The negative forgetfulness is either mere unconsciousness—a stopping of the mind as in sound sleep—or an acceleration of it as in madness, which has been defined as a way of avoiding the memory of suffering. Either sleep or madness may be artificially induced in various degrees by the use of intoxicants or drugs; but this also is a negative way of overcoming remembrance.

Positive forgetfulness, then, is the cure, and its steady cultivation develops in man that balance of mind which enables him to express such noble traits as charity, forgiveness, tolerance, selflessness and service to others. One who is not equipped with this positive forgetfulness becomes a

उसका सन्तुलन प्रशंसा अथवा चापलूसी की किंचित्मात्र कानाफूसी से, और निन्दा अथवा आलोचना के किंचित्मात्र सुझाव से, भङ्ग को जाता है; और उसका मन सिलेण्डर रीड के समान भाव के हल्के से हल्के झोंके से झूमता है । ऐसा मनुष्य निरन्तर खुद अपने से युद्ध करता रहता है और उसको शान्ति नहीं मिलती ।

इस भावात्मक विस्मृति का प्रयोग करने में, न केवल सारभूत विपरीत परिस्थितियों की मकारात्मक प्रतिक्रियाओं का अभाव होता है, किन्तु अनुकूल तथा सुखदायी परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं का अभाव भी होता है । इन दो में से बाद वाली परिस्थिति अधिक कठोर होती है और उसका वर्णन बहुधा कम क्रिया जाता है, यद्यपि उसका महत्व केवल उतना ही होता है ।

भावात्मक विस्मृति, यद्यपि वह सुख के मूल में स्थित होती है, प्राप्त करने के लिये किसी साधन से आसान नहीं है । एक बार मनुष्य मन की इस दशा को प्राप्त कर लेता है, तो वह सुख और दुःख के ऊपर हो जाता है, वह अपने खुद का मालिक बन जाता है । उस विस्मृति को, आध्यात्मिक जीवन के लिये पूरी तरह से कारगर होने के हेतु, स्थायी बन जाता चाहिये, और ऐसा स्थायित्व अनेक जन्मों में निरन्तर अभ्यास करने के बाद प्राप्त होता है । कुछ लोग, पिछले जन्मों में विस्मृति की ओर प्रयास करने के फ्रलस्वरूप, बाद के जीवन में सहज औीर क्षणिक झलकें पाते हैं, और ऐसे लोग ही दुनियाँ को सर्वश्रेष्ठ कविता, कला एवम् तत्वज्ञान प्रदान करते हैं, और जो विज्ञान में, महानतम आविष्कार करते हैं ।

सच्ची विस्मृति के ऐसे क्षणों में एक मानसिक अनासक्ति सब भौतिक वातावरण से होती है जिसमें कवि अपनी कल्पना की उड़ान को उड़ने देता है । एक कलाकार, जब वहा किसी आदर्श को मूर्तमान करता है जिसमें वह अपने को और अपने चारों तरफ़ के वातावरण को बिल्कुल भूल जाता है, एक सर्वश्रेष्ठ चीज़ पैदा करता है । सर्वश्रेष्ठ तत्वज्ञान उस समय उच्चारित होता है जब मनुष्य जीवन की समस्या को, अपनी बिल्कुल व्यक्तिगत परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव के सन्दर्भ के बग़ैर, जीवन की समस्या का पर्यावलोकन करता है; और मन के इसी ढाँचे में कुछ सबसे महान् वैज्ञानिक आविष्कार किये गये हैं । विस्मृति की यथार्थ सहजता के ऐसे प्रकाशन वास्तव में बहुत-बहुत दुर्लभ हैं, और यद्यपि

barometer of his surroundings. His poise is disturbed by the slightest whisper of praise or flattery, and by the faintest suggestion of slander or criticism; his mind is like a slender reed swayed by the lightest breeze of emotion. Such a man is perpetually at war with himself and knows no peace.

In the exercise of this positive forgetfulness, not only is non-reaction to adverse circumstances essential, but also non-reaction to favourable and pleasurable circumstances. Of these two the latter is the harder and is less often described, although it matters just as much.

Positive forgetfulness, although it lies at the very root of happiness, is by no means easy to acquire. Once a man attains this state of mind, however, he rises above pain and pleasure; he is master of himself. This forgetfulness, to be fully effective for the spiritual life, must become permanent, and such permanence is only acquired through constant practice during many lives. Some people, as a result of eff o rts towards forgetfulness in past lives, get spontaneous and temporary flashes of it in a later life, and it is such people who give to the world the best in poetry, art and philosophy, and who make the greatest discoveries in science.

In such moments of true forgetfulness there is a mental detachment from all material surroundings in which the poet allows his imagination to soar. An artist, when he gives form to an ideal in which he completely forgets himself and all irrelevant surroundings, creates a masterpiece. The best of philosophy is uttered when a man surveys the problem of life without reference to the ups and downs of his purely personal circumstances; and some of the greatest scientific discoveries have been made in this same frame of mind. Such manifestations of genuine

ऐसा कहा जाता है कि कवि, कलाकार और तत्वज्ञानी पैदा होते हैं, और बनाये नहीं जाते हैं, ये असली विस्मृति के नश्वर पहलू पूर्व जन्मों में किये गये असली विस्मृति के परिणाम हैं ।

जीवन को सहनीय बनाने के प्रयत्न में कुछ लोगों में एक निर्बल प्रकार की द्वन्द्वमुक्ति पैदा हो जाती है—एक प्रकार का "कौन परवाह करता है, किस तरह" का दृष्टिकोण—विकसित करता है—और अन्य लोग अपनेआप को असावधानी से माया में डुबो देते हैं । पहिला कथन हार जाने की उदासीन स्वीकृति है, और बाद की स्थिति सुख के हाथों में हार को भूल जाने का प्रयत्न है । इनमें से कोई भी सच्ची विस्मृति नहीं है । लेकिन जब मनुष्य सच्ची विस्मृति पा लेता है, तब वहा आध्यात्मिक जगत में प्रवेश करता है और विस्मृति के विभिन्न अन्शों से गुज़रता है जब तक कि **लक्ष्य** प्राप्त नहीं हो जाता । मेहेरबाबा हमको बताते हैं, "दुनियाँ की विस्मृति मनुष्य को एक तीर्थयात्री (रहरो, साधक) बनाती है; दूसरी दुनियाँ की विस्मृति मनुष्य को सन्त बनाती है; आत्म की विस्मृति का अर्थ है साक्षात्कार; और विस्मृति की विस्मृति **पूर्णता** है ।"

३. प्रथम भूनिका (४९)

हाफ़िज़ स्पष्टरूप से पहली भूमिका का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में करते हैं :

कम नदानिस्त कि मंज़िलगाहे मक़सूद कुजाअस्त नदानस्त
ईन क़दर हस्त कि बाँगे जरासी मीआयद ।

"यह ज्ञात नहीं है कि दैवी प्रियतम का असली निवास कहाँ है; केवल इतना स्पष्ट है, कि मुझे (यात्रा करने हुये काफिलों से) घण्टियों की आवाज़ सुनाई देती है ।"

नाद और भूमिकाओं के इस विषय पर मेहेरबाबा कहते हैं : ‡

"फिर भी, यह ज्ञातव्य है, कि नाद का अतित्व सब सातों भूमिकाओं के आद्योपान्त होता है, और वह अपनी भावना, अति हर्ष तथा परमानन्द की अभिव्यक्ति में भिन्न होता है ।

(२३८)

‡ "प्रश्न जिनका उत्तर बाबा देते है", मेहेरबाबा जरनल, भाग १, सख्या ३, (जनवरी, १९३९), पृष्ठ ८३–८४ ।

spontaneity of forgetfulness are very rare indeed, and although it is said that poets, artists and philosophers are born and not made, these fleeting phases of real forgetfulness are the result of efforts made in past lives.

In an attempt to make life bearable some people develop a feeble kind of stoicism—a sort of "who cares, anyway" outlook—and others plunge recklessly into epicurism. The former is the apathetic acceptance of defeat, and the latter the effort to forget defeat in the arms of pleasure. Neither is true forgetfulness. But when a man acquires the true forgetfulness, he enters the spiritual kingdom and passes through diff e rent degrees of forgetfulness until the Goal is reached. Meher Baba tells us, "Forgetfulness of the world makes one a pilgrim (rahrav, sadhak); forgetfulness of the next world makes one a saint; forgetfulness of self means Realization; and forgetfulness of forgetfulness is Perfection."

3 The First Plane (42)

کس ندانست که منزلگه مقصود کجاست
این قدر مست که بانگ جرسی می‌آید

Hafiz evidently refers to the first plane when he says:

Kas nadānist kih manzilgah-i maqṣūd kujāst
nadānast Īn qadar hast kih bāng-i jarasī mīāyad.

"It is not known where the real abode of the Divine Beloved is; only this much is clear, that I hear the sound of bells (from the travelling caravans)."

On this subject of sound and the planes Meher Baba says:*

"However, know this, that sound exists throughout all the seven planes, differing in its expression of feeling, ecstasy and bliss.

* "Questions Baba Answers," Meher Baba Journal, vol. 1, no. 3 (January, 1939), 83–84.

"उच्चतर भूमिकाओं के नाद, दृश्य अथवा गन्ध की तुलना कितनी भी विस्तृत कल्पना से नहीं की जा सकती जिसे हम भौतिक भूमिका पर करने के आदी हैं । . . . हमारी सुनने, देखने और सुँघने की भौतिक इन्द्रियाँ उच्चतर भूमिकाओं का अनुभव करने के लिये और उनका आनन्द लेने के लिये व्यर्थ होती हैं । उनके अन्दर एक विभिन्न नेत्र होता है जो देखता है, एक विभिन्न कान होता है जो सुनता है और एक विभिन्न नाक होती है जो सूँघती है । आप पहले से ही जानते हैं कि आन्तरिक इन्द्रियाँ होती हैं, जो मनुष्य के अन्तर में बाह्य इन्द्रियों के सहायक अङ्ग होती हैं, और व्यक्ति पहले की इन्द्रियों से ही उच्चतर भूमिकाओं का अनुभव करता है ।

"उच्चतर भूमिकाओं के नाद की समता किसी ऐसी चीज़ से करने की ग़लती न करो जो तरङ्गों की प्रगाढ़ता और तीव्रता में भौतिक भूमिका के नाद से भिन्न हो; यह निश्चय मानो कि प्रथम तीन भूमिकाओं में जिसे हम "नाद" कह सकते हैं वह यथार्थरूप से मौजूद है । इस नाद के रूप, सुन्दरता, सङ्गति और आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता । नाद अथवा दिव्य सङ्गति प्रथम भूमिका की विशेषता है, जिसका उल्लेख हाफ़िज़ ने **बाँनगी जरासी** (घण्टियों के बजने) के रूप में किया है ।

"जैसा ऊपर कहा जा चुका है, यद्यपि सब सातों भूनिकाओं में नाद व्याप्त है, यह गन्ध है जो दूसरी और तीसरी भूमिकाओं की विशेषता है, जबकि दृष्टि पांचवीं और छठवीं भूमिकाओं से सम्बन्ध रखती है . . .

"सातवीं, भूमिका अद्वितीय है । यहाँ नाद, दृष्टि और गन्ध मूलरूप से दिव्य होते हैं और उनकी तुलना उनसे नहीं की जा सकती जो निचली भूमिकाओं से निकलते हैं । इस भूमिका में मनुष्य को सुनाई नहीं देता, गन्ध नहीं आती और दिखाई नहीं पड़ता किन्तु वह सुगन्ध और दृष्टि दोनों में एकसाथ नाद **बन जाता है**, और उसको इसकी दिव्य चेतना रहती है ।"

४. दूसरी भूमिका (५०)

हाफ़िज़ स्पष्टरूप से दूसरी भूमिका का उल्लेख निम्नलिखित शब्दों में करते हैं : चि गुयामत

सिगुयामत कि बिमयख़ाना दूश मस्त ओ ख़राब
सुरूश-ए आलम-ए घैबम सीह मुज़दिहा दादस्त ?
चिह

(२३९)

"The sound, sight or smell of the higher planes can with no stretch of the imagination be likened to what we are used to on the physical plane. . . . Our physical organs of hearing, seeing and smelling are useless for experiencing and enjoying the higher planes. Therein it is a different eye that sees, a different ear that hears and a different nose that smells. You know already that there are inner senses, counterparts of the external senses in man, and it is with the former that one experiences the higher planes.

"Avoid the mistake of likening the sound of the higher planes to something different in intensity and frequency of vibrations to the sound of the physical plane; know it for a certainty that there is actually what may be called 'sound' in the first three planes. The form, beauty, music and bliss of this sound are beyond description. The nad or celestial music is peculiar to the first plane, which Hafiz refers to as bang-i jarasi (the ringing of bells).

"As stated above, although there is sound in all the seven planes, it is smell that is peculiar to the second and third planes, while sight belongs to the fifth and sixth planes . . .

"The seventh plane stands unique. Here the sound, sight and smell are divine in essence and have no comparison to those emanating from the lower planes. In this plane one does not hear, smell or see but one becomes sound, smell and sight simultaneously, and is divinely conscious of it."

4 The Second Plane (46)

Hafiz evidently refers to the second plane when he says:

Ci gūyamat kih bi maykhānih dūsh mast o kharāb
Surūsh-i 'ālam-i ghaybam cih muzhdihā dādast?

چه گویمت که به میخانه دوش مست و خراب
سروش عالم غیبم چه مژدهها دادست

"मैं तुमसे कैसे प्रगट करूँ कि मुझे विगत रात्रि को मयख़ाना में, जबकि मैं नशे में था और अस्थिर था, छिपी हुई दुनियाँ के फ़रिश्ते मेरे पास बड़े शुभ सन्देश लाये ?"

५. तीसरी भूमिका (५१)

हाफ़िज़ तीसरी भूमिका का उल्लेख़ निम्नलिखित शब्दों में करते हैं :

चे राह मीज़ानद ई मुतरिब-ए मुक़ाम शिनास
के दर मियान-ए गज़ल कूल-ए आशिना आवर्द ।

"यह सङ्गीतज्ञ, जो अवस्थाओं और स्थितियों के ज्ञान (आध्यात्मिक) से सम्पन्न हैं, अपने दैवी प्रियतम के शब्दों को अपनी क्रिया के बीच प्रस्तुत करने के द्वारा श्रोताओं (प्रेमियों) में कैसी व्यग्रता और पीड़ा पैदा कर रहा है ।"

६. तीसरी और चौथी भूमिकाओं के बीच की स्थिति (५१)

तीसरी और चौथी भूमिकाओं के बीच की यात्रा एकसाथ कठिन और ख़तरनाक है क्योंकि इन दो भूमिकाओं के बीच सम्मोहन का बिन्दु (**मुक़ाम-ए-हैरत**) होता है । सम्मोहन की इस अवस्था को पार करना बहुत कठिन है यदि तीर्थयात्री एक बार वहाँ रुक जाता है; यद्यपि अधिकांश तीर्थयात्री तीसरी भूमिका से चौथी भूमिका को सीधे पार कर जाते हैं । जब तक कि तीर्थयात्री इस स्थिति को तेज़ी से पार न करके चौथी भूमिका की ओर अग्रसर नहीं होता, तब तक उसकी प्रगति अनिश्चित समय तक रुकी रहेगी । एक बार जब पथिक इस प्रकार मुग्ध हो जाता है तो वह इस दशा में दिनों, महीनों अथवा वर्षों तक एकसाथ बना रहता है । वह न तो और आगे प्रगति कर सकता है और न वह पीछे को हट सकता है । उसे न तो स्थूल चेतना होती है और न सूक्ष्म चेतना होती है । न तो उसको **अचैतन्य** कहा जा सकता है क्योंकि उसको सम्मोहन की पूर्ण चेतना प्राप्त होती है, और सम्मोहन की इस चेतना के कारण ही वह अपनी यह जीवित मृत्यु व्यतीत करता है ।

इस गहराई से मोहित तीर्थयात्री की शारीरिक अवस्था कम विचित्र नहीं होती, क्योंकि यदि वह किसी ख़ास आसन में बैठ जाता है

"How should I reveal to you that last night in the tavern, intoxicated and unsteady as I was, great good tidings were brought to me by the angel of the hidden world?"

5 The Third Plane (47)

Hafiz refers to the third plane in the following words:

Cih rāh mīzanad īn muṭrib-i muqām shināsچه راه می‌زند این مَطرب مقام شناس
Kih dar miyān-i ghazal qūl-i āshinā āvard.که در میان غزل، قول آشنا آورد

"What perturbation and distress this musician with knowledge of (spiritual) states and stages is causing the listeners (lovers), by interpolating in the midst of his performance the words of the Divine Beloved."

6 The Stage Between the Third and Fourth Planes (47)

The journey between the third and fourth planes is at once difficult and dangerous because between these two planes there is the point of enchantment (muqam-e-hairat). It is very difficult to pass out of this state of enchantment if the pilgrim once stops there, although most pilgrims pass directly from the third to the fourth plane. Unless the pilgrim gets out of this state quickly and proceeds onwards to the fourth plane, his progress will be held up indefinitely. Once a pilgrim becomes thus enchanted here mains so for days, months or years together. He can neither make further progress nor can he retrogress. He is neither gross-conscious nor subtle-conscious. Neither can he be called **unconscious** because he is fully conscious of the enchantment, and it is because of this consciousness of the enchantment that he lives this living death.

The physical condition of the deeply enchanted pilgrim is no less strange, for if he seats himself in a particular position, he remains in that

तो वह उस आसन में महीनों और वर्षों तक एकसाथ बैठा रहता है । इसी प्रकार, यदि वह खड़े हुये समय में मोहित हो जाता है, तो वह खड़ा बना रहोगा जब तक कि उस सम्मोहन का अन्त नहीं हो जाता । संक्षेप में, वह उस स्थिति में स्थिर बना रहता है जिसमें वह पहलेपहल मोहित हो जाता है और, यद्यपि वह एक निर्जीव मूर्ति के समान दिख सकता है, वह दुनियाँ के साधारण मनुष्य की अपेक्षा वास्तव में अधिक जीवन्त होता है ।

यद्यपि सूफ़ी जगत को अच्छी तरह ज्ञान है कि पिरन कलयार का अली अहमद साबिर, जो बाद में सद्गुरु हो गया था, एकबार वर्षों तक एक ख़ास पेड़ के पास खड़ा रहा था । इस अवधि में साबिर का मन इस **मुक़ाम-ए-हैरत** के सम्मोहन में निमग्न हो गया था, और उसे उस स्थिति से एक **क़ुतुब** ने बाहर निकाला था । केवल स्वाभाविक मृत्यु अथवा सजीव सद्गुरु की ईश्वरीय सहायता ही ऐसे चौंधियायों पथिक को उसके आध्यात्मिक गत्यावरोध से बाहर निकालने में सहायक हो सकते हैं । सद्गुरु ऐसे पथिक की सहायता या तो उसको तीसरी भूमिका में वापिस लाकर करेगा अथवा उसे आगे को ठेलकर करेगा ।

निःसन्देह हाफ़िज़ पथिक की इस स्थिति का विचार निम्नलिखित शब्दों में करता है :

मस्तम कुन आँ सुनाँ कि नदानम ज़ी बेखुदी
दर अरसीह ख़ियाल के आमद कुदाम रफ्त ।

"मुझको ऐसा चकाचौंध और नशे में चूर कर दीजिये कि, विस्मृति की इस अवस्था के कारण, मुझे इस बात की विस्मृति हो जाय कि मेरे मन में क्या आया था और उसके बाहर क्या चला गया ।"

मेहेरबाबा समझाते हैं कि पथिक को **मक़ाम-ए-हैरत** (सम्मोहन की दशा) में प्रवेश करने का खतरा होता है जब वह तीसरी भूमिका से चौथी भूमिका में जाता है । वह कहते हैं कि मोहित होने की अवस्थायें मार्ग के दूसरे भागों में भी होती हैं, लेकिन सबसे अधिक महत्वपूर्ण वह अवस्था है जो तीसरी और चौथी भूमिकाओं के बीच होती है । यह हैरत (सम्महिन) दृढ़ अथवा क्षीण हो सकती है । यदि उस क्षण कोई बाधा अथवा बाधक तत्व मौजूद नहीं होता विससे तीर्थयात्री मोहित हो जावे, तो हैरत गम्भीर होती है, अथवा दृढ़ होती है । यदि उस क्षण कोई

position for months or years together. Similarly, if he becomes enchanted while standing, he will continue standing until the enchantment ends. In short, he remains stationary in the position in which he first becomes enchanted, and, although he may appear to be a lifeless statue, he is in fact more alive than the ordinary man of the world.

It is well known to the Sufi world how Ali Ahmed Sabir of Piran Kalyar, who afterwards became a Perfect Master, once remained standing for years near a certain tree. During this period Sabir's mind was absorbed in the enchantment of this muqam-e-hairatand he was delivered from it by a Qutub. Only natural death or divine help from a living Master can help such a dazed pilgrim out of his spiritual stalemate. A Master would help such a pilgrim either by bringing him back to the third plane or by pushing him onwards.

مستم کن آن چنانکه ندانم ز بی‌خودی
در عرصه خیال که آمد کدام رفت

Hafiz no doubt thinks of this stage of the pilgrim when he says:

Mastam kun ān cunān kih nadānam zi bic̲vudī
Dar 'arṣih k̲hiyāl kih āmad kudām raft.

"Make me so dazed and intoxicated that, on account of this state of forgetfulness, I should be oblivious of what came into my mind and of what passed out of it."

Meher Baba explains that a pilgrim runs the risk of entering muqam-e-hairat (state of enchantment) when he passes from the third to the fourth plane. There are, he says, states of enchantment on other parts of the Path also, but the most important is that between the third and the fourth planes. This hairat (enchantment) may be strong or feeble. If there is no hitch or disturbing factor present at the moment that a pilgrim becomes enchanted,

भाधक तत्व मौजूद होता है तब हैरत क्षीण होती है । यदि तीर्थयात्री तीसरी और चौथी भूमिकाओं के बीच दृढ़ अथवा क्षीण हैरत का अनुभव करता है और फिर वह अकस्मात् एक उच्चतर भूमिका तक ठेल दिया जाता है, तो वह अनिवार्यरूप से उसी दृढ़ अथवा क्षीण हैरत के साथ पाँचवीं और छठवीं भूमिकाओं के बीच की एक स्थिति पर चला जाता है । ऐसे उदाहरण बहुत दुर्लभ हैं । कलयार निवासी अली अहमद साबिर और बम्बई के बाबा अब्दुर्रहमान दोनों तीसरी और चौथी भूमिकाओं के बीच की सुदृढ़ **हैरत** से पाँचवीं और छठवीं भूमिकाओं के बीच की अत्यन्त सुदृढ़ हैरत में, पहला उन **क़ुतुब** की कृपा की देन के द्वारा और दूसरा एक घटना की शक्ल में, परमात्मा की देन के द्वारा पहुँच गये थे ।

स्थिति की एक पूर्ण स्थिरता जो मौत के समय तक स्थिर नहीं रहती, अथवा उसका सम्पर्क एक सद्गुरु से नहीं होता, केवल उन तीर्थयात्रियों में दिखाई पड़ती है जिनको एक बहुत दृढ़ हैरत प्राप्त होती है । एक मस्त (इश्वरीय प्रेम के नशे में चूर व्यक्ति) जो मेहेरबाबा के साथ बहुत वर्षों से रह रहा है, तीसरी और चौथी भूमिकाओं के बीच इस **मुक़ाम-ए-हैरत** में था जब वह १९३६ ई॰ में राहुरी में मेहेरबाबा के पास लाया गया था; लेकिन उसकी **हैरत** क्षीण थी, और यद्यपि वह कई घण्टे एक ही आसन में लगातार खड़ा रहता था, यह स्थिति स्थायी-रूप से क़ायम नहीं रह सकती थी । तो भी अली अहमद साबिर का सम्मोहन दृढ़ था और वह एक ही आसन में बना रहा था जब तक कि एक सद्गुरु ने उसको अन्ततः उस मायावी सम्महिन से मुक्त ने कर दिया ।

सम्महिन की इस अवस्था का अर्थ किसी भी प्रकार से मनोविभ्रम वाले व्यक्ति की बेहोशी से न लगाना चाहिये, यद्यपि वह बिल्कुल वैसी ही दिखाई पड़ सकती है । दोनों सम्महिन की अवस्थायें हैं, किन्तु उनमें ज़मीन-आसमान का अन्तर है ।

७.मनो भुवन का तीर्थयात्री (५६)

मेहेरबाबा कहते हैं कि यदि मनो लोक का पथिक भारत में है और वह अमरीका देखने के विचार की कल्पना अपने पक्ष की मानसिक अथवा भौतिक इच्छाओं के साथ-साथ करता है, तब वह वहाँ होगा । कोई यह पूछ सकता है कि वह इतना तेज़ कैसे दौड़ता है जैसे उसका स्वयं विचार उसी तेज़ी से दौड़ता है । इसका उत्तर यह है कि (२४२)

then the hairat is deep, or strong. If there is a disturbing factor present at that moment then the *hairat* is feeble. If a pilgrim experiences either strong or feeble hairat between the third and fourth planes and is then pushed forward by accident to a higher plane, he invariably goes to a position between the fifth and sixth planes, again with the same strong or feeble hairat. However, such instances are very rare. Ali Ahmed Sabir of Kalyar and Baba Abdur Rahman of Bombay both were precipitated from a very strong hairat between the third and fourth planes into a very strong hairat between the fifth and sixth planes, the former by a gift of grace from a Qutub and the latter through God's gift in the shape of an accident.

A complete fixity of posture that lasts until death, or until a Perfect Master is contacted, is seen only in those pilgrims who have a very strong hairat. A mast (God-intoxicated) who has been with Meher Baba for many years was in this muqam-e-hairat between the third and fourth planes when he was brought to Meher Baba in Rahuri in 1936; but his hairat was feeble, and although he would stand for many hours at a stretch in one position, this position would not be maintained permanently. The enchantment of Ali Ahmed Sabir, however, was a strong one, and he remained in one posture until he was finally delivered from the enchantment by a Qutub.

This state of enchantment should on no account be confused with the catatonic stupor of a schizophrenic, although it may appear similar. Both are states of enchantment, but they are poles apart.

7 Pilgrim of the Mental Sphere (48)

Meher Baba says that if a pilgrim of the mental sphere is in India and conceives the idea of seeing America, simultaneous with the wish on his part, either mentally or physically as he wishes, he will be there. One may ask how he travels as fast as thought itself. The answer is that the

मन हर जगत है और इसलिये मनोलोक के तीर्थयात्री को यात्रा नहों करनी पड़ती । वह अपनी स्थूल अथवा सूक्ष्म इन्द्रियों का उपयोग विये बग़ैर, हर जगत हो सकता है जहाँ वह चाहे । वह स्थूल, सूछन और मनोलोकों के विषय में कुछ भी और सबकुछ केवल जानने की इच्छा से छठवीं भूमिका तक, जान सकता है । इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि, वह कम उन्नत आत्माओं को और साधारण मनुष्यों को भी प्रगति के अपने ही स्तर तक लाने में मदद कर सकता है । जब वह किसी की सीधे-सीध सहायता करना चाहता है, तो पाँचवीं भूमिका का तीर्थयात्री साधक को, "हाथ पकड़े हुये" पथ पर आगे ले जाता है । जब वह ऐसा करता है, तौ स्वयं साधक भी आन्तरिक रूप से मन-भूमिका के गुरु (इसे सूफ़ी लोग "वली" कन्ते हैं) की निरन्तर उपस्थिति अन्तर में देखता है और वह अपनेआपको ऐसा महसूस भी करता है कि वह उसके द्वारा पुर्णता के मार्ग पर यथार्थरूप से अग्रसर किया जा रहा है । हाफ़िज़, निम्नलिखित ग़ज़ल में, स्पष्टरूप से उस ख़ास व्यक्ति की कल्पना करता है, जिसका पथप्रदर्शन इस प्रकार किया जा रहा है :

तू दस्तगू शू ऐ खिज़र-ए-पे खुजास्तीह, की मन
पियावीह मीरवास ओ हमराहां सवार आनन्द ।

"हे प्रतापी गुरुदेव, मेरा हाथ पकड़कर मेरा पथप्रदर्शन कीजिये क्योंकि मैं तुलना में दूसरे साथियों के साथ जो मार्ग में सवारी पर चल रहो हैं, नगे पैर (असहाय) चल रहा हूँ ।"

जो भी हो, आमतौर पर **वली** (**महापुरुष**) जिज्ञासु की सहायता उसकी आँखों में टकटकी लगाने के द्वारा करता है, और उसके द्वारा वह भीतरी पर्दे को वास्तविक अनतर्दृष्टि से फाड़कर अलग कर देता है । दृष्टि के द्वारा किये गये **वली** के इस आध्यात्मिक प्रभाव को सूफ़ी लोग तवज्जोह करते हैं । तवज्जोह शब्द सद्गुरुओं पर लागू नहीं होता । उनके उदाहरण में शब्द "मरज़ी" (*will*) ठीक है क्योंकि वे भी शारीरिक सम्पर्क के बग़ैर यह सहायता प्रदान कर सकते हैं, जो सम्पर्क भूमिकाओं के गुरुओं के उदाहरण में आवश्यक होता है ।

मेहेरबाबा समझाते हैं कि पाँचवीं भूमिका पर तीर्थयात्री कभी-कभी ईश्वरीय उपस्थिति पाने की इच्छा करता है, और कभी-कभी

mind is everywhere, and therefore the pilgrim of the mental sphere does not have to travel. He can be anywhere he likes without using his gross or subtle organs. He can know anything and everything about the gross, subtle and mental spheres as far as the sixth plane, simply by willing to know. More important still, he can help less advanced souls and also ordinary human beings to come up to his own level of progress. When he wants to help anyone directly, the pilgrim of the fifth plane can lead an a spirant "by the hand" along the Path. When he does so, the aspirant himself also perceives internally the continual presence of the master of the mental plane (known to Sufis as a *"wali"*), and also feels himself being actually led by him along the path to perfection. Hafiz, in the following couplet, evidently visualizes the particular sensation of one who is being led in this way:

تو دستگیر شو ای حضر پی خجته که من
پیاده می‌روم و همراهان سوارانند

dastgīr *hamrāhān*

Tū dastgū shū āy khiẓr-i pay khujastih, kih man
Piyādih mīravam o hamrahān savārānand.

"O august master, lead me by the hand because I am traversing the Path on foot (helplessly) as compared with other companions who are riding along it."

Generally, however, a wali (mahapurush) helps an aspirant by gazing into his eyes, thereby tearing away the inner veil from the real eye within. This spiritual influence of the wali through sight is known to Sufis as *tawajjoh*. The term *tawajjoh* does not apply to Perfect Masters. In their case the term "will" is correct for they can also render this help without the physical contact that is necessary in the case of masters of the planes.

Meher Baba explains that on the fifth plane the pilgrim sometimes desires to have the divine presence, and sometimes attends to worldly

दुनियाबी कर्तव्यों की ओर ध्यान देता है । वास्तव में, जहाँ तक पाँचवीं भूमिका पर ईश्वरीय उपस्थिति का सम्बन्ध है, ईश्वर सदैव उपस्थित है, लेकिन यात्री इस उपस्थिति की चाह सदैव नहीं कर सकता जबकि वह अपना ध्यान सांसारिक कर्तव्यों की ओर मोड़ता है । छठवीं भूमिका पर पथिक ईश्वर की उपस्थिति की पूर्ण अभिलाषा आग्रहपूर्वक करता है । हाफ़िज़ स्पष्टरूप से पाँचवीं भूमिका के अपने अनुभव को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं :

हुज़ूरी ग़र हमी ख्वालू
अज़ू गायब मशू हाफ़ज़ ।

"हे हाफ़िज़, यदि तुम ईश्वरीय उपस्थिति की अभिलाषा करते हो तो तुम अपने को अनुपस्थित न होने दो ।"

८.छठवीं भूमिका (५९)

जो यात्री इस बूमिका तक पहुँचने में सफल होता है वह पीर अथवा सत्पुरूप कहलाने का अधिकारी होता है । अँग्रेज़ी में इन शब्दों का कोई पर्यापत अनुवाद नहीं है । "सन्त" शबद कदाचित् पर्याप्त होगा, लेकिन उसमें बहुत लचर व्यवहार की बाधा होती है ।

हाफ़िज़ इस छठवीं भूमिका को निम्नलिखित शब्दों में याद करता है :

मा दर पियालेह अक्स-इ रुख-इ यार देदीह आम
ऐ बेख़बर जे लज़्ज़त-इ शर्ब-इ मुदाम-इ मा ।

"हमने प्रियतम के चेहरे का प्रतिबिम्ब प्याले में (अपने मन अथवा हृदय के) देखा है । हे अज्ञानी, तुमको उस परमानन्द की कोई कल्पना नहीं है जो हम उससे प्राप्त करते हैं ।"

९.छठवीं भूमिका का ज्ञानपथ (६०)

छठवीं बूमिका के ज्ञानपथ के सम्बन्ध में मेहेरबाबा हमको बतलाते हैं : "केवल ईश्वर का अस्तित्व है, और यदि कोई चीज़ अज्ञानता के कारण अस्तित्व में है, तो उसको सत्यता मायावीं है । तब उसका अस्तित्व परमात्मा की छाया के रूप में होता है, जिसका अर्थ है कि परमात्मा ज्ञान और अज्ञानता दोनों की स्थिति में है । एक अनुभव के निम्नलिखित चार दृष्टिकोण, जो सूफ़ी ज्ञानमार्ग की भाषा में लिखे गये हैं, छठवीं भूमिका में आत्माओं के ज्ञानपथ के विभिन्न पहलू हैं जब वे (२४४)

duties. In fact so far as divine presence on the fifth plane is concerned, God is always present, but the pilgrim may not always desire this presence when he turns his attention to worldly duties. On the sixth plane the pilgrim persists in desiring the presence of God one hundred percent. Hafiz evidently refers to his experience of the fifth plane when he says:

Ḥuẕūrī gar hamī khvālū حضوری گر همی خواهی
Az ū ghāyib mashū Ḥāfiẓ. از او غایب مشو حافظ

"O Hafiz, if you desire the divine presence, then do not allow yourself to be absent."

8 The Sixth Plane (54)

The traveller who succeeds in reaching this plane is entitled to be called a pir or satpurush. There is no adequate translation of these words in English. The word "saint" would perhaps do, but it suffers from the handicap of very loose usage.

Hafiz remembers this sixth plane in the following words:

Mā dar piyālih 'aks-i rukh-i yār dīdih-īm ما در پیاله عکس رخ یار دیده‌ایم
Ay bīkhabar zi lazzat-i shurb-i mudām-i mā. ای بی‌خبر زلذت شرب مدام ما

" We have seen the face of the Beloved reflected in the cup (of our mind or heart). O ignorant one, no notion have you of the bliss that we imbibe therefrom."

9 Gnosis of the Sixth Plane (55)

Concerning the gnosis of the sixth plane Meher Baba tells us: "Only God exists, and if anything exists due to ignorance, its reality is illusory. It then exists as God's shadow, which means that God is both in the stage of Knowledge and ignorance. The following four angles of the one experience, written in the language of Sufi gnosis, are different aspects of

ईश्वर के आमने-सामने होते हैं, लेकिन वे फिर भी द्वैत के क्षेत्र में होते हैं । इस सब पहलुओं का अनुभव एकसाथ उसी समय होता है ।

(१) हमा ऊस्त —इसका अर्थ यह है कि 'ईश्वर सबकुछ है'; और उस व्यक्ति के लिये जिसे इस ज्ञानमार्ग का अनुभव होता है, एकमेव ईश्वर का अस्तित्व होता है ।

(२) हमा अज़ ऊस्त —इसका अर्थ है कि 'सबकुछ की उत्पत्ति ईश्वर से है'; और उस व्यक्ति के लिये जो इस ज्ञानपथ का अनुभव करता है, समस्त विश्व प्रपंच, विविधतायें, और अनेकता माया के रूप में अस्तित्व में होती हैं, जब अज्ञान की प्रबलता होती है ।

(३) हमा बा ऊस्त —इसका यह अर्थ है कि 'सबकुछ परमात्मा के साथ है'; और उस व्यक्ति के लिये जो इस ज्ञानपथ का अनुभव करता है, परमात्मा निर्गुण और सगुण दोनों होता है । उसके गुण उस समय असीमित होते हैं जब ज्ञान की प्रधानता होती है, और वे सीमित होते हैं जब अज्ञानता की प्रधानता होती है । शरीर, मन और तीनों लोकों का कोई अस्तित्व नहीं है; किन्तु यदि उनका अस्तित्व होना मालूम पड़ता है, तो वे छायाओं के रूप में अस्तित्व में होते हैं ।

(४) हमा दर ऊस्त —इसका अर्थ है कि 'सबकुछ परमात्मा में है'; और उस व्यक्ति के लिये जिसे इस ज्ञानपथ का अनुभव हो रहा है, अज्ञानता भी स्वयं में कोई वास्तविकता नहीं रखती । उसका अस्तित्व, जब वह प्रगट होता है, परमात्मा के अचैतन्य और अनन्त ज्ञान के बाहर आता है, और इसलिये अज्ञानता के कारण जो कुछ दुई में अस्तित्व में होता है वह परमात्मा के बाहर वहाँ से आया है जहाँ उसका नित्य अस्तित्व था ।"

gnosis of souls in the sixth plane when they are face to face with God, but still in the domain of duality. All of these aspects are experienced together at the same time.

(1) *Hama ust* —This means 'Everything is He'; and for one who experiences this gnosis, only God exists.

(2) *Hama az ust* —This means 'Everything is from Him'; and for one who experiences this gnosis, all phenomena, diversities and manyness exist as illusion when ignorance prevails.

(3) *Hama ba ust* —This means 'Everything is with Him'; and for one who experiences this gnosis, God is both attributeless and with attributes. His attributes are unlimited when Knowledge prevails, and limited when ignorance prevails. Body, mind and the three worlds do not exist; but if they seem to exist, they exist as shadows.

(4) *Hama dar ust* —This means 'Everything is in Him'; and for one experiencing this gnosis, even ignorance has no reality in itself. Its existence, when expressed, comes out of God's unconscious and infinite Knowledge; and so whatever exists in duality due to ignorance has come out of God where it everlastingly existed."

१०.सातवीं भूमिका (६१)

यह समझ लेना चाहिये कि सातवीं भूमिका में निमग्न होने के क्षण, सभी कड़ियाँ स्थूल, सूक्ष्मा और कारण शरीरों के सहित और विश्व के सहित आवश्यकरूप से दुकड़े-दुकड़े हो जाती हैं । सामान्य स्थूल अस्तित्व में इन चिरजीवी जीवनदायी सम्बन्धों के इस अपहरण की बराबरी का कोई नहीं होता, जो व्यक्ति को उसके तीन शरीरों से और विश्व से बाँध देते हैं । शारीरिक मृत्यु, तुलना के द्वारा, एक तुच्छ चीज़ है, लगभग ऐसी तुच्छ चीज़ है जैसे धागे के एक दुकड़े को तोड़कर दुकड़े-दुकड़े करना हो । आमतौर पर मृत्यु के क्षण सूक्ष्म शरीर और प्राणदायी शक्ति स्थूल शरीर से बिल्कुल अलग हो जाते हैं । लेकिन मन मृत्यु के बाद पहले चार दिन स्थूल शरीर से सम्बन्ध बनाये रखता है, और कुछ थोड़े अन्शों में मृत्यु के बाद सात दिन तक और सम्बन्ध बनाये रखता है । अन्तिम विनाश (**फ़ना**) में शरीर और मन के बीच पृथक्ता नहीं रहती; वह मन का और सब नक्शे-अमल (संस्कारों) का यथार्थ नाश है ।

११.विभिन्न प्रकार के चमत्कार (७८)

मेहेरबाबा ने हमको चमत्कारों के बीच का भेद निम्नलिखित शबदों में समझाया है :—

(१) एक उद्धारक (**अवतार**)
(२) पूर्ण पुरुष (**सद्गुरु**)
(३) एक पीर और एक वली (अर्थात् वह व्यक्ति जो क्रमश: छठवीं अथवा पाँचवीं भूमिका पर स्थित है)
(४) वे व्यक्ति जो नीची भूमिकाओं पर हैं (अर्थात् पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी भूमिकायें)

इन चार प्रकारों के सम्बन्ध में मेहेरबाबा हमें बतलाते हैं :

१. उद्धारक के चमत्कार व्यापक लक्षण के होते हैं और वे केवल तभी किये जाते हैं जब वे विश्वव्यापी आवश्यकता के होते हैं । जब एक उद्धारक चमत्कार करना चाहता है, तो वह उस क्षण के लिये छठवीं, पाँचवीं अथवा चौथी भूमिका पर अपनेआपको स्थित करता है, जैसाकि परिस्थितियाँ तकाज़ा करती हैं । फिर भी, यह वांछित है कि चमत्कारों को बहुत शक्तिशाली होना चाहिये, उस क्षण वह चौथी भूमिका पर अपने को स्थित करता है ।

10 The Seventh Plane (56)

It should be understood that at the moment of being merged into the seventh plane, all links with the gross, subtle and mental bodies and with the universe are necessarily snapped. In ordinary gross existence there is no parallel to this snapping of these long-enduring vital connections that bind the individual to his three bodies and to the universe. Physical death is, by comparison, an insignificant thing, about as significant as the snapping of a piece of string. Ordinarily at the instant of death the subtle body and vital force are separated completely from the gross body. But the mind maintains the connection with the gross body for the first four days after death and, to a slighter degree, for seven days more after that. In the final annihilation (*fana*), however, the separation is not between body and mind; it is the actual annihilation of mind and of all *nuqush-e-amal* (*sanskaras*).

11 Different Types of Miracles (67)

Meher Baba has given us an explanation of the diff e rence between the miracles of:

(1) A Saviour (*Avatar*)

(2) A Perfect Master (*Sadguru*)

(3) A *pir* and a *wali* (*i.e.*, one on the 6th or 5th plane, respectively)

(4) Those on the lower planes (*i.e.*, 1st, 2nd, 3rd and 4th)

In connection with these four types Meher Baba tells us:

1. The miracles of a Saviour a re of a universal character and are performed when universally necessary. When a Saviour intends working a miracle, he stations himself for the time being on the 6th, 5th or 4th plane, as demanded by circumstances. When, however, it is desired that the miracles be very forceful, he stations himself for the time being on the 4th plane.

२. सद्गुरु के गये चमत्कार बहुत बड़े पैमाने पर होते हैं किन्तु वे अखिल विश्व में व्याप्त नहीं होते। उद्धारकर्त्ता के चमत्कारों के समान, वे केवल दूसरों की आध्यात्मिक जागृति के लिये ही किये जाते हैं। उद्धारकर्त्ता के समान भी, सद्गुरु जो चमत्कार करना चाहता है वह उस क्षण के लिये अपने को छठवीं, पाँचवीं अथवा चौथी भूमिका में स्थिर रखता है; और एक बहुत शक्तिशाली चमत्कार करने के लिये, वह उस क्षण अपनेआपको चौथी भूमिका में स्थिर करता है। सातवीं भूमिका के **मजज़ूब-ए-कामिल** कभी चमत्कार नहीं करते। इसका केवल यह कारण है कि तीनों लोक—मानस, सूक्ष्म और स्थूल लोक—ऐसी आत्मा के लिये अस्तित्व में नहीं होते।

३. पीर अथवा वली के चमत्कार सीमित पैमाने पर होते हैं। वास्तव में वे प्रत्यक्षरूप से कोई चमत्कार नहीं करते। फिर भी, ऐसे चमत्कार जो उनके किये हुये माने जा सकते हैं, दूसरों के विचारों और भावनाओं के ऊपर उनके मानसिक प्रभाव द्वारा किये कहे जाते हैं, जो आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार के हित प्रदान करते हैं। वे नीचे उतरकर चौथी भूमिका पर नहीं आते—जो भूमिका सर्वशक्तिमान आध्यात्मिक शक्तियों की भूमिका है।

४. पहली, दूसरी और तीसरी भूमिकाओं के पथिक ख़ुद अपनी भूमिका से शक्तियों का प्रयोग अथवा प्रदर्शन कर सकते हैं, जैसे दूसरों के मन का अध्ययन करना, शून्य से चीज़ें उत्पन्न करना, पुस्तक को देखे बग़ैर शब्दों अथवा वाक्य खण्डों का पढ़ना, रेलगाड़ियों का रोकना, घण्टों तक लगातार अपने को ज़िन्दा दफ़नाये रहना, हवा में तैरना, इत्यादि। ये वास्तविक शक्तियाँ हैं जो पथिक को विभिन्न भूमिकाओं पर प्राप्त होती हैं, और इस रूप में वे केवल जादूगरी नहीं कही जा सकतीं। **पूर्ण पुरुष** और **अवतार,** निचली भूमिकाओं से, अर्थात् पहली, दूसरी और तीसरी भूमिका से, शक्तियों का प्रयोग करने के लिये साधक की क्षमता का हरण कर सकते हैं, और वे चौथी भूमिका के साधक की सर्वशक्तिमान् शक्तियों को भी छीन सकते हैं। निचली भूमिकाओं पर स्थित व्योक्तयों की

2. The miracles of a Perfect Master are on a very large scale, but they do not cover the whole universe. Like the Saviour's miracles, however, they are wrought solely for the spiritual awakening of others. Like the Saviour also, the Perfect Master who intends working a miracle stations himself on the 6th, 5th or 4th plane for the time being; and for a very forceful miracle, he stations himself for the time being on the 4th plane. No miracles are ever wrought by the Majzoob-e-Kamil of the 7th plane for the simple reason that the three spheres, the mental, subtle and gross, do not exist for such a soul.

3. The miracles of a pir or wali are on a limited scale. In fact they perform no miracles directly. However, such miracles as can be attributed to them are wrought from their mental influence over the thoughts and feelings of others, yielding both spiritual and material benefits. They do not come down to the 4th plane—the plane of almighty spiritual powers.

4. Pilgrims of the 1st, 2nd and 3rd planes can use or demonstrate powers from their own plane, such as reading the minds of others, producing things from nowhere, reciting words or passages from a book without seeing it, stopping trains, allowing themselves to be buried alive for hours together, levitation, etc., etc. These are actual powers acquired by the pilgrim on the different planes and, as such, cannot be called mere jugglery. Perfect Masters and the Avatar can snatch away a pilgrim's ability to use the powers from the lower planes, viz., 1st, 2nd and 3rd , and can even snatch away the almighty powers of one on the

शक्तियों का इस प्रकार छीनना सूफ़ी मत में **सल्ब-ए-विलायत** कहा जाता है ।

चौथी भूमिका पर सर्वशक्तिमान् शक्तियों‡ का का भण्डार भरा रहता है जिसका, तीर्थयात्री द्वारा दुरुपयोग किये जाने के फलस्वरूप, उसका पूर्ण विनाश हो जाता है । किन्तु ऐसे चमत्कारों का दुनियाँ के ऊपर उल्टा प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि क़ुतुब-ए-इरशाद—अर्थात्, तत्कालीन आध्यात्मिक देवदूत मण्डल का अध्यक्ष—इन क्रियाओं को निष्फल करने की चौकसी रखता है ।

मेहेरबाबा ने आगे समझाया है कि पहली तीन भूमिकाओं के यात्री की शक्तियों का विवेकरहित प्रदर्शन करना गम्भीर ख़तरों से भरा होता है, लेकिन वह व्यक्ति जो चौथी भूमिका की शक्तियों का दुरुपयोग करता है वह अनिवार्यरूप से विकास के सबसे निचले पहलू में, अर्थात् पत्थर अवस्था में, जा गिरता है ।

कबीर ने इन ख़तरों को निम्नलिखित शब्दों में प्रगट किया है :

साहिब का घर दूर है जैसे लम्ब खजूर
चड़े सो चाखे प्रेम रम गिरे सो चकनाचूर ।

"प्रभु का निवास, सबसे ऊँचे खजूर के शिखर के समान, ऊँचा है । यदि वह इसके ऊपर चढ़ता है, तो वह प्रेम का अमृत चखता है; और यदि वह गिरता है तो उसकी गर्दन टूट जाती है ।"

चमत्कारों का चैतन्य और अचैतन्यरूप से घटित होना

उद्धारकों और सद्गुरुओं द्वारा किये गये चमत्कारों के पीछे एक ईश्वरीय उद्देश्य होता है और वह या तो स्वेच्छिक अथवा अस्वेच्छिक हो सकता है । उद्धारक अथवा सद्गुरु के किये गये स्वेच्छिक चमत्कार वे हैं जो वह जानबूझ कर अपनी **मर्ज़ी** के प्रकाशन और शक्ति के द्वारा करता है, और अस्वेच्छिक चमत्कार वे हैं जो उद्धारक अथवा सद्गुरु की मर्ज़ी से स्वतन्त्र होते हैं और वे निरन्तर क्रियाशील शक्ति से, जो इन महान प्राणियों को घेरे रहती है, क्रियान्वित होते हैं । बाद वाले प्रकार

(२४८)

‡ चौथी भूमिका पर स्थित साधक महायोगी कहलाता है ।

4th plane. Such a snatching away of powers of those on the lower planes is known to the Sufis as salb-e-wilayat.

On the fourth plane are stored all the almighty powers* which, if misused by the pilgrim, result in his utter ruin. But such miracles do not affect the world adversely, because the Qutub-e-Irshad—the head of the spiritual hierarchy of the age—takes care to make these actions ineffective.

Meher Baba further explains that the indiscriminate display of powers by a pilgrim of the first three planes is fraught with serious dangers, but that one who misuses the powers of the fourth plane invariably falls back to the lowest phase of evolution—the stone state.

Sāhiba kā ghara dūra hai jaise lamba khajūra
Caṛhe so cākhe prema-rasa gire so cakanācūr.

Kabir has referred to these dangers when he says:

Sāheba kā ghara dūra hai jaisī lambī khajūra
Caṛhe so cākhe prema-rasa gire cakanācūr.

"The Lord 's house is high, like the top of the tallest date palm. If he climbs it, he tastes the nectar of love; if he falls, he breaks his neck."

CONSCIOUS AND UNCONSCIOUS OCCURRENCE OF MIRACLES

The miracles wrought by Saviours and Perfect Masters have a divine motive behind them and may be either voluntary or involuntary. The voluntary miracles of a Saviour or Perfect Master are those that he deliberately performs by the expression and force of his will, and the involuntary ones are those that occur independently of the will of the Saviour or Perfect Master and are wrought by means of the ever active

* One on the fourth plane is known as a mahayogi (a great yogi).

के चमत्कारों में उद्धारक अथवा सद्गुरु को चमत्कार की घटनाओं का भान नहीं रहता जिसका वह खुद मूल स्त्रोत और मुख्य कारण होता है । इन पूर्ण पुरुषों के स्वेच्छिक और अस्वेच्छक दोनों चमत्कार फिर भी सदैव दुनियाँ की आध्यात्मिक जागृति की ओर सदा निर्देशित किये जाते हैं ।

उद्धारक और पूर्ण-पुरुष चमत्कार क्यों करते हैं ?

बहुत से दुनियाबी पुरुष आध्यात्मिक रूप से विषम होते हैं, और उनको कभी-कभी खुद अपनेआप को बचाने के लिये अथवा अन्य बिल्कुल भोले पुरुषों को इस जड़ता के फल से बचाने के लिये, चमत्कारों की आवश्यकता होती है । निम्नलिखित समानता प्रदर्शित करती है कि इसका क्या अर्थ है ।

हम कल्पना करें कि एक बच्चा एक गौरय्या चिड़िया को अपने हाथ में इतनी लापरवाही से लिये है कि वह उसका गला घोंटने ही वाला है । चिड़िया के जीवन की रक्षा करने के लिये बच्चे के हाथ से चिड़िया को छीनने का प्रयत्न करना अनुचित होगा, क्योंकि शायद बच्चा गौरय्या को जकड़े हुये अपने फन्दे को और भी कड़ा कर देवे और इस प्रकार उसका मार डाले । किन्तु यदि उस बच्चे को एक सिक्का देने के लिये कह दिया जाय, तो वह निश्चितरूप से गौरय्या को पकड़े हुये अपने फन्दे को ढीला करके उसे मुक्त कर देगा । इस प्रकार वह बच्चा अपनी करनी के निपट अज्ञान से चिड़िया का वध करने से रुक जाता है । सद्गुरु के चमत्कार इसी प्रकार की चीज़ करते हैं; वे लोगों को, आध्यात्मिक मुल्यों के निपट अजान से, अपने खुद और दूसरे लोगों को हानि पहुँचाने से रोक लेते हैं ।

यदि चम्त्कारों का प्रतिनिधित्व स्वर्ण से किया जाता है, तो एक निचली भूमिकाओं का योगी दुनियाबी लोगों को उनकी आँखों के सामने इस स्वर्ण को हिलाकर चकित करता है जिससे वे उस योगी की शक्तियों से आश्चर्यचकित हो जाते हैं । यदि वे अपना आत्मसमर्पण ऐसे योगी के प्रति करते हैं तो वे अन्ततः क्रूर भ्रमजाल का त्रास भोगेंगे । लेकिन जब **उद्धारक** अथवा **पूर्ण-पुरुष** दुनियाबी लोगों की आँखों के सामने इस स्वर्ण को हिलाता है तो वह **माया** के एक रूप का प्रयोग उनको **माया** के दूसरे और भी अधिक बन्धन में डालने वाले रूपों से

force that surrounds these great beings. In the latter type of miracle the Saviour or Perfect Master is unaware of the incidents of the miracle of which he himself is the source and prime cause. Both voluntary and involuntary miracles of these Perfect Ones are nevertheless always directed towards the spiritual awakening of the world.

WHY DO SAVIOURS AND PERFECT MASTERS PERFORM MIRACLES?

Very worldly people are spiritually obtuse, and they sometimes need miracles to save themselves or other quite innocent people from the results of this insensitivity. The following analogy shows what is meant thereby.

Let us suppose that a child is holding a sparrow in his hand and in so careless a way that he is on the point of strangling it. In order to save the sparrow's life it would be inadvisable to try to snatch the bird from the child's hand, for the child would probably tighten his grip on the sparrow and so kill it. But if the child is offered a coin, he will almost certainly relax his hold on the sparrow and so release it. The child is thus prevented from killing the bird out of sheer ignorance of what he is doing. The miracles of a Perfect Master accomplish the same sort of thing; they prevent people f rom doing themselves and others harm out of sheer ignorance of spiritual values.

If gold is defined to represent miracles, a yogi of the lower planes dazzles worldly people by dangling this gold in front of their eyes so that they are astounded by his prowess. Should they surrender themselves to such a yogi they will ultimately suffer a cruel disillusionment. But when the Saviour or a Perfect Master dangles this gold in front of the eyes of worldly people, he uses one form of Maya to drag them away from other

अलग घसीट लेने में करता, और इस प्रकार उसको पथ की ओर खींचता है जो उसको उनके सच्चे प्रारब्ध, आत्म-साक्षात्कार, की ओर ले जाता है ।

आइये हम दूसरा दृष्टान्त लेवें और एक रंगीन दृष्टि वाले आदमी की कल्पना करें जिसको दुनियाँ उदाहरण के रूप में नीली दिखायी पड़ती है । इस प्रकार उसकी आँखें नीले चश्मा की तरह कार्य करती हैं जिससे उनके द्वारा देखने पर उसे प्रत्येक चीज़ नीली दिखाई पड़ती है । आध्यात्मिक अर्थ में दुनियाँ **माया** है अतः उसमें बिल्कुल कोई रङ्ग नहीं है । वह रङ्ग विहीन है । अपनी चमत्कारी शक्तियों का प्रदर्शन करता हुआ योगी केवल इस आदमी के 'नीले चश्मों' को हटाकर उसकी जगह हरे अथवा लाल चश्मे लगा देता है, जिससे उस व्यक्ति को हर चीज़ हरी अथवा लाल दिखाई पड़ती है । उसको अज्ञानता से भरी आँखों में, जो दुनियाँ को नीला देखने को आदी हो गई हैं, उनका हरे अथवा लाल रङ्ग में यह अचानक परिवर्तन हो जाना, आश्चर्यजनक होता है, और योगी के ऊपर महान प्रत्यक्ष श्रेय प्रतिबिम्बित करता है ।

सद्गुरु, यह जानते हुये कि न तो नीला, न लाल, न हरा सच्चा रंग है, किन्तु वह यह जानता है कि सबकुछ रंगविहीन (शून्य) है, अतः वह "चश्मे के शीशों" को बदलने में और उसके द्वारा मनुष्य को दुनियाँ का वास्तविक रूप (रङ्ग-रहित, अथवा शून्य) देखने के योग्य बनाने में समय नहीं खोता । वे योगी और वे निचले गुरु जो पूर्ण नहीं हैं, केवल एक माया के स्थान में दूसरी माया खड़ी कर देते हैं । किन्तु एक सद्गुरु समस्त माया के पर्दे को सदैव के लिये फाड़ फेंकता है और इस सत्य को प्रकट करता है कि सृष्टि काल्पनिक है और एकमेव ईश्वर सत्य है । सद्गुरु की यह क्रिया एक धीमी और कष्टदायी प्रक्रिया है जिसमें योगी के व्यापक और ग़लत रास्ते पर ले जाने वाली रीति एवम् रङ्ग-विहीनता का अभाव होता है, और इसी कारण से सद्गुरुओं की क्रिया अगाध होती है ।

किस व्योक्त में ऐसी शक्तियाँ होती हैं जिनके द्वारा चमत्कार किये जाने हैं ?

सद्गुरु की चमत्कारी शक्तियाँ वैसी दिखाई पड़ती हैं जैसी चौथी भूमिका के योगी की शक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं, किन्तु इसमें यह महत्वपूर्ण

and more binding forms of Maya, and so draws them towards the Path that leads to their true destiny, Self-realization.

Let us take another illustration and imagine a man with monochromatic vision to whom the world appears blue for example. His eyes thus act like blue spectacles so that when he looks through them everything seems to be blue. Spiritually speaking the world is illusion and so has no colour at all. It is colourless. A yogi demonstrating his miraculous powers merely replaces this man's blue "spectacles" by green or red ones so that he sees everything as green or red. To his ignorant eyes, accustomed to seeing the world blue, this sudden change to green or red is astounding, and reflects great apparent credit on the yogi.

A Perfect Master, knowing that neither blue nor red nor green is the true colour, but that everything is colourless (i.e., nothing), wastes no time in changing "spectacles," thereby enabling the man to see the world as it really is: colourless, or nothing. The yogi and those lesser masters who are not perfect merely replace one illusion by another. But a Perfect Master permanently tears away the veil of all illusion and reveals the truth that Creation is imaginary and that God alone is real. This working of the Perfect Master is a slow and painful process that lacks the colourfulness of the yogi's spectacular and misleading method, and it is for this reason that the working of the Perfect Masters is unfathomable.

WHO OWNS THE POWERS BY WHICH MIRACLES ARE WROUGHT?

The miraculous powers of a Perfect Master appear the same as those of a yogi of the fourth plane, but there is this important difference, that the

अन्तर है कि सद्गुरु की शक्तियाँ ख़ुद उसकी होती हैं, क्योंकि वह ख़ुद मूर्तमान शक्ति है । उसको केवल किसी चीज़ की मर्ज़ी करनी पड़ती है और वह पूरी हो जाती है । "हो जओ और वह हो गया" (**कुन फ़या कुन**) कथन सूफ़ियों के अनुसार शक्ति की ईश्वरीय अभिव्यक्ति का उल्लेख करता है ।

जो भी हो, योगी की शक्तियाँ उसकी निजी शक्तियाँ नहीं होतीं और उनको चमत्कार करने के लिये बाहरी स्त्रोतों पर निर्भर होना पड़ता है । सद्गुरु की सहज शक्तियाँ निरन्तर उमड़ती रहती हैं, और योगी तथा निचली भूमिकाओं के पथिक इन उमड़ती हुई शक्तियों को उधार लेते हैं और उनके द्वारा चमत्कार करते हैं । यह सूफ़ी मत के बिल्कुल अनुरूप है कि **वली** नबी मुहम्मद के साक्षी हैं, और उनके सब चमत्कार, शहद के छते से टपकती हुई बूँदों के समान, उससे प्राप्त होते हैं । धर्मान्ध मुसलमानों के मत से, इस विश्वास का विस्तार सीमित होता है, क्योंकि इसका सम्बन्ध केवल नबी मुहम्मद के व्यक्तित्व से जोड़ा जाता है । उसकी व्यापक सम्बद्धता का सुझाव तुरन्त सूफ़ी मत से किया जाता है कि अनादि काल से केवल **एक रसूल** रहा है जो समय-समय पर विभिन्न देशों में विभिन्न नाम धारण करके पैदा होता है ।

इस तथ्य को और आगे रपष्ट करते हुये मेहेरबाबा ने समझाया है, "**फ़ना-फ़िल्लाह**" (**मजज़ूब** अवस्था) में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई चमत्कार नहीं होते । दैवी सन्धि (**तुर्यावस्था** अथवा **मुक़ाम-ए-फ़ुरूतत**) में **जीवन-मुक्त** (**आ. जाद-ए-मुतलक़**) को कोई ड्यूटी नहीं होती और वह कोई चमत्कार नहीं करता । लेकिन **जीवन-मुक्त** द्वारा (उसे इसका भान हुये बग़ैर) चमत्कार होने की सदैव सम्भावना होती है । निचली भूमिकाओं के एजेन्ट अथवा तीर्थयात्री बहुधा उसकी शक्तियों को उधार ले लेते हैं और उन शक्तियाँ द्वारा चमत्कार करते हैं, लेकिन जीवन-मुक्त की शक्तियाँ ऐसा होने से किसी भी प्रकार से कम नहीं होतीं ।"

रक्षक (रसूल अथवा अवतार) के और पूर्ण-पुरुषों (सद्गुरुओं) के चमत्कार

जब परमात्मा मनुष्य बन जाता है, तब वह रक्षक (**रसूल** अथवा **अवतार** हो जाता है और जब मनुष्य परमात्मा बन जाता है, तो वह एक मज. जूब बन जाता है, और, यदि उसको मानवता के प्रति ड्यूटी

powers of a Perfect Master are his own, because he is Power itself. He has simply to will a thing and it is done. "Be and it was" (*Kun faya kun*) refers, according to the Sufis, to the divine manifestation of power.

The yogis' powers, however, are not their own and they have to depend on extraneous sources of power for working miracles. The inherent powers of Perfect Masters are continually overflowing, and yogis and pilgrims of the lower planes borrow these overflowing powers and work miracles with them.This is quite in consonance with the Sufi belief that walis are the Prophet Muhammad's witnesses, and that all their miracles, like drops oozing from a skin filled with honey, are derived from him. Endorsed by orthodox Muslims, this belief is limited in scope however, because it is applied only to the personality of the Prophet Muhammad. Its universal applicability is at once suggested though by the Sufi belief that from the beginning there has been only one Rasool who appears from time to time in different countries under different names.

Illuminating this point still further, Meher Baba has explained, "In fana-fillah (the Majzoob state) there are no miracles, direct or indirect. In Divine Junction (turiya avastha or muqam-e-furutat) the Jivanmukta (Azad-e-Mutlaq) has no duty and performs no miracles. But there is always a possibility of miracles happening through the Jivanmukta without his being aware of it. The agents or pilgrims of the lower planes very often borrow his powers and work miracles with them, but the powers of the Jivanmukta are not in any way lessened thereby."

MIRACLES OF THE SAVIOUR (*Rasool* OR *Avatar*) AND PERFECT MASTERS (*Sadgurus*)

When God becomes man, He becomes a Saviour (Rasool or Avatar) and when man becomes God, he becomes a Majzoob, and, if he has duty to perform to humanity, he traverses the second and third divine journeys

करने का कर्तव्य होता है, तो वह दूसरी और तीसरी ईश्वरीय यात्राओं को पार करता है और पूर्ण-पुरुष (सद्गुरु) बन जाता है । रक्षक और पूर्ण-पुरुष दोनों अध्यात्म में पूर्ण होते हैं, क्योंकि दोनों का ऐक्य परमात्मा से होता है, और दोनों को मानवता के प्रति एक ड्यूटी मिलती है, लेकिन रक्षक की ड्यूटी एक विशेष प्रकार की होती है ।

सूफ़ी लोग कहते हैं कि ईश्वर के साथ "सम्बन्ध" (**कुरबत**) रक्षक में और पूर्ण-पुरुष में भिन्न होता है, और वे उनको क्रमशः कुरबे-**फ़राइज़** (अनैच्छिक आवश्यक निकटता) और कुरबे-नवाफ़िल (स्वेच्छक निकटता) कहते हैं । इस प्रकार **कुरबे-फ़राइज़** रक्षकों से सम्बन्ध रखता है और कुरबे-**नवाफ़िल** पूर्ण-पुरुषों से सम्बन्ध रखता है ।

सूफ़ी लोग समझाते हैं कि **रसूल** (**अवतार**) चमत्कार करने की क्रिया में, अभिनेता होता है और मनुष्य पात्र होता है; जबकि सद्गुरु में इसका उल्टा होता है—अर्थात्, मनुष्य अभिनेता होता है और परमात्मा पात्र होता है । मुहम्मद नबी के द्वारा की गई प्रसिद्ध घटना, जो उन्होंने बद्र की लड़ाई में दुश्मन के ऊपर एक मुट्ठी धूल फेंककर और उसके द्वारा उसको मार भगाकर की थी, रक्षक का चमत्कार करने का एक उदाहरण है । यद्यपि सब प्रकार से मनुष्यरूप मुहम्मद ही थे जिन्होंने धूल फेंकी थी, वास्तव में मुहम्मद के रूप में ईश्वर था जिसने धूल फेंकी थी, और मनुष्यरूप में मुहम्मद थे जिन्होंने दुश्मन को मार भगाया था । इसलिये ऐसा चमत्कार जैसा यह है कुरबे-**फ़राइज़** का एक उदाहरण है ।

जो भी हो, सद्गुरुओं द्वारा किये गये चमत्कार कुरबे-**नवाफ़िल** के उदाहरण हैं जिसका शम्स-ए-तबरिज़ का चमत्कार—जो उन्होंने मुर्दा को ज़िन्दा कर देने में किया था—एक अच्छा उदाहरण है । जब शम्स ने "**क़ुम बे इज़निल्लाह**" (ईश्वर के नाम पर खड़े हो जाओ) शब्दों का उच्चारण किया तो राजकुमार ज़िन्दा न हुआ; लेकिन जब उसने "**क़ुम बी इज़नी**" (मेरे नाम से उठ खड़े होओ) कहा तो राजकुमार फ़ोरन ज़िन्दा हो गया । यहाँ शम्स-ए-तबरिज़ ने मनुष्यरूप में आज्ञा दी थी, और शम्स-ए-तबरिज़ के रूप में परमात्मा ने ख़ुद के गुण के रूप से अपनेआपको ढक लिया—इस उदाहरण में जीवन के गुण से ढक लिया—और इसलिये राजकुमार को पुनः जीवित कर दिया । इन कुरबे-नवाफ़िल में मनुष्य अभिनेता होता है और परमात्मा साधन है ।

and becomes a Perfect Master (Sadguru). Both the Saviour and the Perfect Master are spiritually perfect, because both are one with God, and although both have a duty towards humanity, that of the Saviour is of a special kind.

The Sufis say that the "relationship" (qurbat) with God differs in the Saviour and the Perfect Master, and they refer to them as qurb-e-farayiz (involuntary necessary nearness) and qurb-e-nawafil (voluntary nearness) respectively. Qurb-e-farayiz thus belongs to the Saviours and qurb-e-nawafil to the Perfect Masters.

The Sufis explain that in the working of miracles by the Rasool (the Avatar), God is the actor and man the instrument; while in a Perfect Master it is the other way round—man is the actor and God the instrument. The famous incident of the Prophet Muhammad throwing a handful of dust at the enemy in the battle of Badr and thereby routing them is an example of a Saviour working a miracle. Although to all appearances it was Muhammad as a man who threw the dust, in reality it was God as Muhammad who threw the dust, and Muhammad as a man who routed the enemy. A miracle such as this is therefore an illustration of qurb-e-farayiz.

The miracles performed by Perfect Masters are, however, illustrations of qurb-e-nawafil, of which the miracle of Shamsi Tabriz—that of raising the dead to life—is a good example. When Shams uttered the words "Qum bi ixnillah " (arise in the name of God) the prince did not come to life; but when he said "Qum bi ixni" (arise in my name) the prince at once came to life. Here Shamsi Tabriz as man gave the order, and God as Shamsi Tabriz clothed himself with the attribute of Himself—in this case with the attribute of life—and so restored the prince to life. In qurb-e-nawafil man is the actor and God the instrument.

आइये, हम एक क्षण के लिये चमत्कारों की दिशा में पूर्व और पश्चिम की प्रवृत्ति के अन्तर पर विचार विनिमय करें । पूर्वी जगत ने जिसमें सद्गुरुओं और उन्नत आत्माओं से सुपरिचय होने का एक लम्बा लेखा है, स्वीकार कर लिया है कि परमात्मा सीमित मन के द्वारा नहीं समझा जा सकता, क्योंकि वह अनन्त है । पूर्वी जगत को ज्ञान है कि मनुष्य की बुद्धि, जिसका विस्तार सीमित है, आध्यात्मिक समस्याओं को केवल ख़ास स्थिति तक पहुँचाने में प्रयुक्त होती है । दार्शनिक डाक्टर इक़बाल ने गाया है,

अक़्ल गो आस्तां से दूर नहीं
उसकी तक़दीर में हुज़ूर नहीं ।

"विवेक को, यद्यपि वह (प्रियतम की) देहली से दूर नहीं होता, ईश्वरीय उपस्थिति का आनन्द लेने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता ।"

इस प्रकार पूर्वी जगत को ज्ञान है कि उस बिन्दु पर, जहाँ विवेक अपने प्रयास उस चीज़ को पकड़ने में बन्द कर देता है जो अतिश्रेष्ठ है, प्रेम की कड़ी अवश्य जुड़ जानी चाहिये । पश्चिमी जगत बौद्धिक प्रयास के द्वारा भारी खज़ाना सञ्चित करता है, और वह जो बुद्धि की परिधि के अन्दर आने से इनकार करता है, वह या तो इनकार किया जा सकता है अथवा तिरस्कृत किया जा सकता है । इस पाश्चात्य प्रवृत्ति की उप-उपज के रूप में हम प्रचलित अमरीकी मुहावरे में "रहस्यवादी" शब्द के निपट दुरुपयोग का प्रमाण दे सकते हैं । मेडीवल योरोप के जोशीले धार्मिक उत्साह का स्थान प्रायः संस्कृति और विज्ञान के लिये महान उत्साह ने ले लिया है ।

तथापि, विज्ञान के मत कुछ हद तक तरल होते हैं, और सच्चा वैज्ञानिक तथ्योंको सामने देखता है, लेकिन मेहेरबाबा ने बहुधा घोषित किया है कि विज्ञान अपनी महान प्रगति करने पर भी भौतिक चीज़ों के अञ्चल से अब भी बहुत दूर है, और आध्यात्मिक चीज़ों के सबसे बाहरी किनारे से और भी अधिक दूर है । हृदय को मन से सहयोग करना ज़रूरी है ।

ऐसा हो सकता है कि योगियों की कुछ विशुद्धरूप से भौतिक करामातें, जिन्हें तमाम लोग चमत्कार मानते हैं, भैषज विज्ञान के द्वारा समझाई जा सकती हैं । लेकिन असली चमत्कार, ख़ास कर सद्गुरु के

Let us for a moment discuss the difference in the attitude of East and West towards miracles. The East, which possesses a long record of familiarity with Perfect Masters and advanced souls, has come to accept that God, because He is infinite, cannot be comprehended by the finite mind. The East knows that human intellect, which is limited in scope, has its use only up to a certain stage in tackling meta-physical problems. As sung by the philosopher Dr. Iqbal,

'Aql go āstāñ se dūr nahīñ
Ūskī taqdīr maīñ ḥuzūr nahīñ

'Aql go āstāñ se dūr nahīñ
Uskī taqdīr meñ huzūr nahīñ

"Intellect, though not far away from the threshold (of the Beloved) is not destined to enjoy the Divine Presence."

The East thus knows that at the point where intellect gives up its efforts in grappling with that which is transcendental, love must take up the link. The West sets great store by the intellectual approach, and that which refuses to come within the orbit of intellect is apt to be either denied or scoffed at. As a by-product of this occidental attitude we may cite the utter misuse of the word "mystic" in current American idiom. The ardent religious enthusiasm of medieval Europe has been almost replaced by great enthusiasm for culture and science.

The doctrines of science are, however, fluid to a certain extent, and the genuine scientist does look facts in the face, but Meher Baba has often declared that in spite of its great progress science is yet far from the core of material things, and further from the outermost fringe of spiritual things. The heart must cooperate with the head.

It may be that some of the purely physical feats of yogis, which pass for miracles with the multitude, can be explained away by medical science. But real miracles, particularly the miracles of Perfect Masters, do

चमत्कार, वैज्ञानिक स्पष्टीकरण को स्थान नहीं देते । रक्षकों, सद्गुटओं और सन्तों के किये हुये अनेक चमत्कार आध्यात्मिक गाथाओं में और सब लोगों तथा सब धर्मों की श्रेणियों में अङ्कित हैं, और निरन्तर कार्य करता हुआ आध्यात्मिक देवदूत-मण्डल रोज़ इन चमत्कारों में बढ़ती कर रहा है । इसके तथ्य यहाँ दिये हैं; ईसामसीह तथा अन्य पूर्ण-पुरुषों ने मुर्दों को ज़िन्दा किया है, और रोगियों को चङ्गा किया है । लेकिन यदि कोई खुद अपनी आँखों के सामने चमत्कार होता हुआ देखता है, और यदि उसे विश्वास होता है कि वह एक चमत्कार था और चालबाजी न थी, तो कोई कभी उसकी तार्किक व्याख्या करने में सफल नहीं हो सकता, क्योंकि चमत्कार पूर्णतया बौद्धिक व्याख्या के परे हैं । वे एक रहस्य हैं जो इतने गहरे और गम्भीर होते हैं जैसे जीवन खुद होता है ।

तथापि, कदाचित् त्रुटि पूर्णतया अकारण नहीं होती, क्योंकि आम दुनियाँ को सद्गुरुओं की क्रियाओं में बिरले ही अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है, और वास्तव में, इन क्रियाओं में से अधिकान्श क्रियायें कुछ अन्तरङ्ग साथियों के वक्षस्थलों के सुरक्षित भण्डार में भरी रहती हैं, और कौतुक से सुरक्षापूर्वक छिपी रहती हैं । प्रसिद्ध सूफ़ी अब्दुल हसन खरक़ानी ने कहा है, "यदि उसकी कुछ बूँदें जो सद्गुरु के अन्तर में छिपी हैं, उसके होठों के बीच आ जायँ, तो आकाश और पृथ्वी के सब प्राणी आतङ्क में डूब जायोंगे ।"

चमत्कारों की व्यापक अपील और आध्यात्मिक गुरुओं के दावों के बावजूद, पूर्व भी पश्चिम के समान, उनके प्रति अपनी प्रवृत्ति में बहुत सावधान है । कुछ भी हो, इसकी प्रशन्सा में ऐसा कहा जा सकता है कि पूर्व ने लम्बे अनुभव के द्वारा सीखा है कि आध्यात्मिक शासक मण्डल के कार्यों की **अवहेलना न की जाय,** चाहे वह उनको स्वीकार करने अथवा उनमें विश्वास करने में अपना रास्ता न देख सकता हो । एक बहुत प्राचीन सूफ़ी ने घोषति किया है, "चमत्कार परमात्मा के मार्ग पर हज़ारों क्रमों में से केवल एक है"; और इस कालचक्र का अवतार, मेहेरबाबा, पुष्टि करता है कि सबसे महान चमत्कार जो सद्गुरु कर सकता है वह यह है कि वह एक अन्य पुरुष को अपने समान अध्यात्म में पूर्ण बना सकता है ।

(२५४)

not admit of scientific explanation. Many of the miracles wrought by Saviours, Perfect Masters and saints are recorded in the spiritual legends and classics of all peoples and all religions, and the ever-functioning spiritual hierarchy is daily adding to these miracles. The facts are there; Jesus and other Perfect Ones have raised the dead to life, and have healed diseases. But even if one were to see a miracle take place before one's very eyes, and even if one were convinced that it was a miracle and not trickery, one would never be able to formulate a rational explanation of it, for miracles are utterly beyond the reach of intellectual explanation. They are a mystery as deep as life itself.

Perhaps, however, the fault is not entirely without reason, for the world at large seldom gets an insight into the workings of Perfect Masters, and, in truth, most of these workings lie treasured in the breasts of a few intimate associates and deserving initiates, and are safely hidden from curiosity. In the words of the famous Sufi Abdul Hasan Kharqani, "If a few drops of that which is under the skin of a Perfect Master should come forth between his lips, all the creatures of heaven and earth would fall into panic."

In spite of the mass appeal of miracles and of the claims of spiritual masters, the East, like the West, is also very circumspect in its attitude towards them. It may be said to its credit, however, that the East has learned by long experience not to **deny** the actions of the spiritual hierarchy, even if it cannot see its way to accept or believe in them. One of the earliest Sufis has declared, "Miracles are only one of the thousand stages on the way to God"; and the Avatar of this cycle, Meher Baba, affirms that the greatest miracle a Perfect Master can perform is to make another man spiritually perfect like himself.

१२. शक्तियों के प्रकार (७८)

अध्यात्मता (*spirituality*) और आध्यात्मिकता (*spiritualism*) दो विभिन्न चीज़ें हैं । अध्यात्मता का कोई वास्ता किसी भी रूप में किसी भी शक्ति से नहीं होता । अध्यात्मता ईश्वर के प्रति प्रेम का तथा सद्गुरु के प्रति आज्ञाकारिता एवम् आत्मसमर्पण का पथ है ।

जब साधक पथ पर चलता है, तो उसको चेतना की भूमिकाओं पर शक्तियाँ मिलती हैं । जो साधक पहली से चौथी भूमिका तक स्थित होते हैं वे कभी-कभी इन शक्तियों का प्रदर्शन करने के लिये प्रलोभित होते हैं ।

तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं :

(१) चौथी भूमिका की ईश्वरीय शक्तियाँ ।

(२) चेतना की प्रथम तीन भूमिकाओं की गूढ़ शक्तियाँ । ये गूढ़ शक्तियाँ कहलाती हैं ।

(३) अन्य गूढ़ शक्तियाँ ।

(१) चौथी भूमिका की दिव्य शक्तियाँ परमात्मा की सर्वशक्तिमान शक्तियाँ हैं । वे सब शक्तियों की स्त्रोत हैं, चाहे वे रहस्यमयी अथवा अन्य गूढ़ शक्तियाँ हों ।

रहस्यमयी और अन्य गूढ़ शक्तियाँ दिव्य शक्तियों की तुलना में अनन्तरूप से महत्वहीन होती हैं ।

दिव्य शक्तियाँ सदैव वही बनी रहती हैं क्योंकि परमात्मा सदैव एक और वही है । गूढ़ शक्तियाँ, चाहे वे भूमिकाओं की हों या न हों, भिन्न प्रकार की होती हैं और अभिव्यक्ति में विविध होती हैं ।

अवतार और **क़ुतुब** दिव्य शक्तियाँ की अभिव्यक्ति के द्वारा जो चमत्कार करते हैं वे **मोजेज़त** कहलाते हैं । ये चमत्कार सबके हित के लिये किये जाते हैं—और **क़ुतुब** द्वारा सीम्ति पैमाने पर तथा **अवतार** द्वारा विश्वव्यापी पैमाने पर किये जाते हैं । तथापि, वे किसी बी व्यक्ति के लिये किये जा सकते हैं जो **अवतार** अथवा **क़ुतुब** के घनिष्ठ सम्पर्क में होता है ।

जो चमत्कार पाँचवीं और छठवीं भूमिकाओं पर स्थित व्यक्तियों के द्वारा दैवी शक्तियों की सहायता से परक्षिरूप से किये जाते हैं वे करामात कहलाते हैं ।

12 Kinds of Powers (67)

Spirituality and spiritualism are two different things. Spiritual-ity has nothing to do with any kind of power in any form. Spirituality is the path of love for God and obedience and surrender to the Perfect Master.

As one travels the Path, one comes across powers on the planes of consciousness. Those on the planes from first to fourth are some-times tempted to demonstrate these powers.

There are three kinds of powers:

(1) The divine powers of the fourth plane.

(2) The occult powers of the first three planes of consciousness. These are called the mystic powers.

(3) Other occult powers.

(1) The divine powers of the fourth plane are the almighty powers of God. They are the source of all powers, whether mystic or other occult powers.

The mystic and other occult powers are infinitely insignificant in comparison with the divine powers.

The divine powers remain always the same because God is always One and the same. The occult powers, whether they are of the planes or not, are different in kind and vary in expression.

The miracles performed through the manifestation of the divine powers by the Avatar and the Qutub are called mojezat. These are performed for the good of all—on a limited scale by the Qutub and on a universal scale by the Avatar. However, these can be performed for any individual in close association with the Avatar or the Qutub.

The miracles performed indirectly by those on the fifth and sixth planes with the help of the divine powers are called *karamaat*.

पहली भूमिका से लेकर तीसरी भूमिका पर्यन्त स्थित व्यक्तियों के द्वारा रहस्यमयी शक्तियों का प्रदर्शन वास्तव में चमत्कार नहीं कहा जा सकता । ऐसा प्रदर्शन केवल शक्तियों का एक दिखावा होता है जो उनको भूमिकाओं को पार करने के समय मिलती ह; शक्तियों का ऐसा प्रदर्शन शोबादा (*shobada*) कहलाता है ।

जब चौथी भूमिका पर स्थित व्यक्ति दैवी शक्तियों का सदुपयोग करता है और चमत्कार करता है, तो उस चमत्कार को **करामात-ए-मोजेज़ा** कहा जा सकता है; जब वह उनका दुरुपयोग करता है, अर्थात् चौथी भूमिका की दिव्य शक्तियों का दुरुपयोग करता है, तो उसको **मोजेज़ा-ए-शोबादा** कहा जाता है ।

चौथी भूमिका मनो लोक की "देहली" मानी जाती है, इसलिये चौथी भूमिका पर दिव्य शक्तियों का दुरुपयोग करने के फलस्वरूप मनुष्य का "अध: पतन" होकर पीछे पाषाण-स्थिति तक हो जाता है और उसके फलस्वरूप चेतना खण्ड-खण्ड हो जाती है ।

(२) पहली तीन भूमिकाओं की गूढ़ शक्तियाँ, जो रहस्यमयी शक्तियाँ कहलाती हैं, इन भूमिकाओं पर स्थित जिज्ञासु द्वारा दुरुपयोग में **नहीं लायी जा सकतीं,** यद्यपि कभी-कभी जिज्ञासु उनका प्रदर्शन करने के लिये प्रलोभित होते हैं । ये रहस्यमयी शक्तियाँ भिन्न प्रकार की होती हैं और प्रकाशन में नाना प्रकार की होती हैं, जैसे : दूसरों के मनो का अध्ययन करना; किताब को देखे बग़ैर उसके शब्दों अथवा वाक्यों का उच्चारण करना; घण्टों तक अपने को ज़िन्दा दफ़नाये रखना, इत्यादि ।

भूमिकाओं की शक्तियाँ उभाड़ी नहीं जातीं । ये शक्तियाँ भूमिकाओं पर स्थित जिज्ञासुओं को सदैव, उनके खुद सीमित वातावरण के भीतर उपलभ्य रहती हैं और इस रूप में उनको उनका प्रदर्शन करने के लिये केन्द्रीकृत प्रयास की आवश्यकता नहीं होती । शक्तियों के इस प्रदर्शन को भ्रन्तिवश मन का अध्ययन करने वाले व्यक्तियों के प्रदर्शन और अन्य लोगों के प्रदर्शन, जो वे मञ्च पर पदर्शित करते हैं, न समझना चाहिये ।

चेतना की तीसरी भूमिका पर स्थित व्यक्ति उप-मानवी मृत प्राणियों को ज़िन्दा कर सकता है किन्तु वह मरे हुये मानव प्राणी को कभी ज़िन्दा नहीं कर सकता । ऐसा वह चौथी भूमिका की दैवी शक्तियों की मिकटता एवम् "ऊष्णता" के कारण कर सकता है ।

The display of the mystic powers by those on the first up through the third plane cannot in fact be termed miracles. Such a display is nothing but a show of powers that they come across while traversing the planes; such a display of powers is called shobada.

When the one on the fourth plane makes good use of the divine powers and performs a miracle, it can be termed as *karamat-e-mojeza*; when he makes a bad use of them, i.e., misuses the divine powers of the fourth plane, it is termed *mojeza-e-shobada*.

The fourth plane is regarded as the "threshold" of the mental sphere, and so the misuse of the divine powers on the fourth plane results in a "fall" as far back as the stone state and results in disintegration of consciousness.

(2) The occult powers of the first three planes, called the mystic powers, **cannot** be misused by the aspirant on these planes, though they sometimes are tempted to display them. These mystic powers are diff e rent and vary in expression, such as: reading the minds of others; reciting words or passages from a book without seeing it; allowing themselves to be buried alive for hours together, etc.

The powers of the planes are not induced. These powers are ever accessible to those on the planes, within their own limited environment, and as such need no concentrated effort to display them. This display of powers should not be confused with the demonstrations of mind readers and of others who put on stage performances.

The one on the third plane of consciousness can raise dead subhuman creatures but can never make a dead human being alive. This he can do because of the nearness to and "warmth" of the divine powers of the fourth plane.

किन्तु चौथी भूमिका पर स्थित व्यक्ति चौथी भूमिका की दिव्य शक्तियों का प्रयोग करने के द्वारा मुर्दों को, मानव प्राणियों सहित, ज़िन्दा कर सकता है ।

तीसरी भूमिका पर स्थित व्यक्ति इच्छानुसार अपने भौतिक शरीर को बदल सकता है, और ऐसा करने वाला व्यक्ति **अबदल** कहलाता है । यह कार्य रहस्यमयी शक्तियों का एक प्रदर्शन भी है, किन्तु शक्तियों का दुरुपयोग नहीं है । जो भी हो, इस क्रिया को भ्रान्तिवश तान्त्रिकों के द्वारा किया मनुष्यरूपों का अभौतिक-करण (*dematerialization*) अथवा भौतिककरण न समझना चाहिये ।

(३) अन्य गूढ़ शक्तियों का कोई वास्ता अध्यात्मता से अथवा भूमिकाओं की गूढ़ शक्तियों से नहीं है ।

ये गूढ़ शक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं :

(अ) श्रेष्ठ गूढ़ शक्तियाँ ।

(ब) हीन गूढ़ शक्तियाँ ।

जिस व्यक्ति को ये गूढ़ शक्तियाँ प्राप्त होती हैं वह उनका भला या बुरा प्रयोग कर सकता है । गूढ़ शक्तियों का अच्छा प्रयोग जिज्ञासु को पथ की भूमिकाओं पर ख़ुद को रखने में सहायक होता है और वह व्यक्ति को महायोगी भी बना सकता है । इन गूढ़ शक्तियों का दुरुपयोग करने से उस व्यक्ति को अगले मनुष्यरूप में घोर त्रास भोगना पड़ता है । श्रेष्ठ गूढ़ शक्तियों का अच्छा प्रयोग व्यक्ति को चार पुनर्जन्मों के बाद चेतना की पाँचवीं भूमिका में पहुँचा देता है ।

(अ) श्रेष्ठ प्रकार की गूढ़ शक्तियाँ तान्त्रिक अभ्यासों से प्राप्त होती हैं जैसे चिल्ला-नशीनी अथवा ख़ास मन्त्रों का जप, इत्यादि ।

जिस व्यक्ति को ये शक्तियाँ प्राप्त होती हैं वह तथा-कथित चमत्कार कर सकता है जैसे हवा में तैरना, उड़ना, उतराना, अभौतिककरण और भौतिककरण, इत्यादि ।

(ब) नीचे प्रकारों की गूढ़ शक्तियों के लिये कोई तान्त्रिक अथवा कोई विशेष अभ्यासों की आवश्यकता नहीं होती । वे पिछले जीवनों के **संस्कारों** के द्वारा प्राप्त होती हैं । उदाहरण के लिये : यदि किसी व्योक्त ने भूतकाल में विशेष अच्छे कर्म अनेक बार किये हैं, तो उसको अगले जन्म में, कोई कठोर साधनाओं के लिये बग़ैर, गूढ़ शक्तियों

But one on the fourth plane can raise the dead including human beings by the use of the divine powers of the fourth plane.

The one on the third plane can change his physical form at will, and one who does this is known as abdal. This act is also a display of the mystic powers, but not the misuse of powers. However, this act should not be confused with the dematerialization or materialization of the human forms by the tantriks.

(3) Other occult powers have nothing to do with spirituality or with the mystic powers of the planes.

These occult powers are of two types:

(a) Superior occult powers.
(b) Inferior occult powers.

The one who has these occult powers can make good or bad use of the same. Good use of occult powers helps one to put himself on the planes of the Path and may even make one a mahayogi. Bad use of these occult powers makes one suffer intensely in the next human form. Good use of superior occult powers puts one on the fifth plane of consciousness after four lives (reincarnations).

(a) Superior types of occult powers are derived from *tantrik* exercises such as *chilla-nashini* or repetition of certain *mantras,* etc.

The one who holds these powers can perform the so-called miracles such as levitation, flying and floating in the air, dematerialization and materialization, etc.

(b) Inferior types of occult powers need no tantrik or any special exercises. They are had through sanskaras of past lives. For example: if someone has done certain good deeds many times in the past, his next incarnation may give him the faculty of inferior occult powers without

की क्षमता प्राप्त हो सकती है । उसके संस्कार उसको नीची गूढ़ शक्तियों की क्षमता प्रदान करते हैं जैसे दूरदर्शिता, दूर से सुनने की क्षमता, चङ्गा करना, मिठाइयाँ अथवा रुपया-पैसा, दिखाव में शून्य से माँग देना, इत्यादि ।

ऐसी समस्त क्षमतायें नीची अथवा हीन प्रकार की गूढ़ शक्तियों की अङ्ग होती हैं ।

यदि कोई मनुष्य नीची प्रकार की गूढ़ शक्तियों का सदुपयोग करता है, तो उसको अपने अगले जीवन में, कोई भी तान्त्रिक अभ्यास किये बग़ैर, श्रेष्ठ प्रकार की गूढ़ शक्तियाँ प्राप्त होती हैं । इसी प्रकार, जो मनुष्य अपनी वशीकरण विद्या की शक्ति का सदुपयोग करता है वह अपने अगले जीवन में श्रेष्ठ प्रकार की गूढ़ शक्तियाँ प्राप्त करता है ।

१३. ध्यान (७९)

मेहेरबाबा कृत "ईश्वरीय विषय" के अध्ययन पर आधारित प्रारम्भिक जिज्ञासुओं के लिये एक योजना

ध्यान को बहुधा ऐसा ग़लत समझा गया है कि वह मन को किसी विचार अथवा विषय पर ठूँसने की एक यान्त्रिक प्रक्रिया है । इसलिये यह निपट स्वाभाविक है कि अधिकांश लोग मन को किसी ख़ास दिशा में हठात् लगाने अथवा उसको एक ख़ास चीज़ में गड़ा देने के लिये किये आने वाले प्रयत्नों में महान कठिनाई का अनुभव करते हैं । मन का किसी विशुद्ध यान्त्रिक रूप से हाथ में लेना न केवल दुःखदायी है किन्तु अन्ततोगत्वा उसका असफल होना निश्चित है ।

इसलिये जिज्ञासु को जो प्रथम सिद्धान्त याद रखना चाहिये वह यह है कि मन को ध्यान में नियन्त्रित और निदेशित किया जा सकता है, और केवल उन नियमों के अनुसार ऐसा किया जा सकता है जो स्वयं मन के बनाव में सहजरूप से अन्तर्निहित होते हैं, और वह सादी इच्छाशक्ति की किन्हीं करामातों के प्रयोग करने के द्वारा नहीं किया जा सकता ।

अनेक लोग जो "ध्यान" के सिद्धान्त के अनुसार ध्यान नहीं करते वे बहुधा गहरे और घने रूप से, कुछ व्यावहारिक समस्या अथवा सैद्धान्तिक

undergoing any strenuous exercises. His sanskaras give him the faculty of inferior occult powers such as clairvoyance, clairaudience, healing, producing sweets or money seemingly out of nothing, etc.

All such capabilities form part of the lower or inferior type of occult powers.

If one makes good use of the inferior type of occult powers, he derives superior type of occult powers in his next life without undergoing any *tantrik* exercises. Likewise, the one who puts to good use his faculty of hypnotism gains the superior type of occult powers in his next life.

13 Meditation (73)

A SCHEME FOR BEGINNERS BASED ON A STUDY OF THE DIVINE THEME BY MEHER BABA

Meditation has often been misunderstood as being a mechanical process of forcing the mind upon some idea or object. It is therefore only natural that most people should find great difficulty in their attempts to coerce the mind in a particular direction or to pin it down to one particular thing. Any purely mechanical handling of the mind is not only irksome but is ultimately bound to be unsuccessful.

The first principle which the aspirant should therefore remember is that the mind can be controlled and directed in meditation only according to the laws inherent in the makeup of the mind itself, and not by the application of any feats of simple will power.

Many people who do not technically "meditate" are often found to be deeply and intensely engrossed in systematic and clear thinking about

विषय के विषय में नियमपूर्वक और स्पष्ट चिन्तन में मग्न मिलते हैं । एक अर्थ में, उनकी मानसिक क्रिया बहुत कुछ ध्यान के समान होती है, इस सीमा तक कि मन किसी ख़ास विषय के घनिष्ठ चिन्तन में तल्लीन रहता है और सभी असङ्गत चीज़ों से अलग रहता है । वह कारण जिससे ध्यान ऐसी मानसिक प्रक्रिया में बहुधा सरल और सहज एकाग्र होता है, यह है कि मन ऐसे विषय पर चित्त एकाग्र करता है जिसमें वह रुचि रखता है और जो वह बढ़ती हुई गति से समझता है । किन्तु विचारों की सामान्य शृङ्खला के विषय में आध्यात्मिक दुःखद बात यह है कि उनको उन चीज़ों की ओर नहीं मड़ि जाता जिनका वास्तव में महत्व है । इसलिये ध्यान के विषय को सदैव सावधानी से चुनना चाहिये और उसका आध्यात्मिक रूप से महत्वपूर्ण होना चाहिये । ध्यान में सफलता प्राप्त करने के लिये हमें न केवल मन को ईश्वरीय विषयों अथवा वास्तविकताओं के प्रति रुचि रखनेवाला बनाना चाहिये, बल्कि हमको समझने और उनका मर्म जानने का प्रयत्न भी शुरू करना चाहिये । बुद्धिपूर्ण ध्यान मन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जो यान्त्रिक कठोरता और नियमितता से दूर रहती है । इसलिये वह न केवल सहज और स्फूर्तिदायक बन जाती है, वरन् वह सरल और सफल हो जाती है ।

चूँकि बुद्धिपूर्ण ध्यान किसी ख़ास विषय पर चिन्तन करने में होता ह, इसलिये इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ध्यान करने की सबसे अच्छी रीति यह होगी कि हम एक उपयुक्त विषय का एक संक्षिप्त और स्पष्ट उधार करें । इस प्रयोजन के लिये, अपने चार्टों समेत ईश्वरीय विषय की अपेक्षा और कोई चीज़ बेहतर नहीं हो सकती, जो निम्नलिखित भाग में दी गई है ।

मेहेरबाबा ने ध्यान की जिस प्रक्रिया की सलाह दी है, उसके तीन क्रम हैं :

१. पहले क्रम में जिज्ञासु रज़ि **ईश्वरीय विषय** का अध्ययन करेगा, और साथ-साथ चार्ट भी पढ़ेगा, और वह उसके विषय में पूर्णरूप से चिन्तन करेगा जैसा वह करता है ।
२. दूसरे क्रम में जब जिज्ञासु के हृदय में पूरा विश्चास आ जायगा, तो वास्तविक अध्ययन अनावश्यक हो जाता है, किन्तु उधार करने के विषय का पुनः मानसिक निरीक्षण चार्टों की सहायता से आवश्यकतानुसार किया जायगा ।

(२५९)

some practical problem or theoretical subject. In a sense, their mental process is very much like meditation, inasmuch as the mind is engrossed in intense thinking about a particular subject matter to the exclusion of all irrelevant things. The reason meditation is often easy and spontaneous in such a mental process is that the mind is dwelling upon a subject in which it is interested and which it increasingly understands. But the spiritual tragedy about ordinary trains of thought is that they are not directed towards things that really matter. The subject matter of meditation must therefore always be carefully chosen and it must be spiritually important. In order to attain success in meditation we must not only get the mind interested in the divine subjects or truths, but we must also begin by trying to understand and appreciate them. Intelligent meditation is a natural process of the mind, which avoids the monotonous rigidity and regularity of mechanical meditation. It therefore becomes not only spontaneous and inspiring, but easy and successful.

Since intelligent meditation consists in thorough thinking about a particular subject, it follows that the best way to meditate would be to make a brief and clear exposition of an appropriate subject. For this purpose there could be nothing better than the Divine Theme with its charts which is reproduced in the following section.

The process of meditation which Meher Baba recommends has three stages:

1. In the first stage the aspirant will read through the Divine Theme daily, studying the charts also, and thinking about it thoroughly as he does so.
2. In the second stage when the aspirant has the entire subject at his fingertips, actual reading becomes unnecessary, but the subject matter of the exposition will be mentally reviewed with the help of the charts when necessary.

३. तीसरे क्रम में, जिसका विकास स्वाभाविकरूप से दूसरे क्रम से होगा, मन के लिये, उधार के दौरान में, अलग और लगातार अथवा तथ्यों का उल्लेख करने का भी, शब्दों अथवा विचारों का पुनः निरीक्षण करना बिल्कुल अनावश्यक होगा, और विषय सम्बन्धी सब वाद-विवाद पूर्ण चिन्तन समाप्त हो जायगा । ध्यान के इस क्रम में मन विचार की किन्हीं शृङ्खलाओं में आगे तल्लीन न होगा, किन्तु उसको श्रेष्ठ सत्यताओं की, जो उधार में प्रकट होंगीं, स्पष्ट समझ प्राप्त होगी ।

२४.ईश्वरीय विषय (७९)

मेहेरबाबा कृत

विकास, पुनर्जन्म एवं साक्षात्कार तक पहुँचने वाला मार्ग

(चार्टों की भुमिका)

आत्मा विकास, पुनर्जन्म और साक्षात्कार प्राप्त करने की प्रक्रिया से गुज़र जाने के बाद पूर्ण† हो जाती है । पूर्ण चेतना प्राप्त करने के लिये, वह विकास की प्रक्रिया में बढ़ते हुये संस्कार प्राप्त करती है, जब तक मानव योनि में उसको पूर्ण चेतना प्राप्त नहीं हो जाती और साथ-साथ सब स्थूल संस्कार प्राप्त नहीं हो जाते ।

पुनर्जन्म की प्रक्रिया में, यह आत्मा अपनी पूर्ण चेतना बनाये रखती है और खुद अपने अन्तर में विविध संस्कारों की अदला-बदला करती है (अर्थात् बारी-बारी से अनुभव करती है); और साक्षात्कार की प्रक्रिया में यह आत्मा अपनी पूर्ण चेतना बनाये रखता है, लेकिन उसके संस्कार क्षीण और क्षीन होते जाते हैं जब तक वे सब लुप्त नहीं हो जाते हैं और केवल चेतना बनी रहती है । क्षीण होते समय, स्थूल संस्कार सूक्ष्म संस्कार हो जाते हैं, सूक्ष्म संस्कार मने संस्कार बन जाते हैं, और अन्ततः इन सकता लोप हो जाता है ।

मानव योनि तक, संस्कारों के उलझने की प्रक्रिया विकास की प्रक्रिया में मज़बूत और मज़बूत होती चली जाती है । मनुष्य योनि में, पुनर्जन्म की प्रक्रिया में, खुलाब अपनी पूर्ण शक्ति बनाये रखता है; किन्तु

† देखिये चार्ट IX । "ए" (A) आत्मा "ज़ेड" (Z) आत्मा बन जाती है ।

3. In the third stage, which will develop naturally out of the second, it will be quite unnecessary for the mind to review the words or the thoughts in the exposition separately and consecutively or even to refer to the facts, and all discursive thinking about the subject matter will come to an end. At this stage of meditation the mind will no longer be occupied with any trains of thought, but will have a clear understanding of the sublime truths expressed in the exposition.

14 The Divine Theme (68)

By Meher Baba

Evolution, Reincarnation and the Path to Realization

(Introduction to the Charts)

A soul becomes perfect* after passing through evolution, reincarnation and the process of realization. To gain full consciousness, it gets increasing sanskaras in the process of evolution, till in the human form, it gets full consciousness as well as all the gross sanskaras.

In the process of reincarnation, this soul retains its full consciousness and exchanges (i.e., alternatingly experiences) the diverse sanskaras in itself; and in the process of realization, this soul retains its full consciousness, but its sanskaras become fainter and fainter till they all disappear and only consciousness remains. While becoming faint, gross sanskaras become subtle sanskaras, subtle sanskaras become mental sanskaras; and finally they all disappear.

Up to the human form, the winding process of sanskaras becomes stronger and stronger in the process of evolution. In the human form, in the process of reincarnation, the winding retains its full strength; but in the

* See chart IX. "A" soul becomes "Z" soul.

साक्षात्कार की प्रक्रिया में, संस्कार क्रमशः अपनेआपको खोलते हैं, जब तक ईश अवस्था में वे पूर्णरूप से नहीं खुल जाते ।

एकमेव ईश्वर, अर्थात् परमात्मा, यथार्त है । ईश्वर के अलावा और किसी चीज़ का अस्तित्व नहीं है । विभिन्न आत्माओं परमात्मा के अन्तर्गत हैं और उसके साथ एक हैं । विकास, पुनर्जन्म और साक्षात्कार की प्रक्रियायें सब, आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये आत्मा को योग्य बनाने में, आवश्यक हैं । बन्धन खुलने की प्रक्रिया में, संस्कार चेतना के विकास के लिये साधन बन जाते हैं यद्यपि वे भी संस्कारों बन्धन प्रदान करते हैं; और संस्कारों के खुलने की प्रक्रिया में, संस्कारी आसक्तियों का नाश हो जाता है, यद्यपि वह चेतना जो प्राप्त हुई है पूर्णतया बनी रहती है ।

संस्कारों के उलझने की प्रक्रिया में आत्मा नीचे उतरने की सात स्थितियों से गुज़रती है; और सुलझने की प्रक्रिया में, आत्मा ऊपर चढ़ने की सात स्थितियों से गुज़रती है । किन्तु उतार और चढ़ाव के दोनों प्रपञ्च मायावी होते हैं । आत्मा सर्वत्र है और अखण्डरूप से अनन्त है; और वह हरकत नहीं करती और न उतरती या चढ़ती है ।

समस्त राष्ट्रीयताओं, जातियों और धर्मों के सब मनुष्यों और स्त्रियों की आत्मायें, वास्तव में एक हैं; और उनके भले और बुरे, लड़ने और सहायता करने, युद्ध छेड़ने और शान्ति से रहने के अनुभव सभी माया और भ्रम के अङ्ग हैं, क्योंकि ये सब अनुभव शरीरों और मनों के द्वारा प्राप्त हैं, जो खुद शून्य हैं ।

योनियों और द्वैत के जगत के अस्तित्व में आने के पहले, ईश्वर के अलावा और कुछ न था, अर्थात् शक्ति, ज्ञान और परमानन्द का एक अखण्ड और असीम महासागर था । किन्तु इस महासागर को खुद अपनी चेतना न था । इस महासागर की तुम खुद कल्पना करो जैसे वह बिल्कुल निश्चल और शान्त हो, उसे अपनी शक्ति, ज्ञान और आनन्द की चेतना न हो और न यह चेतना हो कि वह महासागर है । लाखों-करोड़ों बूँदें जो महासागर में हैं उनके कोई चेतना नहीं होती; उनको यह ज्ञान नहीं होता कि वे बूँदें हैं और न यह ज्ञान होता है कि वे महासागर में हैं, और न यह ज्ञान होता है कि वे महासागर का एक अङ्ग हैं । ये सत्यता की मूल अवस्था प्रदर्शित करती हैं ।

सत्य की यह मूल अवस्था खुद को जानने की एक प्रेरणा से अशान्त हो जाती है । यह प्रेरणा महासागर में सदैव प्रसुप्त थी; और

process of realization, the sanskaras gradually unwind themselves, till in the God-state, they are completely unwound.

God, the Over-Soul, alone is real. Nothing exists but God. The different souls are in the Over-Soul and one with it. The processes of evolution, reincarnation and realization are all necessary in order to enable the soul to gain self-consciousness. In the process of wind-ing, sanskaras become instrumental for the evolution of consciousness though they also give sanskaric bindings; and in the process of unwinding, sanskaric attachments are annihilated, though the consciousness which has been gained is fully retained.

In the process of the winding of sanskaras, the soul goes through seven stages of descent; and in the process of unwinding, the soul goes through seven stages of ascent. But the phenomena of descent as well as ascent are both illusory. The soul is everywhere and indivisibly infinite; and it does not move or descend or ascend.

The souls of all men and women, of all nationalities, castes and creeds, are really one; and their experiences of good and evil, of fighting and helping, of waging wars and living in peace are all apart of illusion and delusion, because all these experiences are gained through bodies and minds, which in themselves are nothing.

Before the world of forms and duality came into existence, there was nothing but God, i.e., an indivisible and boundless ocean of Power, Knowledge and Bliss. But this ocean was unconscious of itself. Picture to yourself this ocean as absolutely still and calm, unconscious of its Power, Knowledge and Bliss and unconscious that it is the ocean. The billions of drops which are in the ocean do not have any consciousness; they do not know that they are drops nor that they are in the ocean nor that they are a part of the ocean. This represents the original state of Reality.

This original state of Reality comes to be disturbed by an urge to know itself. This urge was always latent in the ocean; and when it begins

जब वह ख़ुद अपनेआपको प्रकट करना शुरू करती है तो यह बूँदों को व्यक्तित्व प्रदान करती है । जब यह लहर शान्त महासागर के पानी में हलचल पैदा करती है, तो तुरन्त बूँदों के चारों ओर अनन्त बुलबुले अथवा योनियाँ पैदा हो जाती हैं; और बुलबुले ही बूँदों को व्यक्तित्व प्रदान करते हैं । बुलबुले अखण्ड महासागर को वास्तव में खण्डित नहीं करते और न कर सकते हैं; वे बूँद को महासागर से अलग नहीं कर सकते; वे इन बूँदों की पृथक्ता अथवा सीमित व्यक्तित्व की भावनामात्र प्रदान करते हैं ।

अब, आइये हम एक बूँद-आत्मा के जीवन का अध्ययन उसके विभिन्न क्रमों के द्वारा करें । बुलबुले के उठने के कारण, बूँद-आत्मा जो बिल्कुल अचैतन्य थी वह व्यक्तित्व से (अथवा पृथक्ता की भावना से) सम्पन्न होती है और साथ-साथ बहुत हलकी चेतना से सम्पन्न होती है । यह चेतना, जो बूँद-आत्मा में उठी है, ख़ुद की नहीं है और न महासागर की है; बल्कि वह बुलबुला अथवा योनि की चेतना है, जो अपनेआप में शून्य है । इस स्थिति पर यह अपूर्ण बुलबुला एक पाषाण योनि से प्रदर्शित होता है । कुछ समय बाद, इस बुलबुला अथवा योनि आ जाती है । अब, जब एक बुलबुले का विस्फोट होता है, तो दो चीज़ें घटित होती हैं : (१) चेतना में बढ़ती होती है और (२) संस्कारों की एक मरोड़ होती है जो संस्कार पिछले बुलबुले के जीवन के दौरान में सञ्चित हो गये थे । अब बूँद-आत्मा की चेतना कुछ बढ़ गई है; लेकिन बूँद-आत्मा को अब भी केवल इस नये बुलबुले अथवा योनि की चेतना होती है और ख़ुद अपनी चेतना नहीं होती और न महासागर की चेतना होती है । यह नया बुलबुला धातु येनि के द्वारा प्रदर्शित होता है । इस नये बुलबुले अथवा योनि का भी विस्फोट कालान्तर में हो जाता है; और उसके साथ-साथ चेतना में और भी बढ़ती होती है तथा संस्कारों के एकीकरण में एक नई मरीड़ होती है, जो नये प्रकार के बुलबुले अथवा रूप के उद्भव को जन्म देती है ।

यह प्रक्रिया विकास की प्रक्रिया के आद्यपान्त चालू रहती है; जिसमें पत्थरों, चातुओं, वनस्पतियों, कीड़ों, मछलियों, पक्षियों और जानवरों के त्रमों का समावेश होता है । हर बार जब पिछले बुलबुला अथवा रूप का विस्फोट होता है तब उसको और भी अधिक चेतना

to express itself, it endows the drops with individuality. When this urge makes the still water move, there immediately spring up numerous bubbles or forms around the drops; and it is these bubbles which give individuality to the drops. The bubbles do not and cannot actually divide the indivisible ocean; they cannot separate the drop from the ocean; they merely give to these drops a feeling of separateness or limited individuality.

Now let us study the life of one drop-soul through its diff e r-ent stages. Owing to the arising of the bubble, the drop-soul which was completely unconscious is invested with individuality (or a feeling of separateness) as well as with very slight consciousness. This consciousness, which has sprung up in the drop-soul, is not of itself nor of the ocean; but it is of the bubble or the form, which in itself is nothing. This imperfect bubble at this stage is represented by the form of a stone. After some time, this bubble or form bursts and there springs up in its place another bubble or form. Now, when a bubble bursts, two things happen: (1) there is an increase in consciousness and (2) there is a twist or consolidation of impressions or sanskaras accumulated during the life of the previous bubble. The consciousness of the drop-soul has now slightly increased; but the drop-soul is still conscious only of this new bubble or form and not of itself nor of the ocean. This new bubble is represented by the form of the metal. This new bubble or form also bursts in due course of time; and simultaneously there is a further increase in consciousness and a fresh twist or consolidation of sanskaras, which gives rise to the emergence of another type of bubble or form.

This process continues right through the course of evolution, which covers the stages of stones, metals, vegetables, worms, fishes, birds and animals. Every time that the previous bubble or form bursts, it gains more consciousness and adds one twist to the already accumulated sanskaras,

प्राप्त होती है और उससे पहले से सञ्चित हुये संस्कारों में एक और मरोड़ जुड़ जाती है, जब तक कि वह मानव बुलबुला अथवा योनि तक नहीं पहुँचती, जिसमें निरन्तर बढ़ती हुई चेतना पूर्ण और भरपूर हो जाती है । संस्कारों के खुलने की यह प्रक्रिया इन नियसित मरोड़ों से युक्त होती है; और यही मरोड़ें, जो बूँद-आत्मा द्वारा प्राप्त की गई चेतना को क़ायम रखती हैं, और उसको अपनी असली सत्ता की ओर मोड़ने की बजाय बुलबुला अथवा रूप की ओर निश्चित और सञ्चालित करती हैं, उस समय भी जब मनुष्य-योनि में चेतना भरपूर विकसित हो जाती है ।

मनुष्य-योनि प्राप्त करने पर, दूसरी प्रक्रिया शुरू होती है; यह प्रक्रिया पुनर्जन्म की प्रक्रिया होती है । इस स्थल पर, संस्कारों के बन्धनों के खुलाव की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है । बूँद-आत्मा एक के बाद एक असंख्य मानव योनियाँ धारण करती है; और ये योनियाँ बिल्कुल सही रूप में गिनती में ८४ **लाख** होती हैं । ये मनुष्य योनियाँ कभी-कभी पुरुषों की होती हैं और कभी-कभी स्त्रियों की होती हैं; और वे राष्ट्रीयता, आलोक, रङ्ग और धर्म बदलती हैं । बूँद-आत्मा मानव पुनर्जन्म के द्वारा कभी-कभी अपने को भिखारी के रूप में अनुभव करती है और कभी-कभी बाधशाह के रूप में अनुभव करती है, और इस प्रकार अपने अच्छे अथवा बुरे **संस्कारों** के अनुसार सुख अथवा दुःख के द्वन्द्वों का अनुभव करती है । पुनर्जन्म में (अर्थात् अपनी क्रमबद्ध और अनेक मानव योनियों में) बूँद-आत्मा अपनी पूर्ण चेतना बनाये रखती है, लेकिन वह द्वैध संस्कारों के एक के बाद एक होने वाले अनुभवों को बनाये रख्ती है, जब तक साक्षात्कार की प्रक्रिया का प्रारम्भ नहीं होता है, और साक्षात्कार की इस प्रक्रिया के दौरान में संस्कार खुद जाते हैं । पुनर्जन्म में, संस्कारों का एक ख़र्च होता है, लेकिन यह ख़र्च संस्कारों के खुलाव से बिल्कुल भिन्न होता है, जो **संस्कार** साक्षात्कार की प्रक्रिया के दौरान में होता है । स्वयम् **संस्कारों** का ख़र्च होना नये **संस्कार** पैदा करता है, जो आत्मा को बन्धन में डालते हैं; लेकिन **संस्कारों** का खुलना खुद नये संस्कार पैदा नहीं करता; और उसका उद्देश्य संस्कारों की अत्यन्त दृढ़ पकड़ को नष्ट करना होता है जिन संस्कारों में बूँद-आत्मा जकड़ी है ।

मनुष्य योनि तक, संस्कारों का खुलाव विकास की क्रिया के दौरान में मज़बूत और मज़बूत होता है । पूनर्जन्म की मानव योनियाँ में,

until it reaches the human bubble or form, in which the ever-increasing consciousness becomes full and complete. The process of the winding up of sanskaras consists of these regular twists; and it is these twists which keep the consciousness, gained by the drop-soul, directed and fixed towards the bubble or the form instead of towards its real Self, even when consciousness is fully developed in the human form.

On gaining the human form, the second process begins; this process is that of reincarnation. At this point, the process of the winding up of sanskaras comes to an end. The drop-soul takes numerous human forms one by one; and these forms are exactly eighty-four lakhs in number. These human forms are sometimes those of man and sometimes those of woman; and they change nationalities, appearance, colour and creed. The drop-soul through human incarnations experiences itself sometimes as a beggar and sometimes as a king, and thus gathers experiences of the opposites of happiness or misery according to its good or bad sanskaras. In reincarnation (i.e., in its successive and several human forms) the drop-soul retains its full consciousness but continues to have alternating experiences of opposite sanskaras, till the process of realization begins. And during this process of realization the sanskaras get unwound. In reincarnations, there is a spending up of sanskaras; but this spending up is quite different from the unwinding of the sanskaras, which takes place during the process of realization. The spending up of sanskaras itself creates new sanskaras, which bind the soul; but the unwinding of sanskaras does not itself create fresh sanskaras; and it is intended to undo the very strong grip of sanskaras, in which the drop-soul is caught.

Up to the human form, the winding up of sanskaras becomes stronger and stronger during the process of evolution. In the human forms

संस्कार का खुलाव एक सीमित तथ्य के रूप में काम करना जाती रखता है; किन्तु मानव बुलबुला अथवा योनि के प्रत्येक परिवर्तन के साथ, कठोर गाँठें, जो खुलाव की प्रक्रिया के दौरान प्राप्त हुई थीं; ८४ लाख झटकों‡ के माध्यम से ढीली पड़ जाती हैं, इसके पहले कि वह साक्षात्कार की प्रक्रिया में खुलने के लिये तैयार होती हैं ।

अब साक्षात्कार की तीसरी प्रक्रिया शुरू होती है, जो चढ़ाव की एक प्रक्रिया है । यहाँ पर, बूँद-आत्मा क्रमशः संस्कारों के खुलाव से गुज़रती है । खुलाव की इस प्रक्रिया के दौरान में, संस्कार क्षीण और क्षीण होते जाते हैं; और साथ ही साथ, बूँद-आत्मा की चेतना खुद अपनी ओर अधिक और अधिक निर्देशित होती है; और इस प्रकार बूँद-आत्मा सूक्ष्म और मनो भूमिकाओं से होकर गुज़रती है जब तक कि सब संस्कार पुर्णतया नष्ट नहीं हो जाते, और उसको महासागर के रूप में खुद अपनी चेतना प्राप्त करने योग्य नहीं बना देते हैं ।

परमात्मा के अनन्त महासागर में तुम बूँद अथवा आत्मा हो । तुम साधारण अवस्था में आत्मा हो; और तुम अपनी चेतना का उपयोग बूँद अथवा योनि के देखने और अनुभव करने में करते हो । बुलबुले की स्तूल परत के द्वारा, तुम विशाल स्थूल बुलबुले के उस भाग का अनुभव करते हो जो पृथ्वी ह । तुम परमात्मा में सतत् स्थित हो और उसके साथ अखण्डयरूप से एक हो; लेकिन तुम्हें इसका अनुभव नहीं होता । उँची स्थिति में, तीसरी भूमिका के पर्यन्त, तुम अपनी चेतना का प्रयोग, सूक्ष्म जगत कहलाने वाले विशाल बुलबुले को, सूक्ष्म शरीर कहलाने वाले

‡ [अनेक पाठकों को यह मालूम नहीं होता कि मेहेरबाबा जीवन चक्र का वर्णन लौकिकरूप से करते थे जैसे : विकास, पुनर्जन्म, प्रतिवर्द्धन और साक्षात्कार करने की "प्रक्रिया" ।

इरते हुये, ऊपर मूल पाठ में दिया गया बयान पैरा ५, पृष्ठ २०७, में दिये गये बयान के परस्पर-विरोधी मालूम पड़ सकता है, हमने एरच बी॰ जसावाला की स्पष्ट करने को कहा ।

उन्होंने उत्तर दिया : "एक बार कोई व्यक्ति चेतना की भूमिकाओं पर होता है, तो पुनर्जन्म की प्रक्रिया का अन्त हो गया कहा जा सकता है । ईश्वर तक पहुँचाने के पथ पर उसको 'देखने' की और उससे मिलकर एक हो जाने की अधीरता प्रचण्ड होती है । ऐसे पुनर्जन्म जैसे आवश्यक होते हैं, और चेतना पर बोझ लादे हुये संस्कारों के कारण होते हैं, ८४ लाख झटकों की तुलना में प्रायः समाप्त मालुम पड़ते हैं ।" —सम्पादक]

of reincarnation, the winding continues to operate as a limiting factor; but with every change of the human bubble or form, the tight twists, gained during the process of winding, get loosened through eighty-four lakhs of shakings,* before they are ready to unwind in the process of realization.

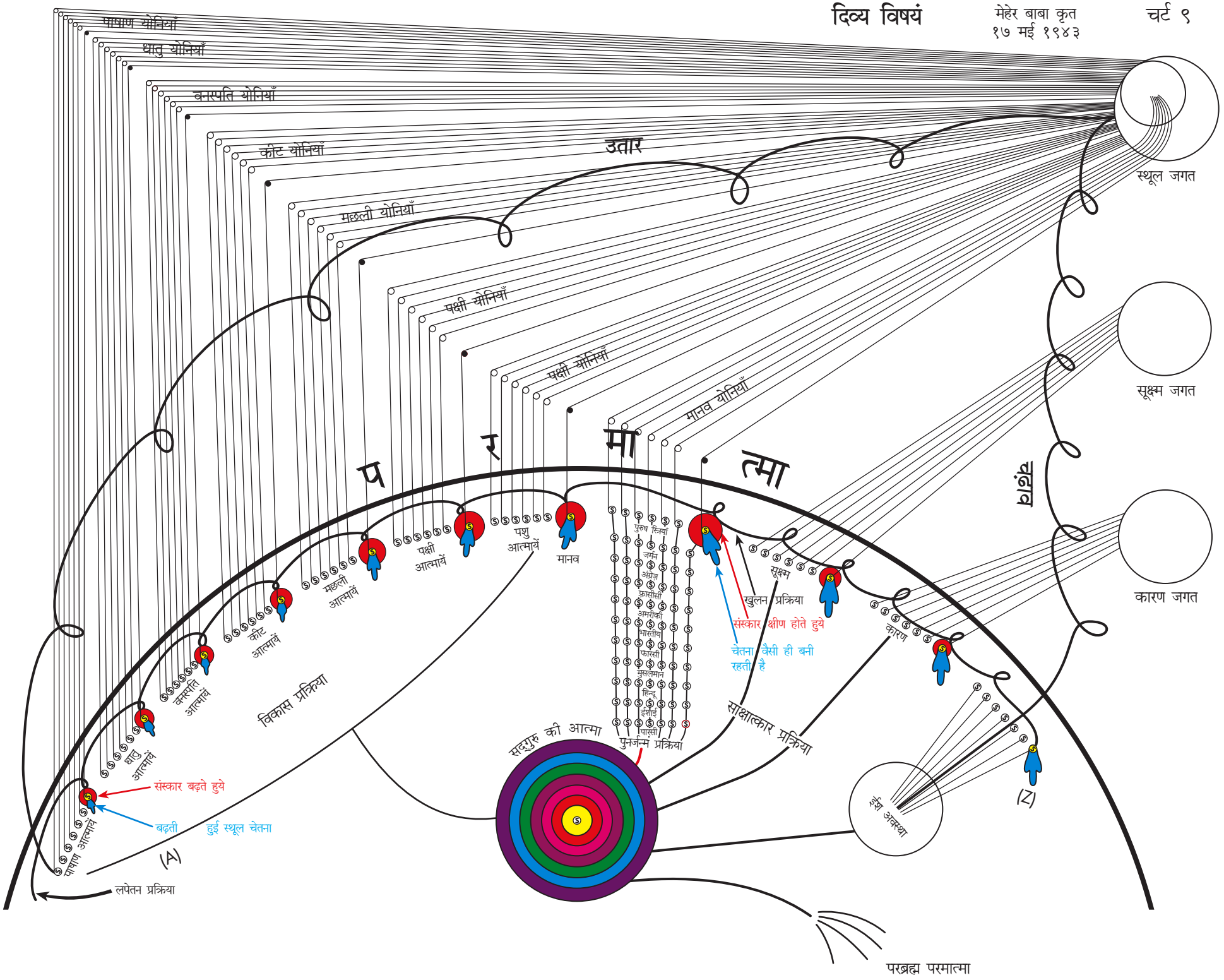
Now begins the third process of realization, which is a process of ascent. Here, the drop-soul undergoes the gradual unwinding of the sanskaras. During this process of unwinding, the sanskaras become fainter and fainter; and at the same time, the consciousness of the drop-soul gets directed more and more towards itself; and thus, the drop-soul passes through the subtle and mental planes till all the sanskaras disappear completely, enabling it to become conscious of itself as the ocean.

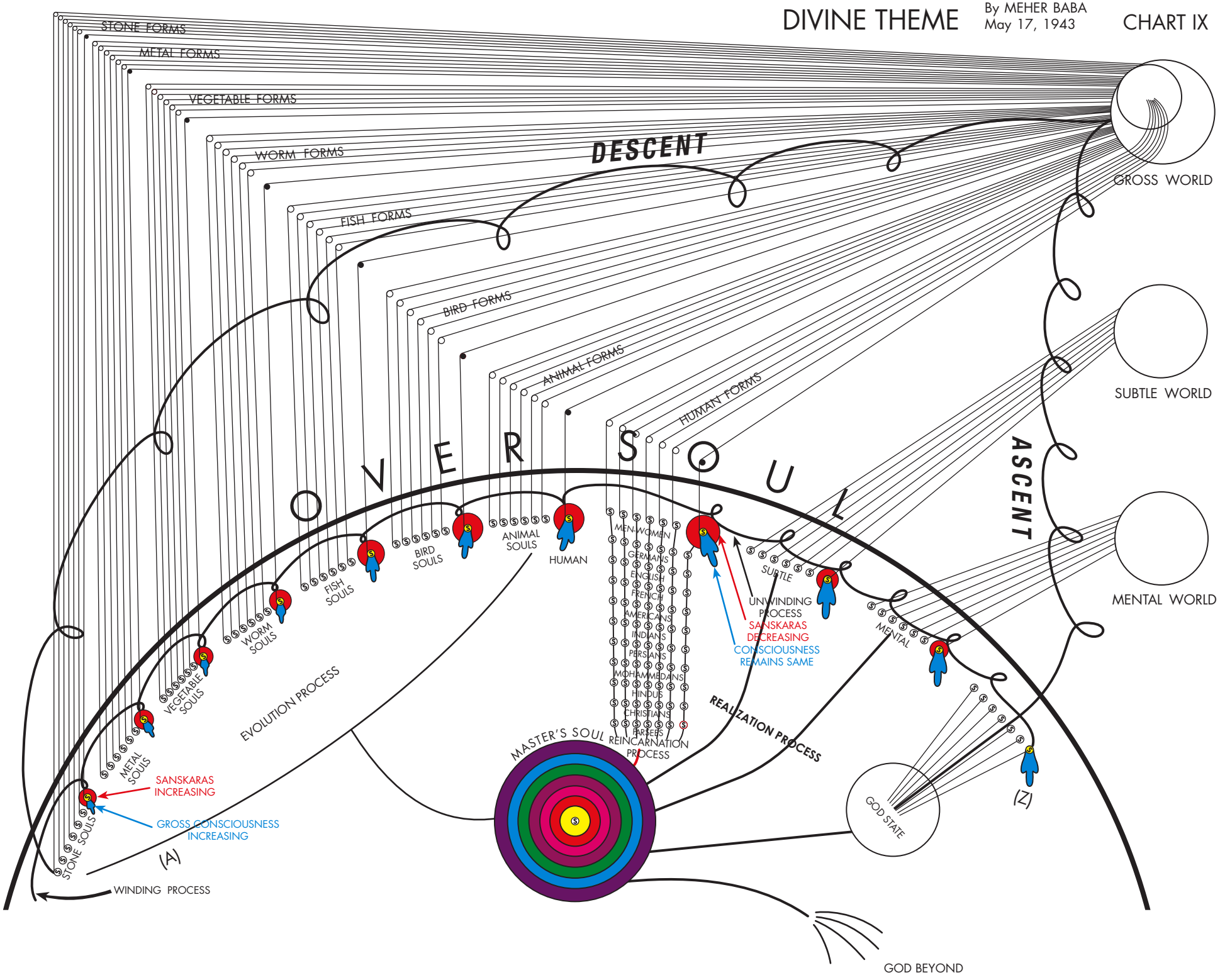
In the infinite ocean of the Over-Soul, you are the drop or the soul. You are the soul in the ordinary state; and you use your consciousness in seeing and experiencing the bubble or the form. Through the gross layer of the bubble, you experience that part of the huge gross bubble which is the earth. You are eternally lodged and indivisibly one with the Over-Soul; but you do not experience it. In the advanced stage, up through the third plane, you use your consciousness in seeing and experiencing the huge subtle

* [Many readers do not discern that Meher Baba customarily described the life cycle as: evolution, reincarnation, involution and the process of realization.

Fearing the statement in the text above might seem contradictory to that in paragraph 3, page 176, we asked Eruch B. Jessawala for clarification.

He replied: "Once one is on the planes of consciousness, the reincarnation process may be said to have come to its fag end. On the Path leading to Beloved God, the impatience to 'see' Him and to be One with Him is intense. Such reincarnations as are necessary, due to impressions burdening the consciousness, seem almost nil when compared to eighty-four lakhs of shakings." Ed.]


पाषाण योनियाँ
धातु योनियाँ
वनस्पति योनियाँ
कीट योनियाँ
मछली योनियाँ
पक्षी योनियाँ
पशु योनियाँ
मानव योनियाँ
उतार
चढ़ाव
स्थूल जगत
सूक्ष्म जगत
कारण जगत
परब्रह्म परमात्मा
पाषाण आत्मायें
धातु आत्मायें
वनस्पति आत्मायें
कीट आत्मायें
मछली आत्मायें
पक्षी आत्मायें
पशु आत्मायें
मानव
पुरुष स्त्रियाँ
जर्मन
अंग्रेज़
फ्रांसीसी
अमरीकी
भारतीय
फारसी
मुसलमान
हिन्दू
ईसाई
पारसी
पुनर्जन्म प्रक्रिया
सद्गुरु की आत्मा
विकास प्रक्रिया
साक्षात्कार प्रक्रिया
संस्कार बढ़ते हुये
बढ़ती हुई स्थूल चेतना
लपेतन प्रक्रिया
(A)
खुलन प्रक्रिया
संस्कार क्षीण होते हुये
चेतना वैसी ही बनी रहती है
सूक्ष्म
कारण
ईश अवस्था
(Z)


DIVINE THEME
By MEHER BABA
May 17, 1943
CHART IX
STONE FORMS
METAL FORMS
VEGETABLE FORMS
WORM FORMS
FISH FORMS
BIRD FORMS
ANIMAL FORMS
HUMAN FORMS
DESCENT
GROSS WORLD
SUBTLE WORLD
MENTAL WORLD
ASCENT
OVERSOUL
STONE SOULS
METAL SOULS
VEGETABLE SOULS
WORM SOULS
FISH SOULS
BIRD SOULS
ANIMAL SOULS
HUMAN
MEN-WOMEN
GERMANS
ENGLISH
FRENCH
AMERICANS
INDIANS
PERSIANS
MOHAMMEDANS
HINDUS
CHRISTIANS
PARSEES
SUBTLE
MENTAL
UNWINDING PROCESS
SANSKARAS DECREASING
CONSCIOUSNESS REMAINS SAME
SANSKARAS INCREASING
GROSS CONSCIOUSNESS INCREASING
EVOLUTION PROCESS
REALIZATION PROCESS
REINCARNATION PROCESS
MASTER'S SOUL
GOD STATE
(A)
(Z)
WINDING PROCESS
GOD BEYOND

सूक्ष्म बुलबुले अथवा रूप के माध्यम से, देखने और अनुभव करने में करते हो; किन्तु तुम परमात्मा को नहीं देखने और अनुभव नहीं करते जिसके अन्दर तुम हो, क्योंकि तुम्हारी चेतना अब परमात्मा की ओर निर्देशित नहीं है । उन्नत अवस्था में, चौथी भूमिका से लेकर छठवीं भूमिका पर्यन्त, तुम अपनी चेतना का प्रयोग विशाल मानसिक बुलबुले को देखने और अनुभव करने में करते हो, जो कारण जगत कहलाता है, और यह मानसिक बुलबुला अथवा मनुष्य योनि, कारण शरीर करलाता है, लेकिन तुम्हें अब भी परमात्मा का अनुभव प्राप्त नहीं होता । किन्तु ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त अवस्था में, तुम अपनी चेतना का निरन्तर प्रयोग परमात्मा को देखने और अनुभव करने के लिये करते हो; और तब समस्त योनियाँ बुलबुलों के अलावा और कुछ नहीं मालूम पड़तीं ।

अन्तु, अब, अपनेआपको आत्म-बूँद के रूप में चित्रित करो, जो परमात्मा में, स्थूल शरीर के बाद पाँच परतों के पीछे विद्यमान है तुम (आत्म-बूँद) अब स्थूल शरीर को देख रहे हो और उसके द्वारा स्थूल जगत को देख रहे हो । जब तुम दूसरी परत को देखने हो और उसके माध्यम से देखते हो, तब पहली परत तुमको केवल एक सतह के रूप में मालूम पड़ेगी, और इस प्रकार, प्रत्येक परत के पीछे देखते हुये, तुमको ये सब परतें केवल तुम्हारे छायादार आवरण मालूम पड़ेंगीं; और अन्ततः, जब तुम (अर्थात् आत्म-बूँद) परमात्मा को देखते हो और उसमें समा जाते हो, तब तुम्हें अनुभव होता है कि केवल तुम वास्तविक थे और वह सबकुछ जो तुम अब तक देखते और अनुभव करते थे, केवल तुम्हारी छाया मात्र थे और अन्य कुछ न थे ।

(चार्ट नं॰ ९ और १० की स्पष्टि)

चाई ९

चार्ट ९ में दिया गया विशाल अर्द्ध-वृत्त परमात्मा का प्रतिनिधित्व करता है, जो विश्व में सबकुछ धारण करता है । अकेले एक व्यक्तिगत आत्मा का जीवन विकास, पुनर्जन्म और साक्षात्कार की प्रक्रिया को तीन मुख्य क्रमों में प्रदर्शित करता है । "*S*" व्यक्तिगत आत्मा का प्रतीक है । मनुष्य-योनि प्राप्त करने के पहले, वह अस्तित्व के निम्नलिखित प्रत्येक प्रकारों के सात क्रमों से होकर गुज़रता है, जैसे—पत्थर, धातु, वनस्पति, कीड़ा, मछली, पक्षी और पशु । सातवीं स्थिति

bubble called the subtle world, through the subtle bubble or form called the subtle body; but you do not see and experience the Over-Soul which you are in, since your consciousness is not now directed towards the Over-Soul. In the advanced stage from the fourth through the sixth plane, you use your consciousness in seeing and experiencing the huge mental bubble, which is called the mental world, through the mental bubble or form which is called the mental body, but even now you do not experience the Over-Soul. But in the God-realized state, you continually use your consciousness for seeing and experiencing the Over-Soul; and then all the forms are known as being nothing but bubbles.

So, now, picture yourself as the soul-drop, lodged in the Over-Soul, behind five layers after the gross body. You, the soul-drop, are now looking at the gross body and through it at the gross world. When you look at the second layer and through it, the first layer will appear to you as nothing but a layer only, and thus, looking behind each layer, you will find all these layers as only your shadow covers; and finally, when you (i.e., the soul-drop) look at and get merged in the Over-Soul, you realize that only you were real and all that you were seeing and experiencing till now was your own shadow and nothing else.

(Explanation of Charts IX and X

CHART IX

The big semi-circle in Chart IX represents the Over-Soul, which contains everything in the universe. The life of a single individual soul is depicted in the three main stages of evolution, reincarnation and the process of realization. "S" stands for the individual soul. Before attaining the human form, it goes through seven stages of each of the following kinds of existence, viz., stone, metal, vegetable, worm, fish, bird and animal. At the seventh stage, i.e., just before entering a new kind of

में, अर्थात् एक नये प्रकार के अस्तित्व में, प्रवेश करने के पहले तुम एक मरोड़ अथवा एक गाँठ का एक चित्रण देखोगे, जो पहले सञ्चित किये गये संस्कारों का एकीकरण होता है । व्यक्तिगत "आत्मा" (*S*) के चारों ओर खिंचा बाहरी लाल वृत्त, उन संस्कारों का प्रतीक है जो विकास की प्रक्रिया के दौरान में सञ्चित हो गये थे; और "*S*" में जुड़ा हुआ नीला जुड़ाव चेतना का प्रतीक है जिसका विकास साथ-साथ होता है । "*A*" आत्मा विकास, पुनर्जन्म और साक्षात्कार की प्रक्रिया से गुज़रने के बाद, "*Z*" आत्मा बम जाता है । केवल ईश-अवस्था में हो चेतना संस्कारों से मुक्त होती है ।

स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत (अन्न भूमि, प्राण भूमि और मनो भूमि), दाहिने हाथ की तरफ एक बड़े वृत्त के द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं । चूँकि स्थूल जगत की चेतना विकास की मनुष्य योनि के पहले के क्रमों में पूर्णतः विकसित नहीं होती, अतः वे पंक्तियाँ जो पत्थर, धातु, वनस्पति, कीड़ा, मछली, पक्षी और पशुओं की आत्माओं को क्रमशः उनकी पत्थर, धातु, वनस्पति, कीड़ा, मछली, पक्षी और पशु योनियों से जीड़ता हैं, केवल स्थूल जगत का स्पर्श करने के रूप में खण्डित रूप से दिखाई गई हैं; जबकि चेतना मानव योनि में पूर्णतः विकसित हो जाती है, वह (अनुरूप लाइनों के द्वारा) इस प्रकार प्रदर्शित की गई है कि वह सम्पूर्ण स्थूल जगत को उसके सब विभिन्न पहलुओं में समझने के योग्य हो गई है ।

पुनर्जन्मों की प्रक्रिया में, आत्मा नर अथवा मादा रूप धारण कर सकती है; और वह किसी भी राष्ट्रीयता, मत अथवा धर्म से सम्बन्ध रख सकती है । आत्मज्ञान के दृष्टिकोण से, मानव योनियों की प्राप्ति तक ऊपर जाने वाली प्रक्रिया, एक यथार्थ उतार को प्रस्तुत करती है, यद्यपि वह ऊर्ध्व-गमन के समान दिखाई पड़ती है; और साक्षात्कार की प्रक्रिया एक वास्तविक चढ़ाव प्रदर्शित करती है, यद्यपि वह अधो-गमन के समान दिखाई पड़ती है; और ये दो प्रफियायें संस्कारों के बन्धनकारी गाँठों की (अधः पतन को प्रस्तुत करती हुई) क्रमशः एक लाइन के द्वारा प्रस्तुत होती है, जो पत्थर-योनि से लेकर स्थूल जगत तक ऊपर जाती है, और संस्कारों को छुट्टा करने वाली गाँठों (ऊर्ध्व-गमन प्रस्तुत करती हुई) की एक लाइन के द्वारा, जो स्थूल जगत से लेकर ईश-अवस्था तक उतर कर नीचे आती है । साधारण

existence, you will note a pictorial representation of a twist or a knot, which stands for a consolidation of previously acquired sanskaras. The outer red circle round the individual soul "S," represents the sanskaras accumulated during the process of evolution; and the blue appendage to "S" represents the consciousness, which comes to be developed simultaneously. " A " soul becomes "Z" soul after going through evolution, reincarnation and the process of realization. It is only in the God state that consciousness is free from sanskaras.

The gross, subtle and mental worlds (i.e., *anna bhumi*, *pran bhumi* and *mano bhumi*) are each represented by a big circle on the right-hand side. Since consciousness of the gross world is not fully developed in the pre-human stages of evolution, the lines which connect the stone, metal, vegetable, worm, fish, bird and animal souls, through their respective stone, metal, vegetable, worm, fish, bird and animal forms, are shown merely as touching the gross world only partially; while, since consciousness is fully developed in the human form, it is shown (through corresponding lines) as being capable of understanding the entire gross world in all its different aspects.

In the process of reincarnations, the soul may take a male or a female form; and it may belong to any nationality, creed or religion. From the point of view of self-knowledge, the process up to the attainment of the human forms represents an actual descent, though it looks like an ascent; and the process of realization represents an actual ascent, though it looks like a descent; and these two processes are respectively represented by a line (representing descent) of winding knots of sanskaras, which goes up from the stone stage to the gross world, and by a line (representing ascent) of unwinding knots of sanskaras, which comes down from the gross world to the God state. The process of ordinary reincarnations

पूनर्जन्म की प्रक्रिया तब प्रारम्भ होती है जब संस्कार पूर्णरूप से खुल जाते हैं; और वह तब तक जारी रहती है जब तक संस्कारों का खुलाव प्रारम्भ नहीं होता ।

साक्षात्कार की प्रक्रिया में, पहली भूमिका से लेकर तीसरी भूमिका तक की ऊँची आत्माओं को, अपने सूक्ष्म शरीरों के माध्यम के द्वारा केवल सूक्ष्म जगत की चेतना होती है । उनका साधारण आत्माओं का भान होता है जिन्हें स्थूल-चेतना प्राप्त होती है और जो सूक्ष्म जगत में उनके ऊपर किया कर सकती हैं; लेकिन यह सबकुछ वे सूक्ष्म शरीर के द्वारा और सूक्ष्म जगत में करती हैं; और उनका कोई सम्बन्ध स्थूल जगत से स्थूल शरीर के द्वारा नहीं होता । इसी प्रकार से, चौथी भूमिका से लेकर छठवीं भूमिका तक की उन्नत आत्माओं को स्थूल चेतनायुक्त और साथ-साथ सूक्ष्म चेतनायुक्त आत्माओं का ज्ञान होता है; किन्तु वे उन पर मनो जगत में कारण शरीर के द्वारा कार्य सम्पादन करती हैं; और उनका कोई सम्बन्ध स्थूल शरीर के द्वारा स्थूल जगत से नहीं होता, और न सूक्ष्म शरीर द्वारा सूक्ष्म जगत से होता है । इसलिये, चाई में दी गई लाइनें सूक्ष्म-चेतना युक्त आत्माओं का सम्बन्ध केवल सूक्ष्म जगत से करती हैं; और उनके अनुरूप लाइनें मनो-चैतन्य आत्माओं का सम्बन्ध केवल मनो जगत से जोड़ती हैं ।

ईश-अवस्था में, जिसमें सब संस्कार खुल गये होते हैं, चेतना का मोड़ केवल परमात्मा की ओर होता है; यह मजज़ूब-ए-कामिल की अवस्था है, जिसका कोई सम्बन्ध स्थूल, सूक्ष्म और मनो जगतों से नहीं होता । किन्तु चन्द लोग, जो ईश-अवस्था का रस लेते हैं, वे भी नीचे आते हैं और अखिल सृष्टि की चेतना पुनः प्राप्त करते हैं । ये सद्गुरुओं (पूर्ण पुरुषों) की आत्मायें हैं । सद्गुरु की आत्मा सात केन्द्रीय रङ्गीन वृत्तों‡ से दिखाई गई है । निम्नलिखित बातें (जो जीड़ने वाली लाइनों से उत्पन्न हुई हैं) सावधानी से नोट करती चाहिये :— (१) सद्गुरु की आत्मा परब्रह्म परमात्मा से जुड़ी है, जो सद्गुरुओं का **विज्ञान** है अथवा विश्रास स्थल है, (२) यह ईश-अवस्था से जुड़ी हुई है और (३) यह न केवल तीनों भुवनों में सबसे सम्बन्धित है, किन्तु सब आत्माओं से सम्बन्धित है, चाहे वे मनो-चेतना से सम्पन्न हों, सूक्ष्म चेतना

(२६७)

‡ उनके महत्व के लिये चार्ट १० देखिये ।

begins after the winding is complete; and it continues till the unwinding has begun.

In the process of realization, advanced souls from the first through the third planes are conscious only of the subtle world, through their subtle bodies. They are aware of ordinary souls who are gross-conscious and can act upon them in the subtle world; but all this is done by them through the subtle body and in the subtle world; and they have no connection with the gross world through the gross body. In the same way, advanced souls from the fourth through the sixth planes are aware of gross-conscious as well as subtle-conscious souls; but they act upon them in the mental world through the mental body; and they have no connection with the g ross world through the gross body, nor with the subtle world through the subtle body. Therefore, the lines in the chart connect the subtle-conscious souls only with the subtle world; and the corresponding lines connect the mental-conscious souls only with the mental world.

In the God state, in which all the sanskaras are unwound, consciousness is turned only to God; this is the state of Majzoobs-e-Kamil, who have no connection with the gross nor the subtle nor the mental worlds. But a few who enjoy the God-state also come down and regain the consciousness of the entire Creation. These are the souls of the Masters. The soul of the Master is represented by seven concentric coloured rings.* The following points (which have been brought out by connecting lines) should be carefully noted: (i) The Master's soul is connected with God Beyond, which is the vidnyan or the resting place of the Masters, (ii) it is connected with the God state and (iii) it is not only connected with all the three worlds, but all the souls, whether they are mental-conscious, subtle-

* For their significance see Chart X.

से युक्त हों अथवा पुनर्जन्म लेने वाले मानव प्राणियों से सम्बन्धित हों, (जिन्को स्थूल चेतना प्राप्त है), अथवा ऐसी आत्मायें हों जो पूर्व-मानवी विकास के क्रम में हैं ।

चार्ट १०

चार्ट १० मानव योनि के विकास तक की प्रक्रिया से सम्बन्धित और ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त प्राणी की अवस्था तक साक्षात्कार की प्रक्रिया तक के विवरण प्रस्तुत करता है । सबसे भीतरी छोटा घेरा जिसका उल्लेख "*S*" के द्वारा किया गया है वह व्यक्तिगत आत्मा को प्रदर्शित करता है । आत्मा इस रूप में दिखाई गई है कि वह अपने चारों ओर मनुष्य के क्रम तक निरन्तर बढ़ती हुई संख्या में दायरे रखती है; और यह दिखाया गया है जैसे वह बाद में सब वृत्त क़ायम रखती है । दूसरा चक्र, जो आत्मा से सटा हुआ लगा है, चेतना को प्रदर्शित करता है, जो मानव योनि तक बढ़ती चली जाती है; किन्तु बाद में वह निरन्तर निश्चल बनी रहती है । विकास में, वनस्पतियाँ अत्यन्त अविकसित सहव ज्ञान प्राप्त करती हैं, लेकिन सूक्ष्म शरीर‡ प्राप्त नहीं करतीं, जो कीड़ों और घिसलने वाले प्राणियों के अविकसित रूप में ऊपर उभरता है । यह सूक्ष्म शरीर विकसित होता चला जाता है जब तक यह मनुष्य योनि में पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो जाता । सूक्ष्म शरीर के विकास के बराबर-बराबर, सहज ज्ञान का उसी समय साथ-साथ विकास होता है । सहज ज्ञान, अपने अधूरे विकास में, प्रथम बार जीवधारियों की स्थिति में पहली बार प्रकट होता है; लेकिन कारण शरीर केवल अन्तिम क्रम में प्रकट होता है जो मनुष्य होनि द्वारा प्रदर्शित होता है ।

मनुष्य योनि में, पहला अन्तरतम घेरा व्यक्रिगत आत्मा का पतिनिधित्व करता है; दूसरा बाहरी घेरा **पूणर चेतना** का प्रतिनिधित्व करता है; और तब अन्य बाहरी घेरे (उस तरतीब में जिसमें वे दर्शाये गये हैं) क्रमशः प्रदर्शित करते हैं : (१) व्योक्तत्व का स्थान;

‡ तथापि, गैस-रूप अथवा पाषण अथवा धतु अथवा वनस्पति रूप में आत्मा अपनी एकरूपता भी, "यद्यपि अचैतन्य रूप से," अपने अत्यन्त-सीमित सूक्ष्म शरीर से और अपने अत्यन्त-सीमित कारण शरीर से भी करती है । [देखिये मूल पाठ का पृष्ठ ३७ । —सम्पाध्क]

conscious or reincarnating human beings (who are gross-conscious), or souls who are in the pre-human evolutionary stage.

Chart X

Chart X brings out the details pertaining to the process of evolution up to the human form and the process of realization up to the state of a God-realized being. The innermost small circle which is referred to by "S" represents the individual soul. The soul is shown as having an increasing number of circles around itself up to the human stage; and it is shown as retaining all these circles later on. The second circle, which is next to the soul, represents consciousness, which goes on increasing up to the human form ; but afterwards it remains constant. In evolution, vegetables acquire the most undeveloped instinct, but not the subtle body,† which emerges in an undeveloped form in worms and reptiles. This subtle body goes on developing until it is fully developed in the human form. Side by side with the development of the subtle body, there is a simultaneous development of instinct. Intellect, in its partial development, makes its first appearance at the stage of animals; but the mental body appears only at the last stage represented by the human form.

In the human form, the first innermost circle represents the individual **soul;** the next outer circle represents **full consciousness;** and then the other outer circles (in the order in which they are drawn) respectively represent (i) the seat of individuality, (ii) sanskaras or unexpressed desires, (iii) intellect, (iv) felt desires of the mental body, (v)

† Nevertheless, in the gaseous or stone or metal or vegetable form the soul also identifies itself, **though unconsciously,** with its most-finite subtle form and its most-finite mental form. [See page 34 of text. Ed.]

दिव्य विषय

मेहेर बाबा कृत
१७ मई १९४३

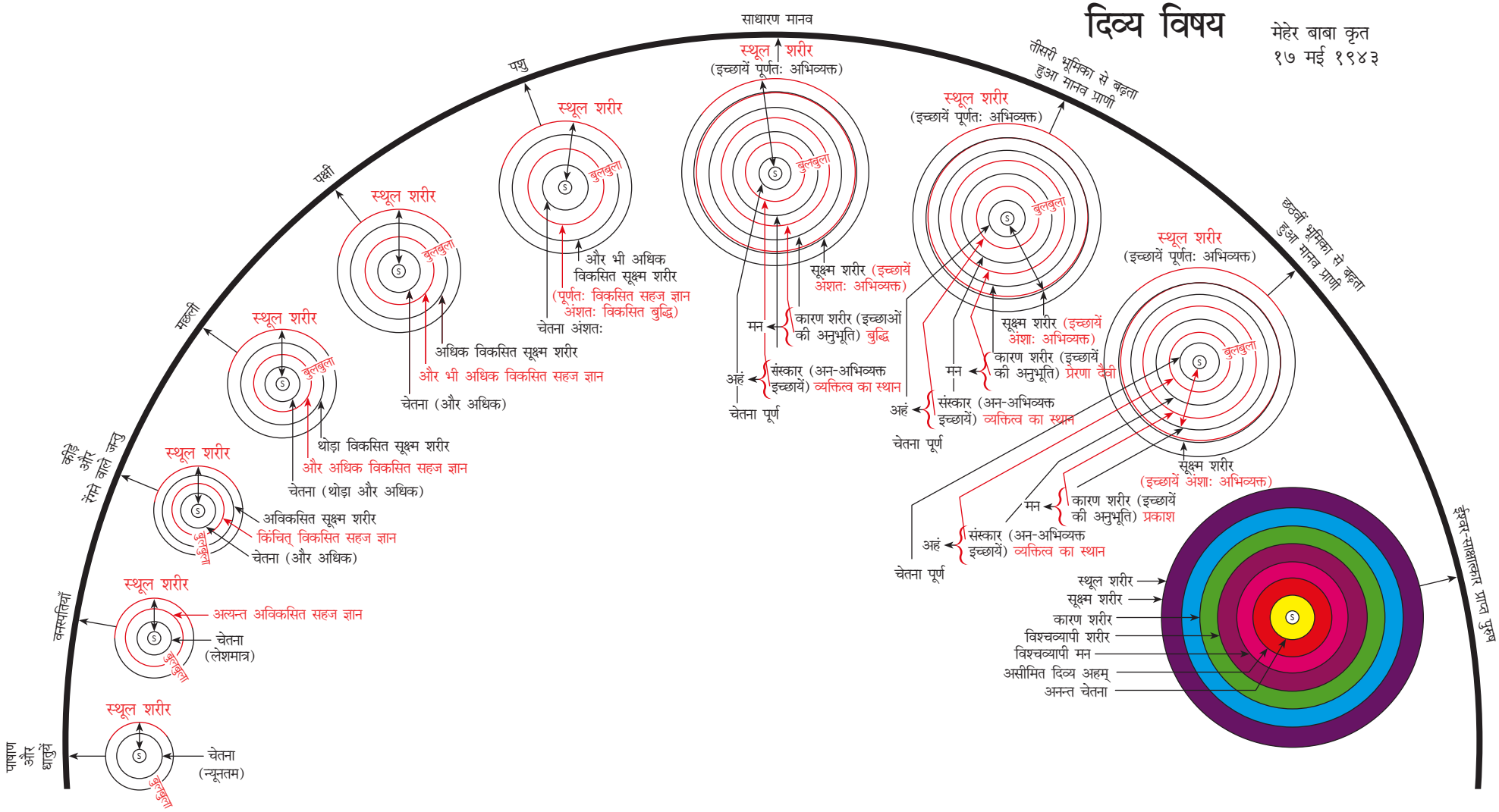
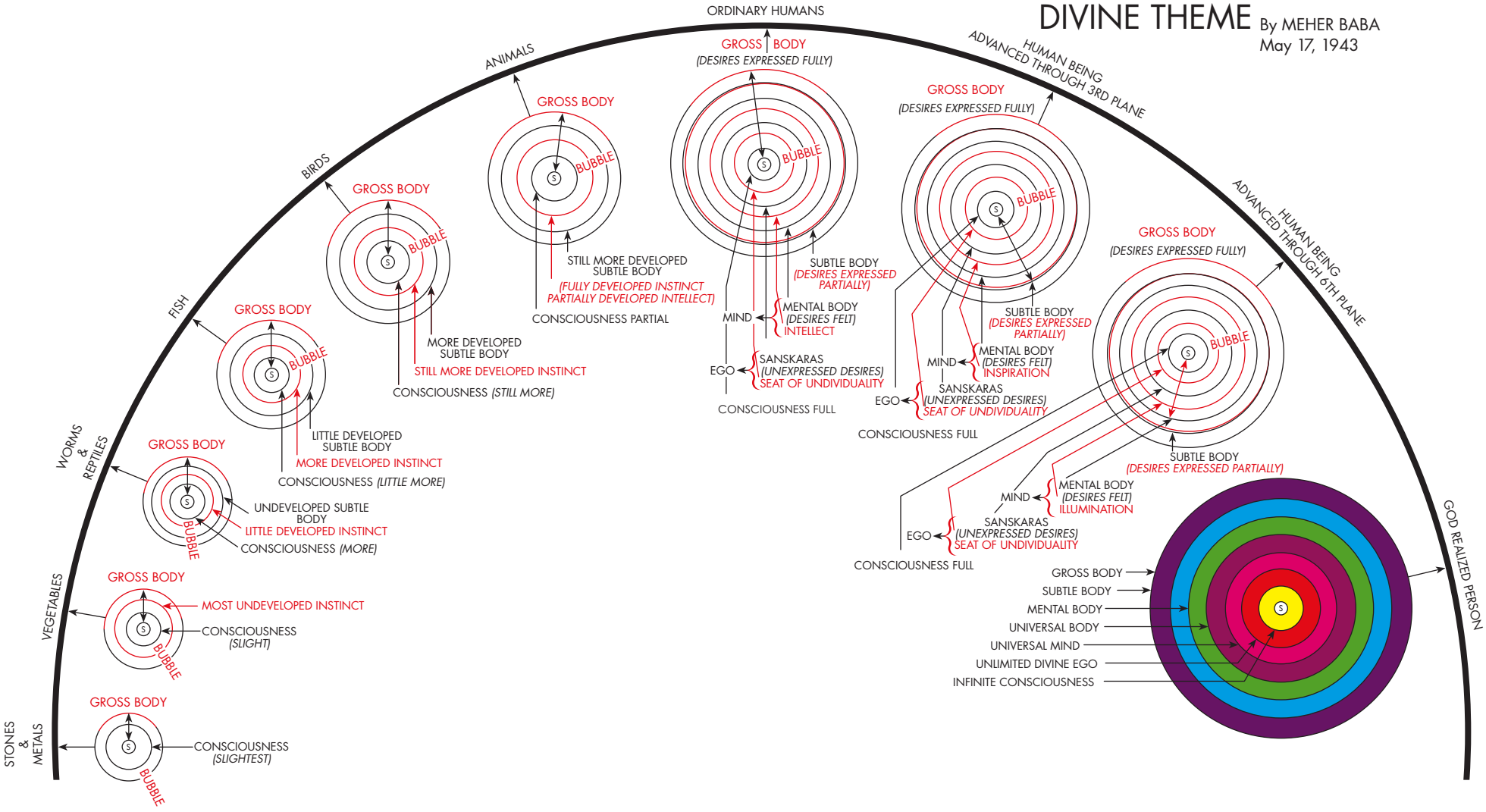


CHART X

DIVINE THEME

By MEHER BABA
May 17, 1943



(२) संस्कार अथवा अन-अभिव्यक्त इच्छायें, (३) बुद्धि, (४) कारण शरीर की अनुभव इच्छायें, (५) सूक्ष्म शरीर (जिसमें इच्छायें अधूरे रूप से प्रकट होती हैं), और (६) स्थूल शरीर (जिसमें इच्छायें पूर्णरूप से प्रकट होती हैं)। आत्मा के अन्तरतम घेरे के चारों ओर सब घेरे, चेतना के पहले घेरे के सिवाय, चेतना की परतें हैं। इन परतें का सबसे बाहरी घेरा और उससे जुड़ा हुआ दूसरा घेरा, क्रमशः स्थूल और सूक्ष्म शरीरों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जब कि चेतना के चारों ओर अन्य चार परतें, एक कारण शरीर के चार कार्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं। कारण शरीर के इन चार कार्यों में, दो (अर्थात् अनुभव इच्छायें और बुद्धि) आमतौर पर मन के अन्तर्गत निहित होती हैं; और अन्य दो (अर्थात् संस्कार अथवा अन-अभिव्यक्त इच्छायें और व्यक्तित्व की भावना) अहङ्कार के अन्तर्गत समाविष्ट हैं। इस प्रकार, मानव स्थिति में, आत्मा, अपनी चेतना सहित, तीन शरीर, किन्तु छः परतें रखती है (जिनमें स्थूल परत सम्मिलित है जो स्थूल शरीर कहलाता है)।

जब (पुनर्जन्मों के बाद) मानवी आत्मा साक्षात्कार की प्रक्रिया पर आरूढ़ होती है, तब बुद्धि का स्थान स्फूर्ति ले लेती है, जो अपना आविर्भाव पहली से लेकर तीसरी भूमिका तक प्राप्त करती है; और चौथी से छठवीं भूमिका तक, यह स्फूर्ति प्रकाश के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

रङ्गीन घेरे अथवा केन्द्रित घेरे ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आत्मा का, उसके सभी मार्गों समेत, प्रतिनिधित्व करते हैं। इस आकृति के सम्बन्ध में, नीचे लिखी हुई बातें बहुत ध्यान से नोट करनी चाहिये : (१) तीन बाहरी घेरे क्रमशः स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। हम इन सब शरीरों को साधारण मानव प्राणियों में भी पाने हैं। (२) ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त व्यक्ति में, एक नये आध्यात्मिक शरीर का उदय हुआ है, जो सार्वभौम शरीर अथवा महाकारण शरीर कहलाता है, जो विराट् मन का स्थान है। ठीक जिस प्रकार प्रानी गिलास के अन्दर भरा होता है, उसी तरह यह कहा जा सकता है कि विराट् मन विराट् शरीर के अन्दर भरा है। इसलिये, यद्यपि विराट् शरीर और विराट् मन दो विभिन्न दायरों के द्वारा दिखाये

subtle body (in which there is a partial expression of desires) and (vi) the gross body (in which the desires come to be fully expressed). All the circles round the innermost circle of the soul, with the exception of the first circle of consciousness, are layers of consciousness. Of these layers, the outermost circle and the circle next to it respectively represent the gross and the subtle bodies, while the other four layers around consciousness represent four functions of one mental body. Of these four functions of the mental body, two (i.e., felt desires and intellect) are usually included under mind; and the other two (i.e., sanskaras or unexpressed desires and the seat of individuality) are included under the ego. Thus, at the human stage, the soul, with its consciousness, has **three bodies,** but **six layers** (including the gross layer known as the gross body).

When (after reincarnations) the human soul launches upon the process of realization, intellect is replaced by inspiration, which finds its expression from the first to the third plane; and from the fourth to the sixth plane, this inspiration is transformed into illumination.

The coloured rings or concentric circles represent the soul of a God-realized person, with all the vehicles at its disposal. In respect to this diagram, the following points should be carefully noted: (i) The three outer rings respectively represent the gross, subtle and the mental bodies. We find all these bodies also in ordinary human beings. (ii) In the God-realized person, there has emerged a new spiritual body, known as the universal body or *mahakarana sharir*, which is the seat of the universal mind. Just as water is contained in a cup, the universal mind may be said to be contained in the universal body. Therefore, though the universal body and the universal mind are represented by two different circles, they

गये हैं, तथापि वे एक-दूसरे से अविभाज्य हैं । (सद्गुरु का विराट् मन, जो उसके विराट् शरीर के माध्यम से कार्य करता है, सृष्टि में सब व्यक्तिगत आत्माओं के कारण-शरीरों के सीधे सम्पर्क में होता है; और वह इन कारण-शरीरों के माध्यम से, मन भुवन, प्राण भुवन और अन्न भुवनों में कोई भी परिवर्तन कर सकता है । यद्यपि सद्गुरु को साधारण मनुष्यों की तरह कारण शरीर प्राप्त होता है, वह हमेशा केवल अपने विराट् मन के माध्यम से कार्य करता है) । (३) सद्गुरु की आत्मा में, मानवी स्थिति का सीमित अहङ्कार असीमित अहङ्कार के रूप में बदल जाता है, अर्थात् पृथक्ता और सङ्कीर्ण व्यक्तित्व की भावना का स्थान असीमित अखण्ड्य और सर्व-व्यापक अस्तित्व का साक्षात्कार ले लेता है । (४) सद्गुरु की आत्मा अनन्त चेतना से सम्पन्न होती है । मानव स्थिति पर पूर्ण चैतन्यता आत्मा की अनन्तता का उधार अथवा प्रदर्शन संस्कारों की सीमितताओं के कारण नहीं करती; लेकिन ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त व्यक्ति में, यह पूर्ण चेतना किन्हीं भी सीस्कारों से सीमित नहीं होती और, इसलिये, वह आत्मा की अनन्तता को उजागर अथवा उद्घाटित करती है ।

२५. मेहेरबाबा के बताये हुये पाँच लोक (८२)

मेहेरबाबा कहते हैं कि पाँच लोक हैं :— (१) स्थूल, (२) सूक्ष्म, (३) मानसिक, (४) समाष्ट ओर (५) यथार्थ । प्रथम चार लोक तत्सम्बन्धी अस्तित्वों से सम्बन्ध रखते हैं और पाँचवाँ एक और एकमेव यथार्थ सत् से बना होता है ।

विस्तृत विवरण का प्रश्न और अधिक महत्वपूर्ण होता है जबकि एक विषय साधारण मनुष्य के अनुभव से परे होता है । एक ओर, अधिक विवरण मनुष्य को और अधिक भ्रान्त कर देते हैं, और कम विवरण चीज़ों को कम समझाते हैं । यह बहुविध शब्दों और अभिव्यक्तियों को जन्म देता है जिनका प्रयोग विभिन्न दृष्टिकोणों से और विभिन्न प्रसङ्गों में किया जाता है । छिपे हुये अनुभव के अभाव में, उसी एक चीज़ के वर्णन बहुधा एक-दूसरे वे, विपरीत मालूम पड़ते हैं । किन्तु सापेक्ष अनुभवों की दृष्टि अथवा सत्य के अन्तिम साक्षात्कार में, वे

are inseparable from each other. (The universal mind of the Master, which works through his universal body, is in direct contact with the mental bodies of all the individual souls in Creation; and it can, through these mental bodies, bring about any changes in the mental, subtle or gross worlds. Though the Master has a mental body like ordinary humans, he always works only through his universal mind.) (iii) In the Master's soul, the limited ego of the human stage is transmuted into the unlimited Ego, i.e., the feeling of separateness and narrow individuality is replaced by the realization of unlimited, indivisible and all-comprehensive existence. (iv) The soul of the Master is endowed with infinite consciousness. The full consciousness at the human stage does not reveal or express the infinity of the soul, owing to the limitations of sanskaras ; but in the God-realized person, this full consciousness is not limited by any sanskaras and, therefore, it reveals or expresses the infinity of the soul.

15 The Five Spheres Described by Meher Baba (70)

Meher Baba says there are five spheres: (1) gross, (2) subtle, (3) mental, (4) composite and (5) Real. The first four concern relative existences and the fifth one is composed of the one and only Real Existence.

The question of details is all the more important when a subject is beyond ordinary human experience. On the one hand, more details confuse one more, and less details explain things less. This gives rise to a variety of terms and expressions for use from different viewpoints and in different contexts. In the absence of underlying experience, descriptions of the same one thing often sound contradictory. But in the light of relative experiences

ही विपरीततायें उसी एक सत्य के विषय में पूरक प्रकाशन सिद्ध होती हैं । तथ्यों और तथ्यों का तथ्य पाँच लोकों के पीछे छिपा हुआ इस बात को सिद्ध करेगा ।

प्रथम तथ्य, स्थूल लोक, यद्यपि वह अस्तित्व के लिये बिल्कुल सूक्ष्म लोक पर निर्भर होता है, सूक्ष्म लोक से अनेकानेक अर्थों में प्रत्यक्ष रूप से भिन्न होता है । स्थूल लोक असंख्य जगतों, सूर्यों, चन्द्रमाओं, तारागणों और वास्तव में भद्दी से भद्दी चीज़ से लेकर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ समस्त भौतिक चीज़ों से बना होता है । स्थूल लोक मे कुछ दुनियाओं में खनिजपदार्थ और वनस्पतियाँ ही होती हैं; और कुछ अन्य जगतों में असंख्य देहधारी प्राणी भी होते हैं, और कुछ जगतों में मानव प्राणियों का समादेश होता है । स्थूल लोक में सर्वोच्च महत्वपूर्ण चीज़ हमारी दुनियाँ (पृथ्वी) है । यहाँ, अन्य सब प्राणियों के बीच, जिनको स्थूल लोक की अधिक या कम अन्शों में चेतना होती है, मनुष्य अपनी पूर्ण चेतना के साथ समस्त स्थूल जगतों‡ के समस्त अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ होता है । किन्तु जब तक मनुष्य यहाँ सूक्ष्म लोक के प्रति जागृत होता है, उसको पूर्ण चेतना स्थूल के साथ पूर्णरूप से लगी रहती है, उस समय भी जब वह आध्यात्मिक विषयों का चिन्तन और अध्ययन करता है, उस एक की तरह जिसका वाद-विवाद यहाँ दिया गया है ।

(२७१)

‡ इसका अर्थ स्थूल लोक के समस्त मानव प्राणियों के बीच अध्यात्म में श्रेष्ठ भी होता है । मेहेरबाबा हमें बताते हैं कि स्थूल लोक में तीन जगत, जहाँ मानव प्राणी बसे हैं, हमारी दुनियाँ (पृथ्वी) ऐसी एक है जहाँ मनुष्य अध्यात्म में सबसे ऊँचा है । वह समझाते हैं कि, जबकि इस पृथ्वी पर मनुष्य अपने व्यक्तित्व में बराबर-बराबर हृदय और मन रखता है (५० प्रतिशत मन और ५० प्रतिशत हृदय रखता है), अन्य दो जगतों में मनुष्य क्रमशः १०० प्रतिशत दिमाग़ और ७५ प्रतिशत मन तथा २५ प्रतिशत हृदय रखता है । मनुष्य, अपने पुनर्जन्मों के दौरान में, तीन जगतों में से किसी एक में जन्म लेता है, किन्तु उसे अनिवार्यरूप से अन्ततः अपने दिव्य प्रारब्ध को, जो ईश्वर-साक्षात्कार है, पूरा करने के लिये देह धारण करनी चाहिये और इस पृथ्वी पर पुनर्जन्म लेना चाहिये । स्थूल जगत में, पृथ्वी आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर करने के लिये अन्तिम और निकटतम सीढ़ो है । दो अन्य दुनियायें आबादी के ढांचे में पृथ्वी के अत्यन्त निकट हैं । कुल १८,००० दुनियायें ऐसी हैं जिनमें जीवन है, किन्तु ये दो दुनियायें और पृथ्वी मानव जीवन के ढाँचे में एक-दूसरे के सदृश्य होती हैं ।

or the final realization of Truth, the very contradictions prove to be complementary expressions about the same one Truth. The facts and the fact of facts underlying the five spheres will bear this out.

The first, the gross sphere, although entirely depending for its existence on the subtle, is distinctly different in very many respects from the subtle. The gross sphere consists of numberless worlds, suns, moons, stars, and in fact everything material from the crudest to the finest. Some of the worlds in the gross sphere contain minerals and vegetation only; some others contain countless embodied beings also, and in some there are included human beings. The point of prime importance in the gross sphere is our world (Earth). Here, amongst all other beings who are conscious in greater or lesser degree of the gross, man with his full consciousness is superior to all other beings of all gross worlds.* But until man here awakens to the subtle, his full consciousness remains fully occupied with the gross, even when he reads and thinks of spiritual subjects such as the one discussed here.

* This means also superior spiritually amongst all human beings of the gross sphere. Meher Baba tells us that of the three worlds in the gross sphere which are inhabited by human beings, ours (the Earth) is the one where man is the highest spiritually. He explains that, whereas man on this Earth possesses in his personality equal degrees of head and heart (50% head and 50% heart), man on the other two worlds possesses 100% head, and 75% head and 25% heart, respectively. Man, in the course of his reincarnations, is born on any one of the three worlds, but must finally take form and reincarnate on this Earth to fulfill his divine destiny which is God-realization. In the gross sphere, the Earth is the last and nearest stepping stone to the Path. The two other worlds are most close to the Earth in the pattern of habitation. Altogether there are 18,000 worlds with life, but these two worlds and the Earth are akin to one another in the pattern of human life.

दूसरा, सूक्ष्म लोक, प्राणशक्ति का लोक है, और यद्यपि वह सात खण्डों में विभाजित है, तथापि वह ख़ुद अपनेतईं एक दुनियाँ है । उसका स्थायी रहना मनो लोक पर निर्भर होता है लेकिन वह स्थूल लोक से पूर्णतया स्वतन्त्र रहता है । देश और काल की भाषा में, स्थूल लोक का प्रदेश, अपने अनन्त अन्तरिक्ष के साथ जिसमें अनन्त सूर्यों, नक्षत्रों और दुनियाओं, हमारी पृथ्वी सहित, के विश्व सन्निहित होते हैं, सूक्ष्म लोक के साथ तुलना किये जाने पर केवल एक बिन्दु मात्र है ।

आत्म-साक्षात्कार का मार्ग, सूफ़ियों की **राह-ए-तरीक़त** और वेदान्तियों का आध्यात्मिक मार्ग जिसमें सात भूमिकायें (**मुक़ाम** अथवा **स्थान**), होती हैं, स्थूल के प्रथम लोक और पाँचवें लोक, यथार्थ लोक, के बीच एकमात्र सेतु है । मार्ग अपनी प्रथम तीन भूमिकायें सूक्ष्म लोक, दूसरे लोक, में रखता है ।

सूक्ष्म लोक अपनी प्राणशक्ति के, अपने फ़रिश्तों के, और इस सबसे ऊपर मनुष्य की खण्डित तथा पूर्ण सूक्ष्म-चेतना के द्वारा (मानवी चेतना आंशिकरूप से अथवा पूर्णरूप से स्थूल से स्वतन्त्र होकर, स्थूल में स्वतन्त्र हुई), स्वयं स्थूल लोक के अन्दर प्रवेश करता हुआ, अनन्त अन्तरिक्ष में भी, उसके सूर्यों, तारागणों, नक्षत्रों समेत और वास्तव में स्थूल लोक के अन्दर सम्पूर्ण जगतों में हर चीज़ और हर प्राणी में प्रविष्ट होता है ।

सूक्ष्म दृश्यों, ध्वनियों, अनुभूतियों और शक्तियों की असीमित विविधता और प्रगाढ़ता का स्थूल लोक में कोई जोड़ नहीं होता; सिवाय प्राणशक्ति के जो स्थूल, और मानवी चेतना के बन्धनों के अन्दर सीमित हो जाती है, और मानवी-चेतना स्थूल सीमितताओं से घिरी होती है ।

तीसरा, मनोलोक लोकों का लोक है । वह सूक्ष्म और स्थूल दोनों लोकों से बिल्कुल स्वतन्त्र होता है और वह ईश्वरत्व द्वारा स्वतन्त्ररूप से स्थिर रक्खा जाता है । मनोलोक व्यक्तिगत, सामूहिक और व्यापक मन का निवास-स्थान है । मन अपने ख़ुद के लोक को इतना अधिक प्रसारित करता है जितना वह सूक्ष्म और स्थूल लोकों के आद्योपान्त करुता है ।

(२७२)

The second, the subtle sphere, is the sphere of energy, and although it is divided into seven divisions, it is one world by itself. Its subsistence depends upon the mental sphere but it exists entirely independent of the gross sphere. In the parlance of time and space, the domain of the gross sphere, with its infinite space comprising universes of innumerable suns, planets and worlds, including our Earth, is but a speck as compared with the subtle sphere.

The path of Self-realization, the rah-e-tariqat of the Sufis and the *adhyatmic marga* of the Vedantists, consisting of seven planes (muqams or sthans), is the one and only bridge between the first sphere of the gross and the fifth, the Real sphere. The path has its first three planes in the subtle, the second sphere.

The subtle sphere through its energy, its angels, and above all through man's partial and full subtle-consciousness (human consciousness partly or fully freed from the gross, in the gross), while penetrating the gross sphere itself, also penetrates infinite space with its suns, stars, planets and, in fact, every thing and every being in all the worlds within the gross sphere.

The unlimited diversity and intensity of subtle sights, sounds, feelings and powers have no parallel in the gross sphere, save energy which becomes limited within the bounds of the gross, and human consciousness which is surrounded by gross limitations.

The third, the mental sphere, is the sphere of the spheres. It is absolutely independent of both the subtle and gross spheres and is independently sustained by Divinity. The mental sphere is the very abode of Mind, individual, collective and universal. The Mind pervades its own sphere as much as it does throughout the subtle and gross spheres.

इस मनोलोक में बुद्धि, सहज ज्ञान, अन्तर्दृष्टि और ज्योति से सम्बन्धित प्रत्येक चीज़ का समावेश होता है । इसके भीतर **मार्ग** की उच्चतर बूमिकायें, पाँचवीं और छठवीं, भी अन्तर्निहित होती हैं । चौथी भूमिका सूक्ष्म लोक में तीसरी भूमिका और मनोलोक में पाँचवीं भूमिका के बीच केवल एक संधिस्थल है ।

फिर भी, मनोलोक यथार्थ लोक का स्पर्श नहीं करता और न स्पर्श कर सकता है, क्योंकि कोई चीज़ सिवाय खुद उसकी सत्यता के, उसका स्पर्श नहीं कर सकती, जिसे परमात्मा की शाश्वत् "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था में खुद की चेतना होती है ।

चौथे, पृथक् भागों से निर्मित लोक को अत्यधिक नाम दिया जाता है और वह बिल्कुल कम समझा जाता है । वह इक्कीस उप-लोकों से बना होता है और इस रूप में वह एक लोक, और अपनेआप एक लोक नहीं दोनों होता है ।

जोड़ने बाली इक्कीस कड़ियाँ सात उप-स्थूल और उप-सूक्ष्म लोकों तथा स्थूल और सूक्ष्म लोकों के बीच बनी होती हैं : सात उप-सूक्ष्म और उप-मनोलोकों के तथा सूक्ष्म और मनोलोकों के बीच बनी होती हैं; और सात उप-मानसिक तथा उप-अतिश्रेष्ठ लोकों तथा मनोलोक एवं यथार्थ लोक के बीच बनी होती हैं ।

पृथक् खण्डों से निर्मित लोक की विचित्र प्रकृति एवं स्थिति निम्नलिखित टेबुलों के किसी एक के माध्यम से और अधिक आसानी से समझी जा सकती है :

टेबुल १ [text for table 1 -- graphics required]

१.स्थूल
७ (निचला)
२.सूक्ष्म
७ (मध्य)
३.मानसिक
७ (उच्चतर)
४.मिश्रित
५.यथार्थ

This sphere of the Mind includes everything relating to intellect, intuition, insight and illumination. Herein are also contained the loftier planes of the Path, the fifth and the sixth. The fourth plane is but a junction between the third plane in the subtle sphere and the fifth plane in the mental sphere.

Nevertheless, the mental sphere does not and cannot touch the Real Sphere, as nothing can touch it save its own Reality, conscious of itself in the eternal "I am God" state of God.

The fourth, the composite sphere, is the most named and the least understood one. It is composed of twenty-one sub-spheres and as such it is both a sphere and not a sphere by itself.

The twenty-one connecting links are made up of seven sub-gross and sub-subtle spheres between the gross and the subtle spheres; seven sub-subtle and sub-mental spheres between the subtle and the mental spheres; and seven sub-mental and sub-supramental sphere s between the mental sphere and the Real Sphere.

The peculiar nature and position of the composite sphere could be grasped more easily through either of the following tables:

TABLE I (graphics required here)

1. Gross 7 (lower)
2. Subtle
4. Composite { 7 (middle)
3. Mental 7 (higher)
5. Real

टेबुल २

(१) स्थूल लोक (प्रथम लोक)
सात निचले उप-लोक
के
(४) मिश्रित लोक (चौथा लोक)

(२) सूक्ष्म लोक (दूसरा लोक)
सात मध्यवर्ती उप-लोक
के
(४) मिश्रित लोक (चौथा लोक)

(३) मनो लोक (तीसरा लोक)
सात उच्चतर उप-लोक
के
(४) मिश्रित लोक (चौथा लोक)

(५) यथार्थ लोक (पाँचवाँ लोक)

सात निम्नतर उप-लोक अध्यात्म में स्थूल लोक से श्रेष्ठ हैं और वे स्थूल को निश्चितरूप से स्पर्श करते हैं, जबकि सात उच्चतर उप-लोक न तो अध्यात्म में मनो लोक से श्रेष्ठ हैं और न वे कभी **यथार्थ लोक** का स्पर्श पा सकते हैं जैसाकि आगे आने वाले विविरणों से स्पष्ट होगा ।

एक ओर, सर्व-महत्वपूर्ण मार्ग, जो मनुष्य और परमात्मा के बीच की खाई को पाटने वाला एक और एकमात्र सेतु है, सूक्ष्म और मानसिक दो लोकों को पार करता ह, और दूसरी ओर, अगणित चीज़ें और प्राणी इन दो लोकों में हैं और साथ-साथ वे सात निम्नतर तथा सात उच्चतर उप-लोकों के बीच में भी हैं, और उन चीज़ों और प्राणियों में से प्रत्येक प्रत्यक्षरूप से अथव अप्रत्यक्षरूप से मार्ग के लिये प्राणप्रद हैं ।

सात निम्नतर से लेकर सात माध्य उप-लोकों तक, सूक्ष्म लोक के सहित, अन्य चीज़ों के अतिरिक्त देह से पृथक् हुई आत्माओं (प्रेत आत्माओं) तथा देह से विलग न हुई आत्माओं (फ़रिश्तों) के निवासस्थान होते हैं । सात मध्य लोकों से लेकर सात उच्चतर उप-लोकों तक, मनोलोक के सहित, अन्य चीज़ों के अतिरिक्त प्रधान देवदूतों का वास होता है ।

प्रेत आत्माओं (शरीर से विच्छिन्न हुई आत्माओं), अच्छी और

TABLE II

(1) The Gross Sphere (First Sphere)
Seven **lower** sub-spheres
of
(4) The Composite Sphere (Fourth Sphere).

(2) The Subtle Sphere (Second Sphere)
Seven **middle** sub-spheres
of
(4) The Composite Sphere (Fourth Sphere).

(3) The Mental Sphere (Third Sphere)
Seven **higher** sub-spheres
of
(4) The Composite Sphere (Fourth Sphere).

(5) The Real Sphere (Fifth Sphere).

The seven lower sub-spheres are spiritually superior to the gross sphere and they do touch the gross, whereas the seven higher sub-spheres are neither spiritually superior to the mental sphere nor can they ever touch the Real Sphere as will be clear from further details which follow.

On the one hand, the all-important Path, the one and only bridge between man and God, runs through the two spheres of the subtle and the mental, and on the other hand, there are innumerable things and beings in these two spheres as well as in between the seven lower and seven higher sub-spheres, and each one of the things and beings is directly or indirectly vital to the Path.

From the seven lower to the seven middle sub-spheres, inclusive of the subtle sphere, amongst other things there are the abodes of the disembodied souls (spirits) and the un-embodied souls (angels). From the seven middle to the seven higher sub-spheres, inclusive of the mental sphere, amongst other things there is the abode of the archangels.

बुरी दोनों, को "इन्तज़ार की अवस्था" में रहना पड़ता है, और ऐसा उन्हें सुख और दुःख की अवस्थाओं का अनुभव पहले और बाद में दोनों में करना पड़ता है—उन अवस्थाओं को आमतौर पर स्वर्ग और नर्क कहा जाता है ।[३७]

फ़रिश्ते, अर्थात् देह से पृथक् हुई आत्मायें, परमात्मा की मर्ज़ी के लिये केवल अपनेआप चलने वाली हैं और वे ऐसा कुछ नहीं करतीं जैसा ईश्वर के द्वारा इच्छित अथवा प्रेरित नहीं होता । ये इच्छायें केवल दैवी शक्ति एवं गतिविधि का प्रकाशन मात्र होती हैं जो सर्वव्यापी होती हैं । सारांश में, फ़रिश्ते निर्मल होते हैं और भौतिक शरीर के साथ दूषित नहीं होते । इस प्रकार वे मनुष्य से अधिक श्रेष्ठ होते हैं जिसकी चेतना स्थूल (जिसका अर्थ है एक मनुष्य जो अब भी मार्ग पर नहीं है) की सीमितताओं के परे नहीं गई है । लोक-विरुद्धता से हीन मनुष्य, जो भौतिक शरीर के साथ दूषित होने में सफल हुआ है, वास्तव में अपने अन्दर की गुप्त क्षमताओं की शक्ति में श्रेष्ठ है । आनी अपुर्णताओं, परिमितताओं और निर्बलताओं का अनुभव करता हुआ, वह अपनी वास्तविक शक्ति एवं निर्मलता का अनुभव करने के लिये, जो प्रधान देवदूतों की भी पहुँच से बाहर होती हैं सक्षमतापूर्वक परिपक्व होता है ।

प्रधान देवदूत परमात्मा के मुख्य दिव्य गुणों—सृष्टि की रचना करने, रक्षा करने और सीमित पैमाने पर सीमित जीवन को नष्ट करने, और सीमित पैमाने पर असीमित ज्ञान प्रकट करने—के लिये माध्यम होते हैं । प्रधान देवदूत वे हस्तियाँ हैं जो सदैव आनन्द का रस लेती हैं और कभी पीड़ा नहीं भगितीं ।

प्रधान देवदूतों का निवास, चौथे लोक के उप-खण्डों से निर्मित लोक, मिश्रित लोक जिसका विवेचन यहाँ किया गया है, तीसरे लोक—मनोलोक—के बाद आता है और वह सबसे निकट के पाँचवें लोक, अर्थात् **यथार्थ लोक** के निकटतम होता है । यह सत्य है, फिर भी यह समग्र सत्य नहीं है; क्योंकि अपनी निकटता के बावजूद वह **यथार्थ लोक** को नहीं छू सकता । प्रधान देवदूत, सर्वोच्च उप-श्रेष्ठ लोक से, कभी परमात्मा में, मनो लोक में, परमात्मा को हर जगत और हर चीज़ में आमने-सामने देख सकता है और देखता है । उप-श्रेष्ठ लोकों के अन्त का अन्तिम बिन्दु, वह है जिसको सूफ़ी लोग सदरत-उल-मुनतहा

The spirits (disembodied souls), both good and bad, have to remain in the "state of waiting," both before and after experiencing the states of pleasure and pain—states commonly known as heaven and hell.[37]

The angels (unembodied souls) are mere automatons for the will of God and they do nothing which is not desired or prompted by God. These wishes happen to be mere expressions of divine power and activity which are all-pervading. In short, angels are pure and not contaminated with physical embodiment. In this they are superior to the man whose consciousness has not extended beyond the limitations of the gross (meaning a man not yet on the Path). Paradoxically, man, the inferior, who has succeeded in being contaminated with physical embodiment, is actually the superior in the strength of the potentialities latent within him. Experiencing his imperfections, limitations and weaknesses, he is potentially ripe to realize his real strength and purity which are far above those of, and beyond the reach of, even the archangels.

The archangels are the mediums for the expression of God's principal divine attributes of creating, preserving and destroying limited life on an unlimited scale, and of communicating unlimited Knowledge on a limited scale. The archangels are entities who always enjoy and never suffer.

The abode of the archangels, the sub-supramental spheres of the fourth, the composite sphere which is discussed here, comes after the third—the mental sphere—and is nearest the fifth, the Real Sphere. This is true, yet not the whole truth; for in spite of its proximity it cannot touch the Real Sphere. An archangel, from the highest sub-supramental sphere, can never see God, whereas man in the sixth plane of the third, the mental sphere, can and does see God face to face everywhere and in everything. The last point of the last of the sub-supramental spheres is what the Sufis

(अन्तिम सीमा), कहते हैं, जिसके परे आरचैञ्जिल गबरील भी नहीं जा सकता, जैसा आमतौर पर मुसल्मान लोगों का सही विश्वास है ।

मनुष्य को प्राप्त है, और मनुष्य (चूँकि केवल मनुष्य कर सकता है) वास्तव में ख़ुद अपने—पाँचवें, वास्तविक लोक—को समग्र चार लोकों के वास्तव में अस्तित्वरहित सापेंक्ष अस्तित्व की सात कड़ियों की अन्तिम कड़ी को, लाँघ जायगा । संक्षेप में, प्रधान देवदूतों को अनिवार्यरूप से देवदूत होता बन्द करना होगा और मनुष्य बनना होगा, इसके पहले कि वे मनुष्य को प्राप्त यथार्थता तक पहुँच सकें । और जब मनुष्य मनुष्य नहीं रहता और "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था में प्रवेश करता है, वह अनुभव करता है कि फ़रिश्ते और प्रधान देवदूत वास्तव में एक या दूसरे अर्थ में ख़ुद उसके ही गुण हैं ।

अन्ततः चतूर्थ—पृथक् भागों से मिश्रित—लोक के उच्चतर सात उप लोकों का विनाश, वह प्रपंच है जो **क़यामत** अथवा **महाप्रलय** कहलाता है, और जिस समय यह घटित होता है तब सृष्टि का सम्पूर्ण अस्तित्वरहित अस्तित्व, अपने सभी लोकों और उपलकिों सहित, एक अभिव्यक्त वृक्ष के समान, अन-अभिव्यक्त के अस्तित्वरहित अप्रगट बीज के रूप में पीछे को चला जाता है, और अब वह अनन्तता के दूसरे क्षण में एकबार फिर नये रूप प्रगट होने के लिये ऐसा करता है ।

चौथा, मिश्रित लोक, आमतौर पर प्रथम तीन लोकों में नीचे लिखे अनुसार निहित होता है :

(१) स्थूल लकि + चौथे लोक का अन्श, अर्थात् मिश्रित लोक; सूफ़ियों का **आलम-ए-नसूत** है और वेदान्तियों का **अन्न भुवन** है ।

(२) सूक्ष्म लोक + चौथे लोक का अन्श, मिश्रित लोक, सूफ़ियों का **आलम-ए-मलकूत** है और वेदान्तियों का **प्राण भुवन** है ।

(३) मनो लोक + चौथे लोक का अन्श, मिश्रित लोक, सूफ़ियों का **आलम-ए-जबरूत** और वेदान्तियों का **मनो भुवन** है ।

बाद वाले तीन लोक भी (चौथे समेत) सामूहिकरूप से **त्रिभुवन** कहलाता हैं; सूफ़ी लोग उनको सामूहिक रूप से **दो-आलम** (दो लोक) कहते हैं जिसका अर्थ है एक ओर स्थूल लोक, और दूसरी ओर सूक्ष्म तथा मनोलोक (मिश्रित लोक सहित) ।

पाँचवाँ **वास्तविक लोक,** मार्ग की सातवीं भूमिका भी है, पूर्ण महाचैतन्य की भूमिका है, जिसका साधारण अर्थ होता है पूर्ण मानवी

call the *sadrat-ul-muntaha* (the last limit), beyond which, as is popularly and rightly believed by the Muslims, even the archangel Gabriel cannot go.

Man has and man shall (because man alone can) jump over the last seven links of the really non-existent relative existences of all the four spheres into his really own—the fifth, the Real Sphere. In short, angels must necessarily cease to be angels and become man before they can reach the Reality attainable to man. And when man ceases to be man and enters the "I am God" state, he realizes that angels and archangels are in fact his own attributes in one sense or a nother.

Finally the dissolution of the higher seven sub-spheres of the fourth—the composite—sphere, is the phenomenon called qiamat or mahapralaya, and when this takes place the whole of the non-existent existence of Creation, with all its spheres and sub-spheres, like a manifested tree, recedes into the unmanifested seed form of non-existent non-existence, only to be manifested anew once more in the very next moment of eternity.

The fourth, the composite sphere, is commonly included in the first three spheres as follows:

1) The gross sphere plus part of the fourth, the composite sphere, is the *alam-e-nasut* of the Sufis and the *anna bhuvan* of the Vedantists.

2) The subtle sphere plus part of the fourth, the composite sphere, is the *alam-e-malakut* of the Sufis and the *pran bhuvan* of the Vedantists.

3) The mental sphere plus part of the fourth, the composite sphere, is the *alam-e-jabrut* of the Sufis and the *mano bhuvan* of the Vedantists.

The latter also call the three (including the fourth) spheres collectively the *tribhuvan* (triple sphere), and the Sufis call them collectively *do alam* (two spheres) meaning the gross on the one hand, and the subtle and the mental (including the composite sphere) on the other hand.

The fifth, the Real Sphere, is also the seventh plane of the Path, the plane of full super-consciousness which, in simple words, means the full

चेतना जो हुई के किसी भी रङ्ग अथवा पद-चिह्न से पूर्णतया स्वतन्त्र हो गई है और सापेक्ष अस्तित्व के सम्पूर्ण चार लोकों में विभिन्न अन्शों में प्राकृतिकरूप से विद्यमान है । यह कहता ग़लत न होगा कि पाँचवाँ लोक अथवा सातवीं भूमिका न तो कोई लोक है और न कोई भूमिका है बल्कि परमात्मा के स्वयं **आत्मत्व** की यथार्थता है—जिसको मानवजाति अल्लाह, **परमात्मा,** सर्वशक्तिमान ईश्वर, **यज़दान,** इत्यादि नाम से पुकारती है । उसी एक परमात्मा की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार "है" से, "मैं-प्रमात्मा-हूँ" तक और "मैं-परमात्मा-हूँ" से "मैं सबकुछ हूँ" तक **यथार्थ लोक** की विभन्न स्थितियों अथवा पहलुओं के लिये विभिन्न शब्द हैं—जैसे सूफ़ियों के **आलम-ए-हहूत** और **आलम-ए-लहूत** अथवा **विज्ञान भूमिका** तथा **विज्ञान** ।

२६. दृढ़ विश्वास और ज्ञान के प्रकार (८५)

सूफ़ियों के अनुसार, आध्यात्मिक जीवन चार क्रमों में निहित होता है, और पृथ्वी पर मनुष्य का जीवन सम्पूर्ण पहलुओं में केवल एक चेतन, अथवा अचेतन तैयारी है और वह तैयारी नित्य ज्ञान तथा प्रकाश के प्रदेशों के सतत् उद्घाटन के लिये है ईश्वर के साक्षात्कार तक पहुँचाते हैं । ये चार क्रम हैं **शरियत** (**धर्मशास्त्र**), **तरीक़त** (**अध्यात्म मार्ग**), हक़ीक़त (ईश्वर-साक्षात्कार अथवा **ऐक्य**), और **मारेफ़त-ए-हक़ीक़त** (**सत्यानुभूति** अथवा पथ) ।

इमाम मुहम्मद ग़ज़ाली ने इन चार क्रमों की तुलना एक वालनट से की है, जिसके चार अङ्ग होते हैं : बाहरी खाल अथवा चमड़ी, भीतरी खाल अथवा चमड़ी, गूदा, और अन्तस्तल में तेल ।

इस उपमा को अधिक स्पष्ट करने के लिये, हम कह सकते हैं कि शरियत बाहरी चमड़ी है, तरीक़त भीतरी चमड़ी है, हक़ीक़त गूदा है, ओर मारे. फत-ए-हक़ीक़त तेल है ।

जैसे-जैसे जिज्ञासु इन चार क्रमों से होकर गुज़रता है, वैसे ही वैसे वह सत्य के विषय में निश्चितता की निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा प्राप्त करता है । इन नित्य सत्यताओं को सूफ़ी लोग कहते हैं :

(१) इल्म-उल-यक़ीन
(२अ) यक़ीन-उल-यक़ीन

human consciousness fully freed from any vestige or tinge of duality inherent in varying degrees in all of the four spheres of relative existence. It would not be wrong to say that the fifth sphere or the seventh plane is neither any sphere nor plane but the Reality of God's very Selfhood—referred to by humanity as Allah, Paramatma, Almighty God, Yezdan, and so on. According to the different states of the same one God from is to "I am God," and from "I am God" to "I am everything," there are different terms for the different stages or aspects of the Real Sphere—such as alam-e-hahut and alam-e-lahut of the Sufis or vidnyan bhumika and vidnyan.

16 The Types of Conviction and of Knowledge (78)

According to the Sufis, the spiritual life consists of four stages, and man's life on earth in all its aspects is but a preparation, conscious or unconscious, for the ever-unfolding realms of knowledge and illumination that lead to God-realization. These four stages are shariat (dharma shastra), tariqat (adhyatma marga), haqiqat (God-realization or aikya) and marefat-e-haqiqat (Gnosis or satyanubhuti).

Imam Muhammad Ghazali has compared these four stages to a walnut, which has four constituents: the outer skin or husk, the inner skin or lining, the kernel, and the oil within. To make the analogy more explicit, we may say that shariat is the outer husk, tariqat the inner lining, haqiqat the kernel, and marefat-e-haqiqat the oil.

As the aspirant advances through these four stages, he acquires an ever-increasing measure of certainty concerning Truth. These enduring certainties are known to the Sufis as:

(1) *Ilm-ul-yaqin*
(2a) *Yaqin-ul-yaqin*

(२ब) ऐन-उल-यक़ीन
(३) हक्क़-उल-यक़ीन
(४) उर्फ़-उल-यक़ीन

(१) **इल्म-उल-यक़ीन,** अथवा बौद्धिक निश्चितता, पत्थर के समान अटूट श्रद्धा से प्राप्त होती है ।

(२अ) **यक़ीन-उल-यक़ीन,** अर्थात् परमात्मा के भान से सम्पन्न निरन्तर निश्चितता, आन्तिरिक भावनाओं अथवा पथ पर दृश्यों अथवा अध्यात्मिक अनुभवों से प्राप्त होती है । वह आत्मा का पहली भूमिका से पाँछवीं भूमिका के आर-पार आत्मा का दृढ़ विश्वास है ।

(२ब) **ऐन-उलयक़ीन,** अथवा दृष्टि से प्राप्त निश्चितता, वह परमात्मा को सर्वत्र और निरन्तर सचमुच देखने का अनुभव है; यह अन्तर्दृष्ट है ।

(३) **हक्क़-उल-यक़ीन,** अथवा साक्षात्कार की निश्चितता (अर्थात्, यथार्थ अनुभव द्वारा प्राप्त दृढ़ विश्वास), आत्मा को आध्यात्मिक यात्रा की सातवीं भूमिका पर प्राप्त होती है, जो हक़ीक़त है । इस स्थल पर आत्मा को ख़ुद अपने द्वारा अपना ख़ुद अनुभव होता है । यह अवस्था ऐक्य (परमात्मा से मिलन) है ।

(४) उर्फ़-**उल-यक़ीन;** अथवा ज्ञान की निश्चितता, मनुष्य में ईश्वरत्व की पूर्णता से सम्बन्ध रखता है जिसके द्वारा मनुष्य ईश्वर का जीवन व्यतीत करता हुआ **आत्मा** के और विश्व के समस्त रहस्यों को जानता है । यहाँ जो शक्ति काम करती है वह व्यापक मन है (**सार्वभौमिक मानस** अथवा **अक्ल-ए-कुल**), जो सकल ईश्वरी विवेक का केन्द्र है ।

दृढ़ विश्वास के इन प्रकारों को और अधिक समझाने के लिये, हम कल्पना करें कि एक मनुष्य को ज्ञान होता है कि एक बर्तन में दूध भरा है । इस ज्ञान में बुद्धि एवम् अन्तर्ज्ञान द्वारा प्राप्त बधि से अटूट श्रद्धा रखना **इल्म-उल-यक़ीन** और **यक़ीन-उल-यक़ीन** है । यदि वह इस बौद्धिक एवं अन्तर्ज्ञान द्वारा प्राप्त दृढ़ विश्वास से सन्तुष्ट नहीं है और बर्तन के पास जाकर दूध को अपनी आँखों से देखने का सचमुच कष्ट

(2b) *Ain-ul-yaqin*

(3) *Haqq-ul-yaqin*

(4) *Urf-ul-yaqin*

(1) *Ilm-ul-yaqin,* or intellectual certainty (conviction), is derived through rock-like faith.

(2a) *Yaqin-ul-yaqin,* or perceptual certainty through awareness of God, is derived from inner feelings, visions or spiritual experiences on the Path. It is conviction of the soul on the first up through the fifth plane.

(2b) *Ain-ul-yaqin,* or visual certainty (i.e., conviction by sight), is the experience of actually seeing God everywhere and continually; this is antar drishti.

(3) *Haqq-ul-yaqin,* or certainty of Realization (i.e., conviction by actual experience), is attained by the soul on the seventh plane of the spiritual journey, which is haqiqat. Here the soul realizes itself through itself. This state is aikya (union with God).

(4) *Urf-ul-yaqin,* or certainty of gnosis, concerns the perfection of divinity in man by which man living the life of God knows all the mysteries of the Self and of the universe. The faculty brought into play here is the universal mind (sarvabhaumic manas or aql-e-kull), which is the seat of all divine discrimination.

To illustrate these types of conviction still further, let us suppose that a man comes to know that there is milk in a certain vessel. To have implicit faith in this knowledge through intellect and intuitive perception is ilm-ul-yaqin and yaqin-ul-yaqin. If he is not satisfied with this intellectual and intuitive conviction and actually takes the trouble to go over to the vessel and see the milk with his own eyes, and thus feel

करता है, और इस प्रकार ऊसको दृढ़ विश्वास होता है कि वास्तविकता उसके बौद्धिक तथा आन्तरिक ज्ञान से मिलती-जुलती है, तब उसको उस निश्चितता का अनुभव होता है जो **ऐन-उल-यक़ीन** कहलाता है । दूध पीना, और सर्व उद्देश्यों से उससे मिलकर एक हो जाता, उसको **हक़्क़-उल-यक़ीन** का अनुभव प्रदान करता है; और खुद अपने अन्तर में उस सबका ज्ञान प्राप्त होता है जो दूध, जैसे शकर, पानी, तेल, विटामिन, इत्यादि को प्रकट और प्रस्तुत करता है, और वह इनको तथा दूध के विविध प्रयोगों को दूसरों को विस्तुतरूप से बयान करने में समर्थ होता है, और ज्ञान अथवा ज्ञानपथ की अर्थात् **उर्फ़-उल-यक़ीन** की, जो **मारेफ़त-ए-हक़ीक़त** की स्थिति है, निश्चितता है ।

ज्ञान के पाँच प्रकार

सूफ़ियों के मत के अनुसार, मानव प्राणियों को प्रभावित करने वाले ज्ञान के पाँच प्रकार हैं :

पहला प्रकार दुनियाँ के ज्ञान का है, जो भौतिक हिन की प्राप्ति तक सीमित है ।

दूसरा प्रकार **शरियत** का ज्ञान ह, जिसका प्रयोग अधिकान्श में वे लोग करते हैं जिन्होंने इसको, अपने विरोधियों को तर्क और वाद-विवाद के शाब्दिक युद्ध के द्वारा नष्ट करने के लिये, प्राप्त किया है । यह ज्ञान लौकिक धर्मोपदेशकों का है ।

ज्ञान का तीसरा प्रकार आध्यात्मिक पथ का प्रकार है; और यह उन लोगों में पाया जाता है जिन्होंने किसी भीतरी अनुशासन को गम्भीरतापूर्वक प्रहण कर लिया है, और लौकिक धर्मोपदेशकों के समाज को त्याग दिया है । इस ज्ञान में अहम् फिर भी हठात् क़ायम रहता है, और भले तथा बुरे की चेतना अब भी आत्मा से चिपटी रहती है । तत्वज्ञानयों और विचारकों का ज्ञान दूसरे और तीसरे प्रकारों के ज्ञान के बीच सीमान्त रेखा है ।

चौते प्रकार का ज्ञान ईश्वर का ज्ञान है—आत्म (हक़ीक़त) का ज्ञान है । जो व्यक्ति इस ज्ञान तक पहुँच जाता है उसके मिथ्या अहम् का नामोनिशान नहीं रहता और समस्त दुई का लोप हो जाता है ।

ज्ञान का पाँचवाँ प्रकार वास्तविक ज्ञान मार्ग है—**हक़ीक़त** की **मारेफ़त** है, जिसको मेहेरबाबा समझाते हैं कि वह परमात्मा का पूर्ण

convinced that the actuality tallies with his intellectual and intuitive knowledge, he experiences the certainty known as ain-ul-yaqin. To drink the milk, and to become to all intents and purposes one with it, gives him the experience of Haqq-ul-yaqin; and to find within himself the knowledge of all that expresses and represents milk, such as sugar, water, fat, vitamins, etc., and to be able to describe these and the various uses of milk to others in detail, is the certainty of knowledge or gnosis, i.e., urf-ul-yaqin which is the stage of marefat-e-haqiqat.

FIVE TYPES OF KNOWLEDGE

According to the Sufis, there are five types of knowledge affecting human beings:

The first is the knowledge of the world, which is confined to the attainment of material well-being.

The second is the knowledge of shariat, which is mostly used by those who have acquired it to overthrow their opponents with the wordy warfare of logic and argument. This knowledge is that of the exoteric divines.

The third type of knowledge is that of the spiritual Path; and it is found with those who have seriously taken to some inner discipline and have shunned the society of exoterics. In this knowledge the ego still persists, and the consciousness of good and evil still clings to the soul. The knowledge of philosophers and thinkers is on the borderline between the second and third types of knowledge.

The fourth type of knowledge is that of God—the Self (haqiqat). One who arrives at this knowledge has no tinge of false ego left and all vestige of duality disappears.

The fifth type of knowledge is the real gnosis—the marefat of haqiqat, which, Meher Baba explains, is a complete knowledge of God

ज्ञान है और विश्व का पूर्ण ज्ञान है । यही पूर्णता का ज्ञान है जो **रसूल** (**अवतार**) और **क़ुतुब** (**सद्गुरु**) को प्राप्त होता है ।

जब तक आत्मा ज्ञान के सभी विभिन्न क्रमों को पार नहीं कर जाती, **तसव्वुफ़** (ज्ञान) की सर्वोच्च स्थिति, जो **सुलूक** (सामान्य चेतना में उतर कर वापिस आना) है, कभी प्राप्त नहीं हो सकती । ज्ञान मार्ग की इस स्थिति पर पहुँचने पर मनुष्य पूर्ण **सूफ़ी** (सद्गुरु) कहलाने का अधिकारी बन जाता है । जो भी हो, ऐसे उदाहरण हैं जहाँ लोग बीच की स्तितियों को पार किये बग़ैर ज्ञान की चौथी स्थिति पर पहुँच गये हैं, किन्तु वे बिल्कुल दुर्लभ होते हैं, और केवल तभी घटित होते हैं जब ऐसे लोगों का पथ-प्रदर्शन सद्गुरु करता है ।

मेहेरबाबा अध्यात्म में ऊँचे उठी सभी आत्माओं को पाँच मूल प्रकारों में विभाजित करते हैं : परमात्मा में निमग्न (पूर्ण पुरुष), ईश्वरीय प्रेम के नशे में चुर, ईश्वर में लीन, ईश्वर से संचार रखने वाले तथा ईश्वरोन्मत्त । पाठक को डाक्टर विलियम डङ्किन कृत "**दी वेफ़ेयरर्स**" ग्रन्थ के अध्याय १, पृष्ठ २१–३७ की ओर ध्यान दिलाया जाता है, जो इस विषय में बाबा के कथन का वर्णन करता है ।

१७. परमात्मा अनन्त और सबकुछ है (९३)

परमात्मा अनन्त और सबकुछ है ।

सब आत्मायें परमात्मा में है ।

कुछ आत्माओं को स्तूल जगत का अनुभव होता है, कुछ को सूक्ष्म जगत का अनुभव होता है और कुछ को मनो जगत का अनुभव होता है, और कुछ को **परमात्मा** का अनुभव होता है ।

चूँकि सब **आत्मायें परमात्मा** के अन्दर हैं इसलिये उनको भी **परमात्मा** के अन्दर ये विभिन्न अनुभव प्राप्त होते हैं । वे लोग जिनको अनुभव प्राप्त होता है (अर्थात् अनुभव-प्राप्तकर्त्ता) और स्वयं वे अनुभव, सब **परमात्मा में** होते हैं । यद्यपि अनुभवकर्त्ता और अनुभव **परमात्मा में** हैं अतः वे **परमात्मा** के नहीं हैं । वे शून्य के हैं ।

परमात्मा सबकुछ है, और शून्य **सबकुछ में** है ।

अस्तु, आत्मायें जिनको केवल शरीर, प्राण अथवा मानस की चेतना प्राप्त होती है उनको ख़ुदी की चेतना प्राप्त नहीं होती । दूसरे

and a complete knowledge of the universe. This is the knowledge of Perfection possessed by the Rasool (Avatar) and the Qutub (Sadguru).

Unless a soul goes through all the different stages of knowledge, the highest stage of tasawwuf (Wisdom) which is suluk (return to normal consciousness) can never be attained. Arriving at this stage of gnosis entitles one to be called a perfect Sufi (Perfect Master). There are, however, instances where persons have reached the fourth stage of knowledge without going through the intermediary stages, but they are quite exceptional, and occur only when such persons are led by a Perfect Master.

Meher Baba divides all spiritually advanced souls into five basic types: God-merged (Perfect One), God-intoxicated, God-absorbed, God-communed and God-mad. The reader is referred to Chapter I, pages 21–37 of Dr. William Donkin's book *The Wayfarers* which de-lineates Baba's treatment of this subject.

17 *Paramatma* Is Infinite and Everything (85)

Paramatma is Infinite and Everything.

All *atmas* are **in** *Paramatma*.

Some *atmas* experience the gross world, some experience the subtle world and some the mental world, and some experience *Paramatma*.

As all *atmas* are **in** *Paramatma* they also have these different experiences **in** *Paramatma*. Those who experience (the experiencers) and the very experiences are all **in** *Paramatma*. Although the experiencers and the experiences are **in** *Paramatma* they are not **of** *Paramatma!* They are of the Nothing.

Paramatma is the Everything, and the Nothing is in the Everything.

Hence, the *atmas* that are conscious of only sharir, pran or manas are not conscious of Self. In other words, such atmas are conscious of the

शब्दों में, ऐसी आत्माओं को शून्य की चेतना होती है और **सबकुछ** की चेतना नहीं होती । ऐसी आत्माओं को स्थूल, सूक्ष्म अथवा कारण जगत का अनुभव प्राप्त होता है और **परमात्मा** का अनुभव प्राप्त नहीं होता । अर्थात्, उनको शून्य का अनुभव प्राप्त होता है और **सबकुछ** का अनुभव प्राप्त नहीं होता । अतएव यह कहा जा सकता है कि उन आत्माओं को जो **परमात्मा में** हैं आत्म की चेतना प्राप्त नहीं, और वे परमात्मा का अनुभव नहीं कर रहीं, किन्तु उन्हें शून्य की चेतना प्राप्त होती है और वे शून्य की हैं, और वे शून्य का अनुभव करती हैं ।

ये आत्मायें अपनी तद्रूपता इतने वास्तविकरूप से करती हैं कि वे प्रत्यक्षरूप से शून्य बन जाती हैं ।

प्रत्येक प्राणी मूर्तमान शून्य है ।

सम्पूर्ण प्राणी और चीज़ें शून्य की साक्षात् मूर्ति हैं—जो **सबकुछ** के अन्दर हैं ।

१८. पाँच आध्यात्मिक तथ्य (१२६)

(१) साधारण मानव प्राणी :— मनुष्य, मनुष्य के रूप में, अपने को हरेक में और हर चीज़ में देखता है ।

(२) छठवीं भूमिका में पीर :— मनुष्य, मनुष्य के रूप में, परमात्मा को हरेक में और हर चीज़ में देखता है ।

(३) सातवीं भूमिका में मजज़ूब :— परमात्मा, परमात्मा के रूप में, अपने को हरेक में और हर चीज़ में देखता है ।

(४) कुतुब :— परमात्मा, मनुष्य के रूप में, अपनेआप को साथ-साथ हरेक में और हर चीज़ में देखता है ।

(५) उद्धारक :— परमात्मा, परमात्मा और मनुष्य के रूप में, अपनेआपको एकसाथ हरेक में और हर चीज़ में देखता है ।

Nothing and not of the Everything. Such atmas experience the gross, subtle or mental world and do not experience *Paramatma*. That is, they experience the Nothing and do not experience the Everything. Therefore it can be said that the *atmas* that are **in** *Paramatma* are not conscious of the Self, and are not experiencing *Paramatma,* but they are conscious of the Nothing and are of the Nothing, and they experience the Nothing.

These *atmas* identify themselves with the Nothing so realistically that they apparently become Nothing.

Every being is Nothing personified.

All beings and things are personifications of the Nothing—that is in the Everything.

18 Five Spiritual Facts (115) **-- smaller type here --**

(1) Ordinary Human Being:— Man, as man, sees himself in everyone and everything.

(2) Pir in Sixth Plane:— Man, as man, sees God in everyone and everything.

(3) Majzoob in Seventh Plane:— God, as God, sees Himself in everyone and everything.

(4) Qutub:— God, as man, sees Himself simultaneously in everyone and everything.

(5) Saviour:— God, as God and man, sees Himself simultaneously in everyone and everything.

—Meher Baba

१९.असली जन्म और असली मौत (१३१)

असली जन्म एक है और असली मौत एक है । तुम्हारा जन्म एकबार होता है और तुम वास्तव में केवल एकबार मरते हो ।

असली जन्म क्या है ?

वह सत्यता के महासागर में एक बूँद का जन्म है । सत्यता के महासागर में एळ बूँद का जन्म होने का क्या अर्थ है ? वह व्यक्तित्वता का अवतरण है, जिसका जन्म अखण्ड्यता से प्रथम अत्यन्त सीमित चेतना की जगमगाहट के द्वारा होता है, जिसने सीमितता के ज्ञान को असीमित में बदल दिया ।

असली मौत से क्या अर्थ है ?

वह सब परिमितताओं से स्वतन्त्र होने की चेतना है । सब परिमितताओं से मुक्त हो जाता असली मौत है । वह सब सीमितताओं की वास्तविक मृत्यु है । वह मुक्ति है, वह असली जन्म और असली मृत्यु के बीच में, तथा-कथित जन्मों और मृत्युओं के रूप जैसी कोई यथार्थता नहीं है ।

मध्यवर्ती क्रम में जन्मों और मृत्युओं के रूप में वास्तव में जोकुछ घटित होता है वह यह है कि चेतना की सीमिततायें शनैः शनैः क्षीण होती जाती हैं जब तक कि चेतना सब परिमितताओं से स्वतन्त्र नहीं हो जाती । अन्ततोगत्वा चेतना, सभी परिमितताओं से बिल्कुल स्वतन्त्र हुई, अपरिमित सत्याताओं का अनुभव सतत् करती है । यथार्थ मौत होना यथार्थ जीवित रहने के बराबर है । इसलिये मैं बल देकर कहता हूँ : ईश्वर के लिये मरो और तुम ईश्वर के रूप में रहोगे ।

तुम पहले एक बच्चा होते हो । तत्पश्चात् तुम बढ़कर बूढ़े होते हो और शरीर छोढ़ देते हो, किन्तु तुम कभी नहीं मरते और कभी जन्म नहीं लेते । पूर्व जगत में, वेदान्ती लोग पुनर्जन्म में विश्चास रहते हैं और अनेक जन्मों और मृत्युओं में विश्वास करते हैं जब तक मनुष्य ईश्वरत्व को प्राप्त नहीं हो जाता । मुसलमान लोग केवल एक जन्म होने और केवल एक मृत्यु होने में विश्वास रखते हैं । क्राईस्ट और जुरथस्त्र के अनुयायी भी वही विश्वास करते हैं । वे सब सही हैं । लेकिन ईसामसीह, बुद्ध, मुहम्मद, ज़ोरास्टर, वे सब उसी मत को मानते हैं जिससे मेरा अर्थ असली जन्म और असली मृत्यु से है । मैं कहता हूँ कि तुम एक बार जन्म लेते हो और मरते हो ।

(२८२)

19 Real Birth and Real Death (119)

There is one real birth and one real death. You are born once and you really die only once.

What is the real birth?

It is the birth of a drop in the ocean of Reality. What is meant by the birth of a drop in the ocean of Reality? It is the advent of individuality, born of indivisibility through a glimmer of the first most-finite consciousness, which transfixed cognizance of limitation into the Unlimited.

What is meant by the real death?

It is consciousness getting free from all limitations. Freedom from all limitations is real death. It is really the death of all limitations. It is liberation. In between the real birth and the real death, there is no such reality as the so-called births and deaths.

What really happens in the intermediate stage known as births and deaths is that the limitations of consciousness gradually wear off until the consciousness is free from all limitations. Ultimately consciousness, totally free from all limitations, experiences the unlimited Reality eternally. Real dying is equal to real living. Therefore I stress: Die for God and you will live as God.

You are first a child. Then you grow old and drop the body, but you never die and never were born. In the East, Vedantists believe in reincarnation, and in a number of births and deaths until one attains Godhood. The Muslims believe in one birth only and one death only. The Christians and the Zoroastrians hold the same belief. All are right. But Jesus, Buddha, Muhammad, Zoroaster, all meant what I mean by real birth and real death. I say you are born once and die once.

सभी तथा-कथित जन्म और मृत्युयें केवल निद्रा और जागरण हैं । निद्रा और मृत्यु के बीच यह अन्तर है कि तुम सोने के बाद जागते हो और अपने को उसी शरीर में पाते हो; किन्तु मृत्यु के बाद तुम एक भिन्न शरीर में जागते हो । तुम कभी नहीं मरते । केवल भाग्यशाली लोग मरते हैं और ईश्वर के साथ एकरस हो जाते हैं ।

२०. फ़ना और फ़ना-फ़िल्लाह (१५१)

फ़ना अचैतन्य चेतना की अवस्था है ।

फ़ना-फ़िल्लाह में आत्मा को ख़ुद परमात्मा होने की चेतना के स्विाय अन्य सबकुछ की अचेतना होती है ।

आत्मा के अपनी मानव अवस्था के खोने और **निर्विकल्प** की ईश्वरी अवस्था प्राप्त करने के पहिले, उसको **निर्वाण** की शून्य अवस्था का अनुभव करना पड़ता है ।

निर्वाण एक अनन्त शून्यता है, ऐसी अवस्था है जिसमें आत्मा को यथार्थ शून्यता की पूर्ण चेतना प्राप्त होती है, और यदि निर्वाण की अवस्था में मानव शरीर छूट जाता है, तो व्यक्ति ईश्वर के अनन्त आनन्द की अवस्था में चला जाता है ।

कुछ दशाओं में **निर्विकल्प** अथवा फ़ना-फ़िल्लाह के पश्चात् तत्काल और अनिवार्यरूप से **निर्वाण** की अवस्था आ जाती है, जहाँ आत्मा को यथार्थ **सबकुछ** की पूर्ण चेतना प्राप्त होती है । **निर्वाण** और **निर्विकल्प** इतने घनिष्ठरूप से जुड़ी होती हैं कि उनमें से प्रत्येक को ईश्वरी लक्ष्य कहा जा सकता है;

मिथ्या **शून्य** = मिथ्या सबकुछ

यथार्थ **शून्य** = न सबकुछ और न कुछनहीं

यथार्थ **सबकुछ** = अनन्त परमात्मा ।

मिथ्या कुछनहीं मिथ्या सबकुछ की ओर ले जाता है; और यथार्थ **कुछनहीं** यथार्थ **सबकुछ** की ओर ले जाता है । मिथ्या कुछनहीं मिथ्या सबकुछ से जुड़ा होता है; और यथार्थ **कुछनहीं** यथार्थ **सबकुछ** से जुड़ा होता है । अन्ततोगत्वा मिथ्या कुछनहीं मिथ्या सबकुछ में समाप्त हो जाता है, और यथार्थ **कुछनहीं** यथार्थ **सबकुछ** में समाप्त हो जाता है । दुई में मिथ्या कुछनहीं मिथ्या सबकुछ है । ऐक्य में यथार्थ कुछनहीं और यथार्थ सबकुछ एक हैं ।

(२८३)

All the so-called births and deaths are only sleeps and wakings. The difference between sleep and death is that after you sleep you awake and find yourself in the same body; but after death you awake in a different body. You never die. Only the blessed ones die and become one with God.

20 *Fana* and *Fana-Fillah* (137)

Fana is the state of unconscious Consciousness.

In *fana-fillah* soul is unconscious of everything except Self being God.

Before the soul loses its human state and gains the divine state of *nirvikalpa,* it has to experience the vacuum state of *nirvana*.

Nirvana is the infinite vacuum, a state in which the soul is fully conscious of real Nothing, and if in the state of nirvana the human body is dropped, one passes into a state of the infinite bliss of God.

In some cases *nirvana* is immediately and inevitably followed by *nirvikalpa* or *fana-fillah*, where the soul is fully conscious of real Everything. *Nirvana* and *nirvikalpa* are so closely linked that each can be said to be the divine goal;

false nothing = false everything

real Nothing = neither everything nor nothing

real Everything = God the Infinite.

False nothing leads to false everything; and real Nothing leads to real Everything. False nothing is linked to false everything; and real Nothing is linked to real Everything. Eventually false nothing ends in false everything, and real Nothing ends in real Everything. In duality false nothing is false everthing. In unity real Nothing and real Everything are one.

मेहेरबाबा ने नीचे लिखी बातें भी बताई हैं :

१. यतार्थ लक्ष्य मनुष्यरूप में ईश्वर का साक्षात्कार करना है; किन्तु जो लोग ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त होने के पहिले अपने शरीर छोड़ देते हैं (अर्थात्, वे लोग जो निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करने के पहिले निर्वाण की अवस्था में अपने शरीर छोड़ देते हैं), उनका लक्ष्य पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति है । वे केवल अनन्त आनन्द का अनुभव करते हैं ।

२. उस मनुष्य की व्यक्तित्वता जो निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त कर लेता है, मानव शरीर त्याग देने के बाद भी, अनन्त और असीमित के रूप में बनी रहती है और "मैं-परमात्मा-हूँ" का अनुभव निरन्तर बना रहता है । किन्तु जिस मनुष्य को **मुक्ति** प्राप्त हो जाती है वह "मैं आनन्द हूँ" (मैं अनन्त आनन्द हूँ) का अनुभव प्राप्त करता है; और इससे उसका "मैं अनन्त शक्ति-ज्ञान-आनन्द" की असीमित व्यक्तित्वता का एकसाथ अनुभव सीमित कर देता है ।

३. अनन्त ज्ञान परमात्मा की त्रि-प्रकृति का अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है, जबकि मनुष्य को मानवरूप में ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त हो जाता है । अनन्त आनन्द मनुष्य के अनुभव का महत्वपूर्ण पहलू बना रहता है जबकि वह अपना शरीर **निर्वाण** की दशा छोड़ देता है और लक्ष्य के रूप में **मुक्ति** प्राप्त कर लेता है ।

४. **मजज़ूब-ए-कामिल** एकसाथ अनन्त ज्ञान-शक्ति-आनन्द का अनुभव करता है और जब वह नीचे उतरकर सामान्य चेतना में आता है, अर्थात् जब उसको दुई की चेतना भी प्राप्त होती है और वह **मजज़ूब-ए-कामिल** की अवस्था में और अधिक नहीं होता, तब उसको न केवल ज्ञान-शक्ति-आनन्द का अनुभव होता है वरन् वह अपना मानव शरीर धारण किये हुये उनका प्रयोग भी करता है ।

२१. फ़ना और बक़ा की सूफ़ी कल्पना (१५४)

फ़ना और **बक़ा** शबदों का, जैसा सूफ़ी लोग समझते हैं, एक संक्षिप्त अध्ययन है । प्रत्येक भूमिका में ख़ुद उसका **फ़ना** और **बक़ा** होता है । यह याद रखना चाहिये कि भूमिकाओं का फ़ना सातवीं भूमिका का **फ़ना** नहीं है, और भूमिकाओं का **बक़ा कुतुब अवस्था**—पूर्णता की अवस्था—का **बक़ा** नहीं है ।

Meher Baba has also made the following points:

1. The real goal is to realize God in human form; but those who drop their bodies before attaining God-realization (i.e., those who drop their bodies in the state of nirvana before attaining the state of nirvikalpa), their goal is liberation (mukti) f rom the cycle of rebirth. They experience infinite bliss only.

2. The individuality of the one who attains nirvikalpa state is retained as infinite and unlimited even after dropping the human body and there is a continuous experience of "I am God." But the one who attains mukti (liberation) experiences "I am anand" (I am infinite bliss); and this limits his experience of unlimited individuality of "I am infinite Power-Knowledge-Bliss" simultaneously.

3. Infinite knowledge is the most important aspect of the trio-nature of God, when an individual realizes God in human form. Infinite bliss remains the important aspect of one's experience when one has dropped one's body in the state of nirvana and attains mukti, i.e., liberation as the goal.

4. Majzoob-e-Kamil experiences infinite Knowledge-Power-Bliss simultaneously and when he comes down to normal consciousness, i.e., when he is also duality-conscious and is no more in the state of Majzoob-e-Kamil, he not only experiences Knowledge-Power-Bliss but also uses them while having his human body.

21 The Sufi Conception of Fana and Baqa (131)

This is a short study of the terms fana and baqa as understood by the Sufis. Every plane has a fana and baqa of its own. It must be remembered that the fana of the planes is not the fana of the seventh plane, and that the baqa of the planes is not the baqa of the Qutub state—the state of perfection.

सूफ़ी ज्ञान मार्ग में तुलना की निम्नलिखित कुछ ख़ास बातें हैं, और यह दिखाई देगा कि उनका स्पष्टीकरण अधिकान्श मात्रा में सातवीं भूमिका के सम्बन्ध में है और उनके शब्द वास्तव में इन्द्रियातीत ज्ञान रखते हैं ।

फ़ना का शाब्दिक अर्थ है मिटा देना अथवा नाश कर देना । यह एक अवस्था है जो स्थायी नहीं होती ।

बक़ा का शाब्दिक अर्थ है स्थायित्व और वह अवस्था है जो सदैव रहता है ।

फ़ना का अर्थ है ईश्वर की ओर यात्रा करने का अन्त ।

बक़ा का अर्थ है परमात्मा के अन्दर यात्रा करने का प्रारम्भ ।

फ़ना को गुण के रूप में न समझना चाहिये; वह पानी में शकर डालकर घोल तैयार करने की तरह नहीं है । हुजवीरी के अनुसार, इससे सार तत्त्व के लोप होने का अर्थ ध्वनित नहीं होता ।

बक़ा उसको प्रस्तुत करता है जो पहले अनास्तित्व न था और, परमात्मा के तत्त्व के समान, वह बाद में अनास्तित्व न होगा ।

फ़ना गैर (दूसरा, अर्थात् दुई) के ज्ञान का लोप है ।

बक़ा परमात्मा का ज्ञान है जो मनुष्य को ग़ैर का लोप हो जाने के बाद प्राप्त होता है ।

फ़ना महमूद शबिस्तरी कृत गुलशन-ए-राज़ में प्रकट किये गये मत के अनुसार, मनोविकार की, अपनी आत्म-इच्छा और अपने अहङ्कार की मृत्यु है, जिसके फलस्वरूप शाश्वत जीवन (**बक़ा**) की आध्यात्मिक जागृति होती है । इसका अर्थ मिथ्या अहं (खुदी) की विस्मृति भी है जिसने इतने लम्बे समय तक मनुष्य की यथार्थता (परमात्मा) को खुद उससे छिपाये रक्खा है । यदि जिज्ञासु को यह ज्ञान हो जाय कि उसकी खुदी मिट गई है, तो यह एक दोष है । सबसे ऊँची अवस्था है विनाश से विनाश का मिट जाना ।

फ़ना दो प्रकार का होता है, बाहरी और भीतरी ।

बाहरी **फ़ना**; यह कर्मों और दिव्य कर्मों के तेज का **फ़ना** है । इस **फ़ना** को प्राप्त होने वाला व्यक्ति ईश्वरीय कर्मों में इतना निमग्न हो

The following are some of the chief points of comparison in Sufi gnosis, and it will be seen that their exposition is mostly in relation to the seventh plane and that their terms have, of course, a transcendental application.

Fana literally means effacement or annihilation. It is a state that is not permanent.

Baqa literally means permanence and is a state that abides forever.

Fana signifies the end of travelling towards God.

Baqa signifies the beginning of travelling in God.

Fana is not to be considered as an attribute; it is not like the dissolution of sugar in water. According to Hujwiri, it does not signify the disappearance of essence. Baqa represents that which was not non-existent before, and will not be non-existent afterwards, like the essence of God.

Fana is the disappearance of the cognition of ghair (the other, i.e., duality).

Baqa is the knowledge of God that one gains after the disap-pearance of *ghair.*

Fana according to Mahmud Shabistari in *Gulshan-e-Raz,* is death of passion, of self-will and of the ego, resulting in the spiritual awakening to eternal life (baqa). It also means the forgetfulness of the false ego (*khudi*) which has so long been concealing man's reality (God) from himself. If it occurs to the aspirant that he is effaced from self, it is a defect. The highest state is to be effaced from effacement.

Fana is of two kinds, outward and inward:

Outward *fana*. This is the *fana* of deeds and the glory of divine deeds. The possessor of this *fana* becomes so immersed in divine deeds that he

जाता है कि उसको खुद अपनी और हर चीज़ की विस्मृति हो जाती है, सिवाय इच्छा और ईश्वर की मर्ज़ी के । कुछ पवित्र साधकों ने इस मुक़ाम को प्राप्त कर लिया है जिसमें वे शारीरिक आवश्यकताओं के प्रति इतने उदासीन होते हैं कि परमात्मा उनकी देख-रेख करने के लिये किसी को नियुक्त करता है ।

आन्तरिक फ़ना; यह **ज़ात** (**यथार्थता**) में गुणों का **फ़ना** है । जिस मनुष्य को परमात्मा के गुणों के प्रकाशन में **हाल** (**अनुभव**) प्राप्त है वह कभी-कभी अपने गुणों के **फ़ना** में लीन होता है और कभी-कभी परमात्मा के असर एवम् तेज (तजल्ली) के आविर्भाव में लीन होता है ।

बाहरी फ़ना हृदय के स्वामियों का ओर हाल के साथियों का एक अङ्ग है ।

आन्तरिक **फ़ना** श्रेष्ठ पुरुषों का विशिष्ट लक्षण है जो **हाल** को लाँग गये हैं और हृदय के पर्दे को बेधकर निकल गये हैं; और हृदय के मनुष्यों के समाज से हृदयों को बददल देने वाले (परमात्मा) के समाज में शामिल हो गये हैं ।

बक़ा जो बाहरी फ़ना के सम्बन्ध में यह है : इच्छा और वासना की **फ़ना** के बाद परमात्मा गुलाम को अच्छा एवं मर्ज़ी का स्वामी बना देता है ओर उसके हाथ में पथ-प्रदर्शन का पूर्ण नियन्त्रण दे देता है ।

बक़ा आन्तरिक **फ़ना** के सम्बन्ध में यह है : आत्मा न तो सृष्टि के पर्दे के रूप में परमात्मा बनती है और न सृष्टि, परमात्मा का पर्दा बनती है । **फ़ना** में परमात्मा **सृष्टि** का पर्दा होता है, और उन लोगों के लिये जो **फ़ना** की अवस्था तक नहीं पहुँचे, सृष्टि परमात्मा का पर्दा होती है ।

२२.चेतना का प्रतिवर्द्धन (१५९)

मेहेरबाबा और आगे बतलाते हैं :—

"पूर्ण चेतना, जो पहली मानव योनि लेते ही पूर्ण हो जाती है, क्रमश: एक भूमिका के बाद दूसरी भूमिका से पीछे को हटती जाती है । चेतना का यह प्रतिवर्द्धन (जो चेतना पहले ही पूर्ण हो चुकी है) प्रथम बार उस समय प्रारम्भ होता है **जब** गहरे गड़े हुये स्थूल संस्कार क्षीण

is oblivious of himself and of everything except of the desire and the will of God. Some holy aspirants have attained this *muqam* wherein they are so indifferent to physical needs that God appoints someone to look after them.

Inward *fana*. This is the *fana* of qualities in *zat* (Reality). The possessor of hal (experience) in the revelation of the attributes of God is immersed sometimes in the *fana* of his own qualities, and sometimes in the manifestation of the influence (asar) and the glory (tajalli) of God.

Outward fana is a portion of the lords of the heart and of the companions of hal.

Inward fana is peculiar to the noble ones who have outgrown the sway of hal and have pierced the veil of the heart; and from the society of the men of the heart they have joined the society of the converter of hearts (God).

Baqa that is in relation to outward fana is this: After fana of desire and of will God makes the slave into a master of desire and will and gives him absolute control of the reins of guidance.

Baqa in relation to inward fana is this: The soul becomes neither God as the veil of Creation nor Creation, the veil of God. In fana God is the veil of Creation, and to those who have not reached the state of fana, Creation is the veil of God.

22 Involution of Consciousness (144)

Meher Baba comments further:

"Full consciousness, which is complete as soon as the first human form is taken, gradually withdraws, plane after plane. This involution of consciousness (which consciousness is already complete) begins for the first time when the hard-set gross impressions become thinned out. Consciousness thus experiences the first plane. As the impressions get

हो जाते हैं । इस प्रकार चेतना पहली भूमिका का अनुभव करती है । जैसे-जैसे संस्कार और भी अधिक क्षीण होते जाते हैं चेतना और पीछे को हटती जाती है (प्रतिवर्द्धित होती है) और दूसरी भूमिका का अनुभव करती है, और इसी प्रकार बढ़ती चली जाती है जब तक कि सातवीं भूमिका प्राप्त नहीं हो जाती ।

"चेतना के पीछे जाने का अर्थ होता है कि पहले चेतना जो पूर्ण थी, स्थूल संस्कारों पर केन्द्रित थी और आत्म पर केन्द्रित होने से बहुत दूर थी । बाद में, प्रतिवर्द्धन की प्रक्रिया में, जैसे-जैसे संस्कार क्रमशः अधिक और अधिक क्षीण होते जाते हैं, जो वे द्वन्द्वों के विविध अनुभवों की सहायता से होते हैं, बैसे वैसे चेतना भी क्रमशः अपना केन्द्रीकरण निरन्तर खुद की ओर करती है । सातवीं भूमिका में चेतना संस्कारों से रन्जित चेतना नहीं रहती, और इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि चेतना खुद अपने आत्म के ऊपर केन्द्रित होती है । इसका यह अर्थ होता है कि चेतना अपना तादात्म्य आत्म से करती है जैसे ही सम्पूर्ण संस्कार नष्ट हो जाते हैं ।"

२३. पाँच बीजगणित रूप परिभाषायें (१६२)

(१) परमात्मा = अनन्त सत् + अनन्त ज्ञान + अनन्त आनन्द ऋण अचैतन्यता
= **सत्** + **चित्** + **आनन्द** ऋण अचैतन्यता
= **सच्चिदानन्द** ऋण अचैतन्यता

(२) पूर्ण पुरुष = **कुतुब** = **सद्गुरु**
= अनन्त सत् + अनन्त ज्ञान + अनन्त आनन्द + चैतन्यता
= एकसाथ अनन्त होने और सीमित होने की चेतना ।

(३) उद्धारक = पूर्ण पुरुष = इन्सान-ए-कामिल = **पुरातन पुरुष** = बुद्ध
= **साहिब-ए-ज़नाँ** = **रसूल** = **अवतार** = जीवनत क्राईस्ट

thinned out still more the consciousness withdraws (involves) more and experiences the second plane, and so forth until the seventh plane is attained.

"Withdrawal of consciousness means that at first the consciousness which was complete was focussed on gross impressions and far from being focussed on Self. Later on, in the process of involution, as the impressions thin out more and more gradually, with the help of diverse experiences of opposites, the consciousness also concurrently shifts its focus gradually towards Self. In the seventh plane the consciousness is no longer impressioned consciousness, and this naturally results in the consciousness focussing upon its Self. This means that the consciousness identifies itself with Self as all impressions have vanished."

23 Five Algebraic Definitions (137)

(1) GOD = Infinite Existence + Infinite Knowledge + Infinite Bliss – Unconsciousness
= *sat* + *chit* + *anand* minus unconsciousness
= *satchitanand* **minus** unconsciousness

(2) Perfect Master = *Qutub* = *Sadguru*
= Infinite Existence + Infinite Knowledge + Infinite Bliss + Consciousness
= Conscious of being infinite and conscious of finite simultaneously.

(3) Saviour = Perfect Man = *Insan-e-Kamil* = *Puratan Purush* = Buddha
= *Saheb-e-Zaman* = *Rasool* = *Avatar* = Living Christ

= अनन्त सत् + अनन्त ज्ञान + अनन्त आनन्द + चेतना
= एक ही समय असीमित होने की और सीमित होने की चेतना ।

(४) मनुष्य [requires graphic]
अथवा
जीव-आत्मा = शरीर + प्राणशक्ति + मन + चेतना + आत्मा
अथवा
इन्सान

(५) **मजज़ूब-ए-कामिल** = ईश्वरीय "अहं"
= दिव्य चेतना ऋण सीमित चेतना

२४. चार प्रकार की मुक्ति अथवा मोक्ष (१६३)

पूर्णता के विविध प्रकारों का वर्णन करने के लिये, कुछ विशिष्ट सुपरिचित शब्दों का संक्षिप्त प्रयोग यहाँ किया गया है, ताकि जिज्ञासु उनको ईश्वर-साक्षात्कार के विषय के ढाँचे में फ़िट कर सके । पूर्णता के इन प्रकारों का वर्णन करने में, विशेष शब्द मुक्ति का प्रयोग, जिसका शाब्दिक अर्थ "छुटकारा" होता है, यहाँ चार प्रकार की मुक्ति की परिभाषा देने के लिये किया गया है ।

निम्नलिखित चार्ट में आत्मा की चारों प्रकार की मुक्ति सातवीं भूमिका से सम्बन्ध रखती है ।

१) साधारण **मुक्ति** (साधारण **मोक्ष**)
२) **विदेह मुक्ति**
३) **जीवन मुक्ति**
४) **परम मुक्ति**

१) साधारण मुक्ति (मोक्ष)

साधारण मुक्ति (नजात) केवल मृत्यु के बाद कुछ असाधारण, ईश्वर को डरने वाली, सत्य-प्रिय, श्रेष्ठ आत्माओं को प्राप्त होती है; और यह मुक्ति आमतौर पर आत्मा के शरीर छोड़ देने के तीन से पाँच दिनों के बाद आती है । क्योंकि यह मुक्ति बिना शरीर के प्राप्त होती है,

= Infinite Existence + Infinite Knowledge + Infinite Bliss + Consciousness
= Conscious of being infinite and conscious of being finite simultaneously.

(4) Man
or
jiv-atma = Body + Energy + Mind + Consciousness + Soul
or
insan **requires graphics**

(5) Majzoob-e-Kamil = Divine "I" = Divine Consciousness minus finite consciousness

24 The Four Types of Mukti or Liberation (138)

Certain well-known terms to describe various types of perfection are stated here briefly so that the seeker may fit them into the framework of the subject of God-realization. In describing these types of perfection, the key word mukti, which literally means "liberation," is used here to define four types of liberation.

In the following table all the four types of liberation (mukti) of the soul belong to the seventh plane.

1) Ordinary *mukti* (Ordinary *moksha*)
2) *Videh mukti*
3) *Jivanmukti*
4) *Param mukti*

(1) Ordinary *mukti* (Ordinary *moksha*)

Ordinary mukti (najat) is achieved only after death by some exceptionally God-fearing, Truth-loving, good souls; and this mukti usually comes three to five days after the soul has left the body. Since this

अतः व्यक्तिगत आत्मा केवल **परमानन्द** का उपभोग करती है; और यद्यपि शक्ति एवं ज्ञान वहाँ विद्यमान होते हैं, तथापि ऐसा मुक्त उनका अनुभव नहीं कर सकता । ऐसी मुक्त आत्मा को केवल मिलन के आनन्द की चेतना प्राप्त होती है, और उसके लिये सृष्टि का कोई अस्तित्व नहीं रहता, जिसके जन्मों और मृत्युओं के निरन्तर चक्र का अन्त हो जाता है ।

निर्विकल्प समाधि को यह साधारण मुक्ति अथवा मोक्ष अवस्था समझने की भ्रान्ति न करनी चाहिये । यदि आत्मा मुक्ति अवस्था को पहुँच जाती है, तो ऐसा भौतिक शरीर की मृत्यु के बाद होता है । ऐसी आत्मा परमात्माा के पास पहुँच जाती है, किन्तु यह घटना केवल मृत्यु के बाद होती है । इस प्रकार एक ओर साधारण मुक्ति और दूसरी ओर **निर्विकल्प समाधि** के बीच महत्वपूर्ण भेद होता है, क्योंकि निर्विकल्प समाधि का अनुभव तब होता है जब आत्मा शरीर धारण किये रहती है और इस प्रकार विदेह मुक्त हो जाती है ।

२) विदेह मुक्ति

कुछ ईश्वर-साधात्कार-प्राप्त आत्मायें जो **विदेह मुक्त** कहलाती हैं, साक्षात्कार प्राप्त होने के बाद तीन या चार दिन तक शरीर बनाये रखती हैं । उनकी चेतना खुद उनके **यथार्थ स्वरूप** में पूर्णतया निमग्न हो जाती है, और इसलिये उनको न तो अपने शरीरों की और न सृष्टि की चेतना होती है । उन्हें निरन्तर परमात्मा के अनन्त आनन्द, शक्ति और ज्ञान का अनुभव प्राप्त होता है, जो परमात्मा अब खुद उनका आत्मस्वरूप बन गया है, किन्तु वे न तो सृष्टि में उनका चैतन्यरूप से प्रयोग कर सकते हैं और न मुक्ति प्राप्त करने के लिये दूसरों की सहायता कर सकते हैं । फिर भी, पृथ्वी पर उनकी उपस्थिति, कुछ दिनों के लिये जब तक वे यहाँ बने रहते हैं, अनन्त शक्ति, ज्ञान और ईश्वरीय आनन्द प्रसारित करने का केन्द्र होती हैं; और जो लोग उनके पास जाते हैं, उनकी सेवा और पूजा करते हैं, उनका बहुत कल्याण होता है । अन्य आत्मायें अपने 'प्रारब्ध' के वेग के अनुसार अपने शरीर को वर्षों तक बनाये रखती हैं । विदेह मुक्त ब्रह्मीभूत अथवा सूफ़ियों का **मजज़ूब-ए-कामिल** होता है और वह आपहीआप ईश्वर की त्रि-प्रकृति—सत्-चित-आनन्द—का अनुभव करता है ।

mukti is attained without the body, the individual soul enjoys only bliss (anand); and although power and knowledge are there, such a Mukta cannot experience them. Such a liberated soul is conscious only of the bliss of Union, and for him Creation no longer exists, thereby bringing to an end the constant round of births and deaths.

Nirvikalpa samadhi must not be confused with this ordinary mukti or moksha state. Should a soul reach the mukti state, it does so **after** the death of the physical body. Such a soul reaches God, but this occurs only after death. Thus there is an important distinction between ordinary mukti on the one hand and nirvikalpa samadhi on the other, because the latter is experienced while the soul retains the body and thus becomes *Videh Mukta*.

2) *Videh Mukti*

Some God-realized souls known as Videh Muktas retain the body for three or four days after becoming realized. Their consciousness is merged completely in their own Real Self (God), and they are not, therefore, conscious of their bodies or of Creation. They experience constantly the infinite bliss, power and knowledge of God, their own Self now, but they cannot consciously use them in Creation, nor help others to attain liberation. Nevertheless, their presence on earth, for the few days they remain there, is a centre for the radiation of the infinite power, knowledge and bliss of God; and those who approach them, serve them and worship them are immensely benefited. Others retain the body for years according to the momentum of their "prarabdha." The Videh Mukta is the Brahmi Bhoot, or the Majzoob-e-Kamil of the Sufis, and he experiences the trio-nature of God—sat-chit-anand—automatically.

३) जीवन मुक्ति

जीवनमुक्त (**आज़ाद-ए-मुतलक़**) **तुर्यावस्था** (**फ़ना-मा-अल-बक़ा**) में सर्वानन्द, सर्वज्ञान और सर्वशक्ति, का आनन्द लेता है, और उसकी चेतना "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था की और तीनों लोकों की होती है—और स्थूल, सूक्ष्म और मनोलोक की भी होती है; लेकिन ड्यूटी प्राप्त न होने के कारण वह दूसरों के लिये ज्ञान, आनन्द और शक्ति का प्रयोग नहीं करता ।

४) परम मुक्ति

परम मुक्त, जो पूर्ण पुरुष, **क़ुतुब** अथवा **सद्गुरु** कहलाता है, ईश्वर-साक्षात्कार के पश्चात् सामान्य चेतना में वापस आता है, और साथ-साथ उसको "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था की चेतना होती है, और तीन सापेक्षिक अस्तित्वों और उनके अनुरूप लोकों की चेतना होती है । वह न केवल सर्वशक्ति, सर्वज्ञान, सर्वानन्द का रस लेता है, बल्कि उनका प्रयोग अस्तित्व की सभी भूमिकाओं में व्यापक मन और व्यापक शरीर के द्वारा करता है ।

ऐसे परम मुक्त जनों को ख़ुद परमात्मा स्वरूप होने की चेतना होती है और वह चेतना उसके अप्रकट और प्रकट दोनों पहलुओं में होती है । उनको ख़ुद दोनों अपरिवर्तनीय दिव्य **सत्त्व** (**ज़ात**) और अनन्त विविध आविर्भावों (सिफत) का ज्ञान होता है । वे ख़ुद अपने को सृष्टि से अलग परमात्मावत् कर्त्ता, भर्त्ता और हर्त्ता के रूप में अनुभव करते हैं; और परमात्मा को उस रूप में अनुभव करते हैं जो सृष्टि के बन्धनों को स्वकिार करके उनको लाँघ गया है । इसका यह अर्थ है कि ऐसे व्यक्ति को परमात्मा की दसों अवस्थाओं में प्रत्येक दशा की चेतना होती है, जो पृष्ठ १८६ के सामने लगे चार्ट में दिखाया गया है ।

परम मुक्त निरन्तर परमात्मा की त्रि-प्रकृति—**सत्-चित्-आनन्द** की निपट शान्ति एवं पूर्णता का अनुभव एवं प्रयोग करता है । वह सृष्टि की दिव्य लीला के पूर्ण आनन्द और क्लेश का रस लेता है । उसको हरेक चीज़ में ख़ुद परमात्मा होने का ज्ञान होता है और इसलिये वह हरेक को आध्यात्मिक सहायता देने में समर्थ होता है, और वह मुक्त के चार प्रकारों में से किसी एक प्रकार के रूप में दूसरी आत्माओं को ईश्वर का साक्षात्कार करा सकता है । वास्तव में वह ख़ासकर मानवजाति का और आमतौर पर सृष्टि का सहायक होता है ।

3) Jivanmukti

The Jivanmukta (Azad-e-Mutlaq) in turiya avastha (fana-ma-al-baqa) enjoys All-Bliss, All-Knowledge and All-Power, and his consciousness is of the "I am God" state, and also of the three spheres—the gross, subtle and mental; but, being without duty, he does not use the bliss, knowledge and power for others.

4) Param mukti

The Param Mukta, who is known as the Perfect Master, Qutub or Sadguru, comes back to normal consciousness after God-realization, and is simultaneously conscious of the "I am God" state and the three relative existences and their corresponding spheres. He not only enjoys All-Power, All-Knowledge, All-Bliss, but uses them in all the planes of existence through the universal mind and the universal body.

Such Param Muktas are conscious of themselves as God, both in His unmanifest and manifest aspects. They know themselves both as the unchangeable divine essence (zat) and as the infinitely varied manifestations (sifat). They experience themselves as God apart from Creation; as God the Creator, Preserver and Destroyer; and as God Who has accepted and transcended the limitations of Creation. This means that such a one is conscious of every one of the ten states of God shown on the chart facing page 158.

The Param Mukta constantly experiences and uses the absolute peace and perfection of the trio-nature of God—sat-chit-anand. He fully enjoys and suffers the divine sport of Creation. He knows himself as God in everything and is therefore able to help everyone spiritually, and can make other souls realize God as any of the four types of Mukta. He is indeed the helper of humanity in particular and of Creation in general.

२५. चार प्रकार की मुक्ति का सारांश (१६३)

मुक्ति के इन चार प्रकारों के सारांश का खुलासा मेहेरबाबा निम्नलिखित रूप से करते हैं :

मुक्ति का प्रकार	चेतना	द्वैत में कर्तव्य
साधारण मुक्ति	केवल **परमात्मा**; "मैं-परमात्मा-हूँ" अथवा दुई की चेतना नहीं ।	नहीं
विदेह मुक्ति	"मैं-परमात्मा-हूँ" (**सत्-चित्-आनन्द** अथवा ज्ञान, शक्ति और आनन्द) दुई की चेतना से रहित ।	नहीं
जीवन मुक्ति	दुई की चेतना के साथ "मैं-परमात्मा-हूँ" (**सत्-चित्-आनन्द**) ।	नहीं
परम मुक्ति	एकसाथ "मैं-परमात्मा-हूँ" (**सत्-चित्-आनन्द** हूँ) के सहित क्रियाशलि दुई और दिव्यता ।	हाँ

(आगे पूरक के अन्त और उपसंहार के बीच में दिया गया सारांश भी देखिये । —सम्पादक)

२६. पूर्णता के लक्षण (१६६)

एक शिष्य ने एक बार मेहेरबाबा से पार्थना की कि **पूर्ण पुरुष** को निश्चितरूप से पहचानने की रीति क्या है ? तब मेहेरबाबा ने समझाया : "साधारण पुरुष छठवीं भूमिका तक आध्यात्मिक उपलब्धि की विभिन्न स्थितियों के बीच सन्तोषपूर्वक अन्तर जानने में समर्थ नहीं हो सकता । वह यह जानने के योग्य हो सकता है कि ऐसी आत्मायें ऊँची आत्मायें हैं, लेकिन वह उनकी उन्नति की सीमा नहीं जान सकता । किन्तु जब सत्य की सच्ची एवं धैर्यपूर्वक खोज करने वाला पथिक उस व्यक्ति के सम्पर्क में आता है जो आध्यात्मिक प्रगति में पूर्ण है, तब उसको विशेष बाहरी लक्षण दिखाई पड़ेंगे जो अखण्ड्रूप से आन्तरिक आध्यात्मिक पूर्णता से सम्बन्धित हैं ।

25 A Summary of the Four Types of Mukti (138)

Meher Baba summarizes these four types of mukti in the following way:

Type of Mukti	Consciousness	Duty in Duality
Ordinary *Mukti*	*Anand* (bliss) only; no conscious-ness of "I am God" or of duality	No
Videh Mukti	"I am God" (*sat-chit-anand* or Knowledge, Power and Bliss) without consciousness of duality.	No
Jivanmukti	"I am God" (*sat-chit-anand*) with consciousness of duality.	No
Param Mukti	Simultaneously "I am God" (*sat-chit-anand*) with duality and divinity in action.	Yes

[See also Summary, pp. 296–7. Ed.]

26 Signs of Perfection (150)

In answer to a question by a disciple requesting some infallible method of recognizing a Perfect Master, Meher Baba explained: "An ordinary man may not be able to discriminate satisfactorily between the different stages of spiritual attainment up to the sixth plane. He may be able to know that such souls are advanced, but not the extent of their advancement. But when a sincere and patient seeker of Truth comes into contact with one who is spiritually perfect, he will observe certain outer signs that are inseparably associated with inner spiritual perfection.

"इन लक्षणों में सबसे महत्वपूर्ण लक्षण तीन हैं : पहले, पूर्णता न केवल 'परमात्मा के साथ ऐक्य', है, वरन् वह 'सबकुछ से ऐक्य' का सतत् एवं अबाध्य अनुभव होता है । सद्गुरु सतत् खण्डित हुये बग़ैर ख़ुद अपने आत्म का, प्रत्येक व्यक्ति में व्याप्त सत्ता के रूप में, अनुभव एवं साक्षात्कार करता है । यह आन्तरिक अनुभव बाहरी रूप से सहज प्रेम में अपनेआप को प्रगट करता है कि जिसका अनुभव ऐसा व्यक्ति सकल सृष्टि की ओर महसूस अथवा अभिव्यक्त करता है । उसके लिये कुछ भी आकर्षक अथवा अनाकर्षक नहीं होता । भला और बुरा, सन्त और पापी, सुन्दरता और कुरूपता, बुद्धिमत्ता एवं मूर्खता, स्वास्थ्य एवं बीमारी,—ये सब उसकी स्वयं अपनी अभिव्यक्ति करने की रीतियाँ हैं । जब मूर्तमान पूर्णता प्रेम करती है, दुलार करती है, अथवा किसी जीवित प्राणी को भोजन कराती है, तब वह ऐसा महसूस करती है कि जैसे वह ख़ुद अपने आपा से प्रेम कर रही हो, दुलार कर रही हो और उसको भोजन करा रही हो । इस स्थिति में दूसरेपन का लेशमात्र चिन्ह नहीं रहता ।

"दूसरा लक्षण परमानन्द का बातावरण है जो पूर्णता अपने निकटतम पड़ोस में प्रसारित करती है, अर्थात् वह वातावरण जिसे अजनबी व्यक्ति उसकी खोज में, उसकी अनुभूति किये बग़ैर नहीं रह सकता । सद्गुरु न केवल अनन्त आनन्द का रस लेता है बल्कि वह विश्वव्यापी पीड़ा का अनुभव भी करता है । तथापि, पीड़ा की तीक्ष्णता परमानन्द की प्रबल अनुभूति के द्वारा नष्ट हो जाती है अथवा दब जाती है, इसलिये पूर्णता हर प्रकार की पीड़ा एवं उपद्रव के सन्मुख बाहर से आनन्द से भरपूर शान्त दिखाई पड़ सकती है :

"पूर्णता का तीसरा लक्षण उसकी वह शक्ति है कि वह अपना सामंजस्य मानवता के किसी भी स्तर से कर सकती है । वह सिहासन पर तथा गन्दे पनाले में समानरूप से उदासीन रह सकती है । वह अत्यन्त स्वाभाविक रूप से गरीबों के साथ मितव्ययी, अमीरों के साथ अमितव्ययी, बादशाहों के साथ शाहंशाह, विद्वानों के साथ बड़ा ज्ञानी और निरक्षर तथा अज्ञानी लोगों के साथ सीधी-सादी हो सकती है । जिस प्रकार विद्वान अध्यापक प्रारम्भिक तथा स्नातक विद्यार्थियों को विभिन्न रीतियों से अंग्रेज़ी की शिक्षा देता है, उसी प्रकार से सद्गुरु भी उन लोगों के स्तर पर सामंजस्य स्थापित करता है जिनको वह आध्यात्मिक ज्ञान में ऊँचा उठाना चाहता है ।"

(२९२)

"The most important of these signs are three: firstly, Perfection is not only 'Oneness with God,' but the continual and uninterrupted experience of 'Oneness in everything.' A Perfect Master continually, without break, experiences and realizes his own Self as the Self in all. This inner experience objectively manifests itself in the spontaneity of love that such a one feels or expresses towards all Creation. To him nothing is attractive or repulsive. Good and bad, saint and sinner, beauty and ugliness, wisdom and idiocy, health and disease—all are modes of his own manifestation. When embodied Perfection loves, fondles or feeds any living creature, it feels and enjoys as if it were loving, fondling and feeding its own Self. In this stage no vestige of 'otherness' is left.

"The second sign is the atmosphere of bliss that Perfection radiates in its immediate vicinity, an atmosphere that a stranger in search of it cannot help feeling. A Perfect Master not only enjoys infinite bliss but also experiences universal suffering. The acuteness of suffering however is nullified or subdued by the overwhelming feeling of bliss. Hence Perfection can outwardly appear blissfully calm in the face of every kind of suffering and persecution.

"The third sign of Perfection is its power to adapt itself to any level of humanity. It can be as nonchalant on a throne as in a gutter. It can very naturally be thrifty with the poor, extravagant with the rich, regal with kings, wise with the learned and simple with the illiterate and the ignorant. Just as a Master of Letters teaches English in different ways to beginners and graduate students, so also a Perfect Master adapts himself to the level of those whom he wants to uplift spiritually."

एक बार घाऊस अली शाह क़लन्दर ने, आध्यात्मिक पूर्णता (फ़कीरी) के विषय पर प्रवचन देते समय, कहा था: "शिष्य को पूर्णता प्रदान करना एक निमेष की बात है । कान के अन्दर फूँका एक शब्द मनुष्य को सीमितता से अनन्तता तक ऊँचा उठाने के लिये काफी है, और ऐसा रूपान्तर प्रार्थनाओं अथवा उपवासों पर निर्भर नहीं रहता ।"

मैलाना रूमी ने कहा है :

दाद-ए ऊरा क़ाबलियत-ए शर्त नीस्त
बल्के शर्त-ए क़ाबलियत दाद-ए ऊस्त ।

"ईश्वरीय कृपा योग्यता की शर्तों से सीमित नहीं होती । योग्यता, वास्तव में, दैवी कृपा से अनुकूलित होती है ।"

यह सुनकर, एक शिष्य ने कहा, "जनाब, यदि ईश्वर-साक्षात्कार की प्राप्ति इतनी आसान होती, तब क्या कारण है कि शिष्यगण को परीक्षाओं और कठोर संयमों से अनिवार्यरूप से लम्बे समय तक गुज़रना पड़ता है ?" इसके उत्तर में, घाऊस अली शाह ने निम्नलिखित दृष्टान्त दिया :

"एक विशेष आदमी ने, जिसके पास तमाम वर्षों से मोर्चा लगे और धूल से भरे दो बर्तन थे, उनको साफ़ कराने का निश्चय किया । उसने एक बर्तन एक व्यवसायी को दिया जिसने उसको ४० दिन में साफ़ करने का वादा किया, और दूसरा बर्तन एक दूसरे आदमी को दिया जिसने वह कार्य केवल एक दिन में कर देने का वचन दिया । व्यवसायी ने वैज्ञानिकरूप से अपने बर्तन को साफ़ करने का कार्य प्रारम्भ किया । उसने उसको ४० दिन तक विभिन्न रीतियों से साफ़ किया, और उसने बर्तन को न केवल नया बना दिया बलिक इस्तेमाल करने योग्य एक चीज़ भी बना दिया ।

"दूसरे आदमी ने, जिसने उस कार्य को एक दिन में पूरा करने का वादा किया था, बर्तन को आग की बड़ी भट्ठी में जलाने की बहुत कठोर विधि अपनायी । इस क्रिया से बर्तन तेज़ी से ओर पूर्णरूप से साफ़ हो गया, लेकिन उसको कुरकुरा एवं निरर्थक कर दिया । इसलिये यह देखा जा सकता है कि यद्यपि दोनों बर्तन साफ़ कर दिये गये थे, लेकिन

Once Ghaus Ali Shah Qalander, while discoursing on spiritual perfection (faqiri), said, "Giving perfection to a disciple is a matter of a fraction of a second. A word in the ear is enough to lift a man at once from finiteness to infinity, and such a transformation is not dependent on prayers or fasts."

Maulana Rumi has said:

Dād-i ū rā qābilīyat-i sharṭ nīst دادِ او را قابلیت، شرط نیست
Balkih sharṭ-i qābilīyat dād-i ūst. بلکه شرط قابلیت، دادِ اوست

"Divine Grace is not limited by conditions of ability.
Ability, in fact, is conditioned by Divine Grace."

Hearing this, one of the disciples remarked, "Sire, if realization be so easy of attainment, then why is it that disciples are invariably made to undergo a long period of trials and austerities?" In reply, Ghaus Ali Shah related the following anecdote:

"A certain man, having two vessels encrusted with the rust and dirt of many years, decided to have them cleansed. He gave one vessel to a professional who promised to cleanse it in forty days, and the other to a man who undertook to do the job in a single day. The professional began to work at his vessel scientifically. He subjected it to many different processes over a period of forty days, and he made the vessel not only spick and span but also a thing fit for use.

"The second man, who had promised to finish the job in one day, adopted the very drastic procedure of burning the vessel in a huge fire. This cleansed the vessel quickly and completely, but made it brittle and worthless. It can be seen, therefore, that although both the vessels were

केवल वह बर्तन जो लम्बी प्रक्रिया से गुज़रा था, प्रयोग में आने योग्य बना था ।"

गुरुदेव ने अपना प्रवचन जारी रखते हुये कहा कि इसी कारण से सद्गुरु बिरले ही साधक को तत्क्षण ईश्वर-साक्षात्कार प्रदान करता है, किन्तु वह साधक को धीरे-धीरे साक्षात्कार की ओर अग्रसर करता है जिससे कि वह ईश्वर के काज के लिये उपयोगी और हट्टा-कट्टा पात्र बन सके ।

इस सम्बन्ध में, मेहेरबाबा ने एक बार अपने शिष्यों से कहा था, "ईश्वर-साक्षात्कार किसी को भी एक निमेष में प्रदान किया जा सकता है । लेकिन तब वह मनुष्य की खुदी के लिये होगा और उससे दूसरों को लाभ न होगा । घोर तपस्या, आत्म-त्याग और कठिनाई की अवधि, जिससे मनुष्य सद् गुरु के साथ गुज़रता है, शक्ति को जन्म देती है और साक्षात्कार प्राप्त हो जाने पर दूसरों को आध्यात्मिक जागृति प्रदान करने के लिये अधिकार देता है ।"‡

२७. हाल और मुक़ाम (१६७)

सूफ़ी ज्ञानमार्ग की दृष्टि से यहाँ **हाल** (अनुभव) और **मुक़ाम** (स्थिति) का सारान्श दिया जाता है । कुछ सूफ़ियों का विश्वास है कि **हाल** और **मुक़ाम** के बीच कोई विशेष अन्तर नहीं है । वे कहते हैं कि प्रत्येक **मुक़ाम** प्रारम्भ में **हाल** होता है और विकसित होकर अन्त में **मुक़ाम** बन जाता है । यह बात सब भूमिकाओं पर लागू होती है जिनका समावेश सूक्ष्म और मनोलोकों में होता है । जो भी हो, अनेक लोग **हाल** को **मुक़ाम** से भिन्न मानते हैं ।

बसरा के अब्दुल्ला हरीस मुसाहिबी के मतानुसार :

हाल परमात्मा की देन है; वह इतनी क्षणभंगुर होती है जितनी बिजली होती है, और अभ्यास (**मुजाहिदा**) द्वारा सुरक्षित होती है ।

मुक़ाम प्रायश्चित का परिणाम होता है, और वह **हाल** के निरन्तर आच्छादन में सुरक्षित रहता है ।

(२९४)

‡ (इसे भी पढ़िये : आध्यात्मिकता पूर्णता और दुई के प्रदेश से सम्बन्धिक सापेक्षिक पूर्णता के बीच का अन्तर समझने के लिये, पाठक मेहेरबाबा कृत "परिपूर्णता", शीर्षक सम्भाषण, १ : ११५-१२०, का अध्ययन करें । —सम्पादक)

made clean, only that which underwent the lengthy process was of any use."

The Master went on to say that it was for this reason that a Perfect Master seldom gave realization to an aspirant instantaneously, but led him to it slowly so that he might become a robust, useful vessel for God's work.

In this connection, Meher Baba once remarked to his disciples, "Realization can be imparted to anyone in a second. It will then be for one's own self only with no benefit to others. The period of austerity, self-denial and hardship which one undergoes with a Master, engenders power and gives authority to use Realization, when achieved, for the spiritual awakening of others."*

27 *Hal* and *Muqam* (151)

Here is a gist of *hal* (experience) and *muqam* (stage) in the light of Sufi gnosis. Some Sufis believe there is no appreciable difference between *hal* and *muqam;* they maintain that every *muqam* is *hal* at the beginning and develops into *muqam* at the end. This applies to all the planes included in the subtle and mental spheres. Many however distinguish *hal* from *muqam*.

According to Abdullah Haris Muhasibi of Basra:

Hal is the gift of God; it is as fleeting as lightning, and is secured by practice (mujahida).

Muqam is the result of repentance, and is secured by the constant overshadowing of hal.

* [See also Meher Baba, "Perfection," *Discourses*, 78–82, for the understanding of the difference between spiritual perfection and the relative perfection pertaining to the domain of duality. Ed.]

अवारीफुल-मारिफ़ के लेखक ने उसको निम्न प्रकार से प्रगट किया है :

हाल एक छिपी हुई घटना का द्योतक है जो ऊपर की दुनियाँ से यात्री के हृदय पर उतरता है, और तब तक जाना और आना जारी रखता है जब तक कि ईश्वरीय आकर्षण उसको नीचे से नीचे स्तर से लेकर ऊँचे से ऊँचे स्तर पर नहीं ले जाता ।

मुक़ाम पथ पर स्थित स्टेशन है जिस पर तीर्थयात्री पहुँचता है । वह उसके प्रवास का स्थान बना रहता है जब तक कि वह और आगे नहीं बढ़ता ।

हाल तीर्थयात्री के नियन्त्रण में नहीं रहता; तीर्थयात्री उससे नियन्त्रिण होता है ।

मुक़ाम यात्री के शासन में होत है ।

हाल एक देन (माओहिब) है ।

मुक़ाम एक (कस्ब) उपलब्धि है ।

हाल वभी मुक़ाम से सम्बन्धित हुये बग़ैर नहीं हो सकता ।

मुक़ाम कभी हाल से सम्बन्धित हुये बग़ैर नहीं हो सकता ।

शेख मुहम्मद इब्राहीम, जो घाज़ूर-ए-लिाही के नाम से भी प्रसिद्ध है, अपनी कृति इर्शादत में कहता है :

जब **हाल** जारी रहता है, तो वह **मुक़ाम** बन जाता है । जिस किसी को भी **हाल** एक बार प्राप्त होता है वह नवसिखुवा होता है, और जो कोई भी उसको अन्तर में बनाये रखता है वह अनुकूल बन जाता है ।

मेहेरबाबा ने समझाया है कि :

शब्द के सामान्य अर्थ में, **हाल** (जिसमें नियन्त्रित और अनियन्त्रित दोनों प्रकार के अति आनन्द का समावेश होता है) पथ की पहली से लेकर छठवीं भूमिकाओं (*stages*) पर सापेक्षिक अस्तित्वों का भीतरी अनुभव है । विशेष अर्थ में, **हाल** महान ईश्वरीय आनन्द की अवस्था है और उसको अपने सापेक्षिक **मुक़ाम** के अनुसार सदैव शक्ति के अन्शों में अनुभव प्राप्त होता है । वेदान्त में **हाल भाव** कहलाता है और **मुक़ाम स्थान** कहलाता है ।

(२९५)

The author of *Awarif-ul-Maarif* has it thus:

Hal signifies a hidden event that descends from the upper world upon the heart of the pilgrim, and keeps going and coming until the divine attraction draws him from the lowest to the highest level.

Muqam is the station on the Path at which the pilgrim arrives. It becomes the place of his stay until he advances further.

Hal is not under the control of the pilgrim; the pilgrim is controlled by it.

Muqam is in the traveller's sway.

Hal is a gift (maohib).

Muqam is an acquisition (kasb).

Hal can never be without being related to muqam.

Muqam can never be without being related to hal.

Sheikh Mohammed Ibrahim, also known as Ghazur-e-Ilahi, in his *Irshadat* says:

When *hal* continues, it becomes *muqam*. Whoever gets *hal* once is a beginner, and whosoever continues in it becomes an adept.

Meher Baba explains that:

In the general sense of the word, *hal* is the inner experience (which includes ecstasy, both controlled and uncontrolled) of relative existences on the first through the sixth planes (stages) of the Path. In the particular sense, *hal* is the state of divine ecstasy and is always experienced in degrees of potency according to its relative muqam. *Hal* in Vedanta is called *bhav* and *muqam* is called *sthan*.

मुक़ाम एक दी हुई भूमिका में तीर्थयात्री का प्रवास, उस विशेष **हाल** में होता है ।

हाल और **मुक़ाम** छठवीं भूमिका तक और उसके अन्तर तक साथ-साथ जाते हैं । **हाल** सदैव **मुक़ाम** पर हावी रहता है ।

हाल और **मुक़ाम** का अस्तित्व सातवीं भूमिका पर नहीं होता ।

जहाँ कहीं भी हाल है, वहीं दुई है । जब कोई व्यक्ति सातवीं भूमिका से नीचे उतर कर सामान्य चेतना में आता है और कर्तव्य के लिये अपनेआप को किसी भूमिका पर स्थापित करता है, तब वह ख़ास भूमिका उसका **मुक़ाम** बन जाती है । इस प्रकार **क़ुतुब** (**सद्गुरु**) के लिये कोई **हाल** नहीं है, केवल **मुक़ाम** है । साधारण पुरुष, जो स्वभाव से भावुक होते हैं, सङ्गीत सुनते हुये साधारण **हाल** का आनन्द रस चख सकते हैं, लेकिन यह एक मिथ्या **हाल** है और उसकी तुलना पथ पर चलने वाले पथिक के आध्यात्मिक **हाल** से नहीं करनी चाहिये ।

२८. अवतार का अवतरण (१७७)

बाबा से प्रश्न किया गया कि क्या अवतार प्रथम व्यक्तिगत आत्मा ती या नहीं जिसको ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त हुआ था ? बाबा ने उत्तर दिया :—

"वह ईश्वर ही था जिसको पहाले-पहल अपार चेतन्यता प्राप्त हुई थी (ईश अवस्था २-ब में इसकी व्याख्या देखिये) । इस सबका यह अर्थ है कि परमात्मा ने ही पहले-पहल स्वयं अपना साक्षात्कार प्राप्त किया । उसके साथ-साथ, परमात्मा अपनी २-अ अवस्था में अपारतया अचैतन्य है (ईश अवस्था २-अ में इसकी व्याख्या देखिये) । परमात्मा की अन्य अवस्थायें और समस्त इरश्वरीय स्थितियाँ परमात्मा २-अ की उपज हैं जो अनन्त चैतन्यता प्राप्त करने के लिये नित्य अभिलाषा करती हैं ।

"इस सबके फलस्वरूप, हमें ज्ञात होता है कि मनुष्य परमात्मा बन जाता है ।

"सद्गुरु नर-नारायण (मनुष्य का ईश्वर बनना) है और उसको विकास एवं प्रतिवर्द्धन की प्रक्रियाओं से होकर गुज़रना पड़ता था, जबकि अवतार ईश-पुरुष है; अर्तात् परमात्मा विकास और प्रतिवर्द्धन की प्रक्रिया से होकर गुजरे बग़ैर सीधेसीध मनुष्य बन जाता है ।

Muqam is the staying of the pilgrim on a given plane, in that particular *hal*.

Hal and *muqam* go together up to and onto the sixth plane. *Hal* always dominates *muqam*.

Hal and *muqam* do not exist on the seventh plane.

Where there is *hal* there is duality. When one from the seventh plane comes down to normal consciousness and establishes himself on any plane for the sake of duty, then that particular plane becomes his *muqam*. Thus for the *Qutub* (*Sadguru*) there is no *hal*, there is only *muqam*. Ordinary men, who are by nature emotional, can enjoy ordinary *hal* while listening to music, but this is a pseudo-*hal* and is not to be compared with the spiritual *hal* of a pilgrim on the Path.

28 Advent of the Avatar (159)

Being questioned as to whether or not the Avatar is the first individual soul to have become God-realized, Meher Baba replied:

"It was God Who first became infinitely conscious (see explanation in God State II–B). All this means that God realized Himself first. Simultaneously, God in His State II–A is infinitely unconscious (see explanation in God State II–A). The other states of God and all divine statuses are the outcome of God's State II–A eternally aspiring to gain infinite consciousness.

"As a result of all this, we find that man becomes God.

"The Sadguru is Man-God (*i.e.*, man becoming God) and had to pass through the process of evolution and involution, whereas the Avatar is God-Man; that is, God directly becomes man without passing through the process of evolution and involution.

"पाँच सद्गुरु (क़ुतुब, पूर्ण पुरुष) **अवतार** (**रसूल**, क्राईस्ट, बुद्ध) को पृथ्वी पर उतारते हैं और इसलिये पृथ्वी पर प्रथम अवतार का अवतरण, उस अवतरण को लाने के लिये, पहले उन पाँच **सद्गुरुओं** के होने के बग़ैर सम्भव न था। इसके फलस्वरूप प्रारम्भ में पहले पाँच **सद्गुरुओं** को ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त हुआ और फिर पृथ्वी पर **अवतार** का पहला अवतरण हुआ।

"भले ही आदम के समय से २६ **अवतार** हुये हैं, अथवा एक लाख चौबीस हज़ार मबी हुये हैं जिसका दावा कभी-कभी किया जाता है, और चाहे ईसामसीह अन्तिम एवं एकमेव मसीहा थे अथवा मुहम्मद अन्तिम नबी थे, यह सब निरर्थक और महत्वहीन होता है जब हम अनन्तता और सत्यता पर विचार करते हैं। यह वादविवाद करना बिल्कुल तुच्छ होता है कि दस अथवा छब्बीस अथवा दस लाख अवतार हुये हैं। सत्य यह है कि **अवतार** सदैव वही एक होता है और पाँच **सद्गुरु अवतार** को पृथ्वी पर उतारते हैं। ऐसा युगों-युगों से होता आया है, और ऐसे लाखों काल चक्र गुज़र गये होंगे और अनन्तता पर लेशमात्र प्रभाव डाले बग़ैर गुज़रते रहेंगे।"

२९. सातवीं भूमिका का ज्ञानपथ (१७७)

मेहेरबाबा **मजज़ूब, आज़ाद-ए-मुतलक़, क़ुतुब,** और **रसूल** से सम्बन्धित, सातवीं भूमिका "मैं-परमात्मा-हूँ"‡ के ज्ञानमार्ग का वर्णन क्रमशः निम्नलिखित रूप से करते हैं :—

१ **मजज़ूब** (**ब्रह्मीभूत**)
अनल हक़—इसका अर्थ है "मैं परमात्मा हूँ" (अनन्तरूप से)।

२ **आज़ाद-ए-मुतलक़** (**जीवनमुक्त**)
अनल हक़, सहित
हमा बा मन अस्त—इसका अर्थ है "सबकुछ मेरे साथ है।"

३ **क़ुतुब** (**सद्गुरु**)
अनव हक़, और उसके साथ-साथ
हमा मन अम—इसका अर्थ है "सबकुछ मैं हूँ।"

(२९७)

‡ भौतिक मृत्यु के बाद उन सबका ज्ञान मार्ग अनन्तरूप से "मैं परमात्मा हूँ" बना रहता है।

"The five Sadgurus (Qutubs, Perfect Masters) effect the advent of the Avatar (Rasool, Christ, Buddha) on earth and therefore the advent of the first Avatar on earth was not possible without there first being the five Sadgurus to effect that coming. Consequently in the beginning the five Perfect Masters became realized first and then there took place the first advent of the Avatar on earth.

"Whether there have been twenty-six Avatars since Adam, or one lakh and twenty-four thousands of Prophets as is sometimes claimed, or whether Jesus Christ was the last and only Messiah or Muhammad the last Prophet is all immaterial and insignificant when eternity and Reality are under consideration. It matters very little to dispute whether there have been ten or twenty-six or a million Avatars. The truth is that the Avatar is always one and the same, and that the five Sadgurus bring about the advent of the Avatar on earth. This has been going on cycle after cycle, and millions of such cycles must have passed by and will continue to pass by without affecting eternity in the least."

29 Gnosis of the Seventh Plane (159)

Meher Baba describes the gnosis of "I am God"* of the seventh plane, belonging to a *Majzoob,* an *Azad-e-Mutlaq,* a *Qutub* and the *Rasool* respectively as follows:—

I *MAJZOOB* (*Brahmi Bhoot*)
Anal Haqq—This means "I am God" (endlessly).

II *AZAD-E-MUTLAQ* (*Jivanmukta*)
Anal Haqq, with
Hama ba man ast—This means "Everything is with Me."

III *QUTUB* (*Sadguru*)
Anal Haqq, simultaneously with
Hama man am—This means "Everything is Me."

* After disembodiment (physical death) the gnosis of all of them continues endlessly to remain "I am God."

हमा दर मन अस्त—इसका अर्थ है "सबकुछ मुझमें है ।"
हमा अज़ मन अस्त—उसका अर्थ है "सबकुछ की उत्पत्ति मुझसे हुई है ।"

४ साहेब-ए-ज़माँ (अवतार)‡
अनल हक़, और उसके साथ-साथ
मन हमा अम—इसका अर्थ है "मैं हर चीज़ हूँ ।"
मन दर हमा अम—इसका अर्थ है "मैं हर चीज़ में हूँ ।"
हमा अज़ मन अस्त—इसका अर्थ है "हार चीज़ की उतपत्ति मुझसे है ।"
हमा दर मन अस्त—इसका अर्थ है "हर चीज़ मुझमें है ।"

३०. अवतार और सद्गुरु (१७८)

बाबा जो अर्थ प्रकट करना चाहते हैं वह यह है: "जब यह कहा जाता है कि सद्गुरु स्वस्थ है अथवा बीमार है, तो यह सब साधारण मानव प्राणी कहते हैं और देखते हैं और महसूस करते हैं । सद्गुरु के दृष्टिकोण से अन्तर्निहित सत्य यह है कि न तो अच्छा स्वास्थ्य और न बीमारी और न कोई भी चीज़ उसकी अनन्तता को लेशमात्र स्पर्श करती है, क्योंकि उसको माया की माया के रूप में पूर्ण चैतन्यता प्राप्त होती है और इस प्रकार उसको पूर्ण ज्ञान होता है कि स्वास्थ्य और बीमारी दोनों भ्रमात्मक हैं (अर्थात्, उनकी उत्पत्ति **शून्य** से है) ।

"शून्य उसको कभी भी कैसे प्रभावित कर सकता था ? सद्गुरु ने विकास, पुनर्जन्म और प्रतिवर्द्धन की प्रफिया के द्वारा शून्य के संस्कारों को जीन लिया, और उसने अनुभव कर लिया है कि वह **सबकुछ** है (जिसमें वास्तव में **कुछनहीं** का समावेश होता है) : चाहे सद्गुरु सृष्टि के विधान के अन्तर बना रहे, स्वयं विधान उसका स्पर्श नहीं करता ।

"'**सद्गुरु**' का यह अर्थ है कि मनुष्य परमात्मा **बन गया** है । इसलिये, जब मनुष्य परमात्मा **बन गया** है तो उसके बाद वह कभी मनुष्य नहीं **बन** सकता, और यदि उसको मनुष्य के समान जीवन व्यतीत

Hama dar man ast—This means "Everything is in Me."
Hama az man ast—This means "Everything is from Me."

IV *SAHEB-E-ZAMAN* (*Avatar*)†
Anal Haqq, simultaneously with
Man hama am—This means "I am everything."
Man dar hama am—This means "I am in everything."
Hama az man ast—This means "Everything is from Me."
Hama dar man ast—This means "Everything is in Me."

30 The *Avatar* and the *Sadguru* (160)

The sense Meher Baba wishes to convey is: "When a Sadguru is said to be in good health or ill, all this is said and seen and felt by ordinary human beings. The underlying truth from the point of view of the Sadguru is that neither good health nor illness nor anything whatsoever affects (touches) his being (infinity) in the least, because he is perfectly conscious (fully aware) of Illusion as illusory and is thus fully aware that health and illness are both illusory (i.e., they are the outcome of the Nothing).

"How could the Nothing ever affect him? The *Sadguru* has overcome the impressions of Nothing through the process of evolution, reincarnation and involution, and he has realized that he is the Everything (which, of course, includes the Nothing). Even though the *Sadguru* remains within the law of Creation, the law itself does not touch him.

" '*Sadguru*' means that man has become God. Therefore, when man has **become** God he can no longer **be** man, and if he has to live as man he

करना पड़ता है तो उसको इच्छानुरूप कार्य करते हुये मनुष्य की तरह कार्य, व्यवहार करना अथवा दिखना पड़ता है, अर्थात् मनुष्य की सभी प्रकृतिक प्रवृत्तियाँ प्रदर्शित करनी पड़ती हैं ।

"**सद्गुरु** होते हुये, **सद्गुरु** इतने पूर्णरूप से सभी स्तरों और सब भूमिकाओं में पार्ट अदा करता है कि, सब परिस्थितियों में और सर्वथा वह सब साधारण मनुष्यों को ऐसा दिखाई पड़ता है कि वह स्थूल जगत के लोगों के बीच एक मनुष्य है । वह ऐसा भी दिखाई पड़ता है जैसे कि वह, उन लोगों के लिये जो सूक्ष्म भूमिकाओं में स्थित हैं, सूक्ष्म भूमिकाओं के मनुष्यों में एक है, और उन लोगों के लिये जो मनो भूमिकाओं में हैं वह ऐसा दिखाई पड़ता है जैसे कि वह उनमें से एक हो ।

"सद्गुरु एकसाथ नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे स्तर पर होता है । एक ओर वह अनन्तता (यथार्थता) में स्थापित होता है और दूसरी ओर वह माया का स्वामी होता है । इस प्रकार सद्गुरु के शासन के अन्तर्गत दो चरमसीमायें होती हैं, और दो चरमसीमाओं के बीच समाधान केवल तभी स्थापित हो सकता है और क़ायम रह सकता है जब सभी बीच की स्थितियों और अवस्थाओं में सद्गुरु सब भूमिकाओं और सब स्तरों पर एकसाथ कार्य करता है ।

"**अवतार** के उदाहरण में, कहानी बिल्कुल भिन्न होती है । समस्त अन्तर इस तथ्य में निहित होता है कि **सद्गुरु** का अर्थ है मनुष्य का परमात्मा बन जाता, जबकि **अवतार** का अर्थ है परमात्मा का मनुष्य बनना । '**अवतार**' शब्द के पूरे अर्थ को समझना बहुत कठिन है । मानवजाति के लिये यह घोषित करना सरल और आसान है कि **अवतार** परमात्मा है और इसका यह अर्थ है कि परमात्मा मनुष्य बन जाता है । लेकिन इस सबसे '**अवतार**' शब्द का अर्थ ध्वनित अथवा प्राप्त नहीं होता ।

"यह कहना अधिक उचित होगा कि **अवतार** परमात्मा है और परमात्मा समस्त मानवजाति के लिये मनुष्य बनता है और उसके साथ-साथ परमात्मा भी सृष्टि में सब गौरैया पक्षियों के लिये एक गौरैया बन जाता है, और सृष्टि में सब चींटियों के लिये एक चींटी बन जाता है, सृष्टि में सब सुअरों के लिये सुअर का बच्चा बन जाता है, सृष्टि में सब धूल कणों के लिये धूल का कण बन जाता है, सृष्टि में सब पवनों के लिये पवन का एक कण इत्यादि बन जाता है, अर्थात् हरेक और हर चीज़ के लिये जो सृष्टि में है वही बन जाता है । (२९९)

has to act, behave or appear like a man by spontaneously putting into action, that is, demonstrating, all the natural tendencies of man.

"Being a Perfect Master, the *Sadguru* enacts the part (or plays the role, or lives through the role) so perfectly on all levels and in all planes that, under all circumstances and in all other respects, he **appears** to ordinary human beings as if he were a man amongst men of the gross world. He also **appears** as if he were one of the men in the subtle planes for those who are in the subtle planes, and to those who are in the mental planes he appears as if he were one of them.

"The *Sadguru* is simultaneously on the level of the lowest and of the highest. On one hand he is established in infinity (Reality) and on the other hand he is the master of Illusion. Thus the Sadguru has under his sway the two extremes, and reconcilement between the two extremes could only be established and maintained throughout all intermediary stages and states by the *Sadguru* **acting** on all planes and on all levels simultaneously.

"In the case of the *Avatar,* the story is quite different. All the difference is contained in the fact that *Sadguru* means man becoming God, while *Avatar* means God becoming man. It is very difficult to grasp the entire meaning of the word *'Avatar'*. For mankind it is easy and simple to declare that the *Avatar* is God and that it means that God becomes man. But this is not all that the word *'Avatar'* means or conveys.

"It would be more appropriate to say that the Avatar is God and that God becomes man for all mankind and simultaneously God also becomes a sparrow for all sparrows in Creation, an ant for all ants in Creation, a pig for all pigs in Creation, a particle of dust for all dusts in Creation, a particle of air for all airs in Creation, etc., for each and everything that is in Creation.

"जब पाँच **सद्गुरु** परमात्मा के ईश्वरत्व को माया में उतारते हैं, तब इस ईश्वरत्व का प्रभाव माया के ऊपर छा जाता है और अपनेआप को अनन्त विविध योनियों में प्रस्तुत करता है—जैसे स्थूल, सूक्ष्म और मनसिक योनियाँ । इसके फलस्वरूप अवतारिक अवधियों में परमात्मा मानवजाति के रूप में मनुष्य और चींटितों की दुनियाँ में एक चींटी, इत्यादि के रूप में हिलमिल जाता है लेकिन दुनियाबी आदमी इसको देख नहीं सकता और इसलिये वह केवल यह कहता है कि परमात्मा मनुष्य बन गया है और वह मानवजाति की खुद अपनी दुनियाँ में इस समझ को पा जाने से सन्तुष्ट रहता है ।

"मनुष्य चाहे जोकुछ समझे, यह तथ्य क़ायम रहता है कि **अवतार बनता है और सद्गुरु अभिनय करता है** ।

"अवतार की बीमारी को मनुष्यों के कर्म अपने ऊपर लेने से कोई सरोकार नहीं होता क्योंकि अवतार परमात्मा है जो सर्वथा मनुष्य बन गया है, तो इसका कोई कारण नहीं है कि वह मानव प्राणी की सब स्वाभाविक प्रवृत्तियों के प्रति ग्रहणशील न हो । आखिरकार, परमात्मा मनुष्य बन गया है और वह वास्तव में मनुष्य है । लेकिन यद्यपि अवतार यथार्थरूप से बीमार हो जाता है, तो मनुष्य के रूप में जो बीमार हो जाता है, यह स्मरण रखना चाहिये कि उसके साथ-साथ उसकी अनन्त शक्ति, ज्ञान और परमानन्द की पृष्ठभूमि भी होती है ।

"**अवतार** व्यक्तियों के कर्म कभी अपने ऊपर नहीं लेता किन्तु उसका ईश्वरत्व व्यापकरूप से कार्य करता है ।"

३१. कर्म और अकर्म (१७९)

१. परमात्मा की परात्पर परब्रह्म अवस्था में अचैतन्य अकर्म होता है ।

२. ईश्वर-साक्षात्कार की अवस्था में चैतन्य अकर्म होता है । यह परिपूर्णता की अवस्था है किन्तु सद्गुरु की अवस्था नहीं है ।

३. (१ और २ के बीच की) मध्य अवस्था में चैतन्य कर्म होता है । कर्म संस्कारों की बढ़ती करते हैं । संस्कार उलट कर और अधिक कर्मों की बढ़ती करते हैं तथा बन्धन पैदा करते हैं । इस अवस्था में बन्धन होता है ।

(३००)

"When the five *Sadgurus* effect the presentation of the Divinity of God into Illusion, this Divinity pervades the Illusion in effect and presents Itself in innumerable varieties of forms—gross, subtle and mental. Consequently in Avataric periods God mingles with mankind as man and with the world of ants as an ant, etc. But the man of the world cannot perceive this and hence simply says that God has become man and remains satisfied with this understanding in his own world of mankind.

"Whatever be the understanding of man, the fact remains that the *Avatar* **becomes** and the *Sadguru* **acts.**

"The Avatar's illness has nothing to do with the taking on of karma of individuals. As the Avatar is God Who has become man in all respects, there is no reason why He should not be susceptible to all the natural tendencies of a human being. After all, God has become man and He is man indeed. But although the Avatar actually becomes ill, as a man who falls ill, it must be remembered that He also has simultaneously the background of His infinite power, knowledge and bliss.

"The Avatar never takes on the karma of individuals but His Godhood functions universally."

31 Action and Inaction (161)

I. In the Beyond-Beyond state of God there is unconscious inaction.

II. In the state of God-realization there is conscious inaction. This is the state of perfection but **not** of the Perfect Master.

III. In the intermediate state (between 1 and 2) there is conscious action.

Actions promote *sanskaras* (impressions). *Sanskaras* in turn breed more actions and create bindings. In this state there is bondage.

४. सातवीं भूमिका के मजज़ूब की अवस्था में अचैतन्य कर्म होता है ।

५. सद्गुरुओं की अवस्था में चैतन्य **क्रियाशील** अकर्म होता है । सद्गुरु संस्कारों से मुक्त होते हैं । उनके कोई संस्कार नहीं होते । इस रूप में, खुद उनके कर्मों के लिये कोई स्थान नहीं रह सकता । उनके जीवन अकर्म के जविन होते हैं, किन्तु वे प्रचलित वातावरण की परिस्थितियों के कारण क्रियाशील हो जाते हैं । सद्गुरुओं के वर्म वातावरण से गतिशील होते हैं—उस समय जो भी वातवरण प्रबल होता है उससे गतिशील होते हैं ।

उदाहरण :

१. परमात्मा की परात्पर-परब्रह्म अवस्था की तुलना झूलना में गहरी नींद में सोते हुये बच्चे से की जा सकती है । यह अचैतन्य अकर्म का एक उदाहरण है ।

२. ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त व्यक्ति की अवस्था की तुलना (सद्गुरु की नहीं) एक बच्चे से की जा सकती है जो पूर्णतः जागृत हो किन्तु उस समय भी झूलना में पड़ा हो । यह चैतन्य अकर्म का एक उदाहरण है ।

३. १ और २ अवस्था के बीच की तुलना एक बच्चे से की जा सकती है जो जागृत हो और झूलना के बाहर हो । यह चैतन्य कर्म का एक उदाहरण है ।

४. सातवीं भूमिका के **मजज़ूब** की अवस्था की तुलना एक स्वप्नचारी व्यक्ति से की जा सकती है । स्वप्नचारी व्यक्ति स्वप्न में इधर-उधर चलता-फिरता है अथवा दूसरे कार्य करता है और उसको भान नहीं होता कि वह इस अवस्था में क्या कर रहा है । इसी प्रकार से सातवीं भूमिका का **मजज़ूब** कार्य करता है और उसको उन कार्यों की चेतना नहीं होती । उसका अचैतन्य कर्म है : वह खाता है, पीता है, बलिता है, इत्यादि । किन्तु यह सब उसका अचैतन्य कर्म है ।

५. सद्गुरु की अवस्था की तुलना एक बच्चे से की जा सकती है जो बिल्कुल जागृत हो किन्तु झूलना के भीतर हो जो निरन्तर

IV. In the state of the *Majzoob* of the seventh plane there is unconscious action.

V. In the state of Perfect Masters there is conscious **active** inaction.

Perfect Masters are free of sanskaras. They have no impressions. As such, there cannot be room for actions of their own. Their lives are of inaction, but made active because of the prevailing environmental circumstances. Actions of Perfect Masters are prompted by the environment—by whatever atmosphere prevails then.

EXAMPLES:

I. The Beyond-Beyond state of God may be compared with a child fast asleep in a cradle. It is an example of unconscious inaction.

II. The state of the God-realized person (not a Perfect Master) may be compared with a child wide awake but still in the cradle. This is an example of conscious inaction.

III. The state in between 1 and 2 may be compared with a child awake and out of the cradle. It is an example of conscious action.

IV. The state of the *Majzoob* of the seventh plane may be compared with a somnambulist. The somnambulist walks about or performs other actions in sleep and is not aware of what he does in this state. Similarly the *Majzoob* of the seventh plane does actions and is not conscious of them. His is unconscious action: he eats, drinks, speaks, etc. But all this is his unconscious action.

V. The state of a Perfect Master may be compared with a child wide awake but inside the cradle that is continuously rocked by mankind.

मानवजाति के द्वारा झुलाया जाता हो । यह चैतन्य **क्रियाशील** अकर्म है । अकर्म झूलना के अन्दर होना है और क्रियाशील अकर्म दूसरे लोगों द्वारा झूलना को झुलाना है ।

३२. दिव्य शासक मण्डल के विषय में मेहेरबाबा का मत (१७९)

मेहेरबाबा कन्ते हैं, "प्रत्येक काल युग‡ में, जो ७०० वर्ष से लेकर १४०० वर्ष तक रहता है, हरेक में ६५ से लेकर १२५ वर्ष के ग्यारह काल होते हैं । पत्येक युग के आदि से लेकर अन्त तक, कुल ५५ सद्गुरु रहते और उसका यह अर्थ है कि प्रत्येक काल‡ में केवल पाँच (५) सद्गुरु होते हैं । अन्त में, प्रत्येक युग के ग्यारहवें काल में, **अवतार** (**साहेब-ए-ज़मां**) भी मौजुद होता है । ५५ सद्गुरुओं और **अवतार** के अन्तरिक्त, प्रत्येक युग में ५६ **मजज़ूब-ए-वामिल** भी होते हैं । ये **मजज़ूब,** जिन्हें फ़ना-फ़िल्लाह की अवस्था का अनुभव होता है, सृष्टि की दिव्य **लीला** के संचालन में 'सुषुप्त' अथवा 'निष्क्रिय' भागीदार होते हैं ।"

	पूर्ण पुरुष (सद्गुरु)	पूर्ण पुरुष (मजज़ूब-ए-कामिल)	
प्रथम काल	५	७	(जिन्में से ४ ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त होतें ही भौतिक शरीर छोड़ देते हैं)
द्वितीय काल	५	३	
तीसरा काल	५	७	(जिनमें से ४ ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त होते ही भौतिक शरीर छोड़ देते हैं)

(३०२)

‡ वेदान्त में कालचक्र 'युग' कहलाता है, और अवधि (*age*) 'काल' कहलाती है; सूफ़ीमत वाले काल को 'दौर' अथवा 'ज़मां' कहते हैं और काल को वक्त कहते हैं ।

It is conscious **active** inaction. Inaction is being inside the cradle and active inaction is the rocking of the cradle by others.

32 Meher Baba on the Hierarchy (161)

Meher Baba says, "In each cycle of time,* which ranges from 700 to 1400 years, there are eleven ages of 65 to 125 years each. From the beginning to the end of each cycle, there are altogether 55 Perfect Masters and that means each age* has only five (5) Perfect Masters. In the last, the eleventh age of each cycle, the Avatar (Saheb-e-Zaman) is also present. Besides the 55 Perfect Masters and the Avatar there are also 56 Majzoobs-e-Kamil in each cycle. These Majzoobs, who experience the state of fana-fillah, are the 'sleeping' or 'inactive' partners in the conduct of the divine sport (lila) of Creation."

	Perfect Masters (*Sadgurus*)	Perfect Ones (*Majzoobs-e-Kamil*)	
1st age	5	7	(of which 4 leave the body immediately after Realization)
2nd age	5	3	
3rd age	5	7	(of which 4 leave the body immediately after Realization)

* In Vedanta a cycle of time is called yuga, and an age is called kal; the Sufis call a cycle *daor* or *zaman* and an age *waqt*.

चौता काल	५	३	
पाँचवीं काल	५	७	(जिनमें से ४ ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त होते ही भौतिक शरीर छोड़ देते हैं ।)
छठा काल	५	३	
सातवीं काल	५	७	(जिनमें से ४ ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त होते ही भौतिक शरीर छोड़ देते हैं ।)
आठवाँ काल	५	३	
नवाँ काल	५	७	(जिनमें से ४ ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त होते ही भौतिक शरीर छोड़ देते हैं ।)
दसवाँ काल	५	३	
ग्यारहवाँ काल	५	६	(जिनमें से ३ ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त होते ही भौतिक शरीर छोड़ देते हैं ।)
अवतार	१		
	५६	५६	

इस तालिका का अध्ययन करने में हमें स्मरण रखना चाहिये कि :—

(१) एक युग लगभग ७०० वर्ष से लगभग १४०० वर्ष तक चलता है और वह सब ११ कालों से बना होता है । प्रत्येक काल लगभग ६५ से १२५ वर्ष तक रहता है, उसकी लम्बाई, युग की लम्बाई के समान, भौतिक, आध्यात्मिक और विश्वव्यापी परिस्थितियों के ऊपर निर्भर होती है ।

(२) प्रत्येक काल में कार्यकारी दिव्य शासक मण्डल में ७००० आध्यात्मिक प्राणी होते हैं (चाहे वे उन्नत हों अथवा पूर्ण हों) । उन्नत आध्यात्मिक प्राणी या तो पहली भूमिका से लेकर छठवीं भूमिका तक के बीच होते हैं और पूर्ण पुरुष या तो **सद्गुरु** होते हैं या **मजज़ूब** होते हैं । प्रत्येक काल में १ से १० सद्गुरु मिलकर ५ **सद्गुरु** (**क़ुतुब**) होते हैं, जिनमें से एक **क़ुतुब-ए-इर्शाद** होता है ।

(३) एक युग के ग्यारहवें और अन्तिम काल में **क़ुतुब-ए-इर्शाद** उस रूप में वार्य बन्द कर देता है जैसे ही **अवतार** (**साहेब-**

4th age	5	3	
5th age	5	7	(of which 4 leave the body immediately after Realization)
6th age	5	3	
7th age	5	7	(of which 4 leave the body immediately after Realization)
8th age	5	3	
9th age	5	7	(of which 4 leave the body immediately after Realization)
10th age	5	3	
11th age	5	6	(of which 3 leave the body immediately after Realization)
Avatar	1		
	56	56	

In studying this table we should remember that:—

(1) One cycle lasts for about 700 to about 1400 years and is made up of 11 ages. Each age lasts for about 65 to 125 years, its length, like the length of a cycle, depending on material, spiritual and universal circumstances.

(2) In each age the functioning hierarchy consists of 7,000 spiritual beings (either advanced or perfect). The advanced beings are on or between the first through sixth planes and the Perfect Ones are either Sadgurus or Majzoobs. In each of the ages one to ten inclusive there are five Sadgurus (Qutubs), one of whom is the Qutub-e-Irshad.

(3) In the eleventh and last age of a cycle the Qutub-e-Irshad ceases to function as such as soon as the Avatar (Saheb-e-Zaman or Saviour)

ए-ज़माँ अथवा उद्धारक) खुद अपना मसीहीपद (**मुक़ाम-ए-मुहम्मदी**) सदेह धारण करता है । इस प्रकार ५ सद्गुरुओं की संख्या प्रत्येक काल में वही बनी रहती है ।

(५) पूर्ण **मजज़ूब** प्रत्येक क्रनबद्ध काल में संख्या में बदलते रहते हैं, इनमें से सात प्रथम काल में होते हैं और तीन दूसरे काल में होते हैं, सात तीसरे काल में होते हैं, और ऐसा ही क्रम चलता रहता है । तथापि ग्यारहवें काल में ६ **मजज़ूब-ए-कामिल** होते हैं ।

उन कालों में जहाँ ३ **मजज़ूबों** से अधिक **मजज़ूब** होते हैं, अर्थात्, प्रथम, तृतीय, पाँचवाँ, सातवाँ, नवाँ और ग्यारहवें कालों में अतिरिक्त **मजज़ूब,** ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त करने (**मजज़ूब-ए-कामिल** होने) के बाद तुरन्त शरीर छोड़ देते हैं । इसका यह अर्थ है कि पहले, तीसरे, पाँचवें और नवें कालों में, सात में से चार **मजज़ूब** ईश्वर-साक्षात्कार होने के बाद तुरन्त मर जाते हैं और ग्यारहवें और अन्तिम काल में जिनमें छः पूर्ण मजज़ूब होते हैं, तीन **मजज़ूब** साक्षात्कार प्राप्त करने के बाद तुरन्त मर जाते हैं ।

इसका यह परिणाम होता है कि किसी दिये हुये काल में केवल तीन **मजज़ूब** शरीर में बने रहते हैं । इस प्रकार कार्य करती हुई दिव्य मण्डली के दृष्टिकोण से प्रत्येक काल में वास्तव में केवल तीन **मजज़ूब** होते हैं ।

मेहेरबाबा एक विशिष्ट काल के लिये, सात आध्यात्मिक भूमिकाओं के अन्दर और उसके बीच स्थित दिव्य शासक मण्डली के ७,००० सदस्यों का विभाजन निम्न प्रकार करते हैं :

पहली भूमिका में, और पहली तथा दूसरी के बीच, दूसरी और तीसरी के बीच, तीसरी और चौथी के बीच, चौती और पाँचवीं के बीच, पाँचवीं और छठवीं के बीच भी निम्नरूप से विभाजन करते हैं :

छठवीं और सातवीं ५,६००
दूसरी भूमिका में ६६६
तीसरी भूमिका में ५५८
चौथी भूमिका में ५६
पाँचवीं भूमिका में ५६

in person assumes His own office of Christhood (muqam-e-Muhammadi). Thus the number of five Sadgurus in each age remains constant.

(4) The Perfect Majzoobs alternate in number in each successive age, there being seven in the first age, three in the second, seven in the third, and so on. In the eleventh age, however, there are six Majzoobs-e-Kamil.

In those ages where there are more than three Majzoobs, i.e., the first, third, fifth, seventh, ninth and eleventh ages, the extra ones leave the body **immediately** after becoming realized (Majzoob-e-Kamil). This means that in the first, third, fifth, seventh and ninth ages, four out of the seven Majzoobs die at once after Realization, and that in the eleventh and final age, in which there are six perfect Majzoobs, three die at once after Realization.

The result is that in any given age **only** three Majzoobs remain in the body. Thus from the point of view of the **functioning** hierarchy there are really only three Majzoobs in each age.

Meher Baba distributes the 7,000 members of the **functioning** hierarchy for a particular age in and between the seven spiritual planes as follows:

In the first plane, and also between 1st and 2nd, between 2nd and 3rd, between 3rd and 4th, between 4th and 5th, between 5th and 6th and between

6th and 7th 5,600
In the second plane. 666
In the third plane 558
In the fourth plane 56
In the fifth plane. 56

छठवीं भूमिका में ५६
सातवीं भूमिका में (अर्थात्, शरीर धारण किये हुये **मजज़ूब**) ३
पूर्ण पुरुष (सद्गुरु) ५

७,०००

अवतार, प्रत्येक युग के ग्यारहवें काल में,
उनकी संख्या बढ़ाकर ७००१ कर देता है ७,००१

पृथवी पर मानवरूप में सदैव, सब अवधियों में और सब कालों में, ५६ ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आत्मायें अथवा शिव आत्मायें होती हैं; और इन ५६ आत्माओं में केवल ८ आत्माओं को सार्वजनिक मान्यता प्राप्त होती है और वे कार्य करती हुई दिव्य शासक मण्डल के क्रियाशील सदस्यों के रूप में कार्य करती हुई दिव्य शासक मण्डल के क्रियाशील सदस्यों के रूप में कार्य करती हैं, जिनकी संख्या ७,००० सदस्यों की होती है, जो अपनी आध्यात्मिक उन्नति अथवा परिपूर्णता के अनुसार चेतना की विविध भूमिकाओं पर निर्दिष्ट आध्यात्मिक ड्यूटियाँ करती हैं ।

शेष ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त ४८ आत्मायें ७,००० सदस्यों के कार्यशील आध्यात्मिक मण्डल के बीच नहीं होतीं । वे दूर रहती हैं और लोग उनकी दिव्यता को नहीं पहिचान पाते, यद्यपि उन सब ४८ आत्माओं को वही अनुभव प्राप्त होता है और वे अन्य ८ आत्माओं के समान "मैं परमात्मा हूँ" की उसी दिव्य अवस्था का अनुभव करती हैं और आनन्द लेती हैं । ये ४८ आत्मायें, प्रतीक्षा सूची में होती हैं और वे किसी भी आकस्मिक आध्यात्मिक घटना में सहायता करने के लिये उद्यत रहती हैं जो घटना एक अथवा अधिक कार्यकारी सदस्यों के शरीर छोड़ने पर पैदा होती है ।

८ ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आत्माओं में से जो ७,००० सदस्यों के कार्यकारी आध्यात्मिक शासक मण्डल में प्रमुख होती हैं, ५ सद्गुरु होती हैं, जिनको विस्तृत सार्वजनिक मान्यता प्राप्त होने के अलावा, अखिल मानवजाति की आध्यातिमक सेवा एवम् हिन करने में एक ड्यूटी प्राप्त होती है । शेष ३ आत्मायें **मजज़ूब** होती हैं जिन्हें, ईश्वरत्व प्राप्त कर लेने के बावजूद और बौतिक शरीर धारण किये रहने के बावजूद, मानवजाति के प्रति करने के लिये कोई आध्यात्मिक ड्यूटी प्राप्त नहीं होती । तथापि वे उन सबके लिये आध्यात्मिक हिन के स्त्रोत होती हैं जो उनके सम्पर्क में आते हैं ।

In the sixth plane 56
In the seventh plane (i.e., Majzoobs in the body) 3
Perfect Masters (Sadgurus) 5

7,000

The Avatar, in the eleventh age of each cycle, brings
the number to 7,001

There are always, at all times and in all ages, fifty-six God-realized souls or Shiv-Atmas in human form on earth; and out of these fifty-six only eight have public recognition and function as active members of the **functioning** spiritual hierarchy, consisting of 7,000 members, who do the assigned spiritual duties on various planes of consciousness according to their spiritual advancement or perfection.

The remaining forty-eight God-realized ones are not amongst the functioning spiritual hierarchy of 7,000 members. They remain aloof and people are not cognizant of their divinity, though all forty-eight have the same experience and enjoy the same divine state of "I am God" as the other eight. These forty-eight are, as it were, on the waiting list ready to help in any spiritual contingency cropping up through one or more of the functioning members dropping the body.

Out of the eight God-realized souls who are at the head of the functioning spiritual hierarchy of 7,000 members, five are Perfect Masters who, besides having a wide public recognition, have a duty to perform in the rendering of spiritual service and benefit to the whole of mankind. The remaining three are Majzoobs who, in spite of having achieved Godhood and remaining in the physical body, have no spiritual duty to perform towards mankind. Yet they are the source of spiritual benefit to all who come into contact with them.

अस्तु ऐसा कहा जा सकता है कि जबकि ५ सद्गुरु समष्टिरूप में मानवजाति की अध्यातिमक सेवा करने हैं, वे चन्द लोग जो उनके सम्पर्क में आते हैं और ३ **मजज़ूबों** की सेवा करते हैं उनसे उनकी आध्यातिमक लाभ प्राप्त होता है, जबकि ४८ ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आत्मायें मान्यता और कार्यव्यापार से अलग रहती हैं, जब तक कि एक या अधिक ८ ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आत्माओं के भौतिक शरीर छोड़ देने पर कार्यकारी दिव्य शासक मण्डल में एक दरार नहीं हो जाती ।

३३. अवतार के रूप में परमात्मा का अवतरण (१८०)

विश्व की अत्पत्ति परमात्मा से हुई है । परमात्मा की उत्पत्ति विश्व से नहीं हुई है । माया की उत्पत्ति सत्य से हुई है । सत्य की उत्पत्ति माया से नहीं हुई है । एकमेव परमात्मा सत्य है; विश्व स्वतः माया है ।

अवतार के रूप में और सद्गुरुओं के रूप में, माया के अन्तर्गत परमात्मा का ज्वलन्त जीवन, मायावी नहीं है; जबकि सृष्टि में सब जड़ और चेतन प्राणियों के रूप में ज्वलन्त ईश्वरीत जीवन यथार्थ और मायावी होनों है । माया, मायावी जीवन और माया के अन्तर्गत ईश्वर का जीवन, एक ही नहीं है और न एक हो सकते हैं । माया के जीवन नहीं होता और वह कोई जीवन प्राप्त नहीं कर सकती । माया माया है और वह स्वमेव कुछनहीं है । मायावी जीवन का अर्थ है माया के अन्तर्गत जीवन, माया के साथ जीवन, माया से घिरा जीवन, और यद्यपि वह जीवन है (जैसा कि आत्मा सृष्टि के अन्तर्गत अनुभव करती है) तथापि वह मायावी जीवन है । किन्तु माया के अन्तर्गत जीवन्त ईश्वर का जीवन है मायावी नहीं है, क्योंकि मायावी जीवन व्यतीत करने के बावजूद परमात्मा को खुद अपनी सत्यता की चेतना बनी रहती है ।

परमात्मा बिल्कुल स्वतन्त्र है, और विश्व बिल्कुल परमात्मा के ऊपर निर्भर है । फिर भी जब सद्गुरु ईश्वर को पृथवी पर **अवतार** के रूप में उतारते हैं, तब वे **सत्यता** और **माया** को, एक के ऊपर दूसरे को रखकर, एक-दूसरे के आश्रित कर देते हैं । और इस प्रकार ही परमात्मा की अनन्त दया एवम् असीमित प्रेम शाश्वतः उन लोगों के द्वारा आकर्षित किये जाते हैं, जो माया में डूबे हैं ।

So it could be said that whereas the five Perfect Masters render spiritual service to humanity as a whole, the few who come into contact with and serve the three Majzoobs draw spiritual benefit from them, while the forty-eight God-realized ones keep aloof from recognition and function, until a gap is created in the functioning hierarchy by one or more of the eight God-realized ones dropping the physical body.

33 Advent of God as *Avatar* (162)

The universe has come out of God. God has not come out of the universe. Illusion has come out of Reality. Reality has not come out of Illusion. God alone is real; the universe by itself is illusion.

God's life lived in Illusion, as the Avatar and as Perfect Masters, is not illusory; whereas God's life lived in Creation as all animate and inanimate beings is both real and illusory. Illusion, illusory life and God's life in Illusion are not and cannot be one and the same. Illusion has no life and can have no life. Illusion is illusion and is nothing by itself. Illusory life means life in Illusion, with Illusion, surrounded by Illusion, and though it is life (as experienced by the soul in Creation) it is illusory life. But God's life lived in Illusion is not illusory, because in spite of living the illusory life God remains conscious of His own Reality.

God is absolutely independent, and the universe is entirely dependent upon God. Yet when the Perfect Masters effect the descent of God on earth as the Avatar, they make Reality and Illusion interdependent, each upon the other. And thus it is that His infinite mercy and unbounded love are eternally drawn upon by those who are immersed in Illusion.

परमात्मा और विश्व के बीच, अनन्त दया एवम् असीमित प्रेम एक प्रमुख कड़ी के रूप में कार्य करते हैं जिसका प्रयोग शाश्वतः वे लोग करते हैं जो परमात्मा (**सद्गुरु**, पूर्ण पुरुष, अथवा **क़ुतुब**) बन जाते हैं, और जिसका प्रयोग परमात्मा करता है जो मनुष्य (**अवतार**, क्राईस्ट अथवा **रसूल**) बन जाता है, और इसलिये विश्व परमात्मा के खेल का शाश्वत खिलाड़ी बन जाता है । इस प्रमुख कड़ी के द्वारा अवतार ने न केवल अपने दिव्य खेल में जीवन स्थापित किया, वरन् नाया में विधान की भी स्तापना की । और यह विधान, ईश-पुरुष अथवा अवतार द्वारा स्थापित होने के कारण, विधानरहित अनन्तता का विधान है और यह शाश्वतः यथार्थ तथा साथ-साथ मायावी है । यह विधान ही विश्व का सञ्चालन करता है—उसके समस्त उत्थान और पतन को नियन्त्रित करता है । रचना और ध्वन्स इसी नियम से सञ्चालित होते हैं ।

युग की अवधि में, परमात्मा की स्वतन्त्र परिपूर्णता इस विधान के ऊपर ईश-पुरुष द्वारा परमात्मा की मर्ज़ी के रूप में, क्रियान्वित की जाती है, और इसका अर्थ है कि कोई भी चीज़ हर चीज़ जिसकी मर्ज़ी अवतार करता है, ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट होती है ।

३४. तौहीद
अथवा ईश्वर की ऐक्य अवस्था (१८८)

तौहीद में समाविष्ट सिद्धान्त, अथवा परमात्मा की ऐक्य अवस्था, निर्विवाद है । वह सभी ज्ञान धर्मों की और सूफ़ीवाद तथा वेदान्त दोनों में आध्यात्मिक अनुशासन के लक्ष्य की मूल आधार है । सिद्धान्तरूप में तौहीद को स्वीकार करना जनसमुह का विशेषाधिकार है, किन्तु उसकी खोज में तत्पर होना चुने हुये कुछ जनों की विशेषता है । यह सरल और कठिन दोनों है । तौहीद दिखाव में इतनी आसान मालूम पड़ती है कि उसके विषय में सारे विश्व में धर्म आसन और मञ्च पर चर्चा की जाती है और फिर भी उसकी उपलब्धि इतनी कठिन होती है कि उसमें अच्छे से अच्छे प्रयास जड़ता और व्याकुलता के सिवाय कुछ भी प्रदान नहीं करते ।

परमात्मा का ऐक्य, अपने श्रेष्ठ पहलू में, सूफ़ीवाद की **तौहीद-ए-तन. जीही** (पूर्ण ऐक्य) और वेदान्त का **अद्वैत** है । **तौहीद** की समस्या विविध प्रकार के पहलू प्रस्तुत करती है, जिसका दृष्टान्त वह पुरानी

Between God and the universe, infinite mercy and unbounded love act as a prominent link which is eternally made use of by men who become God (Sadgurus, Perfect Masters or Qutubs), and by God who becomes man (Avatar, Christ or Rasool), and so the universe becomes the eternal playmate of God. Through this prominent link the Avatar not only established life in his divine play, but also established law in Illusion. And this law, being established by the God-Man or Avatar, is the law of the lawless Infinite and it is eternally real and at the same time illusory. It is this law that governs the universe—all its ups and downs. Construction and devastation are guided by this law.

At the cyclic period, God's independent Absoluteness is made to work upon this law by the God-Man as God's will, and this means that anything and everything that the Avatar wills is ordained by God.

34 *Tauhid*
or the Unitary State of God (170)

The principle involving *tauhid*, or the unitary state of God, is indisputable. It is the basic foundation of all known religions and the goal of spiritual discipline in both Sufism and Vedanta. To accept tauhid in theory is the privilege of the masses, but to indulge in research thereof is the specialty of the select few. It is both easy and difficult. Tauhid is seemingly so easy that it is talked about universally on pulpit and platform and yet it is so difficult of achievement that the best of efforts therein yield nothing but stupefaction and bewilderment.

The unity of God, in its transcendent aspect, is the tauhid-e-tanzihi (Absolute Oneness) of Sufism, and the advaita of Vedanta. The problem of tauhid presents multifarious aspects, as is exemplified by the old story of

कथा है जिसमें अनेक अन्धे लोगों ने एक हाथी की परीक्षा की थी । उनमें से प्रत्येक ने हाथी के विभिन्न अङ्ग का स्पर्श किया और उसके विषय में अपना विभिन्न मत बनाया । विषय की ओर व्यक्तिगत जाना सापेक्षिकरूप से बिल्कुल सत्य है और उसको चुनौती नहीं दी जा सकती, और फिर भी हाथी समग्र रूप से अन्धे आदमियों के लिये बिल्कुल भिन्न और न समझने योग्य होता है । तौहीद और उसके पहलुओं के विषय में प्रमुख सूफ़ियों को जो कथन आकर्षित करते हैं उनमें से विख्यात सूफ़ियों के कुछ कथन निम्नलिखित :‡

(३०८)

‡ सूफ़ियों के शब्दों में प्रत्यक्ष विरोधोक्तियाँ अनुभव की गई सत्यताओं को व्यक्त करने के लिये और अनुभूत सत्यताओं का वर्णन विभिन्न प्रसङ्गों में, विभिन्न दृष्टिकोणों से, जो अकेले एक अनुभव में अथवा समग्ररूप से साक्षात्कार करने में, सदैव साथ-साथ चलते हैं, केवल साधनों की सीमितताओं के कारण होते हैं । मेहेरबाबा कहते हैं कि ऐसे शाब्दिक भेद परस्पर विरोध पैदा नहीं करते किन्तु अनुभूति एवं साक्षात्कार प्राप्त सत्यताओं के प्रकाशनों की पूर्ति करते हैं जो ऐसी विरोधोक्तियों के अन्तर्गत होते हैं । इस विषय की स्पष्टियों को, जो पिछले पृष्ठों में पहले ही दी जा चुकी हैं, सदैव ध्यान में रखना चाहिये, अर्थात् :

पृष्ठ २२८ : सत्य तक पहुँचना व्यक्तिगत चीज़ है, अतः विवरणों के विषय में बहुत कुछ व्यक्ति की आध्यात्मिक प्रवृत्ति, शारीरिक यग्यिता और बाहरी परिस्थितियों के ऊपर निर्भर होता है ।

पृष्ठ २३२ : हजारों खोजी ऐसे अनेक अनुभवों का आनन्द रस ले रहे हो सकते हैं, फिर भी 'ज्ञानपथ' की 'राह' केवल एक है ।

पृष्ठ २४५ : अनुभव के अनुभवों के विभिन्न पहलुओं के बावजूद, समस्त पहलुओं का अनुभव एक ही समय एकसाथ होता है ।

पृष्ठ २७० : एक ओर, अधिक विवरण मनुष्य को और अधिक भ्रान्ति में डालते हैं, और कम विवरण चीज़ों को कम मात्रा में स्पष्ट करते हैं । एस क्रिया से मानाप्रकार के शब्दों एवम् स्पष्टियों की उत्पत्ति होती है जिसका प्रयोग विभिन्न दृष्टिकोनों से और विभिन्न प्रसङ्गों में किया जा सकता है । यथार्थ अनुभव के अभाव में, उसी चीज़ के वर्णन बहुधा परस्पर-विरोधी मालुम पड़ते हैं । किन्तु सापेक्षिक अनुभवों की दृष्टि से अथवा सत्य के अन्तिम साक्षात्कार की दृष्टि से, स्वयं ये ही परस्पर-विरोधी कथन उसी एक सत्य के विषय में यथार्थ पूरक अभिव्यक्तियाँ सिद्ध होते हैं ।

several blind people examining an elephant. Each touched a different part of the creature and formed a different opinion. Individual approach to the subject is relatively quite true and unchallengeable, and yet the elephant as a whole is something quite different and ununderstandable for the blind. The following are a few utterances of eminent Sufis concerning tauhid and the aspects thereof which appeal to them:*

* The apparent contradictions in the words of Sufis are merely due to limitations of the means to express the experienced truths and to describe the realized Truth in different contexts, under different circumstances and from different points of view that always go together in a single experience or realization as a whole. Meher Baba says that such wordy differences do not contradict but complement the expressions of experienced and realized truths which underlie such contradictions. Explanations in this respect such as have already been given in preceding pages should therefore be always borne in mind, viz.:

Page 206: The approach to Truth is individual, and so in the matter of details much depends upon one's spiritual tendency, physical aptitude and external circumstances.

Page 210: A thousand seekers may be enjoying as many experiences, yet the Path of Gnosis is only one.

Page 221: In spite of the different aspects of the experiences of the Experience, all the aspects are experienced together at the same time.

Page 243: On the one hand, more details confuse one more, and less details explain things less. This gives rise to a variety of terms and expressions for use from different viewpoints and in different contexts. In the absence of actual experience, descriptions of the same one thing often sound contradictory. But in the light of relative experiences or the final realization of Truth, these very contradictions prove to be really complementary expressions about the same one truth.

"तौहीद वह यथार्थता है जिसमें संस्कार (नक़्श) नष्त होते हैं, और ज्ञान प्रकट होता है तथा परमात्मा इतना निर्मल एवं निर्दोष बना रहता है जैसा वह पहले था ।"

—बगदाद का जुनायद

"तौहीद परमात्मा का ज्ञाम है और यह ज्ञान ज्ञानमार्गी को मूल (क़दीम) और सन्दिग्ध (हदीम) प्राणी के बीच विभेद करने योग्य बनाता है । तौहीद की अतिश्रेष्ठ अवस्था में तौहीद की अस्वीकृति का समावेश होता है ।"

—बगदाद का जूनायद

"तौहीद प्रियतम के गुणों में प्रेमी का सफाया है ।"

—जहाँगीर सनमानी

तौहीद के दो पहलू होते हैं : पहला पहलू अवस्था है और दूसरा पहलू उसका वर्णन है । तौहीद का वर्णनत्मक पहलू नबियों के दुनियाबी उद्देश्यों से सम्बन्ध्दा रखता है, और उसकी अवस्था में अनन्त एवं सीमारहित महासागर का समावेश होता है । वर्णनात्मक पहलू वाणी, दृष्टि, सुनने और बौर बोध के साधनत्व पर निर्भर होता है । और इन सबके लिये पृथक् पुष्टि अभीष्ट होती है । बाहरी प्रमाणों के आधार पर पुष्टि करना हुई का संकेत करना है, और तौहीद दुई के सभी लक्षणों से स्वतन्त्र होती है । मनुष्य के अन्तस्तल में श्रद्धा द्वैत के भीड़ से भरे मार्ग से होकर चलती है, और यह स्थिति पूर्णतः नहीं त्यागी जा सकती ।

वर्णनात्मक तौहीद एक दीपक के समान है, जबकि तौहीद स्वयं में और स्वतः सूर्य है । जब सूर्य निकलता है, तब दीपक की ज्योति शून्यता में लुप्त हो जाती है । वर्णनात्मक तौहीद परिवर्तनशील है, जबकि तौहीद की अवस्था अटल एवं शाश्वत होती है । वाणी के द्वारा उच्चारण किये गये शब्द हृदय के द्वारा पराजित हो जाते हैं । जबकि आध्यात्मिक यात्रा में कोई व्यक्ति हृदय के स्टेशन पर अधिकार कर लेता है तब ज़बान वाणीरहित और निष्क्रिय हो जाती है । बाद में हृदय भी आत्मा (जान) के अधीन हो जाता है, और इस स्थिति में पथिक उससे बात करता है । यह वार्ता सार तत्त्व के सम्बन्ध में नहीं होती, बल्कि उसके गुण के सम्बन्ध में होती है । गुण में परिवर्तन होता है ओर सार में नहीं होता । सूर्य पानी को गर्म कर देता है, जिसके द्वारा गुण में परिवर्तन

Tauhid is that reality in which the impressions (*nuqush*) are wiped out, and knowledge appears and God remains as immaculate and pure as He was before.

—Junayd of Baghdad

Tauhid is the knowledge of God and this knowledge enables the gnostic to differentiate between the original (*qadim*) and the contingent (*hadas*) being. The transcendent state of tauhid involves the denial of tauhid.

—Junayd of Baghdad

Tauhid is the effacement of the lover in the attributes of the beloved.

—Jehangir Samnani

Tauhid has two aspects: one is the state and the other is the description of it. The descriptive aspect of tauhid belongs to the worldly mission of the Prophets, and the state thereof involves the infinite and boundless ocean. The descriptive aspect depends on the instrumentality of speech, sight, hearing and cognition, and all of these require separate confirmation. To confirm on the basis of extraneous proofs is to suggest duality, and tauhid is free of all tinge of duality. Faith in a man walks through the crowded thoroughfare of duality, and this stage cannot altogether be dispensed with.

Descriptive tauhid is like a lamp, while tauhid in itself and by itself is the sun. When the sun appears, the light of the lamp vanishes into nothingness. Descriptive tauhid is changeable, while the state of tauhid is immutable and eternal. The words uttered by the tongue are overruled by the heart. When one on the spiritual journey occupies the station of the heart the tongue becomes defunct and mute. Later on the heart, too, is overridden by the spirit (jan), and at this stage the wayfarer talks to Him. This talk is not in relation to the essence, but in relation to its attribute.

हो जाता है लेकिन पानी में नहीं होता । इस प्रकार "**तौहीद** की पुष्टि करने का स्वयं प्रयास **तौहीद** की निर्मल पवित्रता को नष्ट करना है" (**अस्बत उत-तौहीद, फ़ासीदून फ़ित-तौहीद**) ।

तौहीद अद्वैतवादी (मवाहिद) व्यक्ति के लिये परम ऐक्य (**अमाल-ए-अहादियत**) के सौन्दर्य के ऊपर पर्दा डालती है । इस कारण से तौहीद शङ्कामयी है क्योंकि तुम उसकी अभिलाषा खुद अपने से करते हो ।

"जो व्यक्ति **तौहीद** के विषय में लिखता है वह **मुलहिद** (तर्कवादी) है; जो मनुष्त उसकी तरफ़ संकेत करता है वह द्वैतवादी है; वह मनुष्य जो उसके विषय में निष्कर्ष निकालता है, मुर्ति पूजक है; वह मनुष्य जो उसके विषय में बात करता है, ग़ैर ज़िम्मेदार है; वह मनुष्य जो उसके विषय में मौन है वह अज्ञानी है; वह मनुष्य जो सोचता है कि उसने उसका साक्षात्कार कर लिया है वह आत्मभ्रम का शिकार है; जो मनुष्य उसकी निकटता की कल्पना करता है वह उससे दूर है; जो उसको बुद्धि से तौलता है, और उसके विषय में मत निर्धारित करता है, वहा विश्वास पैदा करने में रत है; और जो मनुष्य उसको खोज किये बग़ैर पाता है वह भटक गया है ।"

—अबू बक्र शिवली

"तौहीद, यदि उसकी वार्ता अखण्डता (**तन्ज़ीह**) के सम्बन्ध में की जाती है, तो यह उसको कम करना है, और उसका उल्लेख कम करने के रूप में (**तश्बीह**) किया जाता है तो यह उसको परिमित एवं सीमित बनाना है । दो चरम सीमाओं को समानार्थक बनाना, पूर्ण है और जो वांछित है वही है ।"

—मुहयुद्दीन इबन अरबी

"तौहीद साररूप से तौहीद की विस्मृति है । सामान्य चेतना को पुनः प्राप्त किये लोगों को, भौतिक भूमिका पर कुछ कार्य करने की नितान्त आवश्यकता है । इसलिये तौहीद की समता एक महाजन से की जो सकती है जिसका कर्ज़ जीवन में कभी पर्याप्त और पूर्ण रूप से अदा नहीं हो सकता ।"

—कुदुन्तुल कुब्रा

(३१०)

The attribute changes and not the essence (*ayn*). The sun warms up the water, whereby the attribute is changed but not the water. Thus, "the very attempt to affirm *tauhid* is to deteriorate the pristine purity of *tauhid*" ('Aṣbat ut-tauḥīd, fāsidūn fit-tauḥīd). **should be italic**

Tauhid veils for the unitarian (*mawahid*) the beauty of Absolute Oneness (*jamal-e-ahadiyat*). *Tauhid* on that account is suspect, because you desire it from yourself.

One who writes about *tauhid* is a *mulhid* (rationalist); one who points towards it is a dualist; one who infers it is an idolator; one who talks about it is irresponsible; one who is silent about it is ignorant; one who thinks that he has realized it is self-deluded; one who imagines its nearness is distant from it; one who weighs it with intellect, and form s ideas thereof, is indulging in make-believe; and the one who finds it without seeking is the lost one.

—Abu Bakr Shibli

Tauhid, if spoken of in relation to absolutism (*tanzeeh*) is to qualify it, and to refer to it as qualified (*tashbeeh*) is to make it limited and finite. To equilibrate the two extremes is, however, perfect and just what is desirable.

—Muhyuddin Ibn Arabi

Tauhid is essentially forgetfulness of *tauhid*. Those returning to normal consciousness must needs have some work on the material plane. Hence *tauhid* may be likened to a creditor that can never be adequately and fully paid off in life.

—Quduntul-Kubra

इसलिये तौहीद, जो परमात्मा की अद्वैत अवस्था है, किसी भाषा को सहन नहीं करती, क्योंकि उस अतिश्रेष्ट अवस्था में ऐसा कोई नहीं होता जिसको ख़ुद सम्बोधित किया जाय ।

सूफ़ियों ने तौहीद को, मनुष्य के आध्यात्मिक अधार की विभिन्न स्थितियों के अर्थ में, अथवा उनके अनुसार पाँच मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया है । वे निम्नलिखित हैं :

(अ) **तौहीद-ए-अक़वाली**—परमात्मा की मौखिक एकता ।
(ब) **तौहीद-ए-अफ़ाअली**—परमात्मा की क्रियाशील एकता ।
(स) **तौहीद-ए-अहवाली**—परमात्मा की एकता की अनुभूति ।
(द) **तौहीद-ए-सिफ़ती**—गुणों में ईश्वर की एकता ।
(य) **तौहीद-ए-ज़ती**—सार रूप में परमात्मा की एकता ।

(अ) तौहीद-ए-अक़वाली अधिकान्श मानवजाति से सम्बन्ध रखती है जो किसी भी एक नबी (अवतार) में आस्था रखते हैं और उसके सन्देश में श्रद्धा रखते हैं । इस स्थिति में परमात्मा की केवल मौखिक स्वीकृति अथवा परमात्मा की एकता, और उनसे सम्बन्ध रखने वाले कर्तव्यों का पालन करना, जिसका आनन्द रस विधान को देने वाला चखता है, आध्यात्मिक जीवन के आगामी क्रमों के लिये तैयारी के रूप में पर्याप्त समझा जाता है । इसको **तौहीद-ए-शरियत** भी कहते हैं ।

(ब) तौहीद-ए-अफ़ाअली उन लोगों से वास्ता रखता है जो मार्ग में यथार्थरूप में प्रविष्ट हो गये हैं । परमात्मा की एकता का प्रकाशन सूक्ष्म लोक (**आलम-ए-मलकूत**) के ऐसे साधकों के साथ पवित्र आत्माओं, फ़रिष्तों के स्वाभाविक जीवन को उकसाता है । इस स्थिति में आध्यात्मिक विश्वास की दृढ़ता, जो अन्तस्तल में उल्पन्न हुई है कि प्रत्येक भली अथवा बुरी चीज़ के पीछे परमात्मा की प्रेरक शक्ति होती है ।

(स) तौहीद-ए-अहवाली का उदय, मनोलोक में पाँचवीं भूमिका की उन्नत आत्माओं पर होता है । इस स्थिति में आत्मा अपने को

Tauhid, the unitarian stage of God, therefore admits of no language, as in that transcendent state there is none to whom to address oneself.

The Sufis have classified *tauhid* into five main categories, in keeping with or connoting the different stages of man's spiritual unfoldment. They are known as:

(a) *Tauhid-e-aqwali*—the verbal unity of God.
(b) *Tauhid-e-afa'ali*—the active unity of God.
(c) *Tauhid-e-ahwali*—the feeling unity of God.
(d) *Tauhid-e-sifati*—unity of God in attributes.
(e) *Tauhid-e-zati*—unity of God in essence.

(a) Tauhid-e-aqwali belongs to the majority of mankind who believe in any one Prophet (Avatar) and have faith in His message. At this stage mere verbal acceptance of God or the unity of God, and the performance of duties pertaining thereto enjoined by the lawgiver, are considered enough as a preparation for the forthcoming stages of spiritual life. This is also known as tauhid-e-shariat.

(b) Tauhid-e-afa'ali concerns those who have actually been initiated into the Path. The expression of the unity of God with such initiates of the subtle sphere (alam-e-malakut) simulates intrinsically the life of the pure souls, the angels. At this stage the spiritual conviction engendered within is that behind everything, good or bad, is the motivating power of God.

(c) Tauhid-e-ahwali dawns on those advanced souls of the fifth plane in the mental sphere. At this stage the soul finds itself invested with

ईश्वरत्व के सीधे प्रसारण से सम्पन्न पाती है और सूक्ष्म तथा स्थूल लोकों में चेतन अथवा अचेतन रूप से दूसरों को बहुत सहायता देती है ।

(द) तौहीद-ए-सिफ़ती उसी लोक (मनो लोक) में छठवीं भूमिका से सम्बन्ध रखती है । भौतिकता के सभी पहलू स्थूल और सूक्ष्मता से और सूक्ष्म भूमिकाओं से अब भी आत्मा से चिपके रहते हैं, बिल्कुल हटा दिये जाते हैं और मष्ट कर दिये जाते हैं, जिस प्रकार तारागण की दीप्ति सूर्य निकलने के पहले समाप्त हो जाती है । (स) और (द) दोनों तौहीद उसी मनोलोक (**आलन-ए-जबरूत**) से सम्बन्ध रखते हैं और तीनें (ब), (स), और (द) सामूहिक रूप से **तौहीद-ए-तरीक़त** कहलाते हैं ।

(य) तौहीद-ए-ज़ती हक़ीक़त के पाँचवें असली लोक में ईश्वर का साक्षात्कार है, जिसमें **मारेफ़त-ए-हक़ीक़त** अर्थात् **हालात-ए-मुहम्मदी का लहूत** के क्रम में, और हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी का यथार्थता के लोक के हाहूत के विभिन्न क्रमों अथवा पहलुओं का समावेश होता है ।

सूफ़ीमत वाले इस बात पर एकमत हैं कि साक्षात्कार में अथवा **तौहीद-ए-ज़ती** में अन्तर्निहित विविध पहलुओं में, अत्यन्त पूणर पहलू मनुष्य और परमात्मा के बीच **उबूदियत** (सेवकभाव) के भेद की गति है । इस आध्यात्मिक तथ्य का मसीही समुदाय ने ग़लत अर्थ लगाया है और ग़लत रूपसे प्रयोग किया है, यह स्थापित करने में कि मनुष्य मनुष्य है और परमात्मा परमात्मा है, और मनुष्य कभी परमात्मा नहीं बन सकता और न परमात्मा कभी मनुष्य बन सकता है । जो हो, इस स्थिति में अन्तर्निहित सत्य यह है कि तौहीद-ए-ज़ती के साक्षात्कार के बाद **उबूदियत** (सेवकभाव) पर ज़ोर देना सालिकों की तीसरी यात्रा का अर्थ ध्वनित करता है जिसे **सेयर-ए-मा अल्लाह** कहते हैं, अथवा परमात्मा के साथ पुनः सामान्य चेतना प्राप्त करना है ।

तौहीद की नानाप्रकार की स्थितियाँ और पहलू, जिसका विवेचन ऊपर किया गया है, सूची के रूप में नीचे दिये हैं :—

direct radiation of Divinity and consciously or unconsciously gives immense help to others in the subtle and gross spheres.

(4) Tauhid-e-sifati belongs to the sixth plane in the same sphere (mental). All the aspects of materiality from the gross and subtlety from the subtle planes, still clinging to the soul, are completely removed and dissolved, like the lustre of stars getting dissipated before the sun. Both (3) and (4) tauhid belong to the same mental sphere (alam-e-jabrut) and all the three (2), (3) and (4) are also collectively known as tauhid-e-tariqat.

(e) Tauhid-e-zati is God-realization in the fifth Real sphere of haqiqat, which includes the different stages or aspects of the marefat-e-haqiqat, viz., halat-e-Muhammadi in the stage of lahut, and haqiqat-e-Muhammadi in the stage of hahut of the sphere of Reality.

The Sufis are unanimous on the point that amongst the various aspects inherent in the realization or tauhid-e-zati, the most perfect one is the accentuation of the difference of ubudiyat (servantship) between man and God. This spiritual fact the church has misconstrued and misapplied, in adducing that man is man and God is God, and that man can never become God nor can God ever devolve into man. The truth underlying the situation, however, is that after the realization of tauhid-e-zati the emphasis on ubudiyat (servantship) connotes the third journey of the Saliks called seyr-e-ma Allah, the return to normal consciousness **with** God.

The varying stages and aspects of tauhid as discussed above are given below in tabular form:

स्थितियाँ	पहलू	लोक
तौहीद-ए-ज़ती	१) आशिक़-ओ-माशूक (प्रेमी और प्रियतम एक में) २) आशिक़ (प्रेमी) और माशूक (प्रियतम) एकसाथ	१) आलम-ए-लहूत २) आलम-ए-हहूत (पाँचवाँ लोक)
तौहीद-ए-सिफ़ाती	आशिक़ (प्रेमी)	आलम-ए-जबरूत
तैहीद-ए-अहवाली	आरिफ़ (ज्ञानी)	(तीसरी लोक)
तौहीद-ए-अफ़ाअली	वासिफ़ (स्तुति-कर्त्ता)	आलम-ए-मलाकूत (द्वितीय लोक)
तौहीद-ए-अक़वाली	वाक़िफ़ (स्थूल चेतना)	आलम-ए-नसूत (प्रथम लोक)

वुजूदियाह और शुहूदियाह

नानाप्रकार के अद्वैतवादियों (**अहल-ए-तौहीद**) में, अत्यन्त महत्वपूर्ण और तर्कपूर्ण दो विचारधारायें हैं जो **वुजूदियाह** और **शुहूदियाह** कहलाती हैं ।

मुहियुद्दीन इब्न अरबी **वुजूदियाह** विचारधारा का महान प्रतिपादक है, वह **वहदत-उल-उजूद** (सत् की एकता) का सार्थक है, जो वेदान्त में अद्वैतवाद है, जिसका समर्थन उसके सबसे बड़े प्रतिपादक शङ्कराचार्य ने किया है । ग़ज़ूर-ए-इलाही के मतानुसार, इब्न-अरबी ने प्रतिपादित किया था कि सत् (**वुजूद**) एक से अधिक नहीं है और वह बिल्कुल वही होता है, खुद अपनेआप से अपनेआपको अभिव्यक्त करता है—पानी के समान जो सीमितता के रूप में अपनेआपको बर्फ़ के रूप में प्रकट करता है । जब **फ़ना** की अवस्था में, सीमितता (रूप) लुप्त हो जाती है तब, परम तत्त्व बना रहता है और हू हू (वह, वह) बन जाता है ।

(३१३)

Stages	Aspects	Spheres
Tauhid-e-Zati	1) *Ashiq-o-Mashuq* (lover and beloved in one) 2) *Ashiq* (lover) and *Mashuq* (beloved) simultaneously	1) *Alam-e-Lahut* 2) *Alam-e-Hahut* (Fifth Sphere)
Tauhid-e-Sifati	*Ashiq* (lover)	*Alam-e-Jabrut*
Tauhid-e-Ahwali	*Arif* (knower)	(Third Sphere)
Tauhid-e-Afa'ali	*Wasif* (praiser)	*Alam-e-Malakut* (Second Sphere)
Tauhid-e-Aqwali	*Waqif* (gross-conscious)	*Alam-e-Nasut (First Sphere)*

Wujudiyyah AND *Shuhudiyyah*

Amongst the various types of unitarians (ahl-e-tauhid), the most important and controversial are the two schools of thought known as *Wujudiyyah* and *Shuhudiyyah*.

Muhyuddin Ibn Arabi is the greatest advocate of the Wujudiyyah school, upholding wahdat-ul-wujud (unity of existence), which in Vedanta is Advaitism, upheld by its greatest exponent Sankaracharya. According to Ghazur-e-Ilahi, Ibn Arabi held that existence (wujud) is not more than one, and is the very same, is manifest to itself by itself, like water which is manifest to itself in the form of ice by way of limitation. When in the state of fana, the limitation (the form) disappears, the Absolute remains and becomes Hu Hu (He, He).

शेख़ शहाबुद्दीन सोहरावर्दी, जो **शुहूदियाह** मत के मुख्य प्रतिपादक हैं, उसके तत्त्वज्ञान के लक्षण को **वहादत-उल-शुहूद** (स्पष्टवाद) के रूप में प्रस्तुत करते हैं; वेदान्त का **विशिष्ट अद्वैत** प्रतिपादित करता है कि **फ़ना** में, **बन्दा** (उसके समान सीमित) कानहू हू बन जाता है और हू हू (वह, वह) नहीं बनता, जैसाकि अग्नि में लोहा होता है, जो अग्नि के समान हो जाता है लेकिन स्वयं आग नहीं बन जाता—लोहे की यथार्थता अग्नि की यतार्थता से बिल्कुल भिन्न होती है। **शुहूदियाह** मत वाले लोग दो विभिन्न अस्तित्वों (**ज़ात**) की परिभाषा करते हैं और दो स्पष्ट चीज़ों को दृष्टि में रखते है—लोहा और अग्नि। लोहा क्षणिक समय के लिये अग्नि बन जाता है और फिर लोहा लोहा है, अग्नि अग्नि है।

मिर्ज़ा जान जनान कहते हैं कि परमात्मा के अपकट पहलू और परमात्मा के प्रकट पहलू के बीच का सम्बन्ध वह है कि जो महासागर, लहरों और बुलबुलों के बीच विद्यमान रहता है। और यह बाहुल्या किसी प्रकार से यथार्थता वे एकत्व (ऐक्य) में बाधा अथवा प्रभान नहीं डालता। य **वहदत-उल-वुजूद** (सारूप्यता) है। इसके विपरीत, दूसरी स्थिति जो परमात्मा और सृष्टि के बीच के सम्बन्ध को निश्चित करती है, जैसा कि मूल और उसकी छाया के रूप में अथवा सूर्य और उसकी किरणों के रूप में होता है। **वहदत-उल-शुहूद** (स्पष्टवाद) है।

मुहीयुद्दीन इब्न अरबी का **वहदत-उल-वुजूद अहादियत** (चैतन्य ऐक्य) की चरम सीमाओं से है, और इसलिये इस स्थिति से सम्बन्धित ज्ञानमार्ग "**हमा-ऊसत**" (वह सबकुछ) है।

शेख़ शहाबुद्दीन सोहरावर्दी, जो **मुजद्दिद** भी कहलाता है, का **वहदत-उल-शुहूद** सत्यता (**हक़ीक़त**) के उन्हीं परम शिखरों से आता है, किन्तु उससे प्रकट ज्ञान को "**हमा अज़ ऊस्त**" (अर्थात् सबकुछ की उत्पत्ति उससे है) के रूप में पकट किया जाता है।

दो सिद्धान्त और उसके फलस्वरूप होने वाले वादविवाद वर्तमान **दौर-ए-क़लन्दरी** (प्रभुता का युग) के प्रारम्भ में हुये बाद के विकास हैं, इसलिये वे अरब के नबी के जीवनकाल में उत्पन्न नहीं हुये थे। **वुजूदियाह** का सिद्धान्त अनुभव + (*plus*) युक्ति पर आधारित होता है और **शुहूदियाह** मत वाले लोग इसे अनुभव के और सामान्य हित के कुरान के पहलुओं पर आधारित करते हैं।

(३१४)

Sheikh Shahabuddin Suhrawardi, one of the chief sponsors of the Shuhudiyyah school, characterizing its philosophy as wahdat-ul-shuhud (apparentism), the Vishistadvaita of Vedanta, maintains that in fana, bandah (the limited) becomes kaanahu Hu (like Him) and not Hu Hu (He, He), as iron in the fire, which becomes like fire but not fire itself—the reality of iron being quite different from that of fire. The Shuhudiyyahs define two different existences (zat) and two distinct things in view—iron and fire. The iron becomes fire temporarily and then iron is iron and fire is fire.

Mirza Jan Janan says that the relationship between the unmanifest aspect of God and the manifest aspect of God is that which exists between the ocean, the waves and the bubbles. And this multiplicity does not in any way affect or interfere with the Oneness of Reality. This is wahdat-ul-wujud (identityism). In contrast with this, the other position determining the relationship between God and the created, as that of the original and its shadow or the sun and its rays, is wahdat-ul-shuhud (apparentism).

Wahdat-ul-wujud of Muhyuddin Ibn Arabi is from the heights of ahadiyat (conscious unity), and the gnosis pertaining to this stage is, therefore, "Hama ust" (Everything is He).

Wahdat-ul-shuhud of Sheikh Shahabuddin Suhrawardi, also known as Mujaddid, is from the same heights of Reality (haqiqat) , but the gnosis expressed is "Hama az ust" (Everything is from Him).

The two doctrines and the resultant controversies are a later development at the beginning of the present daor-e-qalandari (cycle of mastery), and so did not arise during the lifetime of the Arabian Prophet. The doctrine of the Wujudiyyahs is based on experience plus reason and the Shuhudiyyahs base it on experience and the Quranic aspects of common interest.

इब्न अरैबी श्रेष्ठता तथा अन्तर्वर्ती अवस्था को अस्वीकार करता है, जिसका आशय दुई होता है । वह प्रतिपादित करता है कि परमात्मा एक है और केवल एक उसी का अस्तित्व है । अन्य सबकुछ जो अस्तित्व में दिखाई पड़ता है उसकी अभिव्यक्तियाँ अथवा **तजल्लियत** हैं । इसलिये परमात्मा **सिफ़ात** (गुणों) के तद्रूप होता है, और सब ईश्वरीय नाम नामधारी सत् के तद्रूप होते हैं जो **अल्लाह** है । सन्त जो **वुजूदियाह** विचारधारा से सम्बन्ध रखते हैं, अपनी दृष्टि सत् की एकता (**वहीद-उल-वुजूद**) पर रखते हैं, जो परमात्मा की पहली **तजल्ली** (आविर्भाव) **अहादियत** की स्थिति से उत्पन्न होती है; और इसलिये बाद में होने वाली अवनतियाँ (अर्थात् मनो, सूक्ष्म और स्थूल जगत) एक छाया (*zil*) के समान हैं, जो शून्य है और इस रूप में वह **ज़ात** (ईश्वरीय तत्त्व) के ऊपर एक छाया निर्मित करता है । छाया का अस्तित्व परमात्मा से होता है और वह परमात्मा पर निर्भर होती है, जो अनन्त और शाश्वत है । इस प्रकार छाया भी इस आशय में होती है कि **वुजूदियाह** मत वाले हर चीज़ को परमात्मा के रूप में मानते हैं, यहाँ तक कि वे छायाओं (मानसिक, सूक्ष्म और स्थूल भुवनों) को भी सबकुछ मानते हैं जिनका (मानसिक, सूक्ष्म और स्थूल भुवनों) को भी सबकुछ मानते हैं जिनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है ।

जैसा पहले कहा जा चुका है, **शुहूदियाह** मत के लोग, दो **ज़ातों** का प्रतिपादन करते हैं, एक सत् और दूसरा असत् का, एक परमात्मा का और दूसरा **बन्दा** का, प्रतिपादन करता है । **बन्दा** की **ज़ात** शून्य (*adum*) है और यह **आदम** (शून्यता) तार्किक (**इज़ाफ़ी**) है, और यथार्थ (**हक़ीक़ी**) नहीं है । यदि शून्य (**आदम**) को सारतत्त्व (सत्यता) समझा जाय, तब दो **ज़ातें** होंगीं, जिनके फलस्वरूप द्वैत की उत्पत्ति होती है । **आदम-ए-इज़ाफ़ी** केवल सापेक्षरूप से **आदम** (शून्य) है । वह केवल शून्य है । यदि कितने भी शून्य एक शून्य में जोड़ दिये जायँ तो संख्या के मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होता । अतः इस प्रकार **आदम** ईश्वर के ज्ञान में एक प्रतीक है । चूँकि परिपूर्णता **ज़ात** से सम्बन्ध रखती है, इसलिये परमात्मा स्वयम् परिपूर्णता है । अपूर्णता शून्य (**आदम**) से सम्बन्ध रखती है और इसलिये, "बुराई" **आदम** (अस्तित्वरहित अस्तित्व) की अबिव्यक्ति है । केवल **मुजद्दिद** मत वालों ने **वहदत-उल-शून्य** (*apparentism* स्पष्टवाद) के सिद्धान्त की पुनः पुष्टि की और उस

Ibn Arabi denies transcendence and immanence, which imply duality. He maintains that God is one and it is He alone Who exists. All else that appear to exist are His manifestations or tajalliyat. Hence God is identical with sifat (attributes), and all divine names are identical with the named, which is Allah. The saints who belong to the Wujudiyyah school of thought have their eyes on the oneness of existence (wahid-ul-wujud), the first tajalli (manifestation) of God, from the stage of ahadiyat; and therefore the later devolutions (viz., mental, subtle and gross worlds) are like a shadow (zil) which is nothing and as such constitutes an adumbration on zat (divine essence). The shadow (*zil*), however, owes its existence to and is de-pendent upon God, Who is infinite and eternal. Thus the shadow also is in the sense that the *Wujudiyyahs* look upon everything as God, even the shadows (mental, subtle and gross worlds) which have no independent existence.

The Shuhudiyyahs, as said before, hold two zats, the one of reality and the other of non-reality, the one of God and the other of bandah. The zat of bandah is zero (adum) and this adum (nothingness) is relational (izafi), and is not real (haqiqi). If nothing (adum) is to be considered as an essence (Reality), then there will be two zats, which results in dualism. The adum-e-izafi is only relatively an adum (nothing). It is mere zero. If any number of zeroes are added to a zero the value of the number does not change. Thus adum is therefore a symbol in the knowledge of God. Since perfection appertains to zat, God is Perfection itself. Imperfection relates to adum and hence "evil" is the manifestation of adum (non-existent existence). The Mujaddid only reaffirmed and reemphasized the doctrine

पर पुनः ज़ोर दिया; इस सिद्धअन्त की मूल नींव **अल-इन्सान-उल-कामिल** के लेखक **अब्दूल करीम उल-जिला** ने डाली थी ।

जो भी हो, आध्यात्मिक तथ्य यह है कि **वुजूदियाह** दर्शन शास्त्र एक उच्चतर प्रकार का है और वह सुविधा अथवा समझौता के किन्हीं भी विचारों को स्थान नहीं देता । मेहेरबाबा का ज्ञानपथ सत्य की ओर ले जाने वाले इन दोनों मार्गों में बराबर लागू होता है और उसका अनुसरण करने के लिये जैसा "परमात्मा की दस अवस्थाओं" में दिया है, **तनज्जुलत**—परम तत्त्व के अधः पतनों—का वर्णन करने की सूफ़ी रीति से कुछ परिचय होना चाहिये, और यह अभिव्यक्तियों की क्रमबद्ध श्रेणियों के माध्यम से होना चाहिये जो सूफ़ी दुनियाँ के **खमसा-वुजूदत** (पाँच अस्तित्व) कहलाते हैं और ये सत्य के खोजी के लिये सहायक होंगे ।

समस्त पूर्ण सूफ़ियों के ज्ञानपथ का आशय यह है कि परात्पर परब्रह्म अवस्था में परमात्मा अज्ञेय और परिभाषा न करने योग्य है । परमात्मा की इस अवस्था (**वरा-उल-वरा**) को समझने में, जो परात्पर परब्रह्म अवस्था से परे है, विचार ओर कल्पना के पङ्गु शक्तिहीन हो जाते हैं । परात्पर परब्रह्म अवस्था में, परम परमात्मा (**वुजूद-ए-मुतलक़**) है ।

सूफ़ियों ने परमात्मा की इस श्रेष्ठ अवस्था का वर्णन अनेक रीतियों से किया है, जैसे :—

घैब-उल-घैब (छिपे हुओं में चिपा) ।

मझूल-अन-नत (अज्ञेय और परिभाषा न करने योग्य) । इस अवस्था में ही ज़ात के लिये स्वयं अपना ज्ञान नहीं होता ।

मुनक़त-उल-इज़हारात (वह अवस्था जिसके सम्बन्ध में समस्त लक्षण समाप्त हो जाते हैं) ।

अल अमा (अँधेरा कोहरा) जिसका आशय होता है—परमात्मा के परात्पर आन्तरिक पहलू के सम्बन्ध में परमात्मा की अप्रत्यक्ष शक्यता की अवस्था, और उसके **अहदियत** (चैतन्य ऐक्य) के बाह्य पहलू में, जिसमें जात को अपनी श्रेष्ठ एकता का भान होता है, परमात्मा की अप्रत्यक्ष शक्याता की अवस्था ।

मेहेरबाबा समझाते हैं कि यद्यपि परमात्मा परब्रह्म अवस्था (चैतन्य एकता) से परात्पर परब्रह्म अवस्था में लौट नहीं सकता, वह जानता है कि वह अनन्त सत्, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द **था** और

of wahdat-ul-shuhud (apparentism), originally founded by Abdul Karim al-Jili, the author of Al-lnsan-ul-Kamil.

The spiritual fact, however, is that Wujudiyyah philosophy is of a loftier kind and admits of no considerations of convenience or compromise. The gnosis of Meher Baba is equally applicable to both these approaches to Truth and in order to follow it as given in the "Ten States of God" some familiarity with the Sufi way of delineating the tanazzulat—the devolutions of the Absolute—through successive stages of manifestations known as khamsa wujudat (Five Existences) of the Sufi world would be of help to the seeker.

The Gnosis of all Perfect Sufis implies that God in the Beyond the Beyond state is unknowable and undefinable. In comprehending this state of God (Wara-ul-Wara) which is Beyond the Beyond, the wings of thought and imagination are paralyzed. In the Beyond the Beyond state, the Absolute God (Wujud-e-Mutlaq) is.

The Sufis have described this transcendent state of God in many ways, such as:

Ghaib-ul-Ghaib (the Hidden of the Hidden).

Majhul-un-Nat (the Unknowable and the Undefinable). It is in this state that there is no knowledge of Itself for *zat*.

Munqata-ul-Izharat (the state in relation to which all indications are dropped).

Al Ama (the Dark Mist) which implies a state of latent potentiality of God in relation to its inward aspect of Beyond the Beyond, and in its outward aspect of *ahadiyat* (conscious Oneness) in which zat is aware of its transcendent Unity.

Meher Baba explains that although God from the Beyond state (conscious Oneness) cannot return to the Beyond the Beyond state, He knows that He **was** and **is** Infinite Existence, Infinite Knowledge and

अब भी और उससे, वह जानता है कि उसकी मूल अवस्था परात्पर-परब्रह्म अवस्था (**ज़ात-उल-बहत**) थी ।

जी भी हो, सत्य के खोजियों को यह विषय समझने योग्य बनाने की दृष्टि से, सूफ़ियों ने ईश्वरीय विषय को पाँच विभिन्न प्रकार के अध: पतनों एवं अभिव्यक्तियों के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

खमसा वुजूदत अथवा पाँच प्रकार के अस्तित्व

(१) **वहीद-उल-वुजूद** (इकाई सम्बन्धी अस्तित्व) यथार्थ लोक के **आलम-ए-लहूत** में प्रथम अभिव्यक्ति अथवा **तजल्ली-ए-अव्वल** है और उसमें अहादियत (चैतन्य एकता) के क्रम का समावेश होता है ।

(२) **आरिफ़-उल-वुजूद** (अस्तित्व का ज्ञान रखना) वह स्थिति है जिसका संसर्ग **हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी** (मुहम्मद की यथार्थता) अथवा **मूर-ए-मुहम्मदी** (मुहम्मद की ज्योति),* सत्यता के लोक में **हहूत** की स्थिति से होता है । यह वहदियत की स्थिति है जो वहीदियत की चेतना से सम्पन्न होती है (चैतन्य ऐक्य जिसमें अनेकता-में-एकता की चेतना होती है) । यह दूसरी अभिव्यक्ति है, अर्थात् **तजल्ली-ए-दोयम** है ।

(३) **मुमतान-उल-वुजूद** (नकारात्मक अस्तित्व) अभिव्यक्ति की (**तजल्ली-ए-सोयम**) तीसरी श्रेणी है । यह **आलम-ए-जबरूत** (मनो भुवन) है जिस स्थल पर वहीदियत की श्रेणी (अनेकता में एकता) का प्रारम्भ होता है ।

(४) **मुमकिन-उल-वुजूद** (सम्भव अस्तित्व) जिसमें अन्य बातों के अलावा फ़रिश्तों की दुनियाँ, आत्माओं और प्रेत आत्मओं का समावेश होता है, और वह **आलम-ए-**मलकूत (सूक्ष्म लोक) कहलाता है, जो **प्राण शक्ति** का प्रदेश है । यह अभिव्यक्ति की चौथी श्रेणी, तजल्ली-ए-चहारूम प्रस्तुत करता है ।

(५) **वजीब-उल-वुजूद** (अनिवार्य अस्तित्व) स्थूल अस्तित्व से

* 'हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी' : परमात्मा के मूल 'शब्द' का साक्षात्कार ।'नूर-ए-मुहम्मदी' : परमात्मा के मूल 'शब्द' की अभिव्यक्ति ।'हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी' में 'नूर-ए-मुहम्मदी' का समावेश होता है, किन्तु 'नूर-ए-मुहम्मदी' में 'हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी' का समावेश 'नहीं' होता ।

Infinite Bliss and from that knows that His original state was the Beyond-Beyond state (*Zat-al-Baht*).

However, with a view to making the subject intelligible to the seekers, the Sufis have treated the Divine Theme in terms of devolutions or manifestations of five different types, thus:

Khamsa Wujudat or Five Kinds of Existence

(1) *Wahid-ul-wujud* (Unitary Existence) is the first manifestation or *tajalli-e-avval* in the *alam-e-lahut* of the Real Sphere and comprises the stage of *ahadiyat* (conscious Oneness).

(2) *Arif-ul-wujud* (Knowing Existence) is the stage associated with *haqiqat-e-Muhammadi* (Reality of Muhammad) or *nur-e-Muhammadi* (Light of Muhammad),* the stage of *hahut* in the Sphere of Reality. This is the stage of *wahdiyat* conscious of *wahidiyat* (conscious Oneness conscious of Oneness-in-manyness). It is the second manifestation, the *tajalli-e-dovvom*.

(3) *Mumtan-ul-wujud* (Negative Existence) is the third stage of manifestation (*tajalli-e-sevvom*). This is *alam-e-jabrut* (the mental sphere) at which point the stage of *wahidiyat* (Oneness in manyness) begins.

(4) *Mumkin-ul-wujud* (Possible Existence) amongst other things comprises the world of angels and spirits, and is known as *alam-e-malakut* (the subtle sphere), which is the sphere of Energy. This represents *tajalli-e-chaharom,* the fourth stage of manifestation.

* Haqiqat-e-Muhammadi: God's original Word realized. Nur-e-Muhammadi: God's original Word expressed. Haqiqat-e-Muhammadi includes nur-e-Muhammadi, but nur-e-Muhammadi does not include haqiqat-e-Muhammadi.

सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक चीज़ का समावेश होता है । सूफ़ी लोग उसको **आलम-ए-नसूत** (स्थूल लोक), अभिव्यक्ति का पाँचवाँ पहलू, **तजल्ली-ए-पंजुम** के रूप में जानते हैं ।

ये परमात्मा की परब्रह्म अवस्था से, परमात्मा के पाँच अवतरणों का प्रतिनिधित्व करती है जो अवस्था **तजल्लियत-ए-खमसा** (पाँच अभिव्यक्तियाँ) अथवा **खमसा-वुजूदत** (पाँच अस्तित्व) के रूप में जानी जाती है ।

अब हम उनमें से प्रत्येक का विवेचन ऊँची चढ़ती हुई श्रेणियों में करेंगे, जिसका प्रारम्भ हम **वजीब-उल-वुजूद** (अनिवार्य अस्तित्व) से करेंगे और उसका अन्त वहीद-उल-वुजूद (एकात्मक अस्तित्व) से करेंगे ।

शरियत (विधान) के प्रदेश में, **वजीब-उल-वुजूद** (अनिवार्य अस्तित्व) का अर्थ आदयात्मिक विद्या वाले के लिये परम परमात्मा होता है जिससे अस्तित्व की सभी श्रेणियों की उत्पत्ति होती है । दूसरी ओर, सूफ़ी मत वाले लोग इसके विपरीत इस शब्द का प्रयोग उस सबको ध्वनित करने के लिये करते हैं जो स्थूल और भौतिक है । इस स्थल पर **वुजूद** का अर्थ शरीर से है, क्योंकि विकसित होती हुई आत्मा पत्थर में, वनस्पति में, पशुओं में, और मानव योनियों में पाँच तत्वों से निर्मित स्थूल माध्यमों क बग़ैर विकसित होती नहीं कही जा सकती । यह भौतिक अस्तित्व **वाजिब-उल-वुजूद** की श्रेणी में ईश्वर का दिया हुआ महान वरदान है, क्योंकि इसके बग़ैर पूर्णता, सन्तपन और नेतृत्व के क्रमों की प्राप्ति अविचारणीय होगी ।

स्थूल शरीर एक आश्चर्यजनक एवं अद्वितीय यन्त्र कला है जिसमें सभी अन्य चार सापेक्षिक और वास्तविक अस्तित्व निहित होते है—सूक्ष्म, मानसिक, उप-श्रेष्ठ, तथा स्वयं परमात्मा । इसलिये सूफ़ीमत वाले मानव शरीर को **आलम-ए-सगीर** (मानव शरीर का सूक्ष्म दर्शन) कहते हैं जो **आलम-ए-कबीर** का संक्षेप संग्रह (*microcosm*) है जिसमें सभी पाँचों तत्वों का समावेश होता है, जिसके रहस्य को सद्गुरु अथवा उद्धारक के विराट् मन की सहायता के बग़ैर कोई नहीं उघार सकता ।

वाजिब-उल-वुजूद (अनिवार्य अस्तित्व, अथवा स्थूल लोक) की उत्पत्ति **मुमकिन-उल-वुजूद** से होती है अथवा वह **मुमकिन-उल-वुजूद** (सूक्ष्म लोक) का प्रतिबिम्ब है । इस स्थिति में परमात्मा और सृष्टि

(5) *Wajib-ul-wujud* (Necessary Existence) comprises everything relating to gross existence. It is known to the Sufis as *alam-e-nasut* (the gross sphere), the fifth aspect of manifestation, the *tajalli-e-panjom*.

These represent the five devolutions of God from the Beyond state, known as tajalliyat-e-khamsa (five manifestations) or khamsa wujudat (five existences).

Now we shall treat each one of them in the ascending series beginning with wajib-ul-wujud (Necessary Existence) and ending with wahid-ul-wujud (Unitary Existence).

In the domain of shariat (law), wajib-ul-wujud (Necessary Existence) means to the theologian the Absolute God from Whom all grades of existence derive their being. The Sufis on the other hand use the term to denote everything that is gross and material. Here wujud means body, since the evolving soul in stone, vegetable, animal and human form cannot be said to evolve without the gross mediums composed of five elements. This gross existence in the stage of wajib-ul-wujud is a great boon conferred by God, as without it the achievement of the stages of Perfection, sainthood and leadership would be unthinkable.

The gross body is a wonderful and unique mechanism which has in it all the other four relative and real existences, the subtle, mental and sub-supramental and God Himself. Hence the human body is called by the Sufis as alam-e-saghir (Microcosm) which is the epitome of alam-e-kabir (Macrocosm) which comprises all the five existences, the mystery of which no one can unravel without the help of the universal mind of a Perfect Master or the Saviour.

Wajib-ul-wujud (Necessary Existence, or gross sphere) derives its existence from or is the reflection of *mumkin-ul-wujud* (subtle sphere).

के बीच का सम्बन्ध प्रभू और दास का जैसा सम्बन्ध है । इस स्थिति की विकसित होती हुई चेतना अथवा मन **नफ़्स-ए-अम्मारा** (दुरात्मा) कहलाती है और उसमें किसी भी स्थूल चीज़ का रस लेने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है । यहाँ मनुष्य के परमात्मा से सम्बन्ध का विचार **तौहीद-ए-अक़वाली** (परमात्मा की मौखिक एकता) कहलाता है जो परमात्मा के अस्तित्व को मुख से स्वीकार करता है ।

मुमकिन-उल-वुजूद (सम्भव अस्तित्व, अथवा सूक्ष्म लोक) की उत्पत्ति **मुमतान-उल-वुजूद** (मनो लोक) से होती है । यहाँ परमात्मा और उसके प्रकट हुये गुणों के बीच का सम्बन्ध उस प्रकार का होता है जो पिता और बच्चों के बीच विद्यमान होता है । इस स्थल पर परमात्मा अपने बच्चों के प्रति—जो लापरवाह होते हैं, जिन्हों दण्ड अथवा पुरस्कार पाने का कोई विचार नहीं होता, ज्ञान प्राप्त करने की कोई इच्छा नहीं होती, और आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिये कोई तीव्र अभिलाषा नहीं होती—कृपालु, दयालु और जागरूक होता है । और, ऐसे सत्व आमतौर पर फ़रिश्तों के रूप में जाने जाते हैं । इस लोक (**आलम-ए-मलकूत**) की चेतना **नफ़्स-ए-लव्वामा** (निन्दनीय आत्म) की श्रेणी में रक्खी जाती है और इस क्रम में परमात्मा का बोध **तौहीद-ए-**अक़ाली (कर्म की एकता) कहलाता है, जिसका यह अर्थ है कि इस दुनियाँ के सत्व परमात्मा का स्मरण करने के अपने निर्धारित कार्य में अनन्य रूप से व्यस्त होते हैं ।

मुमतान-उल-वुजूद (नकारात्मक सत्, अथवा मनो लोक) में आध्यात्मिक मार्ग की पाँचवीं और छठवीं भूमिकायें अन्तर्निहित होती हैं जो इस स्थिति पर **वहीदियत** (अनेकता में एकता) में पहुँच जाती है । **वहीदियत** पाँचवीं भूमिका से प्रारम्भ होती है और छठवीं भूमिका में अपने चरम शिखर पर पहुँच जाती है और उसके अन्तर्गत सृष्टि के सब विविरण स्पष्ट होते हैं जिनमें सूक्ष्म और स्तूल भूमिकायें सम्मिलित होती हैं । यह **आलम-ए-जबरूत** है जो अपना अस्तित्व **आरिफ़-उल-वुजूद** (**हक़ीक़त-ए-**मोहम्मदी की स्थिति) से प्राप्त करती है और **आरिफ़-ए-वुजूद** का प्रतिबिम्ब होती है । यह **मुमतान-उल-वुजूद,** अथवा **नकारात्मक सत्** कहलाता है, केवल इस कारण से कि **मुमतान** का अर्थ है वह जिसका अस्तित्व नहीं है, और **वुजूद** का अर्थ सत् का शरीर अथवा रूप है । इस प्रकार, **मुमतान-उल-वुजूद** शब्द से यह अर्थ ध्वनित होता है कि उसके

The relationship between God and Creation at this stage is that of the lord and the slave. The evolving consciousness or mind of this stage is called nafs-e-ammara (evil self) and it has the natural tendency to enjoy anything that is gross. Here the idea of God's relation to man is known as tauhid-e-aqwali (verbal unity of God) which acknowledges the existence of God orally.

Mumkin-ul-wujud (Possible Existence, or subtle sphere) derives its existence from mumtan-ul-wujud (mental sphere). Herein the re-lationship between God and His manifested attributes is of the sort that exists between father and children. Here God is kind, merciful and vigilant towards His children who are carefree, with no thoughts of punishment or reward, no desire for knowledge and no craving for spiritual attainments. And such entities are commonly known as angels. The consciousness of this sphere (alam-e-malakut) is styled as nafs-e-lawaama (reproachful self) and the cognition of God at this stage is called tauhid-e-afa'ali (unity of action), which means the entities of this world are exclusively busy with their appointed task of remembering God.

Mumtan-ul-wujud (Negative Existence, or mental sphere) contains the fifth and sixth planes of the Path which at this stage reaches wahidiyat (Oneness in manyness). Wahidiyat begins from the fifth and reaches its zenith in the sixth plane and has explicit in it all the details of Creation comprising the subtle and the gross planes. This is the alam-e-jabrut which derives its existence from and is the reflection of arif-ul-wujud (the stage of haqiqat-e-Muhammadi). It is called mumtan-ul-wujud, or Negative Existence, for the simple reason that mumtana means that which is non-existent, and wujud means the form or body of existence. Thus, the word mumtan-ul-wujud signifies that the form is non-existent therein. This stage

अन्तर्गत रूप अतित्वरहित है । यह स्थिति बीज के समान है जिसके अन्तर्गत वृक्ष की शाखाओं और जड़ों के लिये क्षमता होती है, जो पूरेतौर से विकसित और अविर्भूत हो जाने पर, सूक्ष्म और स्थूल भूमिकाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं । सूफ़ी मत वाले इसे **ला मकां** के रूप में जानते हैं ।

मनोलोक की चेतना को सूफ़ी मत वाले **नफ्स-ए-मुतमय्यना** कहते हैं, जिसका अर्थ होता है पाँचवीं भूमिका में आनन्द भरा अथवा सन्तुष्ट आत्म, और **नफ्स-ए-मुलहिमा** का अर्थ होता है छठवीं भूमिका में, उत्प्रेरक सत्व । इस स्थल पर परमात्मा और सृष्टि के बीच का रिश्ता प्रियतम और प्रेमी का होता है, और इन स्थितियों में परमात्मा का विचार मूफ़ी मत वालों को **तौहीद-ए-अहवली** (भावना की एकता) की तरह ज्ञान होता है । यह वह स्थिति है जो **हक़ीक़त-ए-इनसानी** (मानव की वास्तविकता) कहलाती है जिसके अन्तर्गत मनुष्य परमात्मा के अमने-सामने आ जाता है, लेकिन उसने अब भी अपने अहङ्कार का त्याग नहीं किया और वह अब भी हुई के प्रदेश में है ।

वहीद-उल-वुजूद (एकात्मक अस्तित्व) सत्यता के लोक के **आलम-ए-लहूत** की स्थिति में, वह अवस्था है जिसमें परमात्मा को पहले अपनी अहदियत (चेतन ऐक्य) की चेतना प्राप्त हुई, और **आरिफ़-उल-वुजूद** वास्तविकता के उसी लोक के **आलम-ए-हहूत** के क्रम में **वहीदियत** की **वहदियत** अवस्था अवस्था (अनेकता-में-एकता का चैतन्य ऐक्य) में है, जो **हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी** भी कहलाती है ।

वरा-उल-वरा की अवस्था में, परमात्मा, सूफ़ी मत वालों के अनुसार, एक छुपा हुआ भण्डार था और चाहता था कि वह जाता आवे । जैसे ही "छुपे भण्डार" ने अपनेआपको जानने की इच्छा प्रकट की, उसको 'ज्योति' (**नूर**) के रूप में खुद अपना भान हो गया, अथवा **नूर-ए-मुहम्मदी** का भान हो गया, जिसके अस्तित्व के अन्दर समस्त सृष्टि और अभिव्यक्त जगत प्रसुप्त और अन्तर्निहित है; और इसी के सम्बन्ध में **नबी मुहम्मद** ने कहा है, "परमात्मा ने पहले मेरी ज्योति पैदा की, और मेरी ज्योति से, विश्व की उत्पत्ति हो गई ।" परमात्मा के ज्ञान में यह **जमाल** (सौन्दर्य) का पहलू है जो **तौहीद-ए-ज़ती** (सारतत्व की एकता) में समाविष्ट है । इस स्थल पर, परमात्मा और सृष्टि के बीच विद्यमान सम्बन्ध ऐसा है जैसा **प्रेमी** और प्रियतम के बीच विद्यमान होता

is akin to the seed which contains within it the potential for the roots and the branches of the tree, which, when fully evolved and manifest, go to represent the subtle and the gross planes. The Sufis know this as *la makan* in which all ideas of time and space converge to a point.

The consciousness of the mental sphere is called by the Sufis nafs-e-mutmainna, meaning beatified or satisfied self, in the fifth plane, and nafs-e-mulhima, meaning inspired self, in the sixth plane. Herein the relationship between God and Creation is that of Beloved and the lover, and the idea of God in these stages is known to the Sufis as tauhid-e-ahwali (unity of feeling). This is the stage known as haqiqat-e-insani (Reality of man) wherein man comes face to face with God, but has not yet shed his ego and is still in the domain of duality.

Wahid-ul-wujud (Unitary Existence) in the stage of alam-e-lahut of the Sphere of Reality is the state in which God first became conscious of His ahadiyat (conscious Oneness), and arif-ul-wujud in the stage of alam-e-hahut of the same sphere of Reality is the state of wahdiyat-e-wahidiyat (conscious Oneness of Oneness-in-manyness) also called haqiqat-e-Muhammadi.

In the state of *Wara-ul-Wara,* God, according to the Sufis, was a hidden treasure and wanted to be known. No sooner did "the hidden treasure" express a desire to know itself, than it became aware of itself as Light (nur), or nur-e-Muhammadi, which has implicit and latent in it the existence of all the Creation and the manifest world; and it is in relation to this that Prophet Muhammad has said, "God created my light first, and from my light the universe came into being." This is the aspect of *jamal* (beauty) in the knowledge of God included in *tauhid-e-zati* (Unity of Essence). Here, the relationship existing between God and the Creation is that existing between the Lover and the beloved. Here the Lover is God

है । यहाँ प्रेमी परमात्मा है और मुहम्मद प्रियतम है । यहाँ परमात्मा को अपने खुद का और सृष्टि दोनों का पूर्ण भान होता है ।

वहीद-उल-वुजूद (अस्तित्व की एकता) परमात्मा की परात्पर परब्रह्म अवस्था में पहली सीम्तिता है और पाँचवें लोक की स्थितियों में से एक एकता है जो **लहूत** कहलाता है । यह चैतन्य अखण्डता की स्थिति है, जो **आरिफ़-उल-वुजूद** (ज्ञानमय अस्तित्व) द्वारा त्रिलोक में लाये जाने पर, उसको **फ़ना** और **बक़ा** दोनों का अनुभव प्रदान करती है । यह स्थिति पथ की अन्य सब स्थितियों के समान, मन और बुद्धि के परे है और वह शब्दों में धेरी नहीं जा सकती, और इसमें **तजल्ली-ए-जमाली** (सौन्दर्य का आविर्भाव) और **तजल्ली-ए-जलाली** (परमानन्द का अविर्भाव) दोनों का समावेश होता है । **तजल्ली-ए-जलाली** वह है जो आत्मा को फ़ना (पूर्णनाश) का अनुभव प्रदान करती है, और **तजल्ली-ए-जमाली** उसको एक बार फिर से सामान्य चेतना प्रदान करती है, जिसको सू. फी मत वाले **बक़ा** (स्थायित्व) के रूप में जानते हैं । **तजल्ली-ए-जलाली आशक़ियत** भी है जिसमें परमात्मा प्रियतम होता है और मनुष्य प्रेमी होता है; और **तजल्ली-ए-जमाली माशूक़ियत** है जिसमें परमात्मा **प्रेमी** होता है और मनुष्य प्रियतम होता है । यह बाद वाली स्थिति सर्वोच्च आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है, जो **फ़क्र** अथवा फ़क़ीरी कहलाती है ।

इस प्रकार, पाँचवें यथार्थ लोक के **आलम-ए-लहूत** और **आलम-ए-हहूत** में, क्रमशः आशिक-ओ-माशूक़ (प्रेमी और प्रियतम एक में) और **आशिक़** (प्रेमी) और **माशूक़** (प्रियतम) के पहलुओं में एकसाथ पूर्णता की श्रेणियाँ हैं । **आलम-ए-जबरूत** (मनोलोक) में **आशिक़** (प्रेमी) और **आरिफ़** (ज्ञानपथ) की श्रेणियाँ होती हैं, मलाकूत (सूक्ष्म लोक) गुणों की गणना करने वाली श्रेणी है, और **नसूत** (स्थूल लोक) **वाक़िफ़** (स्थूल चैतन्य परमात्मा) की स्थिति है । ऊर्ध्वगामी क्रम में इन स्थितियों का वर्णन करते हुये, जब **वाक़िफ़,** अर्थात् चैतन्या पुरुष, और अधिक चैतन्य हो जाता है, तब वहा **वासिफ़** (गुणों) की स्थिति में प्रवेश करता है, और **वासिफ़** से वह **इरफ़ान** (ज्ञानपथ) की स्थिति में प्रवेश करता है, और **वासिक़** से वह परमात्मा के रहस्यों (मारिफ़) के प्रदेश में पहुँचता है । **मारिफ़** की स्थिति से उसको परमात्मा की ज्योति प्राप्त होती है जो उसको प्रेमी का पद प्रदान करती है, और जब

and Muhammad is the beloved. God here possesses complete awareness of both Himself and Creation.

Wahid-ul-wujud (Unity of Existence) is the first limitation of God in the Beyond-Beyond state and is one of the stages of the fifth sphere known as lahut. This is the stage of conscious Absolutism which, when used by the arif-ul-wujud (Knowing Existence), gives him the experience of both fana and baqa. This stage, like all other stages of the Path, is beyond mind and intellect and cannot be encompassed in words, and includes tajalli-e-jamali (epiphany of beauty) and tajalli-e-jalali (epiphany of beatitude). Tajalli-e-jalali is that which confers on a soul the experience of fana (complete annihilation), and tajalli-e-jamali endows him once again with the consciousness of normality, known to the Sufis as baqa (permanency). Tajalli-e-jalali is also ashqiyyat wherein God is the Beloved and man is the lover; and tajalli-e-jamali is mashuqiyat wherein God is the Lover and man is the beloved. This latter is the highest spiritual manifestation, known as faqr or faqiri.

Thus in *alam-e-lahut* and alam-e-hahut of the fifth, the Real Sphere, are the stages of Perfection in the respective aspects of *ashiq-o-mashuq* (Lover and the Beloved in One) and *ashiq* (Lover) and *mashuq* (Beloved) simultaneously. In *alam-e-jabrut* (mental sphere) are the stages of ashiq (lover) and *arif* (gnostic), in *malakut* (subtle sphere) is the stage of enumerator of attributes, and in *nasut* (the gross sphere) is the stage of *waqif* (gross-conscious one). Describing these stages in the ascending order, when *waqif*, the conscious one, becomes more conscious, he enters the stage of *wasif* (attributes). And from *wasif* he arrives at the stage of *irfan* (gnosis) and from *irfan* he reaches the domain of the mysteries of God (*maarif*). From the stage of *maarif* he is presented with the sight of God which confers upon him the status of a lover, and when he ultimately

वह अन्ततोगत्वा **प्रेम** बन जाता है, तब उसको मालूम होता है कि वह खुद सबकुछ का सर्वस्व था । **हुयत** की इस स्थिति में सबकुछ परमात्मा की, "मैं-परमात्म-हूँ" अवस्था में समाप्त हो जाता है ।

३५. माया* (१९९)

जो शक्ति मनुष्य को आध्यात्मिक रूप से अन्धा, बधिर, इत्यादि, बनाये रखती है वह खुद उसकी अज्ञानता है जिसका नियन्त्रण ऐहिक अज्ञानता का सिद्धान्त करता है जिसको आमतौर पर माया‡ करते हैं ।

माया को समझना विश्व को समझना है । समस्त निथ्या मूल्य एवं मिथ्या आस्थायें माया के चंगुल के कारण होती हैं । बुद्धि विशेषरूप से माया के हाथों में झूलती है, क्योंकि बुद्धि उस चेतना के लिये सक्षम नहीं होती जिसको अनुभव होता है कि **परमत्मा सत्य** है । सत्य का ज्ञान केवल ऐहिक माया को, जो **माया** के कारण सत्यवत् दिखाई पड़ती है, लाँघ जाने के बाद ही हो सकता है ।

माया, अर्थात् अज्ञानता के सिद्धान्त, को केवल तभी लाँघा जा, सकता है जबकि आध्यात्मिक जिज्ञासु यह अनुभव करने के योग्य होता है कि माया परमात्मा की छाया है और इस रूप में वहा शून्य है । माया की पहेली केवल आत्म-साक्षात्कार प्राप्त होने के बाद ही हल होती है ।

३६. मेहेरबाबा कहते हैं : (२२३)

अ. आध्यात्मिक विरोधाभास

"जब तक कि अज्ञानता नहीं हटती और ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती (अर्थात् उस ज्ञान की प्राप्ति जिसके द्वारा दिव्य जीवन का अनुभव एवं आचरण होता है) तब तक आध्यात्मिकता से सम्बन्धित सबकुछ विरोधाभास—परमात्मा, मालूम पड़ता है जिसको हम नहीं देखते, और हम उसे सत्य कहते हैं; और दुनियाँ को, जो हमें दिखाई पड़ती है, हम असत्य कहते हैं । अनुभव में, जोकुछ का अस्तित्व हमारे लिये होता है

(३२२)

* [मेहेरबाबा, "माया", जैसा आयरीन कोनीबेयर कृत "इन क्वेस्ट आफ़ ट्रूथ" में उद्घृत किया है (काकीनाडा, आन्ध्र प्रदेश, भारत : स्वामी सत्यप्रकाश उदासीन), पृष्ठ २७४-२७५ । —सम्पादक]

‡ [इसे भी पढ़िये : मेहेरबाबा, "माया", सम्भाषण, ३ : १३७-१५९ । —सम्पादक]

becomes LOVE, he finds that he himself was the end-all and be-all of everything. In this stage of *Huyat,* everything is dissolved in the "I am God" state of God.

35 *Maya* * (180)

The force that keeps a man spiritually blind, deaf, etc., is his own ignorance which is governed by the principle of cosmic ignorance generally known as Maya.†

To understand Maya is to understand the universe. All false values and false beliefs are due to the grip of Maya. Intellect in particular plays into the hands of Maya, for intellect is not capable of that consciousness which realizes that God is Truth. Truth can only be known after one transcends the cosmic illusion which appears as real owing to Maya.

Maya, the principle of ignorance, can only be transcended when the spiritual aspirant is able to realize that Maya is God's shadow and as such is nothing. The enigma of Maya solves itself only after Self-realization.

Meher Baba Says (202)

A. SPIRITUAL PARADOX

"Unless and until ignorance is removed and Knowledge is gained (the Knowledge whereby the divine life is experienced and lived) everything pertaining to the spiritual seems paradoxical— God, whom we do not see, we say is real; and the world, which we do see, we say is

* [Meher Baba, "Maya," as quoted in *In Quest of Truth*, Irene Conybeare (Kakinada, A.P., India: Swami Satya Prakash Udaseen), 274–275. Ed.]

† [See also Meher Baba, "Maya," Discourses, 370–387. Ed.]

वास्तव में उसका अस्तित्व नहों होता; और जिसका अस्तित्व हमारे लिये नहीं होता, उसका अस्तित्व वास्तव में होता है ।

"अपने खुद को पाने के लिये हमें अपने खुद को खो देना चाहिये; इस प्रकार स्वयं क्षति लाभ है । हमें ईश्वर में वास करने के लिये खुद अपने प्रति मर जाना चाहिये; इस प्रकार मौत का अर्थ जीवन है । हमें पूर्णरूप से ईश्वर के अधिकार में होने के लिये अन्तस्तल में बिल्कुल खाली हो जाता चाहिये; इस प्रकार पूर्ण रिक्तता का अर्थ पूर्ण परिपूर्णता होता है । हमें शून्य होने के द्वारा आपा से नग्न हो जाता चाहिये जिससे हम ईश्वर की अनन्तता में निमग्न हो जायँ; इस प्रकार कुछनहीं का अर्थ है सबकुछ ।"

ब. अस्तित्व सारतत्व है और जीवन छाया है

"अस्तित्व शाशवत है, जबकि जीवन नश्वर है ।

"तुलनात्मक दृष्टि से अस्तित्व ऐसा है जैसा मनुष्य के लिये उसका शरीर होता है, और जीवन उस कपड़े के समान है जो शरीर को ढाँकता है । वही शरीर मौसमों, समय और परिस्थितियों के अनुसार कपड़े बदलता है, ठीक जिस प्रकार एक और शाश्वत **अस्तित्व,** जीवन के असंख्य और विविध पहलुओं के आद्योपान्त, सदैव विद्‌मान रहता है ।

"अस्तित्व, अपनी विविध परतों और रंगों के साथ जीवन के लबादा से ढका होने से पहिचान में न आने के कारण अपरिवर्तनशील है । जीवन का लिबास, अपने मन, शक्ति और स्थूल रूपों के पर्दों के सहित जो अस्तित्व के ऊपर 'छाया' और लदा रहता है, शाश्वत, अखण्ड्य और अपरिवर्तनशील अस्तित्व को नश्वर, विविध एवं नित्य—परिवर्तनशील के रूप में प्रस्तुत करता है ।

"**अस्तित्व** सर्व-व्यापी है, और सब चीज़ों का अन्तर्निहित सार है, चाहे वे जड़ अथवा चेतन हों, यथार्थ अथवा मिथ्या हों, विविध उप जातियों में हों अथवा एकरूप हों, सामूहिक अथवा व्यक्तिगत हों, भावात्मक अथवा सारभूत हों ।

"अस्तित्व की नित्यता में समय नहीं होता । उसमें भूत और भविष्य नहीं होता; केवल नित्य वर्तमान होता है । अनन्तता में कभी कुछ नहीं घटित हुआ और कभी कुछ घटित न होगा । हर चीज़ अनन्त **वर्तमान** (*now*) में घटित हो रही है ।

unreal. In experience, what exists for us does not really exist; and what does not exist for us, really exists.

"We must lose ourselves in order to find ourselves; thus loss itself is gain. We must die to self to live in God; thus death means life. We must become completely void inside to be completely possessed by God; thus complete emptiness means absolute fullness. We must become naked of selfhood by being nothing, so as to be absorbed in the infinity of God; thus nothing means Everything."

B. EXISTENCE IS SUBSTANCE AND LIFE IS SHADOW

"Existence is eternal, whereas life is perishable.

"Comparatively, Existence is what his body is to man, and life is as the cloth that covers the body. The same body changes clothes according to the seasons, time and circumstances, just as the one and eternal Existence is always there throughout the countless and varied aspects of life.

"Shrouded beyond recognition by the cloak of life with its multifarious folds and colours is Existence unchangeable. It is the garb of life with its veils of mind, energy and gross forms that 'shadows' and superimposes on Existence, presenting the eternal, indivisible and unchangeable Existence as transient, varied and ever-changing.

"Existence is all-pervading, and is the underlying essence of all things, whether animate or inanimate, real or unreal, varied in species or uniform in forms, collective or individual, abstract or substantial.

"In the eternity of Existence there is no time. There is no past and no future; only the everlasting present. In eternity nothing has ever happened and nothing will ever happen. Everything is happening in the unending NOW.

"अस्तित्व परमात्मा है; जबकि जीवन माया है ।

"अस्तित्व यथार्थता है; जबकि जीवन कल्पना है ।

"अस्तित्व अनश्वर है; जबकि जीवन क्षणिक है ।

"अस्तित्व अपरिवर्तनशील है; जबकि जीवन नित्य परिवर्तनशील है ।

"अस्तित्व स्वतन्त्रता है; जबकि जीवन एक बन्धन है ।

"अस्तित्व अखण्ड्य है; जबकि जीवन बहुगुना है ।

"अस्तित्व दृष्टिगोचर नहीं है; जबकि जीवन धेखा है ।

"अस्तित्व स्वाधीन है; जबकि जीवन मन, प्रानशक्ति और स्थूल रूपों पर निर्भर है ।

"अस्तित्व है; जबकि जीवन होता मालुम पड़ता है ।

"अतएव, अस्तित्व जीवन नहीं है ।

"जन्म और मृत्यु जीवन के आदि अथवा अन्त नहीं होते । जबकि जीवन की असंख्य स्थितियाँ और अवस्थायें, जो तथाकथित जन्मों और मृत्युओं को निर्मित करती हैं, विकास और पुनर्जन्म के विधान से नियन्त्रित होती हैं, जीवन **केवल एकबार** अस्तित्व में आता है, वह सीमित चेतना की प्रथम धुँदली किरणों के आगमन के साथ आता है और अनन्त अस्तित्व की असीमित चेतना प्राप्त होने पर **केवल एकबार** मरता है ।

"अस्तित्व सर्वज्ञ, सर्व—शक्तिमान, सर्व—व्यापी परमात्मा, होने के कारण, कारण और कार्य के परे, देश और काल के परे, समस्त क्रियाओं के परे होता है ।

"अस्तित्व सबका स्पर्श करता है, सब चीज़ों और सब छायाओं का स्पर्श करता है । कोई भी चीज़ कभी भी **अस्तित्व** का स्पर्श नहीं कर सकती । अस्तित्व का स्वयं होना भी **अस्तित्व** का स्पर्श नहीं कर सकता ।

"अस्तित्व का साक्षात्कार करने के लिये, जीवन का त्याग कर देना चाहिये । जीवन ही असीमित आपा को सीमिततायें प्रदान करता है । सीमित सत्व का जीवन संस्कार पैदा करते हुये मन के द्वारा स्थिर रहता है; प्राणशक्ति द्वारा स्थिर रहता है जो अभिव्यक्तियों द्वारा इन संस्कारों को संचित और नष्ट करने की प्रेरणा प्रदान करती है; और स्थूल रूपों तथा शरीरों द्वारा स्थिर रहता है जो ऐसे माध्यमों के रूप में

"Existence is God; whereas, life is illusion.

"Existence is Reality; whereas, life is imagination.

"Existence is everlasting; whereas, life is ephemeral.

"Existence is unchangeable; whereas, life is ever-changing.

"Existence is freedom; whereas, life is a binding.

"Existence is indivisible; whereas, life is multiple.

"Existence is imperceptible; whereas, life is deceptive.

"Existence is independent; whereas, life is dependent upon mind, energy and gross forms.

"Existence **is;** whereas, life appears to be.

"Existence, therefore, is not life.

"Birth and death do not mark the beginning or end of life. Whereas the numerous stages and states of life which constitute the so-called births and deaths are governed by the laws of evolution and reincarnation, life comes into being **only once,** with the advent of the first dim rays of limited consciousness, and succumbs to death **only once** on attaining the unlimited consciousness of infinite Existence.

"Existence, all-knowing, all-powerful, all-present God, is beyond cause and effect, beyond time and space, beyond all actions.

"Existence touches all, all things and all shadows. Nothing can ever touch Existence. Even the very fact of its being does not touch Existence.

"To realize Existence, life must be shed. It is life that endows limitations to the unlimited Self. Life of the limited self is sustained by the mind creating impressions; by energy supplying the impetus to accumulate and dissipate these impressions through expressions; and by gross forms

कार्य करते हैं जिनके द्वारा ये संस्कार नष्ट होते हैं, पुनः संचित होते, और अन्ततः **कर्मों** द्वारा समाप्त हो जाते हैं ।

"जीवन कर्मों की शृङ्खला से गहरा जुड़ा रहता है । जीवन कर्मों के द्वारा आचरित होता है । जीवन का मुल्य कर्मों के द्वारा आँका जाता है । जीवन का अतिजीवन कर्मों पर निर्भर रहता है । सचेत जीवन कर्म है—स्वभाव में विपरीत कर्म, स्वीकारात्मक और नकारात्मक कर्म, रचनात्मक और विनाशक कर्म ।

"इसलिये, जीवन को उसकी अन्तिम मृत्यु के अधीन होने देना सब संस्कारों का अन्त होने देना है । सब कर्मों का अन्त पूर्णतया हो जाता है, तब जीवन अपने को सहजतया असीमित **सत्व** के **अस्तित्व** के रूप में अनुभव करता है । अस्तित्व का साक्षात्कार हो जाने पर, चेतना का विकास एवं प्रतिवर्द्धन परिपूर्ण हो जाता है, माया का लोप हो जाता है, और पुनर्जन्म का विधान आगे बन्धन नहीं पैदा करता ।

"केवल कर्म करने से मुँह चुराने से कर्मों का अन्त कभी न होगा । इसका केवल यह अर्थ होगा एक कर्म को अब भी दूसरे कर्म में क्रियाशील करना—अर्थात्, अकर्मता को क्रियाशील करना ।

"कर्मों का उन्मूलन करने के लिये कर्मों से बचना उपाय नहीं है । इसके विपरीत, ऐसा करने से सीमित सत्व को स्वयं बचने की क्रिया में अधिक उलझने का विस्तार मिलेगा, और इस प्रकार और अधिक कर्म पैदा होंगे । अच्छे और बुरे, दोनों कर्म, जीवन के उलझे हुये धागे में लगी गाँठों के समान हैं । कर्म की गाँठों को खोलने के लिये जितने अधिक प्रयत्न किये जाते हैं, उतनी ही अधिक गाँठें दृढ़ हो जाते हैं और उतनी ही अधिक उलझ जाती हैं ।

"केवल कर्म ही कर्मों का सफाया कर सकते हैं, जिस तरह से ज़हर ही ज़हर के प्रभावों को नष्ट कर सकता है । एक गहरा गड़ा हुआ काँटा, दूसरे काँटे के द्वारा अथवा उसी प्रकार की किसी तेज़ चीज़ के द्वारा, जैसे सुई, बाहर निकाला जा सकता है, यदि उसका प्रयोग चतुरता और सावधानी से किया जाता है । इसी प्रकार से, कर्मों का पूर्ण उन्मूलन दूसरे कर्मों के द्वारा किया जाता है—जब वे 'आत्म' के अलावा किसी अन्य क्रियाशील साधन के द्वारा किये जाते हैं ।

(३२५)

and bodies functioning as the instruments through which these impressions are spent, reinforced and eventually exhausted, through actions.

"Life is thickly linked with actions. Life is lived through actions. Life is valued through actions. Life's survival depends on actions. Life cognizant is actions—actions opposite in nature, actions affirmative and negative, actions constructive and destructive.

"Therefore, to let life succumb to its ultimate death is to let all actions end. When actions end completely, life of the limited self spontaneously experiences itself as Existence of the unlimited Self. Existence being realized, evolution and involution of consciousness is complete, illusion vanishes, and the law of reincarnation no longer binds.

"Simply to desist from committing actions will never put an end to actions. It would merely mean putting into action yet another action—that of inactivity.

"To escape from actions is not the remedy for the uprooting of actions. Rather, this would give scope to the limited self to get more involved in the very act of escaping, thus creating more actions. A ctions, both good and bad, are like knots in the tangled thread of life. The more persistent the efforts to undo the knots of action, the firmer become the knots and the greater the entanglement.

"Only actions can nullify actions, in the same way that poison can counteract the effects of poison. A deeply embedded thorn may be extricated by the use of another thorn or any sharp object resembling it, such as a needle, used with skill and precaution. Similarly, actions are totally uprooted by other actions—when they are committed by some activating agent other than the 'self.'

"**कर्म योग, ज्ञान योग, राज योग** और **भक्ति योग** सत्य के मार्ग पर प्रमुक संकेत चिन्ह होते हैं, जो **खोजी** को शाश्वत **अस्तित्व** के लक्ष्य की ओर अग्रसर करते हैं । किनतु जीवन का बन्धन, जिसका पोषण **कर्मों** से होता है, जिज्ञासु के ऊपर इतना कड़ा होता है कि वह इन स्फूर्तिदायक संकेत चिन्हों की सहायता प्राप्त होने पर भी, सही दिशा में पथप्रदर्शन पाने में असफल होता है । जब तक 'आत्म' **कर्मों** के बन्धन में जकड़ा रहता है, तब तक जिज्ञासु, अथवा सत्य की ओर जाने वाले मार्ग का तीर्थयात्री भी, निश्चय ही आत्म-वंचना के द्वारा भटक जायगा ।

"समस्त कालों के आद्योपान्त, **साधुओं** और खोजियों, सिद्धों और सन्तों, **मुनयों** और **साधुओं, तपस्वियों** और **संन्यासियों,** योगियों, सूफ़ियों और **तालिबों,** ने अपने जीवनकालों में तपस्या की है, और अपनेआपको **कर्मों** की भूल-भुलइयों से छुड़ाने के लिये और जीवन पर विजय प्राप्त करके शाश्वत सत् का साक्षात्कार करने के लिये, संघर्ष किया है और अकथनीय कठिनाइयों का सामना किया है ।

"वे अपने प्रयासों में असफल होते हैं क्योंकि वे अपने 'अहं' (*selves*) से जितना अधिक संघर्ष करते हैं, उतनी ही दृढ़ता से उनके 'आत्म', संयमों और तपस्याओं के द्वारा प्रगाढ हुये **कर्मों** के माध्यम से, एकान्तवासों और तीर्थयात्राओं से, ध्यान और चित्त की एकाग्रता करने से, सत्यन्वेशी वचनों और शान्त चिन्तनों से, प्रगाढ़ क्रिया और अकर्मता से, मौन और भाषण से, **जपों** और **तपों** से, और सब प्रकार के **योगों** और **चिल्लाओं** से, जीवन के बन्धन में जकड़ जाते हैं ।

"जीवन के चंगुल से छुटकारा अीर **कर्मों** की भूल-भुलइयों से स्वतन्त्रता सबके लिये सम्भव हो जाती है और चन्द लोगों को प्राप्त होती है, जबकि **पूर्ण पुरुष, सद्गुरु** अथवा **क़ुतुब** के पास पहुँच हो जाती है और उसकी कृपा तथा पथप्रदर्शन प्राप्त करने के लिये प्रार्थना की जाती है । पूर्ण पुरुष की अनिवार्य सलाह उसके प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण करने के लिये होती है । वे चन्द लोग जो अपना सर्वस्व—मन, शरीर, आधिपत्य—सबकुछ समर्पित कर देते हैं, और इस प्रकार वे अपने पूर्ण आत्मसमर्पण के साथ सद्गुरु को चेतनतया ख़ुद अपने अहं भी समर्पित कर देते हैं, तब भी स्वयं उनका अस्तित्व कर्म करने के लिये चैतन्यरूप

"Karma yoga, dnyan yoga, raj yoga and bhakti yoga serve the purpose of being prominent signposts on the path of Truth, directing the seeker toward the goal of eternal Existence. But the hold of life, fed by actions, is so tight on the aspirant that even with the help of these inspiring signposts, he fails to be guided in the right direction. As long as the Self is bound by actions, the aspirant, or even the pilgrim on the path toward Truth, is sure to go astray through self-deception.

"Throughout all ages, sadhus and seekers, sages and saints, munis and monks, tapasavis and sanyasis, yogis, Sufis and talibs have struggled during their lifetimes, undergoing untold hardships in their efforts to extricate themselves from the maze of actions and to realize the eternal Existence by overcoming life.

"They fail in their attempts because the more they struggle with their 'selves,' the firmer the selves become gripped by life, through actions intensified by austerities and penances, by seclusions and pilgrimages, by meditation and concentration, by assertive utterances and silent contemplation, by intense activity and inactivity, by silence and verbosity, by japas and tapas, and by all types of yogas and chillas.

"Emancipation from the grip of life and freedom from the labyrinths of actions are made possible for all and attained by a few, when a Perfect Master, Sadguru or Qutub is approached and his grace and guidance are invoked. The Perfect Master's invariable counsel is complete surrender to him. Those few who do surrender their all—mind, body, possessions—so that with their complete surrender they also surrender consciously their own 'selves' to the Perfect Master, still have their very being left

से बच रहता है, जो कर्म अब केवल सद्गुरु के आदेशों से क्रियाशील होते हैं ।

"ऐसे कर्म साधक के 'अहं' के आत्म-समर्पण के बाद अब उसके खुद के कर्म नहीं रह जाते । अतएव, ये कर्म अन्य सब कर्मों का उन्मूलन करने की क्षमता रखते हैं जो जीवन का पोषण करते और उसको स्थिर रखते हैं । तब जीवन क्रमशः निर्जीव हो जाता है और अन्ततोगत्वा, सद्गुरु की कृपा से, अपनी अन्तिम मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । जीवन, जो किसी समय सतत् **अस्तित्व** का अनुभव करने से परिश्रम करते हुये साधक को रोके था, अब वह खुद अपने छल को कार्य का रूप नहीं दे सकता ।

"मैंने बूतकाल में ज़ोर देकर कहा है, मैं तुमको अब बतलाता हूँ, और मैं युग-युगान्तर में सदैव बारम्बार बतलाऊँगा कि तुम अपने जीवन के लबादा को उतार फेंको और सत् का साक्षात्कार करो जो शाश्वतः तुम्हारा है ।

"अपरिवर्तनशील, अखण्ड्य, सर्व-व्यापी **सत्** की इस सत्यता का अनुभव करने के लिये, सबसे सरल मार्ग है मेरे प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण करना; इतने पूर्णरूप से आत्म-समर्पण करना कि तुम्हें अपने आत्म-समर्पण करने की चेतना भी न रहे, और केवल मेरी आज्ञा का पालन करने की तथा जब और जोकुछ मैं आज्ञा दूँ वही करने की चेतना रहे ।

"यदि तुम नित्य जीवन्त रहने की इच्छा करते हो, तो तुम मेरे प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण करने के हाथों से अपने छली अहं की मौत करने की अभिलाषा करो । यह **योग** सब मिलाकर एक किये गये **योगों** का सार है ।"

स. चार यात्रायें

"ईश्वर अनन्त है और उसकी छाया भी अनन्त है । ईश्वर की छाया अनन्त अन्तरिक्ष है जो अनन्त स्थूल लोक को धारण करता है जो, मनुष्य के ज्ञान के विस्तार के भीतर और बाहर, लाखों विश्वों की अपनी घटनाओं सहित, सृष्टि है जिसका प्रारम्भ अनन्त सत् में जो ईश्वर है सीमितता के बिन्दु से हुआ था ।

(३२७)

conscious to commit actions which are now activated only by the dictates of the Master.

"Such actions, after the surrender of one's 'self,' are no longer one's own actions. Therefore, these actions are capable of uprooting all other actions which feed and sustain life. Life then becomes gradually lifeless and eventually succumbs, by the grace of the Perfect Master, to its final death. Life, which once debarred the persevering aspirant from realizing perpetual Existence, can now no longer work its own deception.

"I have emphasized in the past, I tell you now, and I shall age after age forevermore repeat that you shed your cloak of life and realize Existence which is eternally yours.

"To realize this truth of unchangeable, indivisible, all-pervading Existence, the simplest way is to surrender to me completely; so completely that you are not even conscious of your surrender, conscious only to obey me and to act as and when I order you.

"If you seek to live perpetually, then crave for the death of your deceptive self at the hands of complete surrender to me. This yoga is the essence of all yogas in one."

C. THE FOUR JOURNEYS

"God is infinite and His shadow is also infinite. The shadow of God is the infinite space that accommodates the infinite gross sphere which, with its occurrences of millions of universes, within and without the range of men's knowledge, is the Creation that issued from the point of finiteness in the infinite Existence that is God.

"इन सब लाखों विश्वों में नक्षत्रों सहित अनेक प्रणालियाँ हैं । कुछ प्रणालियाँ गैस सरीखी अवस्थाओं में हैं, कुछ ठीस होने की अवस्थाओं में हैं, कुछ पाषाण एवं धातु की अवस्थाओं में हैं, कुछ ऐसी अवस्थाओं में हैं जो वनस्पति भी रखती हैं । कुछ प्रणालियों में जीवन की योनियाँ भी विकसित हो गई हैं जैसे कीड़ों की योनियाँ, कुछ मछलियों की भी, कुछ पक्षियों की भी, कुछ पशुओं की भी, और कुछ मनुष्य की योनियाँ भी विकसित हो गई हैं ।

"इस प्रकार ही हजारों विश्वों के आद्योपान्त नक्षत्र हैं जिन पर विकास के सात जनतों की अभिव्यक्ति है, और चेतना एवं योनियाँ का विकास पूर्ण हो गया है ।

"किन्तु केवल **पृथ्वी** के नक्षत्र पर मानव प्राणियों का पूनर्जन्म होता है, और आत्म-साक्षात्कार के प्रतिवर्द्धन के मार्ग का प्रारम्भ होता है ।

"लाखों विश्वों के इस अनन्त स्थूल लोक का केन्द्र **पृथ्वी** है; इस रूप में कि यह वह **बिन्दु** है जिस पर समस्त मानवी-चेतनायुक्त आत्मायें प्रतिवर्द्धन के मार्ग को प्रारम्भ करने के लिये आती हैं ।

"इस प्रतिवर्द्धन के पथ में सात स्टेशनें होती हैं और सातवीं स्टेशन पर पहुँचने से ईश्वर-प्राप्ति की प्रथम यात्रा पूर्ण हो जाती है ।

"यद्यपि इस यात्रा की पूर्णता समस्त मानवी आत्माओं का लक्ष्य है, तथापि केवल कुछ आत्मायें किसी भी निश्चित क्षण पर इस मार्ग पर आरूढ़ होती हैं । इस यात्रा के अन्त पर पहुँचना अनन्त चेतना के महासागर में व्यक्तित्व का डूब जाना है, और यात्रा की परिपूर्णता, पूर्ण चेतना के सहित, 'मैं-परमात्मा-हूँ" की अवस्था में आत्मा की निमग्नता है, और, परमात्मा के रूप में, वह अनन्त **शक्ति, ज्ञान** और **आनन्द** का अनुभव करती है ।

"उन सब आत्माओं में से जो पहिली यात्रा पूरी कर लेती हैं, बहुत थोड़ी आत्मायें दूसरी यात्रा में प्रवेश करती हैं । इस यात्रा में कोई स्टेशनें नहीं होतीं । यह एक तात्कालिक यात्रा है—जिसमें अनन्त चेतना की यात्रा 'मैं-परमात्मा-हूँ' अवस्था की अपनी निमग्नता से टकराकर

"In these millions of universes are many systems with planets. Some are in gaseous states, some in states of solidification, some of stone and metal, some which also have vegetation. Some have also developed life forms such as worms, some also fish, some also birds, some also animals, and a few also have human beings.

"Thus it is that throughout the myriads of universes there are planets on which the seven kingdoms of evolution are manifested, and the evolution of consciousness and forms is completed.

"But only on the planet Earth do human beings reincarnate and begin the involutionary path to Self-realization.

"Earth is the centre of this infinite gross sphere of millions of universes inasmuch as it is the Point to which all human-conscious souls must migrate in order to begin the involutionary path.

"This involutionary path has seven stations and arrival at the seventh station completes the first journey to God.

"Although the completion of this journey is the Goal of all human souls, only a very few at any given moment embark upon it. The arrival at the end of this journey is the drowning of individuality in the Ocean of infinite consciousness, and the journey's completion is the soul's absorption in the state of 'I am God' with full consciousness, and, as God, it experiences infinite Power, Knowledge and Bliss.

"Out of all the souls who complete the first journey, a very few enter the second journey. This journey has no stations. It is an instantaneous journey—the journey of infinite consciousness being shaken from its absorption in 'I am God' to abiding in God as God. In this state individuality is regained, but individuality is now infinite, and this infinity

परमात्मा में परमात्मावत् निवास करना है । इस अवस्था में व्यक्तित्वता पुनः प्राप्त हो जाती है, किन्तु व्याक्तित्वता अब अनन्त हो जाती है, और इस अनन्तता में स्थूल चेतना का समावेश होता है, अतः मनुष्य और परमात्मा के रूप में उसको अनन्त शक्ति, ज्ञान और परमानन्द का अनुभव अत्यन्त सीमितता के मध्य होता है—असीमित आत्मा को सीमितता के बीच अपनी असीमितता का ज्ञान होता है ।

"तीसरी यात्रा पर केवल वे लोग चलते हैं जिन्होंने दूसरी यात्रा पूर्ण कर ली है, और जिनके भाग्य में अनन्त शक्ति, ज्ञान और आनन्द के प्रयोग करने का बोझ, वहन करना है और इस प्रकार ईश्वर का जीवन एकसाथ मनुष्य और परमात्मा के दोनों रूपों में व्यतीत करना है ।

"किसी भी निश्चित क्षण में केवल ऐसे पाँच सद्गुरु पृथवी पर सजीव होते हैं, और वे विश्व की हलचलों को तथा मनुष्यों की दुनियाओं के कार्य-व्यापार को नियन्त्रित करते हैं । केवल जब उन पाँच सद्गुरुओं में से एक अपना शरीर छोड़ देता है तब उनमें से एक, जो ईश्वर में ईश्वरवत् वास करते हैं, आगे आता है और रिक्त हुये पद को पूरा करने के लिये तीसरी यात्रा पूर्ण करता है ।

"इन पाँच **सद्गुरुओं** की यह ड्यूटी होती है कि वे **पुरातन पुरुष** (**अवतार**) को पृथ्वी पर उतारें और उसको खुद उसकी सृष्टि का कार्यभार सौंप दें ।

"वे सब लोग जो पृथ्वी पर ईश्वर का जीवन व्यतीत करते हैं और सब लोग जो पृथ्वी पर परमात्मा में परमात्मावत् वास करते हैं, जब वे अपने शरीर छोड़ते हैं, तब वे सदैव के लिये अपने सूक्ष्म और कारण शरीरों को भी छोड़ देते हैं और पूर्णतः परमात्मावत् मुज़र जाते हैं, जबकि वे अपनी अनन्त व्यक्तित्वता को धारण किये रहते हैं तथा अनन्त शक्ति, ज्ञान और आनन्द का अनुभव करते रहते हैं । यह चौथी यात्रा है ।

"वास्तव में इन चार यात्राओं की यात्रायें कभी नहीं की जातीं, क्योंकि ईश्वर को यात्रा करने के लिये कहों स्थान नहीं होता । वह आदि

includes gross consciousness, and so as man and God it experiences infinite Power, Knowledge and Bliss in the midst of most-finiteness—the unlimited Soul knows Its unlimitedness in the midst of limitation.

"The third journey is undertaken only by those who have accomplished the second journey, and whose lot it is to bear the burden of the exercise of infinite Power, Knowledge and Bliss and so live God's life both as man and God simultaneously.

"There are only five such masters living on the earth at any given moment, and they control the movement of the universes and the affairs of the worlds of men. Only when one of these five Perfect Masters drops his body can one of those who are abiding in God as God move onwards and complete the third journey to fill the vacant office.

"It is the duty of these five Perfect Masters to precipitate the advent of the Ancient One (Avatar) and to hand over to Him the charge of His own Creation.

"All those who live God's life on earth and all those who abide in God as God on earth, when they drop their bodies, also shed forever their subtle and mental vehicles and pass away utterly as God, retaining infinite individuality and experiencing infinite Power, Knowledge and Bliss. This is the fourth journey.

"In reality these four journeys are never journeyed, for God has nowhere to journey. He is without beginning and without end. And

और अन्त से रहित होता है; और हर चीज़ जो अस्तित्व रखती प्रतीत होती है, **उससे** प्रकट हुई थी जिसका आदि नहीं है और लौटकर **उसमें** समा जाती है जिसका कोई अन्त नहीं है ।"

३७. भूलोक की दुनियाँ (२७५)

भूलोक के रूप में कोई दुनियाँ नहीं है । भूलोक की दुनियाँ सूक्ष्म जगत का अङ्ग नहीं है । तथापि, स्थूल और सूक्ष्म जगतों के बीच सात परदे हैं जिनसे भूलोक के तथाकथित जगत का निर्माण होता है, और यह दो दुनियाओं के बीच एक कड़ी का कार्य करता है ।

एक स्थूल-चेतनायुक्त आत्मा लिङ्गदेह रखती हुई कही जा सकती है जो स्थूल को सूक्ष्म से जोड़ती है । लिङ्गदेह स्थूल के ऊपर सूक्ष्म की छाप कही जा सकती है, जो छाप न स्थूल है और न सूक्ष्म ।

निद्रा में, साधरण स्वप्त अवस्था में, मनुष्य को अर्द्धचैतन्य रूप से सूक्ष्म शरीर के साथ स्थूल जगत के संस्कारों का अनुभव होता है, और लिङ्गदेह के साथ **नहीं** होता । भूलोक की दुनियाँ में समस्त अनुभवों के अनुभव जो लिङ्गदेह के माध्यम द्वारा अनुभव में आते हैं वे स्वप्तों की तरह निरर्थक होते हैं ।

शरीर त्याग देने के बाद आत्मा भूलोक की दुनियाँ का अनुभव लिङ्गदेह में करती है । इसे आत्मा की भूलोक यात्रा कहा जा सकता है । जब आत्मा मूर्तमान शरीर हो जाती है, तब लिङ्गदेह छूट जाती है और वह नवीन स्थूल शरीर के साथ नई लिङ्गदेह प्राप्त करती है; किन्तु जब तक वह मूर्तमान नहीं होती, तब तक उसके सूक्ष्म और कारण शरीर स्वर्ग अथवा नर्क की अवस्था के अनुभवों से गुज़रते हैं, और ऐसा वे लिङ्गदेह के माध्यम के द्वारा उन संस्कारों के अनुसार करते हैं जो तब सञ्चित हुये थे जब वे मूर्तमान अवस्था में थे ।

आध्यात्मिक पथ केवल चेतना के प्रतिवर्द्धन के साथ प्रारम्भ होता है जब आत्मा सूक्ष्म जगत की प्रथम भूमिका का अनुभव करने लगती है, और वह ठीक उस क्षण शुरू नहीं होता जब उसकी पहुँच

everything, which has the appearance of being, appeared from That which has no beginning and passes back into That which has no ending."

37 The World of the Astral (247)

There is no astral world as such. The astral world is not a portion of the subtle world. However, in between the gross and the subtle worlds there are seven sheaths which form the so-called world of the astral, and this serves as a link between these two worlds.

A gross-conscious soul may be said to have an astral body which links the gross with the subtle. The astral may be called the imprint of the subtle over the gross, which imprint is neither gross nor subtle.

In sleep, in the ordinary dream state, one experiences the impressions of the gross world with the subtle body subconsciously, and **not** with the astral body. All experiences in the world of the astral experienced through the medium of the astral body are as insignificant as dreams.

After disembodiment the soul experiences the world of the astral in the astral body. This may be said to be the astral journey of the soul. When the soul gets embodied, the astral body is shed and with the new gross body it gets a fresh astral body; but as long as it does not get embodied, its subtle and mental bodies undergo the experiences of the state of heaven or hell through the medium of the astral body, in accordance with the impressions that were accumulated while it was in an embodied state.

The spiritual Path begins only with the involution of consciousness when the soul begins to experience the first plane of the subtle world, and

स्थूल जगत से भूलोक तक हो जाती है । उस स्थिति में जब आत्मा सूक्ष्म जगत की पहिली भूमिका का पूर्ण अनुभव करती है, तब भूलोक का पर्दा जो सूक्ष्म को स्थूल से जोड़े था सदैव के लिये समाप्त हो जाता है ।

(३३१)

not when it just has access to the astral phenomena from the gross world. At the stage when the soul experiences fully the first plane of the subtle world, the astral sheath that linked the subtle with the gross is snapped for good.

उपसंहार

परमात्मा सर्वत्र है और सबकुछ करता है ।
परमात्मा हमारे अन्दर है और सबकुछ जानता है ।
परमात्मा हमारे बाहर है और सबकुछ देखता है ।
परमात्मा हमसे परे है और सबकुछ है ।
एकमेव परमात्मा है ।

Epilogue

God is everywhere and **does** everything.
God is within us and **knows** everything.
God is without us and **sees** everything.
God is beyond us and **IS** everything.
God alone **IS**.

शब्द-कोश

यह शब्द-कोश शब्दों का एक संचय है जिसका उपयोग मेहेरबाबा ने **ईश्वर वाणी** का लेख लिखाने में किया है । अन-अँग्रेज़ी शब्दों की उत्पत्ति, अधिकांश रूप में, सूफ़ी अथवा वेदान्तिक परम्पराओं में होती है । उनमें से लगभग सब शब्द अरबी, फ़ारसी अथवा संस्कृत भाषाओं से प्राप्त होते हैं । मेहेरबाबा अपने मौन में वर्णमाला तख्ती पर **ईश्वर वाणी** लिखाते समय, शब्दों का प्रयोग एक वाक्य में चार विभिन्न भाषाओं से करते थे, और ऐसा वह अपना सही अर्थ प्रकट करने में समय बचाने के लिये करते थे । दूसरी ओर, वह कभी-कभी एक शब्द का प्रयोग कुछ विभिन्न आशय में करते थे, जिस शब्द का सही अर्थ वेदान्त शिक्षा में गर्भित होता है । ऐसी दशा में, वह उसकी परिभाषा उस सन्दर्भ से करते थे जिसमें उन्होंने उसका प्रयोग किया था ।

इस शब्द-कोश में दी गई परभिाषायें उस आशय के लिये हैं जिसमें मेहेरबाबा ने शब्द का प्रयोग किया है । एक शब्द के बाद अक्षर (S) का यह अर्थ है कि वह सूफ़ी मूल का शब्द है और अरबी अथवा फ़रसी भाषाओं से प्राप्त होता है । अधर (V) का अर्थ है कि वह संस्कृत का शब्द है, और वह आमतौर पर किन्तु सदैव नहीं वेदान्त परम्परा के रूप में प्रयोग में लाया जाता है । वे शब्द जिनका मूल अन्य भाषाओं में (अर्थात् न्हिदी, मराठी भाषाओं में) होता है वे इसी प्रकार अंकित किये गये हैं । अँग्रेज़ी शब्दों के नीचे तिरछी रेखा (italics) नहीं खीची गई ।

ईश्वर वाणी के मूल पाठ में अँग्रेज़ी के अलावा अन्य सब भाषाओं के शब्दों के हिज्जे मेहेरबाबा और उनकी **मण्डली** के किये हुये प्रयोग के अनुसार हैं । उनकी सूची उस हिज्जे के अनुसार शब्द-कोश में दी गई है । हमारे सौभाग्य से, मेहेरबाबा के शरीर छोड़ देने के पहले, मेहेरबाबा ने इस शब्द-कोश को, जिसे मैं डाक द्वारा भेज चुका था, देखा और उसको स्वीकार किया ।

(३३५)

Glossary

This glossary is a collection of terms used by Meher Baba in dictating God Speaks. The non-English terms originate, for the most part, in the Sufi or Vedantic traditions. Nearly all of them come from the Arabic, Persian, or Sanskrit languages. While dictating God Speaks on the alphabet board in his silence, Meher Baba would use words from as many as four different languages in one sentence, to save time in conveying his precise meaning. On the other hand, he would sometimes use a word in a somewhat different sense than, say, the precise meaning which that word carries in the Vedanta teaching. In such case, he would define it by the context in which he used it.

The definitions in this glossary are for the sense in which the word is used by Meher Baba. The letter (S) after a word means that it is of Sufi origin and comes from the Arabic or Persian languages. The letter (V) means that it is a Sanskrit word, usually but not always defined as used in the Vedanta tradition. Those words that originate in other languages (e.g., Hindi, Marathi) are so marked. English words are not italicized.

The spelling of all non-English words in the text of God Speaks is in accordance with usage among Meher Baba and his mandali. They are listed in the glossary according to that spelling. Fortunately for us, before he dropped the body, Meher Baba went over and approved this glossary after I mailed it to him.

शब्द-कोश में दिये गये प्रत्येक शब्द के बाद उसका अर्थ अँग्रेज़ी अक्षरों में दिया गया है जिसमें 'काँग्रेस के यू॰ एस॰ पुस्तकालय' की पद्धति का प्रयोग किया गया है । इसका वर्णन उनके कैटलागिंग सर्विस बुलेटिन ६४, दिनांक फ़र्वरी १९६४ में दिया गया है ।

लुडविग एच॰ डिम्फिल, अप्रैल ५, १९७१

* * * * *

अब्दल (S) : (*abdāl*) एक आध्यात्मिक गुरू जिसमें यह विशेष लक्षण होता है कि वह अपनी इच्छानुसार अपने एक भौतिक शरीर को दूसरे शरीर से बदल सकता है और बदलता है ।

अबरार (S) : पाँचवीं भूमिका का सन्त । V : **महापुरुष** (**सन्त**) ।

आदम : सर्वप्रथम आत्मा जिसने विकास चक्र को (पाषाण से मनुष्य तक), और (मनुष्य को वापिस ईश्वर तक) के प्रतिवर्द्धन तक पूर्ण किया था । परम्परागत रूप से, प्रथम मनुष्य । प्रथम **अवतार** भी ।

अध्यात्म मार्ग (V) : (adhyatma marga) आध्यात्मिक पथ । S : **तरीक़त, राह-ए-तरीक़त** ।

आध्यात्मिक मार्ग (V) : (adhyatmika marga) = अध्यात्मि मार्ग ।

आदम (S) : ('adam) **शून्यता** ।

अद्वैत (V) : परम ऐक्य । हुई से रहित केवल एक । S : **तौहीद-ए-तन्ज़ीही** ।

अद्वैतवाद : शंकराचार्य द्वारा संस्थापित वेदान्त का "अन-द्वैत" सम्प्रदाय । इसकी तुलना सूफ़ी लोग **वुजूदियाह** दृष्टिकोण से करते हैं ।

अफ़राद (S) : छठवीं भूमिका पर स्थित प्रवीण तीर्थयात्री । V : **सत्पुरुष** ।

अफ़रीदगर (S) : (afridgar) विधाता । V : **ब्रह्म** ।

अहदियत (S) : (ahadiyat) शब्दार्थ, ऐक्य । चैतन्य ऐक्यता । सवच्चि चेतना । S : **हालात्-ए-मुहम्मदी** । V : **विज्ञान** ।

अहम् बह्मास्मि (V) : (aham brahmasmi) "मैं-परमात्मा-हूँ" । S : **अनल हक़** ।

अहल-ए-तौहीद (S) : (ahl-i tauhid) तौहीद, ईश्वर की एकता, से सम्बम्धित गुढ़वादी सम्प्रदायों के सदस्य । **वुजूदियाह** और **शुहूदियाह** ।

Following each word in the glossary is the transliteration into English letters using the system of the U.S. Library of Congress. This is described in their Cataloging Service Bulletin 64, dated February 1964.

Ludwig H. Dimpfl, April 5, 1971

* * *

ابدال *abdal* (S): (abdāl) A master who has the characteristic that he can and does exchange one of his physical bodies for another at will.

ابرار *abrar* (S): (abrār) A saint of the fifth plane. V: *mahapurush* (*sant*).

Adam: The first soul who completed the cycle of evolution (from stone to man), and involution (from man back to God). Traditionally, the first man. Also, the first Avatar.

adhyatma marga (V):(adhyātma mārga) The spiritual Path. S: *tariqat, rah-e-tariqat*.

adhyatmic marga (V): (adhyātmika mārga) = *adhyatma marga*.

عدم *adum* (S): ('adam) Nothingness.

advaita (V): (advaita) Absolute Oneness. One without a second. S: *tauhid-e-tanzihi*.

Advaitism: The "non-dualist" school of Vedanta founded by Sankaracharya. Comparable views are held by the Sufi *Wujudiyyah*.

افراد *afrad* (S): (afrād) An adept pilgrim on the sixth plane. V: satpurush.

آفریدگار *Afridgar* (S): (āfrīdgār) The Creator. V: *Brahma*.

احدية *ahadiyat* (S): (aḥadīyat) Lit., Oneness. Conscious Unity. The highest consciousness. S: *halat-e-Muhammadi*. V: *vidnyan*.

Aham Brahmasmi (V): (aham brahmāsmi) "I am God." S: *Anal Haqq*.

اهلِ توحيد *ahl-e-tauhid* (S): (ahl-i tauḥīd) Members of mystic schools concerned with *tauhid*, the unity of God. *Wujudiyyah* and *Shuhudiyyah*.

अहूरमज़्द (ज़ोरास्ट्रियन) : सर्वशक्तिमान ईश्वर । S : **अल्लाह** । V : **परमात्मा** ।

ऐक्य (V) : मिलन । S : **हक़ीक़त, वस्ल** ।

ऐन-उल-यक़ीन : देखिये : **यक़ीन** ।

अख़यार (S) : मार्ग पर ऊँचा उठा तीर्थयात्री । V : **महात्मा** ।

अकमल (S) : अत्यन्त पूर्ण पुरुष । **बक़ा-बिल्लाह** में ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त **सालिक** का एक दुर्लभ प्रकार जिसे द्वैत में ड्यूटी प्राप्त होती है, लेकिन शिष्य मण्डली प्राप्त नहीं होती । वह **सालिक-ए-अकमल** भी कहलाता है ।

अल : (अरबी लेख वर्णमाला में नहीं लिखा गया ।)

आलम-ए-हहूत (S) : ('alam-i hahut) प्रभुता का लोक । पाँचवें (यथार्थ) लोक का पहलू जहाँ से **क़ुतुब** और **अवतार** विश्व का संचालन करते हैं । V : **विज्ञान भूमिका** ।

आलम-ए-जबरूत (S) : ('alam-i jabrut) मनो लोक, जिसमें चेतना की पाँचवीं और छठवीं भूमिकायें होती हैं । V : **मनो भुवन** ।

आलम-ए-कबीर (S) : त्रिभुवन, जिसमें पाँच प्रकार लें अस्तित्व, **ख़मसा वुजूदत,** होते हैं ।

आलम-ए-लहूत (S) : पूर्णता का लोक । V : **विज्ञान** ।

आलम-ए-मलकूत (S) : सूक्ष्म लोक, जिसके अन्तर्गत चेतना की प्रथम भूमिका से चौथी भूमिकाओं तक भूमिकायें होती हैं । V : **प्राण भुवन** ।

आलम-ए-नसूत (S) : ('alam-i nasut) स्थूल लोक । पदार्थ की दुनियाँ, जिसकी प्रथक् चेतना अधिकांश मानव प्राणियों को होती है । V : **अन्न भुवन** ।

आलम-ए-सग़ीर (S) : पिण्ड । मनुष्य देह ।

अल्लाह (S) : परब्रह्म परमात्मा अवस्था में ईश्वर । सर्वशक्तिमान ईश्वर । V : **परमात्मा** । ज़ोरास्ट्रियन : **अहूरमज़्द, यज़दान** ।

अल अमा (S) : (al-a'ma) अँधेरा कोहरा । ईश्वर की परात्पर अवस्था का एक पद ।

अनल हक़ (S) : "मैं-परमात्मा-हूँ ।" V : **अहम् ब्रह्मास्मि** ।

आनन्द (V) : परमानन्द । S : **मुसर्रत** ।

अनन्त (V) : अपार । S : **ला महदूद** ।

Ahuramazda (Zoroastrian): Almighty God. S: *Allah*. V: *Paramatma*.

aikya (V): (aikya) Union. S: *haqiqat, vasl*.

ain-ul-yaqin: See *yaqin*.

اخیار *akhyar* (S): (akhyār) An advanced pilgrim on the Path. V: *mahatma*.

اکمل *Akmal* (S): (akmal) A Most Perfect One. A rare type of God-realized *Salik* in *baqa-billah* who has duty in Duality, but no circle of disciples. Also called *Salik-e-Akmal*.

al-: (The Arabic article is not alphabetized.)

عالمِ هاهوت *alam-e-hahut* (S): ('ālam-i hāhūt) The sphere of Mastery. The aspect of the fifth (Real) sphere from which the *Qutub* and *Avatar* direct the universe. V: *vidnyan bhumika*.

عالمِ جبروت *alam-e-jabrut* (S): ('ālam-i jabrūt) The mental sphere, comprising the fifth and sixth planes of consciousness. V: *mano bhuvan*.

عالمِ کبیر *alam-e-kabir* (S): ('ālam-i kabīr) The macrocosm, comprising the five kinds of existence, *khamsa wujudat*.

عالمِ لاهوت *alam-e-lahut* (S):('ālam-i lāhūt) The sphere of Perfection. V: *vidnyan*.

عالمِ ملکوت *alam-e-malakut* (S): ('ālam-i malakūt) The subtle sphere, which comprises the first through the fourth planes of consciousness. V: *pran bhuvan*.

عالمِ ناسوت *alam-e-nasut* (S): ('ālam-i nāsūt) The gross sphere. The world of matter, of which most human beings are exclusively conscious. V: *anna bhuvan*.

عالمِ صغیر *alam-e-saghir* (S): ('alam-i ṣaghīr) The microcosm. The human body.

الله (أللّه) *Allah* (S): (allāh) God in the Beyond state. Almighty God. V: *Paramatma*. Zoroastrian: *Ahuramazda, Yezdan*.

العما *al Ama* (S): (al-a'mā) The Dark Mist. A designation of the Beyond-Beyond state of God.

أنالحق *Anal Haqq* (S): ('anā al-ḥaqq) "I am God." V: *Aham Brahmasmi*.

anand (V): (ānanda) Bliss. S: *musarrat*.

anant (V): (ananta) Infinite. S: *la mahdood*.

आना (हिन्दी) : एक छोटा सिक्का, रूपये का सोलहवाँ हिस्सा ।

अन्न भूमि (V) : स्थूल जगत । S : आलम-ए-नसुत ।

अन्न भूमिका (V) : स्थूल भूमिका ।

अन्न भुवन (V) : स्थूल लोक । S : आलम-ए-नसुत ।

अन्तर दृष्टि (V) : (antar drsti) शब्दार्थ, अन्तस्तल में "देखना" (परमात्मा को देखना) । दृष्टि द्वारा दृढ़ विश्वास । S : **ऐन-उल-यक़ीन** । देखिये : **यक़ीन** ।

अन्वर (S) : (anvar) नूर का बहुवचन, **तलज्जी** के प्रसंग में भी देखिये ।

अक़्ल-ए-कुल (S) : ('aql-i kull) विराट मन । सद्गुरुओं द्वारा प्राप्त किया गया । V : **सार्वभौमिक मन** ।

आरिफ़ (S) : ('arif) शब्दार्थ, ज्ञाता । चेतना की पाँचवीं भूमिका पर स्थित एक आत्मा ।

आरिफ़-उल-वुजूद : देखिये : **वुजूद** ।

अर्श-ए-आला (S) : ('arsh i 'ala) शब्दार्थ, उच्च सिंहासन । सर्वोच्च आध्यात्मिक स्थिति, अर्थात् **अवतार** और सद्गुरुओं की अवस्था । V : **विज्ञान भूमिका** ।

आसन (V) : (asana) बैठने का ढँग, जैसा ध्यान लगाने के लिये ।

असर (S) : (asar) परमात्मा का प्रभाव (जिसका अनुभव **हाल** प्राप्त करने वालों को होता है) ।

आशिक़ (S) : शब्दार्थ, प्रेमी । छठवीं भूमिका पर स्थित एक आत्मा ।

आशिक़-ओ-माशूक़ (S) : प्रेमी और प्रियतम एक में, पूर्णता के लोक में परमात्मा का पहलू, **आलम-ए-लहूत** ।

आशक़ियत (S) : प्रेमी होने की स्थिति । प्रथम अभिव्यक्ति में महिमा का आविर्भाव, जिसमें ईश्वर प्रियतम होता है और मनुष्य प्रेमी होता है ।

आसमान (S) : भूमिका । V : **भूमिका** ।

आत्मा (V) : (atman : atman भी) आत्मा । S : **जान** अथवा **रूह** ।

आत्मप्रोतस्थापना (V) : = **सहज समाधि** । देखिये : **बक़ा-बिल्लाह** ।

अत्तर, शख़ फ़रीदुद्दीन । निशापुर निवासी । **मन्तिक-उल-तायर** (पक्षियों के सम्मेलन) के लेखक । जिनका वध १२२९ ई॰ में निशापुर के मुग़ल लूट-पाट में हुआ था ।

anna (Hindi): (ānā) A small coin, one-sixteenth of a rupee.

anna bhumi (V): (annabhūmi) The gross world. S: *alam-e-nasut*.

anna bhumika (V): (annabhūmikā) The gross plane.

anna bhuvan (V): (annabhuvana) The gross sphere. S: *alam-e-nasut*.

antar drishti (V): (antardṛṣṭi) Lit., inner "seeing" (seeing God). Conviction by sight. S: *ain-ul-yaqin*. See *yaqin*.

انوار (نور) *anwar* (S): (anvār) pl. of *nur, q.v.* See also under *tajalli*.

عقلِ کل *aql-e-kull* (S): ('aql-i kull) The Universal Mind. Acquired by Perfect Masters. V: *sarvabhaumic mana*.

عارف *arif* (S):('ārif) Lit., knower. A soul on the fifth plane of consciousness. *arif-ul-wujud:* See *wujud*.

عرشِ علیٰ *arsh-e-ala* (S): ('arsh-i 'ala) Lit., the high throne. The highest spiritual state, i.e., of *Avatar* and Perfect Masters. V: *vidnyan bhumika*.

asan (V): (āsana) Posture, as for meditation.

اثر *asar* (S): (asar) The influence (of God experienced by the recipient of *hal*).

عاشق *ashiq* (S): ('āshiq) Lit., lover. A soul on the sixth plane of consciousness.

عاشق و معشوق *ashiq-o-mashuq* (S): ('āshiq o ma'shūq) Lover and the Beloved in One, the aspect of God in the sphere of Perfection, *alam-e-lahut*.

عاشقیت (یة) *ashqiyyat* (S): ('ashqiyyat) The state of being a lover. The epiphany of glory in the first manifestation, wherein God is the Beloved and man the lover.

آسمان *asman* (S): (āsmān) Plane. V: bhumika.

atma (V): (ātma) (also, *atman:* ātman) The soul. S: *jan* or *ruh*.

atmapratisthapana (V): (ātmapratiṣṭhāpana) = *sahaj samadhi*. See *baqa-billah*.

Attar, Sheikh Fariduddin. Of Nishapur. Author of *Mantiq-ut-Tayr* (*Conference of the Birds*). Killed in the Mongol sack of Nishapur in 1229 A.D.

अवतार (V) : क्राईस्ट, रक्षक, पुरातन पुरुष । S : **रसूल, साहेब-ए-ज़मां** ।

आवागमन (हिन्दी) : देखिये : **रिफ़त** ।

अवारिफ़-उल-मारिफ़ (S) : ('avarif ul ma'arif) **ज्ञानपथ** की देनें, जिसको तेरहवीं शताब्दी के सूफ़ी, शेख़ सुहरावर्दी ने लिखा था ।

ऐन (S) : ('ain) (अथवा ain) सार, **ज़ात** का पर्यायवाचक । नेत्र, अथवा दृष्टि, भी ।

आज़ाद-ए-मुतलक़ (S) मुक्त हुआ शरीरधारी । नवीं अवस्था में परमात्मा । V : **जीवन मुक्त** ।

अज़्ल-उल-अज़्ल (S) : (azal ul azal) नित्यताओं की **नित्यता** । परमात्मा की **परात्पर अवस्था** का एक पद ।

बन्दा (S) : शब्दार्थ, गुलाम; सेवक । माया में बैधी सीमित आत्मा ।

बक़ा (S) : निवास करना । देखिये : **फ़ना-बक़ा** ।

बक़ा-बिल्लाह (S) : दूसरी **ईश्वरीय यात्रा** के अन्त में परमात्मा में निवास करना । V : **आत्माप्रतिस्थापना सहज समाधि** ।

बक़ा-उल-बक़ा (S) : (baqa' l baqa') परमात्मा के ईश-पुरुष होने की अवस्था (परमात्मा ख़ुद को **अवतारवत्** जानता हुआ) ।

बा सिफ़त बा सूरत (S) : रूप में सगुण और अभिव्यक्त । V : **सगुण साकार** ।

भाव (V) : ओतहर्ष । (**देवता** के सम्बन्ध में) भक्ति का रूप । हर्षोन्माद । S : **हाल** ।

भूमिका (V) : भूमिका । स्थिति । S : **आसमान** ।

बेहोशी (S) : (bi hushi) शब्दार्थ अचैतन्यता । दुनियाँ में रुचि का अनिच्छित ह्रास जो पीछे को गिरने अथवा व्यक्तिगत आपदा के कारण पैदा होती है । किंचित् आध्यात्मिक मूल्य की ।

बेख़ुदी (S) : ख़ुद की विस्मृति । पथ पर की प्रथम सीढ़ियों में ।

ब्रह्मा (V) : विधाता । S : **अफ़रीदगर** ।

ब्रह्मण (V) : यथार्थता । S : **हक़** ।

ब्रह्मण्ड (V) : मायावी विश्व ।

ब्रह्मी भूत (V) : (brahmi bhuta) ईश्वर में निमग्न आत्मा । अवस्था ८ में त्रमात्मा । S : **मजज़ूब-ए-कामिल** ।

बुद्ध : वह **अवतार** जिसकी शिक्षायें हमें बुद्ध धर्म से प्राप्त होती हैं ।

Avatar (V): (avatara) The Christ, the Saviour, the Ancient One. S: *Rasool, Saheb-e-Zaman.*

awagawan (Hindi): (avagavan) See *rij'at.*

عوارف المعارف *Awarif-ul-Maarif* (S): ('avarif ul ma'arif) The Gifts of Gnosis, treatise by the thirteenth century Sufi, Sheikh Suhrawardi.

عين *ayn* (S): ('ain) (or ain) The Essence, synonymous with *zat*. Also, the eye, or sight.

آزادِ مطلق *Azad-e-Mutlaq* (S): (āzād-i muṭlaq) The Liberated Incarnate. God in the ninth state. V: *Jivanmukta.*

ازل الازال *Azl-ul-Azal* (S): (azal ul azāl) The Eternity of eternities. A designation of the Beyond-Beyond state of God.

بندة *bandah* (S): (bandah) Lit., slave; servant. The limited soul bound in illusion.

بقاء *baqa* (S): (baqā') Abiding. See *fana-baqa.*

بقاء باللّه *baqa-billah* (S): (baqā' billāh) Abiding in God at the end of the second divine journey. V: *atmapratisthapana, sahaj samadhi.*

بقاء البقاء *baqa-ul-baqa* (S): (baqā' l baqā') The state of God becoming God-Man (God's knowing Himself as *Avatar*).

با صفة با صورة *ba sifat ba surat* (S): (bā ṣifat bā ṣūrat) Qualitied and manifest in form. V: *saguna sakar.*

bhav (V): (bhāva) Ecstasy. Form of devotion (in relation to the Deity). Trance. S: hal.

bhumika (V): (bhūmikā) Plane. Stage. S: asman.

بی هوشی *bihoshi* (S): (bī hūshī) Lit., unconsciousness. An involuntary loss of interest in the world caused by setbacks or personal tragedy. Of little spiritual value.

بی خودی *bikhudi* (S): (bī khvudī) Forgetfulness of self. Among the first steps on the Path.

Brahma (V): (brahmā) The Creator. S: *Afridgar.*

Brahman (V): (brahman) Reality. S: *Haqq.*

brahmand (V): (brahmāṇḍa) The cosmos. The illusory universe.

Brahmi Bhoot (V): (brahmī bhūta) The God-merged soul. God in State VIII. S: *Majzoob-e-Kamil.*

उसका जन्म मगध (बिहार, भारत) में ईसामसीह के जन्म के लगभग ५६८ वर्ष पहले हुआ था और मृत्यु लगभग ४७७ वर्ष पहले हुई थी ।

चिल्ला (S) : (cillah) (तपस्या के) ४० दिनों की अवधि ।

चिल्ला-नशीनी (S-हिन्दी) : (cillah-nasini) ४० दिनों की तपस्या करता ।

चित् (V) : (cit) ईश्वरीय ज्ञान । S : **मारेफ़त** ।

करोड़ (हिन्दी) : (karora) १०० लाख । (१०,०००,०००) ।

दौर (S) : (daur) = ज़मा : ७०० से १४०० वर्ष तक का एक काल चक्र, जो **अवतार** के प्रगट होने के समय से पारम्भ होता है । V : **युग** ।

दौर-ए-क़लन्दरी (S) : प्रभुता का चक्र ।

दर्शन (V) : शब्दार्थ, देखना, श्रोता । किसी अवसर पर सद्गुरु का प्रगट होता, भक्तों को आशीर्वाद प्रदान करने के लिये, कभी-कभी **प्रसाद** के रूप में ।

धर्म शास्त्र (V) : सामान्य पथ । पुराणपन्थी । S : **शरियत** ।

सम्भाषण : (Discourses) : मेहेरबाबा द्वारा १९३८ से १९४४ ई॰ तक दिये गये सम्भाषणों का संचय ।

दिवान (S) : (divan) फ़ारसी कविता की ख़ास शैलियों में से एक शैली । अनेक कवियों ने इस शैली में कोबतायें की हैं । इस शैली में एक कवि द्वारा रची गई कविताओं का संचय उसका **दिवान** कहलाता है । देखिये : हाफ़िज़ ।

डिवाईन थीम : **गाड स्पीक्स** में मेहेरबाबा द्वारा दिया गया विषय का खाका, जो प्रथम बार १९४३ ई॰ में प्रकाशित हुआ था । अब वह **गाड स्पीक्स** में पूरक १४ के रूप में पुनः मुद्रित हुआ है ।

ज्ञान (V) : (jnana) ज्ञानपथ । S : **इरफ़ान** ।

दो आलम (S) : दो लोक; जैसे स्थूल लोक (**दुनियाँ**) तथा सूक्ष्म । मनो लोक (**उक़बा**), और चौथे (मिश्रित) लोक का भी समावेश करते हुये । V : **त्रिभुवन** ।

डंकिन, डाक्टर विलियम : (१९११–१९६९) ।

(३४०)

अँग्रज़ डाक्टर, लम्बे समय से मेहेरबाबा का शिष्य । प्रथम बार बाबा से

Buddha: The *Avatar* whose teachings come to us through the Buddhist religion. He was born in Magadha (Bihar, India) around 568 B.C. and died about 477 B.C.

چلة *chilla* (S): (chillah) The period of forty days (of austerities).

چلة نشینی *chilla-nashini* (S–Hindi): (cillah-naśīnī) The undertaking of forty days' austerities.

chit (V): (cit) Divine Knowledge. S: *marefat*.

crore (Hindi): (karoṛa) 100 *lakhs*. Ten million (10,000,000).

دور *daor* (S): (daur) = *zaman*. A cycle of time of 700 to 1400 years, which begins whenever the *Avatar* appears. V: *yuga*.

دورِ قلندری *daor-e-Qalandari* (S): (daur-i qalandarī) The cycle of Mastery.

darshan (V): (darśana) Lit., seeing, audience. The appearance of the Master on some occasion, to bestow blessings on devotees, some-times in the form of *prasad* (*q.v.*).

dharma shastra (V): (dharmaśāstra) The exoteric path. Orthodoxy S: *shariat*.

Discourses: A collection of articles authored by Meher Baba from 1938 to 1944.

دوان *divan* (S): (divān) One of the principal styles of Persian poetry. Many poets have written in this style. A collection of poems by one author in this style is called his *Divan*. See Hafiz. Examples of other important styles are *masnavi* (*q.v.*), and *rubaiyyat*.

Divine Theme: The outline by Meher Baba of the subject matter in *God Speaks*, first published in 1943. It is now reprinted as Supplement 14 in *God Speaks*.

dnyan (V): (jñāna) Gnosis. S: *irfan*.

دو عالم *do alam* (S): (do 'ālam) Two spheres; viz., the gross (*duniya*) and the subtle/mental (*uqba*), and including the fourth (composite) sphere also. V: *tribhuvan*.

Donkin, Dr. William: (1911–1969) British doctor, longtime disciple of Meher Baba. First met in London in 1933. Author of *The Wayfarers*.

१९३३ ई॰ में लन्दन में मिला । **दि वेफ़ेयरर्स** ग्रन्थ का लेखक ।

दुनियाँ (S) : देखिये : **दो आलम** ।

सबकुछ : अनन्त परमात्मा । **सबकुछ**, हर चीज़ होने के कारण, उसमें **शून्य** सम्मिलित होता है ।

फ़ना, अन्तिम (S) : **मन** (ख़ुदी) का नाश । V : **मनोनाश** (**निर्वाण**) ।

फ़ना-बक़ा (S) : (fana' baqa') तीन प्रकार के स्थायी-नाश के अनुभवों में से एक के प्रसंग में जा सकता है जिसके बीच समानार्थक शब्द निकाले जा सकते हैं : (१) सनि, और साधारण मनुष्य का प्रतिदिन पुनः जागना, (२) निथ्या अहं के किसी पहलू का नाश (**फ़ना**) जो पथ की प्रत्येक भूमिका में प्रवेश करने के पहले होता है, और उस भूमिका में (**बक़ा**) का जीवन व्यतीत करने में होता है, और (३) मजज़ूब-ए-कामिल का यथार्थ **फ़ना-फ़िल्लाह,** और **जीवनमुक्त** तथा **सद्गुरु** का **बक़ा-बिल्लाह** ।

फ़ना-फ़िल्लाह (S) : (fana' fillah) पूर्ण पुरुष की "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था । V : **निर्विकल्प समाधि** ।

फ़नाकार (S) : संहारकर्त्ता । V : **शिव, महेश** ।

फ़ना-मा-अल-बक़ा (S) : (fana' m'ah ul baqa) **दिव्य सन्धि** पर परमात्मा की नवीं अवस्था । V : **तुरिया अवस्था** ।

फ़ना-उल-फ़ना (S) : (fana' l fana') परमात्मा की मनुष्य बनने की अवस्था (परमात्मा का **अवतार** के रूप में पृथ्वी पर सीधा अवतरण) ।

फ़कीरी (S) : शब्दार्थ, ग़रीबी । एक दरवेश का जीवन । सर्वोच्च आध्यात्मिक अभिव्यक्ति भी । **पूर्णता** ।

फ़क्र (S) : = **फ़कीरी** ।

फ़र्क़ (S) : परमात्मा से चैतन्य पृथक्ता ।

फ़र्क़-बा-दूल-जाम (S) : (farq ba dul jam') = **बक़ा-बिल्लाह** के प्रसंग में देखिये ।

अल-फ़ुतूहत-अल-मक्कैया (S) : (al-futuhat ul makkiyyah) देखिये : इबन अरबी ।

دنيا *duniya* (S): (dunyā) See *do alam*.

Everything, the: God the Infinite. The Everything, being everything, includes the Nothing.

فنا (فناء) *fana,* the final (S): (fanā') Annihilation of the Mind (self). V: *mano-nash* (*nirvana*).

فنا بقاء *fana-baqa* (S): (fanā' baqā') May refer to one of three types of annihilation-abiding experiences between which parallels may be drawn: 1) the going to sleep and reawakening each day of the ordinary human, 2) the annihilation (*fana*) of some aspect of the false self which precedes entering each plane of the Path, and living the life (*baqa*) in that plane, and 3) the real fana-fillah of the *Majzoob-e-Kamil,* and *baqa-billah* of the *Jivanmukta* and *Sadguru*.

فنا فی لله *fana-fillah* (S): (fana' fillāh) The "I am God" state of the Perfect One. V: *nirvikalpa samadhi*.

فناکار *Fanakar* (S): (fanākār) The Destroyer. V: *Shiva, Mahesh*.

فناء معه البقاء *fana-ma-al-baqa* (S): (fanā' m'ahu-l baqā') The ninth state of God at the Divine Junction. V: *turiya avastha*. ----------fana together with baqa

فناء الفناء *fana-ul-fana* (S): (fanā' l fanā') The state of God becoming man (direct descent of God on earth as *Avatar*).

فقیری *faqiri* (S): (faqīrī) Lit., poverty. The life of a dervish. Also, the highest spiritual manifestation. Perfection.

فقر *faqr* (S): (faqr) = *faqiri*.

فرق *farq* (S): (farq) Conscious separateness from God.

فرق بدول جمع *farq-ba-dul-jam* (S): (farq badūl jam') = *baqa-billah, q.v.*

Al-Futuhat-al-Makkiyya (S): (al-futūḥāt ul makkiyyah) See Ibn Arabi.

ग़ैब-उल-ग़ैब (S) : (ghaib ul ghaib) छिपों में छिपा । परमात्मा की **परात्पर** अवस्था का एक पद ।

ग़ैर (S) : (ghair) शबदार्थ, दूसरा । दुई ।

ग़ज़ाली, इमाम मुहम्मद : प्रसिद्ध इस्लामिक ब्रह्मज्ञानी और सूफ़ीवाद का लेखक । १०५९ ई॰ में तस (ख़ुरासान) में जन्म । १११९ ई॰ में मृत्यु ।

घूँघट (हिन्दी) : शब्दार्थ, एक स्त्री का पर्दा । संकेतिक अर्थ में, अज्ञान का पर्दा ।

ईश-पुरुष : **क्राईस्ट** । **मसीहा** । S : **रसूल** । V : **अवतार** ।

गुलशन-ए-राज़ (S) : **गुलाब के बाग़ का रहस्य,** मौलाना शबिस्तरी, कृत तेरहवीं शताब्दी की एक सूफ़ी कविता ।

गुण (S) : (guna) देखिये : **सिफ़त** ।

हदस (S) : (Hadas) वह जो अनिश्चित है, अथवा उद्‌भूत है । **कदीम** से तुलना कीजिये ।

हाफ़िज़ (S) : शमसुद्दीन मुहम्मद : चौदहवीं शताब्दी में शीराज़ का सद्‌गुरु । अपने **दीवान** के लिये प्रसिद्ध । मेहेरबाबा का अतिप्रिय कवि ।

हहूत (S) : (hahut) प्रभुता ।

हैरत (S) : (hairat) अचरज ।

हाल (S) : (hal) आध्यात्मिक समाधि जो अतिहर्ष उत्पन्न करती है, जिसका अनुभव नथे स्थान अथवा भूमिका में प्रवेश करने पर होता है । V : **भाव** ।

हालात-ए-मुहम्मदी (S) : (halat-i muhammadi) = **अहदियत** । ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त आत्माओं का चैतन्य ऐक्य ।

हमा अज़ मन अस्त (S) : हर चीज़ की उत्पत्ति **मुझसे** है ।

हमा अज़ ऊस्त (S) : (hamah az ust) हर चीज़ की उत्पत्ति उससे है ।

हमा बा मन अस्त (S) : हर चीज़ **मेरे** साथ है ।

हमा बा ऊस्त (S) : हर चीज़ **उसके** साथ है ।

हमा दर मन अस्त (S) : हर चीज़ **मुझमें** है ।

हमा दर ऊस्त (S) : हर चीज़ **उसमें** है ।

हमा मन अम (S) : (hamah man am) हर चीज़ **मैं** (me) हूँ ।

हमा ऊस्त (S) : (hamah ust) हर चीज़ **वह** है ।

غیب الغیب *ghaib-ul-ghaib* (S): (ghaib ul ghaib) The hidden of the hidden. A designation of the Beyond-Beyond state of God.

غیر *ghair* (S): (ghair) Lit., the other. Duality.

Ghazali, Imam Muhammad: Prominent Islamic theologian and writer on Sufism. Born in Tus (Khorasan) ca. 1059 A.D. Died 1111 A.D.

ghunghat (Hindi): (ghūñghaṭa) Lit., a woman's veil. Symbolically, the veil of Ignorance.

God-Man: The Christ. The Messiah. S: *Rasool*. V: *Avatar.*

گلشن راز *Gulshan-e-Raz* (S): (gulshan-i rāz) *The Rose Garden Mystery,* a thirteenth century Sufi poem by Maulana Shabistari.

guna (V): (guṇa) See *sifat*.

حدث *hadas* (S): (ḥadas) That which is contingent, or derived. Compare qadim.

(حافظ) Hafiz: Shamsuddin, Muhammad. Fourteenth century Perfect Master of Shiraz. Noted for his *Divan*. Meher Baba's favorite poet.

هھوت *hahut* (S): (hahut) Mastery.

حيرة *hairat* (S): (hairat) Enchantment.

حال *hal* (S): (ḥāl) A spiritual trance bringing ecstasy, experienced on entering a new station or plane. V: *bhav.*

حالة محمّدی *halat-e-Muhammadi* (S): (ḥālat-i muḥammadī) = *ahadiyat*. The conscious unity of God-realized souls.

همه از من است *hama az man ast* (S): (hameh az man ast) Everything is from Me.

همه از اوست *hama az ust* (S): (hameh az ūst) Everything is from Him.

همه با من است *hama ba man ast* (S): (hameh ba man ast) Everything is with Me.

همه با اوست *hama ba ust* (S): (hameh ba ūst) Everything is with Him.

همه در من است *hama dar man ast* (S): (hameh dar man ast) Everything is in Me.

همه در اوست *hama dar ust* (S): (hameh dar ūst) Everything is in Him.

همه منم *hama man am* (S): (hameh manam) Everything is Me. **Everything am I.**

همه اوست *hama ust* (S): (hameh ūst) Everything is He.

हक़ीक़त (S) : (haqiqat) सत्यता । यथार्थता ।

हक़ीक़त-ए-इन्सानी (S) : (haqiqat-i insani) मनुष्य की यथार्थता । छठवीं भूमिका के सन्त की अवस्था जो ईश्वर को आमने-सामने देखता है ।

हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी (S) : मुहम्मद की यथार्थता । पूर्ण प्रभुता । परमात्मा की दसवीं अवस्था ।

हक़ीक़ी (S) : यथार्थ । **इज़ाफ़ी** से तुलना कीजिये ।

हक़ (S) : (haqq) शब्दार्थ, सत्यता । यथार्थता । परमात्मा । V : **ब्रह्म** ।

हक़-उल-यक़ीन (S) : देखिये : **यक़ीन** ।

हू (S) : (hu) शब्दार्थ, वह । परमात्मा ।

हुजवीरी, अली बेन उथमान : **कश्फ़-अल-महजूब (रहस्य का उद्घाटन)** का लेखक । ग़ज़ना में १००० ई॰ में जन्म । १०७५ ई॰ में मृत्यु ।

हुवल आख़ेर (S) : (huval akhir) वह आख़िरी है ।

हुवल अव्वल (S) : (huval avval) वह प्रथम है ।

हुवल बातिन (S) : (huval batin) वह आन्तरिक है ।

हुवल ज़ाहेर (S) : (huvazzahir) वह बाह्य है ।

हुयत (S) : (huviyat) शब्दार्थ, वह-पन (He-ness) । ईश्वर का ख़ुद अपने रूप में ख़ुद का ज्ञान । ईश्वरत्व ।

इब्न अरबी, मुहीउद्दीन : सद्गुरु, जुलाई ११६५ ई॰ में स्पेन में जन्म : दमस्कस में, अक्टूबर १२४० ई॰ मृत्यु । सूफ़ीवाद की उसकी व्याख्या उसकी मुख्य कृति **अल-फ़ुतूहत-अल-मक्किया** में है ।

अज्ञानता : उच्चतर आध्यात्मिक ज्ञान के बग़ैर, माया का ज्ञान । स्थूल-चेतनायुक्त आत्मा के ज्ञान की अवस्था ।

माया : माया का सृजन, विश्व, जिसको स्थूल-चेतनायुक्त आत्मा ग़ल्ती से यथार्थता समझती है ।

इल्म-उल-यक़ीन (S) : देखिये : यक़ीन ।

इन्सान (S) : मानवी । व्यक्ति । V : **मानव** ।

इन्सान-ए-कामिल (S) : (insan-i kamil) पूर्ण (अर्थात् ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त) मानव । V : शिव-आतमा ।

अल-इन्सान-उल-कामिल (S) : (al-insan al kamil) **पूर्ण पुरुष,** चौदहवीं शताब्दी के सूफ़ी, अबदुल करीम अल-जिली कृत लेख ।

(३४३)

حقیقت *haqiqat* (S): (haqiqat) Truth. Reality.

حقیقتِ انسانی *haqiqat-e-insani* (S): (ḥaqīqat-i insānī) The Reality of man. The state of the sixth plane saint who sees God face to face.

حقیقتِ محمّدی *haqiqat-e-Muhammadi* (S): (ḥaqīqat-i muḥammadī) The Reality of Muhammad. Perfect Masterhood. The tenth state of God.

حقیقی *haqiqi* (S): (ḥaqīqī) Real. Compare *izafi*.

حق *Haqq* (S): (ḥaqq) Lit., truth. Reality. God. V: *Brahman*.

حق الیقین *Haqq-ul-yaqin:* See *yaqin*.

هو *Hu* (S): (hū) (huwa, huva) Lit., He. God.

Hujwiri, Ali ben Uthman: Author of *Kashf-al-Mahjub* (*Unveiling of the Mystery*). Born in Ghazna ca. 1000 A.D. Died ca. 1075 A.D.

هو الاخر *Huwal akher* (S): (huva-l ākhir) He is the last.

هو الاول *Huwal awwal* (S): (huva-l avval) He is the first.

هو البطن *Huwal batin* (S): (huva-l baṭn) He is the internal.

هو الظاهر *Huwal zaher* (S): (huva-ẓ ẓāhir) He is the external.

هویة *Huyat* (S): (huvīyat) Lit., He-ness. God knowing himself as Himself. Godhood.

Ibn Arabi, Muhyuddin: Perfect Master, born in Spain, July 1165; died Damascus, October 1240. His exposition of Sufism is in his principal work, *Al-Futuhat-al-Makkiya*.

Ignorance: Knowledge of Illusion, without higher spiritual knowledge. The state of knowledge of the gross-conscious soul.

Illusion: The creation of Maya, the universes, which the gross-conscious soul mistakes for Reality.

ilm-ul-yaqin: See *yaqin*.

انسان *insan* (S): (insān) Human. The individual. V: *manava*.

انسانِ کامل *Insan-e-Kamil* (S): (insān-i kāmil) The Perfect (i.e., God-realized) Man. V: *Shiv-Atma*.

النسان الکامل *Al-Insan-ul-Kamil* (S): (*al-insān al kāmil*) *The Perfect Man*, a treatise by the fourteenth century Sufi, Abdul Karim al-Jili.

The Man of Perfection?

इक़बाल, डाक्टर मुहम्मद : पाकिस्तानी कवि एवं दार्शनिक, सियालकोट, पंजाब में १८७३ ई॰ में जनम ।

इरफ़ान (S) : ('irfan) ज्ञानमार्ग । आरिफ़ का ज्ञान; छठवीं और सातवीं भूमिकाओं पर स्थित व्यक्तियों का ज्ञान भी । V : **ज्ञान** ।

इरतेक़ा (S) : (irtiqa') विकास । V : **उत्क्रान्ति** ।

इसराफ़ील (S) : (israfil) प्रधान देवदूत राफ़ेल ।

इज़ाफ़ी (S) : सम्बन्धीय, अथवा सम्बन्धित । हक़ीक़ी से तुलना कीजिये ।

इज़राईल (S) : ('izra'il) प्रधान देवदूत इज़राइल ।

जलाल (S) : प्रताप । स्वर्गीय सुख ।

जलालुद्दीन रूमी, मौलाना : तेरहवीं शताब्दी का सद्गुरु । **मेवलेवी** ("भँवर के समान चक्कर काटते हुये") फ़क़ीरों का संस्थापक । **मसनवी** का लेखक ।

जाम (S) : (jam') शब्दार्थ, प्याला । ईश्वर से चैतन्य मिलन । ईश्वर-साक्षात्कार ।

जमाल (S) : सौन्दर्य ।

जमाल-ए-अहदियत (S) : (jamal-i ahadiyat) पूर्ण ऐक्य की सुन्दरता ।

जाम-उल-जाम (S) : (jam' ul jam') = **बक़ा-बिल्लाह** ।

जान (S) : आत्मा । V : **आत्मा** अथवा **आत्मन** ।

जान-ए-जिस्मी (S) : (jan-i jismi) देखिये : **जीव-आत्मा** ।

जानां (S) : (janan) प्रियतम ।

जापस (V) : (जप-एकवचन) आमतौर पर मन्त्रों अथवा प्रार्थनाओं का जप ।

जेसस : नज़ारेथ का, क्राईस्ट ।

जिबराईल (S) : (फ़ारसी : जिबराईल; कुरानः जिबरील ।) गैबरील नाम का देवदूत ।

अल-जिली, अब्दुल करीम : **अल-इन्सान-उल-कामिल** (पूर्ण मानव) का लेखक, और सूफ़ी सम्प्रदाय **स्पष्टवाद** (**वहदत-उल-शुहूद**) का संस्थापक । १४०८ ई॰ में मृत्यु ।

जिस्म-ए-अल्ताफ़ (S) : (jism-i altaf) कारण शरीर । V : **कारण शरीर** ।

जिस्म-ए-कसीफ़ (S) : (jism-i kasif) स्थूल शरीर । V : **स्थूल शरीर** ।

Iqbal, Dr. Muhammad: Pakistani poet and philosopher, born 1873 at Sialkot, Punjab.

عرفان *irfan* (S): ('irfān) Gnosis. The knowledge of the arif ; also the knowledge of those on the sixth and seventh planes. V: dnyan.

ارتقاء *irteqa* (S): (irtiqā') Evolution. V: *utkranti*. ----------Ascending, promotion

اسرافیل *Israfeel* (S): (isrāfīl) The archangel Raphael.

اضافی *izafi* (S): (*iẓāfī*) Relational, or relative. Compare *haqiqi*.

عزرائل *Izraeel* (S): ('izrā'īl) The archangel Israel.

جلال *jalal* (S): (jalāl) Glory. Beatitude.

Jalaluddin Rumi, Maulana: The thirteenth century Perfect Master. Founder of the Mevlevi ("whirling") dervishes. Author of the *Masnavi*.

جمع *jam* (S): (jam') Lit., cup. Conscious union with God. God-realization. bringing together

جمال *jamal* (S): (jamāl) Beauty.

جمالِ احدیة *jamal-e-ahadiyat* (S): (jamāl-i aḥādīyat) The beauty of Absolute Oneness.

جمع الجمع *jam-ul-jam* (S): (jam' ul jam') = *baqa-billah, q.v.*

جان *jan* (S): (jān) The soul. V: *atma,* or *atman.*

جانِ جسمی *jan-e-jismi* (S): (jān-i jismī) See *jiv-atma.*

جانان *janan* (S): (jānān) The Beloved. ----------handsome, lovely

japas (V): (japa–singular) Repetitions,generally of *mantras* or prayers.

Jesus: Of Nazareth, the Christ.

جبرائل، جبریل *Jibraeel* (S): (Persian: jibrā'īl; Koran: jibrīl.) The archangel Gabriel.

al-Jili, Abdul Karim: Author of *Al-Insan-ul-Kamil* (*The Perfect Man*), and founder of the Sufi school of Apparentism (*wahdat-ul-shuhud*). Died ca. 1408 A.D.

جسمِ الطف *jism-e-altaf* (S): (jism-i alṭaf) The mental body. V: *karan sharir.*

جسمِ کثیف *jism-e-kasif* (S): (jism-i kaṯīf) The gross body. V: *sthul sharir.*

जिस्म-ए-लतीफ़ (S) : (jism-i latif) सूक्ष्म शरीर । V : **सूक्ष्म शरीर** ।

जीवनमुक्त (V) : एक पूर्ण पुरुष । S : **आज़ाद-ए-मुतलक़, साहेब-ए-जमो-फ़र्क, सालिक-ए-कामिल** । देखिये : मुक्त ।

जीवनमुक्ति (V) : मुक्ति ।

जीव-आत्मा (V) : (jivatma) देहधारी आत्मा । व्यक्ति । S : **जान-ए-जिस्मी** ।

जिवोहम् (V) : (jivo'ham) "मैं व्यक्ति हूँ"

बगदाद का जुनायद : नवीं शताब्दी का विख्यात सूफ़ी शेख । ९१० ई॰ में मृत्यु ।

कान्नहू हू (S) : शब्दार्थ, ठीक वही । उसके सामने । अन्तिम **फ़ना** में आत्मा जोकुछ हो जाती है उसका **शुहूदियाह** सम्प्रदाय द्वारा वर्णन ।

कबीर : बनारस का पंद्रवीं शताब्दी का सद्गुरु, १४३५ ई॰– १५१८ ई॰ ।

काल (V) : लगभग ६५ से १२५ वर्ष की अवधि का एक युग । हर कालचक्र में ग्यारह युग होते हैं । S : **वक्त** ।

कामिल (S) : = **सालिक-ए-कामिल** : देखिये : **सालिक** ।

करामत (S) : (बहुवचन में **करामात**) : पाँचवीं और छठवीं भूमिकाओं पर स्थित व्यक्तियों द्वारा किया गया चमत्कार ।

कारण शरीर (V) : (karana sarira) मानव शरीर । S : **जिस्म-ए-अल्ताफ़** ।

कर्म (V) : शब्दार्थ, क्रिया । भाग्य । व्यक्ति के जीवनकाल में स्वभाविक और आवश्यक घटनायें, जो व्यक्ति के भूतकाल के जीवनों के अनुसार होती हैं ।

कर्मकाण्ड (V) : देखिये : **शरियत** ।

कस्ब (S) : एक उपार्जन, जैसे खरीदने अथवा व्यापार करने के द्वारा । **मावहीब** से तुलना कीविये ।

कश्फ़-अल-महजूब (S) : (kashf al mahjub) देखिये : हुजवीरी ।

ख़मसा वुजूदत (S) : (khamsah vujudat) अस्तित्व के पाँच प्रकार । मानव के अन्दर परात्पर अवस्था में परमात्मा की पाँच उपक्रान्तियाँ । देखिये : **वुजूद** ।

ख़ुदी (S) : मिथ्या अहम् ।

جسم لطيف *jism-e-latif* (S): (jism-i laṭīf) The subtle body. V: *sukshma sharir.*

Jivanmukta (V): (jīvanmukta) A Perfect One. S: *Azad-e-Mutlaq, Saheb-e-jamo-farq, Salik-e-Kamil*. See also *Mukta*.

jivanmukti: See *mukti*.

jiv-atma (V): (jīvātmā) The embodied soul. The individual. S: *jan-e-jismi*.

jivoham (V): (jīvo'ham) "I am individual."

Junayd of Baghdad: The celebrated ninth century Sufi Sheikh. Died ca. 910 A.D.

كأن هو *kaanahu Hu* (S): (kā'nnahu hū) Lit., exactly He. Like Him. Decription by the *Shuhudiyyah* school of what the soul becomes at final *fana*.

Kabir: The fifteenth century Perfect Master of Benares, 1435–1518 A.D.

kal (V): (kāla) An age of about 65 to 125 years duration. There are eleven ages in each cycle. S: *waqt*.

كامل *Kamil* (S): (kāmil) = *Salik-e-Kamil*. See *Salik*. ----------perfect, complete

كرامت *karamat* (S): (karāmat) (pl. *karamaat:* karāmāt) A miracle performed by those on the fifth and sixth planes.

karan sharir (V): (karaṇa śarīra) The mental body. S: *jism-e-altaf*.

karma (V): (karma) Lit., action. Fate. The natural and necessary happenings in one's lifetime, preconditioned by one's past lives.

karma kanda (V): (karma kāṇḍa) See *shariat*.

كسب *kasb* (S): (kasb) An acquisition, as by buying or trading. Compare *maohib*.

كشف لمحجوب *Kashf-al-Mahjub* (S): (kashf al maḥjūb) See Hujwiri.

خمسة وجودات *khamsa wujudat* (S): (khamsah vujūdāt) The five kinds of existence. The five devolutions of God in the Beyond-Beyond state into man. See *wujud*.

خودى *khudi* (S): (khvudī) The false ego. ----------selfishness, egotism

कृष्ण : अवतार जिसका इतिहास हिन्दू महाकाव्य **महाभारत** में बताया गया है । युद्ध के ठीक पहले वीर योद्धा अर्जुन को दिया गया उसका उपदेश भगवद् गीता के नाम से प्रसिद्ध है ।

लहर (हिन्दी, मराठी) : शब्दार्थ, लहर, तरंग, मौज, कल्पना । परमात्मा की मौज जिससे सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ ।

लहूत (S) : (lahut) पूर्णता ।

लाख (हिन्दी) : १००,००० । V : **लक्ष** ।

ला महदूद (S) : अनन्त । V : **अनन्त** ।

ला मकां (S) : शब्दार्थ, स्थानरहित; "शून्य" बिन्दु । मनो लोक में स्थित "बीज" जहाँ काल और देश के सभी विचार एक बिन्दु पर केन्द्रित होते हैं, और जिससे सूक्ष्म एवं स्थूल जगतों का प्रादुर्भाव होता है ।

ला सिफ़त ला सूरत (S) : गुण और रूप से रहित । V : **निर्गुण निराकार** ।

लीला (V) : **सृष्टि** की "दैवी क्रीड़ा" । वह "खेल" जो ईश्वर खेलता है, जिससे **विश्व** का आविर्भाव होता है ।

मारिफ़ (S) : ईश्वर के रहस्यों का प्रदेश (दिव्य ज्ञान का प्रदेश) ।

महाचैतन्य (V) : अति-चेतना । पूर्ण चेतना जो चैतन्य **चेतना** के रूप में पूर्णतया प्रतिवर्द्धित हुई ।

महाकारण शरीर (V) : व्यापक शरीर ।

महाप्रलय (V) : एक ऐहिक युग के अन्त में विश्व का महा विनाश । S : **क़यामत** ।

महापुरुष (V) : पाँचवीं भूमिका का सन्त । S : **वली, अबरार** ।

महात्मा (V) : एक महान आत्मा । S : **अख़यार** ।

महायोगी (V) : चौथी भूमिका का **योगी** ।

महेश (V) : = शिव : संहारकर्त्ता । S : **फ़नाकार** ।

माझूल-उन-नत (S) : (majhul un na't) अज्ञेय और अवर्णनीय । परमात्मा की परात्पर अवस्था का एक पद ।

मजज़ूब (S) : शब्दार्थ, तल्लीन । वह व्यक्ति जो प्रतिवर्धित होती हुई चेतना की एक भूमिका में तल्लीन है ।

मजज़ूब-ए-कामिल (S) : ईश्वर में निमग्न आत्मा । (सातवीं भूमिका की) । V : **ब्रह्मी भूत** ।

(३४६)

Krishna: The *Avatar* whose history is told in the Hindu epic poem, the *Mahabharata*. His discourse to the warrior Arjuna just before battle is known as the *Bhagavad Gita*.

lahar (Hindi, Marathi): (lahara) Lit., ripple, wave, fancy, whim. The Whim of God, which caused the Creation.

لاهوت *lahut* (S): (lāhūt) Perfection. ----------Divinity

lakh (Hindi): (lākh) 100,000. V: *laksha*.

لا محدود *la mahdood* (S): (lā maḥdūd) Infinite. V: *anant*. ----------not limited

لا مكان *la makan* (S): (lā makān) Lit., placeless; "no" point. The "seed" in the mental sphere where all ideas of time and space converge to a point, and from which the subtle and gross worlds emanate.

لا صفت لا صورة *la sifat la surat* (S): (lā ṣifat la ṣūrāt) Attributeless and formless. V: *nirguna nirakar.*

lila (V): (līlā) The "Divine Sport" of Creation. The "game" which God plays, which manifests the Universe.

معارف *maarif* (S): (ma'ārif) The domain of the mysteries of God (the domain of Divine Knowledge).

mahachaitanya (V): (mahācaitanya) Super-consciousness. Full consciousness fully involved as conscious Consciousness.

mahakarana sharir (V): (mahākāraṇa śarīra) The Universal Body.

mahapralaya (V): (mahāpralaya) A great dissolution of the universe at the end of a cosmic age. S: *qiamat*.

mahapurush (V): (mahāpuruṣa) A fifth plane saint. S: *wali, abrar.*

mahatma (V): (mahātma) A great soul. S: *akhyar.*

mahayogi (V): (mahāyogī) A fourth plane *yogi*.

Mahesh (V): (maheśa) = *Shiva:* the Destroyer. S: *Fanakar.*

مجهول النعت Majhul-un-Nat (S): (majhūl-un-na't) The unknowable and undefinable. A designation of the Beyond-Beyond state of God.

مجذوب *majzoob* (S): (majẓūb) Lit., absorbed in. One who is absorbed in a plane of involving consciousness.

مجذوبِ كامل *Majzoob-e-Kamil* (S): (majẓūb-i kāmil) The God-merged soul (of the seventh plane). V: *Brahmi Bhoot*.

मजज़ूबियत (S) : परमात्मा की आठवीं अवस्था, **मजज़ूब-ए-कामिल** की अवस्था ।

मजज़ूब-सालिक (S) : एक पूर्ण पुरुष जिसके मजज़ूब के समान गुणों की प्रधानता होती है । V : **परमहन्स** ।

मन दर हमा अम (S) : मैं हर चीज़ में हूँ ।

नर-नारायण : एक पूर्ण पुरुष । S : **क़ुतुब** । V : **सद्गुरु** । देखये : ईश-पुरुष भी ।

मन हमा अम (S) : मैं सबकुछ हुँ ।

मन (मराठी अथवा हिन्दी) : शब्दार्थ, मन, कारण शरीर भी । स : **जिस्म-ए-अल्ताफ़** । V : **मानस** ।

मानव (V) : देखिये : **इनसान** ।

मण्डली (हिन्दी) : मेहेरबाबा के मण्डल के सदस्य । V : **मण्डल** = वृत्त ।

मनो भूमि (V) : (mano bhumi) मनो जगत । S : **आलम-ए-जबरूत** ।

मनो भूमिका (V) : मानसिक भूमिका ।

मनो भुवन (V) : मनो लोक । S : **आलम-ए-जबरूत** ।

मनोनाश (V) : (mano nasa) **मन** (अहं) का नाश । S : अन्तिम **फ़ना** ।

मन्तिक़-उल-तेयर (S) : (mantiq ut-tair) **पक्षियों का सम्मेलन,** ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के सूफ़ी, शेख़ फ़रीदुद्दीन अत्तार की कही हुई एक रूपक कहानी ।

मंत्र (V) : एक गुरु द्वारा अपने शिष्य को दिया गया आध्यात्मिक नियम के रूप में एक पवित्र नाम अथवा वाक्य । S : **वजीक़ा** ।

मावहिब (S) : (maohib) प्रदत्त; एक भेंट । कस्ब से तुलना कीजिये ।

मारेफ़त (S) : (ma'rifat) **ईश्वरीय ज्ञान** । V : चित्, ज्ञान ।

मारेफ़त-ए-हक़ीक़त (S) : (ma'rifat-i haqiqat) **सत्यता** का ज्ञानपथ । **पूर्ण पुरुष** अथवा **अवतार** का ज्ञानपथ, जिसको हुई में ड्यूटी प्राप्त होती है । V : **सत्यानुभूति** ।

माशूक़ (S) : प्रियतम ।

माशूक़ियत (S) : शब्दार्थ, प्रियतम होने की अवस्था । प्रथम अभिव्यक्ति (**तजल्ली-ए-अव्वल**) में सौन्दर्य का आविर्भाव, जिसमें परमात्मा **प्रेमी** होता है और मनुष्य प्रियतम होता है ।

مجذوبیت *majzoobiyat* (S): (majẕūbīyat) The eighth state of God, that of the *Majzoob-e-Kamil*.

مجذوب سالک *Majzoob-Salik* (S): (majẕūb sālik) A Perfect One whose *Majzoob*-like qualities are dominant. V: *Paramhansa*.

mana (Marathi or Hindi): (mana) Lit., mind; also, the mental body. S: *jism-e-altaf*. V: *manas*.

manava (V): (mānava) See *insan*.

mandali (Hindi):(maṇḍalī) The members of Meher Baba's circle. V: *mandala* = circle.

من در همه ام *man dar hama am* (S): (man dar hamah am) I am in everything.

Man-God: A Perfect Master. S: *Qutub*. V: *Sadguru*. See also God-Man.

من همه ام *man hama am* (S): (man hamah am) I am everything.

mano bhumi (V): (mano bhūmi) The mental world. S: *alam-e-jabrut*.

mano bhumika (V): (mano bhūmikā) The mental plane.

mano bhuvan (V):(mano bhuvana) The mental sphere. S: *alam-e-jabrut*.

manonash (V): (manonaśa) Annihilation of the Mind (self). S: the final *fana*.

Mantiq-ut-Tayr (S): (manṭiq uṭ-ṭair) *The Conference of the Birds*, an allegorical tale by the eleventh-twelfth century Sufi, Sheikh Fariduddin Attar.

mantra (V): (mantra) A sacred name or phrase given by a master to his disciple as a spiritual discipline. S: wazifa.

موهب *maohib* (S): (maohib) Given; a gift. Compare *kasb*.

معرفت، معرفة *marefat* (S): (ma'rifat) Divine Knowledge. V: *chit, dnyan*.

معرفتِ حقیقت *marefat-e-haqiqat* (S): (ma'rifat-i ḥaqīqat) The Gnosis of Reality. The gnosis of the Perfect Master or Avatar, who has duty in Duality. V: *satyanubhuti*.

معشوق *mashuq* (S): (ma'shuq) Beloved.

معشوقیة *mashuqiyat* (S): (ma'shūqīyat) Lit., the state of being the beloved. The epiphany of beauty in the first manifestation (*tajalli-e-avval*), wherein God is the Lover and man the beloved.

मसनवी (S) : जलालुद्दीन रूमी की प्रधान साहित्यिक कृति । देखिये, **दीवान** भी ।

मस्त (S) : **मार्ग** पर ईश्वरोन्मत्त आत्मा ।

मस्ती (S) : देखिये : सुलूक ।

मोवाहिद (S) : (muvahhid) एक अद्वैतवादी; **अहल-ए-तौहीद** का एक व्यक्ति ।

माया (V) : शब्दार्थ, भ्रम । मिथ्या लगाव । वह जो **शून्य** को सबकुछ के रूप में दर्शाता है । अज्ञानता का मूल । परमात्मा की छाया । S : **मेजाज़** ।

मेजाज़ (S) : (majaz) = माया ।

मेवलेवी (S) : (molavi) देखिये : जलालुद्दीन रूमी ।

मिकाईल (S) : (mika'il) मिकाइल नाम का देवदूत ।

मोजेज़ा (S) : (mu'jizah) (बहुवचन मोजेज़त : मुजीज़ात) **अवतार** अथवा **कुतुब** द्वारा किया गया चमत्कार ।

मोक्ष (V) : देखिये : **मुक्ति** ।

मुहम्मद : नबी, ५७०–६३२ ई० ।

बसरा का मुहासिबी, अब्दुल्ला हैरिस : **हाल** और **मुक़ाम** के विषय का प्रारम्भिक लेखक । मृत्यु ८५७ ई० ।

मुजद्दिद (S) : (mujaddid) प्रत्यक्षवादी । **वहदत-उल-शुहूद** के सिद्धान्त के अनुयायी ।

मुजाहिदा (S) : (mujahadah) अभ्यास; प्रयाम करना; प्रयत्न करना । V : **साधना** ।

मुकम्मिल (S) : सर्वोच्च **पूर्ण पुरुष** । सद्गुरु । **सालिक-ए-मुकम्मिल** भी कहलाता है । **कुतुब** । V : **सद्गुरु** ।

मुक्त (V) : वह व्यक्ति जो (पुनर्जन्म के चक्र से) छुटकारा पा गया है ।

विदेह मुक्ति : ईश्वर में निमग्न आत्मा = **ब्रह्मी भूत** । S : **मजज़ूब-ए-कामिल** ।

जीवनमुक्त : बन्धन से छूटा देहधारी । S : **आज़ाद-ए-मुतलक़, सालिक-ए-कामिल** ।

परम मुक्त : पूर्ण पुरुष = सद्गुरु । S : **कुतुब, सालिक-ए-मुकम्मिल** ।

मुक्ति (V) : छुटकारा । जन्मों और मृत्युओं (अर्थात् पुनर्जन्म) के चक्र से छुटकारा ।

مثناوی *Masnavi, The* (S): (masnāvī) The major literary work of Jalaluddin Rumi. See also *divan*.

مست *mast* (S): (mast) A God-intoxicated soul on the Path.

مستی *masti* (S): (mastī) See *suluk*.

موحد ؟ *mawahid* (S): (muvaḥḥid) A unitarian; one of the *ahl-e-tauhid*.

Maya (V): (māyā) Lit., illusion. False attachment. That which makes the Nothing appear as everything. The root of Ignorance. Shadow of God. S: *mejaz*.

مجاز *mejaz* (S): (majāz) = *Maya*.

مولوی *Mevlevi* (S): (molavī) See Jalaluddin Rumi. ----------(maulavī) a dervish

میکائیل *Mikaeel* (S): (mīkā'īl) The archangel Michael.

معجزة، معجزات *mojeza* (S): (mu'jizah) (pl. mojezat: mu'jizāt) A miracle performed by the *Avatar* or *Qutub*.

moksha (V): (mokṣa) See *mukti*.

محمّد Muhammad: (muḥammad) The Prophet, 570–632 A.D.

Muhasibi of Basra, Abdullah Haris: Early writer on *hal* and *muqam*. Died 857 A.D.

مجدّد *mujaddid* (S): (mujaddid) Apparentists. Adherents of the doctrine of *wahdat-ul-shuhud*.

مجاهدة *mujahida* (S): (mujāhadah) Practice; striving; endeavor. V: sadhana.

مكمل *Mukammil* (S): (mukammil) The Supremely Perfect One. The Perfect Master. Also called Salik-e-Mukammil, Qutub. V: Sadguru.

Mukta (V): (mukta) One who is Liberated (from the cycle of rebirth).

Videh Mukta: (videha mukta) The God-merged soul = *Brahmi Bhoot*. S: *Majzoob-e-Kamil*.

Jivanmukta: (jīvanmukta) The Liberated Incarnate. S: *Azad-e-Mutlaq, Salik-e-Kamil*.

Param Mukta: (parama mukta) The Perfect Master = *Sadguru*. S: *Qutub, Salik-e-Mukammil*.

mukti (V): (mukti) Liberation. Release from the cycle of births and deaths (i.e., reincarnation).

साधारण मुक्ति : = मोक्ष । अधिकांश आत्माओं को प्राप्त हुई मुक्ति । S : नजात ।

विदेह मुक्ति : (videha mukti) दुई की चेतना से रहित "मैं-ईश्वर-हूँ" अवस्था ।

जीवनमुक्ति : दुई की चेतना से युक्त "मैं-ईश्वर-हूँ" अवस्था ।

परम मुक्ति : ईश-चेतना और सृष्टि-चेतना से एकसाथ सम्पन्न "मैं-ईश्वर-हूँ" अवस्था ।

मुलहिद (S) : ईश्वर को न मानने वाला । V : **नास्तिक** ।

मुमकिन-उल-वुजूद : देखिये : **वुजूद** ।

मुमतान-उल-वुजूद : देखिये : **वुजूद** ।

मुनीस (V) : (मुनि-एकवचन) शब्दार्थ, मौन का अभ्यास करने वाला । एक पवित्र पुरुष, साधू, तपस्वी ।

मुनक़त-उल-इज़हारात (S) : (munqata' ul izharat) वह अवस्था जिस्से सम्बन्धित सभी लक्षणों का लोप होता है । परमात्मा की **परात्पर** अवस्था का एक पद ।

मुन्सिफ़, डाक्टर अब्दुल ग़नी : एक लम्बे समय से मेहेरबाबा का शिष्य । २० अगस्त १९५१ को मृत्यु ।

मुक़द्दर (S) : देखिये : **प्रारब्ध** ।

मुक़ाम (S) : (maqam) (बहुवचन मुक़ामात : मक़ामात) पथ पर एक स्थान, अथवा भूमिका ।

मुक़ाम-ए-फ़ुरूतत (S) : (maqam-i furutat) दिव्य सन्धि । V : **तुरिया अवस्था** ।

मुक़ाम-ए-हैरत (S) : (maqam-i hairat) मोहित होने का स्थान । तीसरी और चौथी भूमिकाओं के बीच पथ पर एक स्थान, जहाँ जिज्ञासु अपनी आध्यात्मिक प्रगति में लम्बे अर्से तक रुका रह सकता है ।

मुक़ाम-ए-मुहम्मदी (S) : एकसाथ ईश-चेतना और सृष्टि-चेतना की अवस्था । V : **विज्ञान भूमिका** ।

मुसर्रत (S) : (masarrat) आनन्द । V : **आनन्द** ।

मुतवस्सित (S) : उच्च आत्मा । V : **साधू** ।

नाद (V) : ध्वनि । दिव्य सङ्गीत । मूल **शून्य** ।

नफ़्स (S) : आपा; मिथ्या अहं ।

ordinary *mukti:* = *moksha*. The liberation achieved by most souls. S: *najat*.

videh mukti: (videha mukti) "I am God" state without consciousness of duality.

jivanmukti: (jivanmukti) "I am God" state with consciousness of duality.

param mukti: (parama mukti) "I am God" state with God-consciousness and Creation-consciousness simultaneously.

ملحد *mulhid* (S): (mulḥid) Atheist. V: *nastik*.

ممكن الوجود *mumkin-ul-wujud:* See *wujud*.

ممتان الوجود *mumtan-ul-wujud:* See *wujud*.

munis (V): (muni – singular) Lit., one who practices silence. A holy man, hermit, ascetic.

منقطع الاظهارات *Munqata-ul-Izharat* (S): (munqaṭa' ul iẓhārāt) The state in relation to which all indications are dropped. A designation of the Beyond-Beyond state of God.

Munsiff, Dr. Abdul Ghani: Longtime disciple of Meher Baba. Died August 20, 1951.

مقدر *muqaddar* (S): (muqaddar) See *prarabdha*.

مقام *muqam* (S): (maqām) (pl. *muqamat:* maqamat) A station, or plane, on the Path.

مقامِ فروتة *muqam-e-furutat* (S): (maqām-i furūtat) The Divine Junction. V: *turiya avastha*.

مقامِ حيرة *muqam-e-hairat* (S): (maqām-i ḥairat) The Place of Enchantment. A station on the Path intermediate between the third and fourth planes, where the aspirant can get long delayed in his spiritual advancement.

مقامِ محمّدی *muqam-e-Muhammadi* (S): (maqām-i muḥammadī) State of God-consciousness and Creation-consciousness simultaneously. V: *vidnyan bhumika*.

مسرة *musarrat* (S): (masarrat) Bliss. V: *anand*.

متوسط *mutawassit* (S): (mutavassiṭ) Advanced soul. V: *sadhu*.

nad (V): (nada) Sound. The celestial music. The original WORD.

نفس *nafs* (S): (nafs) The self; the false ego.

नफ़्स-ए-अम्मर्रा (S) : (nafs-i ammarah) कामुक अहं । स्थूल जगत अथवा लोक की चेतना ।

नफ़्स-ए-लवामा (S) : (nafs-i lavamah) अध: अहं । सूक्ष्म लोक की चेतना ।

नफ़्स-ए-मुलहिमा (S) : (nafs-i mulhimah) स्फूर्तियुक्त अहं । छठवीं भूमिका पर स्थित आत्मा की चेतना ।

नफ़्स-ए-मुतमइन्ना (S) : (nafs-i mutma'innah) आनन्द प्राप्त आत्मा । पाँचवीं भूमिका पर स्थित आत्मा की चेतना ।

नजात (S) : छुटकारा । V : साधारण **मुक्ति** ।

नास्तिक (V) : अनीश्वरवादी । S : **मुलहिद** ।

निराकार (V) : रूपरहित । S : **ला सूरत** ।

निर्गुण (V) : गुणरहित । S : **ला सिफ़त** ।

निर्वाण (V) : **यथार्थ फ़ना** की पहली स्थिति । कुछ उदाहरणों में उसके पश्चात् तत्काल दूसरी स्थिति **फ़ना-फ़िल्लाह** आती है ।

निर्वकल्प समाधि : देखिये : **समाधि** ।

शून्य : परमात्मा की, जो सबकुछ है, अनन्त छाया ।

नुक़ूश-ए-अमाल (S) : (nuqush-i amal) शब्दार्थ, कर्मों के संस्कार । V : **संस्कार** ।

नूर (S) : (बहुवचन **अनवर**) कान्ति, तेज ।

नूर-ए-मुहम्मदी (S) : वह प्रकाश जिसका भान परमात्मा को पहले पहल ख़ुद जानने की इच्छा (लहर) के पलस्वरूप हुआ ।

ओम (V) : (aum) परमात्मा । प्रथम शब्द, सृष्टि के आदि के आदि में हुई मूल ध्वनि । देखिये, **नाद** भी ।

परमात्मा (V) : (अथवा परम आत्मा) सर्वशक्तिमान ईश्वर । S : **अल्लाह** । ज़रतोस्ती : **अहुरमज़्द** । **यज़दान** ।

परमहँसा ?? **परमहन्स** (V) : एक पूर्ण पुरुष, जो कभी-कभी ईश्वर में "निमग्न हो जाता है", जिस दशा में वह **मजज़ूब-सालिक** कहलाता है; और कभी-कभी उसको सृष्टि की भी चेतना होती है, जिस दशा में वह **सालिक-मजज़ूब** कहलाता है ।

परम मुक्त : देखिये : **मुक्त** ।

परम मुक्ति : देखिये : **मुक्ति** ।

نفسِ امارة *nafs-e-ammara* (S): (nafs-i ammārah) The lustful self. The consciousness of the gross world or sphere.

نفسِ لوامة *nafs-e-lawaama* (S): (nafs-i lavāmah) The reproachful self. The consciousness of the subtle sphere.

نفسِ ملهمة *nafs-e-mulhima* (S): (nafs-i mulhimah) The inspired self. The consciousness of the soul on the sixth plane.

نفسِ مطماءن *nafs-e-mutmainna* (S): (nafs-e-muṭmā'inna) The beatified self. The consciousness of the soul on the fifth plane.

نجات، نجاة *najat* (S): (najāt) Liberation. V: ordinary *mukti, q.v.*

nastik (V): (nāstika) Atheist. S: *mulhid*.

nirakar (V): (nirākāra) Without form. S: *la surat*.

nirguna (V): (nirguṇa) Attributeless. S: *la sifat*.

nirvana (V): (nirvāṇa) The first stage of the Real *fana*. In some cases it is followed immediately by the second stage, the *fana-fillah*.

nirvikalpa samadhi: See *samadhi*.

Nothing, the: The infinite shadow of God, Who is the Everything.

نقوشِ اعمال *nuqush-e-amal* (S): (nuqūsh-i a'māl) Lit., the impressions of actions. V: *sanskaras, q.v.*

نور *nur* (S): (nūr) (pl. *anwar*) Effulgence.

نورِ محمّدی *nur-e-Muhammadi* (S): (nūr-i muḥammadī) The light of which God first became aware as a consequence of the desire (the Whim) to know Himself.

Om (V): (aum) God. Also, the first Word, the primal sound at the beginning of the Beginning of Creation. See also *nad*.

Paramatma (V): (paramātmā) (or *Paramatman*) Almighty God. S: *Allah*. Zoroastrian: *Ahuramazda, Yezdan*.

Paramhansa (V): (paramahaṁsa) A Perfect One, who is sometimes "drowned" in God, in which case he is called a *Majzoob-Salik;* and sometimes also conscious of Creation, in which case he is called a *Salik-Majzoob*.

Param Mukta: See *Mukta*.

param mukti: See *mukti*.

परात्पर परब्रह्म (V) : परमात्म की अति-परे (प्रथम) अवस्था । S : **वरा-उल-वरा । ग़ैब-उल-ग़ैब ।**

परवरदिगार (S) : रक्षक अथवा पोषक । V : **विष्णु ।**

पीर (S) : छठवीं भूमिका का गुरु । V : **सत् पुरुष ।**

प्राण (V) : शब्दार्थ, प्राणशक्ति । सूक्ष्म शरीर । समग्र जीवन की स्वाँस, भी ।

प्राण भूमि (V) : सूक्ष्म जगत । S : **आलम-ए-मलकूत ।**

प्राण भूमिका (V) : सूक्ष्म भूमिका ।

प्राण भुवन (V) : सूक्ष्म लोक । S : **आलम-ए-मलकूत ।**

प्रारब्ध (V) : संस्कारी कड़ियाँ जो न केवल मनुष्य के जीवन काल की अवधि निर्धारित करती हैं : वरन् उसके स्वयं जीवन मार्ग को भी निर्धारित करती हैं । अनिवार्य भाग्य । S : **मुक़द्दर ।**

प्रसाद (V) : एक छोटी भेंट, सामान्यतः खाने योग्य, जो सद्गुरु अपने प्रेम के ठोस प्रकाशन के रूप में देता है । निगल जाने पर वह एक बीच की तरह क्रिया करती है जो अन्ततः बढ़कर पूर्ण विकसित प्रेम हो जाती है । सद्गुरु की कृपा-पूर्ण भेंट ।

पुनर्जन्म (V) : (punar janma) पुनः पुनः जन्म । S : **रिजत ।**

पुरातन पुरुष (V) : पूर्ण पुरुष । S : **इन्सान-ए-कामिल ।**

क़दीम (S) : वह जो मूल (पुरातन) है । **हदस** से तुलना कीजिये ।

क़ियामत (S) : (qiyamat) विश्व का महान (अन्तिम) विनाश । V : **महाप्रलय ।**

क़ुदरत (S) : दिव्य शक्ति । V : **सत् ।**

क़ुर्बत (S) : शब्दार्थ निकटता । इश्वर से सम्बन्ध ।

क़ुर्ब-ए-फ़रायिज़ (S) : (qurb-i fara'iz) अस्वैच्छिक (आवश्यक) निकटता : परमात्मा के प्रात **अवतार** का सम्बन्ध ।

क़ुर्ब-ए-नवाफ़िल (S) : स्वैच्छिक निकटता : परमात्मा के प्रति स्द्गुरु का सम्बन्ध ।

क़ुतुब (S) : (qutb) शब्दार्थ, धुरी । एक **पूर्ण पुरुष** । V : **सद्गुरु ।**

क़ुतुब-ए-इरशाद (S) : (qutb-i irshad) पाँच जीवन्त **क़ुतुबों** का अध्यक्ष जो विश्व के कार्यों का निर्देशन करता है । **अवतारिक** युग में इस पद पर **अवतार** आसीन होता है ।

क़ुतुबियत (S) : सद्गुरुपन । परमात्मा की दसवीं अवस्था ।

Paratpar Parabrahma (V): (parātpara parabrahma) The Beyond-Beyond (first) state of God. S: *Wara-ul-Wara, Ghaib-ul-Ghaib.*

پروردگار *Parvardigar* (S): (parvardigār) The Preserver or Sustainer. V: *Vishnu.*

پیر *pir* (S): (pīr) A sixth plane master. V: *satpurush.*

pran (V): (prāṇa) Lit., vital energy. The subtle body. Also, Breath of all life.

pran bhumi (V): (prāṇa bhūmi) The subtle world. S: *alam-e-malakut.*

pran bhumika (V): (prāṇa bhūmikā) The subtle plane.

pran bhuvan (V): (prāṇa bhuvana) The subtle sphere. S: *alam-e-malakut.*

prarabdha (V): (prārabdha) The sanskaric links which not only determine the length of time one remains in the body, but also determine the very course of life. Inevitable destiny. S: *muqaddar.*

prasad (V): (prasāda) A small gift, usually edible, given by the Master as a concrete expression of his love. When swallowed it acts as a seed that will eventually grow into full-blown love. A gracious gift of the Master.

punar janma (V): (punar janma) Reincarnation. S: *rij'at.*

Puratan Purush (V):(purātana puruṣa) A Perfect One. S: *Insan-e-Kamil.*

قديم *qadim* (S):(qadīm) That which is original (ancient). Compare *hadas.*

قيامة (ت) *qiamat* (S): (qiyāmat) The great (final) dissolution of the universe. V: *mahapralaya.*

قدرة (ت) *qudrat* (S): (qudrat) Divine Power. V: *sat.*

قربت *qurbat* (S): (qurbat) Lit., nearness. Relationship to God.

قربِ فرائض *qurb-e-farayiz* (S): (qurb-i farā'iẓ) Involuntary (necessary) nearness: the relationship of the *Avatar* to God.

قربِ نوافل *qurb-e-nawafil* (S): (qurb-i navāfil) Voluntary nearness: the relationship of the Perfect Master to God.

قطب *Qutub* (S): (quṭb) Lit., the hub or axis. A Perfect Master. V: *Sadguru.*

قطبِ ارشاد *Qutub-e-Irshad* (S): (quṭb-i irshād) The head of the five living Qutubs who directs the affairs of the universe. In an Avataric age this office is filled by the *Avatar.*

قطبيت *qutubiyat* (S):(quṭubīyat) Perfect Masterhood. The tenth state of God.

राह-ए-तरीक़त (S) : देखिये : तरीक़त ।

रहरव (S) : (rahrev) वह व्यक्ति जो पथ पर चलता है । V : **साधक** ।

राम : वह **अवतार** जिसके जीवन चरित्र का वर्णन हिन्दू महाकाव्य **रामायण** में किया गया है ।

रसूल (S) : (rasul) **रक्षक, क्राईस्ट** । V : **अवतार** ।

रिजत (S) : पुनर्जन्म । V : **पुनर्जन्म, आवागमन** ।

रूह (S) : **जान** । आत्मा । V : **आत्मा** ।

सद्गुरु (V) : एक **पूर्ण पुरुष** । S : क़ुतुब ।

साधक (V) : वह व्यक्ति जो पथ पर चलता है । S : रहरव ।

साधना (V) : देखिये : **मुजाहिदा** ।

साधू (V) : एक तीर्थयात्री । एक उन्नत आत्मा । S : **मुतवस्सित** ।

सदरत-उल-मुन्तहा (S) : (sadrat ul muntaha) अन्तिम सीमा । चौथी (मिश्रित) लोक में एक बिन्दु जिसके परे कोई भी निराकार आत्मा (जैसे एक फ़रिश्ता अथवा प्रधान देवदूत) ईश्वर तक पहुँचने के लिये नहीं जा सकती है ।

सगुण (V) : गुणोंसहित, गुणयुक्त । S : **बा सिफ़त** ।

सहज समाधि : देखिये : **समाधि** ।

सहवास (हिन्दी) : सद्गुरु द्वारा बुलाया गया सम्मेलन जिससे कि उसके भक्त उसकी संगीत का आनन्द ले सकें, अर्थात् उसकी भौतिक उपस्थिति का आनन्द ले सकें ।

साहेब-ए-जमों-फ़र्क (S) : (sahib-i jam'o farq) = **आज़ाद-ए-मुतलक़** : शरीरधारी मुक्त आत्मा; पूर्ण पुरुष । परमात्मा की नवीं अवस्था में एक आत्मा । V : जीवनमुक्त ।

साहेब-ए-ज़मां (S) : (sahib-i zaman) = **रसूल** ।

साकार (V) : रूपधारी । S : **बा सूरत** ।

सल्ब-ए-विलायत (S) : (salb-i vilayat) प्रथम चार भूमिकाओं में से एक पर स्थित आत्मा से **सद्गुरु** अथवा **अवतार** द्वारा चमत्कारी शक्तियों का छीनना ।

सालिक (S) : वह आत्मा जिसे छः भूमिकाओं में से किसी एक का दिव्य अनुभव चैतन्यरूप से होता है । यथार्थ **सालिक** = ईश्वर के रूप में मनुष्य जो **बक़ा-बिल्लाह** की अवस्था का अनुभव करता है ।

सालिक-ए-अकमल (S) : एक **अत्यन्त पूर्ण पुरुष** । (३५२)

راہِ طریقة (ت) *rah-e-tariqat* (S): (rāh-i ṭarīqat) See *tariqat*.

رهرو *rahrav* (S): (rahrev) One who traverses the Path. V: *sadhak*.

Rama: The *Avatar* whose life is the subject of the Hindu epic, the *Ramayana*.

رسول *Rasool* (S): (rasūl) The Saviour, the Christ. V: *Avatar.*

رجعة (ت) *rij'at* (S): (rij'at) Reincarnation. V: *punar janma, awagawan*.

روح *ruh* (S): (rūḥ) = *jan*. Soul. V: *atma*.

Sadguru (V): (sadguru) A Perfect Master. S: *Qutub*.

sadhak (V): (sādhaka) One who traverses the Path. S: *rahrav.*

sadhana (V): (sādhana) See *mujahida*.

sadhu (V): (sādhu) A pilgrim. An advanced soul. S: mutawassit.

سدرة المنتهىٰ *sadrat-ul-muntaha* (S): (sadrat ul muntahā) The last limit. The point in the fourth (composite) sphere beyond which no unembodied soul (such as angel or archangel) can go to approach God.

saguna (V): (saguṇa) With attributes, qualitied. S: *ba sifat*.

sahaj samadhi: See *samadhi*.

sahavas (Hindi): A gathering held by the Master so that his devotees may enjoy his company, i.e., his physical presence.

enjoying both union and separation

صاحبِ جمع و فرق *Saheb-e-jamo-farq* (S): (ṣāḥib-i jam' o farq) = *Azad-e-Mutlaq:* The Liberated Incarnate; a Perfect One. A soul in the ninth state of God. V: *Jivanmukta*.

صاحبِ زمان *Saheb-e-Zaman* (S): (ṣāḥib-i zamān) = *Rasool, q.v.* ----------"Lord of the age"

sakar (V): (sakara) With form. S: *ba surat*.

salb-e-wilayat (S): (salb-i vilāyat) The snatching away of miraculous powers from a soul on one of the first four planes by a Perfect Master or Avatar.

سالک *Salik* (S): (sālik) One who consciously has divine experience of any of the six planes. Real *Salik* = Man as God experiencing the state of *baqa-billah*.

سالکِ اکمل *Salik-e-Akmal* (S): (sālik-i akmal) A Most Perfect One.

सालिक-ए-कामिल (S) : पूर्ण पुरुष । V : **जीवनमुक्त** ।

सालिक-ए-मुकम्मिल (S) : एक परम पूर्ण पुरुष = **क़ुतुब** । V : **सद्गुरु** ।

सालिक-मजज़ूब (S) : देखिये : **परमहन्स** ।

समाधि (V) : आध्यात्मिक ध्यान लगाने से उत्पन्न हुई अचेत अवस्था ।

निर्विकल्प समाधि (V) : (nirvikalpa samadhi) **पूर्ण पुरुष** की "मैं-परमात्मा-हूँ" अवस्था । आविर्भूत दिव्यता । S : **फ़ना-फ़िल्लाह** ।

सहज समाधि : **सद्गुरु** और **अवतार** की **पूर्णता** की प्रयासरहित और नित्य अवस्था । क्रियाशील दिव्यता । S : **बक़ा-बिल्लाह** ।

शंकराचार्य : हिन्दू सद्गुरु, वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त का संस्थापक । ६८६–७१८ ई॰ ।

संस्कार (V) : (संस्कार-एकवचन) संस्कार समूह । वे संस्कार भी जो आत्मा के ऊपर पूर्व जन्मों से प्राप्त स्मृतियों के रूप में रह जाते हैं, और जो मौजूदा जीवनकाल में मनुष्य की इच्छाओं और कर्मों को निर्दिष्ट करते हैं । S : **नुक़ुश-ए-अमल** ।

सन्त (हिन्दी) : सन्त । S : अबरार वली । V : **महापुरुष** ।

संन्यासी (V) : (samnyasi—एकवचन) वे लोग जिन्होंने दुनियाँ को त्याग दिया है ।

सार्वभौमिक मानस (V) : **व्यापक मन** । S : **अक्ल-ए-कुल** ।

सर्वोहाम् (V) : "मैं सर्वस्त हूँ" । S : **हमा मन अम** ।

सत् (V) : दिव्य शक्ति । S : **क़ुदरत** ।

सत्पुरुष (V) : छठवीं भूमिका का सम्त । S : **पीर, अफ़रदि** ।

सत्यानुभूति (V) : **सत्यता** का **ज्ञानपथ** । S : **मारेफ़त-ए-हक़ीक़त** ।

सैर-ए-मा अल्लाह (S) : (sair-i m'ah ullah) शब्दार्थ, ईश्वर के साथ सैर । **तीसरी ईश्वरीय यात्रा** ।

शाबिस्तरी, मौलाना महमूद : नवीं शताब्दी का सूफ़ी **गुलशम-ए-राज़** का लेखक ।

शक्ति (V) : सामर्थ्य ।

शम्सि तबरेज़ (V) : पूर्ण पुरुष, चलता-फिरता फ़कीर और जलालुद्दीन रूमी का आध्यात्मिक गुरु । १२४६ ई॰ में मृत्यु ।

سالکِ کامل *Salik-e-Kamil* (S): (sālik-i kāmil) A Perfect One. V: *Jivanmukta*.

سالکِ مکمل *Salik-e-Mukammil* (S): (sālik-i mukammil) A Supremely Perfect One = *Qutub*. V: *Sadguru*.

سالک مجذوب *Salik-Majzoob* (S): (sālik majz̄ūb) See *Paramhansa*.

samadhi (V): (samādhi) Trance, induced by spiritual meditation.

nirvikalpa samadhi: (nirvikalpa samādhi) The "I am God" state of the Perfect One. Divinity in expression. S: *fana-fillah*.

sahaj samadhi: (sahaj samādhi) The effortless and continual state of Perfection of the Perfect Master and *Avatar.* Divinity in action. S: *baqa-billah*.

Sankaracharya: Hindu Perfect Master, founder of the *Advaita* school of Vedanta, 686–718 A.D.

sanskaras (V): (saṁskara – singular) Impressions. Also, impressions which are left on the soul as memories from former lives, and which determine one's desires and actions in the present life-time. S: *nuqush-e-amal*.

sant (Hindi): (santa) Saint. S: *abrar, wali*. V: *mahapurush*.

sanyasis (V): (saṁnyāsī – singular) Those who have renounced the world.

sarvabhaumic manas (V): (sārvabhaumika manas) The Universal Mind. S: *aql-e-kull*.

Sarvoham (V): (sarvo'ham) "I am All." S: *hama man am*.

sat (V): (sat) Divine Power. S: *qudrat*.

satpurush (V): (satpuruṣa) A sixth plane saint. S: *pir, afrad*.

satyanubhuti (V): (satyānubhūti) The Gnosis of Reality. S: *marefat-e-haqiqat*.

سیرِ معہ اللہ *seyr-e-ma Allah* (S): (sair-i m'ahu-llah) Lit., excursion with God. The third divine journey.

Shabistari, Maulana Mahmud: The thirteenth century Sufi author of *Gulshan-e-Raz*.

shakti (V): (śakti) Power.

Shamsi Tabriz: Perfect Master, wandering dervish and spiritual master of Jalaluddin Rumi. Died 1246 A.D.

शरियत (S) : सामान्य पथ; कट्टर पन्थी । V : **धर्म शास्त्र, कर्मकाण्ड** ।

शरीर (V) : शब्दार्थ, देह । स्थूल शरीर ।

शिबली, आबू बकर : बग़दाद के जुनायद का शिष्य । ९४६ ई॰ में मृत्यु । (३५३)

शिव (V) : = **महेश; संहारकर्त्ता** । परमात्मा, भी । S : **फ़नाकार** ।

शिव आत्मा (V) : (शिवात्मन भी) ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त एक पूर्ण आत्मा । S : **इन्सान-ए-कामिल** ।

शिवोहम् (V) : "मैं-परमात्मा-हूँ" । **अहम् ब्रह्मास्मि** । S : **अनल हक़** ।

शोबादा (S) : (shu'badah) पहली से तीसरी भूमिकाओं तक स्थित आत्माओं द्वारा शक्ति प्रदर्शन ।

शुहूदियाह (S) : सूफ़ीवाद का प्रत्यक्षवादी सम्प्रदाय । जिसके अनुरूप वेदान्तिक मत है **विशिष्ट अद्वैत** ।

सिद्धियाँ (V) : (सिद्धि—एकवचन) **दैवी शक्तियँ**, गूढ़ शक्तियाँ भी । S : **तजल्लियत** ।

सिफ़त (S) : ईश्वर के गुण, ईश्वर के दिव्य सार (ज़ात) के विपरीत के रूप में । V : **गुण** ।

स्थान (V) : एक स्थल । S : मुक़ाम ।

स्थूल शरीर (V) : स्थूल शरीर । S : **जिस्म-ए-कसीफ़** ।

सूफ़ी (S) : (सूफ़ी—एकवचन) रहस्यवादी जिनके मूल उद्‌भव **मध्य पूर्व** में स्थित हैं । उनके आरम्भ प्राचीन काल में लुप्त हो गये हैं । उनका अस्तित्व ज़ोरास्टर के काल में था और उनको मुहम्मद ने नया जीवन प्रदान किया था । आजकल उनका अस्तित्व दुनियाँ के सब भागों में है ।

सुहरावर्दी, शेख शहाबुद्दीन : ११४५–१२३४ ई॰ । **अवारिफ़-उल-मारिफ़** का लेखक । **प्रत्यक्षवाद** (**वहदत-उल-शुहूद**) का लेखक ।

सूक्ष्म शरीर (V) : प्राण शरीर । S : **जिसम-ए-लतीफ़** ।

सुलूक (S) : **मस्ती** का विलोम । ईश्वर-साक्षात्कार के पश्चात् सामान्य (सृष्टि) की चेतना की पुनः प्राप्ति, जिसका अनुभव **असली सालिकों** को **बक़ा-बिल्लाह** में होता है ।

सुलूकियत (S) : अन्तिम **सुलूकियत बक़ा-बिल्लाह** में **यथार्थ सालिक** की अवस्था है ।

شرتعة (ت) *shariat* (S): (sharī'at) The exoteric path; orthodoxy. V: *dharma shastra, karma kanda*.

sharir (V): (śarīra) Lit., body. The gross body.

Shibli, Abu Bakr: A disciple of Junayd of Baghdad. Died 946 A.D.

Shiva (V): (śiva) = Mahesh: the Destroyer. Also, God. S: *Fanakar.*

Shiv-Atma (V): (śivātman) (also, *Shivatman*) A perfect, God-realized soul. S: *Insan-e-Kamil*.

Shivoham (V):(śivo'ham) "I am God." *Aham Brahmasmi*. S: *Anal Haqq*.

شعبده *shobada* (S): (shu'badah) A display of powers by those on the first through the third planes.

شهودية *Shuhudiyyah* (S): (shuhūdiyyah) The Apparentist school of Sufism. The corresponding Vedantic school is *Vishistadvaita*.

siddhis (V): (siddhi – singular) Divine Powers; also, occult powers. S: *tajalliyat*.

صفت *sifat* (S): (ṣifat) The attributes of God, as contrasted to His divine essence (*zat*). V: *guna*.

sthan (V): (sthāna) A station. S: *muqam*.

sthul sharir (V): (sthūla śarīra) The gross body. S: *jism-e-kasif*.

صوفى Sufis (S): (ṣūfī – singular) The mystics whose origins lie in the Middle East. Their beginnings are lost in antiquity. They existed at the time of Zoroaster and were revitalized by Muhammad. They exist today in all parts of the world.

Suhrawardi, Sheikh Shahabuddin: 1145–1234 A.D. Author of *Awarif-ul-Maarif*. Exponent of Apparentism (*wahdat-ul-shuhud*).

sukshma sharir (V): (sūkśma śarīra) The subtle body. S: *jism-e-latif*.

سلوک *suluk* (S): (sulūk) As opposed to *masti*. The return to normal (Creation-) consciousness after God-realization, truly experienced by the Real *Saliks* in *baqa-billah*.

سلوكية (ت) *sulukiyat* (S): (sulūkīyat) The final *sulukiyat* is the state of the Real *Salik* in *baqa-billah*.

तजल्ली (S) : (बहुवचन तजल्लियात) शब्दार्थ, अभिव्यक्ति । परमात्मा का ऐश्वर्य जिसका अनुभव जिज्ञासु को आध्यात्मिक पथ पर होता है ।
१) ईश्वर की उसकी मायावी **सृष्टि** के रूप में अभिव्यक्ति ।
२) सूक्ष्म जगत की प्रथम तीन भूमिकाओं की शक्तियाँ ।
३) चौथी भूमिका (**अनवर-ओ-तजल्लियत**) की दिव्य शक्तियाँ ।

(३५४)

तजल्ली-ए-अव्वल (S) : प्रथम अभिव्यक्ति, **वहीद-उल-वुजूद** ।

तजल्ली-ए-चहारोम (S) : (tajalli-yi caharum) चौथी अभिव्यक्ति, **मुमकिन-उल-वुजूद** ।

तजल्ली-ए-दोव्वुम (S) : (tajalli-yi duvvum) द्वितीय अभिव्यक्ति, **आरिफ़-उल-वुजूद** ।

तजल्ली-ए-जलाली (S) : ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति, अथवा आविर्भाव, जो आत्मा को फ़ना का अनुभव प्रदान करता है, **आशक़ियत** ।

तजल्ली-ए-जमाली (S) : सौन्दर्य का अविर्भाव, अथवा अभिर्व्याव, जो ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आत्मा को पुनः सामान्य चेतना प्रदान करती है, **माशूक़ियत** ।

तजल्ली-ए-पन्जोम (S) : (tajalli-yi panjum) पाँचवीं अभिव्यक्ति, **वाजिब-उल-वुजूद** ।

तजल्ली-ए-सिवोम (S) : (tajalli-yi sivvum) तीसरी अभिव्यक्ति, **मुमतान-उल-वुजूद** ।

तजल्लियत (S) : तजल्ली का बहुवचन, तजल्ली के प्रसङ्ग में देखिये ।

तजल्लियत-ए-खमसा (S) : (tajalliyat-i khamsah) पाँच अभिव्यक्तियाँ = **खमसा वुजूदत,** पाँच प्रकार के अस्तित्व । देखिये : **वुजूद** ।

तालिब (S) : एक खोजी ।

तनज्जुलत (S) : पाँच प्रकारों के अस्तित्व के माध्यम से **परमतत्व** की उपक्रोम्तयाँ ।

तान्त्रिक (V) : (तान्त्रिक—एकवचन) वे आत्मायें जो **तान्त्रिक** अभ्यासों के द्वारा गूढ़ शक्तियों में प्रवीण हो गई हैं । तान्त्रिक अभ्यास तन्त्रों पर आधारित होते हैं । **तन्त्र** वे अभ्यास प्रदान करते हैं (पौराणिक कथा में, जिन्हें प्रारम्भ में भगवान शिव ने लिखा था) जो ऐसी शक्तियों की ओर अग्रसर करते हैं ।

तंज़ीह (S) : अखण्ड । अनुभवातीत ।

تجلّی، تجلّیات *tajalli* (S): (tajallī) (pl. *tajalliyat:* tajallīyāt) Lit., manifestation. The Glory of God as experienced by the aspirant on the spiritual Path.
1. The manifestation of God as His illusory Creation.
2. Powers of the first three planes of the subtle world.
3. Divine powers of the fourth plane (*anwar-o-tajalliyat*).

تجلّیِ اوّل *tajalli-e-avval* (S): (tajallī-yi avval) The first manifestation, *wahid-ul-wujud*.

تجلّیِ چهارم *tajalli-e-chaharom* (S): (tajallī-yi cahārum) The fourth manifestation, *mumkin-ul-wujud*.

تجلّیِ دوّم *tajalli-e-dovvom* (S): (tajallī-yi duvvum) The second manifestation, *arif-ul-wujud*.

تجلّیِ جلالی *tajalli-e-jalali* (S):(tajallī-yi jalālī) The epiphany, or manifestation, of glory, which confers on the soul the experience of *fana, ashqiyyat*.

تجلّیِ جمالی *tajalli-e-jamali* (S): (tajallī-yi jamālī) The epiphany, or manifestation, of beauty, which again endows the God-realized soul with consciousness of normality, *mashuqiyyat*.

تجلّیِ پنجم *tajalli-e-panjom* (S): (tajallī-yi panjum) The fifth manifestation, *wajib-ul-wujud*.

تجلّیِ سوّم *tajalli-e-sevvom* (S): (tajallī-yi sivvum) The third manifestation, *mumtan-ul-wujud*.

تجلّیات *tajalliyat* (S): pl. of *tajalli, q.v.*

تجلّیاتِ خمسة *tajalliyat-e-khamsa* (S): (tajallīyāt-i khamsah) The five manifestations = *khamsa wujudat,* the five kinds of existence. See *wujud*.

طالب *talib* (S): (ṭālib) A seeker.

تنزلت *tanazzulat* (S): (tanazzulat) The devolutions of the Absolute through the five kinds of existence. ----------slow, gentle descent

tantriks (V): (tantrika—singular) Those who have become adept in occult powers through *tantrik* exercises. *Tantrik* exercises are based on scriptures known as *tantras*. The *tantras* prescribe practices (in legend, originally written down by Lord Shiva) which lead to such powers.

تنزیه *tanzeeh* (S): (tanzīh) Absolute. Transcendent.

tapas (V): (tapa—singular) Austerities.

तापस (V) : (तप—एकवचन) तपस्यायें ।

तपस्वी (V) : (तपस्वी—एकवचन) कठोर साधनायें करने वाले ।

तरीक़त (S) : आध्यात्मिक पथ । आध्यात्मिक उन्नति का उपनिषद् मार्ग । V : **आध्यात्मिक मार्ग** ।

तसव्वुफ़ (S) : आध्यात्मिक **ज्ञान** ।

(३५५)

तश्बीह (S) : समान । गुणयुक्त । उसी समान । तुलना किया गया ।

तौबा (S) : (taubah) प्रायश्चित । इन्द्रियों के जीवन से मुड़कर ईश्वर की ओर लौटना, जिसकी उत्पत्ति सहज उत्कण्ठा से होती है । आध्यात्मिक क्रमों, अथवा **मुक़ामात,** में प्रथम क्रम ।

तौहीद (S) : ईश्वर की ऐक्य अवस्था ।

तौहीद-ए-अफ़ाली (S) : ईश्वर का क्रियात्मक ऐक्य; वह ऐक्य जो आत्मा को सूक्ष्म भूमिकाओं पर प्राप्त होता है ।

तौहीद-ए-अहवाली (S) : (tauhid-i ahvali) परमात्मा के ऐक्य की अनुभूति; पाँचवीं भूमिका पर स्थित आत्मा के द्वारा प्राप्त हुआ ऐक्य ।

तौहीद-ए-अक़वाली (S) : परमात्मा का मौखिक ऐक्य; अधिकांश मानव जाति द्वारा प्राप्त करने योग्य एकत्व, जिन्होंने अब भी **मार्ग** में प्रवेश नहीं किया ।

तौहीद-ए-शरियत (S) : विधान की एकता = **तौहीद-ए-अक़वाली** ।

तौहीद-ए-सिफ़ाती (S) : गुणों में ईश्वर का ऐक्य; छठवीं भूमिका पर स्थित आत्मा को प्राप्त हुई एकता ।

तौहीद-ए-तंज़ीही (S) : अखण्ड ऐक्य । V : **अद्वैत** ।

तौहीद-ए-तरीक़त (S) : आध्यात्मिक पथ पर चलती हुई आत्माओं का मिलन । उसमें **तौहीद-ए-अफ़ाली,** अहवली, और सिफ़ाती का समावेश होता है ।

तौहीद-ए-ज़ाती (S) : सार तत्व में परमात्मा का मिलन । ईश्वर-साक्षात्कार-प्राप्त आत्मा की **तौहीद** ।

तवज्जुह (S) : शब्दार्थ, प्रभाव । एक वली द्वारा साधक के भौतिक नेत्रों में टकटकी लगाये हुये उसके अन्तर्चक्षुओं से पर्दा हटाना ।

त्रिभुवन (V) : तीनों लोक । सृजित विश्व, स्थूल, सूक्ष्म और मनों लोकों सहित, और चौथे (मिश्रित) लोक सहित । S : **दो आलम** (**दुनियाँ** और **उक़बा**) ।

tapasavis (V): (tapasavī—singular) Ascetics.

طريقة (ت) *tariqat* (S): (ṭarīqat) The spiritual Path. The esoteric path of spiritual advancement. V: *adhyatmic marga*.

تصوّف *tasawwuf* (S): (taṣavvuf) The spiritual Wisdom.

تشبيه *tashbeeh* (S): (tashbīh) Similar. Qualified. Likened. Compared.

توبة *tauba* (S): (taubah) Repentance. A turning away from the life of the senses toward God, arising from a spontaneous longing. The first of the spiritual stages, or *muqamat*.

توحيد *tauhid* (S): (tauḥīd) The unitary state of God.

توحيدِ افعالی *tauhid-e-afa' ali* (S): (tauḥīd-i afa'ālī) The active unity of God; the unification achieved by a soul on the subtle planes. ----------unity of actions

توحيدِ احوالی *tauhid-e-ahwali* (S): (tauḥīd-i aḥvālī) The feeling unity of God; the unification achieved by a soul on the fifth plane. ----------unity of states

توحيدِ اقوالی *tauhid-e-aqwali* (S): (tauḥīd-i aqvālī) The verbal unity of God; the unification achievable by the majority of mankind, who have not yet entered the Path. ----------unity of opinions

توحيدِ شريعت *tauhid-e-shariat* (S): (tauḥīd-i sharī'at) The unification of law = *tauhid-e-aqwali*.

توحيدِ صفتی *tauhid-e-sifati* (S): (tauḥīd-i ṣifati) The unity of God in attributes; the unification achieved by a soul on the sixth plane.

توحيدِ تنزيهی *tauhid-e-tanzihi* (S):(tauḥīd-i tanzīhi) Absolute Oneness. V: *advaita*.

توحيدِ طريقت *tauhid-e-tariqat* (S): (tauḥīd-i ṭarīqat) The unification of those on the spiritual Path. Comprises *tauhid-e-afa'ali, ahwali* and *sifati*.

توحيدِ ذاتی *tauhid-e-zati* (S): (tauḥīd-i z̤ātī) The unity of God in essence. The *tauhid* of the God-realized soul. ----------unity of essence

توجه *tawajjoh* (S): (tavajjuh) Lit., influence. The tearing away of veils from the inner eye of an aspirant by a *wali* gazing into the physical eyes of the aspirant.

tribhuvan (V): (tribhuvana) The triple sphere. The created universe, consisting of the gross, subtle and mental spheres, and including the fourth (composite) sphere. S: *do alam* (*duniya* and *uqba*).

तुरिया अवस्था (V) : (turiyavastha) दिव्य सन्धि की अवस्था । S : **मुक़ाम-ए-फ़ुरूतत पर फ़ना-मा-अल-बक़ा** ।

उबूदियत (S) : दासता । यथार्थ सालिकों की भूमिका जो बन्धन में जकड़ी मानवता को लाभ पहुँचाने के लिये सामान्य चेतना में वापिस आ गये हैं ।

(३५६)

उक़बा (S) : देखिये : **दो आलम** ।

उर्फ़-उल-यक़ीन : देखिये : **यक़ीन** ।

उत्क्रान्ति (V) : विकास । S : **इरतेक़ा** ।

वैराग्य (V) : स्थायी त्याग ।

वैताग (मराठी) : निराशा द्वारा अस्थायी संन्यास ।

वस्ल (S) : देखिये : **ऐक्य** ।

वेदान्तिस्त (V) : (वेदान्त) वे आत्मायें जो वेदान्त शास्त्र का अभ्यास करती हैं जो न केवल ४ वेदों के सार तत्व पर आधारित होता है वरन् वेदों के बाद लिखे गये पवित्र ग्रन्थों पर भी आधारित होता है, जिनमें उपनिषद् सम्मिलित होते हैं ।

विदेह मुक्त : देखिये : मुक्त ।

विदेह मुक्ति : देखिये : मुक्ति ।

विज्ञान (V) : (vijnana) चैतन्य मिलन । सर्वोच्च दिव्य चेतना । S : अहदियत । **पूर्ण पुरुष** की महा-चैतन्य स्थिति । S : **आलम-ए-लहूत** ।

विज्ञान बूमिका (V) : एकसाथ ईश-चेतना और सृष्टि-चेतना की अवस्था : पूर्ण पुरुषों की चेतना । (**मजज़ूब-ए-कामिल** को केवल **विज्ञान भूमिका** में ईश-चेतना प्राप्त होती है ।) S : **मुक़ाम-ए-मुहम्मदी** ।

विशिष्ट अद्वैत (V) : वेदान्तिक सम्प्रदाय जिसके विचारों की तुलना **शुहूदियाह** से की जा सकती है । प्रत्यक्षवादी ।

विष्णु (V) : पालनकर्त्ता । S : **परवरदिगार** ।

वहदत-उल-शुहूद (S) : (vahdat ush-shuhud) शब्दार्थ, दृष्टा का मिलन । प्रत्यक्षवाद ।

वहदत-उल-वुजुद (S) : (vahdat ul-vujud) शब्दार्थ, अस्तित्व का मिलन । एकतावाद ।

वहदियत (S) : चैतन्य एकता ।

turiya avastha (V): (turīyā avasthā) The state of Divine Junction. S: fana-ma-al-baqa at muqam-e-furutat.

عبودية (ت) *ubudiyat* (S): ('ubūdīyat) Servantship. The role of Real Saliks who have returned to normal consciousness to benefit humanity in bondage.

عقبا *uqba* (S): ('uqbā) See *do alam*.

عرف اليقين *urf-ul-yaqin:* See *yaqin*. ----------being known of a certainty

utkranti (V): (utkrānti) Evolution. S: *irteqa*.

vairagya (V): (vairāgya) Permanent (irrevocable) renunciation.

vaitag (Marathi): Temporary renunciation through frustration.

وصل *vasl* (S): (vaṣl) See *aikya*. ----------union

Vedantists (V): (vedanta) Those who practice the philosophy of Vedanta which is based not only on the essence of the four Vedas but also on sacred books written after the Vedas, including the Upanishads.

Videh Mukta: See *Mukta*.

videh mukti: See *mukti*.

vidnyan (V): (vijñāna) Conscious Unity. The highest divine consciousness. S: *ahadiyat*. The super-conscious stage of the Perfect One. S: *alam-e-lahut*.

vidnyan bhumika (V):(vijñāna bhūmikā) State of God-consciousness and Creation-consciousness simultaneously: the consciousness of Perfect Masters. (*Majzoob-e-Kamil* is only God-conscious in *vidnyan bhumika*.) S: *muqam-e-Muhammadi*.

Vishistadvaita (V): (viśiṣṭ advaita) The Vedantic school which holds views comparable to *Shuhudiyyah*. Apparentists.

Vishnu (V): (viṣṇu) The Preserver. S: *Parvardigar*.

وحدة الشهود *wahdat-ul-shuhud* (S): (vaḥdat ush-shuhūd) Lit., unity of witness. Apparentism.

وحدة الوجود *wahdat-ul-wujud* (S): (vaḥdat ul-vujūd) Lit., unity of existence. Identityism.

وحدية (ت) *wahdiyat* (S): (vaḥdīyat) Conscious Oneness.

वहदियत-ए-वहदियत (S) : अनेकता-में-एकता की चेतनायुक्त चैतन्य एकता । यह **आलम-ए-हहूत** (प्रभृता के लोक) में **हक़ीक़त-ए-मुहम्मदी** की चेतना है ।

वहीदियत (S) : अनेकता की चेतनायुक्त ऐक्य । माया की **तौहीद** ।

वहीद-उल-वुजूद (S) : देखिये : वुजूद ।

(३५७)

वजीब-उल-वुजूद (S) : देखिये : वुजूद ।

वली (S) : शब्दार्थ, मित्र । वह आत्मा जिसे **विलायत** प्राप्त है । इसका प्रयोग बहुधा अधिक नियन्त्रिक आशय में पाँचवीं भूमिका पर स्थित सन्त के अर्थ में किया जाता है । V : **महापुरुष** ।

वली अल्लाह (S) : शब्दार्थ, परमात्मा का एक मित्र । एक **वली** ।

वाक़िफ़ (S) : शब्दार्थ, वह जिसको ज्ञान है । एक स्थूल चेतनायुक्त आत्मा ।

वक्त (S) : ६५ से १२५ वर्षों की अवधि का एक युग । हर कालचक्र में ११ युग होते हैं । V : **काल** ।

वरा-उल-वरा (S) : (vara' ul vara') अवस्था I में परमात्मा । परमात्मा की परात्पर अवस्था । V : **परात्पर परब्रह्म** ।

वासिफ़ (S) : शब्दार्थ, स्तुतिकर्त्ता । एक सूक्ष्म चेतनायुत्त आत्मा ।

'दि वेफ़ेयरर्स' : विलियम डङ्किन कृत एक ग्रन्थ, जिसमें **मस्तों** के साथ मेहेरबाबा के कार्य का वर्णन किया गया है । भारत में, आदि के॰ ईरानी द्वारा १९४८ ई॰ में प्रकाशित ।

वज़ीफ़ा (S) : (vazifah) एक **मन्त्र,** मन्त्र के प्रसंग में देखिये ।

विलायत (S) : शब्दार्थ, (परमात्मा के साथ) मैत्री । पाँचवीं और छठवीं भूमिकाओं पर स्थित एक आत्मा की अवस्था ।

वुजूद (S) : शब्दार्थ, अस्तित्व ।

आरिफ़-उल-वुजूद (S) : ('arif ul vujud) अस्तित्व का ज्ञाता (अस्तित्व को जानता हुआ), प्रभुता के लोक में **क़ुतुब** का वर्णन (**आलम-ए-हहुत**) । दूसरी अभिव्यक्ति के अनुरूप (**तजल्ली-ए-दोयम**) ।

मुमकिन-उल-वुजूद (S) : (mumkin ul vujud) सूक्ष्म लोक में एक आत्मा का सम्भव अस्तित्व (**आलम-ए-मलकूत**) । चौथी अभिव्यक्ति के अनुरूप (**तजल्ली-ए-चहर्रूम**) ।

وحديتِ وحديت *wahdiyat-e-wahidiyat* (S): (vahdiyat-i vahidiyat) Conscious Oneness conscious of Oneness-in-Manyness. This is the consciousness of *haqiqat-e-Muhammadi* in the *alam-e-hahut* (sphere of Mastery).

وحدية (ت) *wahidiyat* (S): (vahidiyat) Oneness conscious of manyness. The *tauhid* of Illusion.

وهيد الوجود *wahid-ul-wujud:* See *wujud.*

وجيب الوجود *wajib-ul-wujud:* See *wujud.*

ولى *wali* (S): (valī) Lit., friend. One who has *wilayat, q.v.* Frequently used in a more restricted sense to mean a saint on the fifth plane. V: *mahapurush.*

ولى اللّه *wali Allah* (S): (valī allāh) Lit., a friend of God. A *wali.*

واقف *waqif* (S): (vāqif) Lit., one who knows. A gross-conscious soul.

وقت *waqt* (S): (vaqt) An age of 65–125 years duration. There are eleven ages in each cycle. V: *kal.*

وراء الوراء *Wara-ul-Wara* (S): (vara' ul vara') God in State I. The Beyond-Beyond state of God. V: *Paratpar Parabrahma.*

واصف *wasif* (S): (vāṣif) Lit., praiser. A subtle-conscious soul.

Wayfarers, The: A book by William Donkin, describing Meher Baba's work with masts. Published 1948 in India by Adi K. Irani.

وظيفه *wazifa* (S): (vaẓīfah) A *mantra, q.v.* [should be vaẓīfah]

ولاية (ت) *wilayat* (S): (vilāyat) Lit., friendship (with God). The state of a soul on the fifth and sixth planes.

وجود *wujud* (S): (vujūd) Lit., existence.

عارف الوجود *arif-ul-wujud:* ('ārif ul-vujūd) Knower of existence (knowing existence), descriptive of the Qutub in the sphere of Mastery (*alam-e-hahut*). Corresponds to the second manifestation (*tajalli-e-dovvom*).

ممكن الوجود *mumkin-ul-wujud:* (mumkin ul-vujūd) Possible existence, of a soul in the subtle sphere (*alam-e-malakut*). Corresponds to the fourth manifestation (*tajalli-e-chaharom*).

मुमतान-उल-वुजूद (S) : (mumtan ul vujud) एक आत्मा का मनो लोक में नकारात्मक अस्तित्व (**आलम-ए-जबरूत**) । तीसरी अभिव्यक्ति के अनुरूप (**तजल्ली-ए-सोयम**) ।

वहीद-उल-वुजूद (S) : (vahid ul vujud) एकात्मक अस्तित्व, चैतन्य ऐक्य (**अहदियत**) जिसका अनुभव **मजज़ूब** को पूर्णता के लोक (**आलम-ए-लहूत**) में होता है । प्रथम अभिव्यक्ति के अनुरूप (**तजल्ली-ए-अव्वल**) ।

(३५८)

वजीब-उल-वुजूद (S) : (vajib ul vujud) स्थूल लोक (**आलम-ए-नसूत**) में स्थूल चेतनायुक्त सामान्य व्यक्ति का अवश्यक अस्तित्व । पाँचवीं अभिव्यक्ति (**तजल्ली-ए-पंजुम**) के अनुरूप ।

वुजूद-ए-मुतलक़ (S) : परम अस्तित्व ।

वुजूदत (S) : अस्तित्व ।

खमसा वुजूदत (S) : (khamsa vujudat) पाँच प्रकारों का अस्तित्व । देखिये : **वुजूद** ।

वुजूदियाह (S) : एकरूपतावाद का सूफ़ी सम्प्रदाय, जिनके विचारों की तुलना वेदान्त के **अद्वैत** सम्प्रदाय से की जा सकती है ।

यक़ीन (S) : निश्चितता । दृढ़विश्वास ।

ऐन-उल-यक़ीन (S) : ('ain ul yaqin) दृष्टि द्वारा दृढ़ विश्वास, जो छठवीं भूमिका पर परमात्मा को आमने-सामने देखने से प्राप्त होता है । V : **अन्तर्दृष्टि** ।

हक़-उल-यक़ीन (S) : (haqq ul yaqin) **साधात्कार** की निश्चितता ।

इल्म-उल-यक़ीन (S) : ('ilm ul yaqin) चट्टान के समान अडिग श्रद्धा पर आधारित बौद्धिक दृढ़ विश्वास ।

उर्फ़-उल-यक़ीन (S) : ('urf ul yaqin) **अवतार** और **सद्गुरुओं** के ज्ञानपथ की निश्चितता, जो अपने ज्ञान का प्रयोग बन्धन में जकड़ी आत्माओं की सहायता के लिये करते हैं ।

यक़ीन-उल-यक़ीन (S) : (yaqin ul yaqin) पहली भूमिका से पाँचवीं भूमिका तक स्थित आत्माओं का दृढ़ विश्वास ।

यज़दान (ज़ोरास्ट्रियन) : सर्वशक्तिमान ईश्वर । V : **परमात्मा** S : **अल्लाह** ।

योग (V) : शब्दार्थ, मिलन । एक व्यक्ति की अवस्था जिस समय उसका कर्म और विचार का जीवन उसके जीवन के स्वयं स्रोत की लय में पूर्ण रूप से होता है । **योग** के नाना प्रकार होते हैं, जैसे :

ممتان الوجود *mumtan-ul-wujud:* (mumtana 'l-vujūd) Negative existence, of a soul in the mental sphere (*alam-e-jabrut*). Corresponds to the third manifestation (*tajalli-e-sevvom*).

وهد الوجود *wahid-ul-wujud:* (vahid ul-vujūd) Unitary existence, the conscious oneness (*ahadiyat*) experienced by the *Majzoob* in the sphere of perfection (*alam-e-lahut*). Corresponds to the first manifestation (*tajalli-e-avval*).

واجب الوجود *wajib-ul-wujud:* (vājib ul-vujūd) Necessary existence, of the normal gross-conscious individual in the gross sphere (*alam-e-nasut*). Corresponds to the fifth manifestation (*tajalli-e-panjom*).

وجودِ مطلق *Wujud-e-Mutlaq* (S): (vujūd-i muṭlaq) The Absolute Existence.

وجودة (ت) *wujudat* (S): (vujūdat) Existence.

خمسة وجودت *khamsa wujudat:* (khamsah vujūdat) The five kinds of existence. See *wujud*.

وجودية *Wujudiyyah* (S): (vujūdiyyah) The Sufi school of Identityism, whose views are comparable to the *Advaita* school of Vedanta.

يقين *yaqin* (S): (yaqīn) Certainty. Conviction.

عين اليقين *ain-ul-yaqin:* ('ain ul-yaqīn) The conviction by sight, which comes by seeing God face to face on the sixth plane. V: *antar drishti*.

حق اليقين *Haqq-ul-yaqin:* (ḥaqq ul-yaqīn) The certainty of Realization.

علم اليقين *ilm-ul-yaqin:* ('ilm ul-yaqīn) Intellectual conviction based on rock-like faith.

عرف اليقين *urf-ul-yaqin:* ('urf ul-yaqīn) The certainty of Gnosis, of the *Avatar* and Perfect Masters, who use their Knowledge to help souls in bondage.

يقين اليقين *yaqin-ul-yaqin:* (yaqīn ul-yaqīn) Conviction of souls on the first through the fifth plane.

يزدان Yezdan (Zoroastrian): Almighty God. V: *Paramatma*. S: *Allah*. ----------yazdān

yoga (V): (yoga) Lit., union. The state of an individual when his life of action and thought is totally in harmony with the very source of his being.

There are varieties of yoga, such as:

भक्ति योग : प्रेम अथवा निष्ठा का **योग** ।
ज्ञान योग : ज्ञान का **योग** ।
कर्म योग : कर्म का **योग** ।
राज योग : ध्यान लगाने और चिन्तन करने के द्वारा किया गया **योग** ।

(३५९)

योगी (V) : = साधक : वह व्यक्ति जो **पथ** पर चलता है । S : **रहरव** ।
युग (V) : लगभग ७०० वर्ष से १४०० वर्षों की अवधि का एक कालचक्र, जिसका प्रारम्भ **अवतार** के प्रगट होने के समय होता है । S : **दौर, ज़मां** ।
ज़मां (S) : = **युग** ।
ज़ात (S) : परमात्मा का दिव्य सार तत्व ।
ज़ात-उल-बहत (S) : (zat al baht) निर्मल तत्व । परमात्मा की परात्पर अवस्था का एक पद ।
ज़िल (S) : शब्दार्थ.पृष्ठ के नीचे दी गई टीप; परिशिष्ट, दुम । परमात्मा की मायावी अभिव्यक्ति ।
ज़ोरास्टर : (ज़रथुस्त्र भी) प्राचीन **अवतार** जो ईरान में रहता था, सबसे प्रारम्भिक अवतारों में से एक जिसका लेखा हमको प्राप्त है ।

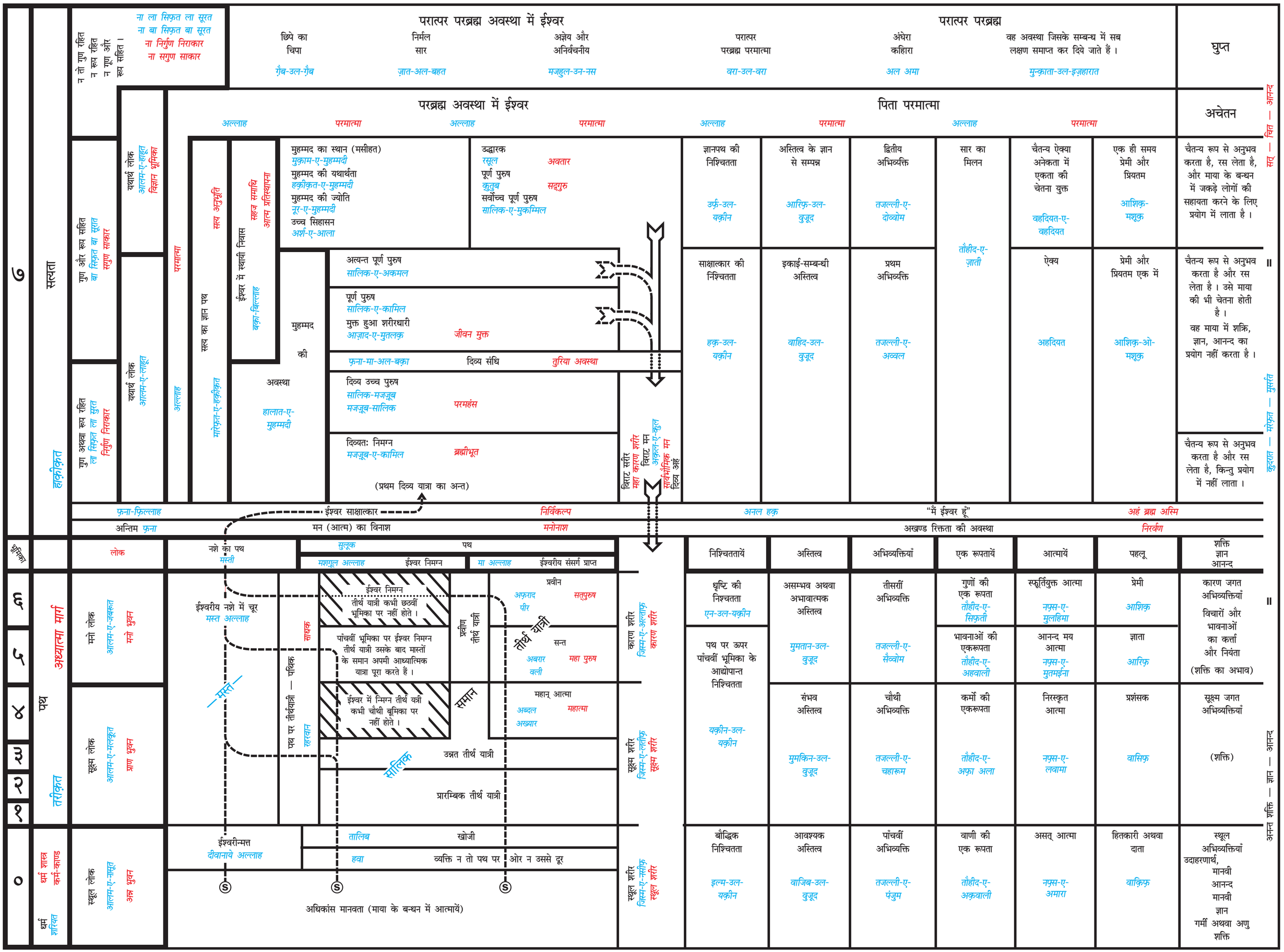
bhakti yoga: (bhakti yoga) The yoga of love or devotion.
dnyan yoga: (jñāna yoga) The yoga of knowledge.
karma yoga: (karma yoga) The yoga of action.
raj yoga: (rāja yoga) Yoga by means of meditation and contemplation.

yogi (V): (yogī) = *sadhak:* One who traverses the Path. S: *rahrav.*
yuga (V): (yuga) A cycle of time, of about 700 to 1400 years duration, which begins whenever the Avatar appears. S: *daor, zaman.*

زمان *zaman* (S): (zamān) = *yuga.*
ذات *zat* (S): (z̲āt) God's divine essence.
ذات البحت *Zat-al-Baht* (S): (z̲āt al-baḥt) The pure essence. A designation of the Beyond-Beyond state of God.
------z̤ill = shadow, shade, cloud veiling the sun
ظل *zil* (S): (z̤ill) Lit., footnote; appendix, tail. God's illusory manifestation.
زردشت زرادشت زراتشت زرادهشت Zoroaster: (also, Zarathustra) The ancient *Avatar* who lived in Iran, one of the earliest of whom we have records.

ईश्वर-वाणी में प्रयक्त हुए चेतना को भूमिकाओं से सम्बन्धित, गूढ़, सूफ़ी और वेदान्तक शब्द

लुडविग डिम्फल द्वारा तैयार किया गया और मेहेर बाबा द्वारा स्वीकार किया गया नक्शा



व्याख्या :– शब्द जिस नम्बर की भूमिका पर लागू होते हैं वे उस नम्बर के दाहिनी ओर पड़े-वल दिखाए गए हैं ।
विषय वस्तु की श्रेणियाँ, लम्ब रूप स्तम्भों के लिए, ६वीं और ७वीं भूमिकाओं के बीच पड़े-वल सूचित की गई हैं ।
टाइप की शैली शब्द के मूल रूप को इंगित करती है, जैसे गूढ़, *सूफ़ी, वेदान्तिक अथवा निकट-वेदान्तक* ।

इस चार्ट का मूल आलेख एल॰ डिम्फल ने २५ अक्टूबर १९६४ को डाक द्वारा भेजा था । मेहेर बाबा द्वारा उसका पुनर्निरीक्षण और संशोधन हो जाने के बाद, वह एल॰ डिम्फल को एरच बी॰ जसावाला द्वारा १२ अप्रैल, १९६९ को वापस भेज दिया गया था । कापीराइट १९७१ सूफ़िज़्म रीओरीऐंटड, इंकोर्पोरेटड

MYSTIC, SUFI AND VEDANTIC TERMS RELATED TO THE PLANES OF CONSCIOUSNESS AS USED IN GOD SPEAKS

Mapped by Ludwig Dimpfl as approved by Meher Baba

7 — Reality — Haqiqat

Neither without Attribute nor Form, nor with Attributes and Form. — *Na La Sifat La Surat / Na Ba Sifat Ba Surat / Na Nirguna Nirakar / Na Saguna Sakar*

God in the Beyond-Beyond State — *Paratpar Parabrahma*

The Hidden of the Hidden	The Pure Essence	The Unknowable and Undefinable	Beyond the Beyond	The Dark Mist	The State in Relation to Which All Indications are Dropped	Latent
Ghaib-ul-Ghaib	*Zat-al-Baht*	*Majhul-un-Nat*	*Wara-ul-Wara*	*Al Ama*	*Munqata-ul-Izharat*	

God in the Beyond State — *Allah / Paramatma*

God the Father — *Allah / Paramatma*

Unconscious	Consciously experiences, enjoys, and uses to help those bound in Illusion.	Consciously experiences, and enjoys. Also conscious of Illusion. Does not use Power-Knowledge-Bliss in Illusion.	Consciously experiences, and enjoys, but does not use.
	Certainty of Gnosis — *Urf-ul-Yaqin*	Knowing Existence — *Arif-ul-Wujud*	The Second Manifestation — *Tajalli-e-Dovvom*
	Certainty of Realization — *Haqq-ul-Yaqin*	Unitary Existence — *Wahid-ul-Wujud*	The First Manifestation — *Tajalli-e-Avval*
	Unification of Essence — *Tauhid-e-Zati*		
	Conscious Oneness Concious of Oneness in Manyness — *Wahdiyat-e-Wahidiyat*	Oneness — *Ahadiyat*	
	Lover and Beloved simultaneously — *Ashiq / Mashuq*	Lover and Beloved in One — *Ashiq-o-Mashuq*	

Sat-Chit-Anand — *Qudrat-Marefat-Musarrat*

Real Sphere — *Alam-e-Hahut* — *Vidnyan Bhumika*

With Attributes and Form — *Ba Sifat Ba Surat* — *Saguna Sakar*

Real Sphere — *Alam-e-Lahut*

Without Attributes or Form — *La Sifat La Surat* — *Nirguna Nirakar*

Paramatma — *Allah*

Gnosis of Reality — *Marefat-e-Haqiqat*

Satyanubhuti

Abiding in God — *Sahaj Samadhi* — *Atma Pratisthapana*

Baqa-Billah

State of Muhammad — *Halat-e-Muhammadi*

Office of Muhammad (Christhood) — *Muqam-e-Muhammadi*
Reality of Muhammad — *Haqiqat-e-Muhammadi*
Light of Muhammad — *Nur-e-Muhammadi*
The High Throne — *Arsh-e-Ala*

Savior — *Rasool* — *Avatar*
Perfect Master — *Qutub* — *Sadguru*
Supremely Perfect One — *Salik-e-Mukammil*

Most Perfect One — *Salik-e-Akmal*
Perfect One — *Salik-e-Kamil*
Liberated Incarnate — *Azad-e-Mutlaq* — *Jivanmukta*

Fana-ma-al-Baqa — Divine Junction — *Turiya Avastha*

Divine Super Man — *Salik-Majzoob* / *Majzoob-Salik* — *Paramhansa*

Divinely Absorbed — *Majzoob-e-Kamil* — *Brahmi Bhoot*

(End of the First Divine Journey)

Universal Body — *Mahakarana Sharir*
Universal Mind — *Aql-e-Kull*
Sarvabhaumic Manas
Divine Ego

Fana-Fillah — God Realization — *Nirvikalpa* — *Anal Haqq* — "I am God" — *Aham Brahmasmi*

The final *Fana* — Annihilation of Mind (Self) — *Manonash* — Absolute vacuum State — *Nirvana*

Plane		SPHERE	THE PATH OF INTOXICATION *MASTI*	SULUK THE PATH OF SOBRIETY			CERTAINTIES	EXISTENCES	MANIFESTATIONS	UNIFICATIONS	SELVES	ASPECT	POWER KNOWLEDGE BLISS
				Mashghul Allah — God Absorbed		*Ma Allah* — God Communed							
6	The Path — *Adhyatma Marga*	Mental Sphere — *Alam-e-Jahut* — *Mano Bhuvan*	God-Intoxicated — *Mast Allah*	Wayfarers — *Sadhaks*	God absorbed pilgrims are never on the sixth plane.	Adept — *Afrad* / *Pir* — *Satpurush*	Certainty of sight — *Ain-ul-Yaqin*	Impossible or Negative Existence	The Third Manifestation	Unification of Atttributes — *Tauhid-e-Sifati*	Inspired Self — *Nafs-e-Mulhima*	Lover — *Ashiq*	Mental World Manifestations Creator and Controller of Thoughts and Feelings (No Power)
5					God absorbed pilgrims on the fifth plane complete their spiritual journey as masts thereafter.	Saint — *Abrar* / *Wali* — *Mahapurush*	Certainty on the Path up through the Fifth Plane — *Yaqin-ul-Yaqin*	*Mumtan-ul-Wujud*	*Tajalli-e-Sevvom*	Unification of Feelings — *Tauhid-e-Ahwali*	Beatified Self — *Nafs-e-Mutmainna*	Knower — *Arif*	
4		Subtle Sphere — *Alam-e-Malakut* — *Pran Bhuvan*		Pilgrims on the Path — *Rahravan*	God absorbed pilgrims are never on the fourth plane.	Great Soul — *Abdal* / *Akhyar* — *Mahatma*		Possible Existence — *Mumkin-ul-Wujud*	The Fourth Manifestation — *Tajalli-e-Chaharom*	Unification of Actions — *Tauhid-e-Afa'ala*	Reproachful Self — *Nafs-e-Lawaama*	Praiser — *Wasif*	Subtle World Manifestations (Power)
3					Advanced Pilgrims								
2					Initiate Pilgrims								
1													
0	Religion *Dharma Shastra* / *Shariat* — *Karma-Kanda*	Gross Sphere — *Alam-e-Nasut* — *Anna Bhuvan*	God-Mad — *Divana Allah*	*Talib* — Seeker			Intellectual Certainty — *Ilm-ul-Yaqin*	Necessary Existence — *Wajib-ul-Wujud*	The Fifth Manifestation — *Tajalli-e-Panjom*	Unification of Speech — *Tauhid-e-Aqwali*	Evil Self — *Nafs-e-Ammara*	Benefactor or Almsgiver — *Waqif*	Gross Manifestations e.g., Human happiness Human knowledge Heat or Atomic energy
				Hawa — One not on the Path but not far from it.									

MASTS — SALIK — LIKE — PILGRIMS

Most of humanity (Souls bound in Illusion)

Mental Body — *Jism-e-Altaf* — *Karan Sharir*
Subtle Body — *Jism-e-Latif* — *Sukshma Sharir*
Gross Body — *Jism-e-Kasif* — *Sthul Sharir*

Infinite Power–Knowledge–Bliss

KEY: Terms appear horizontally to the right of the number of the plane to which they apply.
Classes of subject matter, for the vertical columns, are listed horizontally between planes 6 and 7.
Style of type indicates origin of term, viz.; Mystic, *Sufi, Vedantic or near-Vedantic.*

Original draft of this chart by L.Dimpfl mailed to Meher Baba Oct. 25, 1964.
Reviewed and corrected by Meher Baba. Returned to L.Dimpfl by Eruch B. Jessawala on April 12, 1969. ©1971 Sufism Reoriented, Inc.